प्रकाशक : श्री भँवरमल सिंघी अभ्यर्थना समिति, ४, विशप लेफ्राय रोड, कलकत्ता-२०
प्रकाशन तिथि : ९ अगस्त १९८४; मुद्रक : एसकेज, ८, शोभाराम बैशाख स्ट्रीट, कलकत्ता-७००००७; आवरण और सज्जा : रिप्रोडक्शन सिंडिकेट, ७/१, विधान सरणी, कलकत्ता-७०००००६ ।
मुखपृष्ठ परिकल्पना : सुनील सील; मुखपृष्ठ छायाचित्र : सुनील कुमार दत्त ।

आभार

मैं श्री भँवरमल सिंघी के अभ्यर्थना समारोह से जुड़ा, इसकी मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। मुझे इस अभ्यर्थना समारोह की समिति का अध्यक्ष बनाने के लिये मैं सिंघी जी के दोस्तों एवं प्रशंसकों तथा उन सभी व्यक्तियों का आभारी हूँ जिन्होंने इस आयोजन की परिकल्पना की। एक तरह से मैं सिंघी जी के साथ अप्रत्यक्ष रूप से उनके विद्यार्थी जीवन से ही जुड़ा हूं। वे जयपुर अग्रवाल स्कूल के छात्र थे और उन्हें एक बार मेरे पिताजी के नाम पर दिया जाने वाला मेडल प्रदान किया गया था।

करीब करीब ५० वर्षों से मैं सिंघी जी के सम्पर्क में रहा हूँ और पिछले कुछ वर्षों से श्री शिक्षायतन में साथ काम करने के कारण उनके निकट सम्पर्क में आया हूँ। शिक्षायतन में दोनों ही पति-पत्नी रुचि लेते हैं एवं सक्रिय हैं। मेरी दृष्टि में बस्ती के बच्चों के लिये सिंघी दम्पति द्वारा संचालित स्कूल 'पारिवारिकी' उनकी श्रेष्ठतम उपलब्धि है।

समाज-सुधार के क्षेत्र में सिंघी जी की दृष्टि व्यावहारिक रही है और उन्होंने सदा समाज-सुधार की आवश्यकता पर जोरदार बल दिया है। वे स्वतन्त्रता संग्राम के साथ भी सक्रिय रूप से जुड़े थे। समाज सुधार, नारी शिक्षा, स्त्रियों की उन्नति, पारिवारिकी की स्थापना आदि के काम में सुशीला जी के योगदान को स्वीकार किये बिना सिंघी जी का अभिनन्दन अधूरा रहेगा। समाज कल्याण के क्षेत्र में सिंघी दम्पति एक दूसरे के पूरक हैं। यद्यपि सिंघी जी केवल ७० वर्ष के हैं पर क्रिकेट की भाषा में कहें तो उनकी बल्लेबाजी बड़े ऊँचे दर्जे की रही है, उन्होंने बहुत रन बनाये हैं। प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रंथ मेरे कथन की पुष्टि करेगा। ग्रन्थ के सम्पादक डा० प्रतिभा अग्रवाल एवं डा० कमल किशोर गोयनका बधाई के पात्र हैं जिन्होंने तीन महीनों के अल्प समय में ग्रंथ प्रस्तुत करने का असंभव कार्य संभव किया है।

हम भँवरमल जी और सुशीला जी को बधाई देते हैं—बधाई उनकी उम्र के लिए नहीं वरन् उनके द्वारा की गई सेवाओं के लिए। हम उनकी सुखमय दीर्घायु की कामना करते हैं।

इस अभ्यर्थना समारोह के काम में जिन जिन लोगों ने तन, मन या धन से सहयोग दिया, उन सबका मैं आभारी हूं। कार्यकारिणी के सदस्यों का मैं विशेष आभारी हूँ जिनकी सतत सक्रियता के कारण यह काम सम्पन्न हो सका।

भगवती प्रसाद खेतान
अध्यक्ष

सम्पादकों की ओर से

सिंघी जी अभ्यर्थना की योजना बनाने के साथ ही स्वाभाविक था कि उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने की बात सामने आये। इसके साथ मन में यह खयाल आना भी एकदम स्वाभाविक था कि ग्रन्थ केवल स्तुतिगान न होकर उपयोगी भी हो। आम तौर पर देखा गया है कि अभिनन्दन ग्रन्थ संस्मरणात्मक होते हैं। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ होते हैं जिनमें संस्मरण के साथ ही अभिनन्दित व्यक्ति की रचनाएँ, पत्राचार एवं जीवनी आदि का समन्वय किया जाता है। कुछ ऐसे अभिनन्दन ग्रन्थ भी तैयार किये गये हैं जिनमें उस विषय या उन विषयों और क्षेत्रों से सम्बन्धित लेखों का संग्रह किया गया है जिन पर अभिनन्दित व्यक्ति ने काम किया है। मन दौड़ने लगा—क्या किया जाय, कैसे किया जाय। केवल संस्मरणात्मक ग्रन्थ का प्रश्न ही नहीं था। सच पूछिए तो पहला विचार यह आया कि ग्रन्थ में संस्मरण दिए ही न जायें। अभिनन्दन ग्रन्थों के लिए लिखे जाने वाले संस्मरण अधिकतर संस्मरण न होकर स्तुतिगान ही होते हैं। अवसर को देखते हुए वही होना उचित भी होता है। चूंकि सिंघी जी ने प्रचुर लिखा है और "वेदना" तथा दो एक छोटी-मोटी पुस्तकों के अतिरिक्त उनका सारा लेखन पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है, अतः मन में आया—अभ्यर्थना के अवसर पर सिंघी जी को उनकी ही रचनाओं का संग्रह भेंट करना अच्छा होगा—गंगाजल से गंगा की पूजा करने जैसा। फिर लगा, इस तरह के ग्रन्थ का अपना महत्व होगा और इससे सिंघी जी का कृतित्व तो सामने आयेगा, पर व्यक्तित्व नहीं। और सिंघी जी का व्यक्तित्व कृतित्व से कम महत्वपूर्ण नहीं, दोनों एक साथ गुंथे हुए हैं, अतः ग्रन्थ में उनकी रचनाओं के साथ ही उनकी जीवनी, जेल की डायरी के अंश, कुछ पत्राचार और दीर्घकाल से साथ जुड़े कुछ व्यक्तियों के संस्मरण देने का निश्चय किया गया। ग्रन्थ आपके समक्ष है। हम ग्रन्थ को आम अभिनन्दन ग्रन्थों से बहुत भिन्न नहीं बना पाये हैं फिर भी हमें आशा है कि आपको इसमें कुछ नया मिलेगा।

सब कुछ समेटने का निर्णय करने के साथ परेशानियों का हुजूम सामने आ खड़ा हुआ। सिंघी जी ने गत पचास वर्षों में करीब १४०० से ऊपर लेख एवं सम्पादकीय लिखे हैं। विषय हैं समाज, राजनीति, धर्म, शिक्षा, संस्कृति, साहित्य, कला एवं परिवार नियोजन। इनमें से कुछ प्रमुख रचनाओं को भी चुना जाता तो पृष्ठ संख्या चार-पांच सौ तक पहुंच जाती। चूंकि मूलतः उनकी रचनाओं का ही संग्रह तैयार करने का इरादा मन में आया था अतः अधिकाधिक लेख, गद्यगीत, यात्रा-वर्णन आदि लेने की इच्छा हुई। कलेवर बड़ा हो गया। हम पृष्ठों का अन्दाज लगाते, कुछ रचनाएँ

निकालते फिर पृष्ठ गिनते, फिर रचनाएं निकालते। यह काम कई वार किया, वड़ी निर्ममतापूर्वक किया तव कहीं दो सौ पृष्ठों में हम "कृतित्व" वाले अंश को समेट पाये। हमें खेद है कि हम उन अनेक रचनाओं को छोड़ने को बाध्य हुए जो पाठकों को रुचिकर होतीं। पर हम विश्वास दिलाते हैं कि महत्वपूर्ण अधिकांश आ गया है, छूटा नहीं है।

कृतित्व खण्ड को चार भागों में बांटा गया है—साहित्य, समाज एवं राजनीति धर्म, शिक्षा तथा संस्कृति और परिवार नियोजन। ये चारों क्षेत्र सिंघी जी के जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं और इन सभी क्षेत्रों में उन्होंने प्रचुर काम किया है, प्रचुर लिखा है। सन् १९३२ में उनकी पहली रचना 'मन्दिर और पूंजीवाद' 'ओसवाल नवयुवक' में प्रकाशित हुई और प्रारम्भिक कुछ वर्ष उनके साहित्यिक सृजन के वर्ष थे, जिनमें उन्होंने गद्यगीत, कविता, संस्मरण, व्यंग्य लेख तथा अन्य साहित्यिक रचनाएं लिखीं। उनके गद्य-गीत संग्रह 'वेदना' ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में स्थान पाया और विभिन्न रचनाओं ने समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में। साहित्य सृजन का क्रम अनवरत चलता रहा पर स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान समाज एवं देश की अन्य अनेकानेक समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक था। पांचवें दशक से ही समाज, राजनीति और धर्म के क्षेत्र सिंघी जी की कर्मभूमि वने। फलस्वरूप पांचवें दशक से ही इन विषयों पर लेखन शुरू हुआ और नयी दृष्टि, आवश्यकतानुसार विद्रोह के स्वर और रचनात्मक सुझावों को निडर भाव से जमकर व्यक्त किया गया। कालांतर में शिक्षा, संस्कृति एवं परिवार नियोजन भी इस तालिका में जुड़े।

विभिन्न विषयों पर एवं विभिन्न शैलियों में रचित सिंघी जी की रचनाओं के एक छोटे से अंश को हम ग्रन्थ में प्रस्तुत कर रहे हैं जिनमें "वेदना" में प्रकाशित गद्य-गीत एवं दो कविताएं भी शामिल है। इन रचनाओं के द्वारा एक ओर जहाँ सिंघी जी की नयी समयोपयोगी दृष्टि विद्रोहात्मक प्रवृत्ति एवं निडर अभिव्यक्ति के साहस का परिचय मिलता है, वहीं उनकी सुलझी हुई चिंतन पद्धति सहज-सरल भाषा और सीधे प्रहार की क्षमता का परिचय भी मिलता है।

"व्यक्तित्व" वाला खण्ड भी चार उपखंडों में विभाजित है—जीवनी, जेल की डायरी, पत्र-व्यवहार एवं संस्मरण। इस खण्ड की सामग्री तैयार करना भी कम कठिन न था। जीवनी लिखी हुई तो थी नही। ५० वर्षों के कर्ममय जीवन को ४०-५० पन्नों में समाहित करना आसान न था। शिशिर गुप्त ने वड़े परिश्रम किन्तु सफलतापूर्वक इस काम को सम्पन्न किया—पृष्ठ संख्या ६० से कम न हो पायी।

सिंघी जी दिसम्वर ४२ से ४४ तक जेल में रहे। जेल में उन्होंने डायरी लिखी—कभी नियमित कभी लवे अंतरालों के वाद। मन में उमड़ते-घुमड़ते भावों एवं विचारों का निश्छल प्रवाह अत्यन्त सहज एवं तरल रूप में डायरी के पृष्ठों में प्रवाहित हुआ है। उस दौरान सिंघी जी ने जितना मनन किया उतना ही पढ़ा। डायरी में अनेक पुस्तकों के सम्बन्ध में विस्तृत विचार किया गया है। डायरी के इन पृष्ठों में स्वतन्त्रता आन्दोलन, बंगाल का अकाल, पारिवारिक दायित्व पूरी तरह न निभा पाने की कचोट आदि के सम्बन्ध में बार-बार वातें लिखी गई हैं, जो पौने तीन वर्ष के कारावास काल की उनकी मनोवृत्ति की परिचायक हैं।

पचास वर्षों में विपुल पत्राचार सिंघी जी ने किया और अपने पास आये अधिकांश पत्रों को सुरक्षित रखा। पत्र लिखने वालों में सुप्रसिद्ध राजनेता, साहित्यकार धर्म-सुधारक, परिवार नियोजक, इष्ट-मित्र सभी शामिल हैं। सिंघी जी को प्राप्त पत्रों में से केवल कुछेक पत्र ग्रन्थ में दिये जा रहे हैं। ये पत्र कहीं किसी विचार को व्यक्त कर रहे हैं तो कहीं किसी भावना को। कुछेक पत्र ऐसे भी हैं जो सिंघी जी के प्रति लोगों के भावों को प्रगट करते हैं। सिंघी जी द्वारा लिखे केवल ६ पत्र संग्रहीत हैं जो विभिन्न अवसरों और परिस्थितियों में सिंघी जी की मनःस्थिति की ईमानदार अभिव्यक्ति हैं।

और सबसे अन्त में "संस्मरण" की बात। चूंकि मूलतः संस्मरण कम से कम देने का विचार था अतः हमने केवल उनलोगों से लिखने को कहा जो विभिन्न क्षेत्रों में सिंघी जी के दीर्घकालीन सहयोगी, साथी और मित्र रहे हैं, जिन्होंने सिंघी जी को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया या जो स्वयं उनसे प्रभावित हुए हैं। निकट परिवार के लोगों की बात आये विना वात अधूरी रहती, उनके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण अंश अछूता रह जाता। हमें खेद है कि अपनी प्रस्तुत योजना के अन्तर्गत बहुत सीमित संस्मरण दे पा रहे हैं। हम आभारी हैं उन सभी साथी-सहयोगियों-इष्ट-मित्रों के जिन्होंने सिंघी जी के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं और क्षमाप्रार्थी हैं उन अनेक व्यक्तियों के प्रति जो नहीं लिख पाये यद्यपि हमें पता है कि उन्हें सिंघी जी के वारे में लिखकर आनन्द प्राप्त होता और उनकी बातें पढ़कर हमें भी सिंघी जी के व्यक्तित्व के एक और आयाम का दर्शन होता।

विलम्ब से आये कुछ संस्मरणों को हम अलग से "कुछ और संस्मरण" शीर्षक के अन्तर्गत दे रहे हैं। हमें खेद है कि हम इन्हें अलग से देने को वाध्य हुए पर प्रसन्नता है कि अलग से ही सही, दे पाये क्योंकि इसमें सिंघी जी के घनिष्ठ मित्रों-साथियों के संस्मरण शामिल हैं।

परिशिष्ट में सिंघी जी की जीवन-सरणी और उनके द्वारा रचित, सम्पादित तथा अनूदित ग्रंथों एवं प्रकाशित लेखों की सम्पूर्ण सूची दी जा रही है। सूची उन पाठकों के लिये उपयोगी होगी जो सिंघी जी की रचनाओं को विस्तार से पढ़ना चाहते हैं।

तीन महीनों के अल्प काल में इतनी सारी सामग्री का चयन एवं उसकी प्रस्तुति इसलिए संभव हो पाई क्योंकि सिंघी जी ने अपने प्रकाशित-अप्रकाशित लेखों को अत्यन्त सावधानी से रजिस्टर में कालक्रमानुसार सुरक्षित रखा था। इतना ही नहीं, पत्र-पत्रिकाओं में अपने सम्बन्ध में प्रकाशित समाचारों की कतरनों को भी उन्होंने रख छोड़ा था। फलस्वरूप इतने कम समय में उनकी जीवनी लिखना या उनकी रचनाओं का चयन कर पाना संभव हो पाया। इस सारी प्रक्रिया में उनसे मिले सहयोग ने हमारे काम को सरल ही नहीं संभव भी बनाया। उन्हें हमारी प्रणति।

हम आभारी हैं सिंघी जी के उन सभी साथियों एवं मित्रों के जिन्होंने सिंघी जी के सम्बन्ध में अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने विचार व्यक्त किये हैं, अपनी श्रद्धा एवं अपने प्रेम के स्निग्धजल से उन्हें अभिषिक्त किया है और इस ग्रन्थ को अर्थवान बनाया है। इन

संस्मरणों के साथ ही सिंघी जी की अपनी रचनाओं, जीवनी, पत्राचार एवं संस्मरणों से समन्वित यह ग्रन्थ सिंघी जी के बहुमुखी व्यक्तित्व को झांकी दे सकेगा इसका हमें विश्वास है। साहित्य, समाज-सुधार एवं चिंतन आदि के क्षेत्रों में सिंघी जी ने जो योगदान दिया है, जिस क्रांतिकारी परिवर्तन के लिये प्रयत्न किया है, उन सबका परिचय इस ग्रन्थ से प्राप्त होगा और इस प्रकार उनका इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व अधिक आभा से चमकेगा।

हम आभारी हैं उन सब साथियों के जिनके सत्परामर्श ने ग्रन्थ को समृद्ध किया है। मुद्रण के प्रसंग में सहयोग दिया है अशोक सेकसरिया ने, ग्रन्थ की साज-सज्जा का निर्देशन एवं फोटोग्राफ के चुनाव का काम किया है सुस्मिता गुप्ता ने तथा जीवनी-लेखन का काम किया है शिशिर गुप्त ने। ये तीनों ही सिंघी जी के अपने हैं, इन्होंने जो किया वह इनका करणीय था, इनके अन्तर की मांग थी।

ग्रन्थ की साजसज्जा की है सुनील सील ने और मुद्रण किया है शिवकुमार नोपानी ने। इन दोनों को धन्यवाद। वस्तुतः दो महीने के अल्प समय में ५०० पृष्ठों के ग्रन्थ का मुद्रण करने का भार संभाल कर नोपानी जी ने साहस का परिचय दिया तो निर्धारित समय में काम पूरा करके अपनी कार्यक्षमता का। वे हमारे आन्तरिक धन्यवाद के अधिकारी हैं।

सिंघी जी आने वाले वर्षों में सक्रिय रहें, अपने विचारों एवं कार्यों से देश, समाज एवं आसपास के लोगों का दिशा-निर्देश करते रहें, इस कामना के साथ यह ग्रन्थ उन्हें भेंट है, आप सबको भेंट है।

प्रतिभा अग्रवाल
कमल किशोर गोयनका

कार्यकारिणी समिति

सर्वश्री भगवती प्रसाद खेतान (अध्यक्ष) प्रतिभा अग्रवाल (मंत्री) नन्दलाल टांटिया (कोषाध्यक्ष) कल्याणमल लोढ़ा कृष्णचन्द्र अग्रवाल गोविन्द प्रसाद केजरीवाल ज्ञानवती लाठ नन्दकिशोर जालान सिद्धराज ढड्ढा कमलकिशोर गोयनका

अभ्यर्थना समिति

सर्वश्री अभिमन्यु भुवालका अमृत अग्रवाल अशोका गुप्ता अश्विनी कानोड़िया ओंकारनाथ अग्रवाल कपूरचन्द गंगवाल कुसुम खेमानी कुलराज लाठ गणेशमल बैंद गोविन्द प्रसाद कानोड़िया जवाहरलाल जैन जवाहिरलाल जैन ज्ञानचन्द्र कोठारी तरुण राय दीपचन्द नाहटा दौलतसिंह कोठारी नन्दलाल कानोड़िया नंदलाल सुरेका नथमल केडिया निरंजन हालदार पुरुषोत्तम केजरीवाल बजरंगलाल जाजू मनमोहन ठाकोर महालचन्द्र बोथरा मोहनलाल नोपानी रघुनाथ प्रसाद खेतान रतन शाह लक्ष्मीचन्द्र जैन लक्ष्मीनारायण अग्रवाल वासुदेव कानोड़िया विश्वनाथ उपाध्याय विश्वनाथ मुखर्जी विश्वम्भर सुरेका शिवप्रसाद नोपानी श्यामसुन्दर कानोड़िया श्यामसुन्दर बेरीवाल श्यामानन्द जालान सुधीर घोष सुशीला भण्डारी सूरजरतन चाण्डक

अनुक्रम

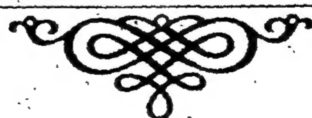
व्यक्तित्व

नये समाज के
स्वप्नद्रष्टा : सिंघी जी

जेल की डायरी

पत्र

संस्मरण



नये समाज के स्वप्नद्रष्टा : सिंघी जी

९ अगस्त १९१४ को राजस्थान के एक ऐसे गांव में भंवरमल सिंघी का जन्म हुआ था जहां आधुनिक सभ्यता का नामोनिशान नहीं था। अपने ननिहाल जोधपुर जिले के बड़ू गांव की जिस झोपड़ी में वे पैदा हुए थे, वह झोपड़ी आज वहां नहीं है। पर वह गांव अभी भी वैसा ही है जैसा ७० साल पहले था। अलकतरे की सड़क और बिजली से मीलों दूर इस गांव के सीधे-सादे गरीब हिंदुस्तानी मूलतः खेतिहर मजदूर हैं। जयपुर से करीब १०० किलोमीटर दूर इस गांव के कच्चे रास्तों पर आज भी यातायात का सबसे प्रचलित साधन ऊंट की सवारी है या फिर बैलगाड़ी की। गांव के लोग इन मुसीबत भरी सवारियों से बचने के लिए मुनासिब यह समझते रहे हैं कि गांव से बाहर निकला ही न जाये। शायद इसीलिए विकास इस गांव के दूर से ही वापस लौट गया है। भंवरमल सिंघी का जन्म इसी गांव में एक श्वेतांबर जैन परिवार में हुआ।

भंवरमल सिंघी का जन्म परिवार में मिश्रित प्रतिक्रिया का कारण बना था। मां उदय कुमारी और पिता इन्द्रचन्द्र सिंघी की पहली संतान और वह भी लड़का होने से जहां परिवार में खुशी छायी हुई थी वहीं भावी अनिश्चित भविष्य की कल्पना का गहरा तनाव भी था। पिता इन्द्रचन्द्र सिंघी के कोई काम न करने से घर में आमदनी का जरिया नहीं था। ऐसी स्थिति में घर में एक नये सदस्य का आगमन आर्थिक मजबूरियों को बढ़ायेगा, यह चिंता विशेषकर मां उदय कुमारी को सताये जा रही थी। भंवरमल के जन्म के तुरंत बाद जब मां दुख में डूबी थीं, नानी ने उनके आंसू पोछते हुए कहा था कि "तू अपना धैर्य क्यों खोती है, तेरा यह बेटा तेरे दुखों को दूर कर देगा।" शायद उस दिन से ही मां की जिंदगी का सबसे बड़ा लक्ष्य बन चुका था भंवरमल को पढ़ाना, लिखाना और बड़ा आदमी बनाना। तब मां की उम्र सिर्फ १४ साल थी।

ननिहाल में छोटा परिवार था। उनके जन्म के समय ननिहाल में मां के सिर्फ एक बड़े भाई, उनकी पत्नी तथा तीन बच्चे और नानी थीं। नाना का पहले ही निधन हो चुका था। नाना जी बड़ू ठिकाने के कामदार थे, उनकी आमदनी बहुत सीमित थी फिर भी घर की आर्थिक स्थिति भंवरमल के पिता-पक्ष की तुलना में बेहतर थी। भंवरमल के दादा मालीराम पेशे से मुंशी थे और जयपुर की वंशीलाल अमीरचंद फर्म में हिसाब लिखने का काम करते थे। उनकी वार्षिक तनख्वाह २०० रुपये थी। वे काफी आकर्षक व्यक्तित्व के थे। उन्हें अंगरेजी का भी ज्ञान था, जो कि उस जमाने में भी विशेष योग्यता मानी जाती थी। भंवरमल सिंघी के दादा-दादी

एक

को कुल २४ संतानें हुईं जिनमें शुरू के १९ बच्चों का जन्म के कुछ समय बाद ही निधन होता गया। इन्द्रचन्द्र सिंघी यानी भँवरमल के पिता बीसवें तथा जीवित बचने वाले उनकी पहली संतान थे। उनके बाद दो और लड़के हुए सागरमल तथा सिरहमल और दो लड़कियां उमराव तथा चांद को भी उन्होंने जन्म दिया। संयोग से ये चारों ही जीवित रहे।

इन्द्रचन्द्र सिंघी के जीवित बचने के बारे में कई तरह की धारणाएं हैं। इसमें शक नहीं कि संभवतः चिकित्सा सुविधाओं के पूर्णतः अभाव के कारण ही मालीराम जी की प्रथम १९ संतानों की मृत्यु हुई होगी पर उनकी मौत के लिए किसी देवी के प्रकोप को जिम्मेवार ठहराया गया। इसी वजह से इन्द्रचन्द्र के जन्म के पहले से ही कई तरह की मनौतियां मानी गयीं, विशेष कर शीतला माता को प्रसन्न रखने के लिए तरह-तरह के उपक्रम किये गये। शायद इसी का परिणाम था कि जब इन्द्रचन्द्र जन्म के बाद जीवित बच गये तो उन्हें शीतला माता की देन माना जाने लगा। संभवतः यह बात इन्द्रचन्द्र को भी बतायी गयी थी इसलिए वे बचपन से ही शीतला माता के भक्त हो गये थे।

इन्द्रचन्द्र के साथ बचपन में एक दुर्घटना हुई कि उनकी आंखों की रोशनी जाती रही। आँखों की रोशनी किस वजह से गयी, इसका ठीक-ठीक पता नहीं, पर इसका एक परिणाम यह निकला कि शीतला माता के प्रति उनकी भक्ति भावना और गहरी हो गयी। फिर एक रात अचानक उनकी आँखों की रोशनी लौट आयी। बस, इसका सारा श्रेय उनके पिता ने और उन्होंने शीतला माता को दे दिया। शीतला माता की विश्वसनीयता का इससे बड़ा तर्क और क्या हो सकता था। इन्द्रचन्द्र जीवनपर्यन्त शीतला माता के भक्त रहे। उनकी इस भक्ति का एक मजेदार नमूना उनके विवाह के समय सामने आया। जब उनकी बारात उठी, तो घोड़े पर चढ़ने के बजाय वे कुछ दूर तक गधे पर चढ़ कर गये, इसलिए कि गधा शीतला माता का वाहन है।

१९ बच्चों की मौत के बाद पहली जीवित संतान होने के कारण इन्द्रचन्द्र को परिवार में जरूरत से ज्यादा प्यार मिला। इस प्यार की वजह से ही शायद उनका सहज विकास अवरुद्ध हो गया। शिक्षा का तो खैर उस समय ज्यादा प्रचलन था ही नहीं, व्यवसाय अथवा नौकरी करने के प्रति भी उन्होंने अपनी अरुचि साफ जाहिर कर दी। बचपन में उनके सामने पैसे का अभाव तो था नहीं। पर जब परिवार में चार छोटे भाई-बहन और आ गये तो मालीराम जी की २०-२५ रुपये महीने की आमदनी में उनकी मौज-मस्ती की सम्भावनाएं जाती रहीं। इन्द्रचन्द्र जैसे जैसे बड़े होते गये, अभाव का शिकंजा कसता चला गया। काम करने का संस्कार उनमें नहीं था, इसलिए वे इस अभाव से लड़ नहीं सकते थे। अभाव के इसी दौर में उनका विवाह उदय कुमारी से हुआ।

उदय कुमारी एक स्वाभिमानी महिला थीं और उनके व्यक्तित्व की बहुत कुछ छाप भँवरमल सिंघी के ऊपर पड़ी। भँवरमल ने जब होश संभाला, उन्होंने सिवाय घर की गरीबी के और कुछ नहीं देखा। दरअसल, उनका बचपन अभाव से जूझते एक परिवार की पूरी दास्तान है। पिता इन्द्रचन्द्र की कर्त्तव्यविमुखता जस-की-तस

बरकरार थी। घर का काफी खर्च माँ उदय कुमारी उस रुपये से चलातीं, जो उन्हें अपनी माँ से मिलता था। परिवार में सम्भवतः अभाव की वजह से ही दादा मालीराम जी ने अपने छोटे लड़के सिरहमल को अजीमगंज के राजा विजय सिंह दुधोड़िया को गोद दे दिया था। संयोग से गोद लेने के बाद अजीमगंज के राजा को अपनी संतान हो गई। उसके बाद सिरहमल उनके साथ नहीं रहे और वापस जयपुर आ गये। वे अजीमगंज में बहुत दिनों तक राज-परिवार के सदस्य की हैसियत से रहे थे, इसलिए जयपुर लौटने पर भी उनकी आदतें खर्चीली थीं, जो परिवार की आर्थिक हालत देखते हुए लोगों में अचरज पैदा करती थीं। बाद में उन्होंने जवाहरात का व्यवसाय शुरू किया। सिरहमल से बड़े और इन्द्रचन्द्र से छोटे भाई सागरमल ने भी पहले से ही अपना व्यवसाय आरम्भ कर दिया था। उन दोनों भाइयों की आर्थिक स्थिति सुधरती गयी। पर इन्द्रचन्द्र सिंघी के परिवार की दशा खराब ही रही, क्योंकि दोनों ही भाइयों ने अपना अलग-अलग घर बसा लिया था और उनके इन्द्रचन्द्र से बहुत सीमित सम्बन्ध ही थे।

भँवरमल सिंघी के जीवन के पहले गम्भीर हादसे की स्मृतियां राजस्थान में १९१८-१९ में फैली प्लेग की महामारी से जुड़ी हैं। इस महामारी की छाया ने राजस्थान में जो तबाही मचाई, वह इतिहास का एक अलग अध्याय है। हजारों गरीब इस महामारी के मुँह में समा गये। भँवरमल सिंघी के दादा, दादी और एक बुआ उमराव देवी भी इस महामारी में एक-एक कर मारे गये थे। बचपन की यह रोंगटे खड़ा कर देनेवाली घटना आज भी भँवरमल को याद है। परिवार में शायद ये मौतें नहीं होतीं, अगर पिछड़ापन नहीं होता। डाक्टरों के पास जाने, उपचार कराने के बजाय परिवार में तरह-तरह की मनौतियां मानी गई थीं। पर प्लेग की बीमारी मनौतियों से ठीक नहीं हुई और घर के तीन सदस्य मर गये।

वास्तव में गरीबी के जो दिन भँवरमल ने देखे, जो अपमान सहे, इसके बावजूद जिस घने अँधेरे के बीच उन्होंने अपना रास्ता चुना और दृढ़ता से उस पर आगे बढ़ते गये, वह हर उस आदमी को प्रेरणा दे सकता है, जो अपनी मजबूरियों से लड़ रहा है। शायद इसीलिए भँवरमल सिंघी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन समाज के लिए उपयोगी चीज है। भँवरमल सिंघी का महत्व इसलिए नहीं है कि वे समाज में उच्चादर्शों को कायम करने के लिए जीवनपर्यन्त लड़ते रहे और आज समाज के एक सम्मानित सामाजिक कार्यकर्ता हैं, बल्कि उनका महत्व इसलिए ज्यादा है कि इतने संकट के बीच रहते हुए उन्होंने सुविधाओं को ठोकर मारी और मूल्यों की शर्त पर कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने समाज के लिये जो मानदण्ड माने उनका खुद पूरा पालन किया। भँवरमल सिंघी का व्यक्तित्व इसका जीवंत उदाहरण है कि अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में रहते हुए भी किस तरह एक प्रतिभा ने हर ठोकर से दिशा पाई, संघर्ष को प्रेरणा ली।

बचपन की कई घटनाएँ सिंघी जी को आज भी याद हैं और उनका जिक्र करते समय उनकी आँख में पानी आ जाता है। इनमें से कई घटनाएँ उनके विद्यार्थी जीवन की हैं। बहुत कम लोगों को पता होगा कि भँवरमल सिंघी ने बचपन के बहुतेरे सुनहरे

दिन एक पैसे के दो पान बेचकर जीविका अर्जित करने में गुजारे। जयपुर की आंकड़ एण्ड कम्पनी में घड़ीसाज भँवरमल के बारे में भी लोगों को बहुत कम पता होगा। ऐसा कोई घटिया काम नहीं था, जिसे करने के लिये उन्हें विवश न होना पड़ा हो। बहुत दिनों तक लाख की चूड़ियों से नग निकाल कर साफ करने का भी काम उन्होंने किया। उन्होंने नकली मोतियों की मालाएं घूम-घूम कर बेचने की जहमत भी झेली। अपने फूफा की शागिर्दी में मणियां बींधने का काम भी सीखा। आठवीं कक्षा पासकर जब भँवरमल आगे की पढ़ाई के लिए योजना बना रहे थे, उनके पिता इन्द्रचन्द्र ने एक कपड़े की थोक दुकान में थान उतारने की उनकी नौकरी पक्की कर दी। मां उदय कुमारी तथा भँवरमल ने इसका विरोध किया। उनका कहना था कि वे ऐसा कोई काम नहीं करेंगे, जिससे पढ़ाई बन्द करनी पड़े। बेशक घर की गरीबी को कम करने के लिये वे घड़ीसाजी करने के लिये तैयार हो गए। पढ़ाई तथा घड़ीसाजी के अलावा भँवरमल पांच रुपये महीने का ट्यूशन भी करते थे। अपने ट्यूशन का जिक्र एक संस्मरणात्मक लेख में भँवरमल सिंघी ने इन शब्दों में किया है—"सुबह-सुबह ट्यूशन के लिए जाता था, तो जिस लड़के को पढ़ाने जाता था, उसकी मां मुझे गाली देती थी। यद्यपि मैं समय से पहले पढ़ाने पहुंच जाता था, पर वह हमेशा यही कहती थी कि "मास्टर सालो, समय पर नहीं आयो।" उस स्त्री के प्रति मेरे मन में बड़ा डर बैठ गया था। पर डर और अपमान के बावजूद मैंने काफी दिनों तक वह ट्यूशन किया।"

जब भँवरमल सिंघी बाल्यावस्था में ही थे, एक ऐसी घटना हुई जिसने उनके ऊपर गहरा प्रभाव डाला। परिवार पर गरीबी की छाया थी। सभी सदस्य खाने में रूखी रोटी खाते थे, जबकि उस समय असली घी सिर्फ एक रुपये सेर के हिसाब से मिलता था। परन्तु उस अभाव के दौर में भी मां सवेरे उन्हें कलेवे में रोटी में घी लगाकर देती थीं। भँवरमल अक्सर वह रोटी लेकर घर से बाहर निकल जाते और पास-पड़ोस के बच्चों के साथ खेलते हुए खाते थे। काफी दिनों बाद भँवरमल का ध्यान इसकी ओर गया और उन्होंने एक दिन मां से कलेवे की रोटी में घी लगाने का कारण पूछा तो मां ने कहा कि जब तुम रोटी लेकर खेलने बाहर जाते हो, तो पड़ोस के बच्चे तुम्हारे साथ होते हैं। वे तुम्हारे हाथ में रूखी रोटी देखकर तुम्हारा अपमान करेंगे, और यह भेद तो खुलेगा कि हम कितने गरीब हैं। उस अभाव के दौर में भी मां के दायित्वबोध ने भँवरमल को झकझोर दिया।

परिवार की इन परिस्थितियों और मां के संस्कार ने भँवरमल को परिश्रमी बनाया। बहुत छुटपन में ही भँवरमल ने घर के अधिकांश कार्यों का जिम्मा अपने ऊपर ले लिया। घर में पानी भरने से लेकर बाजार से सब्जी लाने तक का काम उनके जिम्मे था। मां से जो थोड़ा-बहुत पैसा मिलता, उसके एक-एक पैसे का वे हिसाब रखते। भँवरमल बहुत छुटपन में ही पैसे की कीमत समझ गये थे, इसलिए बचपन में कभी भी उन्होंने अपना शौक पूरा करने के लिए एक भी पैसा खर्च नहीं किया। समय से पूर्व ही उनके जिम्मेदारियों का बोझ सँभालने और बड़ों की तरह व्यवहार करने से जहाँ मां को खुशी होती, वहीं कई बार वह इस पीड़ा से रोतीं भी कि खेलने-खाने के दिनों में यह बच्चा किस तरह समस्याओं में उलझ गया है।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, घर में सदस्यों की संख्या बढ़ती गयी। अगले कई वर्षों में परिवार में चार छोटी बहनों और दो भाइयों ने जन्म लिया। भँवरमल के बाद पैदा होनेवाली बहन जन्म से ही अंधी थी। वह दो-ढाई वर्षों तक ही जीवित रही। भँवरमल की दूसरी बहन भी ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रही। चौथे नम्बर पर पैदा होनेवाली बहन लाड़ और दो भाई पदमचंद और रतनचंद जीवित बचे एवं आज सपरिवार सम्मानपूर्ण जीवन जी रहे हैं। लाड़ का विवाह उगम सिंह रामपुरिया के साथ हुआ, जो पश्चिम बंगाल के हुगली जिले में श्रीरामपुर में बस गये और आज भी कपड़े का व्यवसाय करते हैं। लेकिन भँवरमल की तीसरी बहन राज की नौ वर्ष की उम्र में मृत्यु परिवार में काफी दुख का कारण बनी थी। वह काफी प्रतिभावान थी तथा स्कूल में अच्छे नम्बर से पास होती थी। एक दिन अचानक वह स्कूल से जल्दी घर लौटी, क्योंकि उसे लगातार कै और टट्टी हो रही थी। उसे हैजा हो गया था। जब तक भँवरमल स्कूल से लौट कर घर आते, तब तक उसकी हालत काफी खराब हो चुकी थी। पर दिक्कत यह थी कि डॉक्टर को बुलाने के लिए घर में एक रुपया भी नहीं था। फिर भी माँ ने पड़ोसी से एक रुपया उधार लेकर किसी डॉक्टर राधाकृष्ण को घर बुलाया। जब तक डॉक्टर आते और उपचार शुरू करते, राज की मौत हो चुकी थी। राज की मौत के बाद भँवरमल को अजीब स्थितियों का सामना करना पड़ा। पिता इन्द्रचन्द्र जयपुर से कहीं बाहर गये हुए थे, इसलिए राज को दाग देने के लिए माँ ने भँवरमल को चाचा सागरमल को बुलाने के लिए भेजा। सागरमल नियमित रूप से भांग पीते थे। जब भँवरमल ने उन्हें राज की मृत्यु की खबर दी और उनसे दाग देने की बात कही, तो उन्होंने छूटते ही कहा कि मैं भांग घोट कर और पी कर ही तुम्हारे साथ चल सकता हूँ। भँवरमल खुद उस समय बच्चे ही थे, फिर भी उन्हें यह बात बेहद खली थी कि बहन की लाश घर पर पड़ी है और चाचा भांग घोट कर पीने के लिए उत्सुक हैं। पर कोई विकल्प नहीं था। वे भांग घोट कर पीने के बाद ही भँवरमल के साथ घर गये और लाश श्मशान में ले जायी गयी। चाचा सागरमल का यह व्यवहार वर्षों तक भँवरमल के मानस पटल पर एक कटु स्मृति बना रहा।

इसमें शक नहीं कि बचपन में भँवरमल को शिक्षा मां की दृढ़ता की वजह से ही मिली। उस समय पढ़ाई का कोई खर्च नहीं था। खर्च था तो सिर्फ पाठ्य-पुस्तकों को खरीदने का। लेकिन तत्कालीन पारिवारिक स्थिति में भँवरमल के लिए यह खर्च जुटाना भी मुश्किल हो रहा था। भँवरमल सिंघी के एक प्रकाशित संस्मरण में एक घटना का जिक्र आया है। जब वह प्राइमरी कक्षा में ही पढ़ते थे तब कई धनी परिवार के बच्चों की अंगरेजी के शब्द-अर्थ की कापी तैयार कर देते थे। इसके एवज में उन्हें एक-आध रुपये मिलते। इसका इस्तेमाल वह पाठ्य-पुस्तक खरीदने में करते। किताबें न खरीद पाने के कारण पांचवीं कक्षा में भँवरमल को पढ़ाई छोड़ने का निर्णय लेने के लिए मजबूर होना पड़ा था। उस छोटी-सी उम्र में यह उनके लिए कोई मामूली निर्णय नहीं था, पर मजबूरी थी। ऐसी हालत में जीतमल लूणिया (जो बाद में प्रसिद्ध

सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में जाने गए) नामक एक परिचित ने निर्णायक भूमिका निभायी। उन्होंने जयपुर की "मित्र मंडल" नामक पुस्तक की दूकान से पांचवीं कक्षा की सारी पुस्तकें उन्हें खरीदवा दी। उस समय उन पुस्तकों की कुल कीमत सात रुपये थी। यह एक अजीब-सी स्थिति थी कि किताब खरीदने जैसे खर्च के लिए भी भँवरमल को बाहरी व्यक्तियों की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता जबकि ऐसी मदद उन्हें उनके चाचा सिरहमल आसानी से कर सकते थे। सिरहमल की आर्थिक स्थिति काफी बेहतर होते हुए भी कभी उन्होंने भँवरमल को कोई आर्थिक सहायता नहीं दी। अजीब विडम्बना यह थी कि वह अपने घर का सारा काम भँवरमल से ही कराते थे, जो कि वे निस्पृह भाव से करते थे। हां, भँवरमल की बूआ चांद बाई उन्हें बहुत प्यार करती थीं और किसी-न-किसी बहाने मदद करती थीं। उनके अपनी कोई सन्तान नहीं थी।

भँवरमल ने पांचवीं व छठी कक्षा लीलाधर जी की पाठशाला से उत्तीर्ण की। लीलाधर जी की पाठशाला में प्रायः सभी बच्चे जैन समाज के थे। स्कूल में कोई फीस नहीं ली जाती थी। छठी कक्षा में भँवरमल के साथ २८ बच्चे थे। उस साल अपर प्राइमरी स्कूल (छठी कक्षा के लिए तब यही संबोधन चलता था) का जब परीक्षाफल घोषित हुआ, तो २८ में से सिर्फ तीन लड़के ही पास हुए। एक द्वितीय श्रेणी में और दो तृतीय श्रेणी में। द्वितीय श्रेणी में पास होनेवाले भँवरमल ही थे। द्वितीय श्रेणी में पास होना कोई उपलब्धि नहीं थी, पर कक्षा में अव्वल आने के कारण उनकी थोड़ी-बहुत पूछ जरूर हुई और इसने आगे पढ़ने की इच्छा बलवती की। लीलाधरजी की पाठशाला के बाद उन्होंने अग्रवाल मिडिल स्कूल में सातवीं कक्षा में प्रवेश लिया। उन्होंने पहली महत्वपूर्ण शैक्षिक उपलब्धि इसी स्कूल में हासिल की। अथक परिश्रम तथा श्री रामप्रताप नामक गणित शिक्षक के विशेष स्नेह के कारण इसी स्कूल की आठवीं कक्षा में प्रथम श्रेणी तथा प्रथम स्थान प्राप्त करने पर उन्हें नवरंग राय खेतान मेडल प्रदान किया गया। यह संयोग ही कहा जायेगा कि बाद के वर्षों में जब भँवरमल कलकत्ता आकर बस गये, इन्हीं नवरंग राय खेतान के पुत्रों देवीप्रसाद, काली प्रसाद, दुर्गा प्रसाद और भगवती प्रसाद खेतान से उनकी काफी घनिष्ठता हो गयी। वे सभी कलकत्ता के नामी एटर्नियों में गिने जाते थे। आज भी ऐसी अनेक संस्थाएं हैं, जिनमें भगवती प्रसाद खेतान और भँवरमल सिंघी किसी-न-किसी पद पर साथ-साथ काम करते हैं।

आठवीं कक्षा में प्रवेश के समय से ही पिता इन्द्रचन्द्र का विरोध तीव्र हो गया था और वे इसके लिए किसी भी कीमत पर तैयार नहीं थे, कि भँवरमल आगे अपनी शिक्षा जारी रखें। वे चाहते थे कि भँवरमल कहीं नौकरी कर घर के लिए स्थायी आमदनी का एक जरिया बनें, जिसके लिए मां और भँवरमल तैयार नहीं थे। पर पिता आसानी से हार माननेवाले नहीं थे। अन्ततः उन्होंने दुकान खोलने का फैसला किया, तथा यह घोषणा कर दी कि उनके साथ भँवरमल को भी दुकान पर बैठना होगा। भँवरमल के सामने यह प्रस्ताव स्वीकारने के अलावा और कोई उपाय नहीं था। पिता ने तुरन्त किसी

से ४०० रुपये उधार लेकर जयपुर के किशनपोल बाजार में एक दुकान किराये पर ली और बिसातखाने का धन्धा शुरू कर दिया। पर उनका इस तरह के काम का कोई अनुभव नहीं था, इसलिए देखते ही देखते दुकान का सारा सामान भी चला गया और उधार ली गयी रकम का भी कोई भुगतान नहीं किया जा सका। हार कर उन्हें बिसातखाने का धन्धा बन्द करना पड़ा। उसके बदले में उन्होंने वहीं पान की दुकान खोल ली। इस दुकान पर भँवरमल को नियम से पान बेचना पड़ता था। उस जमाने में एक पैसे में दो पान बिकते थे। पान लगाने में उनकी उंगलियां लाल हो जातीं, जो उनके लिए शुरू में काफी तनाव का कारण था, पर इस स्थिति को उन्होंने एक तरह से स्वीकार कर लिया था। स्कूल में सहपाठियों द्वारा उंगलियां लाल होने का कारण पूछे जाने पर वे बिना संकोच यह बता देते कि मैं पान बेचता हूं।

वे गर्मी के दिन थे। एक दिन पिता घर खाना खाने गये थे। दुकान पर भँवरमल पान बेच रहे थे। संयोग से उनकी दूकान पर उनकी ही कक्षा का एक सहपाठी पान खाने पहुँच गया। उस सहपाठी को यह पता नहीं था कि भँवरमल पान बेचता है। शायद इसीलिए वह वहां उन्हें देख कर हैरान था। हैरान होने की एक वजह और थी। चार दिनों पहले ही मिडिल स्कूल का परीक्षा फल निकला था, जिसमें भँवरमल ने सर्वोच्च अंक प्राप्त कर प्रथम स्थान हासिल किया था। वह इस बात से चकित था कि प्रथम आनेवाला लड़का इस हालत में है। भँवरमल अपनी दुनिया में ही इतने उलझे थे कि चार दिनों पहले परीक्षा फल घोषित होने के बावजूद उन्हें इस बारे में कुछ पता नहीं चल सका था। उसी लड़के ने बताया कि रथखाना मिडिल स्कूल के बाहर परीक्षा फल टंगा है। वह सहपाठी तो चला गया, पर भँवरमल के ऊपर चिंताओं का पहाड़ टूट पड़ा था। वह पान बेचते रहे और कल्पना करते रहे कि मुझ जैसे गरीब लड़के को कौन अपने स्कूल में भर्ती करेगा। सारा दिन इसी उधेड़बुन में बीता। अगले दिन जब वह अपना रिजल्ट लेकर घर पहुंचे, तो मां की खुशी का ठिकाना नहीं था। उन्हें अपना सपना सच होता प्रतीत हो रहा था।

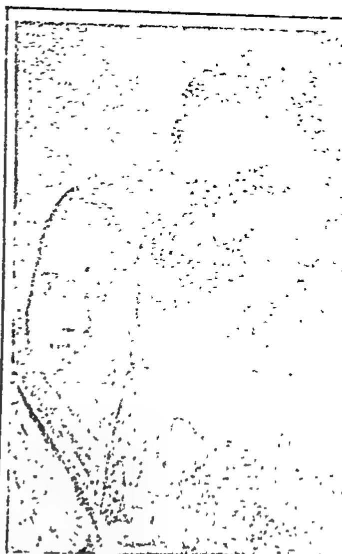
मिडिल स्कूल पास करने के बाद घर में पिता ने नौकरी को लेकर एक बार फिर विवाद शुरू कर दिया था। एक कपड़े के थोक व्यापारी के यहां उन्होंने १५ रुपये महीने पर भँवरमल की नौकरी पक्की कर दी। काम था कपड़े के थानों को ऊपर से नीचे उतारना। मां से समर्थन मिलने के कारण भँवरमल ने यह नौकरी करने से साफ इनकार कर दिया और काफी विरोध झेल कर भी महाराजा हाई स्कूल की नौवीं कक्षा में प्रवेश ले लिया। कुछ आमदनी के लिए उन्होंने घड़ीसाजी और ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया। इसी अवस्था में दो और बातें हुईं, एक, उन्हें खादी का शौक लगा और दूसरा, स्वाधीनता आन्दोलन में रुचि पैदा हुई। किताबों की समस्या नौवीं कक्षा में भी थी, किन्तु श्री मोतीलाल नामक अध्यापक ने उन पर विशेष कृपा दिखायी और पुस्तकालय से सारी आवश्यक किताबें अपने नाम से जारी करवा कर भँवरमल को देते रहे।

अपनी परेशानियों और बराबर किसी-न-किसी काम में उलझे रहने के कारण भँवरमल का विकास एक बेहद गंभीर और आत्मकेन्द्रित बच्चे के रूप में होता गया। तब तक उनमें किताबें पढ़ने का बेहद शौक विकसित हो चुका था। वे खूब पढ़ते। खेल के मैदान से उन्हें नफरत थी। शायद इसकी एक वजह यह थी कि भँवरमल की संघर्षरत जिंदगी में तब कोई खेल खेलना एक तरह की ऐय्याशी ही होती। पर महाराजा हाई स्कूल में हर विद्यार्थी के लिये कोई-न-कोई खेल खेलने की अनिवार्यता थी। इसी अनिवार्यता के चलते भँवरमल एक बार फुटबाल खेलने के लिए मैदान में उतरे और अपने पैर का अंगूठा तोड़ बैठे। वह दिन और आज का दिन, कभी दोबारा उन्होंने मैदान में जाकर जोर-आजमाइश नहीं की। हाँ, इसके बदले उन्होंने अपनी ऊर्जा निबन्ध-लेखन और वक्तृता में लगायी। इन विधाओं से महाराजा हाई स्कूल में और बाहर उनकी कीर्ति बहुत तेजी से फैली, क्योंकि निबन्ध-लेखन और वाद-विवाद की अनेक प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेकर वह विजेता बने थे। १९३१ में महाराजा हाई स्कूल में आयोजित वक्तृता प्रतियोगिता से सम्बन्धित एक घटना का जिक्र भँवरमल सिंघी ने अपने एक संस्मरण में इन शब्दों में किया है—"महाराजा हाई स्कूल की उस वक्तृता प्रतियोगिता में मैंने भी भाग लिया और विधवा विवाह पर मेरे भाषण पर मुझे प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। मेरे भाषण में एक शब्द आया था "अक्षत योनि"। मैं विधवा विवाह के पक्ष में बोल रहा था और यह शब्द मैंने बाल विधवाओं के लिये इस्तेमाल किया था। सम्भवतः यह शब्द मैंने किसी सन्दर्भ पुस्तक से लिया था और इसका वास्तविक अर्थ तब नहीं जानता था। अगले दिन जब मैं कक्षा में पहुंचा, तो मेरे हिन्दी और संस्कृत के अध्यापक ने उस शब्द के प्रयोग के लिये मुझे बहुत डांटा। उन्होंने पूछा कि क्या तुम वाक्यांश का अर्थ जानते हो? मैंने कहा कि अर्थ तो मैं नहीं जानता, पर मैंने जिन पुस्तकों से अपना भाषण तैयार किया था, उनमें "अक्षत योनि" शब्द विधवाओं के लिए प्रयोग किया गया है। इस पर उन्होंने मुझे बताया कि जिसकी योनि का क्षत अर्थात् छेदन नहीं हुआ है उसे "अक्षत योनि" कहते हैं। मैं उनकी बात से काफी लज्जित हुआ, खासकर इसलिए कि बिना अर्थ जाने हुए मैंने कैसे अपने अध्यापक के सामने ऐसे शब्द का प्रयोग कर दिया।"

लिखने-पढ़ने और भाषण देने का सिलसिला क्रमशः जोर पकड़ता ही गया। १९३२ में 'ओसवाल नवयुवक' में १८ वर्ष की अवस्था में उनकी पहली रचना "मन्दिर और पूंजीवाद" ने जबरदस्त तहलका मचाया। उस लेख में लिखी गयी बातों से अंदाज लगता है कि १८ वर्ष की अवस्था में ही उनके चिन्तन में कितनी परिपक्वता आ गयी थी। उस लेख का एक अंश इस प्रकार है—"मन्दिर शब्द की परिभाषा कितनी विशाल, पवित्र और सुन्दर है, उसका आदर्श कितना ऊँचा है, यह तो विदित हो गया होगा। ऐसे पवित्र स्थान में सरल सुन्दरता का आभास, शांति का सुखद वातावरण और विश्व प्रेम की विशद झांकी वांछनीय है। यहां धनी और निर्धन का संघर्ष नहीं होना चाहिए, ऊँच-नीच का विचार निर्मूल है। तांबे और सोने का मूल्य यहां समान होना चाहिए। किन्तु शोक और लज्जा का विषय है कि आज उस पूंजीवाद ने, जो वर्तमान संसार की एक मुख्य सृष्टि कही जाती है, हमारे पवित्र मन्दिरों तक को अपनी



१९३४ : बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के विड़ला छात्रावास में



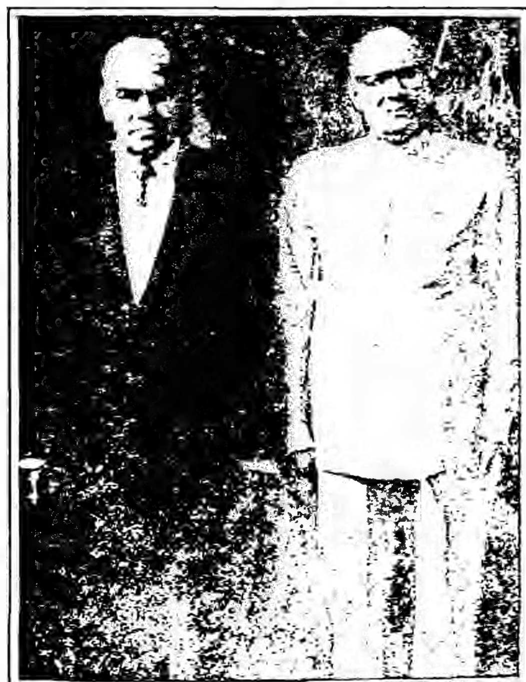
१९३७ : पहली पत्नी क्षमा देवी के

सिंघी जी के पिता श्री इंद्रचंद्र सिंघी के साथ उनका पुत्र श्रीकांत

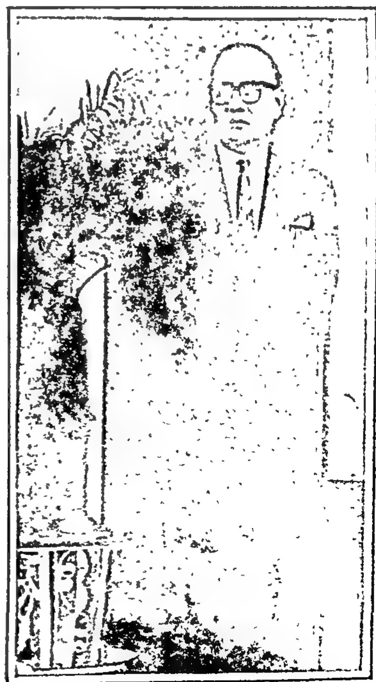


५० : सुशीला जी के साथ

१९६६ : पुत्र श्रीकांत के विवाह के अवसर पर सपरिवार (वायें से खड़े हुए) छोटे भाई रतनचंद तथा पद्‌मचंद सिंघी, भंवरमल जी, सुशीला जी, लीला सिंघी तथा लाड़ देवी (छोटे भाइयों की पत्नियां) तथा बड़ी वेटी सुषमा। (वैठे हैं) वहनोई उगम सिंह रामपुरिया, श्रीकांत, मां उदय कुमारी, पुत्र-वधू तपती तथा वहन लाड़



१९६४ : श्वसुर अशर्फी लाल जैन के साथ



१९६५ : जापान यात्रा के दौरान





१९८४ (बायें से खड़े हुए)
बड़े दामाद उज्ज्वल गुप्त, बड़ी बेटी सुषमा,
पुत्र-वधू तपती, छोटी बेटी सुस्मिता तथा छोटे दामाद शिशिर गुप्त।
(बैठे हुए) पौत्री सुरभि, सुशीला जी, दौहित्री तृषा, सिंघी जी और
स्पृहा । दाहिने पुत्र श्रीकांत

१९८४ : पत्नी सुशीला जी के साथ अवकाश के क्षण

कालिमा से अछूता नहीं छोड़ा है।...आज जैन मन्दिरों में, बड़े-बड़े तीर्थस्थानों में प्रक्षाल और आरती की बोली बोली जाती है। इस प्रकार केवल धनी पुरुष ही सर्व-प्रथम प्रक्षाल व आरती कर पाते हैं, गरीब लोग उस समदर्शी पतित पावन, रागद्वेष त्यागी भगवान की सेवा कर अपनी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकते। मुनि आदि बड़े-बड़े लखपती और करोड़पति सेठों का "आगे पधारो सा" इत्यादि शब्दों में आह्वान करते हैं, खड़े होकर स्वागत करते हैं जबकि एक गरीब भाई को बैठने भर की जगह न मिले, कोई परवाह नहीं। उस समदर्शी और विश्वप्रेमी भगवान के सामने यह कलुषित अभिनय। हाय!"

उधर घर की माली हालत जस की तस थी। १९३० और १९३२ में घर में दो भाइयों पदमचन्द और रतनचन्द ने जन्म लिया था, जिसकी वजह से घर में अचानक परिस्थितियां थोड़ी और पेचीदा हो गई थीं। पिताजी ने पान की दूकान भी बन्द कर दी थी। लेकिन इन सबके बावजूद १९३२ में जब हाई स्कूल का परीक्षाफल निकला, तो भंवरमल ने कमाल कर दिखाया। हाईस्कूल की परीक्षा में पूरे जयपुर राज्य में वह प्रथम आये थे। उन्होंने गणित में १०० में १०० अंक अर्जित किये थे।

जयपुर राज्य में प्रथम आना भंवरमल सिंघी के जीवन की पहली बड़ी उपलब्धि थी। उस समय राजपूताना स्टेट के रेजिडेंट थे श्रीमान ग्लांसी। बोर्ड में प्रथम आने पर एक शानदार समारोह में भंवरमल को ग्लांसी गोल्डमेडल प्रदान किया गया। भंवरमल के लिये यह गोल्डमेडल बहुत बड़ी उपलब्धि थी पर उस मेडल के प्रति अपना सारा मोह त्याग कर घर की इज्जत बचाने के लिए उन्होंने अपना वह स्वर्णपदक बेचने का फैसला किया। दरअसल, यह घटना भंवरमल सिंघी के अभावों से घिरे अतीत का एक महत्वपूर्ण पन्ना है। एक दिन जब भंवरमल घर लौटे, तो उन्होंने पाया कि घर में पुलिस आई है। पूछने पर पता चला कि पुलिस पिताजी को गिरफ्तार करने आई है। पिताजी घर के एक कोने में बैठे रो रहे थे। उस समय तो किसी तरह कहसुन कर उन्होंने पुलिस को वापस भेजा। पिताजी की गिरफ्तारी के लिए पुलिस इसलिये आयी थी कि उन पर एक परिचित छगनलाल जी नारनौली ने अमानत में खयानत का मुकदमा कर दिया था। इसकी वजह यह थी कि उनका पन्ने का एक कंठा (जिसकी कीमत उस समय एक हजार रुपये के करीब होगी) कीमत कूतने के बहाने लेकर पिताजी ने बेच दिया था और पैसा खर्च कर दिया था। पिताजी को गिरफ्तारी से बचाने का सिर्फ एक ही उपाय था कि कंठे के मालिक को किसी तरह एक हजार रुपये का भुगतान तुरत किया जाता। इसके लिए मां ने अपना एक-एक रत्ती सोना निकाल कर भंवरमल को दे दिया कि इन्हें तत्काल बेचकर रुपया कंठे के मालिक को दे दो। भंवरमल को इस बात से बहुत तकलीफ पहुंची कि मां ने अपना एक-एक रत्ती सोना बेचने के लिए निकाल कर दे दिया। तकलीफ तो खैर मां को भी थी। भंवरमल ने मां के गहनों में से एक सोने की बंगड़ी निकाली और उसे मां को पहनाते हुए कहा कि इसे आपको रखना ही पड़ेगा, इसके बदले मैं अपना गोल्डमेडल बेच देता हूं। मां इसके लिए तैयार

नहीं थीं, गोल्डमेडल वेचने के सवाल पर मां और बेटे में काफी झगड़ा हुआ, पर मां को हार माननी पड़ी। इस तरह मां की बंगड़ी और पिता को जेल से बचाने की खातिर भँवरमल ने अपना पहला महत्वपूर्ण खिताब ग्लांसी गोल्डमेडल बेच दिया। यह बात इसलिए विशेष अर्थ रखती है, क्योंकि सिंघी जी मूलतः संग्रही प्रवृत्ति के रहे हैं। जीवन में उनके हजारों लेख प्रकाशित हुए, उन सबकी उनके पास फाइल लगी है। उनके पास हजारों ऐसे पत्रों की फाइल भी है, जो समय-समय पर महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने उन्हें लिखे पर वे अपने पास वह मेडल नहीं रख सके, जो उनकी सबसे बड़ी शैक्षिक उपलब्धि का प्रतीक था।

भँवरमल सिंघी उन कुछ समाज सुधारकों में से रहे हैं, जिन्होंने न केवल समाज में व्याप्त कुरीतियों को सही पहचाना, बल्कि समाज की मूल धारा के विरुद्ध जा कर उनका विरोध करने का साहस भी दिखाया। वह हमेशा अपने समय से आगे जा कर सोचते रहे। शायद यह भी एक वजह थी कि गुलामी के उन दिनों में अपने निर्भीक विचारों के कारण समाज में उनकी पहचान कायम होने लगी। १९३२ में सिर्फ १८ साल की उम्र में ही 'ओसवाल समाज' नामक पत्र में धर्म के विरुद्ध उनका लेख प्रकाशित हुआ था। पर ऐसा नहीं था कि भँवरमल शुरू से नास्तिक रहे हों। वह नास्तिक हो भी कैसे सकते थे। उनके अपने घर में धर्म की जड़ें गहरी थीं और उसका उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उनके पिता शीतला माता के कितने गहरे भक्त थे, इसका उल्लेख किया जा चुका है। इन्हीं वजहों से बचपन में धर्म और अध्यात्म की ओर उनका भी गहरा झुकाव हुआ। जब वे १६-१७ वर्ष के थे तब रोज जयपुर के नया मंदिर के उपाश्रय (मन्दिर का वह हिस्सा, जहाँ साधुओं को ठहराया जाता और वे प्रवचन देते) में जाकर प्राकृत में लिखे जैन धर्म के पाठ कंठस्थ करते थे। धर्म में उनकी आस्था इतनी गहरी हो गई थी कि उनके पिता को यह संदेह होने लगा कि लड़का कहीं जैन साधु न बन जाये। इसलिए वह कुछ चिंतित भी रहने लगे थे। पिता धार्मिक व्यक्ति थे तथा पारिवारिक परम्परा के कारण जैन धर्म के आचार-व्यवहार को एक हद तक जीवन में लागू भी करते थे। पारिवारिक दबाव के कारण वह धीरे-धीरे शीतला माता के भी गहरे भक्त हो गये थे, पर धर्म के प्रति उनकी भक्ति ऐसी नहीं थी कि अपने बेटे को साधु बनने देते।

किन्तु उन्हीं दिनों हुई एक घटना ने भँवरमल के मन से धर्म के प्रति निष्ठा कम कर दी। यह घटना १९३१ की है। भँवरमल ने इस घटना का इन शब्दों में उल्लेख किया है—"नया मन्दिर के उपाश्रय में प्रसिद्ध जैन मुनि तपगच्छ के श्री लावण्य विजय अपने एक शिष्य के साथ ठहरे थे और नियमित रूप से उनके प्रवचन का कार्यक्रम वहां चल रहा था। मैं शाम को उनके पास जाता। एक दिन मैं वहां निर्धारित समय से पहले पहुंच गया। मन्दिर के उपाश्रय के बाहर जब मैं अपना जूता खोल रहा था, मुझे दो व्यक्तियों के आपस में जोर-जोर से लड़ने की आवाज सुनायी पड़ी। मुझको यह पहचानते देर नहीं लगी कि आवाज मुनि श्री लावण्य विजय और उनके उस शिष्य की थी। पर जिस बात को लेकर झगड़ा हो रहा था, उसे सुनकर रोंगटे खड़े हो गये। गुरु और शिष्य में झगड़ा खाने की वस्तुओं को लेकर हो रहा था। दोनों एक दूसरे पर

आरोप लगा रहे थे कि पिछले दिन किस तरह एक के दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र करने से उन्हें उत्तम कोटि का भोजन नहीं मिल सका। जनता के सामने इतना अच्छा और सद्‌विचार की प्रेरणा से भरा प्रवचन देने वाले मुनि लावण्य विजय की यह वास्तविकता देख मेरा मन खिन्न हो गया। इसी विन्दु से धर्म के मौजूदा स्वरूप और ढकोसले के विरुद्ध मेरे मन में अनास्था पैदा हो गयी, जो क्रमशः गहरी होती गई।'' इस अनास्था के कारण आगे चलकर उन्हें तेरापंथ जैन समुदाय की अनेक रूढ़ियों के विरुद्ध आंदोलन करने की प्रेरणा पैदा हुई।

१९३१ से १९३४ तक का समय भँवरमल सिंघी के जीवन में एक बुनियादी परिवर्तन लानेवाला था। इसी दरम्यान उनमें हिन्दी के प्रति वेहद लगाव पैदा हुआ, उन्होंने खादी पहनना इसी समय शुरू किया, गांधी जी के प्रति अपार श्रद्धा इसी दौर में जगी, धर्म के मौजूदा ढांचे के प्रति अनेक प्रश्न इसी अवधि में उठे तथा तभी समाज सुधार के लिए मन में प्रेरणा जगी।

१९३१ में ही एक ऐसी घटना हुई, जिससे उस समय भँवरमल की संकल्प-शक्ति का पता चलता है। तव भँवरमल महाराजा हाई स्कूल की नौवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। उस दिन पंडित मोतीलाल नेहरू का निधन हो गया था। राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत भँवरमल के मन में इच्छा जगी कि उस दिन विद्यालय में पढ़ाई छोड़ कर पंडित मोतीलाल को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए बाहर कहीं आयोजित शोकसभा में हिस्सा लिया जाये। उन्होंने स्कूल के गेट पर पहुंच कर कई अन्य साथियों के साथ स्कूल आनेवाले छात्रों को प्रेरित करना शुरू किया कि आज पढ़ाई छोड़कर सबको शोकसभा में हिस्सा लेना चाहिए। कई विद्यार्थी उनकी बातों से प्रेरित हुए और पढ़ाई छोड़ कर शोकसभा में हिस्सा लेने चले गये। इस घटना ने महाराजा हाई स्कूल के व्यवस्थापकों-अध्यापकों को काफी परेशान कर दिया, क्योंकि उसके पहले तक स्वतंत्रता आन्दोलन की कोई चिनगारी वहां नहीं फूटी थी। अगले दिन स्कूल के हेडमास्टर श्री नन्दलाल निगम ने कक्षाओं में सभी उन लड़कों से गैरहाजिरी का कारण पूछा, जो शोकसभा में गये थे। पर तीन छात्रों को छोड़ कर किसी ने भी अनुपस्थिति का वास्तविक कारण नहीं बताया। उन तीन छात्रों में एक भँवरमल भी थे। इन तीनों छात्रों को सजा सुनायी गयी कि स्कूलवाले मन्दिर के चौक के बीच सवेरे से शाम तक घुटने के बल खड़े रहेंगे। किसी दूसरी वजह से यह सजा सुनायी जाती तो उनके लिए शायद यह बेहद शर्मनाक अनुभव होता। पर इस सजा ने उनमें आत्मगौरव को बढ़ाया और स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति निष्ठा को और गहरा किया। एक और बात यह हुई कि सजा से आम विद्यार्थियों में उनके प्रति सम्मान बढ़ा था। शाम को जब वे घर पहुंचे, उनके घुटने छिले हुए थे पर उनका आत्म विश्वास काफी बढ़ा हुआ था। उनके व्यक्तित्व का चतुर्दिक विकास इसी मोड़ से शुरू हो गया था।

१९३२ में अजमेर में आयोजित ओसवाल महासम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में भँवरमल ने काफी काम किया। वास्तव में ओसवाल महासम्मेलन के माध्यम से

उन्होंने सामाजिक कार्यों में हिस्सेदारी शुरू कर दी थी। इसके अलावा जैन नवयुवक मंडल और विद्यार्थी विनोद सभा के मंच से भी भँवरमल ने ढेरों सामाजिक आयोजन किये। सिर्फ १८ साल की उम्र में उन्हें जयपुर के श्री वीर बालिका विद्यालय का सह-सचिव भी बना दिया गया था। विद्यार्थी विनोद सभा के माध्यम से वह अपने विद्यार्थी मित्रों को वक्तृता का प्रशिक्षण देते थे। ये गतिविधियां पिता को पसन्द नहीं थीं। जब हाई स्कूल का परीक्षा फल निकला और भँवरमल ने उसमें प्रथम स्थान हासिल किया, तो उनको लगा कि यही सही मौका है कि भँवरमल की शादी कर दी जाये। पर घर की आर्थिक हालत इतनी खराब थी कि किसी लड़की वाले का उनके घर आना और शादी के लिए प्रस्ताव करना नामुमकिन था।

पर अचानक एक दिन एक लड़की के पिता भँवरमल के घर पहुंचे और इन्द्रचन्द्र सिंघी का नाम लेकर जोर से पुकारने लगे। पिताजी जब बाहर आये, तो लड़की के पिता ने उनसे पूछा कि क्या आपका ही लड़का भँवरमल हाई स्कूल में प्रथम आया है। पिता के हाँ कहने पर लड़की के पिता ने कहा कि "मैं अपनी लड़की की शादी भँवरमल से करना चाहता हूँ।" शादी के प्रस्ताव के बारे में सुनते ही इन्द्रचन्द्र फूले नहीं समाये और उन्होंने छूटते ही शादी की अनुमति भी दे दी। शादी की स्वीकृति देने के पहले न तो उन्होंने भँवरमल और उनकी माँ से कुछ पूछना उचित समझा था और न ही एक बार भी लड़की देखने की औपचारिकता ही के बारे में ध्यान दिया। रात को जब भँवरमल घर लौटे, तो उन्हें बताया गया कि उनकी शादी पक्की हो चुकी है। घर की इतनी बुरी हालत और खुद अपने अनिश्चित भविष्य के कारण भँवरमल काफी खिन्न थे और उन्होंने शादी न करने का फैसला माँ को सुना दिया। भँवरमल इस बारे में खुल कर अपने पिता से भी बात करना चाहते थे, पर उनमें इतना साहस नहीं था कि पिता का सामना कर सकें। वस्तुस्थिति तो यह थी कि वह अपने पिता से बेहद डरते थे। भँवरमल की शादी के सवाल पर जब पिता ने जिद पकड़ ली, तो भँवरमल को मौन होकर उनका फैसला स्वीकारना पड़ा। पर सवाल यह था कि शादी हो कैसे। घर में तो अगले वक्त का खाना बनना अनिश्चित रहता था, ऐसे में शादी की तैयारी के लिए पैसा कहाँ से आता। वह भी उस अवस्था में जबकि पिता को जेल जाने से बचाने के लिए माँ के गहने बिक चुके थे। बाजार में पिता इन्द्रचन्द्र की बिल्कुल साख नहीं थी और कोई भी उन्हें एक पैसे का ऋण देने के लिए तैयार नहीं था। ऐसे में हार कर पिता को कर्ज लेने के लिए भँवरमल को आगे करना पड़ा। भँवरमल ने अपने जीवन में ४०० रुपये का पहला कर्ज मुन्नीलाल सकलेचा नामक व्यक्ति से अपनी शादी के लिए लिया।

इस तरह १९३२ के जुलाई महीने में क्षमा देवी से भँवरमल की शादी हो गयी। तब भँवरमल की अवस्था सिर्फ १८ साल की थी। उस जमाने में राजपूताना में इतनी उम्र में यदि लड़के का ब्याह न हो जाये, तो यह परिवार के लिए अपयश की बात मानी जाती थी। शायद इस अपयश से बचना भी पिता के शादी का फैसला करने का कारण रहा हो। पर उनके इस फैसले ने भँवरमल की जिंदगी को तनावग्रस्त बना दिया। भँवरमल शादी के बाद गुमसुम रहने लगे, और उनके मन

में यह धारणा घर कर गयी कि यह शादी उन पर थोपी गयी है और इसे वे स्वीकार नहीं करेंगे। उनकी पत्नी घर पर ही रहती थीं, मगर वह उनसे बात नहीं करते थे। शादी के बाद अगले छह महीनों तक उन्होंने अपनी पत्नी से कोई भी सम्पर्क नहीं रखा। फिर अचानक एक दिन उन्हें एहसास हुआ कि यह शादी होने में लड़की का कोई दोष नहीं है, इसलिए उसकी जिन्दगी को दुखमय बनाने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। इस तरह शादी के छह महीने बाद उन्होंने अपना वैवाहिक जीवन शुरू किया। क्षमा देवी को अक्षर ज्ञान था जिसकी वजह से वह थोड़ा-बहुत पढ़ तो सकती थीं, किन्तु भँवरमल की सामाजिक गतिविधियों में हाथ बटाने की क्षमता उनमें नहीं थी। लिहाजा उनकी गतिविधि घर के काम में हाथ बटाने तक ही सीमित रही।

विवाह हो जाने और घर की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार न होने के कारण विवश होकर भँवरमल ने किसी प्राइमरी विद्यालय में शिक्षक बनने का फैसला किया। जाहिर था कि इससे कालेज की पढ़ाई बन्द हो जाती। पर कड़े दिल से भँवरमल ने यह फैसला किया कि कुछ दिनों तक भले ही पढ़ाई रुकी रहे, पर घर की हालत सुधारने के लिये नौकरी करना जरूरी है। उन्होंने दौड़-भाग शुरू की, तो पता चला कि किसी भी सरकारी मदरसे में अध्यापन की २५ रुपये महीने की नौकरी उन्हें मिल सकती है लेकिन इसके लिये राज्य के शिक्षा निदेशक की संस्तुति आवश्यक है। उस समय राज-पूताना के शिक्षा निदेशक आस्ट्रेलियाई मूल के श्री ओवन थे। वे ही जयपुर के महाराजा कालेज के प्रधानाचार्य भी थे। भँवरमल ने फैसला किया कि मदरसे में अध्यापन की नौकरी के लिये वह श्री ओवन से मिलेंगे। पर इसमें एक व्यावहारिक दिक्कत थी। श्री ओवन को हिन्दी नहीं आती थी और भँवरमल को अंग्रेजी इतनी नही आती थी कि वे श्री ओवन से बात कर सकें। इसका उन्होने रास्ता यह निकाला कि जो मुख्य बातें उन्हें ओवन से करनी हैं, उन्हें वे अंग्रेजी में रट ले। बस इसके बाद तो श्री ओवन से मिलने की तैयारी शुरू हो गई। अपने एक मित्र जवाहरलाल जैन, जो राजस्थान के प्रसिद्ध गांधीवादी नेता और लेखक हैं, से उन्होंने अंग्रेजी में आवेदनपत्र लिखवाया और बात का मसौदा पूछा। पिता का बंद गले का कोट पहना और सिर पर साफा बांध कर श्री ओवन से मिलने शिक्षा निदेशक के दफ्तर पहुंच गये। श्री ओवन के यह पूछने पर कि हाईस्कूल में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने के बावजूद आगे पढ़ने के बजाय वह नौकरी करना क्यों चाहते हैं, भँवरमल ने तुरन्त जवाब दिया, "पिक्युनियरी सरकमस्टैंसेज इन द फैमिली"। उच्चारणदोष के कारण ओवन "पिक्युनियरी" का मतलब नहीं समझ पाये और उन्होंने दोबारा भँवरमल से पूछा कि "व्हाट सरकमस्टैंसेज" इसके जवाब में उन्होंने वही शब्द दोहरा दिया "पिक्युनियरी सरकमस्टैंसेज"। श्री ओवन से यह बात छिपी न रह सकी कि भँवरमल अंग्रेजी के कुछ वाक्य रट कर आये हैं। पर वे बड़े मेहरबान निकले और उन्होंने भँवरमल से कहा "मैं तुमको किसी मदरसे में मास्टरी तो दे सकता हूँ और उससे तुमको २५ रुपये मासिक की आय भी हो सकती है, पर अभी तुमको नौकरी नहीं करनी है, बल्कि आगे कालेज में पढ़ना है और जरूर पढ़ना है।"

श्री ओवन ने भँवरमल को अगले दिन कालेज में आने का आदेश भी दिया। भँवरमल काफी निराश होकर घर लौटे और पिताजी से यह कहने का उनमें साहस नहीं रहा कि श्री ओवन ने अगले दिन उन्हें महाराजा कालेज में प्रवेश देने के लिए बुलाया है।

अगले दिन घर में बिना किसी को कुछ बताये वे महाराजा कालेज पहुंचे। पर उनके आश्चर्य का तब कोई ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने देखा कि श्री ओवन ने पहले से ही कालेज में प्रवेश के लिये उनका फार्म भर कर तैयार रखा है, सिर्फ भँवरमल को अपना दस्तखत करना था। उसी समय श्री ओवन ने यह भी बताया कि भँवरमल को आठ झाड़शाही रुपये (जिसकी कीमत इंपीरियल मुद्रा की तुलना में सवा गुना थी) की मासिक छात्रवृत्ति भी मिलेगी। भँवरमल हिन्दी, अंग्रेजी, अर्थशास्त्र और गणित विषय लेकर कालेज में भर्ती हो गए। कालेज में अभी गिनती के दिन बीते थे कि महाराजा हाईस्कूल के हेडमास्टर श्री नन्दलाल निगम ने एक दिन भँवरमल से कहा कि वे उनके लड़के को घर पर पढ़ाना शुरू करें। भँवरमल को यह प्रस्ताव बड़ा अटपटा लगा, क्योंकि हेडमास्टर के घर जाकर उनके बच्चों को पढ़ाना कोई मामूली बात नहीं थी। मजे की बात यह थी कि जिस कमरे में हेडमास्टर साहब खुद बैठते थे, उसी कमरे में भँवरमल को उनके बच्चे को पढ़ाना पड़ता था। इन वजहों से यह काम भँवरमल को बड़ा चुनौतीपूर्ण लगता था। पर जब महीना पूरा हुआ और हेडमास्टर ने उन्हें १५ रुपया पारिश्रमिक दिया, तो भँवरमल के अचरज का ठिकाना नहीं रहा। जिस काम के लिए उन्हें ५ रुपया महीना मिलना चाहिये था, उसके लिए १५ रुपये महीने का भुगतान कोई साधारण बात नहीं थी। पर इसका राज अगले दिन खुला, जब कालेज में श्री ओवन ने पूछा कि "क्यों, तुम्हारी आय का प्रबंध हो गया न?" दरअसल १५ रुपये महीने का वह ट्यूशन श्री ओवन की योजना का अंग था।

पर वक्त बीतने के साथ-साथ एक ऐसा मोड़ भी आया जब श्री ओवन ने भँवरमल को कालेज से निकालने की धमकी तक दे दी। दरअसल हिन्दी के प्रति आकर्षण बढ़ने के कारण कालेज में प्रवेश लेने के साथ ही भँवरमल ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से "विशारद" की परीक्षा भी दे दी थी। अगले साल यानी जब वह इंटरमीडिएट फाइनल में पहुंचे, उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की "साहित्य रत्न" की परीक्षा के लिए फार्म भरा। जब उसकी परीक्षा निकट आयी, तो भँवरमल ने कालेज में छुट्टी के लिये आवेदन दिया क्योंकि उन्हें परीक्षा देने के लिये इलाहाबाद जाना था। आवेदन जब श्री ओवन के पास पहुंचा तो वे भड़क उठे। उन्होंने तुरंत भँवरमल को बुलाया और कहा कि "मैं तुम्हें इतना गिरा हुआ लड़का नहीं समझता था। अगर मुझे इसका जरा भी पता होता कि तुम हिन्दी की राजनीति में हो तो मैं तुम्हें कभी भी कालेज में दाखिला नहीं देता।" बहरहाल, उन्होंने छुट्टी के आवेदन को निरस्त करते हुए भँवरमल को धमकी दी कि "अगर तुम यह परीक्षा देने के लिए गये तो कालेज से तुम्हारा नाम काट दिया जायेगा।" भँवरमल चुपचाप यह सब सुनते रहे। वास्तव में उन्हें कोई अचरज नहीं हुआ था क्योंकि उन दिनों हिन्दी स्वराज्य के आंदोलन से जुड़ चुकी थी

तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन को ब्रिटेन विरोधी माना जाता था। पर श्री ओवन की धमकी का भँवरमल पर कोई असर नहीं पड़ा। वह छुट्टी की अस्वीकृति की परवाह किये बिना "साहित्य रत्न" की परीक्षा देने के लिए इलाहाबाद गये। परीक्षा से लौट कर जब वह कॉलेज पहुंचे तो उन्हें कॉलेज से तो नहीं निकाला गया, पर हां, उन पर जुर्माना जरूर लगाया गया जिसे उन्होंने अदा कर दिया। इस घटना के बाद श्री ओवन ने कभी भी भँवरमल से बात नहीं की क्योंकि वह मानते थे कि मेधावी भँवरमल राजनीति के चक्कर में पड़ कर पूरी तरह बिगड़ चुका है।

इन्हीं दिनों भँवरमल ने बर्ट्रेंड रसेल की एक-दो पुस्तकें पढ़ीं और उससे काफी प्रभावित हुए। इस बारे में अपने एक लेख में उन्होंने लिखा है—"मुझे बर्ट्रेंड रसेल की याद बराबर आती है क्योंकि उस जमाने में वे ही मेरा आदर्श बन गये थे। वे उस जमाने में काफी बड़े बुद्धिवादी माने जाते थे। जो बात उनको बुद्धि द्वारा जंचती थी, वे उसे ही मानते थे और उसे अपनाने में जरा भी नहीं हिचकते थे।" रसेल ने उन्हें इस मायने में प्रेरणा दी कि वे अपनी विवेक की कसौटी पर खरी न उतरनेवाली किसी भी परम्परा को मानने से इनकार कर दें। जैन धर्म में आयी विकृतियों पर उसी जमाने में गुजराती में छपी पंडित बेचर दास की पुस्तक को पढ़ कर तो धर्म के नाम पर फैले कार्य व्यापार के बारे में भँवरमल की धारणा ही बदल गयी। बाद में भँवरमल ने इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद कर इसके कुछ अंश प्रकाशित करवाये।

स्कूल के दिनों में जिन मित्रों से भँवरमल सबसे ज्यादा प्रभावित हुए थे, उनमें एक हैं वयोवृद्ध सर्वोदयी नेता सिद्धराज ढड्ढा। श्री ढड्ढा उम्र में उनसे छह वर्ष बड़े हैं। जब वे इलाहाबाद से एम. ए., एलएल. बी. कर जयपुर लौटे, भँवरमल ने हाई-स्कूल की परीक्षा पास की थी। पर संस्कारों और विचारों में गहरी समानता थी, इसलिए मित्रता गहरी होती गयी। इस मित्रता ने अजमेर में आयोजित "ओसवाल महासम्मेलन" के पहले अधिवेशन में एक रोचक भूमिका निभायी। भँवरमल सिंघी के शब्दों में—"उस सम्मेलन में भाई सिद्धराजजी एक कार्यकर्त्ता-नेता के रूप में गये थे और मैं स्वयंसेवक के रूप में। उस अधिवेशन के सभापति थे कलकत्ता के श्री पूर्णचन्द्र नाहर। मैं चूंकि निष्ठावान कार्यकर्त्ता था, इसलिए मुझे सभापति की सेवा करनेवाला स्वयंसेवक बनाया गया। उस सम्मेलन में सिद्धराज ढड्ढा के पिता के बड़े भाई गुलाबचन्द्र ढड्ढा काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। सम्मेलन में जब वृद्ध विवाह विरोधी प्रस्ताव आया, तो वृद्धावस्था में विवाह करने वाले पुरुष की उम्र को लेकर मतभेद हो गया। गुलाबचन्द्र ढड्ढा ४५ वर्ष के व्यक्ति के विवाह को अनुचित नहीं मानते थे और हम यानी सिद्धराज ढड्ढा और मैं ४० वर्ष से अधिक की उम्र में विवाह की अनुमति न देने की वकालत कर रहे थे। अधिवेशन में इस मुद्दे पर बहुत गरमा-गरमी हुई। अन्ततः गुलाबचन्द्रजी ढड्ढा की हार हुई और समाज के लोगों के लिए ४० वर्ष की उम्र के बाद विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अधिवेशन में इस विजय ने हममें काफी जोश भर दिया और हम पहले से भी ज्यादा नजदीक हो गये।"

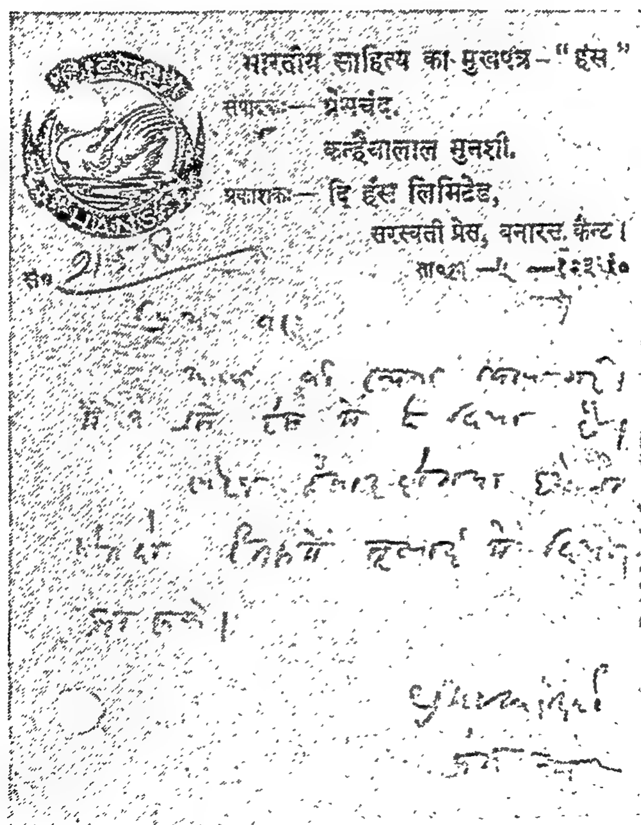
उन दिनों राजस्थान में स्वाधीनता आन्दोलन में हीरालाल शास्त्री का नाम बार-बार आता। उनके सादगी भरे जीवन और ओजपूर्ण व्यक्तित्व के कारण भँवरमल

सिद्धराज जी के साथ ही हीरालाल शास्त्री से मिलने एक बार उनकी प्रसिद्ध "जीवन कुटीर" में गये। उन्होंने आग्रह कर सिद्धराज जी और भँवरमल को एक-दो दिनों तक कुटिया में रोके रखा। उसके बाद हीरालाल शास्त्री से उनके काफी अंतरंग सम्बन्ध बने। हीरालाल शास्त्री स्वाधीनता मिलने के बाद राजस्थान के प्रथम मुख्यमन्त्री बने। शास्त्रीजी की ही भांति कंवरलाल बापना जैसे व्यक्ति का भी भँवरमल को गहरा स्नेह प्राप्त हुआ। श्री बापना काफी प्रतिभावान वकील थे और आजादी के बाद वे राजस्थान के उच्च न्यायालय के पहले मुख्य न्यायाधीश बने। कँवरलाल बापना ने भँवरमल के अन्दर छिपी आग को पहचान लिया था। शायद इसीलिए उन्होंने भँवरमल को हर तरह से प्रोत्साहन देना शुरू किया और एक ऐसे समय भँवरमल के संरक्षक की भूमिका निभायी, जब वह दोराहे पर खड़े थे।

१९३४ में भँवरमल की जिन्दगी में जयपुर का अध्याय समाप्त हुआ। उसी साल उन्होंने इन्टरमीडिएट और हिन्दी साहित्य सम्मेलन से "साहित्य रत्न" की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। इस समय तक हिन्दी के प्रति उनका लगाव चरमसीमा पर पहुंच चुका था। अवस्था यह थी कि जब भी उन्हें समय मिलता, अपने गुरु रामकृष्ण शुक्ल "शिलीमुख" के घर पहुंच जाते और आगरा विश्वविद्यालय की स्नातक कक्षा के परीक्षार्थियों की हिन्दी की कापी जांचा करते थे। श्री शिलीमुख आगरा विश्वविद्यालय के हिन्दी के परीक्षक थे और उनका कहना था कि इन्टर पास भँवरमल में जितना हिन्दी ज्ञान है, उतना स्नातक कक्षा पास करनेवाले हिन्दी के छात्रों को भी नहीं है। श्री शिलीमुख हिन्दी के उच्च कोटि के विद्वान थे। जयशंकर प्रसाद की नाट्यकला पर हिन्दी में पहली पुस्तक उन्होंने ही लिखी थी। वह काफी निर्भीक स्वभाव के थे। यहां एक मजेदार घटना का उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। उनकी कक्षा के एक धनी विद्यार्थी ने उनसे ट्यूशन पर पढ़ाने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि मैं खुद तो ट्यूशन नहीं पढ़ाता हूँ लेकिन मैं तुम्हें एक योग्य व्यक्ति का नाम सुझा सकता हूँ। अगले दिन उन्होंने भँवरमल से पूछा कि क्या तुम उस लड़के को ट्यूशन पढ़ा सकते हो। भँवरमल चकित थे क्योंकि इंटरमीडिएट में वह लड़का उनके साथ ही पढ़ता था। प्रोफेसर साहब के कहने पर भँवरमल राजी हो गए तथा बहुत दिनों तक अपनी ही कक्षा के उस विद्यार्थी को ट्यूशन पढ़ाते रहे।

इन्टर पास करने के बाद भँवरमल की ज़िन्दगी का सिर्फ एक और एकमात्र लक्ष्य था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ना। इसका कारण यह था कि उन दिनों रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, आचार्य केशवप्रसाद मिश्र जैसी हस्तियां वहां अध्यापन करती थीं। उनके सान्निध्य में हिन्दी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा भँवरमल के मन में थी। पर पूरे परिवार को इस हाल में जयपुर छोड़ कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ने जाने का निर्णय आसान नहीं था। सबसे बड़ा सवाल एक बार फिर वही था—रुपया। इसे हल करने में कंवरलाल बापना ने निर्णायक भूमिका निभायी। उन्होंने यह सुनते ही कि वह हिन्दू

विश्वविद्यालय में पढ़ने जाना चाहते हैं, २०० रुपये निकाल कर भँवरमल के हाथ में रख दिये और यह आश्वासन दिया कि वहां पढ़ाई का खर्च चलाने के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी करा देंगे। बस फिर क्या था, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० ए० में प्रवेश लेने के लिए वे जून १९३४ में बनारस पहुंच गये। विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने के बाद उन्हें पता चला कि कँवरलाल बापना ने उनकी आधी फीस माफ करा दी थी। यही नहीं उन्होंने प्रयास कर १५ रुपये महीने की बिड़ला छात्रवृत्ति तथा खानदेश ओसवाल शिक्षण कोष से ५ रुपये महीने की छात्रवृत्ति भी प्रारम्भ करा दी थी। श्री बापना के कारण वहां उनकी पढ़ाई निर्विघ्न आरम्भ हो गयी। भँवरमल ने अपने एक लेख में कँवरलाल बापना के प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "यदि श्री बापना का सहयोग नहीं मिला होता, तो मेरा उस समय स्नातक शिक्षा हासिल कर पाना सम्भव नहीं था।"


भारतीय साहित्य का मुखपत्र—"हंस"
सम्पादक—प्रेमचंद.
कन्हैयालाल मुनशी.
प्रकाशक—दि हंस लिमिटेड,
सरस्वती प्रेस, बनारस कैन्ट।
सं०
ता०

हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ाई आरम्भ करने के बाद भँवरमल ने पहला महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि प्रेमचन्द से सम्पर्क साधा। इस सम्पर्क की एक पृष्ठभूमि भी थी। प्रेमचन्द ने "जागरण" में, जिसके कि वे सम्पादक थे, भँवरमल की तीन रचनाएं अप्रैल, मई और जून १९३३ के अंकों में प्रकाशित की थीं। इनका प्रकाशन

भँवरमल जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि मानते हैं। प्रेमचन्द ने उन्हें गहरे प्रभावित किया था। "साहित्य रत्न" की परीक्षा देने के पहले वे प्रेमचन्द का सारा साहित्य पढ़ चुके थे। उस समय प्रेमचन्द उनके लिए किसी महानायक की तरह थे। अगस्त के महीने में एक दिन वे अपने सहपाठी जनार्दन राय नागर के साथ उनसे मिलने "हंस" (मासिक पत्रिका, जिसके प्रेमचन्द सम्पादक थे) के कार्यालय पहुंच गये। भँवरमल ने प्रेमचन्द से उस पहली मुलाकात का जिक्र इन शब्दों में किया है—"वे कुछ लिखने में मग्न थे। हमें देखा तो लिखना बंद करके बड़ी उत्सुकता और प्रसन्नता के भाव से मिले। मैंने प्रेमचन्द से कहा—"आपने मुझे लिखने की प्रेरणा दी। इसके लिए आभारी हूं।" प्रेमचन्द बोले, "तुम लिख सकते हो, तुममें लिखने की प्रतिभा है। विशेष रूप से गद्यकाव्य लिखो, मैं "हंस" में प्रकाशित करूंगा।" प्रेमचन्द के साथ इस भेंट से वे गद्‌गद् थे। इतना बड़ा साहित्यकार और इतना विनम्र। उनके साहित्य ने तो पहले ही भँवरमल को रोमांचित कर रखा था, उनके व्यक्तित्व के जादू ने उन्हें प्रेमचन्द का गुलाम बना दिया। उसके बाद दो साल के बनारस प्रवास में भँवरमल बराबर प्रेमचन्द से मिलते रहे। उनका मानना है कि प्रेमचन्द का जीवन उनके साहित्य से ऊँचा था, जो प्रायः लेखकों के पास होता नहीं है। लिखना आसान होता है, जीना कठिन।

बनारस में दो वर्ष तक अध्ययन के दौरान "हंस" में प्रेमचन्द ने भँवरमल की सात रचनाएँ छापीं। ये सभी मूलतः गद्यकाव्य हैं। "हंस" में उनका अन्तिम लेख था "हिन्दी में अनुवाद साहित्य"। इस लेख के साथ भँवरमल सिंघी का परिचय देते हुए प्रेमचन्द ने लिखा "आप एक होनहार नवयुवक गद्यगीत लेखक हैं। आपके गद्य-गीत अभी से एक स्थान रखने लगे हैं। आपकी आलोचनात्मक और निर्देशनात्मक रचनाएँ भी गवेषणापूर्ण और मननीय होती हैं। अभी आप हिंदू विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे हैं।" प्रेमचन्द के इस मूल्यांकन के बारे में भँवरमल ने लिखा है कि "यह टिप्पणी मेरे लिए अद्‌भुत प्रेरणा सिद्ध हुई। इसी का फल हुआ कि मैं लेखक बन गया।"

प्रेमचन्द के साथ दर्जनों मौकों पर उन्होंने जो देखा और सुना, वे कम महत्व के संस्मरण नहीं। २१-२२ वर्ष की अवस्था में ही भँवरमल प्रेमचन्द के प्रिय लेखक हो गये थे। इसी कारण फिल्म निर्माण के लिए बम्बई जाते समय "हंस" के प्रबंधक प्रवासी लाल वर्मा के पास जिन लेखकों की रचनाएँ बिना अनुमति लिए छापने की सूची छोड़ गये थे, उनमें भँवरमल भी थे। भँवरमल सिंघी के शब्दों में प्रेमचन्द ने "अनेक नवयुवकों को रचनाकार बनाया और उदात्त मूल्यों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। प्रेमचन्द संवेदना का, क्षमता का, सम्यक दृष्टि का एक सुन्दर समन्वित व्यक्तित्व थे। निर्धनता में रह कर भी उन्होंने सदैव उदात्त मूल्यों को अपनाया और उनके लिए संघर्ष किया। उनसे मैंने वेदना का नया अर्थ पाया—वेदना को मैंने सर्वोत्तम मूल्य के रूप में पहचाना।"

बनारस में प्रेमचन्द के अलावा अन्य जिन व्यक्तियों के वे सम्पर्क में आये, उनमें महामना मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन जे० बी० कृपलानी, गोविन्द

वल्लभ पंत, डॉक्टर सत्यमूर्ति का नाम उल्लेखनीय है। रामचन्द्र शुक्ल और श्यामसुन्दर दास जैसे हिन्दी के उद्भट विद्वानों के साथ तो उनका सीधा सम्पर्क था, जिनसे उन्होंने भाषा का संस्कार ग्रहण किया। हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान उनकी साहित्यिक सक्रियता के अलावा राजनीतिक गतिविधि ने भी जोर पकड़ा। १९३५ में उन्होंने वहाँ छात्रसंघ के सचिव का चुनाव जीता। उसके बाद पूरा वर्ष तो छात्रसंघ के माध्यम से विभिन्न कार्यक्रमों के आयोजन में ही बीता। इससे जहाँ उनमें संगठन-क्षमता का विकास हुआ, वहीं उनका आत्मविश्वास और बढ़ा। यहाँ छात्रसंघ के एक आयोजन का जिक्र करना अनुपयुक्त न होगा। छात्रसंघ के इस आयोजन में, तरुण कलाकारों के शिल्प की प्रदर्शनी के उद्घाटन के लिए सर सी० वाइ० चिंतामणि को बुलाया गया था। उनके भाषण के बाद छात्रसंघ के सचिव की हैसियत से भँवरमल सिंघी ने धन्यवाद दिया। इस समारोह की पूरी खबर दिल्ली के अखबार "वीर अर्जुन" में प्रकाशित हुई। यह अखबार जयपुर में भी जाता था। वहाँ किसी ने यह खबर पिता इन्द्रचन्द्र सिंघी को पढ़कर सुनायी और कहा कि तुम्हारा बेटा तो बड़ा आदमी हो गया है। इस पर पिता ने इस खबर की विश्वसनीयता पर शक करते हुए कहा कि "वो सालो मांग्या मूड़ा को काँई बोले लो" (वह मागे हुए मुँह वाला, क्या बोलेगा)। सचमुच पिता भँवरमल को गूँगा जैसा ही समझते थे, क्योंकि वे उनसे बहुत कम बात करते थे। पिता यह विश्वास नहीं कर पाये कि 'उनका' लड़का इतना बड़ा आदमी हो गया है कि उसका नाम अखबारों में छपे।

बनारस में अध्ययन के दौरान भँवरमल सिंघी के संस्मरणों में सईद नामक एक छायाकार मित्र का काफी जिक्र आया है। वह बनारस में क्लार्क्स होटल के निकट कैंटोनमेंट में रहता था। उससे सम्बन्धित एक मजेदार घटना का सिंघी जी ने इस तरह उल्लेख किया है—"छात्रसंघ के एक आयोजन की तसवीर खींचने के बारे में बात करने के लिए मैं अपने दो मित्रों के साथ सईद के घर गया था। बातचीत के बीच ही सईद की पत्नी आयीं और उन्होंने कहा कि "आप लोगों का स्वागत कैसे करें। आप लोग मेरे यहाँ का पानी तो पीयेंगे नहीं।" मैंने कहा कि (क्यों नहीं पीयेंगे, आप चाय पिलाइए।) मेरी बात सुन कर दोनों दोस्त चौंक गये। उन्होंने यह कल्पना कर ली थी कि एक मुसलमान के घर का मैं पानी भी नहीं पियूँगा। वे इस डर से कि कहीं उन्हें चाय पीने के लिए बाध्य न किया जाये, बातचीत के बीच मुझे वहाँ अकेला छोड़ कर वापस विश्वविद्यालय लौट आये। उनके इस व्यवहार से सईद दुखी हुआ, पर मैंने उससे कहा कि 'यह सब पाखंड है और ज्यादा दिनों तक नहीं चलेगा।' मेरी बात से उसे थोड़ा सन्तोष हुआ। बाद में सईद छात्रसंघ के आयोजन में तसवीर खींचने भी आया।"

छात्रसंघ की गतिविधियों में काफी हिस्सेदारी के कारण बी० ए० में भँवरमल द्वितीय श्रेणी ही प्राप्त कर सके। पर उन्हें कला संकाय में शायद तीसरा स्थान मिला। परीक्षा परिणाम घोषित होने के बाद दीक्षांत समारोह में कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर

मुख्य अतिथि बन कर आये। उनके चेहरे का तेज देखकर, उनका ओजस्वी भाषण सुन-कर भँवरमल सिंघी के मन में बंगाल में बसने की चाह पैदा हुई। संयोग से कुछ दिनों बाद ही उन्हें कलकत्ता आने का मौका मिला और वे कविवर रवीन्द्र नाथ टैगोर से मिले भी और उनके बीच एक अंतरंग सम्बन्ध कायम हुआ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से भँवरमल स्नातक होकर जब जयपुर पहुंचे, वह एकदम बदले हुए व्यक्ति थे। स्वाधीनता आंदोलन के बारे में, खादी के बारे में, सामाजिक कुरीतियों से लड़ने के बारे में जो बीज १९३१ से ३४ तक पड़े थे, विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान उनकी जड़ें उनमें गहरी होती गई थीं। सिंघी जी में इनको लेकर एक हद तक कट्टरता भी आ गई। इसी के चलते उन्होंने जयपुर राज्य में तहसीलदार की नियुक्ति ठुकरा दी, क्योंकि उसमें शर्त यह थी कि भँवरमल को खादी छोड़नी पड़ेगी। जब महाराजा जयपुर के सेक्रेटरी चन्द्रपाल सिंह ने भँवरमल से कहा कि कोई फैसला करने से पहले थोड़ा सोच लो, तो उनका जबाब था, 'खादी के प्रश्न पर नये सिरे से कुछ सोचने की जरूरत मुझे नहीं है। मैं इस कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं हूँ।' भँवरमल के इस फैसले से घर में बड़ी अशांति हुई। कतिपय शुभेच्छुओं और पिता का यह मानना था कि तहसीलदार बनकर आर्थिक मजबूरियों से मुक्ति पाने का, जो स्वर्णिम अवसर आया था, उसे भँवरमल ने गँवा दिया। पिता की प्रताड़ना तथा आर्थिक दिक्कतों के चलते भँवरमल काफी हताशा महसूस करने लगे थे। इसी दौर में उनकी मुलाकात उद्योगपति रामेश्वरलाल नोपानी से हुई। रामेश्वरलालजी उन दिनों जयपुर में अपनी पत्नी की चिकित्सा कराने गये थे। भँवरमल से परिचय होने पर उन्होंने कहा कि 'बहुत दिनों से मैं अपने बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने के लिए योग्य व्यक्ति की तलाश में हूँ, यदि आप इसके लिये राजी हों, तो मेरे साथ कलकत्ता चल सकते हैं।' भँवरमल को लगा कि तमाम पारिवारिक मुसीबतों से छुटकारा पाने का यह स्वर्णिम अवसर है। वह पिता के व्यवहार से थोड़ा परेशान थे और जयपुर से बाहर जाना चाहते थे, जिससे परिवार से दूर जाकर साहित्य-सृजन कर सकें और स्वाधीनता संग्राम में कोई भूमिका निभा सकें। वे रामेश्वरलाल नोपानी के साथ कलकत्ता आ गये।

जयपुर की तुलना में कलकत्ता में उन्हें ज्यादा फलक मिला। देश और समाज के लिये निःस्वार्थ कुछ करने को तत्पर भँवरमल के लिये कलकत्ता में अवसरों की कमी नहीं थी। सिंघी जी यह बराबर मानते रहे हैं कि "कोई भी व्यक्ति समाज और देश के लिये यदि सचमुच कुछ करना चाहे, तो कितनी भी विपरीत परिस्थिति से वह अपना रास्ता बना सकता है। लेकिन इसके लिए उसमें अंतःप्रेरणा होनी चाहिये।" कम-से-कम उनका अपना अतीत इसी सच्चाई का गवाह है। भँवरमल ने अपने जीवन में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और गांधी को आदर्श बनाया था और उन्होंने फैसला किया था कि स्वाधीनता के लिए और समाजोत्थान के लिये कितनी ही तकलीफें क्यों न झेलनी पड़ें, वे कोई समझौता नहीं करेंगे। वे चाहते तो आसानी से आइ० सी० एस० की परीक्षा से उत्तीर्ण कर सकते थे या घनश्यामदास बिड़ला का प्रस्ताव स्वीकार कर उनके साम्राज्य का हिस्सा बन सकते थे, पर उन्होंने मामूली ट्यूशन या छोटा-मोटा काम कर जीविका अर्जित करना और अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना ही श्रेयस्कर माना।

जब भँवरमल कलकत्ता आए, वह यहां सिर्फ एक व्यक्ति को जानते थे, और वह व्यक्ति थे सिद्धराज ढड्ढा। तब वह इण्डियन चेंबर आफ कामर्स में उप-सचिव के पद पर कार्यरत थे। उनके परिचय के एक संबल के अलावा वह हीरालाल शास्त्री के दो पत्र भी अपने साथ लाये थे। एक पत्र सीताराम सेकसरिया के नाम था और दूसरा भागीरथ कानोड़िया के नाम। इन दोनों ही व्यक्तियों का शास्त्री जी से अच्छा परिचय था और शास्त्री जी की इनके बारे में धारणा काफी ऊँची थी। इसीलिए उन्होंने भँवरमल से कहा था कि कलकत्ता में इन दो व्यक्तियों के साथ मिलकर तुम काम कर सकते हो। कलकत्ता आते ही भँवरमल इन दोनों व्यक्तियों से मिले। इनके अलावा वे प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका से भी मिले। इन व्यक्तियों की विनम्रता और सामाजिक कार्य की दृष्टि ने उन्हें प्रभावित किया और उनके साथ छोटे मोटे कार्यों में वे हिस्सेदारी करने लगे।

कलकत्ता आने के दो-चार महीनों बाद ही एक घटना हुई, जिसने पहली बार यहां उनकी क्षमता की धाक जमायी। उन दिनों वर्ल्ड जियाग्राफिक सोसाइटी के अध्यक्ष सर फ्रैंसिस यंग हसबैंड कलकत्ता आये हुए थे। उन्हें रायबहादुर रामदेव चोखानी अपनी संस्था राजस्थान रिसर्च सोसाइटी में बुलाना चाहते थे। सर फ्रैंसिस ने शुरू में तो इनकार कर दिया, पर रायबहादुर द्वारा आने के लिए जोर-दबाव देने पर उन्होंने एक शर्त रखी कि यदि समारोह में उन्हें कोई व्यक्ति राजस्थानी साहित्य के बारे में विस्तार से बताये, तो वह आ सकते हैं। राय बहादुर ने हामी भर दी। पर समस्या थी कि समय सिर्फ रात भर का था, क्योंकि अगले दिन शाम ४ बजे आयोजन पक्का किया गया था। राय बहादुर ने भँवरमल को बुलाया और कहा कि "यह काम सिर्फ आप कर सकते हैं। हमलोगों की प्रतिष्ठा दांव पर लगी है।" भँवरमल ने जिम्मेदारी ले ली। उन्होंने रात भर बैठ कर लेख लिखा "द जेम्स आफ राजस्थानी लिटरेचर"। सोसाइटी के सचिव श्री रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया के प्रयास से वह लेख उनके ही प्रेस में रात ही में कम्पोज किया गया और अगले दिन अपराह्न तक २० पृष्ठों की पुस्तिका बाइंड होकर तैयार हो गयी। शाम चार बजे आयोजित समारोह में भँवरमल ने सर फ्रैंसिस को वह लेख पढ़ कर सुनाया। बाद में वह पुस्तिका उन्हें भेंट की गई। लेख और उसकी भाषा से सर फ्रैंसिस बेहद प्रभावित हुए। वे इस बात से और भी प्रभावित थे कि सिर्फ रात भर के समय में यह पुस्तिका तैयार कर दी गई। इस आयोजन में दो अन्य व्यक्ति भी आए थे, जिन्होंने भँवरमल की प्रतिभा का लोहा माना। एक थे कलकत्ता विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में भाषा विज्ञान के मशहूर प्रोफेसर सुनीति कुमार चाटुर्ज्या तथा दूसरे थे उस समय मारवाड़ी समाज के सबसे पढ़े-लिखे सामाजिक कार्यकर्ता ईश्वरदास जालान। इन दोनों व्यक्तियों से आयोजन के बाद उनका परिचय हुआ और उन्होंने भँवरमल की भूरि भूरि प्रशंसा की। सुनीति बाबू ने उन्हें प्रेरित किया कि वे उसी सत्र में कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेजी में स्नातकोत्तर कक्षा में प्रवेश ले लें। तथा ईश्वरदास जालान ने उन्हें प्रेरित किया कि वे मारवाड़ी समाज की उन्नति के लिए अपना समय दें।

ईश्वरदास जालान ने दूसरी भेंट में ही भँवरमल को मारवाड़ी छात्रसंघ नामक संस्था का सचिव बना दिया। राय बहादुर रामदेव चोखानी ने १९३५ में ही आल इन्डिया मारवाड़ी फेडरेशन की स्थापना कर दी थी, जिसका संगठन खड़ा करने के लिए ईश्वरदास जी बहुत सक्रिय थे। ईश्वरदास जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम. ए. में द्वितीय स्थान प्राप्त किया था तथा वकालत की डिग्री भी हासिल की थी। उनकी विद्वता तथा सूझबूझ से प्रभावित होकर भँवरमल उनके साथ-साथ मारवाड़ी फेडरेशन का भी काम देखने लगे। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम. ए. (अंगरेजी) में प्रवेश ले लिया था। उसी समय उनके गद्यकाव्यों के संकलन "वेदना" का प्रकाशन रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया ने "नव राजस्थान ग्रन्थमाला" के तहत किया।

"वेदना" का प्रकाशन भँवरमल सिंघी के जीवन का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। दरअसल "वेदना" का प्रकाशन प्रेमचंद स्वयं करना चाहते थे, क्योंकि उसके अधिकांश गद्य काव्य उन्होंने ही 'हंस" में प्रकाशित किये थे। पर उनके खराब स्वास्थ्य और बाद में मृत्यु के कारण यह योजना साकार नहीं हो पायी। जब "वेदना" के प्रकाशन की बात सिंघी जी ने सुनीति बाबू से कही, तो वे बहुत गदगद हुए और वे सहर्ष पुस्तक की भूमिका लिखने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने पहले पहल हिन्दी लिपि में "वेदना" के लिए १६ पृष्ठों की भूमिका लिख कर भँवरमल को दी, जो कि गद्य काव्य पर महत्वपूर्ण सन्दर्भ लेख है। सुनीति बाबू की हस्तलिपि में वह भूमिका आज भी सिंघी जी के पास सुरक्षित है। सुनीति बाबू ने लिखा—"पुस्तक के नये भाव अपनी चमकीली और सुरीली भाषा की झलक और झंकार के साथ हिन्दी के लिए अनोखी वस्तु है।"



6 DWARKANATH TAGORE LANE
CALCUTTA.
PHONE B. B. 3995

শ্রীযুক্ত ভঁবরমলজি হিন্দি সাহিত্যে প্রাচীন রীতির বন্ধন মোচন করিয়া তাহার ভাষায় নূতন প্রাণ সঞ্চার ও তাহার ভাবের ক্ষেত্রে সীমাপ্রসার করিতে প্রবৃত্ত হইয়াছেন। এই ব্রতে তিনি সফলতা লাভ করুন এই তাঁহাকে আশীর্বাদ করি। ইতি ৩রা জুলাই ১৯৩৭

রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর

श्रीयुक्त भँवरमलजी हिन्दी साहित्य की प्राचीन रीति का बंधन मुक्त कर उस भाषा में नूतन प्राण संचार कर उसके भाव-क्षेत्र की सीमा-प्रसार करने में प्रवृत्त हुए हैं। उन्हें इस व्रत में सफलता मिले, यही मेरा आशीर्वाद है। इति तीसरी जुलाई, १९३७।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सुनीति बाबू की ही प्रेरणा से पुस्तक के लिए दो शब्द लिखवाने भँवरमल कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिले। कविवर उन दिनों काफी अस्वस्थ चल रहे थे। उन्होंने कहा कि "मैं हिन्दी बहुत कम जानता हूं। भाषा की अज्ञानता के कारण आज तक मैंने हिन्दी की किसी पुस्तक के लिए अपनी राय नहीं दी है। पर चूंकि आपने हिन्दी में बिलकुल नया काम किया है, इसलिए मैं कुछ जरूर लिखूंगा।" उस मुलाकात के दस दिनों बाद भँवरमल कविवर से मिलने गये, तो उन्होंने पुस्तक के लिए अपनी सम्मति लिख कर दरवान को दे दी थी और शांतिनिकेतन चले गये थे। कविवर ने लिखा "श्रीयुत भँवरमलजी हिन्दी साहित्य की प्राचीन रीति का बन्धन छोड़कर उस भाषा में नया प्राण संचार और उसके भावक्षेत्र में सीमा-प्रसार करने के लिए प्रवृत्त हुए हैं।" "वेदना" १९३७ में ही छपकर आ गयी और उसकी काफी सराहना की गयी। यहां तक कि रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास (द्वितीय संस्करण) में उसका उल्लेख किया है। जिन अन्य विद्वानों ने पुस्तक की प्रशंसा की उनमें नन्ददुलारे वाजपेयी' रामनरेश त्रिपाठी, गंगाप्रसाद पांडेय, और शांतिप्रिय द्विवेदी भी हैं। अनेक शोधछात्रों ने "वेदना" का अपने शोधग्रन्थों में उल्लेख किया है और उससे उद्धरण दिये हैं। पद्म सिह शर्मा कमलेश तथा डॉ० अष्टभुज शास्त्री ने हिन्दी में गद्य काव्य पर जो शोध ग्रन्थ लिखे उनमें "वेदना" पर पूरा अध्याय है।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम. ए. (अंगरेजी) में अध्ययन के दौरान ही भँवरमल का सम्बन्ध बंगाल की मशहूर क्रांतिकारी पार्टी "युगांतर" के सदस्यों से हुआ। उसकी बैठकों में नियमित रूप से हिस्सा लेने के कारण पुलिस उनके पीछे पड़ गयी। पुलिस के हाथ धो कर पीछे पड़ जाने के कारण उन्हें एम. ए. की पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी। पर क्रांतिकारियों के साथ संपर्क बना रहा और उन्होंने ऐसे काम किये, जिसके लिए उन्हें फांसी की सजा भी सुनायी जा सकती थी।

उधर घर में अवस्था पहले से कुछ बेहतर जरूर हुई, पर तंगी बरकरार थी। काशीपुर जूट सेलर्स एसोसिएशन तथा बंगाल जूट डीलर्स एसोसिएशन में नौकरी कर १२५ रुपये महीने की जो तनख्वाह सिंघी जी को मिलती थी, उसका बड़ा हिस्सा वे जयपुर भेज देते थे। घर में निराशा इसलिए भी थी कि १९३६ में उनकी पत्नी ने एक लड़के को जन्म दिया था, वह एक साल का होकर मर गया था।

उन दिनों भँवरमल ने एक बार फिर अपने आपको बहुत-सी गतिविधियों में उलझा लिया था। नौकरी के अलावा क्रांतिकारियों से उनका गुपचुप सम्बन्ध जारी था। उधर मारवाड़ी सम्मेलन का काम दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा था। इनके अलावा भँवरमल ने पूर्व भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा का जिम्मा पूरे तौर पर अपने ऊपर ले लिया था। यह सभा बसंतलाल मुरारका, सीताराम सेकसरिया और भागीरथ कानोड़िया ने मिल कर बनायी थी तथा यह बंगाल, असम और उड़ीसा में हिन्दी के प्रचार और शिक्षण का काम जोर-शोर से चला रही थी। भँवरमल इस सभा के मंत्री थे।

इसके समानान्तर ही मारवाड़ी समाज को संगठित करने का काम भँवरमल, ईश्वरदास जालान की देखरेख में कर रहे थे। इसको लेकर एक अजीब स्थिति पैदा

हो गयी थी। सीताराम जी और भागीरथ कानोड़िया इस बात से थोड़े दुखी थे कि भँवरमल ईश्वरदास जालान के भी प्रभाव में हैं। इन दोनों महानुभावों का मानना था कि मारवाड़ी समाज को संगठित करने और विकास के पथ पर लाने के लिए अलग से कोई अभियान चलाने की जरूरत नहीं है, वल्कि ऐसे कार्यक्रम लिये जायें, जिससे पूरे समाज का हित हो, तथा कुरीतियां खत्म हों, जबकि ईश्वरदास जालान का कहना था कि मारवाड़ी समाज के लोगों को उच्च शिक्षा के लिए प्रेरित कर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ने की शिक्षा देना जरूरी है, जिससे कि उनके बारे में प्रचलित यह धारणा बदले कि वे सिर्फ पैसा कमाने वाली एक जात हैं। ईश्वरदासजी का मानना था कि यह काम उतना ही जरूरी है जितना समाज सुधार। भँवरमल सिंघी का कहना था कि दोनों ही काम समान महत्व के हैं। कुप्रथाएँ मारवाड़ी समाज में भी कम नहीं हैं। इसलिए यदि सम्भव हो, तो दोनों कामों को साथ-साथ चलाया जाये। बाद में सीताराम जी और भागीरथ कानोड़िया ने इस स्थिति को स्वीकार लिया था।

इसी दौर में भँवरमल सिंघी ने "ओसवाल नवयुवक" नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन सँभाला। पत्रिका के दूसरे सम्पादक थे विजयसिंह नाहर। पत्रिका के प्रकाशन में दिक्कतें आ रही थीं। आर्थिक संकट के कारण पत्रिका के एक अंक का प्रकाशन चार महीने बाद यानी अगस्त १९३८ के बजाय नवम्बर १९३८ में चार महीने के संयुक्तांक के रूप में किया गया। इस अक में दो बातें ऐसी थीं, जिसके कारण भँवरमल सिंघी के विरुद्ध रूढ़िवादी जैनियों विशेषकर तेरापंथ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य तुलसी और उनके अंध भक्तों में घोर प्रतिक्रिया हुई। प्रतिक्रिया का पहला कारण थी वह घोषणा, जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया था कि "इस अंक के प्रकाशन में देरी क्यों हुई ?" आर्थिक दिक्कतों का जिक्र करते हुए इस घोषणा में कहा गया कि "घाटा पूरा करने की आवश्यकता हर वर्ष होती है, और फिर जैन समाज या ओसवाल समाज के इने-गिने दानियों की हालत भी हम जानते हैं। हरेक दानी महोदय का एक-एक प्रयोजन है पर ओसवाल नवयुवक तो सब प्रयोजनों के लिये है। यह एक प्रयोजन की पुष्टि और दूसरे का खण्डन अकारण नहीं कर सकता, चाहे दान उपलब्ध हो या नहीं हो। चाहे पत्र ऐसा किये बिना बन्द ही हो जाये। सभी प्रकार की विचारधाराओं के लिये-सभी सम्प्रदायों की तर्कयुक्त सिद्धान्ताभिव्यक्ति के लिये यह पत्र खुला है, पर इसकी विवेचना क्रांत विवेचना—सबके लिये समान ही है। यह एक सम्प्रदाय, एक समूह या एक व्यक्ति के प्रयोजन की साधना नहीं है, न ही हो सकता।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस जातीय पत्रिका का भी सिंघी जी ने कैसा चरित्र बनाया था। इस उन्मुक्त घोषणा से रूढ़िवादियों को ठेस पहुंची, पर असली ठेस पहुंची "ओसवाल नवयुवक" के इसी अंक में 'भग्नहृदय' नामक उपनाम से प्रकाशित भँवरमल सिंघी के अनन्य मित्र श्री पूर्णचन्द्र जैन के लेख "जैन समाज का एक सुलगता प्रश्न: साधुत्व" से। पाठकों से संवाद स्थापित करने की भाषा में लिखे गये इस लेख में जैन समाज में धर्म के नाम पर चलाये जा रहे ढकोसले और पाखंड के विरुद्ध बहुत चुभती हुई, घृणा पैदा करने वाली

भाषा में पाठकों को सचेत किया गया था। तमाम पाखण्डों की चर्चा करने के वाद उनसे लड़ने के लिये उन्होंने पाठकों का आह्वान किया—" तुम न देख सको, आंख पर पट्टी बांधकर बैठो। वह भी नहीं कर सकते, तो मुझे कहो न। मैं क्रूर होकर तुम्हें इन ज्योतिहीन आँखों से मुक्त कर दूं। तुम्हारे ऐसे आंखों वाले अन्धे को ससार में रहने का अधिकार नहीं है।"

इस अंक के प्रकाशित होने के वाद घोर हंगामा मचा और "ओसवाल नवयुवक" के स्वत्वाधिकारी ओसवाल नवयुवक समिति द्वारा भँवरमल सिंघी से सम्पादक के पद से त्यागपत्र मांगा गया। भँवरमल ने तुरंत अपना इस्तीफा दे दिया, उनके समर्थन में विजय सिंह नाहर ने भी इस्तीफा दे दिया। उनका इस्तीफा स्वीकार करते समय उनसे यह अनुरोध किया गया था कि वे "ओसवाल नवयुवक" का एक और अंक निकालें, तब तक वैकल्पिक संपादक मण्डल की व्यवस्था हो जायेगी। इसमें भँवरमल के परम मित्र श्री महाल चन्द वोथरा ने जो भूमिका निभाई उसको सिंघी जी आज भी याद करते हैं। जो अगला अंक निकला, वह हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना है। ६४ पृष्ठों की पत्रिका में भँवरमल सिंघी ने ४० पृष्ठों का सम्पादकीय लिखा। वह तथ्यों से भरा एक अद्भुत सम्पादकीय है, जिसमें धर्म के नाम पर चल रहे षडयंत्र का पर्दाफाश करते हुए पिछले अंक में प्रकाशित लेख "साधुत्व" का औचित्य ठहराया गया। वह सम्पादकीय जैन धर्म के ढकोसलों के विरुद्ध आज भी एक ठोस दस्तावेज है।

"ओसवाल नवयुवक" से हटने के वाद भँवरमल ने सन् १९४० में "तरुण संघ" की स्थापना की, और उसका एक मासिक मुखपत्र निकाला "तरुण ओसवाल"। वाद में इसका नाम हो गया "तरुण जैन" और उसके वाद इस घोषणा के साथ मुखपत्र से "जैन" शब्द हटा कर सिर्फ तरुण कर दिया गया कि जातिसूचक शब्दों को इस तरह बढ़ाने-चढ़ाने की प्रवृत्ति से वचना चाहिए। 'तरुण' पहले मासिक था, पर वाद में पाक्षिक हो गया। १९४९ में इस तरह का चिंतन कोई मामूली वात नहीं थी। वहरहाल, "तरुण ओसवाल", "तरुण जैन", से "तरुण" तक की यात्रा में सिंघी जी ने ओजस्वी पत्रकारिता की छाप छोड़ी। "तरुण जैन" का "अहिंसा अंक" उस जमाने में हिन्दी की पत्रकारिता में मील का पत्थर माना गया था। १९४२ में जेल जाने तक वे "तरुण जैन" का सम्पादन नियमित रूप से करते रहे। सिंघी जी वरावर 'भग्नहृदय' के नाम से इसमें लिखते रहे, जो कि पत्रिका का सबसे लोकप्रिय स्तम्भ होता। वाद में "भग्नहृदय" के उपनाम से प्रकाशित उनके लेखों का एक संकलन प्रकाशित हुआ, जिसका नाम है "भग्न हृदय के लेख"।

सिंघीजी जव जयपुर से कलकत्ता आये, उसके पहले ही एक अजीब सी घटना हो चुकी थी। उनके पिता की मामी श्रीमती गेलड़ा ने भँवरमल को कानूनी तौर पर गोद ले लिया था। उनके अपनी कोई संतान नहीं थी और पति की मृत्यु हो चुकी थी इसलिये उन्होंने अपनी अचल सम्पत्ति, जिसकी उस समय कीमत १५-२० हजार रुपये

के आसपास थी, एक अपरिवर्तनीय वसीयत के माध्यम से भँवरमल के नाम लिख दी थी। जब भँवरमल कलकत्ता चले आये, तो उनके चाचा सिरहमल को गोद लिये जाने और सम्पत्ति के हस्तांतरण की इस घटना का पता चला। यह सुनकर उनके मन में लालच आ गई। उन्होंने अपनी मामी को समझाया कि भँवरमल के बजाय वह उन्हें गोद ले लें। सीधी-सादी मामी इसके लिये तैयार हो गयीं और कुछ लिखापढ़ी भी हो गयी और जाति में गोद लिये जाने की घोषणा भी हो गई। इसके बाद मामला आया अपरिवर्तनीय वसीयत का। जब पिता इन्द्रचन्द्र को सिरहमल की चालाकी का पता चला, तो वे बेहद नाराज हुए और उन्होंने तुरन्त भँवरमल को जयपुर आने का संदेश भेजा। जयपुर के घटनाक्रम और पिता की मनःस्थिति भांपने में भँवरमल को देर नहीं लगी। पर चूंकि वह वसीयत पिताजी के पास ही थी इसलिए उन्हें जयपुर जाना पड़ा। जब वह जयपुर पहुंचे तो उनकी मामी और चाचा सिरहमल काफी भयभीत थे कि वह जरूर कोई हंगामा करेंगे। पर भँवरमल तो वहां दूसरे इरादे से गये थे। उन्होंने किसी तरह पिता से मामी जी की वह वसीयत हासिल की और उसे वहीं टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया, जिससे आगे विवाद की कोई गुंजाइश ही न रहे। भँवरमल के ऐसा करने से परिवार में मुकदमेबाजी की नौबत आने से बच गयी।

सिंघी जी जयपुर से लौटकर कलकत्ता आये, तो फिर स्वाधीनता की लड़ाई में शामिल हो गये। गांधीजी के प्रभाव के कारण अहिंसा के रास्ते पर चलकर आजादी पाने में उनका विश्वास था, अन्दर ही अन्दर अंगरेजों के अत्याचार के कारण उनमें प्रतिशोध की चिनगारी भी भड़क रही थी। इसी दौरान गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। प्रफुल्ल घोष को उन्होंने बंगाल के सत्याग्रहियों की सूची भेजने का दायित्व सौंपा। प्रफुल्ल बाबू ने बंगाल से सत्याग्रह के लिए जिन गिनती के लोगों की सूची भेजी, उनमें भँवरमल भी एक थे। वे इधर आन्दोलन में उलझे थे, उधर २८ जून १९३८ को उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई। पुत्र का नाम श्रीकान्त रखा गया, श्रीकान्त आज दिल्ली में कार्यरत हैं।

इन दिनों भँवरमल राष्ट्रभाषा के प्रचार में भी विशेष रूप से लगे थे। गांधी जी के निर्देश पर काका कालेलकर राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रभाषा के प्रचार का काम संभाले हुए थे। राष्ट्रभाषा के ही सिलसिले में सिंघी जी का काका साहब कालेलकर से संपर्क हुआ। काकासाहब के प्रेरक और निःस्वार्थ कर्तव्यभाव ने सिंघी जी के मन पर अमिट छाप छोड़ी। काका साहब से अंतरंग रिश्ते ने सिंघी जी में देश के लिए काम के प्रति निष्ठा और गहरी की। काका साहब के साथ सिंघी जी ने बंगाल, असम और उड़ीसा का व्यापक दौरा किया। राष्ट्रभाषा के प्रचार का काम जोर शोर से चल पड़ा था। इसी दौरे में १९४० में गांधी जी के निर्देश पर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की कार्यकारिणी की बैठक वर्धा में बुलायी गयी। इस बैठक में कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी बुलाया गया, जो राष्ट्रभाषा के लिए बहुत अच्छा काम कर रहे थे। काका कालेलकर का सन्देश मिलने पर सिंघी जी भी बैठक में भाग लेने वर्धा पहुंचे। बैठक हुई, जिसमें

कई फैसले किए गए। इनके अलावा गांधी जी ने वम्बई के तत्कालीन मुख्यमन्त्री वाला साहव खेर को कार्यसमिति का सदस्य नामजद कर दिया। इस पर काका कालेलकर ने गांधी जी से कहा कि "राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की कार्यसमिति में पूर्वी भारत के प्रतिनिधि के रूप में सिंघी जी को जरूर लिया जाना चाहिये।" काका साहव ने कहा कि ऐसा वाला साहव खेर को कार्यसमिति में न रख कर किया जा सकता है। यह सुन कर बैठक में उपस्थित श्री वाला साहव खेर ने कहा कि 'यह प्रस्ताव बिल्कुल सही है। मैं तो वम्बई का मुख्य मन्त्री हूँ ही और मेरा ध्यान भी हिन्दी की ओर है, इसलिये भँवरमल सिंघी को ही समिति में स्थान देना चाहिये।' इतना सब सुनने के वाद गांधी जी बोले "वाला साहव क्या आप अपने को वहुत वड़ा आदमी समझते हैं। अगर भँवरमल भाई को समिति में नहीं लेंगे, तो क्या वे उस तरह काम नहीं करेंगे, जिस तरह अब तक करते रहे हैं।" यह कह कर उन्होंने सिंघी जी की ओर देखा और पूछा कि "क्या मैं ठीक नहीं कह रहा हूँ।" भँवरमल ने कहा कि 'आप ठीक कह रहे हैं।' फिर गांधीजी ने कहा कि, समिति में होने का मतलब होगा थोड़ी सी और जिम्मेदारी। हिन्दी के लिए काम करने वाले का किसी समिति में होने न होने से क्या सम्बन्ध ?'

सेवाग्राम SEVAGRAM,
वर्धा सी.पी. WARDHA, C.P.

सेवाग्राम में ही दो और ऐसी घटनाएँ हुई, जिनके कारण सिंघी जी के जीवन को एक खास दिशा मिली और इन दोनों में वापू की एक भूमिका थी। पहली घटना थी, वापू का यह सवाल कि क्या विधुरों को विधवाओं से विवाह नहीं करना चाहिए ? सेवाग्राम में वापू के सामने सिंघी जी बैठे थे। उस समय विहार से आए कार्यकर्त्ताओं से अनौपचारिक चर्चा में वापू ने देश में विधवाओं की स्थिति का प्रसंग छेड़ा। गांधी जी की वात का लब्बोलुवाव यह था कि स्वराज का असली सिपाही वह है, जो विधवा विवाह करने का निश्चय करे। पर गांधीजी की यह स्पष्ट धारणा थी कि उन्हें तो विधवा से ही विवाह करना चाहिये, जो विधुर हैं। वात कहने के वाद वापू ने पूछा कि 'कौन कौन इससे सहमत हैं ?' अधिकांश ने वापू की वात से अपनी सहमति व्यक्त की। सहमति व्यक्त करने वालों में भँवरमल भी थे। उस समय भँवरमल को क्या पता था कि इसके कुछ दिनों वाद ही वे विधुर हो जायेंगे, और उन्हें गांधीजी को दिये गये वचन की कसौटी पर उतरना होगा।

दूसरी घटना थी वर्धा में घनश्याम दास विड़ला से भेंट। उन दिनों सिद्धराज ढड्ढा भी वर्धा गए हुए थे। वे उस समय इण्डियन चेंबर ऑफ कामर्स के उपसचिव थे। यह संस्था घनश्यामदास विड़ला ने वनायी थी और उन्होंने ही ढड्ढा जी को इस पद पर

नियुक्त किया था। घनश्यामदास बिड़ला वर्धा में जमुनालाल बजाज के अतिथिगृह में टिके हुए थे। अपराह्न में उन्होंने ढड्ढा जी को मिलने के लिए बुलाया। सिद्धराज जी ने, जो सिंघी जी के साथ ही टिके थे, उनसे कहा कि 'तुम भी मेरे साथ चलो।' यह सुनकर शुरू में तो सिंघी जी को संकोच हुआ। इसकी वजह यह थी कि घनश्याम दास बिड़ला के बहुत से गुणों ने उन्हें गहरे रूप से प्रभावित किया था और जिस व्यक्ति का ऐसा प्रभाव हो, उससे अचानक इस तरह मिलना था। पर वे उनसे मिलने गए। वहाँ उस समय बंगाल के सुप्रसिद्ध नेता नलिनि रंजन सरकार भी उपस्थित थे। करीब आधे घण्टे तक देश की राजनीति तथा विकेन्द्रीकरण मूलक अर्थव्यवस्था पर तीनों विचार करते रहे और अन्त में बात घनश्यामदास जी की ताजा पुस्तक "बापू" पर आकर टिक गई। भँवरमल ने "त्यागभूमि" में समीक्षा के लिए वह पुस्तक बहुत गौर से पढ़ी थी। इस पुस्तक में बापू को अनेक पहलुओं से देखा गया था, पर इसमें खादी का जिक्र तक नहीं था। जब कि बापू कहा करते थे कि खादी बिना कोई मेरी कल्पना भी न करे। पुस्तक में खादी का जिक्र न होना सिंघी जी को चुभा था, इसलिये उन्होंने थोड़े रुष्ट भाव से बिड़ला जी से कहा था कि "आपकी पुस्तक अधूरी है, क्योंकि इसमें खादी का जिक्र ही नहीं है।" उन्होंने सिंघी जी की बात गौर से सुनी और इस बात के लिए उनकी सराहना की कि उन्होंने उनकी पुस्तक इतने गौर से पढ़ी है। इसके बाद ही बातचीत खत्म हो गई, क्योंकि सभी को अलग-अलग कार्यक्रमों में जाना था। सिंघी जी थोड़ा परेशान थे कि कहीं सिद्धराज जी ने घनश्याम दास जी से उनके इस तरह बात करने का बुरा न माना हो, पर ऐसा था नहीं। सिद्धराज जी ने इसे बिल्कुल सहज रूप में लिया था। आश्रम की व्यस्तता में तथा बाद में कलकत्ता आने पर भँवरमल घनश्याम दास बिड़ला से उस भेंट को एक तरह से भूल चुके थे कि हफ्ते भर बाद घनश्याम दास जी ने सिद्धराज जी की मार्फत कहला भेजा कि भँवरमल उनसे मिलें। उन दिनों भँवरमल जूट व्यवसायियों के संघ में वैतनिक सचिव थे। घनश्याम दास जी ने चार गुनी तनख्वाह पर अपने संस्थान में नौकरी देने का भँवरमल को आमन्त्रण दिया था। काफी विचार के बाद भँवरमल ने घनश्याम दास जी का यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। भँवरमल का सिर्फ एक तर्क था कि घनश्याम दास जी के यहाँ नौकरी कर उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता जाती रहेगी जो कि पैसे से ज्यादा बड़ी चीज है।

वर्धा से लौटने के तीन महीने बाद सिंघी जी को एक गहरा आघात लगा। उनकी पत्नी क्षमा देवी का निधन हो गया। वह गर्भवती थीं तथा उनकी जयपुर के मेयो अस्पताल में चिकित्सा की जा रही थी। उस समय उनके पुत्र श्रीकान्त की अवस्था सिर्फ दो वर्ष की थी। खुद भँवरमल की अवस्था सिर्फ २६ वर्ष थी। सौभाग्य से पिता इन्द्रचन्द्र तथा माँ के अच्छी शारीरिक हालत में होने के कारण सिंघी जी को तुरन्त श्रीकान्त की अलग से कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ी। इसके अलावा उनके दोनों छोटे भाई पदमचन्द और रतनचन्द भी श्रीकान्त से क्रमशः ६ और ७ वर्ष ही बड़े थे, इसलिए उनके साथ खेल कर समय बिताने की उसे सुविधा थी।

स्वाधीनता आन्दोलन दिन-पर-दिन तेज होता जा रहा था, और उसमें सिंघी जी की हिस्सेदारी बढ़ती जा रही थी, इसलिए पत्नी की मृत्यु के बावजूद उनका अभियान पूर्ववत जारी रहा। इसी समय आया ९ अगस्त १९४२ का वह ऐतिहासिक दिन, जब बम्बई में कांग्रेस के अखिल भारतीय अधिवेशन में गांधीजी का 'करो या मरो' का प्रस्ताव पारित हुआ। एक प्रकार से स्वाधीनता प्राप्ति के लिए यह निर्णायक लड़ाई का आह्वान था। यह प्रस्ताव पारित करने का परिणाम यह निकला कि १० अगस्त को सुबह पूरे देश में धर-पकड़ मच गयी। अपने एक संस्मरण में सिंघी जी ने उस समय चल रही घटनाओं का उल्लेख इस तरह किया है : "बम्बई अधिवेशन से लौटते समय सीताराम सेकसरिया और बसंतलाल मुरारका को हावड़ा स्टेशन पर गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। मैं उस समय मन प्राण से आंदोलन में लगा था और अपनी जान की बाजी लगाकर भी कुछ करने के लिए तत्पर था। मुझे भी एक मौका मिला। कांग्रेस अधिवेशन से गोपीनाथ बारदोलोई (असम के महान स्वतन्त्रता सेनानी तथा प्रथम मुख्य-मन्त्री) कलकत्ता पहुंचे और उन्होंने मुझे बुलाया। वह कॉलेज स्ट्रीट स्थित रायल होटल में ठहरे थे। असम में राष्ट्रभाषा के प्रचार के सिलसिले में मेरा उनसे परिचय हुआ था, इसलिये वह मेरी क्षमता से अच्छी तरह परिचित थे। मेरे वहां पहुंचने पर वह बोले, 'देखो मैं जैसे ही असम की सीमा में प्रवेश करूंगा गिरफ्तार कर लिया जाऊंगा। पर असम में आन्दोलन चलना जरूरी है, इसलिए वहां की जनता के नाम एक सन्देश तथा आंदोलन का कार्यक्रम तैयार कर मैं तुमको देता हूं। तुम इसे किसी तरह गौहाटी ले जा कर पार्टी के एक पदाधिकारी सिद्धिनाथ शर्मा को दे दो।' मैं इसके लिए सहर्ष तैयार हो गया। सब कुछ वैसे ही हुआ, जैसी कि उन्होंने योजना बनायी थी। गोपीनाथ बारदोलोई असम में घुसे और गौहाटी पहुंचने से पहले बरपेटा में ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उसके बाद मैं असम पहुंचा और आंदोलन का श्री बारदोलोई द्वारा प्रदत्त कार्यक्रम की रूपरेखा और संदेश शर्मा जी को दे दिया। असम की उसी यात्रा में नलबाड़ी में मुझे एक ऐसा दृश्य देखने को मिला, जिसे याद कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। महिलाओं का एक जत्था वहां पुलिस चौकी पर यूनियन जैक की जगह तिरंगा झंडा फहराना चाहता था। एक तरुणी के हाथ में तिरंगा झंडा था। पुलिस ने मेरी आंखों के सामने उस तरुणी को गोली मारी, गोली लगने से वह वहीं छटपटा कर गिरी और मर गयी, पर उसके हाथ से तिरंगा गिरता उसके पहले ही उसकी मां आगे बढ़ी और उसने झण्डा थाम लिया। अंततः पुलिस चौकी पर यूनियन जैक की जगह आंदोलनकारी महिलाओं ने वह तिरंगा फहराया।"

जब भंवरमल के भूमिगत आन्दोलन में कूद पड़ने की खबर पिता इन्द्रचन्द्र को लगी, तो वे काफी परेशान हुए। वे इस बात को लेकर बहुत चिन्तित रहने लगे कि उनका बेटा कहीं पुलिस के हाथों न पड़ जाए। उन्होंने भंवरमल को जयपुर लौटने के लिए दर्जनों चिट्ठियां लिखी। इन्हीं पत्रों के जवाब में ७ सितम्बर १९४२ को अपने पिता को चिट्ठी में भंवरमल ने लिखा "आप मुझे जयपुर आने के लिये कहते हैं पर जैसा मैंने आपको पहले लिखा है, इस समय मैं जयपुर किसी भी तरह नहीं आ सकता। देश के कामों में मेरा जो हाथ है, उसे मैं वापस नहीं खींच सकता। XXX आपके प्रेम और

वात्सल्य की मैं कदर करता हूँ और उससे खुश हूँ, पर आपको भी मेरे कमाए हुए पैसों को जितनी खुशी होती है, उससे ज्यादा खुशी मेरी सेवाओं और कार्यों से होनी चाहिए। पैसे तो ठहरनेवाले नहीं हैं। काम ठहरेंगे, उनसे जीवन का मूल्य बढ़ता है XXx पिता और माता के साथ पुत्र का सम्बन्ध ही ऐसा होता है कि वह टूटे तो दोनों तरफ वज्र प्रहार होता है, पर फिर भी जब कभी दैव की मरजी से सदा के लिए यह सम्बन्ध टूट जाता है—भगवान न करे कि ऐसा हो—तो चंद दिनों के बाद सब कुछ बर्दाश्त करना ही पड़ता है। तब अगर जरूरत पड़ने पर राजी-खुशी कुछ दिनों के लिए यह सम्बन्ध तोड़ कर भी रहना हो तो दुख क्यों हो ? और अगर कुछ के दुख से सारे देश को स्वराज्य की खुशी मिलती हो, तो फिर तो कहना ही क्या ? मैं आपसे बार बार विनती करता हूँ कि आप मुझे आशीर्वाद दें, जिससे जो कुछ मुझे करना हो, निश्चिन्त होकर किया जा सके।" उनके इस खत से अन्दाजा मिल जाता है कि उस समय भँवरमल की मन:स्थिति क्या थी।

गिरफ्तारी से बचने के लिये बंगाल में आंदोलनकारी पूरी तरह भूमिगत हो गये थे। बंगाल में आन्दोलन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये एक समिति बनी, जिसके सदस्य थे अन्नदा प्रसाद चौधरी, निहारेंदु दत्त मजुमदार, माखनलाल सेन, मैत्रेयी बोस तथा भँवरमल सिंघी। यह समिति हिंसक और अहिंसक दोनों तरीके से अपना काम कर रही थी। इस समिति की बहुत-सी गतिविधियों में से एक था छिपे तौर पर "करो या मरो" नामक हिन्दी अखबार निकालना। इसकी पूरी जिम्मेवारी एक तरह से सिंघी जी पर ही थी। आन्दोलन के लिये रुपया इकट्ठा करने का काम भी उनके जिम्मे था। सिंघी जी ने एक जगह लिखा है कि "रामेश्वरलाल नोपानी ने, जो उस समय इण्डियन चैम्बर ऑफ कामर्स के सभापति थे, आंदोलन के लिए काफी आर्थिक मदद की और मित्रों से करवायी। उस समय क्रान्तिकारी सुधीर घोष और उपेन्द्र साहा ने भी बहुत मदद दी।" इस भूमिगत आन्दोलन के दौरान ही जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अरुणा आसफ अली, बाबा राघवदास और सादिकअली से सिंघीजी का घनिष्ठ सम्पर्क हुआ।

उन्हीं दिनों राष्ट्रीय स्तर के कई नेताओं की सलाह पर तोड़फोड़ की एक वृहत योजना बनी। योजना थी नागपुर और बम्बई के बीच स्थित कई टनेलों (गुफा के अन्दर से जानेवाले रेल मार्गों) को एक साथ डायनामाइट से उड़ा देना, जिससे कि बम्बई का देश के एक बड़े हिस्से से सम्पर्क टूट जाये। पूरी योजना बनी और उसके क्रियान्वयन की जिम्मेवारी सिंघी जी के ऊपर दे दी गयी, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। पर योजना की सफलता के लिए नागपुर के क्रान्तिकारियों का सहयोग लेना जरूरी था। उस समय नागपुर के सबसे बड़े क्रान्तिकारी थे "हिन्दुस्तान रेड आर्मी" के संस्थापक मगन लाल बागड़ी। उनको जिन्दा या मुरदा पकड़ने पर सरकार ने १० हजार रुपये का इनाम घोषित कर रखा था। सिंघी जी योजना में सहयोग के लिये श्री बागड़ी से मिलने नागपुर पहुंचे। सिंघी जी को मगनलाल से मिलवाने के लिए गांधी जी के अनन्य

सहयोगी प्रभुदयाल विद्यार्थी भी सिंघी जी के साथ नागपुर गये। मगनलाल वागड़ी एक हरिजन वस्ती में रहकर छापामार कार्रवाई का सफलतापूर्वक संचालन कर रहे थे। निर्धारित तिथि को रात एक बजे प्रभुदयाल विद्यार्थी के साथ सिंघी जी मगनलाल वागड़ी से मिले। विध्वंश की योजना श्री वागड़ी को काफी पसन्द आई। उन्होंने कहा कि विस्फोटकों का इन्तजाम कर आप नागपुर पहुंचिये। मेरे आदमी शुरू से अन्त तक आपके साथ रहेंगे। और अगर जरूरत पड़ी तो मैं खुद इस अभियान में आपका सहयोग करूंगा। इस मुलाकात से सिंघी जी काफी खुश थे। लौटते समय वे वम्बई होकर कलकत्ता आये। वम्बई में उन्होंने राममनोहर लोहिया के साथ काफी समय विताया।

कलकत्ता लौटने पर सिंघी जी के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी, विस्फोटकों का इन्तजाम। उन्हें वताया गया कि वड़ी मात्रा में डायनामाइट उन्हें बिहार में जमालपुर में उपलब्ध कराया जा सकता है, लेकिन जमालपुर से उन विस्फोटकों को कलकत्ता लाने की जिम्मेवारी सिंघी जी की ही होगी। सिंघी जी इसके लिए जमालपुर रवाना हो गये। निर्धारित जगह से उन्होंने अत्यंत शक्तिशाली डायनामाइट की २०० स्टिक हासिल की और उन्हें तकिये में भर रेलवे के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में (रेलवे में प्रथम श्रेणी में उनके जीवन की यह पहली यात्रा थी) ऊपर की वर्थ पर लेट कर वे सकुशल कलकत्ता पहुंच गये। डायनामाइट लाकर उन्होंने उसे (मकान नम्बर ११८ बी, सेंट्रल एवेन्यू) में अपने पड़ोसी जो उसी मकान के चौथे तल्ले पर रहता था के घर पर रखा। वह पड़ोसी कहीं गया हुआ था और अपनी चाभी सिंघी जी को दे गया था। पर पहुंचने पर ही उन्हें पिता का एक टेलीग्राम मिला, जिसका आशय था कि तुम्हारी वहन लाड़ का वड़ा वेटा वीमारी के कारण मौत के मुंह में है, उसकी चिकित्सा आदि की व्यवस्था के लिये तुम फौरन जयपुर चले आओ। उस टेलीग्राम ने उन्हें कर्त्तव्य पथ से डिगा दिया। और उन्होने जयपुर जाने का फैसला किया। वंगाल में आंदोलन की वागडोर सँभाले हुए कई व्यक्तियों को इस बात का पता था कि सिंघी जी जमालपुर से डायनामाइट लाने में सफल हो गए हैं। सम्भवत: उनमें से ही किसी ने पुलिस को इसकी खवर दे दी थी। पुलिस सही वक्त की तलाश में थी। नवम्वर १९४२ को जिस दिन सिंघी जी जयपुर से लौटे, उसी रात पुलिस के उपायुक्त के नेतृत्व में नब्बे अधिकारियों-जवानों के दल ने सेंट्रल एवेन्यू के उस मकान पर छापा मारा। सिंघी जी घर पर अकेले ही थे और पुलिस ने आसानी से उन्हें गिरफ्तार कर लिया। 'पर हजार छानवीन के वावजूद पुलिस को डायनामाइट नहीं मिला। डायनामाइट की स्टिक तो उन्होंने चौथे तल्ले के पड़ोसी के यहां छिपा रखी थी। पुलिस वहां गई थी, उसने एक कमरे का ताला भी तोड़ा, पर वहां मौजूद धूल-गर्द के कारण उसे लगा कि यह घर वहुत दिनों से वन्द है और यहां कोई सामान नहीं रखा गया होगा। यह पुलिस की वड़ी भूल थी। यदि वह एक कमरे का ताला और तोड़ देती, तो उसे डायनामाइट के २०० स्टिक मिल जाते। इस तरह सिंघी जी कि गिरफ्तारी से एक जवरदस्त योजना पर पानी फिर गया। लेकिन सौभाग्य की वात यह थी कि पुलिस के हाथ डायमानाइट नहीं लगा। वाद में सिंघी जी के अनन्य मित्र

विश्वनाथ उपाध्याय ने, जो कि उनके सहायक के रूप में उनके साथ काम करते थे, उक्त विस्फोटकों को हुगली नदी में वहा कर उस असफल अभियान पर हमेशा के लिए परदा डाल दिया।

जेल जाना भँवरमल सिंघी के जीवन के नये अध्याय का आरम्भ था। कलकत्ता के मशहूर प्रेसीडेंसी जेल में उन्हें रखा गया, जहां सीताराम सेकसरिया, भागीरथ कानोड़िया, वसन्तलाल मुरारका, हीरालाल लोहिया (राममनोहर लोहिया के पिता) सरीखे ८०० राजनीतिक वंदी पहले से ही मौजूद थे। उनके साथ एक नया जीवन शुरू हुआ। राजनीतिक चर्चाओं से जो समय बचता उसका पूरा उपयोग वे अध्ययन में करते। जेल में ही उन्होंने मार्क्स, एन्जेल्स, टालस्टाय, रसेल, लास्की, जोड को गम्भीरता से पढ़ा। उस समय की दुनिया के तमाम मशहूर ग्रन्थ सिंघी जी ने जेल में ही पढ़े। जेल में उन्होंने सैकड़ों पुस्तकें पढ़ीं। इन्हीं में से एक थी जनसंख्या पर टामस रावर्ट मालथ्यूस की पुस्तक—"ऐन एसे आन द प्रिन्सिपल ऑफ पाप्युलेशन ऐज इट अफेक्ट्स द फ्यूचर इम्प्रूवमेंट ऑफ सोसाइटी"। इस पुस्तक में जनसंख्या में वढ़ोतरी से होनेवाले खतरों की ओर संकेत करते हुए मालथ्यूस ने लिखा था कि जनसंख्या को बढ़ने से रोकना सवसे बड़ी चुनौती है क्योंकि जिस रफ्तार में जनसंख्या वढ़ती है, उस अनुपात में जीवनयापन की वुनियादी वस्तुओं का उत्पादन नहीं बढ़ता। इसे पढ़ने के वाद सिंघी जी के मन में यह प्रेरणा जगी कि जेल से वाहर आकर परिवार नियोजन के प्रचार के लिए काम करूँगा। यह प्रेरणा आज भी सिंघी जी के जीवन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य वनी हुई है।

जेल में सिंघी जी के सामने सिर्फ एक चिन्ता थी—दोनों छोटे भाइयों और वेटे की शिक्षा का उचित प्रवन्ध। सिंघी जी २९ महीनों तक जेल में रहे और इस लम्बी अवधि में लिखे गये उनके सैकड़ों पत्रों से उनकी यह चिन्ता स्पष्ट होती है। जेल जाने के वावजूद सिंघी जी को आधी तनख्वाह वरावर मिलती रही जो, उनके मित्र विश्वनाथ उपाध्याय नियमित रूप से जयपुर माता-पिता के पास भेज देते। विश्वनाथ उपाध्याय के प्रति सिंघी जी के मन में वहुत स्नेह भाव रहा है। शायद यही वात उनके मन में भी सिंघी जी के प्रति रही है। २९ महीनों के जेल प्रवास में सिर्फ वही उनसे नियमित रूप से मिलने आते, जयपुर में घर से वरावर सम्पर्क वनाये रखते और नियमित रूप से रुपये भेजा करते। अप्रैल १९४५ में जव सिंघी जी को रिहा किया गया, तो उनका स्वागत करने के लिए सिर्फ एक व्यक्ति खड़ा था और वह थे विश्वनाथ उपाध्याय। सिंघी जी ने कई जगहों पर उनकी इस निःस्वार्थ मैत्री-भावना की वड़े आत्मीय शब्दों में सराहना की है।

जेल से ही सिंघी जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से हिन्दी में स्नातकोत्तर की परीक्षा दी और विश्वविद्यालय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। जेल में जिस वात ने सिंघी जी को अचंभित किया वह था जेल सुपरिंटेंडेंट का मृदु व्यवहार। उन दिनों प्रेसीडेंसी जेल के सुपरिंटेंडेंट थे श्रीमान् ल्यूक, जो गोरी चमड़ी के थे। पर कैदियों को

विशेषकर राजनीतिक कैदियों की हर समस्या को सुलझाने की वे ईमानदार कोशिश करते। वे राजनीतिक कैदियों को सम्मान देने के लिए उन्हें "सर" का सम्बोधन करते जिसकी आजाद हिन्दुस्तान की जेलों में कल्पना भी नहीं की जा सकती है। शायद इसीलिए कुमकुम चड्ढा की पुस्तक "इण्डियन जेल्स" पर टिप्पणी करते हुए सिंघी जी ने एक बार कहा कि "आज जेलों की जो अवस्था है, उसकी अंग्रेजों की जेल से कोई तुलना नहीं की जा सकती है। गुलाम हिन्दुस्तान के कैदियों के साथ ज्यादा सभ्य व्यवहार किया जाता था और वे ज्यादा सुखी थे।"

प्रेसिडेंसी जेल में उस समय ८०० राजनीतिक कैदी थे और प्रत्येक को रोज डेढ़ रुपये की रसद दी जाती थी। प्रफुल्ल चन्द्र सेन ने इसको लेकर जेल में बड़ा आन्दोलन चलाया। उनका कहना था कि राजनीतिक कैदियों को रोज सिर्फ ७५ पैसे की रसद ही दी जाये और बाकी का ७५ पैसा जेल के बाहर अकाल पीड़ितों को राहत के रूप में भेज दिया जाये। जब उन्होंने इस बारे में सिंघी जी की राय जाननी चाही तो अपने हिस्से का ७५ पैसा देने के लिए वे सहर्ष तैयार हो गये पर जेल के ८०० कैदियों में से करीब साढ़े तीन सौ कैदी ही अपने खाने का ७५ पैसा जेल के बाहर अकाल पीड़ित देशवासियों को देने के लिए तैयार थे। शुरू में जेल प्रशासन इसके लिए तैयार नहीं था, पर अन्ततः वह इसके लिए राजी हो गया कि कैदियों के हिस्से का ७५ पैसा रामकृष्ण मिशन के मार्फत अकाल पीड़ितों तक पहुंचाया जायेगा। इस तरह लगभग दो वर्षों तक जेल से ही राहतकार्य में सहायता की गयी। जेल में इस घटना के माध्यम से सिंघी जी का प्रफुल्लचन्द्र सेन (बाद में पश्चिम बंगाल के मुख्य मन्त्री) से घनिष्ठ सम्बन्ध बना, जो आज तक कायम है।

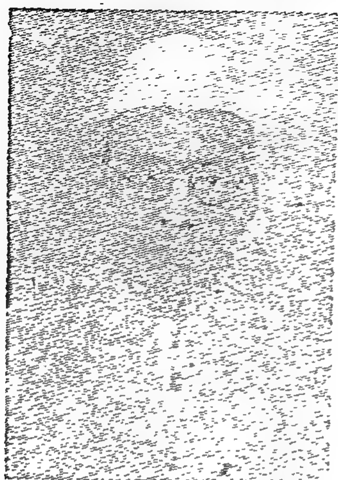
सीताराम सेकसरिया, भागीरथ कानोड़िया और बसन्तलाल मुरारका जैसे महानुभावों के साथ जेल में रहना सिंघी जी के लिए सौभाग्य की बात थी। इन तीनों ही व्यक्तियों के जीवन-मूल्य बहुत ऊंचे थे और जेल में उनके साथ रह कर सिंघी जी ने पाया कि वह उन्हें जितना महान समझते थे, वे उससे कहीं ज्यादा महान थे। जेल से सबसे पहले छूटने वाले थे भागीरथ कानोड़िया। वे सात-आठ महीने तक जेल में रहे। लगभग डेढ़ वर्ष तक जेल काटने के बाद सीतारामजी और बसन्तलाल मुरारका को रिहा किया गया। अपने साथियों में सिंघी जी ही सबसे ज्यादा दिनों तक जेल में रहे। सन् १९४५ के आरम्भ होने के साथ ही सिंघी जी की पेट में दर्द के कारण तबीयत खराब रहने लगी। मार्च १९४५ में जेल में उनकी दशा इतनी खराब हो गई कि लगा कि वे जीवित नहीं बचेंगे। उन्हें कलकत्ता मेडिकल कालेज हास्पिटल में भर्ती किया गया, जहां उन्हें करीब एक महीने तक रखा गया और बाद में वहीं से अप्रैल १९४५ के अन्त में जेल से इस शर्त पर रिहा किया गया कि वे बंगाल में कहीं भी नहीं रह सकेंगे। सिंघी जी यह शर्त मानने के लिए तैयार न थे, पर डाक्टरों और कई शुभचिन्तकों के दबाव देने पर वे जेल से बाहर आने के लिये राजी हो गये। लगभग इसी समय विजय सिंह नाहर भी कलकत्ता के अलीपुर जेल से लम्बी कैद के बाद रिहा किये गये थे। उनके बाहर आने से कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में हर्ष की लहर छा गयी। उनके जेल से छूटने की खुशी में एक गीत गाया गया जिसकी एक पंक्ति थी—"म्हारो विजय भँवर जेलों से आया, नौबत बाजे रे।"

जेल से बाहर आने के समय सिंघी जी का स्वास्थ्य बहुत खराब था, इसलिये विधानचन्द्र राय ने खुद पहल कर उनकी चिकित्सा की। उन्होंने ही एक तरह से आदेश देकर उन्हें बंगाल छोड़ने के लिये विवश किया। वे कुछ दिनों के लिए जयपुर और फिर वहां से कश्मीर गये। जून १९४५ में शिमला कान्फ्रेंस के पहले देश भर में रिहाई शुरू हो गई थी और धीरे-धीरे आंदोलन के कार्यकर्त्ताओं पर लगे प्रतिबंध हटाये जाने लगे। इसके बाद सिंघी जी कलकत्ता लौट आये, क्योंकि उन पर लगा प्रतिबंध भी हटा लिया गया था।

कलकत्ता आते ही सिंघी जी एक बार फिर कांग्रेस की गतिविधियों में सक्रिय रूप से हिस्सा लेने लगे। १९५० के आरम्भ में ही बंगाल की कांग्रेस सैद्धांतिक मतभेद के कारण दो गुटों में विभक्त हो चुकी थी। एक गुट था अतुल्य घोष और प्रफुल्ल सेन का, दूसरा गुट था चारुचन्द्र भंडारी का। इन दोनों गुटों के बीच उसी समय (सन् १९५०-५१ में) एक घटना हुई, जिसके कारण कांग्रेसजनों के बीच सिंघी जी काफी चर्चा का विषय बन गये। हुआ यह कि अतुल्य घोष ने उन्हें उत्तर कलकत्ता में कांग्रेस के पदाधिकारियों के चुनाव के लिये अधिकारी नियुक्त किया। चुनाव सकुशल सम्पन्न हो गया। पर चुनाव के बाद चारुचन्द्र भंडारी के गुट ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में इस चुनाव के विरुद्ध याचिका दायर कर दी, जिसके बाद मामला तूल पकड़ता गया। सिंघी जी की ओर से वकील थे अशोक सेन (बाद में देश के विधि मन्त्री) तथा शंकर प्रसाद मित्र (बाद में कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश)। पर उनके लाख प्रयत्नों के बावजूद कलकत्ता उच्च न्यायालय ने उत्तर कलकत्ता कांग्रेस कमेटी का वह चुनाव अवैध घोषित कर दिया। हार कर अतुल्य घोष ने उच्च न्यायालय के फैसले के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर करवाया, जहां उनकी जीत हुई और उत्तर कलकत्ता के कांग्रेसजनों की वह कमिटी ही जायज साबित हुई, जिसके चुनाव अधिकारी भंवरमल सिंघी थे।

इसी दौरान सीताराम सेकसरिया के प्रयास से एक बाल-विधवा सुशीला जैन के साथ सिंघी जी का विवाह तय हो गया। विवाह में ज्ञानवती लाठ ने भी बड़ी भूमिका निभायी। सुशीला जैन एक बड़े रेल अफसर अशर्फीलाल जैन की पुत्री हैं। आरम्भ में सिंघी जी का निश्चय था कि यह विवाह पूरी तरह से गांधीजी की मान्यताओं के अनुरूप होगा तथा आजादी मिलने तक पति-पत्नी ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। गांधी-पद्धति से विवाह की बात से सभी सहमत थे, पर स्वाधीनता मिलने तक ब्रह्मचर्य का व्रत लेने के प्रश्न पर गहरा मतभेद था। उन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हो गई थी, जिसमें शादी के बाद ब्रह्मचर्य रखने के गांधीजी के सिद्धांत की बड़ी हास्यास्पद स्थिति हो चुकी थी। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध गांधीवादी डा० तेंडुलकर ने इन्दुमती नामक लड़की से विवाह कर यह व्रत लिया था कि वे देश के स्वाधीन होने तक ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। पर शादी के कुछ ही महीने बाद जब इन्दुमती तेंडुलकर गर्भवती हो गईं, तो लोगों ने उनकी हँसी उड़ायी। इस पर डा० तेंडुलकर का जवाब था कि 'मुझे अपनी

मारवाड़ी समाजमें विधवा विवाह आयोजन
शिक्षित वर वधूका आज पाणिग्रहण



हमें यह सूचित करते हुए खुशी होती है कि हमारे मित्र श्री भंवरमलजी सिंघी अपना पुनर्लग्न श्री सुशीला जैनके साथ कर रहे हैं, जो बाल विधवा हैं। बहिन सुशीला सुशिक्षिता और भावनाशील लड़की है। वर-वधू दोनों योग्य और सामाजिक तथा राजनीतिकक्षेत्रोंमें समान रूपसे प्रगतिशील विचार रखनेवाले हैं और हमें उम्मीद है कि ये दोनों एक दूसरेका सहयोग पाकर समाज और राष्ट्र की सेवाका कार्य ज्यादा अच्छी तरहसे कर सकेंगे। हम यह भी आशा करते हैं कि इस विवाहसे उन माता-पिताओंको बल मिलेगा जो अपनी विधवा लड़कीका विवाह करना तो चाहते हैं लेकिन पुरानी सामाजिक परम्पराके खिलाफ जाते हुए हिचकिचाते हैं।

जो बहिन-भाई इस तरहके विवाहोंमे सहानुभूति रखते हैं, उन्हें हम सादर आमन्त्रण करते हैं कि उपर्युक्त विवाहमें शरीक होकर वर-वधूको आशीर्वाद दें। विवाह आज मङ्गलवार ता० १६-४-४६ को शामके ६ बजेसे ८ बजेतक श्री भागीरथजी कानोड़ियाके मकानपर (२३, ओल्ड बालीगञ्ज रोड, बालीगञ्ज पोस्ट आफिसके सामने) सम्पन्न होगा।

निवेदक—

भगवान देवी सेकसरिया	भागीरथ कानोड़िया
रमा देवी मुरारका	सीताराम सेकसरिया
सज्जन देवी महनोत	भगवतीप्रसाद खेतान
विजय सिंह नाहर	बसन्तलाल मुरारका
बैजनाथ केड़िया	मूलचन्द्र अग्रवाल
बजरङ्गलाल लाठ	रामकुमार भुवालका
गणेशप्रसाद माहेश्वरी	प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका
मदनलाल सोढानी	मानिकलाल सेठिया
सरदार सिंह महनोत	रामचन्द्र सिंघी

पत्नी की सहज इच्छाओं के सामने झुकना पड़ा।' सम्भवतः इस घटना और सम्बन्धियों के गम्भीर विरोध के कारण सिंघी जी को भी झुकना पड़ा और उन्होंने शादी के बाद ब्रह्मचर्य वाली जिद छोड़ दी। पर उसके अलावा सब कुछ गांधी-पद्धति से ही हुआ। विवाह के अगले ही दिन से अपना पाखाना साफ करने से लेकर हरिजन बस्ती में खाना खाने के निर्देश का सिंघी जी और उनकी नवविवाहिता ने स्वाभाविकता से निर्वाह किया। इस विवाह में भाग लेने के लिये प्रसिद्ध जैन विद्वान पंडित सुखलाल जी विशेष रूप से कलकत्ता आए थे। विवाह में वर और कन्या की प्रतिज्ञायें स्वयं सिंघी जी ने लिखी थीं। भागीरथ कानोड़िया के निवास पर सम्पन्न हुए इस विवाह में पौरोहित्य पहले काका कालेलकर करनेवाले थे, किन्तु उनके न आ पाने के कारण इस विवाह का पौरोहित्य बनारस की सज्जन देवी महनोत ने किया। हिन्दुस्तान में यह पहला विवाह था, जिसमें पौरोहित्य किसी महिला ने किया।

पर असली चुनौती शादी के बाद आरम्भ हुई। जहां कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में इस विवाह का जोरदार समर्थन किया गया, वहीं राजस्थान में एक वर्ग ऐसा भी था, जो इसे स्वीकारने के लिए तैयार नहीं था। इस वर्ग में सिंघी जी की अपनी माँ भी थीं। उन माँ ने, जिन्होंने भँवरमल के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और जिनकी भँवरमल के व्यक्तित्व पर सबसे गहरी छाप है, उन्हें यह चिट्ठी लिखवा भेजी थी कि यदि तुमने एक विधवा से शादी की तो बाकी जिन्दगी मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगी। इसीलिये वह शादी में हिस्सा लेने कलकत्ता नहीं आयीं और न ही सिंघी जी के दोनों छोटे भाइयों को भेजा। बहरहाल, शादी सम्पन्न हुई और उसके तुरंत बाद पति-पत्नी जयपुर चले गये। माँ के विरोध के कारण सिंघी जी ने तय किया कि जयपुर में अपने घर न ठहर कर सिद्धराज ढड्ढा के यहां ठहरेंगे। जब वे जयपुर स्टेशन पहुंचे, उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, क्योंकि वहां करीब डेढ़ सौ व्यक्ति बैंडबाजे और बग्घी के साथ उनके स्वागत के लिये मौजूद थे। स्टेशन पर उनकी प्रतीक्षा करनेवालों में हीरालाल शास्त्री और सिद्धराज जी भी थे। योजना यह थी कि स्टेशन से बैंडबाजे के साथ सभी लोग सिद्धराज जी के घर जायेंगे, जिससे जयपुर में यह प्रचार हो कि समाज में एक विधवा विवाह हुआ है। उधर जब माँ को पता चला कि भँवरमल के स्वागत के लिये स्टेशन पर इतने लोग जमा थे, तो उनकी ममता जाग उठी और तुरंत छोटे भाई पदमचन्द सिंघी से संदेश भिजवाकर सभी को घर बुला लिया। सुशीला जी का पहले पहल मुँह देखने और बात करने के बाद तो उनकी रही सही शंका भी जाती रही। उन्होंने कहा "यह तो और लड़कियों जैसी ही है।"

जयपुर और उसके बाद कश्मीर जाकर जब सिंघी जी पुनः कलकत्ता लौटे, यहां साम्प्रदायिकता का विषाक्त माहौल कायम था। दोनों सम्प्रदाय के धर्मान्ध लोग एक दूसरे का खून कर रहे थे। दरअसल १९४६ में बंगाल में मुसलिम लीग की सरकार (जिसके प्रीमियर सुहरावर्दी थे) के समय जो भयंकर दंगा हुआ था, उसकी प्रतिक्रिया शुरू हो गई थी। लोगों की धारणा थी कि बंगाल में मुसलिम लीग की सरकार थी

विवाह के अवसर पर सिंधी-दम्पति द्वारा ली गयी आधुनिक सन्दर्भ के उपयुक्त प्रतिज्ञाएं —

- हम दोनों ने विवाह-ग्रन्थि में संयुक्त होने का शुभ चित्त से संकल्प किया है।
- हम दोनों ने यह पवित्र संकल्प करने के पहले परस्पर एक दूसरे के गुण-अवगुण तथा सबलता-निबलता को अच्छी तरह समझ लिया है।
- विवाह-ग्रन्थि में बद्ध हो जाने के बाद हम दोनों पर एक दूसरे के जीवन-विकास की दृष्टि से तथा समाज और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य की दृष्टि से भी जो जिम्मेवारियाँ आनेवाली हैं, उनका हमको पूरी तरह भान है। और हम उनका भलीभांति निर्वाह करेंगे।
- हम जानते हैं कि मूलतः विवाह का उद्देश्य सहजीवन अर्थात् सहजीवन विकास है।
- इस गृहस्थाश्रम में हम धर्म भाव से, त्याग भाव से और सेवा भाव से प्रवेश कर रहे हैं।
- हम दोनों एक दूसरे के पवित्र सेवा कार्यों में विरोध और बाधा नहीं डालेंगे वरन् एक दूसरे के विचार और कार्य में मदद देंगे।
- हम प्रतिज्ञा करते हैं कि जीवन भर हम एक दूसरे के प्रति मन, वचन और कर्म से हमेशा वफादार रहेंगे।
- जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष के समान अधिकार हैं, ऐसा हम मानते हैं।
- हम दोनों एक दूसरे के मित्र होकर रहेंगे, दास-दासी भावना कभी नहीं आयेगी।
- धर्म और सम्प्रदाय तथा जाति-पांति भेद और छूआछूत में हमारा विश्वास नहीं है। और हम सब धर्मों के प्रति समान आदर रखने और विचार तथा व्यवहार में समभाव का पोषण करते हैं।
- हम दोनों एक दूसरे के सुख-दुख में, सम्पत्ति-विपत्ति में, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में साथी और सहायक रहने का संकल्प करते हैं।

संतोष

इसीलिए सन् ४६ के दंगों में बहुत सारे हिन्दू मारे गये थे। अतः बंगाल में जब प्रफुल्ल घोष के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी, तो हिन्दू बदला लेने की मनःस्थिति में आ गए। बदले की यह कार्रवाई ३ जून १९४७ के बाद अपने चरम पर पहुंच गयी, जब ब्रिटिश सरकार ने भारत के विभाजन और स्वतन्त्रता की घोषणा की। कलकत्ता में दंगा बड़ी तेजी से भड़का। दंगे के कारण मुसलमान बहुत भयाक्रान्त थे। उस समय मुसलमानों की रक्षा तथा उनमें विश्वास जगाने के लिए सीताराम सेकसरिया के मार्ग-दर्शन में सिंघी जी ने "बड़ाबाजार अमन सभा" में मुख्य भूमिका निभायी, जिसने थोड़े समय में ही हिन्दू-मुसलिम एकता के लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण काम किया। जकरिया स्ट्रीट की बड़ी मसजिद के इमाम, सीताराम जी, सिंघी जी तथा उनकी नवविवाहिता पत्नी सुशीला जी अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ घने बसे मुसलिम आबादीवाले मुहल्लों में जाते और घंटों मुसलमानों के साथ रहते, उनमें व्याप्त आतंक और असुरक्षा की भावना को दूर करने का प्रयास करते। खास जगहों पर मुसलमानों की सुरक्षा व्यवस्था के लिये अधिकारियों पर दबाव डालते। दंगे से प्रभावित बहुतेरे मुसलिम परिवारों की सहायता पहुंचाने का काम भी उन्होंने "बड़ाबाजार अमन सभा" के माध्यम से किया।

नये वैवाहिक जीवन (१ मई १९४७ को उन्हें एक पुत्री पैदा हुई सुषमा) और अपेक्षाकृत बेहतर जिन्दगी जीने के बावजूद सिंघी जी के लिये यह समय एक तकलीफदेह अनुभव साबित हो रहा था। जेल में उन्होंने जो बीमारियां मोल ली थीं, उनसे वे पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाए थे। इन बीमारियों ने उनकी गतिविधि पूरी तरह प्रतिबंधित कर दी थी, पर इसके बावजूद वे कांग्रेस के मंच से बराबर कुछ-न-कुछ करते रहे थे। १५ अगस्त १९४७ को जब देश में स्वतन्त्रता दिवस मनाया जा रहा था, सिंघी जी अपेंडिक्स का आपरेशन करा कर रोग शैय्या पर पड़े थे। रोग शैय्या से ही उन्होंने अपने हिस्से का जश्न मनाया। उन्होंने लिखा है कि "आजादी की खबर सुन कर इतनी खुशी हुई कि लगा अब बिना दवा खाए ही ठीक हो जाऊंगा। मेरे जीवन की यह सबसे बड़ी घटना थी। शरीर के रोम-रोम में कहीं से अज्ञात ऊर्जा आ कर बस गई थी। हमें लगा था कि जिन्दगी की सबसे बड़ी लड़ाई हमने जीत ली है।"

पर भँवरमल सिंघी के लिए आजादी की खुशी एक क्षणिक अनुभव साबित हुई। देखते ही देखते उनकी उम्मीदें निराशा के अँधेरे में खोती गयीं। आजादी मिले दिन नहीं गुजरे थे, पर कांग्रेस के नेताओं का चरित्र पूरी तरह बदल गया था। जो आजादी के लिये जान देने के लिए तैयार थे, वह कुर्सी के लिए जान देने को तैयार थे। देश का छोटा बड़ा हर नेता आजादी से भरपूर फायदा उठाना चाहता था। सिंघी जी ने इस बारे में लिखा है कि "जिस देश को लोगों ने आजाद किया था, वह देश गौण पड़ गया था। कांग्रेस के नेता भ्रष्टाचार पर उतर आए थे। आजादी के बाद राजाओं और अँगरेजों से तो देश को छुटकारा मिल गया था, पर उनकी जगह कांग्रेस के नेताओं ने ले ली थी। कांग्रेस के नेता देश के नये सामन्त की भूमिका निभाने के लिए छटपटाने लगे थे।"

इस हालत को देखकर सिंघी जी ने यह फैसला किया कि वे राजनीति को ठोकर मार देंगे और समाज सुधार के लिए लड़ाई तेज करेंगे। सिंघी जी के लिए सबसे

अचरज की बात यह थी कि आजादी के पहले गांधी जी के नेतृत्व में समाज सुधार के लिये जो चर्चा होती थी, जो काम होता था, वह आजादी के बाद अचानक बन्द हो गया था। इन्हीं परिस्थितियों ने उन्हें समाजोत्थान का व्रत लेने के लिए मजबूर किया। इसी कारण राजस्थान में हीरालाल शास्त्री ने मंत्रिमण्डल गठित करने के बाद जब उन्हें उच्च सरकारी पद पर कार्य करने के लिए आमन्त्रित किया, तो उन्होंने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। उस समय समाज सुधार की हालत तो यह थी कि जब नेहरू ने संसद में हिन्दू कोड बिल पास कराना चाहा, तो खुद उन्हें एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ा था और उन्हें यह धमकी देनी पड़ी कि यदि यह बिल पास नहीं होता है, तो वे प्रधान मन्त्री पद से त्यागपत्र दे देंगे।

आजादी मिले सिर्फ तीन महीने हुए थे कि गांधी जी कलकत्ता आये। वे बंगाल में भड़की साम्प्रदायिकता की आग बुझाने के लिए आये थे। और सोदपुर में सतीश दासगुप्त के आश्रम में ठहरे थे। सिंघी जी उस समय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के मन्त्री थे। गांधी जी ने उन्हें तथा सीताराम जी और भागीरथ कानोड़िया को राष्ट्रभाषा के प्रचार के सिलसिले में बातचीत करने के लिए बुलवाया। नियत समय पर तीनों सोदपुर आश्रम पहुंच गये। वहां उन्होंने देखा कि प्रफुल्लचन्द्र घोष, अन्नदा प्रसाद चौधरी तथा बंगाल के आधा दर्जन अन्य नेता गांधी जी की मौजूदगी में आपस में वाक्-युद्ध कर रहे हैं। सम्भवतः वे इसलिए झगड़ रहे थे कि पश्चिम बंगाल के प्रथम मन्त्रिमंडल में किसे मन्त्री बनाया जाये, किसे नहीं। जैसे ही कांग्रेसी नेता बाहर गये, वैसे ही तीनों व्यक्ति गांधी जी से मिलने कमरे में पहुंच गये। गांधी जी उस समय बेहद क्लांत दिख रहे थे। सिंघी जी ने उन्हें यह बड़बड़ाते हुए सुना कि "आजादी क्या आयी बला आ गयी।" गांधी जी के मुँह से यह बात सुन कर तीनों हतप्रभ थे। आजादी के इस सबसे बड़े योद्धा ने सिर्फ तीन महीने में ही आजादी के साथ आयी विकृतियों को खूब पहचान लिया था और उसके खतरों से लड़ने में वह खुद को असमर्थ पा रहे थे।

उस दिन बापू से उक्त तीनों व्यक्तियों की जो बातचीत हुई, उससे बापू के व्यक्तित्व की व्यापकता का पता चलता है। राष्ट्रभाषा के प्रचार के सिलसिले में अपनी बात रखते हुए बापू ने सीताराम जी, भागीरथ कानोड़िया तथा सिंघी जी को सम्बोधित किया—"आप लोग मुझे सिर्फ यह बता रहे हैं कि उर्दू सीखने के लिए कोई तैयार नहीं है। लोगों को उर्दू सीखने के लिए तैयार कीजिए। बिना उर्दू के राष्ट्रभाषा का काम अधूरा है। और उर्दू के बिना राष्ट्रभाषा के प्रचार के काम में मेरा आशीर्वाद भी अधूरा ही रहेगा।" बापू किसी भी कीमत पर उर्दू को राष्ट्रभाषा के साथ-साथ प्रचारित करवाना चाहते थे। इसके लिए उन्हें राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन जैसी शख्सीयत का विरोध झेलना पड़ा था तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा था। उर्दू के सवाल पर बापू की यह दृढ़ता देख सिंघी जी ने महसूस किया कि वे शायद एक बड़ी लड़ाई का

माहौल तैयार कर रहे थे। पर वे ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रह सके, जिससे उर्दू के प्रचार के उनके आन्दोलन की असमय मौत हो गयी। गांधी जी से उस अन्तिम भेंट का स्मरण कर सिंघी जी आज भी रोमांचित महसूस करते हैं। उस भेंट में बापू एक दुखी और थके हुए आदमी जैसा बरताव कर रहे थे। उनका आत्मविश्वास कहीं खो गया लगता था।

आज की तेज-रफ्तार जिन्दगी में नैतिकता के लिए ज्यादा गुंजाइश नहीं है, इसलिए नैतिकता की बुनियाद ने सिंघी जी को बहुत से कामों के लिए अयोग्य बना दिया। इससे उनकी छवि एक जिद्दी और अव्यावहारिक व्यक्ति की भी बनी। इसी सन्दर्भ में एक घटना का जिक्र किया जा सकता है। १९५० में सीताराम सेकसरिया अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के "डेलीगेट" बनने के लिए चुनाव में खड़े हुए। सिंघी जी ने उनसे पूछा कि वे कलकत्ता से खड़े होंगे या डायमंड हारबर से (उन दिनों की कांग्रेस आज की कांग्रेस से भिन्न थी। तब ए.आइ.सी.सी. के विभिन्न पदों और सदस्यता के लिए बाकायदा चुनाव होता था, जबकि आज एक व्यक्ति के इशारे पर उसके प्रति अंधनिष्ठा रखने वाले लोगों को पार्टी के सभी बड़े पदों पर चुना जाता है।) सीतारामजी ने कहा कि वे डायमंड हारबर से खड़े होंगे। उस हालत में सिंघी जी ने कलकत्ता से ए.आई.सी.सी. के लिए राधाकृष्ण नेवटिया का नाम प्रस्तावित कर दिया। पर उसके बाद स्थितियां कुछ ऐसी बनीं कि सीताराम जी को कलकत्ता से ही चुनाव लड़ना पड़ा और इस तरह उनका सीधा मुकाबला राधाकृष्ण नेवटिया से हुआ। चुनाव के पूर्व उन्हें जयपुर जाना पड़ा था, पर मतदान के दिन सिंघी जी हवाई जहाज़ से कलकत्ता पहुंचे और उन्होंने राधाकृष्ण नेवटिया को वोट दिया। संयोग से एक वोट से ही राधाकृष्ण नेवटिया विजयी हो गये और सीतारामजी पराजित हो गये, जो कि उस समय बहुत बड़ी बात थी। सिंघी जी के वोट न देने से हुई पराजय का सीताराम जी के मन पर गहरा असर पड़ा। इस बारे में सिंघी जी का कहना था कि "आपसे पूछ कर ही मैंने राधाकृष्ण नेवटिया का नाम प्रस्तावित किया था। नाम प्रस्तावित कर उन्हें वोट न देना तो विश्वासघात होता।" सिंघी जी के वोट से सीताराम जी की पराजय हुई, पर इसके बावजूद सिंघी जी के प्रति उनकी भावना बदली नहीं। इस घटना के बावजूद सीताराम जी ने हमेशा सिंघी जी को आगे बढ़ने में सहायता दी। उन्होने जो-जो संस्थाएं खड़ी कीं, उनके संचालन के लिए सिंघी जी को महत्वपूर्ण पदों पर रखा।

उन दिनों सत्ता की उस अन्धी दौड़ से अलग भी कुछ नेता थे, जो समाज और देश के लिए ईमानदारी से कुछ करना चाहते थे। कृपलानी, जयप्रकाश नारायण और लोहिया सरीखे इन नेताओं के प्रति सिंघी जी का झुकाव बढ़ा था। जब १९५१ में कांग्रेस में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि कोई भी कांग्रेस नेता दूसरे कांग्रेस नेता की सार्वजनिक रूप से आलोचना नहीं कर सकेगा, तो सिंघी जी ने इसके विरोध में कांग्रेस से इस्तीफ़ा दे दिया। और अतुल्य घोष के लाख प्रयास के बावजूद उन्होंने अपना इस्तीफा वापस नहीं लिया। उनका कहना था कि कांग्रेसजनों के भ्रष्टाचार पर रोक

लगाने के बजाय, रोक उन पर लगाने का षड्यंत्र किया जा रहा है, जो इस भ्रष्टाचार से लड़ना चाहते हैं। इस अवसर पर २१ अप्रैल १९५१ को अखबारों में प्रकाशित उनके वक्तव्य का अंश इस प्रकार है—"हाल ही में कांग्रेस की वर्किंग कमेटी में दलगत अनुशासन सम्बन्धी जो प्रस्ताव गृहीत किया गया है, उसके बाद मेरे लिए कांग्रेस का सदस्य रह सकना सम्भव नहीं था। मैं समझता हूँ कि इस प्रस्ताव से कांग्रेस की आलोचना घटने की एवज में बढ़ेगी ही। देश के सारे स्वतंत्रताप्रेमी लोगों ने आज तक कांग्रेस को अपनी प्रिय संस्था माना, इसलिये उसकी वर्तमान बुराइयों की आलोचना करने का भी उनका अधिकार है, कांग्रेसजनों में सत्ता की भूख और सत्ता के सहारे निजी स्वार्थपूर्ति की जो चेष्टाएँ हो रही हैं, उनसे और उसमें अवसरवादी लोगों के प्रवेश के कारण कांग्रेस की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचा है। अगर कांग्रेस का सदस्य इन सब बातों की आलोचना नहीं कर सकता, तो उसे कांग्रेस के संगठन में फैली बुराइयों का दर्शकमात्र होकर रहना होगा। यह स्थिति किसी भी विचारशील व्यक्ति के लिए असह्य ही होगी। इन्हीं कारणों से मैंने कांग्रेस की सदस्यता से अपने को पृथक किया है।"

आजादी मिलने के बाद सिंघी जी का लेखन एक बार फिर सक्रिय हो गया था। उन्हीं दिनों "नया समाज" में उनका ऐतिहासिक व्यंग्य लेख प्रकाशित हुआ "गांधी की कब्र पर खादी के फूल"। यह लेख भग्नहृदय के नाम से छपा। आजादी के तुरंत बाद प्रकाशित इस लेख में आजाद हिन्दुस्तान और उसके नेताओं का जो मखौल उड़ाया गया था, उससे बड़ी हलचल मची। कई पत्रिकाओं ने यह लेख पुनः प्रकाशित किया। वासुदेव शरण अग्रवाल तथा बनारसीदास चतुर्वेदी ने "नया समाज" के सम्पादक मोहन सिंह सेंगर को पत्र लिखकर उनसे वास्तविक लेखक का नाम जानना चाहा, जिसे बताने से सेंगर जी ने इनकार कर दिया। प्रसंगवश यह बताना अनुचित नहीं होगा कि "नया समाज" मासिक पत्र का प्रकाशन सिंघी जी ने ही भागीरथ कानोड़िया और नन्दलाल कानोड़िया के सहयोग से आरम्भ किया था। यह पत्र १० वर्षों तक प्रकाशित होता रहा और इसने साहित्य तथा समाज सुधार के क्षेत्र में एक कारगर भूमिका निभायी। आजादी मिलने के बाद भागीरथ कानोड़िया के विशेष आग्रह पर सिंघी जी ने उनके व्यावसायिक प्रतिष्ठान में मुख्य अधिकारी की नौकरी स्वीकार की तथा कई उच्च पदों पर कार्य किया।

१९४९ में ही सिंघी जी ने कलकत्ता में तीन दिवसीय विराट सामाजिक क्रांति सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन का उद्देश्य था हिन्दू कोड बिल का समर्थन करना, क्योंकि सिंघी जी का मानना था कि यह बिल पास किये बिना हमारे समाज का ढांचा बदलेगा नहीं। विशेष कर दासता के बन्धन में जकड़ी महिलाओं को बन्धनमुक्त नहीं किया जा सकेगा। इस सम्मेलन के सभापति हो कर आये राजस्थान के नवनियुक्त उद्योगमंत्री सिद्धराज ढड्ढा तथा इसका उद्घाटन किया अरुणा आसफ अली ने। कलकत्ता के मुहम्मद अली पार्क में आयोजित इस सम्मेलन को अभूतपूर्व सफलता मिली तथा समाज में स्त्री की शोषणमुक्त भूमिका के लिए हर पहलू पर खुल कर विचार किया गया। इस सम्मेलन में बंगाल की सामाजिक कार्यकर्त्री श्रीमती अशोका गुप्ता

तथा डॉक्टर फूलरेणु गुहा ने भी भाग लिया। इसी सम्मेलन में सिंघी जी के प्रोत्साहन से सुशीला भंडारी भी मंच पर आयीं और हिन्दू कोड बिल पर विचार करनेवाली काल्पनिक संसद की एक मंत्री की हैसियत से उन्होंने जोरदार भाषण दिया। इस भाषण से प्रभावित हो कर बसन्तलाल मुरारका ने उनका नाम रख दिया था "रूसी क्रान्ति"। उसके बाद बहुत दिनों तक वे इसी नाम से संबोधित की जाती रहीं।

इस सम्मेलन की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, प्रतिनिधियों के लिए शाम को मिनर्वा थियेटर हाल में प्रस्तुत विष्णु प्रभाकर के दो एकांकी नाटकों—"नया समाज" और "नारी" का मंचन। नाटक करने के लिए उस समय कलकत्ता के हिन्दी भाषी समाज में एक भी महिला पात्र का मिल पाना असंभव था। इसलिए सिंघी जी ने अपनी पत्नी सुशीला जी को अभिनय के लिए प्रेरित किया और खुद भी अभिनय के लिए तैयार हुए। इसके बाद क्या था। गोविंद प्रसाद कानोड़िया, नंदलाल सुरेका, श्रीचन्द मेहता, श्यामानंद जालान भी अभिनय के लिए तैयार हो गये तथा शकुन्तला चिंतामणि और विजया मेहता जैसी गृहणियां भी अभिनय के लिए मंच पर उतरीं। नाटक का निर्देशन किया पारसी रंगमंच के ख्यातनामा निर्देशक ललित कुमार सिंह 'नटवर' ने। नाटक को जबरदस्त सफलता मिली। सैकड़ों को इसलिए निराश होना पड़ा क्योंकि उसका टिकट खत्म हो गया था। बाहरी लोगों को कौतूहल इस बात से था कि जो अभिनय भाड़े की लड़कियां करती हैं, उसे सभ्य घरों की महिलाएं किस तरह कर सकती हैं। दरअसल, कलकत्ता में आधुनिक हिन्दी नाटक के मंचन की शुरुआत इसी बिंदु से होती है। इन प्रस्तुतियों को समाचार-पत्रों में खूब प्रचार मिला।

इन नाट्य प्रस्तुतियों की अपार सफलता से सिंघी जी को लगा कि समाज सुधार में नाटकों को एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसे समझ कर उन्होंने कलकत्ता में हिन्दी नाट्य प्रस्तुतियों के लिए एक अभियान चला दिया। उन्होंने तरुण संघ का एक नाट्य विभाग खोला और बाद में बंगला के प्रसिद्ध नाटककार तरुण राय के साथ मिल कर "थियेटर सेंटर" की स्थापना की जो आज बंगाल की एक प्रमुख नाट्य संस्था है और जिसका अपना प्रेक्षागृह है तथा जो नियमित रूप से वर्कशाप आयोजित कर नाट्य प्रशिक्षण के काम में लगी है। "थियेटर सेंटर" की स्थापना में कमला देवी चट्टोपाध्याय का भी विशेष योगदान था। इसी "थियेटर सेंटर" के तत्वावधान में कलकत्ता में पहली बार नाटकों का बहुभाषी समारोह आयोजित किया गया, जिसमें कलकत्ता की अनेक संस्थाओं ने हिन्दी, बंगला, तेलुगु, गुजराती, मराठी और पंजाबी के नाटकों का मंचन किया।

सिंघी जी ने तरुण राय से बंगला में एक नाटक लिखवाया "समस्या"। उन्होंने खुद उसका हिन्दी में अनुवाद किया और उसका मंचन न्यू एम्पायर थियेटर में तरुण संघ के तत्वावधान में किया गया। इस नाटक में भी उन्होंने तथा उनकी पत्नी सुशीला जी ने मुख्य भूमिकाएं कीं। इस नाटक में प्रतिभा अग्रवाल ने भी एक प्रमुख भूमिका निभायी और अपने अभिनय की छाप छोड़ी। प्रतिभा अग्रवाल और श्यामानंद

जालान को नाटक के लिए प्रोत्साहित करने तथा मंच पर लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले सिंघी जी ही हैं। ये दोनों ही व्यक्ति अपनी प्रतिभा के कारण हिन्दी रंगमंच के मानचित्र पर आज अपनी जगह बना चुके हैं।

जब नाट्य गतिविधि बहुत बढ़ने लगी, तो एक अलग नाट्य संस्था की जरूरत महसूस की गई। इसके लिए एक बैठक सिंघी जी के घर पर ही हुई और उनकी पत्नी सुशीला जी के नामकरण करने पर "अनामिका" अस्तित्व में आयी। "अनामिका" आज देश की एक प्रमुख नाट्य संस्था है। "अनामिका" से सिंघी जी किसी न किसी रूप में संबद्ध रहे और उसकी प्रस्तुतियों में उन्होंने भाग लिया। केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार पानेवाली "अनामिका" की प्रस्तुति "नये हाथ" में उन्होंने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। १९८० में "अनामिका" के रजत जयन्ती वर्ष पर जब "नये हाथ" का पुन: मंचन किया गया, तो ६६ वर्ष की अवस्था में सिंघी जी एक बार फिर मंच पर उतरे और लोगो को अचंभे में डाल दिया।

सिंघी जी में उत्साह की कभी कमी नहीं रही और न ही कभी वे जोखिम लेने से डरे। इसका एक जबरदस्त उदाहरण उन्होंने मार्च १९५० में दिया, जब उन पर पूर्व पाकिस्तान (जो कि आज बांगलादेश बन चुका है) में फँसे हजारों हिन्दुओं को पश्चिम बंगाल लाने की चुनौती सौंपी गयी। पूर्वी पाकिस्तान में फँसे हिन्दुओं को पश्चिम बंगाल में लाने के लिए जवाहरलाल नेहरू और पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री लियाकत अली खान के बीच एक समझौता हुआ था। समझौते की शर्त यह थी कि भारत सरकार की ओर से कुछ सार्वजनिक कार्यकर्ता जहाज से पूर्वी पाकिस्तान जायेंगे और शरणार्थी हिन्दुओं को लेकर कलकत्ता वापस आ जायेंगे। जवाहरलाल नेहरू ने यह काम पश्चिम बंगाल के मुख्य मन्त्री विधानचन्द्र राय को सौंपा। विधानचन्द्र राय ने बहुत सोचविचार के बाद सिंघी जी को बुलाया और उन्हें इस अभियान का इन्चार्ज बना दिया। यह काम बेहद खतरनाक था, पर सिंघी जी ने बिना किसी दुविधा के इसे स्वीकार कर लिया। देखते ही देखते सरकार की ओर से पूरा इन्तजाम किया गया, तमाम अधिकार पत्र दिये गये। हिन्दुओं को लाने के लिए १७ विशाल जहाज भँवरमल सिंघी को सुपुर्द किये गये। सिंघी जी ने अपने दो सहायकों तरुण राय और गोविंद प्रसाद कानोड़िया को इस अभियान में अपने साथ लिया। २८ मार्च १९५० को पश्चिम बंगाल के तत्कालीन चीफ सेक्रेटरी एस० एन० राय ने १७ जहाजों के बेड़े के साथ भँवरमल सिंघी को इस अभियान के लिए विदा किया। पर जहाजी बेड़ा जैसे जैसे आगे बढ़ता गया, लोगों का आतंक गहरा होता गया, क्योंकि पानी में उन्हें हजारों डूबती-उतरातीं लाशें दिख रही थी। ये लाशें साम्प्रदायिकता के जुनून की परिणति थीं। दोनों सम्प्रदाय के लोगों ने खुन कर एक दूसरे के खून से होली खेली थी।

जब यह जहाजी बेड़ा खुलना के करीब पहुंचा तो पूर्वी पाकिस्तान की पुलिस ने जहाजों को आगे बढ़ने से रोक दिया और जहाजों की घेरेबन्दी कर दी। तब सिंघी जी पाकिस्तानी सेना के अधिकारियों से मिले और उन्हें अभियान का उद्देश्य तथा

तत्कालीन

अपना अधिकार-पत्र दिखाया। पर इसका उन पर कोई असर नहीं हुआ। हार कर सिंघी जी ने खुलना से ही विधानचन्द्र राय को फोन किया और सारी स्थिति बतायी। यह सुन कर विधान बाबू ने तुरंत नेहरू जी से बात की। नेहरू जी ने सब कुछ सुनकर लियाकत अली से बात कर उन्हें समझौते की याद दिलायी और जहाजी बेड़े को अभियान पर बढ़ने देने की बात कही। नेहरू का रुख भांप कर लियाकत अली खान ने तुरंत खुलना सन्देश भिजवाया, जिसके बाद जहाजों को आगे बढ़ने की इजाजत दे दी गयी, पर उसके पहले पाकिस्तानी सेना ने जहाजों का चप्पा-चप्पा छान मारा और सब्जी काटने का चाकू तक हथियार समझ कर अपने साथ ले गयी। आगे बढ़ने पर जहाजी बेड़े को तीन टुकड़ियों में बांट दिया गया। आठ जहाजों की सबसे बड़ी टुकड़ी लेकर सिंघी जी नारायणगंज (ढाका) पहुंचे तथा ढाका तथा आसपास के इलाके के शरणार्थी शिविरों में घोर दुर्दशा में जी रहे हिन्दुओं को जहाज पर बैठाया। इसी तरह गोविन्द प्रसाद कानोड़िया जहाजों की अपनी टुकड़ी ले कर चांदपुर पहुंचे तथा तरुण राय अपने जहाजों के साथ बारिसाल। सभी जहाज उक्त तीनों तटों से दस-दस दिनों बाद जब वापस लौटे, उनकी इंच-इंच जगह पर लोग ठस-ठस कर भरे थे। इस बारे में सिंघी जी ने लिखा है कि "वहां हिन्दुओं की हालत इतनी खराब थी कि उसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। हमने इसकी उम्मीद नहीं की थी कि इतनी बड़ी संख्या में शरणार्थी हिन्दू पश्चिम बंगाल जाना चाहेंगे। हर जहाज पर लगभग १२ सौ शरणार्थी सवार थे, इस तरह कुल २० हजार हिन्दू १७ जहाजों पर लद चुके थे। हमारे सामने समस्या यह थी कि नेहरू-लियाकत अली समझौते के अनुसार न तो पूर्वी पाकिस्तान से हम ईंधन ले सकते थे और न ही रसद। दरअसल, किसी को भी जहाज से उतरने तक की छूट नहीं थी। ऐसी स्थिति में २० हजार शरणार्थियों का दायित्व आ गया था। सभी भूख से तड़फड़ा रहे थे, बहुत बीमार थे। जहाज पर जो रसद थी, वह देखते देखते उनमें बंट कर खत्म हो गयी। उसके बाद शुरू हुआ मौतों का सिलसिला। पूर्वी पाकिस्तान से कलकत्ता पहुंचने तक की यात्रा में उन १७ जहाजों पर करीब डेढ़ सौ शरणार्थी एक-के-बाद-एक मौत के सामने घुटने टेकते गये। उन्हें सिवाय नदी में फेंकते जाने के हमारे पास और कोई चारा नहीं था। जब हम कलकत्ता पहुंचे हजारों आत्मीय जन हमारे स्वागत के लिये खड़े थे, उनमें से एक विधानचन्द्र राय भी थे, जिन्होंने बढ़ कर हमें गले लगा लिया। पर जिस बात से हमारा सीना गर्व से फूल रहा था वह थी यह संतुष्टि कि २० हजार निराश्रितों को नई जिन्दगी शुरू करने में हमने मदद पहुंचायी। वे बेहाल थे, पर उनकी आंखें आभार से झुकी थीं। हमारे इस कार्य का सबसे बड़ा प्रतिफल और क्या मिल सकता था।"

हमारे समाज में बहुत कम ऐसे कार्यकर्त्ता हैं जिन्होंने कभी अपना कोई आभामंडल विकसित नहीं किया। सिंघी जी उनमें से एक हैं। वे बराबर यह कहते रहे हैं कि "आदमी की कीमत उसकी बात से नहीं, उसके काम से होती है।" और इसमें शक नहीं कि उन्होंने अपना जो सामाजिक महत्व बनाया वह निरंतर काम करके ही बनाया।

यह उनकी विशेषता थी कि वे कई काम एक साथ और समान कुशलता के साथ कर सकते थे। उनकी इस अद्भुत क्षमता के कारण ही उनकी यह छवि बनी कि वे जो भी काम अपने हाथ में लेंगे, उसे सफलता से पूरा करेंगे।

आजादी मिलने के बाद उन्होंने समाज सुधार का काम जोरशोर से चलाया ही, उसी के साथ अपने जेल के दिनों के एक निश्चय पर भी काम शुरू किया। यह निश्चय था परिवार नियोजन का प्रचार-प्रसार। यदि काम को कसौटी माना जाये, तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सिंघी जी ने देश में परिवार नियोजन के प्रचार के लिये जितना कुछ किया उतना करने वाले गिनती के दो चार लोग ही और हुए हैं। उनके इस कार्य की शुरुआत १९४८ में उत्तर कलकत्ता स्थित मातृसेवा सदन अस्पताल के भवन से होती है। कुछ दिनों पूर्व ही अस्पताल वहां से कन्हैयालाल लोहिया मातृसेवा सदन के रूप में नये भवन में स्थानांतरित हो गया था। जगन्नाथ बेरीवाल के साथ सिंघी जी ने सीताराम सेकसरिया को तैयार कर उस खाली भवन में परिवार नियोजन का काम शुरू करवा दिया। इस बारे में सिंघी जी ने लिखा है कि "परिवार नियोजन की वह क्लीनिक चलाने में सबसे बड़ी ताकत जगन्नाथ बेरीवाल की ही थी। उन्होंने न केवल आर्थिक सहयोग दिया, वरन् आत्मबल बढ़ाने में भूमिका निभायी। हमने मिलकर कुछ और मित्रों से भी सहायता जुटायी और डाक्टरनी तथा नर्स आदि के वेतन की व्यवस्था की गई। मकान किराया तो मातृसेवा सदन की समिति ही देती थी। सात महीनों में खर्च तो १४ सौ रुपये हो गये, पर उस लम्बी अवधि में केवल दो ही स्त्रियां आईं, जिन्होंने परिवार नियोजन सम्बन्धी सलाह ली या उपचार कराया। बाद में मुझे पता लगा कि स्त्रियां आना चाहती तो हैं, पर वे इसलिए वहां नहीं आतीं कि लोग उन पर उंगली उठायेंगे। हमने इस काम को तब मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी में शामिल कर दिया। उसके बाद परिवार नियोजन के काम में तेजी आई। उसी समय मैंने डिकेंस के ग्रन्थ के आधार पर हिन्दी और अंग्रेजी में परिवार नियोजन की विधियों के बारे में पुस्तिकायें निकाली जिनमें स्त्री, पुरुष की जननेंद्रियों के चित्र भी थे। इसको देख कर मेरे कई मित्रों और अन्य लोगों ने मुझ पर आरोप लगाया कि मैं जनता को कोकशास्त्र का पाठ पढ़ा रहा हूं तथा समाज को गलत रास्ते पर ले जा रहा हूं। इसके जवाब में मैंने इतना ही कहा कि अगर यह गलत रास्ते पर ले जाना है, तो सबको अवश्य ही इस गलत रास्ते पर चलना चाहिए।"

सिंघी जी ने ऐसे समय परिवार नियोजन पर दर्जनों लेख छपवाये, जब उसकी चर्चा ही वर्जित थी। उन्होंने नियमित रूप से मिलों, फैक्टरियों में जा कर प्रशिक्षण की व्यवस्था करवायी और लोगों को परिवार नियोजन के लिए प्रेरित किया। १९५२ में बम्बई में जब परिवार नियोजन संघ का विश्व सम्मेलन हुआ, तो उसमें सिंघी जी सपत्नीक गये। इस अधिवेशन में "इंटरनेशनल प्लांड पेरेंटहुड फेडरेशन" नामक संस्था का गठन किया गया। अधिवेशन से लौटने के बाद वे परिवार नियोजन के काम में और भी सक्रिय हो गये। सिंघी जी ने परिवार नियोजन पर एक पुस्तक लिखी "राष्ट्र-योजना और परिवार योजना"। यह बेहद लोकप्रिय हुई। इसकी बढ़ी हुई मांग को पूरा करने के लिए इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। उन्होंने परिवार

नियोजन के बारे में लोगों को शिक्षित करने के लिए दो वर्ष तक नियमित रूप से एक पत्रिका का प्रकाशन और सम्पादन किया। १९५७ में सिंघी जी ने कलकत्ता में अखिल भारतवर्षीय परिवार नियोजन संघ का तीसरा अधिवेशन आयोजित किया, जिसके लिए परिवार नियोजन की विश्व नेत्रियाँ श्रीमती धनवंती राव और श्रीमती आवाबाई वी० वाडिया भी कलकत्ता आयीं। इस सम्मेलन में न केवल अनेक भारतीयों वरन् बहुत से विदेशी प्रतिनिधियों ने भी हिस्सा लिया। सिंघी जी १५ वर्षों तक परिवार नियोजन संघ के उपाध्यक्ष रहे तथा कई वर्षों तक "इंटरनेशनल प्लांड पेरेंटहुड फेडरेशन" की गवर्निंग बाडी में भारतीय प्रतिनिधि भी रहे। इसी सिलसिले में उन्हें जापान, थाईलैंड, इंग्लैंड, फ्रांस, डेनमार्क, स्वीडेन, अमरीका, नाइजीरिया, टयूनीशिया, चिली, सूरीनाम आदि देशों की अनेक बार यात्राएं करनी पड़ीं। वे १९६७ से परिवार नियोजन संघ की कलकत्ता शाखा के चेयरमैन थे। उसके बाद कलकत्ता प्रोजेक्ट आफ फैमिली प्लानिंग बना, जिसमें वे आरंभ से ही चेयरमैन हैं। इन दिनों वे परिवार नियोजन पर अपनी एक नयी पुस्तक लिख रहे हैं, जिसमें अन्य बातों के अलावा उन बुनियादी मुद्दों पर भी प्रकाश डाला गया है, जिनकी वजह से हिन्दुस्तान में परिवार नियोजन दुर्बल हो गया। सिंघी जी उन लोगों में से नहीं हैं, जो दूसरों को सलाह देते हैं। उन्होंने खुद १९५५ में अपनी नसबन्दी करा ली थी।

परिवार नियोजन की तरह शिक्षा के प्रसार में भी सिंघी जी की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है। कलकत्ता में उन्होंने दौलतराम नोपानी विद्यालय, बालिका शिक्षा सदन, टाँटिया हाईस्कूल, श्री शिक्षायतन तथा पारिवारिकी की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इन सभी विद्यालयों में आज भी शिक्षा का ऊँचा स्तर है। श्री शिक्षायतन की स्थापना में सीताराम सेकसरिया की बड़ी भूमिका थी। सिंघी जी स्थापना काल से श्री शिक्षायतन कालेज के सचिव हैं।' 'पारिवारिकी" की स्थापना में मुख्य भूमिका उनकी पत्नी सुशीला जी ने निभायी। "पारिवारिकी" झुग्गियों में रहनेवाले स्कूली बच्चों का कलकत्ता का सबसे बड़ा स्कूल है, जिसमें ७०० बच्चों को न केवल निःशुल्क शिक्षा दी जाती है, वरन् दोपहर का भोजन, पाठ्य-पुस्तकें, ड्रेस भी दी जाती है। वास्तव में "पारिवारिकी" एक ऐसी प्रयोगशाला है, जहाँ गांधी जी का सपना सच हो रहा है।

राजस्थान के मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया के आग्रह पर सिंघी जी ने जयपुर में कानोड़िया महिला महाविद्यालय की स्थापना में निर्णायक भूमिका निभायी। यह महाविद्यालय आज देश के सबसे शानदार महाविद्यालयों में से एक है। सिंघी जी स्थापना काल से ही इसके सचिव हैं। राजस्थान में ही मुकुन्दगढ़ में शारदा सदन प्राइमरी स्कूल, हायर सेकेंडरी स्कूल तथा कॉलेज के सफलतापूर्वक संचालन और विकास में भी उनकी भूमिका रही है। वे इन संस्थाओं की संचालन समिति के अध्यक्ष हैं। इसी तरह रांची में विकास विद्यालय नामक आवासीय स्कूल की स्थापना में भी सिंघी जी का योगदान था। इस विद्यालय की बिहार के शीर्ष स्कूलों में गिनती की जाती है। वे इस विद्यालय की संचालन समिति के सदस्य तथा ट्रस्टी हैं।

इतनी शिक्षण संस्थाओं से वे सिर्फ कुरसी की शोभा बढ़ाने के लिए नहीं जुड़े रहे। वे बराबर इन संस्थाओं में शिक्षा का स्तर ऊपर उठाने के लिए कड़ाई से भूमिका निभाते रहे। यही कारण है कि इन सभी शिक्षण संस्थाओं में वह पतन नहीं दिखाई पड़ता, जो आज हर शिक्षण संस्था में व्याप्त है। पर इससे शिक्षा के क्षेत्र में सिंघी जी के आंशिक योगदान की ही झलक मिलती है। शिक्षा के क्षेत्र में सिंघी जी की भूमिका का प्रमाण आज समाज में उच्च पदों पर आसीन वे लोग हैं, जिनकी उच्च शिक्षा की व्यवस्था करवाने में सिंघी जी का हाथ रहा है। दरअसल वे ही सिंघी जी की वास्तविक उपलब्धि हैं। उन्होंने दर्जनों उदीयमान विद्यार्थियों को विदेश में उच्च शिक्षा के लिए भिजवाने की व्यवस्था की। इन्हीं में से एक उदय पारिक की आज "विहेविअरल साइंस" में दुनिया के सबसे बड़े विद्वानों में गिनती है। उन्हें शिक्षा के लिए इटली भेजने की व्यवस्था सिंघी जी ने की। सिंघी जी ने खुद घोर गरीबी में अपनी पढ़ाई पूरी की थी इसलिए उन बच्चों की व्यथा वे खूब जानते हैं जो गरीबी झेल रहे होते हैं। सिंघी जी ने मदद मांगने पर कभी किसी प्रतिभाशाली छात्र को खाली हाथ नहीं लौटाया। प्रतिभाशाली छात्रों की सहायता वे कितनी विनम्रता से करते रहे हैं, इसका प्रमाण इस घटना से मिलता है। बनारस से पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सिंघी जी को एक पत्र लिखा कि एक बहुत प्रतिभाशाली विद्यार्थी अप-भ्रंश पर शोध करना चाहता है, लेकिन वह गरीब है। यदि आप चार हजार रुपये की व्यवस्था कर दें, तो वह शोध कर सकता है। उन्होंने लड़के का नाम नहीं लिखा था। सिंघी जी ने रामेश्वर लाल नोपानी से चार हजार रुपये लेकर लौटती डाक से उसे हजारी प्रसाद द्विवेदी के पास भेज दिया। बात यहीं खत्म हो गयी। इसके कई वर्ष बाद श्री शिक्षायतन कालेज में हिन्दी पर एक परिसंवाद आयोजित किया गया, जिसमें दिल्ली के कई विद्वान बुलाये गये थे। नियत समय पर जब सिंघी जी श्री शिक्षायतन के सभागार में पहुंचे तो दिल्ली से आये विद्वानों में से एक ने उनका पैर छू कर कहा कि "आज मैं जो कुछ भी हूं, आपकी वजह से हूं।" उस व्यक्ति ने अपना नाम बताया नामवर सिंह और कहा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मेरे शोध कार्य के लिए ही आपसे चार हजार रुपये मंगाये थे। मैं जीवनपर्यन्त आपका ऋणी रहूंगा।

पर शिक्षा के क्षेत्र में ही एक ऐसी घटना हुई, जिसने सिंघी जी को गहरा आघात पहुंचाया। सन १९६९ में श्री शिक्षायतन कॉलेज में एक बड़ा गबन हुआ। दो लाख रुपये से अधिक का यह गबन कालेज के एकाउन्टेंट जोरावरमल जैन ने किया था जो कि कॉलेज के स्थापना काल से ही कार्यरत था। जोरावरमल ने यह गबन बैंक की रिपोर्ट के नकल। कागज तथा बैंक की झूठी रसीद छपवा कर किया था। वह चेक पर लिखी राशि में एक शून्य बढ़ा कर बैंक से रुपये निकाल लेता और चेक की वास्त-विक राशि की नकली रसीद दफ्तर में जमा कर देता। चेक पर सिंघी जी के हस्ताक्षर के बिना बैंक से रुपया नहीं निकाला जा सकता था। पर जोरावरमल नामक उक्त एकाउन्टेंट ने सिंघी जी के बजाय सीताराम जी और भागीरथ कानोड़िया से यह बहाना कर कि सिंघी जी बाहर गये हैं, चेक पर उनके दस्तखत करा बैंक से भुगतान ले लिया।

सिंघी जी के दस्तखत के बिना भुगतान करने के लिए कॉलेज द्वारा दोनों सम्बद्ध बैंकों ग्रिंडले तथा पंजाब नेशनल बैंक के विरुद्ध मुकदमा दायर किया गया, जो आज भी कलकत्ता उच्च न्यायालय में विचाराधीन है। बाद में गबन के अभियोग में जोरावरमल जैन गिरफ्तार किया गया, तो उसने यह बयान दिया कि बैंक के आदमियों से मिल कर उसने गबन किया है। पर जोरावरमल किसी तरह पुलिस की हिरासत से भाग निकला। इस पर दोबारा उसे जयपुर में गिरफ्तार कर कलकत्ता लाया गया, जहां उस पर मुकदमा चला और सजा हुई। पर इस पूरे सन्दर्भ में सिंघी जी की सबसे बड़ी पीड़ा यह रही कि वह समय पर गबन का यह मामला क्यों नहीं पकड़ सके। अपनी अक्षमताओं का जिक्र करते समय सिंघी जी इस घटना का उल्लेख अवश्य करते हैं।

शायद कुछ लोगों को यह जानकर अचरज हो सकता है कि आजादी के बाद राजनीति को ठोकर मारनेवाले भँवरमल सिंघी भारत की पहली संसद के चुनाव में लोकसभा के उम्मीदवार भी बने। देश की पहली लोकसभा में अपने अधिकाधिक प्रतिनिधि भेजने के उद्देश्य से घनश्याम दास बिड़ला ने अपने प्रति निष्ठावान अनेक मारवाड़ियों को जगह-जगह से चुनाव में खड़ा किया। कलकत्ता में हिन्दीभाषी बहुल दक्षिण-पश्चिम संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से उन्होंने प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका को प्रत्याशी बनाया। श्री हिम्मतसिंहका पूंजीपतियों के प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस से खड़े हुए। सिंघी जी को लगा कि इस स्थिति का विरोध करना चाहिए। और इससे बेहतर स्थिति

Shri B.M. Singhi is an independent candidate for Parliament from Calcutta North-West. I have known Shri Singhi for many years, and for integrity of character and ability he would be hard beat. He took prominent part in the freedom struggle and spent many years of his life in prison. Besides, he is a writer of repute and a selfless social worker. I heartily commend his candidature and appeal to the citizens of Calcutta North-West to vote for Shri B.M. Singhi.

Jayaprakash Narayan

क्या होती, जब एक मारवाड़ी ही पूंजीपतियों के प्रतिनिधि को चुनौती दे दे। भँवरमल सिंघी के नामांकन पत्र भरने पर सभी समाजवादी पार्टियों ने उनके समर्थन की घोषणा कर दी। जयप्रकाश जी ने मतदाताओं के नाम पत्र लिख भेजा कि सिंघी जी से बड़ा जनता का हमदर्द दूसरा और कोई नहीं हो सकता। जयप्रकाश जी और राममनोहर लोहिया उनके चुनाव प्रचार के लिए कलकत्ता आये। पर आल इंडिया कम्युनिस्ट पार्टी ने सिंघी जी के सामने समर्थन की एक शर्त यह रख दी कि उन्हें कम्युनिस्ट पार्टी के मेनीफेस्टो पर हस्ताक्षर करना होगा। हस्ताक्षर करने का मतलब होता मेनिफेस्टो की सभी बातों से पूर्ण सहमति। सिंघी जी ने कहा कि मेनिफेस्टो की कुछ ही बातों से मैं सहमत हूँ, इसलिए उस पर दस्तखत करना मेरे लिए असंभव है। इस पर कम्युनिस्ट पार्टी ने महान भारतीय वैज्ञानिक मेघनाथ साहा को मैदान में उतारने का फैसला किया। श्री साहा का व्यक्तित्व इतना बड़ा था कि उसके आगे कोई नहीं टिक सकता था। इसीलिए वे विजयी हुए भी। इसी चुनाव के सिलसिले में सिंघी जी का पहली बार मेघनाथ साहा और हीरेन मुखर्जी से अंतरंग सम्बन्ध बना, जिसे सिंघी जी अपने जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानते हैं।

बहरहाल, सिंघी जी इस बात से संतुष्ट थे कि जहां एक ओर एक पूंजीपति के प्रतिनिधि के विरुद्ध चुनाव लड़ कर मारवाड़ियों के बारे में फैली आर्थिक शोषक की छवि को तोड़ने का अपने स्तर पर उन्होंने प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर कम्युनिस्ट पार्टी की सौदेबाजी की राजनीति के सामने उन्होंने घुटने नहीं टेके। सिंघी जी के लिए उपलब्धि की बात यह भी थी कि बिड़ला के प्रतिनिधि के विरुद्ध चुनाव लड़ने के बावजूद मारवाड़ी समाज के बहुत बड़े वर्ग ने तन-मन-धन से उनका समर्थन किया। रघुनाथ प्रसाद खेतान, रामेश्वर टांटिया, पुरुषोत्तम केजरीवाल, श्यामसुन्दर जैपुरिया, गोविन्द प्रसाद कानोड़िया, बद्रीप्रसाद बांयवाला, गणेशमल बैद, ओंकारलाल बोहरा जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं ने खुल कर सिंघी जी के लिए काम किया। प्रभुदयाल जी की महानता थी कि इस चुनाव के बावजूद उन्होने सम्बन्धों में कोई आंच आने नहीं दी।

आजादी के बाद सिंघी जी ने समाज सुधार का जो बीड़ा उठाया उसका पहला विस्फोट था परदे में होनेवाले विवाहों के विरुद्ध आंदोलन। उनका कहना था कि "यदि विवाह के समय ही परदे की दीवार नहीं तोड़ी जाती, तो बाकी की सारी जिन्दगी स्त्री को इसी परदे की दीवार के भीतर काटनी पड़ेगी। स्त्री को जीवन में बराबरी का दरजा देने के लिए पहला कदम यह हो कि विवाह के समय परदे के बन्धन से उसे मुक्त कर दिया जाये।" उन दिनों मारवाड़ियों में ९९ प्रतिशत शादियां परदे में ही होती थीं, इस कारण आंदोलन से तहलका मच गया। सिंघी जी ने सैकड़ों प्रदर्शनों का नेतृत्व कर परदे में हो रहे विवाहों को रुकवाया। इन प्रदर्शनों में अनेक बार बसन्तलाल मुरारका ने भी हिस्सा लिया और अपमान सहे। प्रदर्शन की पूर्व घोषणा कर दी जाती। सिंघी जी कम-से-कम २०-२५ नौजवानों की टोली ले कर विवाह-स्थलों पर पहुँच जाते और नारेबाजी करते, धरना देते। इन प्रदर्शनों और सत्याग्रहों में नागरमल मोदी,

उनचास

बजरंगलाल लाठ, रघुनाथ प्रसाद खतान, विजय सिंह नाहर, महालचन्द बोथरा, गणेशमल बैद, चन्दनमल भूतोड़िया, दीपचन्द श्यामसुखा जैसे लोग बड़ी निष्ठा से सिंघी जी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते। अक्सर उनके साथ महिलाओं की टोली भी होती जिसका नेतृत्व उनकी पत्नी सुशीला सिंघी कर रही होतीं। सुशीला जी १९४९ में अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के भागलपुर अधिवेशन में परदा विरोधी महिला सम्मेलन की अध्यक्षता कर चुकी थीं। सुशीला जी के साथ अनेक मारवाड़ी महिलाओं ने आन्दोलन में हिस्सा लिया, जिनमें प्रमुख थीं बसन्तलाल मुरारका की पत्नी रमादेवी मुरारका तथा सीताराम जी की पत्नी भगवान देवी सेकसरिया। इन प्रदर्शनों में दर्जनों बार उन पर पत्थर बरसाये गये, उन पर थूका गया, उन्हें अपमानित किया गया, यहां तक कि प्रदर्शनकारी महिलाओं के कपड़े फाड़े गये, पर उन्होंने हार नहीं मानी और परदे को तोड़ने के लिये लगे रहे।

परदा विरोधी आंदोलन में एक अजीब घटना हुई। सिंघी जी के घनिष्ठ मित्र तथा उनको जयपुर से कलकत्ता लानेवाले रामेश्वरलाल नोपानी के बड़े भाई के पुत्र हरिप्रसाद नोपानी का विवाह शोभाराम वैशाख स्ट्रीट स्थित उनके एक मकान में परदे में हो रहा था। सिंघी जी अपने २०-२५ कार्यकर्त्ता मित्रों के साथ वहाँ पहुंचे और जब जोरदार नारेबाजी और धरना देना शुरू किया, तो नोपानी जी का बड़ा अपमान हुआ। शुरू में तो रामेश्वरलाल जी और उनके भाई रावतमल बेहद नाराज हुए, और बोले कि इतने करीब का एक व्यक्ति हमारी इज्जत उतारने पर तुला है। वहां पर धरने और नारेबाजी का क्रम तब तक जारी रहा जब तक वहाँ घूँघट खोलकर विवाह नहीं कराया गया। रामेश्वरलाल नोपानी की नाराजगी पर सिंघी जी ने वहीं भाषण दिया कि दोस्ती और सामाजिक मर्यादाओं का पालन दो अलग-अलग चीजें हैं, और किसी को यह हक नहीं होना चाहिए कि वह दोस्ती के बूते पर सामाजिक आदर्शों को ठोकर मार दे।

परदे में होनेवाले तथा अनमेल विवाह के विरुद्ध सिंघी जी के आन्दोलन को सीताराम जी, भागीरथ कानोड़िया, बसन्तलाल जी का आशीर्वाद तो प्राप्त था, पर आन्दोलन के लिए असली माहौल बनाने का काम किया कलकत्ता के दैनिक विश्वमित्र के सम्पादक मूलचन्द्र अग्रवाल ने। मूलचन्द्र जी ने अपना अखबार एक तरह से समाज सुधार के लिए समर्पित कर दिया था। उन दिनों के विश्वमित्र की फाइल देख कर पता चलता है कि समाज सुधार के आन्दोलन को उन्होंने कितना बड़ा समर्थन दिया। विश्वमित्र की सक्रियता की हालत यह थी कि जहां कहीं भी प्रदर्शन किया जाता, विश्वमित्र का प्रतिनिधि वहां पहुंच जाता और अगली सुबह आन्दोलन—धरने के बारे में विस्तार से रिपोर्ट उसके प्रथम पृष्ठ पर छप जाती। रिपोर्ट में अन्य बातों के अलावा उन लोगों का नाम जरूर होता, जो सत्याग्रह में हिस्सा लेते। इससे आंदोलन-कारियों में बड़ी उमंग जगती। सिंघी जी का कहना है कि "मूलचन्द्र अग्रवाल ने परदा विरोधी तथा समाज सुधार के दूसरे आंदोलन को इतना महत्व नहीं दिया होता तो शायद वह आन्दोलन इतने गम्भीर रूप से नहीं चल पाता।" इस आन्दोलन का ही फल था कि कलकत्ता के हिन्दी भाषी समाज में विवाह के समय किये जाने वाले परदे का प्रचलन बहुत तेजी से खत्म होता गया। यह आन्दोलन १९५३-५४ तक चला।

उसके बाद सिंघी जी ने विवाहों में किये जाने वाले दिखावे को अपना लक्ष्य बनाया। इस आन्दोलन की भूमिका भी वैसी ही थी, जैसी कि परदा विरोधी आंदोलन की। मूलचन्द्र जी का वरदहस्त एक बार फिर आन्दोलनकारियों का मनोबल दुगुना कर रहा था, कि तभी एक घटना ऐसी हो गयी, जिसने पूरे मारवाड़ी समाज में तहलका मचा दिया। मारवाड़ी समाज के सबसे प्रतिष्ठित समाजसेवियों में से एक तथा भँवरमल सिंघी के मालिक भागीरथ कानोड़िया के बेटे आत्माराम कानोड़िया की लड़की के विवाह का अवसर था। बारात शरत चटर्जी एवेन्यू स्थित उनके मकान पर पहुंचनेवाली थी। शादी के लिये पूरे घर में असाधारण सजावट की गयी थी और बड़े भव्य भोज की व्यवस्था थी। हजारों लोग मौजूद थे कि भँवरमल सिंघी पचास-साठ नौजवानों को लेकर वहां पहुँच गये तथा इतने दिखावे के साथ हो रहे विवाह के विरोध में धरना दिया, नारेबाजी शुरू कर दी और पूरे विवाह का माहौल चौपट कर दिया। श्री भागीरथ कानोड़िया को यह काफी बुरा लगा। सीताराम सेकसरिया भी वहां मौजूद थे और वे भी बहुत नाराज हुए कि सिंघी जी ने इज्जत पर पानी फेर दिया। उनकी नाराजगी की एक वजह शायद यह थी कि इस घटना से उनकी समाजसेवी छवि को आघात पहुंचेगा। पर सिंघी जी का कहना था कि "अलग-अलग व्यक्तियों के लिये सुधार के अलग-अलग मानदण्ड नहीं हो सकते। जो दूसरों के लिए सुधार की बात करते हैं, उन्हें सबसे पहले खुद सुधार के लिये भी तत्पर रहना चाहिए।" अगली सुबह विश्वमित्र में प्रथम पृष्ठ पर भागीरथ कानोड़िया के यहां हुए इस अद्भुत प्रदर्शन की विस्तार से खबर छपी। लोग यह उम्मीद कर रहे थे कि अगले दिन ही वे सिंघी जी को नौकरी से निकाल देंगे। पर इस मामले में भी भागीरथ कानोड़िया सामान्य आदमी से ऊँचे और गरिमावान साबित हुए। उन्होंने उस प्रदर्शन के बारे में सिंघी जी से जीवनपर्यंत एक शब्द भी नहीं कहा। बल्कि उस घटना के बाद अपने संस्थान में भँवरमल सिंघी का पद और ऊँचा कर दिया।

सिंघी जी के दिखावा विरोधी आन्दोलन का भी एक हद तक लोगों पर प्रभाव पड़ा। हिन्दी भाषी समाज के बहुतेरे कर्णधारों ने इस आन्दोलन से प्रभावित होकर अपने परिवार के विवाहों में दिखावा बिलकुल बन्द कर दिया। शानदार पकवानों की जगह बारात के स्वागत में सिर्फ पेय पदार्थ वितरित किये जाने की परम्परा शुरू हुई। सिंघी जी का कहना है कि "उस आन्दोलन के माध्यम से पहली बार हम, लोगों के मन में यह धारणा पैदा कर सके कि दहेज शादी के पवित्र बन्धन में जहर घोलता है। दहेज मांगना अपने घर में विषवृक्ष बोना है।" इसका समाज पर निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिक असर पड़ा।

सिंघी जी ने जब समाज सुधार का काम आरम्भ किया था तो वे इसके खतरों को खूब पहचानते थे। वे बापू के आदर्शों को लेकर समाज बदलने के लिए आगे आये थे, इसीलिए वे उतने ही कड़े रहना चाहते थे, जितने कि बापू थे। इसका एक उदाहरण उन्होंने [illegible] में अपने सबसे छोटे भाई रतनचन्द सिंघी के विवाह के समय पेश किया।

उस विवाह के ठीक एक दिन पहले उन्हें पता चला कि लड़की शारदा ऐक्ट में निर्धारित उम्र से छह महीने छोटी है। उन्होंने तुरंत विवाह छह महीने के लिए स्थगित करने की बात कही। घर में हंगामा मच गया, खुद लड़का भी नाराज हो गया। इस पर सिंघी जी ने कहा कि "यदि शारदा ऐक्ट का उल्लंघन कर घर में विवाह हुआ, तो बाध्य होकर विवाह में शामिल सभी व्यक्तियों को मुझे गिरफ्तार करवाना पड़ेगा।" उनकी इस धमकी के बाद लड़की की उम्र कानूनन पूरी होने के बाद ही विवाह हो सका।

इसमें शक नहीं कि सिंघी जी को अपने दोनों छोटे भाइयों से भरपूर स्नेह और पितातुल्य सम्मान मिला। दोनों छोटे भाइयों पद्मचन्द और रतनचन्द सिंघी ने उन्हें अपने जीवन का आदर्श बनाया। छोटे भाई रतनचन्द व्यवसाय में जाने के कारण आदर्शों का भले ही उतना पालन नहीं कर सके, पर पद्मचन्द ने सिंघी जी से प्रेरणा पाकर अपने जीवन में सादगी और नैतिकता का मूल्य अपना लिया। पद्मचन्द आई.ए.एस. हैं और इस समय राजस्थान में बांसवाड़ा के जिलाधिकारी हैं। वहां उन्होंने वनवासियों के उत्थान के लिए इतना काम किया है कि इसके लिए वे पूरे राजस्थान में आज चर्चा का विषय बने हुए हैं। छोटे भाई रतनचन्द के सन्दर्भ में एक घटना का उल्लेख समीचीन होगा। बचपन में गरीबी के दिनों में रतनचन्द जयपुर के एक बाजार में सड़क के किनारे चादर पर रंगीन पत्थरों से जड़ी पीतल और लोहे की अंगूठियां बेच रहे थे। एक परिचित की उन पर नजर पड़ी, तो उन्होंने कहा कि "तुम भंवरमल सिंघी के छोटे भाई हो और इतना घटिया काम कर रहे हो। उन्हें यदि इसका पता चला, तो क्या कहेंगे।" इस पर रतनचन्द का जवाब था कि "भाई साहब तो यह सुनकर खुश होंगे। मैं यदि चोरी-बेईमानी का काम करता, तो वे नाराज होते। सड़क पर बैठ कर पत्थर की अँगूठियाँ बेचने की बात सुनकर तो उन्हें गर्व होगा कि उनका भाई छोटा-बड़ा कोई भी काम कर सकता है।" रतनचन्दजी ने बाद में व्यवसाय में दिन-प्रतिदिन सफलता पायी और आज वे जयपुर में हीरे-पन्ने के बड़े व्यापारियों में से एक हैं।

१९५४ में छोटे भाई पद्मचन्द सिंघी ने फैसला किया कि अपना विवाह पंडितों के माध्यम से नहीं करेंगे, बल्कि सिविल मैरिज करेंगे। इस पर बड़ा बावेला मचा। उस समय तक पूरे मारवाड़ी समाज में एक भी सिविल मैरिज नहीं हुई थी। खुद लड़की के पिता ने भी व्यवधान पहुंचाया। सिंघी जी जयपुर पहुंचे और सारी बाधाओं को समाप्त कर भाई की सिविल मैरिज करायी। सिंघी जी के तीनों बच्चों (एक बेटे और दो बेटियों) ने अन्तर्जातीय प्रेम विवाह किया है। इसके लिए सिंघी जी ने उन्हें सहर्ष स्वीकृति दी और उनका विवाह पूरी सादगी से सम्पन्न किया।

समाज सुधार का काम करते हुए सिंघी जी ने बहुत से दुश्मन बनाये, जिन्होंने एक बार सिंघी जी पर प्राणघाती हमला भी किया, जिसके कारण वे ४८ घंटे तक बेहोश पड़े रहे। यह घटना १९५५ की है। बम्बई विधानसभा में प्रभुदास पटवारी ने बालदीक्षा निवारक विधेयक प्रस्तुत किया था, जिसके विरोध में कट्टरपंथी जैन मुनियों में घोर प्रतिक्रिया हुई थी। उस विधेयक के समर्थन में कलकत्ता के जैन भवन में सिंघी जी ने एक सभा आयोजित की थी। सभा के अध्यक्ष विजय सिंह नाहर तथा मुख्य वक्ता सिंघी जी थे। सभा में करीब दो सौ श्रोता मौजूद थे। स्वागत की



दैनिक विश्वामित्र



श्री भंवरमल सिंघी पर लाठी से कायरतापूर्ण आक्रमण
हालत चिन्ताजनक

अहिंसक जैन समाज की सभा में बालदीक्षा के प्रश्न पर गुण्डाशाही



अंधेरा कर विरोधियों ने आक्रमण किया



लाठी से सामाजिक प्रश्न के हल की कुचेष्टा

(विशेष प्रतिनिधि द्वारा)

कलकत्ता, ५ नवम्बर। आज जैन भवन में आयोजित एक सभा, जो बम्बई विधान परिषद में उपस्थित बाल सन्यास दीक्षा प्रतिबंधक बिल के समर्थन में बुलायी गयी थी, विरोधियों द्वारा संयोजक पर आक्रमण कर भंग की गयी। सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता श्री भंवरमल सिंघी, जो इस सभा के प्रमुख संयोजक थे, एक विरोधी द्वारा कायरतापूर्वक आकस्मिक लाठी प्रहार से सभा स्थल पर ही बेहोश होकर गिर पड़े और उन्हें तत्काल मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी पहुंचाया गया किन्तु बेहोशी नहीं टूटी।

कई प्रसिद्ध डाक्टर और सर्जनों ने श्री सिंघी की परीक्षा की। सुप्रसिद्ध सर्जन श्री ए. के. बसु ने रात्रि को १२ बजे के करीब परीक्षा कर बताया कि अगर सबेरे सात बजे तक उन्हें होश आ गया तो स्थिति खतरनाक नहीं होगी, अन्यथा चिन्ताजनक है। लाठी का निशान, जो पहले नहीं देखा गया था, रात को धीरे धीरे बायीं ओर स्पष्ट हो गया।

लाठी की मार से गिरने के बाद भी उन पर गला पकड़कर निर्मम प्रहार किया गया, जिससे दाहिनी ओर गले में नस में सूजन आ गयी है।

रिलीफ सोसाइटी में रात्रि के २ बजे पता लगाने पर मालूम हुआ कि सिंघी जी अभी तक बेहोश पड़े हैं। आपके पास श्रीमती सुशीला सिंघी, श्री जवाहरलाल जैन आदि उपस्थित हैं।

एक अन्य जैन कार्यकर्ता श्री नैन [illegible] सर्वमान्य मात पर लाठी से प्रहार अपनी आंखों देखा।

सभा में जब उत्तेजना चरम सीमा पर पहुंच गयी, तो श्री सिंघी ने पुलिस ने उनका आकर हस्तक्षेप करना चाहा। विरोधी दल के व्यक्तियों ने उन्हें भी रोका, किन्तु एक सार्जेंट उधर आ गया। सभापति महोदय को हटाकर उनसे चले जाने के लिये जब अनुरोध कर रहे थे, ठीक उसी समय एक सांवले रंग का गुजराती लड़का जो सफेद कमीज और धोती पहने हुए था, अचानक एक लाठी लेकर श्री भंवरमल सिंघी के पास पहुंचा और उसने जोरों से उनकी कनपटी के ऊपर प्रहार किया। श्री सिंघी तत्काल गिर पड़े।

लाठी के बाद भी प्रहार

औपचारिकता के बाद जैसे ही सिंघी जी भाषण करने के लिए खड़े हुए और अपना दूसरा वाक्य कहा, सभागार की बिजली गुल कर दी गयी। उसके बाद करीब आधा दर्जन हमलावर मंच पर पहुंच गये और उन्होंने लोहे की छड़ से सिंघी जी पर अंधाधुन्ध वार शुरू कर दिया। सिर पर लोहे की छड़ से हुए एक प्रहार से वे बेहोश हो गये। उन्हें तुरंत मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी अस्पताल ले जाया गया, जहां डॉक्टरों ने उनकी दशा काफी गम्भीर बतायी। लोहे की छड़ के प्रहार से उनके दिमाग पर गहरी चोट आयी थी जिसके कारण वे होश में नहीं आ पा रहे थे। अगले दिन विश्वमित्र ने आठ कॉलम की बैनर हेडिंग लगायी—"श्री भँवरमल सिंघी पर लाठी से कायरतापूर्ण हमला—हालत चिन्ताजनक।" समाचार में कट्टरपंथी जैन हमलावरों की भर्त्सना करते हुए उनके इस कायरतापूर्ण हमले को एक शर्मनाक हरकत कहा गया था। सिंघी जी पर हुए इस हमले ने कलकत्ते के हिन्दी भाषी समाज को उद्वेलित कर दिया। जगह-जगह विरोध सभाएं हुईं।

लगभग ४८ घंटे की बेहोशी के बाद अन्ततः उन्हें होश आया। पर उस प्रहार से दिमाग पर गहरा असर हुआ था। घर में अजीब अवस्था थी। उनकी गम्भीर अवस्था के दरम्यान ही पत्नी ने लड़की को जन्म दिया। उन दिनों सिंघी जी की मां जयपुर से कलकत्ता आयी हुई थीं, उन्होंने उनसे कहा "धर्म से लड़ाई मोल नहीं लेनी चाहिए। पता नहीं तुम जीवित बचोगे या नहीं।" सिंघी जी तो जीवित बच गये पर "धर्म" को बड़ा नुकसान पहुंचा। तेरापंथी समाज के कट्टर अनुयायियों को मुंह छिपाने की जगह नहीं मिल रही थी। वास्तव में सिंघी जी पर किए गए हमले ने उनकी कट्टरवादिता पर गहरा आघात पहुंचाया था। बाद में उनमें भी कुछ उदारवादी प्रक्रिया की ओर झुकाव बढ़ा। इस घटना के बाद प्रभुदास पटवारी के विधेयक के समर्थन में कलकत्ता में कई जगह सभाएं हुईं। यद्यपि श्री पटवारी का बालदीक्षा निवारक विधेयक विधानसभा में पारित नहीं हो सका, पर इसके बाद से बालदीक्षा की गति काफी धीमी हो गयी।

सिंघी जी पर यह हमला अचानक हुआ हो ऐसा नहीं था। सिंघी जी बहुत पहले से तेरापंथी समाज की रूढ़ियों और तुलसी गणी के आडम्बरयुक्त और दोहरे व्यक्तित्व के बारे में बहुत कड़े शब्दों में बोलते और लिखते रहे थे। सिंघी जी के निरन्तर मुहिम छेड़े रखने के कारण कट्टरपंथियों को मुश्किल होने लगी थी और तेरापंथ समाज में ही उदारवादियों का एक वर्ग तैयार हो रहा था, जिसमें तुलसी गणी के शिष्य साधु भी थे। इन सबके लिए कट्टरपंथी, सिंघी जी को ही वास्तविक अपराधी मान रहे थे। इसीलिए उन्होंने सिंघी जी को खत्म करना चाहा, पर अंततः कट्टरपंथियों को भी सिंघी जी की प्रतिभा और निष्ठा का लोहा मानना पड़ा। तेरापंथ जैन सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य तुलसी ने जब अणुव्रत आंदोलन का श्रीगणेश किया, सिंघी जी ने उसका सैद्धांतिक स्तर पर विरोध किया। अणुव्रत आंदोलन के छद्म को उजागर करने के लिए उन्होंने एक लम्बा लेख लिखा, जो कई अखबारों में छपा तथा उसका पुस्तिका के रूप में भी प्रकाशन किया गया। लेख का शीर्षक था "अणुव्रत : प्रगति या प्रवंचना"। इस लेख के प्रकाशित होने पर काफी प्रतिक्रिया हुई। एक प्रतिक्रिया आचार्य तुलसी की भी थी।

उन्होंने कहा "यह लेख मेरे विरुद्ध है, पर यह मानना होगा कि यह बहुत उच्च कोटि का लेख है तथा इससे स्वस्थ बहस आरम्भ हो सकेगी।"

१९७१ में सिंघी जी ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। इसके दो वर्ष बाद १९७३ में अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के रांची में हुए दसवें अधिवेशन में सिंघी जी सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वह पहले मामूली नौकरी-पेशा व्यक्ति थे, जिसे सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया। उनके पहले तक बड़े पूंजीपति ही सम्मेलन के अध्यक्ष चुने जाते थे। सिंघी जी अध्यक्ष निर्वाचित होने के पहले लगभग साढ़े तीन दशक से मारवाड़ी सम्मेलन की गतिविधियों से जुड़े रहे थे और बराबर उनकी यह कोशिश थी कि मारवाड़ी समाज में बुद्धिवादी वर्ग को पूंजी की समानांतर दुनिया में उलझे वर्ग से ज्यादा महत्व दिया जाये। सिंघी जी ने सम्मेलन के अध्यक्ष की हैसियत से पूरे देश का दौरा किया और अपने अद्भुत व्यक्तित्व से मारवाड़ी समाज में आत्म-विश्लेषण की प्रेरणा जगायी।

भँवरमल सिंघी के सम्मेलन का अध्यक्ष चुने जाने से जो व्यक्ति सबसे खुश था, वह थे ईश्वरदास जालान। ३७ वर्ष पहले उन्होंने ही मारवाड़ी समाज के बुद्धि-जीवियों को प्रोत्साहन देने के लिए सिंघी जी को मारवाड़ी छात्र संघ का सचिव बनाया था। तब ईश्वरदास जी का सिर्फ एक लक्ष्य था, मारवाड़ी समाज की निपट व्यवसायी की छवि को बदलना। सिंघी जी ने इसी प्रेरणा के साथ सम्मेलन में काम किया। कहना न होगा कि ईश्वरदास जालान और सिंघी जी ने जिस भावी समाज की कल्पना के साथ मारवाड़ी सम्मेलन का काम आगे बढ़ाया, वह आज एक सच्चाई बन कर सामने आ रहा है। समाज जीवन के हर क्षेत्र में मारवाड़ी आगे आये हैं, और उन्होंने अपनी पहचान बनायी है। सिंघी जी ने अध्यक्ष के रूप में जो बड़े कार्य किये, उससे प्रभावित हो कर सम्मेलन के हैदराबाद में हुए ग्यारहवें अधिवेशन में उन्हें पुनः अध्यक्ष चुना गया। सम्मेलन के इतिहास में सिंघी जी पहले व्यक्ति थे, जिन्हें दोबारा अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया हो।

सिंघी जी इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि जिस रास्ते पर उन्होंने कदम बढ़ाये थे, उससे वे कभी मुड़े नहीं। उनकी संघर्ष-यात्रा समाज की प्रेरणा बनी और शायद इसीलिए आनेवाले समय में लोग उन्हें याद करें। वे गिनती के उन कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं में से एक हैं जिन्हें समाज ने खूब प्यार दिया। पर उनकी इन उपलब्धियों में जिस व्यक्ति की मौन किन्तु दृढ़ भूमिका रही है, वह है उनकी पत्नी सुशीला सिंघी की। समाज के लिए सिंघी जी ने जो कुछ भी किया सुशीला जी ने उसमें हाथ बँटाया, उन्हें ताकत दी। सिंघी जी की आत्मा में जितना बल है, उनका शरीर उतना ही कमजोर रहा है। समाज-सुधार में उलझे सिंघी जी को कभी अपना ध्यान ही नहीं रहा। वे पिछले ४० वर्षों से अनेक व्याधियों के शिकार रहे, पर हर बार उनसे उबर कर समाज-जीवन के उत्थान के लिए जुटे रहे। सुख में, दुख में, जीवन की हर घड़ी में आगे बढ़ने और संघर्ष की प्रेरणा देने वाली सुशीला जी की भूमिका सिंघी जी की

उपलब्धियों के पीछे एक ठोस कारण रही है। सिंघी जी की पूरक बन कर सुशीला जी ने खुद समाज-सुधार के आन्दोलन में भरपूर हिस्सा लिया और कुरीतियों के विरुद्ध आंदोलन में अपमान झेलने तक का साहस दिखाया।

देश यदि गुलाम नहीं होता और गांधी के व्यक्तित्व का जादू अगर काम नहीं करता, तो सिंघी जी एक सुधारक के बजाय हिन्दी के एक बड़े लेखक-कवि हो सकते थे। १९३७ में सिंघी जी की गद्यकाव्य की पुस्तिका "वेदना" प्रकाशित हुई, जब वे सिर्फ २२-२३ साल के थे। पर उसके बाद ही स्वतन्त्रता आंदोलन और सामाजिक परिस्थितियों के दबाव के कारण उनका लेखन शुद्ध साहित्य के बजाय सामाजिक परिवर्तन का लेखन बना। सामाजिक दायित्वों ने कभी भी उन्हें यह सुविधा नहीं दी कि वे कलम-कागज उठाकर अपने भीतर के साहित्यकार को अभिव्यक्ति का मौका दें। उन्होंने साहित्य के स्वच्छंद आकाश में विचरने के बजाय सुधारोन्मुख परिवर्तनवादी लेखन का रास्ता चुना। अब तक सिंघी जी के लगभग १४०० लेख एवं सम्पादकीय प्रकाशित हो चुके हैं, और उनमें से प्रत्येक की कोई न कोई सामाजिक भूमिका है। ये सभी लेख सिंघी जी ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के दबाव में लिखे।

सिंघी जी उन सामाजिक कार्यकर्त्ताओं में से नहीं हैं, जो सिर्फ गांधी जी से ही प्रभावित थे। सिंघी जी ने पश्चिम के विचारकों का बहुत गहरा अध्ययन किया, और वे उनके प्रभाव से भी बच नहीं सके। गांधी की प्रेरणा से जहां उनमें नैतिकता और समाज के आखिरी व्यक्ति के कल्याण के लिए प्रतिबद्धता आयी, वहीं बर्ट्रेंड रसेल के साहित्य ने उनमें यह विश्वास पैदा किया कि परम्पराओं पर चलने के बजाय, सिर्फ वही काम करो, जो बुद्धिसम्मत लगे।

गांधी और पाश्चात्य विचारकों के प्रभाव से सिंघी जी के चिंतन में एक अलग क़िस्म का निखार आया। इन प्रभावों ने उनमें अपने समय की विकृतियों को पहचानने वाली दृष्टि पैदा की। इसी दृष्टि ने युवावस्था में ही उनमें यह आस्था दृढ़ कर दी थी कि धर्म के मामले में और यौन सम्बन्धों को लेकर इस देश में जो पाखण्ड चल रहा है, उसको दूर करना बहुत जरूरी है। सिंघी जी के लेखन में और उनके धार्मिक तथा सामाजिक क्रांति के आंदोलनों में बार बार इसकी गूंज मिलती है। परिवार नियोजन के लिए सिंघी जी ने जो कुछ भी किया, उसका एक उद्देश्य यौन सम्बन्धों को लेकर व्याप्त दकियानूसी को खत्म करना भी था।

सिंघी जी घोर गरीबी में पले-बढ़े और बहुत कम उम्र में ही उन पर परिवार चलाने का बोझ आ पड़ा। इसलिए समाज सुधार का आन्दोलन चलाते हुए भी उन्होंने छोटी-मोटी नौकरी कर घर का खर्च चलाया, जैसा कि आजकल आम तौर पर नहीं होता। सिंघी जी मारवाड़ी सम्मेलन के दो बार अध्यक्ष हुए और अन्य प्रसिद्ध मारवाड़ियों की तरह ही उन्होंने भी राजनीति और समाज-सुधार के आंदोलन में अपनी जीविका की व्यवस्था करते हुए भाग लिया क्योंकि उनका मानना है कि "कोई भी नेता या कार्यकर्त्ता अपने निजी खर्चों के लिये जब दूसरे के आगे हाथ पसारता है, तब

उसका पतन शुरू हो जाता है।" पर उन्होंने कभी भी नौकरी को समाजोत्थान के कार्य से ज्यादा महत्व नहीं दिया और स्वतंत्रता आन्दोलन में तथा बाद में रूढ़ियों के विरुद्ध आंदोलन में तरह तरह के जोखिम उठाये। समाज में मारवाड़ी व्यवसायी की छवि को बदलने की प्रक्रिया में सिंघी जी दिन प्रतिदिन बड़े पूंजीशाहों की नजरों में गिरते गये। १९५२ के चुनाव में बिड़ला जी के प्रत्याशी का विरोध कर उन्होंने यह सवाल पैदा करने की कोशिश की थी कि क्या मारवाड़ी सिर्फ वे ही हैं, जो पूंजी की दुनिया में जीते हैं।

सिंघी जी ने जीवन में बहुत कम समझौते किये हैं। कम-से-कम मूल्यों की शर्त पर उन्होंने कभी समझौता नहीं किया, भले ही इसके लिए उन्हें रामेश्वरलाल नोपानी, सीताराम सेकसरिया, भागीरथ कानोड़िया जैसे अनन्य मित्रों और संरक्षकों का ही विरोध क्यों न करना पड़ा हो। सिंघी जी अन्य मारवाड़ियों से इसलिए भी अलग हैं कि उन्होंने न केवल बंगालियों से सांस्कृतिक स्तर पर जुड़ने की कोशिश की, वरन् उनके साथ अन्तरंगता का रिश्ता भी कायम किया। तरुण संघ के माध्यम से रवीन्द्र जयंती और नजरुल संध्या के उन्होंने अनेक आयोजन किये। बंगला के दर्जनों प्रसिद्ध साहित्यकारों और रंगकर्मियों से उन्होंने चेष्टा कर आत्मीय रिश्ते बनाये थे, जो आज बरकरार हैं।

जीवन के ७० सार्थक वर्ष पूरे कर आज सिंघी जी किस मनोस्थिति में जी रहे हैं, अपने उन सपनों के बारे में आज वे क्या सोचते हैं, जो उन्होंने आजादी की लड़ाई और समाज-सुधार के आन्दोलन में जूझते समय बुने थे— इन प्रश्नों के जवाब में सिंघी जी मौन रहना चाहते हैं, पर वे खुद को मौन नहीं रख पाते। वे एक पीड़ा का दबाव महसूस करते हैं। उनका मानना है कि "जिस दिन हमें आजादी मिली देश के ९० फीसदी नेताओं की कलई खुल गयी क्योंकि वे कुरसी पाने के लिये दौड़ पड़े। उसी दिन से इस देश का पतन शुरू हुआ, और आज देश एक ऐसे मोड़ पर पहुंच गया है, जहां आजादी का कोई मतलब नहीं रह गया है। आज इस देश में केवल मुट्ठी भर लोग आजाद हैं।"

पर इस स्थिति के लिये जिम्मेवार कौन है? सिंघी जी की नजर में जो आदमी असली अपराधी है और जिसे इतिहास कभी माफ नहीं करेगा, वह थे जवाहरलाल नेहरू। सदियों की गुलामी के बाद जो आजादी हमें मिली थी, उसकी कीमत नेहरू ने नहीं समझी। जब कोई देश आजाद होता है, तब वहां की जनता देश के लिये कुछ भी करने को तैयार रहती है और इसके बदले में उसकी कोई अपेक्षा नहीं होती। जनता की उफनती हुई उस ऊर्जा का राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में उपयोग करने के बजाय नेहरू विश्व नेतृत्व का सपना संजोये पूंजीवादी देशों खासकर अमरीका की ओर मुंह बाये खड़े रहे। हिन्दू कोड बिल की बात अगर अपवाद मान ली जाये, तो उन सभी बुराइयों के बीज बोने वाले नेहरू ही थे, जो आज विकराल रूप ले चुकी हैं। क्षेत्रीय, जातीय, भाषाई मतभेदों को उभाड़ कर अपनी पार्टी का हित साधने वाले नेहरू ने ही इस देश में परिवारवाद और चमचा संस्कृति को जन्म दिया। नेहरू ने निहायत भ्रष्ट लोगों को अपना संरक्षण दिया, उन्हें मन्त्री पद और ऊंचे-ऊंचे ओहदों पर बैठाया, जिन्हें

इसलिये कि वे उनके प्रति निष्ठावान थे। बाद में ऊपर का यह भ्रष्टाचार नीचे उतरता गया और वही आज समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त है। सिंघी जी की धारणा है कि इन परिस्थितियों के कारण आजादी के बाद देश की जनता में कोई राष्ट्रीय चरित्र विकसित नहीं हो पाया, जो कि हमारे समय का सबसे बड़ा संकट है।

इनके अलावा सिंघी जी का मानना है कि "नेहरू ने जो विकास का ढांचा बनाया, उसमें गरीब हिन्दुस्तानी के लिए कोई जगह नहीं थी।" इस हिसाब से गांधी के सपनों को विफल करने वाले नेहरू ही थे। सिंघी जी की स्पष्ट मान्यता है कि आज यदि गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर हुए हैं, तो इसके लिए जिम्मेदार है वह आर्थिक नियोजन, जिसकी पुख्ता बुनियाद नेहरू ने रखी थी। उस देश में आज गरीबों के बारे में कोई ईमानदारी से सोचने के लिए तैयार नहीं है। गरीबों की कीमत पर ही हर साल अंतरिक्ष में अरबों रुपये की लागत से राकेट भेजा जा रहा है और ढिढोरा पीटा जा रहा है कि यह विकास है। दरअसल, यह सब इस देश में तिल-तिल कर गांधी की हत्या है। सिंघी जी का विश्वास है कि देश के सामने मौजूदा संकट से उबरने का कोई रास्ता नहीं है। उनके अनुसार इस देश का निकट भविष्य पूंजीवाद और अराजकता की मुट्ठी में है। उन्होंने कहा, "हम एक बेहद खतरनाक समय की ओर बढ़ रहे हैं। इस स्थिति को देश से बचाने के लिये गांधी जैसा कोई आदमी आज नहीं है, जो इस देश की मिट्टी के आदमियों में जान फूंक सके और उन्हें जुल्म और शोषण के विरुद्ध लड़ाई के लिए तयार कर सके।"

सिंघी जी का सात दशकों का जीवन इतना घटनापूर्ण रहा है कि उस पर ईमानदारी से लिखने के लिये कम से कम सात सौ पृष्ठ चाहिये। उनके जीवन की कई प्रमुख घटनाओं का इस वृत्तान्त में जिक्र नहीं है। उन्हें समाहित न कर पाने का कारण सिर्फ स्थान की सीमा ही है। सिंघी जी ने बसन्तलाल मुरारका, सीताराम सेकसरिया, भागीरथ कानोड़िया तथा सत्यपाल धवले जैसे लोगों की स्मृति को ताजा रखने के लिए अभिनन्दन ग्रन्थ निकाले ताकि समाज को उनकी भूमिका की मुकम्मल जानकारी हो सके। आज सिंघी जी के कार्यों का मूल्यांकन करते समय हमें उम्मीद है कि जिन मूल्यों के लिये वे निष्ठापूर्वक लड़े, वे मूल्यहीनता के इस दौर में आने वाली पीढ़ी के लिये शायद दिशा बनें।

□

जेल की डायरी

सिंघी जी २१ नवम्बर १९४२ को गिरफ्तार हुए और अप्रैल १९४५ में रिहा हुए। एक आदर्शवादी युवक के रूप में वे जेल में दाखिल हुए थे। और ढाई वर्ष बाद जब वह निकले तो उनका आदर्शवाद तनिक भी म्लान नहीं हुआ था और उनके विचारों में परिपक्वता आ गयी थी। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि जेल-जीवन के एकांत ने उन्हें चिन्तन-मनन का इतना मौका दिया कि उनके व्यक्तित्व को जेल में ही विकसित होने का मौका मिला।

गांधी-युग की विशेषता यह थी कि उसमें हर व्यक्ति आत्म-निरीक्षण की ओर प्रवृत्त होता था और इसका एक साधन डायरी थी। सिंघी जी ने जेल में इस साधना का भरपूर उपयोग किया। उनकी जेल की डायरी पूरी की पूरी छापी जाती तो पाठकों को पता चलता कि आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति व्यक्ति को सिर्फ अपने ही बारे में नहीं बताती, देश और समाज को जानने-पहचानने में भी कितनी मदद करती है। यहां डायरी का बहुत ही छोटा अंश छापा जा रहा है पर उससे पाठकों को गांधी युग की उन विशेषताओं का जरूर पता लगेगा जो आज हमारे जीवन से लुप्त हो गयी हैं। यह भी पता लगेगा कि गांधी जी का प्रभाव कितना ज्यादा और गहरा था। उस युग में हर कार्यकर्ता के सामने कहीं यह कसौटी होती थी कि 'उसका कार्य गांधी जी की दृष्टि में कैसा ठहरेगा' और यह कसौटी उसके हर कार्य को प्रभावित करती थी।

सिंघी जी ने जेल-जीवन का पूरा रचनात्मक उपयोग किया। ढाई वर्षों में उन्होंने लगभग रोज एक पुस्तक पढ़ी। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि जेल-जीवन में उन्होंने १९४२ तक प्रकाशित अधिकांश प्रमुख देशी-विदेशी लेखकों और विचारकों की पुस्तकें पढ़ डालीं। डायरी में इन पुस्तकों की उन्होंने समीक्षा की है और उन्हें पढ़कर मन में आये विचारों को भी रखा है, लेकिन यहां यह सब देना सम्भव नहीं। जेल में सिंघी जी का सौभाग्य था कि उन्हें भागीरथ जी कानोड़िया, बसन्तलाल जी मुरारका और सीताराम जी सेकसरिया जैसे लोगों का साथ मिला। इन तीनों से सिंघी जी की लगातार बहस होती थी और उम्र में बीस वर्षों के व्यवधान के कारण सिंघी जी ज्यादा उग्र और परिवर्तनवादी थे पर इससे सम्बन्धों पर आंच आने के बजाय उल्टी बात हुई—सम्बन्ध और मजबूत व आत्मीय हुए। यह शायद उस युग की विशेषता थी।

२८-१२-१९४२ :

ता० २३-११-४२ को रात को १२ बजे मैं गिरफ्तार हुआ था। बिलकुल अचानक। ता० २१-११-४२ को जब जयपुर से चला था, तब कल्पना भी नहीं थी कि कलकत्ता पहुंचने पर घर में पैर रखते ही तीन दिन की मुसाफिरी की थकावट भी दूर नहीं करने पाऊँगा कि पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाऊँगा। खैर, गिरफ्तार होना अपनी कल्पना की बात होती ही नहीं।

पुलिस घर में १२ बजे के लगभग आई। लगभग ५० आदमियों का दल था। स्पेशल ब्रांच पुलिस का एसिस्टेंट कमिश्नर अपने कई इन्स्पेक्टर और सब इन्स्पेक्टर के साथ सार्जनों और सिपाहियों को लेकर आया था। पुलिस के दल ने न केवल मेरे दोनों फ्लैटों की ही बल्कि सारे के सारे मकान की तलाशी ली, यहां तक कि ऊपर के तल्लों के जिन फ्लैटों के किरायेदार कई महीनों से कलकत्ता से बाहर गये हुए थे, उनके भी ताले तोड़े। मैं इन सब को नहीं समझ सका—मेरे दिल में एक धड़कन थी—जीवन में यह पहला ही मौका था कि राजनैतिक मामले में मैं पुलिस की तलाशी का शिकार बना था। लगभग ३ बजे सुबह तलाशी खतम हुई और उसी समय मैं गिरफ्तार करके जोरासांकू थाने में पहुंचाया गया। वहाँ मेरे घर की तलाशी और मेरी गिरफ्तारी की रिपोर्ट वगैरह लिखकर पुलिस के लोग मुझे 'थाने की हाजत में' छोड़ कर अपने घर चले गये। मुझे नींद तो क्या आती थी, पर यह सारा कांड इतना अचानक और इस प्रकार हुआ था कि मेरा मन विचारों और कल्पनाओं के सागर में डूब गया। यह भी एक तरह की निद्रा ही थी।

दिन के लगभग ११ बजे थाने की चहारदीवारी से मुक्ति मिली और पुलिस के जिस काले व्हान को सड़कों पर गुजरते हुए पहले देखा करता था और जिसके सम्बन्ध में कहानियाँ सुना करता था, उसी में बिठा कर लार्ड सिन्हा रोड में स्पेशल ब्रांच पुलिस के आफिस में ले जाया गया। व्हान में मेरे जैसे ही चार-पांच (लोग) और बैठे थे। उनके अलावा आफिस के भीतर जाकर देखा तो वहां भी कुछ लोग बैठे थे। बैठे रहने के सिवाय वहां और कुछ काम नहीं था—मेरा मन एक बार घर, पिताजी और रुपये-पैसे के प्रश्न की तरफ दौड़ता था, और दूसरी तरफ 'इलीसियम रो' में दी जाने वाली भयंकर यंत्रणा (टार्चर) की सुनी हुई कहानियों की ओर दौड़ता था। दो-तीन घन्टे इस तरह बीते। शाम को चीफ प्रेसीडेंसी मैजिस्ट्रेट के कोर्ट में पेश करने के लिये ले जाया गया सिर्फ यह सुनने के लिये कि पहली दिसम्बर तक मैं पुलिस हाजत में रखा जाऊँगा। वहां से वापस एस० बी० में और तब अलीपुर के पुलिस लाकअप में।

अलीपुर के लाकअप में बिताई हुई रात कभी नहीं भूली जायेगी। बदन पर धोती, बनियान, कुर्त्ता, सदरी और टोपी थी। न बिछाने को दरी और न ओढ़ने को

कम्वल। जाड़े की रात। जिस 'पिंजरे'—और लाकअप का क्या मतलव? में मैं था, उसी में वीसों जुआरी, चोर, उठाईगीरे और पाकेटमार तथा शरावी भी थे। सारी रात जाग-जाग कर विताई—जव वहां सव कोई सोते थे, मैं जाग रहा था "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने:।।

इस हालत में रात में ७ वजे आकर खटमलों से भरे तख्ते के जिस किनारे पर वैठा था—उसी जगह सारी रात और सुवह ११ वजे तक विना हाथ पैर हिलाये वैठा रहा—जीवन में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। रात में पहरे के सिपाही की 'मेहरवानी' से एक लोटा पानी का पीने को मिल गया था उसी के लिए उठा था एक वार। पिंजरे के पक्षियों के लिए जो खाना लाकर रखा गया था, उसे मैंने भी दिन भर की भूख के वशीभूत होकर लिया तो सही पर कोशिश करने पर भी उस 'भोजन' का निवाला गले से नीचे नहीं उतर सका। भोजन को कोसूं या अपनी 'विगड़ी' आदत को। मार्क्सवादी भोजन को कोसेगा और गांधीवादी अपनी आदत को। मैंने देखा मेरे चारों तरफ वैठे दूसरे वन्दियों ने उसी भोजन को खाया और रोज खाते हैं। मैं सोचे विना नहीं रह सका कि लाखों करोड़ों मनुष्यों को हमारे देश में अपने घर में और अपने पैदा किये हुए अन्न के वावजूद इससे अच्छा भोजन नहीं मिलता।

दिन के सवा ग्यारह वजे के करीव मैं एस० वी० के आफिस में ले जाया गया भूखा, तिसा, उनींदा, थका और वढ़ी हुई दाढ़ी वाला। सारे शासन तंत्र पर रोष आ रहा था—पेट के अन्दर की ज्वाला उसे दुगुना कर रही थी। एस० वी० में पहुंचते ही जो अधिकारी मिला और जिसे कह सका, अपनी सारी व्यथा पूरे रोष के साथ कह सुनाई। वहां किसके पास तो मेरी व्यथा के लिए दर्द और सहानुभूति थी, और किसको मेरे रोष की परवाह। मानवजाति के गुण पुलिस में काम करने वालों के (लिए) दुर्गुण होते हैं। सव कुछ कह-सुन लेने पर भी मुझे कोई सहानुभूति नहीं मिली पर मन का वोझ जरूर कुछ हल्का हो गया।

एस० वी० के आफिस में अनेक युवक वैठे थे—कुछ पहले दिन वाले और कुछ दूसरे भी। जाने पहचाने लोगों में श्रीमदन गोपाल जोशी थे—दिन भर उनसे वातें होती रहीं। दिन गुजर रहा था पर पेट की ज्वाला और शरीर की यंत्रणा के निस्तार की कोई व्यवस्था नहीं हो पाई—इस वीच नजर पड़ी वीरेन्द्र के चेहरे पर। ये वड़ा वाजार के इन-चार्ज एस० वी० के इंस्पेक्टर। पुराने जाने-पहचाने और मुझे गिरफ्तार करने में जिनका मुख्य हाथ। इनसे व्यथा की वात कही और रोष भी प्रकट किया। कुछ असर हुआ और उन्होंने (मेरी) आफिस में फोन कर दिया। एक घन्टे में ही तो विजली की तरह दौड़ता हुआ विश्वनाथ (विश्वनाथ उपाध्याय) आया हाथ में फलों की झूलती गठरी लेकर। इस आदमी को कितने अविश्वास और आशंका के वाद रखा था, आज वह जवरदस्ती से मेरा अपनपन खींच ले रहा है। फलों से पेट को ठंडक मिली—शरीर को गर्मी की जरूरत थी। ओढ़ने, विछाने और पहनने के कपड़ों के लिए उसे कहा। वीरेन्द्र से मैंने यह भी कहा कि वह मुझे अलीपुर या और किसी लाकअप में न भेजकर सेंट्रल लाकअप, लालवजार में भिजवा दे जहाँ दूसरे

राजनैतिक वन्दी भी रहते हों। साथियों की भूख कितनी तीव्र होती है। उसने मेरा कहा किया और रात को मैं भी 'क्लप' (सेंट्रल लाक आप) में पहुंच गया।

रात जोशी से बिछाने की दरी और ओढ़ने को चद्दर लेकर निकाली। खाने को जो भात तरकारी मिली, वह खाया। दूसरे दिन दोपहर में फिर एस० बी० में ले जाया गया वहां विश्वनाथ ने पहनने के कपड़े, बिछाने का बिस्तर भेज दिया था, खाने को भोजन भी आ गया था—इन सब सुविधाओं के बाद आराम के साथ पिंजरे के १४ दिनों का जीवन काट दिया गया। बीच-बीच में विश्वनाथ जी और दो बार कँवर साहब (बहनोई उगम सिंह) भी मिलते रहे। 'क्लप' (लॉक अप) में भी नये-नये साथियों का समागम होता रहा—बांकेलाल कपूर (बड़ाबाजार के प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ता) आया। शायद ३ दिसम्बर तक उसका साथ रहा।

इस बीच एस० बी० में रोज ही बुलाया गया—प्रश्न तो शायद दो ही दिन किये गये—पर मेरा खाना जो वहां आता था, इसलिए बुलाया जाता था—उनकी मेहरबानी थी। आज प्रेसीडेंसी जेल के यूरोपियन वार्ड में बैठ कर ये पंक्तियां लिख रहा हूं, पर जो सुविधाएं एस० बी० में मिलीं, वे यहां भी महजूद नहीं होतीं। प्रश्न पृच्छा (इंटेरोगेशन) में कोई विशेष बात नहीं पूछी गयी। डर, धमकी या यंत्रणा की तो बात ही नहीं थी—आदमी से हर तरह की बातें निकालने के ढंगों (तरीकों) का यह जरूर अजायबघर है। पहली दिसम्बर को कोर्ट में पेशी थी—उम्मीद थी कि उसी दिन कुछ न कुछ फैसला हो जायगा—पर पुलिस ने उसी दिन और एक सप्ताह का समय मांग लिया। मैंने सी० पी० एम० से पूछा कि मेरे खिलाफ चार्ज क्या है? एस० बी० के आदमी ने उसके कान में कुछ कहा और उसने मुझे कह दिया—"आई शैल गेट द रिपोर्ट एण्ड शैल लेट यू नो आन द नेक्स्ट डेट आफ हियरिंग (मैं रिपोर्ट प्राप्त करूंगा और आपको सुनवाई की अगली तारीख के दिन बता दूंगा)।"

७ दिसम्बर को पुलिस हाजत की आखिरी तारीख थी। मुक्ति अथवा जेल। जेल होगी, निश्चय था, मुक्ति होगी, चाह थी। इस दिन एक अच्छी घटना भी हो गयी। लगभग तीन बजे कोर्ट में हमको ले जाने वाला सब-इंस्पेक्टर आया। कहा—'सिंघी साहब, छूट गये।' मुक्ति की खुशी स्वभाविक थी, पर विश्वास नहीं हो रहा था। और अविश्वास की उदासी भी कभी-कभी छा जाती थी। लेकिन कोर्ट में पहुंचने के पहले ही उसने अपनी गलती मंजूर कर ली, कहा—'छूटेंगे, पर १२९ वीं धारा में फिर गिरफ्तार कर लिये जायगे।' सूरत बदली, मन बदला और कल्पना की धारा बदली।

कोर्ट में पेशी हुई—जज ने कहा— 'डिस्चार्ज्ड' और एस० बी० के एस० आई० ने कहा—'रीअरेस्टेड अंडर १२९ डी० आई० आर० (भारत रक्षा नियम के तहत १२९ में पुनः गिरफ्तार)।' वहां से सीधा प्रेसीडेंसी जेल में लाया गया। आते वक्त कोर्ट के दरवाजे पर कँवर साहब (उगम सिंह) और विश्वनाथ जी से मुलाकात हुई।

७ दिसम्वर को शाम के साढ़े छह वजे के करीव प्रेसीडेंसी जेल की वड़ी हाजत' (अंडर ट्रायल यार्ड) में प्रविष्ट हुआ। नये वन्दी को पाकर सारे पुराने वन्दी अपने परिवार में नवागंतुक के आने की खुशी में नाच उठे---वस चन्द मिनटों में ही नये पुराने हो गये। वड़ी हाजत में कुछ 'क्लप' में वने हुए दोस्त थे, कुछ पहले के भी जाने हुए थे। मधु वावू, जो विजय सिंह जी (नाहर) के साथ रहता था, भी मिला। इसकी वहज से वड़ी हाजत में जो नौ दिन विताये, वे सुख-सुविधा से वीते। खाने वगैरह के मामले में उस जेल की पावंदियों में जितना उससे हो सकता था, उतना उसने किया।

शाम और रात लॉक-अप की वातें करने और जेल की वातें सुनने में वीतीं। सुवह ९ वजे के करीव मधु वावू के साथ 'गोरा डिग्री' (यूरोपियन वार्ड) में गया जहां श्री भागीरथ जी, सीताराम जी, वसन्तलाल जी और माखन सेन थे। मित्रमंडली के इन तीन सदस्यों के साथ आज चार महीने वाद मुलाकात हुई। डेढ़-दो घंटे उनके साथ वैठा---जिसमें कलकत्ता की, जयपुर की, वम्वई की, न मालूम कहां-कहां की और कितनी-कितनी वातें कर डालीं। जेल में जव कोई नवागन्तुक वाहर से आता है, तो वैसे ही उसके चारों तरफ पुराने वंदियों का झुण्ड आ खड़ा होता है। फिर यहां तो पुराने मित्रों का मिलन था। इन्हीं के साथ मैंने भोजन किया---और तव वापस वड़ी हाजत में। सुवह जेल के दरवाजे पर गया था---हिस्ट्री टिकट की विगत लिखाने। ७ दिसम्वर को मेरा वजन था १२५ पौंड।

ता० १५ दिसम्वर तक रहा वड़ी हाजत में। शुरू के दो-तीन दिन घर से भोजन आया था---वाद में इनकार कर दिया। दो कारण थे---घर पर तो कोई था नहीं---दूसरे के यहां से भिजवाने में दिक्कत होती होगी---और सोचा जेल के भोजन की भी आदत करनी चाहिए। फिर जेल का भोजन शुरू किया। हालांकि मधु वावू वेचारा मेरे लिए जितना हो सकता, उतना परिश्रम करके अच्छा भोजन वनवा लाता और मैं भी अधिक से अधिक वेपरवाह होकर उसे खाने की कोशिश करता---पर फिर भी शरीर मान न सका। मुख्य तो तेल के सागों (सब्जियों) की समस्या थी---जीवन में तेल से सदा नफरत थी और शरीर ने कभी उसको माना नहीं। कब्ज की शिकायत वढ़ गयी और तीन-चार दिन वाद ही वुखार भी हो गया। लाचार होकर घर के भोजन की तरफ मन फिर दौड़ने लगा---पर इनकारी जो भेज चुका था। तव जेल के डिपुटी जेलर से कहा कि 'मुझे यूरोपियन वार्ड मे भेज दें, वहां सर्व श्री भागीरथ जी वगैरह हैं, तो उनके भोजन में हिस्सा वँटा लूं। सुयोग से उसने मेरी वात मान ली। उधर श्री भागीरथ जी ने भी कोशिश की। और १६ दिसम्वर को मुझे यूरोपपियन वार्ड में भेज दिया गया। ता० १२ दिसम्वर को ही मैं सेक्यूरिटी प्रिजनर के वतौर कनफर्म कर दिया गया था---गवर्नमेन्ट की सेक्यूरिटी (सुरक्षा) के लिए हमें कैदी वनाया गया है। हमारे वाहर रहने से स्टेट सेक्यूर (राज्य सुरक्षित) नहीं समझी जाती।

वड़ी हाजत में जो एक सप्ताह गुजरा, उसमें अधिकांश समय गप्प करने और ताश खेलने में वीता। एक हाल में लगभग ३०-३५ वंदी थे। पढ़ने के लिए अच्छी

किताबें भी नहीं थीं और पढ़ने के अनुकूल वातावरण भी नहीं था। चरखा यद्यपि आ गया था पर कातने का सिलसिला भी ठीक से नहीं लगा। बहुत से आदमियों के बीच रहने की आदत नहीं है न? कुछ बंगला पढ़ने का अभ्यास जरूर किया। ता० ८ दिसम्बर को पिता जी को चिट्ठी लिखी---आखिर के तीन-चार दिन बुखार में निकल गये। हाजत के दिनों में एक छोटी सी घटना का अच्छा असर मन पर पड़ा। एक रोज सुबह उठ कर ज्योंही हाल के बाहर निकला तो ऊपर कौव्वों की कायं-कायं का बड़े जोर का शोर सुना---और थोड़ा आगे बढ़ते ही देखा कि एक कौव्वे का पैर रस्सी से बांध कर किसी ने उसे हाल की खिड़की के सींकचे के साथ बांध दिया था---और बंदी कौव्वे की उस अवस्था पर सैकड़ों कौव्वे हाल में मंडरा रहे थे और कायं-कायं से हम सब मनुष्य बंदियों का ध्यान आकर्षित कर रहे थे। कौव्वे को बंदी बनाने का काम एक 'फालतू' का था। फालतू जेल का शब्द है। यह उस नीची श्रेणी के मामूली बंदी का नाम है, जिसको राजनैतिक कैदियों की सेवा के लिए तथा जेल के दूसरे सरकारी कामों के लिए तैनात कर दिया जाता है। पशु-पक्षी सब ही निर्बुद्धि होते हैं फिर कौव्वा तो पक्षियों में भी शूद्र समझा जाता है। पर इस तरह का जाति-प्रेम और अपने समाज के हर व्यक्ति की स्वाधीनता का ऐसा प्रेम देख कर मन पर एक गहरी छाप पड़ी। गांधीजी और दूसरे देश-पूज्य नेताओं को जेलों में डाल दिया ब्रिटिश सरकार ने, पर हमने उसके खिलाफ कितना शोर मचाया? उनको छुड़ाने के लिए क्या किया? क्या आदमी कौव्वे से भी गया-बीता है?

X X x

३०-१२-४२

नई दुनिया के सम्बन्ध में इस पुस्तक (ब्रेव न्यू वर्ल्ड : एलडस हक्सले) में जो कल्पनाएँ की गयी हैं, वे पुस्तक को समाप्त करने के बाद भी ठहरी हैं। विज्ञान दो सौ-चार सौ वर्षों में अगर दुनिया का यही रूप बना दे, तो ताज्जुब नहीं। दुनिया के चार बड़े प्रश्न हैं जीवन, मृत्यु, समय और स्थान। समय और स्थान के सम्बन्ध में विज्ञान ने अपना अधिकार बहुत बढ़ा लिया है। जीवन की समस्या भी 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' की कल्पना के अनुसार हल हो गई, मान लें पर मृत्यु का आधा सवाल हल नहीं हो पाता। विज्ञान किसी को मार सकता है, पर मौत से बचाने में शत-प्रतिशत कामयाब होने का दावा नहीं कर सकता। सम्भवतः इस प्रश्न को हल न करने तक ही विज्ञान टिका है---प्रश्नों के समाधान में से फिर प्रश्न निकालना विज्ञान का काम है। प्रश्नों और समस्याओं का अन्त भी विज्ञान का अन्त हो जायेगा। विज्ञान का पाया मात्र एक बात पर टिका है, अभी बहुत कुछ ज्ञेय बाकी बचा है। पिछली दो शताब्दी वैज्ञानिक विकास और उथल-पुथल की शताब्दियां कही जाती हैं। विज्ञान की उन्नति के प्रारम्भ में हमने सुख-सुविधाओं की वृद्धि का युग देखा, जिसने मानव को आकर्षित किया उसको लुभाया, ललचाया। और विज्ञान का दूसरा रूप आज हमारी आंखों के सामने ही मौजूद है। प्रतिक्षण जो इतना बड़ा संहार हो रहा

है, वह इस विज्ञान की ही तो देन है। यह टोटल वार इस टोटल साइन्स का ही तो परिणाम है। यन्त्रों की भरमार ने मनुष्यता को नष्ट कर दिया है---अव फिर मनुष्यता विज्ञान के खिलाफ जिहाद कर रही है। 'व्रेव न्यू वर्ल्ड' की तरह ही अगर दुनिया वनी तो मनुष्य चलता-फिरता सचेतन प्रस्तर खण्ड ही हो जायगा।

जेल के जीवन की वात तो क्या लिखूं? प्रेसीडेंसी जेल भारतवर्ष की दो या तीन सवसे वड़ी जेलों में से है। आज यह लगभग एक हजार आदमियों की एक छोटी मोटी वस्ती है। यहां केवल दो जाति के लोग हैं एक द्विज और दूसरे शूद्र। जो राजनैतिक कैदी हैं, जिनको जेल की भाषा में 'स्वदेशी वावू' कहते हैं; उनको द्विज समझना चाहिए और वाकी सबको शूद्र। वाकी सव शूद्र नहीं हैं, तो भी उनको यहां शूद्र बना कर रखा जाता है। इनमें आपस में किसी तरह के जातीय या साम्प्रदायिक भेद-भाव रखना सम्भव नहीं है---सब अपने को भारतीय और मनुष्य मानें। राष्ट्रीयता और मानव-प्रेम का कितना ऊँचा आदर्श सिखाया जाता है। इस वस्ती का शासन तंत्र वाहरी यानी विदेशी लोगों के हाथ में है और वस्ती के लोगों का उसमें किसी तरह का दखल नहीं है। खास बात यह है कि वस्ती में स्त्रियों और वच्चों की संख्या नाममात्र की है और जो स्त्रियां हैं वे भी मुगल काल के शाही परिवार के लोगों की तरह एक खास जगह में पर्दे में रखी जाती हैं। वस्ती के भीतर भी वे और कहीं नहीं जा सकतीं। सवाल हो सकता है कि वस्ती की आवादी कैसे वढ़ती घटती है। इसके लिए यह इन्तजाम है कि वस्ती की आवादी कम करनी होती है तो कुछ को यहां से निकाल दिया जाता है और वढ़ाना होता है तो वाहर से शासन तंत्र के लोग, और लोगों को पकड़ लाते हैं।

शूद्र जाति के लोगों को दिया जाने वाला खाना, कपड़ा, विछौना और उनके साथ किया जानेवाला व्यवहार पशुओं के साथ किये जाने वाले व्यवहार से अच्छा नहीं है। जव भोजन करने के लिए इनकी 'फाइल' वैठी होती है और हम उनके पास से निकलते हैं तो भोजन में से निकलने वाली वदवू से हमें अत्यन्त घिनौनी हो आती है। आज उनको पानी पीते देखा, मानों सैकड़ों पशु पानी पी रहे हैं। मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता कि अगर चंद दिन भी मुझे इस तरह का जेल-जीवन काटना पड़े तो क्या दशा हो। हम गांधी जी के सिद्धान्तों को समझने और उनके अनुसार चलने की अक्सर वातें किया करते हैं, पर इस जीवन की कल्पना करें तब मालूम हो। पर यह भी एक दिन हमारे साथियों को देखना ही पड़ा था---इसी तरह के शूद्र जीवन में से हमारे जैसे हजारों नौजवानों को सड़ना पड़ा था। उन्हीं की तपस्या और खासकर जतीनदास की तपस्या और वलिदान के फलस्वरूप ही हम आज स्वदेशी वावू बने हुए हैं और शूद्र जाति के मुकावले में राजसी ठाटवाट से रहते हैं। हमें खाने को उनसे काफी अच्छा मिलता है, पहनने को अच्छा दिया जाता है, अपने घर और अपने पैसे से जो चाहें, वह मँगाने की सुविधा है, पढ़ने को अखवार और कितावें हैं, टहलने को मैदान है। जेल की जैसी अगर कोई वात है तो यही कि वाहर नहीं निकल सकते और १५ दिन में एकवार से ज्यादा वाहर से किसी अपने आदमी से नहीं मिल सकते। इतना सब होते हुए भी वाहर रहने वाले आदमी को इस तरह का जेल-जीवन जितना

आसान लगता है, उतना जेल के भीतर आ जाने पर वह नहीं मालूम होता। मनुष्य के लिए सबसे बड़ा सुख, सुविधा और आराम स्वतंत्रता है। उसके छिन जाने पर उसका महत्व भलीभांति हृदयंगम होता है। अधिक से अधिक सम्भव सुविधाएँ मुझे यहां मिली हुई हैं, तिस पर भी यहां बन्दी बने रहने में मुझे कोई सुख नहीं है। बाहर जाने के लिए दिल छटपटाता ही रहता है।

गत सप्ताह में कलकत्ता पर जापानी विमानों की बमबाजी की खबर से जेल के भीतर भी एक नयी हलचल पैदा हो गयी है। पहला आक्रमण २०-१२ को रात सवा दस बजे हुआ था—मेरे लिए जीवन में विमानों की बमबाजी का यह पहला अनुभव था। ठीक सिर पर से दुश्मन के हवाई जहाज गुजरे और उनकी आवाज हमने सुनी। बमों के धड़ाके भी खूब अच्छी तरह सुने। और बाद वाली २ रात्रियों के आक्रमण में नौ बमों के फटने पर होने वाली चमक भी देखी। आज ता० ३०-१२-४२ को रात के आठ बजे तक ५ बार हवाई हमले हो चुके हैं—२०-१२ को रात के सवा दस बजे, २१-१२ को तड़के सवा तीन बजे, २२-१२ को दिन के बारह बजकर दस मिनट पर, २४-१२ को रात के सवा नौ बजे और २८-१२ को तड़के साढ़े तीन बजे। हर बार हमने आकाश में जहाजों की घरघराहट सुनी, बमों की आवाजें सुनीं और दो तीन बार बिलका और कम्पन भी देखा। पिछली जनवरी-फरवरी में हम लोगों ने बम-आक्रमण में घायल होने वाले लोगों की मरहम-पट्टी के लिए मोबाइल स्क्वैड (घूमंत जत्था) की योजना बनायी थी—और आज अपनी ही मरहम-पट्टी का कुछ हिसाब नहीं है। रात को सात बजे अपनी-अपनी कोठरियों में बन्द कर दिये जाते हैं और चाबी जेल के दरवाजे पर चली जाती है। अगर कोठरी के चौड़े-चौड़े सींकचों में होकर कोई स्प्लिंटर (छितरा-टुकड़ा) आ लगे, तो आग बुझाने वाला कोई नहीं है। चाबी आते-आते आदमी का दम निकल जाय पर यह सब चिन्ताएँ व्यर्थ हैं। अब सब परिस्थितियों के लिये तैयार रहना है। अपने मन की और अपने वश की किसी बात के लिए गुंजाइश नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि कोठरी में बन्द अवस्था में जापानी बमों से मर जाना कुत्ते की मौत मरना है—पर क्या इलाज है—यह जानते हैं कि एक दिन मरना है—फिर इस तरह कुत्ते की मौत मरने की अपेक्षा वीरतापूर्ण मौत क्यों न मरें। पर मरने की इच्छा करके मरना क्या आसान काम है?

इस बमबाजी से संश्लिष्ट कई समस्याएँ हमारे दिमाग में आज कल चक्कर काटा करती हैं। क्या इनसे हमारे देश को कोई लाभ होने वाला है? और इनसे प्रत्यक्ष जो जान-माल की क्षति होती है, वह भी क्या किसी उद्देश्य के लिये उपेक्षणीय है? बहुत से लोग कहते हैं कि जापान के आक्रमण की मदद से हम अँगरेजों को इस देश से निकालने में कामयाब हो जायेंगे और इस तरह देश को आजाद कर लेंगे। ऐसा कई लोग सोचते हैं और यह भी दलील दी जाती है कि आज तक क्या दुनिया में किसी भी देश ने बिना दूसरे देश की मदद के आजादी पायी है? अँगरेजों के खिलाफ सारे देश में जो रोष और नफरत फैली हुई है और उनसे जनसाधारण को जो भयंकर तकलीफें हुई हैं, उनके कारण आज देश में निन्यानवे फीसदी लोग उक्त रीति से ही सोचते हैं—यानी

गलत का वे विचार तक नहीं करते। गाँधी जी की दीर्घ दृष्टि ने आने वाली परिस्थिति को पहले से समझ लिया था और इसी कारण से उन्होंने अँगरेजों को अपने खुद के हित के लिए भी भारत छोड़कर चले जाने को सलाह दी। अँगरेजों ने सलाह नहीं मानी, तब देश को इस भयंकर परिस्थिति से बचाने के लिए उन्होंने (गाँधी जी) युद्ध की ठानी—पर अंगरेजों के दुर्भाग्य ने उन्हें अंधा बना दिया है। गाँधी जी को कैद कर उन्होंने अपने पैर काट लिये हैं। आज सारा का सारा देश किसी भी कीमत पर अँगरेजों को निकालने के लिए तुला हुआ है। अगर जापान ने आक्रमण किया और उसकी विजय हुई तो सबसे बड़ा कारण देश के भीतर उत्पन्न हुई यह परिस्थिति होगी। जब देश में असंतोष और निराशा इतनी बढ़ जाती है, तब विवेक और विवेचन बहुत तीक्ष्ण नहीं रह पाता। मैं यह नहीं मानता कि जापानी आक्रमण से हमारे देश का कोई भला होगा। पर क्या हो ? जो आज भी निर्लिप्त बुद्धि से वस्तुस्थिति को सोच और समझ सकते थे, उनको तो अँगरेजों ने जेल के सींकचों में बन्द कर रखा है, दूसरा कोई क्या करे ?

इस बमबाजी की बात चलने पर हम इसकी नृशंसता की शिकायत करते हैं और अहिंसा की दृष्टि से इसके प्रति विरोध जाहिर किया करते हैं। पर इसमें अपनी कायरता के अलावा और कुछ नहीं लगता। जैसे दुनिया में होने वाली सैकड़ों बुराइयों के लिए हम ईश्वर का नाम लिया करते हैं वैसे ही अहिंसा को भी हम अपनी कायरता को छिपाने के लिए काम में लाते हैं। हमारा जीवन हिंसा पर बना है, खड़ा है, और वैसे ही उसको चलाने की हमारी ख्वाहिश है, फिर किसी अन्याय के प्रतिरोध के लिए हमारी नाम की अहिंसा फलवती कैसे हो सकती है। अहिंसा में प्रतिकार की ताकत है पर अहिंसा को प्रतिकार के तरीके (के रूप) में काम में लाने वाले के जीवन में जब तक हिंसा का कोई भी प्रतीक मौजूद रहेगा, तब तक अहिंसक प्रतिकार असफल ही रहेगा।

विज्ञान की सुख-सुविधाओं से जैसा हमारा जीवन बन गया है, उसमें हमारा जीवन जरा सी भी कमी बरदाश्त नहीं कर सकता। तथाकथित व्यापार, पूंजी और उद्योग धन्धे छोड़े नहीं जा सकते, तब किस अहिंसा से हम बमों का मुकाबला करना चाहते हैं ? ऐसी दैवी अहिंसा अभी तक पैदा नहीं हुई है और कभी होगी भी नहीं। मेरी समझ में आज तक नहीं आया कि इसका क्या कारण है कि महावीर ने अहिंसा के पाये पर जिस समाज की रचना की, उसमें पूंजीवाद को अधिक से अधिक प्रश्रय मिला- और गांधीवाद भी मूल में पूंजीवाद का सीधा विरोधी होते हुए भी पूंजीवाद को अप्रत्यक्ष रूप से मदद दे रहा है। कम से कम इतना तो ठीक ही है कि आज देश में अगर पूंजीवादी किसी भी वाद को कम से कम खतरनाक समझते हैं, तो गांधीवाद को। इसमें गांधीवाद का दोष नहीं है, गांधीवादियों का दोष निश्चय ही है। गांधीवादी जितने बड़े आदर्श की बात करते हैं, उनका जीवन उतना ऊँचा और बड़ा है नहीं। पूंजी के साथ सबसे बड़ा समन्वय और उसकी खुशामद करने में गांधीवादी बहुत झुके पाये जाते हैं, इसलिए उन्हें (पूंजीपतियों को) इसका (गांधीवाद) भय नहीं। आदमी सिद्धान्त से नहीं डरता, उसके वर्तन से डरता है। हर जमाने में पूंजीवाद को, सामंत-वाद को और साम्राज्यवाद को धार्मिकवाद के सहारे की जरूरत रही है। मुझे भय होता है कि कहीं आज के पूंजीवादी गांधीवाद को ऐसा न बना लें। शायद जब तक गांधी

जीवित हैं तब तक यह आशंका निर्मूल ही हो। जीवन में से हिंसा को निकालने के पहले और उसके बजाय गांधी और अहिंसा का नाम लेना और चरखा कातना दूसरों को नहीं तो कम से कम अपने को धोखा देना तो है ही। अहिंसक समाज हो तो अहिंसक प्रतिरोध का शस्त्र पूरी सफलता के साथ काम में लाया जा सकता है पर हिंसक पाये पर खड़े समाज की रक्षा के लिए अहिंसक प्रतिरोध के तरीके बेकार साबित होंगे। इसलिए सवाल मौजूदा समाज को अहिंसक बनाने का है न कि मौजूदा समाज को अहिंसक तरीकों से बचाने का। अगर हमने ऐसा किया तो घोड़े के आगे गाड़ी बांधना होगा—टु पुट द कार्ट बिफोर द हॉर्स।

दूर न जा कर हम आज के हमारे आन्दोलन पर ही एक दृष्टि निक्षेप करें। जो कुछ आज हो रहा है, वह अहिंसक दृष्टि से पता नहीं कितना ठीक है। पिछले दो बड़े आन्दोलनों के हिसाब से तो यह बिल्कुल अलग तरह की चीज है। रेल-लाइन हटाने और तार काटने को हम अगर अहिंसक प्रतिरोध के साधनों में शुमार कर भी लें तो जगह-जगह होने वाले बम विस्फोटों को कभी भी अहिंसक मुकाबले के साधन नहीं मान सकते—फिर भी आज तो आन्दोलन का वही मुख्य अंग है। ऐसा क्यों हुआ? जवाब सीधा सा है कि अहिंसक प्रतिरोध की कोई ताकत देश में नहीं थी। जो लोग आज अहिंसा के नाम पर इन होनेवाली घटनाओं पर घृणा प्रकट करते है, वे अपने मन की बात करें तो कोई उन्हें रोकता है क्या? अहिंसक प्रतिकार के साधन—हड़तालें, असहयोग, अवज्ञा और न्याय के लिये भूख-हड़ताल आदि ही तो हैं, इनको क्यों नहीं कोई करता? जेलों में गए हुए (लोग) भी क्या असहयोग और भूख हड़ताल नहीं कर सकते? अगर बाहर कानून तोड़ा जा सकता है, तो जेलों के भीतर नहीं तोड़ा जा सकता? परिणाम तो बाहर भीतर एक सा ही होगा। लाठीचार्ज और गोलीकांड। अगर उद्योगपतियों ने मिलें बन्द की होतीं, सरकारी नौकरों, वकीलों, पुलिस और फौज ने असहयोग किया होता, और दार्शनिकों ने शहीदी का व्रत लिया होता तो ये बम विस्फोट क्यों होते और अगर होते तो होते, हम अपना काम करते रहते। हम कुछ न करें तो करने वाले अपना काम करेंगे ही। गांधी जी और उनके जिन साथियों में कर गुजरने की हिम्मत है, वे अपना काम कर रहे हैं, करेंगे और उसका उनको और देश को परिणाम भी मिल जायेगा।

किसी सैनिक कार्रवाई पर शुद्ध अहिंसक तरीके से पर्यवेक्षण करना एक बात है और अपने स्वार्थों के खतरे में पड़ जाने की आशंका से बात करना सीधी कायरता है।

३१. १२. ४२

XXXX लाक अप के समय में १५ मिनट बाकी थे इसलिए टहल लिये। टहलते समय कई वर्षों के मारवाड़ी समाज के काम काज के समय की बात चल पड़ी—किस तरह आदमी १५-१६ घण्टे प्रतिदिन काम करते थे। इसी सिलसिले में भागीरथ जी और सीताराम जी ने अपनी युवावस्था के प्रारम्भिक जीवन के अनुभव बताये कि किस तरह उन्होंने कितनी गरीबी, कठिनाई और परिश्रम का जीवन बसर किया था। जो

इनहसार

कुछ इन लोगों ने कहा—वह साधारणतः कल्पना के बाहर की बात लगती है। पर मैंने जब कभी इस प्रकार के अनुभवों की बातें सुनी हैं, मुझे वे बहुत इंसपायरिंग (प्रेरक) और जीवन भरी लगती हैं। माना कि जीवन निर्वाह और धनोपार्जन ही उद्देश्य था, पर किस संतोष, धीरज और अध्यवसाय से लोग अपना जीवन गुजारते थे और धीरे-धीरे बढ़ते थे। यह सारी कहानी अद्भुत साहस और कठिन परिश्रम का बोध कराती है। मारवाड़ी समाज व्यापार में इतनी उन्नति कर सका और लागडांट में सबको मात कर सका, उसका कारण मुख्यतः यही है। पर इसी का यह भी कारण है कि सारी मारवाड़ी जाति डीवाइटलाइज्ड (जीवनी शक्ति से विहीन) एण्ड डी कलचराइज्ड (संस्कृति-विहीन) हो गयी। उस कहानी का यह दूसरा बुरा पहलू भी है।

इस कहानी की बातें करते करते बन्द कर दिये गये और उसके बाद मैंने यह आज की डायरी लिखी। अब पढ़ूंगा और सोचूंगा। १९४२ में सोऊंगा और १९४३ में उठूंगा।

२०. १. ४३

x x x श्री भागीरथ जी की तबीयत चार पांच दिन से खुश नहीं है। शरीर और तबीयत पर कुछ गिरावट सी परिलक्षित होती है। भोजन पर से भी उनकी रुचि हटती जाती है। कमजोरी भी आती मालूम पड़ती है। इस कारण से सभी को चिंता सी हो गयी है। श्री भागीरथ जी स्वभाव से ही बड़े प्रफुल्लित तबीयत के हैं और मामूली तकलीफ को तो वे 'गिनारते' (गिनते) तक नहीं—इसलिए कोई विशेष बात हुए बिना उनकी तबीयत में इस प्रकार का शैथिल्य आ सकता ही नहीं। भागीरथ जी को तीन-चार वर्षों से तो अच्छी तरह ही जानता हूं—जो कुछ इम्प्रेशन (धारणा) दूर से देखते हुए बनाया था, वही यहां साथ रहने से और भी दृढ़तर हो गया है। उनके माफिक का आदमी जल्दी नहीं मिलता। इतना निरभिमान और कोमलतापूर्ण सदाशयवृत्ति का होना मामूली बात नहीं है। नेकी, चारित्र्य और परदुखकातरता के गुण इनमें लबालब भरे हैं। दयावृत्ति से तो जैसे वे बने ही हैं। जीवन में कई लोगों का सम्पर्क मिला है—पर इनके साथ का सम्पर्क अपनी विशेषता रखता है। इनकी मित्रता कर आदमी कृत-कृत्य हो जाता है। भगवान इन्हें दीर्घायु और सुखी रखें।

रात के आठ बजे यह डायरी लिखी है—अब पढ़ूंगा जिससे जवाहरलाल के इतिहास के शेष पृष्ठ जल्दी हो खत्म कर सकूं—आज शायद फिर जापानी आक्रमण हो और पढ़ना बीच में ही रुक जाय।

११-२-४३

कल शाम को जब तीन मित्रों के साथ बैठकर गांधी जी, अहिंसा और वर्तमान आंदोलन के विषय में चर्चा कर रहा था, उस समय और रात में डायरी लिखते समय तक भी पता नहीं था कि उस समय तक पूज्य गांधी जी के अनशन के कुछ घंटे बीत

चुके थे। बातों के सिलसिले में हम लोगों ने उपवास की बात भी की थी—और सभी को ऐसा लगता था कि उपवास तो आयेगा ही। पर यह किसको पता था कि वह आ चुका था।

आज सुबह ज्योंही समाचार-पत्र हाथ में आया तो गांधी जी के २१ दिन के उपवास की खबर पढ़कर हम सब सन्न से हो उठे। टहलना छोड़कर हम कमरे में आकर बैठ गये और भागीरथ जी ने उपवास के सम्बन्ध में सरकार द्वारा निकाला हुआ सारा वक्तव्य पढ़कर सुनाया और गांधी जी का वायसराय के साथ हुआ पत्र-व्यवहार भी पढ़ा। इसमें काफी देर लगी क्योंकि वक्तव्य स्वयं बहुत बड़ा था और फिर गांधी जी के चार पत्र और वायसराय के तीन पत्रों से समाचार-पत्रों के काफी पृष्ठ-कालम भर गये थे।

गांधी जी ने तारीख १० फरवरी से २१ दिन का उपवास लिया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि यह आमरण अनशन नहीं है। उन्होंने उपवास का तरीका भी अपनी शारीरिक अवस्था के अनुकूल तय किया है। चूंकि पानी उनके शरीर को माफिक नहीं होता इसलिए उन्होंने पानी में नींबू वगैरह खट्टे फलों का रस मिलाकर लेने का तय किया है। यद्यपि पानी में रस मिलाकर पीने से कोई बहुत खास फर्क नहीं पड़ता, पर गांधी जी के शब्दों से आशा बंधती है कि इस उपवास में उनका प्राणांत नहीं होगा। बस, केवल इतनी मात्र ही आशा है। फिर भी उनकी ७४ वर्ष की आयु को देखते हुए और उनके मौजूदा स्वास्थ्य का विचार करते हुए उपवास बिल्कुल आशंका से मुक्त नहीं है। खतरा तो है ही। पर आज हम यह सोचना भी कैसे गवारा कर सकते हैं कि इस उपवास में हम उन्हें खो देंगे। जिस प्रकाश-स्तंभ ने पिछले ३०-३५ वर्षों में न केवल भारतवासियों को बल्कि सारी मानव-जाति को पथ दिखलाया है, जिसने सारी मानव जाति की वेदना का वरण करके अपनी आत्मशक्ति से उसका प्रतिकार करने का प्रयत्न किया है, उसे हम खो कैसे देंगे। इसी समय तो उसकी सबसे ज्यादा जरूरत है। मानव जाति को महान् संहार की प्रक्रियाओं से बचानेवाला वह एक ही महापुरुष है। खैर, संसार की बात दूर की है, हम भारतवासियों का तो वही एक आधार है। उनके सिवा कौन है जो इतनी खूबी के साथ हमारे लिए 'गुड्स डेलिवर' करने का काम कर सके। गांधी हमारे बीच से चला जायेगा, इस बात की कल्पना से ही हम सिहर उठते हैं। मेरा मन बार-बार कहता है—गांधी के जीवन के बहुत दिन अभी बाकी हैं। और उनके हाथ से अभी केवल हिन्दुस्तान के लिए ही नहीं, समस्त मानव जाति के हितार्थ भी बहुत काम होने बाकी हैं। आज चारों तरफ जो अंधकार की मोटी तहें हमें घेर रही हैं, उनके बीच से पथ पर चलते रहने के लिए बस यही एक विश्वास हमारा सम्बल है। गांधी दीर्घायु हों।

गांधी-लिनलिथगो पत्र-व्यवहार को मैंने आज ही आज में दो बार पढ़ लिया है। एक ओर गांधी की उच्च मानवात्मा और सत्याग्रही के नाते उनकी निष्कपटता की छवि इन पत्रों में है। दूसरी ओर ठीक उससे उल्टी लिनलिथगो के पत्रों में है रोष, क्षुद्रता, अविश्वास और धोखेबाजी। वायसराय की तीन चिट्ठियों में और उनकी हर पंक्ति में केवल एक ही बात है कि गांधी अपनी गलती माने और अगस्त '४२ के

एकत्तर

कांग्रेसवाले प्रस्ताव को वापिस लें। इसके अलावा दूसरी कोई बात नहीं है---पर गांधी जी ने जो बार-बार पूछा है कि उन्हें उनका दोष सप्रमाण समझाया जाय, उसका कोई समाधान नहीं है। गांधी जी अपने एक पत्र से दूसरे पत्र में जितने ही अधिक महान् होते गये हैं, उतने ही वायसराय क्षुद्र से क्षुद्रतर और क्षुद्रतम होते गये हैं। अपने अन्तिम पत्र में यह कहकर कि 'गांधी बच निकलने की तरकीब कर रहा है (एन ईज़ी वे आउट)' या कि 'उसका उपवास एक राजनैतिक ब्लैकमेल है' तो वायसराय ने गुस्ताखी की हद कर दी है। कैसी विचित्र बात है कि लार्ड लिनलिथगो गांधी जी की हिंसा-अहिंसा की तरमीम करता है। इन चिट्ठियों से लिनलिथगो कितना हार खाया हुआ है, यह मालूम होता है। दुनिया क्या इसे समझेगी? गांधी जी न्याय चाहते हैं और न्याय के लिए लड़ते हैं। वह अगर उन्हें यहां नहीं मिला तो उसे वे ईश्वर के पास पायेंगे। न्याय में उनका अटल विश्वास है। उसको पाने के अहिंसक तरीकों में भी उनका पूरा-पूरा विश्वास है। वे तो मरकर ही न्याय पा लेंगे पर ब्रिटिश जाति का जो काला मुँह होगा, वह दुनिया में कैसे धुल पावेगा?

आज संध्या को स्टेट्समैन का संपादकीय लेख पढ़ा। वह भी कितना ओछा और भ्रमपूर्ण है। गांधी जी के विचारों से वह सहमत नहीं हो, यह ठीक है पर उनकी मन्शा का इतना गलत अर्थ लगाकर मनमानी आलोचना करना तो शराफत के बाहर की चीज़ हो जाती है। आज मन और मस्तिष्क दोनों सूने से हो रहे हैं। बस, केवल बापू का उपवास ही दिमाग में भरा है। चित्त किसी कार्य में एकाग्र नहीं होने पाता, उड़ा-उड़ा सा लग रहा है। पता नहीं, हिन्दुस्तान के भविष्य का इतिहास तुरन्त ही किस रूप में बननेवाला है।

१२-२-४३

सुबह ६ बजे उठा तबसे ही अखबार देखने की उत्कंठा शुरू हो गई पर ७-७। बजे से पहले यहां अखबार नहीं मिलता। उस समय तक टहलना भी खत्म होता है। टहलना खत्म होते-होते अखबार आ गया। सबसे पहले बम्बई गवर्नमेन्ट की विज्ञप्ति देखी, जिसमें कहा था कि गांधी जी कुशल से हैं। उसके बाद गांधी जी और गवर्नमेंट के होम डिपार्टमेंट के सेक्रेटरी सर रिचार्ड टाटनहम के बीच हुए पत्र-व्यवहार में भी गांधी जी का एक पत्र बड़ा मर्मवेधी है। आज संसार में यही एक जीवित व्यक्ति है जिसके सामने बुद्धि की अपेक्षा श्रद्धा के ज़रिये ही संतोष होता है। इतना महान् व्यक्ति दुनिया के लिए जो महान् संदेश लेकर उत्पन्न हुआ है, वह अभी पूरा नहीं हुआ है। आज के महाविनाशकारी युद्ध के बाद नयी दुनिया के निर्माण में गांधी जी द्वारा बहुत बड़ा काम होनेवाला है। पिछले महायुद्ध के बाद दुनिया के भविष्य की नींव के निर्माण का काम करनेवाला कोई आदमी नहीं था। प्रेसिडेंट विलसन के हाथों में जो काम आया उसके लिए वह ज़रा भी योग्य नहीं था। सन् १९१८ की संधि में विलसन के हाथों से ही आज चलनेवाले महायुद्ध की नींव रख दी गयी थी। उस संधि के नियोजकों के बारे में क्या कहा जाय जिसके २१ वर्ष बाद

ही दूसरे उतने ही या दरअसल उससे भी कई गुना भीषण युद्ध का दावानल भभक उठा। आज केवल दुनिया में गांधी है जिसके पवित्र हाथों से यदि संधि का मसविदा बने और उसकी योजना से दुनिया के भविष्य की बुनियादें डाली जायें तो ऐसी भयंकर विपत्ति में फिर विश्व न फँसे। ऐसे गांधी जी अगर उस काम को किये बिना ही चले जायेंगे तो एक और भयंकर भावी युद्ध की तैयारी होगी।

गांधी जी के उपवास के साथ सहानुभूति करनेवाले बन्दी एक दिन उपवास करें यह विचार कल से ही राजबन्दियों में चल रहा है पर कोई निश्चय नहीं हो पाया। यह विचार ज्यादा प्रबल मालूम होता है कि उपवास करनेवाले सब बन्दी किसी एक ही दिन उपवास करें। मुझे यह बात अच्छी मालूम होती है। पर कुछ लोग सिद्धान्ततः इसके विपरीत मतवाले भी हैं। उनका मत है कि एक दिन करने से कुछ प्रदर्शन सा हो जाता है जो उनकी दृष्टि से गांधी जी की इच्छा के माफिक नहीं है। उनका मत है कि इसमें प्रदर्शन या दबाव की बात जरा भी नहीं होनी चाहिए। कुछ लोगों में इस मतभेद को लेकर काफी गरमागरम बहस भी हो गयी। यह देखकर बड़ा सदमा मन को पहुंचा। आखिर इस बात पर गरमागरमी की कौन सी बात है। एक उपवास के लिए इतनी लड़ाई! क्या होगा हिन्दुस्तान तेरा।

१४-२-४३

कल रात बसन्तलाल जी ने कलम ले ली थी इसलिए मैं डायरी नहीं लिख सका और लिखने को विशेष कुछ था भी नहीं। पूज्य गांधी जी के उपवास के कारण सारे देश में चिंताजनित हलचल हो गयी है—उसी का समाचार आज अखबारों के पाठकों के लिए हिन्दुस्तान में मुख्य विषय है। सब तरह के धार्मिक सामाजिक एवं राजनीतिक मतभेदों के बावजूद गांधी जी हिन्दुस्तान की करोड़ों की जनता में सबसे लोकप्रिय हैं। उनके जीवन को खतरे में हुआ जानकर किस पर चिन्ता का बोझ नहीं है। फिर भी जितनी हलचल होनी चाहिये थी उतनी नहीं है। आज हिन्दुस्तान की जैसी परिस्थितियां हैं, खाद्य पदार्थों के अभाव से जो स्थिति उत्पन्न हुई है और राजनैतिक परिस्थिति जितनी असंतोषजनक है, उसमें भी हिन्दुस्तान उसी तरह प्राणशून्य बैठा है जबकि दूसरे देशों में कुछ का कुछ हो जाता। वर्षों की गुलामी के कारण मानो सारे राष्ट्र को लकवा मार गया हो।

गांधी जी का स्वास्थ्य उपवास के चौथे दिन जैसा होना चाहिए, वैसा है। उनकी सेवा में श्री प्यारेलाल, डा० सुशीला नायर, श्रीमती सरोजिनी नायडू, मीरा बेन और डाक्टर गिल्डर हैं। कस्तूरबा भी वहीं होंगी— उनका नाम अखबारों में नहीं आया। डा० बी० सी० राय को गांधी जी ने बुलाया है। वे भी कल परसों तक वहां पहुंच जायेंगे। सरकार के रुख में अभी कोई परिवर्तन नहीं दीखता पर इस महामानव के सामने उसे झुकना ही पड़ेगा। कुछ दिन और निकल दे पर रुख में परिवर्तन तो होकर ही रहेगा।

हिरासत

आज मेरी मुलाकात का दिन था। दोपहर में १२ बजे श्री उगम सिंह जी और विश्वनाथ जी आये थे। करीव एक घन्टा उनके साथ वैठकर बातचीत करने का मौका मिला। घर पर पिताजी वगैरह सब राजी खुशी हैं। उनके पास मेरी चिठ्ठियां तो वरावर पहुंच रही हैं पर मेरे पास उनकी चिठ्ठी कई दिनों से नहीं आ रही है। आज भी विश्वनाथ जी के द्वारा रामेश्वर जी ने कहलाया था कि सिद्धराज जी वनारस में २६ जनवरी को गिरफ्तार कर लिये गये। अव समझ में आता है कि क्यों उनका कोई पत्र इधर नहीं आया। और मेरी तो कई चिठ्ठियां गयी हुई हैं। उनका क्या होगा ? सिद्धराज जी के पकड़े जाने की खबर से ताज्जुव नहीं हुआ पर वनारस में पकड़े जाने से अवश्य थोड़ा आश्चर्य हुआ। सम्भवतः वे वहां भाई साहव के पास गये होंगे और स्वाधीनता दिवस के उपलक्ष्य में किसी कार्यवाही में भाग लेने के दोष में पकड़े गये होंगे। पता नहीं भाई साहव का क्या हुआ। वेचारे सिद्धराज जी अकेले पकड़े गये जेल में। खैर, जेल में वे भी आ गये।

अपने साथ के मित्रों में सिद्धराज जी के गिरफ्तार होने की खवर से जो प्रतिक्रियाएँ हुईं, उनसे मालूम हुआ कि लोकमत कैसा होता है। एक मित्र ने कहा— 'वे तो गांवों में काम करने गये थे न ?' इसमें से ध्वनि यह निकलती है कि वे नाम के लिये जेल चले गए—गांवों के काम में जाने में नाम नहीं होता न। यह कहने वाले का कोई खास दोष नहीं है। लोकमत चीज ही ऐसी होती है। शास्त्री जी भी कुछ ऐसी ही कल्पना करेंगे और कुछ इस तरह का लोकमत वनेगा।

सिद्धराज जी की जेल से चिठ्ठी आयेगी ऐसी आशा पूरी है, पर कव आयेगी यह सोचना मुश्किल है। सोचता हूं, भाई साहव को चिठ्ठी लिखूं फिर न मालूम क्या समझकर रुक जाता हूं। देखूं, कुछ दिन।

एक और वात आज दोस्तों के सामने चर्चा के लिये आ गयी। खबर मिली है कि श्री वैजनाथ जी देवड़ा ने किसी २५ वर्षीय विधवा के साथ विवाह किया है। उनकी आयु लगभग ५३-५४ वर्ष की है। इतनी वड़ी आयु में और ऐसे गिरे हुए स्वास्थ्य की हालत में विवाह करना तथाकथित अच्छे-अच्छे सुधारकों को भी अच्छा नहीं लगेगा। संतोष के लिये अगर कुछ है तो इतना ही कि विधवा के साथ विवाह किया है। फिर भी इसमें आपत्ति के लिये जगह है। ताहम भी हमें वैजनाथ जी की हिम्मत पर खुशी होती है। उन्होंने अपनी परिस्थितियों का विचार किया और अपनी वास्तविक जरूरत के अनुसार कार्य किया। घर में वे अकेले थे। वड़े भाई भी विधुर हैं। सारा घर सूना था। इन परिस्थितियों में जीवन गुजारना कितना मुश्किल और दुखमय होता है, यह केवल भुक्तभोगी ही जानता है। इस विवाह से मुझे वैजनाथ जी जरा भी पतित हुए नहीं मालूम पड़े। कामेच्छा को वलपूर्वक रोकना (सप्रेशन) वड़ा आदर्श नहीं है, ऊपर उठाना (सब्लिमेशन) जरूर आदर्श है। कोई सब्लिमेशन कर सके तो करे, न करे सके तो जो वात प्रकृत है, वह करे।

११-३-४३

आज सुबह पदम, रतन, लाड़ तथा श्री की चिट्ठियां मिलीं। मैंने करीब २० दिन पहले इन चारों के नाम चिट्ठी लिखी थी। उसी का यह जवाब आया है चारों ने लिखा है कि मेरी चिट्ठी को पढ़कर सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। मैंने चिट्ठी लिखी भी थी हँसाने के लिए ही। और इन बच्चों को लिखूं भी क्या। श्री ने भी लिखा है—लिखा क्या है, उससे लिखवाया गया है कि—"मैं कल आपके लिए चीलगाड़ी भेज दूंगा, उसमें बैठकर आ जाना और आपके दोस्तों को भी बिठा लाना।" इसपर मैं और साथ रहने वाले तीनों मित्र भी हंस लिये। कैसी चीलगाड़ी और कैसा बैठकर जाना। बच्चों की चिट्ठियाँ हैं, कुछ खास समाचार नहीं लिखे हैं। फिर भी दादा साहब की तबीयत के बारे में लिखा है जो चिन्ताजनक ही है। और अनाज की महंगाई और अभाव के बारे में भी लिखा है। वह भी कठिनाई ही है। आज शाम को भागीरथ जी की मुलाकात थी। भावों की वृद्धि की जो स्थिति उन्होंने मुलाकात करने के लिए आने वाले लोगों से सुनी और जो हमें सुनाई वह अत्यंत हृदय-विदारक है। पेशावरी चावल के भाव ५०) प्रति मन, गेहूं के भाव कलकत्ता में ३२) मन और औरतों की साड़ियों के दाम २०) से २८) प्रति जोड़े के। इस स्थिति में साधारण लोगों की क्या दशा होती होगी? दूसरों की क्या सोचूं, अपने घर की ही हालत कैसी होगी। अनाज-कपड़े की क्या हालत होगी? खर्चा भी बहुत बढ़ गया होगा। अब ७५) प्रतिमास में कैसे काम चलता होगा। इधर एसोसियेशन के वेतन की बात भी अभी गोलमाल में ही है। अगली मुलाकात में सब बात मालूम होगी। घर के लिए तो कुछ बन्दोबस्त करना ही होगा। सुनता हूं कि जो लोग बाहर हैं, वे खूब कमा रहे हैं पर मेरी तो जो कमाई थी, वह भी आज बन्द हो गयी है। बड़ी चिन्ता होती है—काफी निराशा दीखती है पर जब देश के करोड़ों उन आदमियों का खयाल करता हूं जिनको पेट भरने के लिये अन्न पहले ही नहीं मिलता था, जिन अबलाओं को तन की लाज ढकने के लिये पहले ही पूरा वस्त्र नहीं मिलता था, जिन बालकों को पहले ही दूध का दर्शन नहीं होता था, तो अपने घर की बात भूल जाता हूं। आज की स्थिति का प्रतिकार क्रांति में ही हो सकता है, होगा। बलिदान के रक्त से इसका परिष्कार होगा। और जिस बलिदान के यज्ञ में आज देश के लाखों नौनिहाल अपना जीवन खपाये हुए हैं उसमें मैं भी एक अदना हिस्सा ले रहा हूं इस बात की बेतहाशा खुशी है। घर के लोगों को तकलीफ होती है—और सम्भव है आगे चलकर और भी हो—पर पराधीन देश के पाप धोने के लिए जो कांटों की सूली पड़ी है इस पर भी तो किसी को चढ़ना होगा। अगर हमारे हिस्से में यह सूली की शय्या ही आयी है तो हम गौरव मानकर ही इसका क्यों न वरण करें। इससे भागकर सम्भव है कि हम अपनी व्यक्तिगत समस्या किसी तरह मिटा सकें पर देश भर में फैली हुई समस्या को मिटाने का तो एक मात्र यही रास्ता है। जो होगा, होगा, चिन्ता वृथा है।

आज जॉन गुंथर की मशहूर किताब "इनसाइड एशिया" पढ़कर समाप्त की है। जो संस्करण मैंने पढ़ा है वह सन् १९४२ का संशोधित संस्करण है जिसमें सन् १९४२ के प्रारम्भ तक की प्रशांत महासागर के युद्ध की भी बहुत सी घटनाओं का अहवाल आ गया है। कई दिनों से मैं जान गुंथर की तीनों किताबों 'इनसाइड यूरोप' 'इनसाइड एशिया' तथा 'इनसाइड लैटिन अमेरिका' का नाम सुनता आ रहा था। तीनों मंगाने के लिए भागीरथ जी से कहा था। अभी एक ही आयी है। उसे पढ़ने से जो मेरे मन में आकर्षण था वह टूट गया। बहुत सुन्दर प्लेजेन्ट रीडिंग नहीं लगी। बहुत जल्दी में और बहुत थोड़ी जगह में बहुत सी बातें लिख देने की चेष्टा के कारण सारी पुस्तक एक संवादपत्रीय संवाददाता के नोटों का संकलन सी हो गयी। एशिया के हर देश, हर जाति, हर आंदोलन, संस्था और विशिष्ट व्यक्तियों के सम्बन्ध में काफी आकर्षक ढंग से सामग्री का संग्रह और उल्लेख किया गया है। पुस्तक में जानने की बहुत सी बातें हैं पर पुस्तक में लेखक का कोई विशेष दृष्टिकोण अथवा विचार नहीं मालूम होता। यह बात जरूर अच्छी लगी कि अंग्रज होते हुए भी लेखक ने एशिया की सभी बातों के सम्बन्ध में अधिक से अधिक अच्छी नीयत और सहानुभूति से लिखा है। सारी पुस्तक में राष्ट्रीय या राजनैतिक चेतना के आंदोलन की दृष्टि ही सर्वोपरि है—जहां जिस बात का भी वर्णन है उसका किसी न किसी रूप में राजनैतिक उथल-पुथल से सम्बन्ध है ही। आज की जागृत एशिया का काफी अच्छा चित्र पुस्तक में दिया है। पर बात इतनी ही है कि फिर भी पुस्तक के पढ़ने में आह्लाद नहीं मिलता। दूसरे देशों का इतिहास मैं नहीं जानता इसलिए क्या कहा जाय पर हिन्दुस्तान की बातें तो हमलोग काफी जानते ही हैं। गांधी जी के विषय में जो अध्याय है उसमें लेखक ने, मालूम होता है, उनको देखा ही है अपनी पूर्व निर्मित बाह्य दृष्टि से। मैंने जितना पढ़ा उसमें जवाहरलाल जी के विषय में लिखा अध्याय सबसे सुन्दर और रुचिकर लगा। जवाहरलाल के प्रति पुस्तक-लेखक के मन में एक विशेष आदर एवं मानवता का भाव है।

कहते हैं गुंथर की 'इनसाइड योरोप' बहुत अच्छी पुस्तक है। उसके विषय में सभी से तारीफ सुनी है पर वह तो जब आयेगी, तब पढ़ेंगे। आजकल संस्कृत में कालिदास का मेघदूत भी कुछ-कुछ पढ़ रहा हूँ। कालिदास की संस्कृत में बड़ा माधुर्य रौअकाव्यात्मक छटा है। कई दिनों से पूरा मेघदूत पढ़ने की मन में थी—जेल के जीवन ने यह इच्छा भी पूरी करायी।

९-७-४३

कल "हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड" और "आनन्द बाजार पत्रिका" में एक संवाददाता द्वारा भेजा हुआ दिल्ली का समाचार था कि गांधी जी ने वायसराय को एक पत्र भेजा है, जिसपर वायसराय, भारत सरकार और इंगलैंड में इण्डिया सेक्रेटरी विचार कर रहे हैं। संवाददाता का अनुमान है कि गांधी जी ने पत्र में भारतव्यापी खाद्य पदार्थों के संकट को दृष्टि में रखते हुए अगस्त ८ के प्रस्ताव को वापस कर लेने के लिए लिखा

है। संवाद बहुत अधूरा और अस्पष्ट है। तो भी इस खबर से देश के लोगों की प्रतिक्रियाएँ जानी जा सकेंगी। गांधी जी ऐसा कर लें तो मुझे कोई भी आश्चर्य नहीं होगा। वे कभी दूसरे लोगों की प्रतिक्रियाओं पर नहीं चलते। गांधी जी तर्क से किसी चीज का निर्णय नहीं करते हैं—निर्णय हठात् एक प्रकाश की भांति उनके हृदय में उत्पन्न होता है, और फिर उनकी बुद्धि उस निर्णय के पक्ष में दलील निर्माण कर लेती है। गांधी जी प्रस्ताव को वापस लें या नहीं, इसमें कोई शक नहीं कि भविष्य में कांग्रेस राजनीति में काफी परिवर्तन होने वाला है। संवाददाता की कलम से जैसा लिखा गया है, अगर बात वैसी ही है, तो जनता के मन पर विभिन्न प्रकार से प्रतिक्रियाएँ होंगी। उन प्रतिक्रियाओं के घात-प्रतिघात से कौन-सी स्थिति उत्पन्न होगी, यह कहना आज सर्वथा मुश्किल है। यह भी संदेहास्पद है कि खाद्य पदार्थों की समस्या के समाधान में गांधी जी और कांग्रेस वाले क्या और कितना कर सकेंगे। यह भविष्य ही बतलायेगा।

९-८-४३

आज मेरा जन्मदिन है। सन् १९१४ की नवीं अगस्त को मेरा जन्म हुआ था—आज २९ वर्ष पूरे कर ३० वें में पदार्पण कर रहा हूँ। जन्मदिन की एक खास प्रकार की खुशी हुआ करती है—और आज तो मैं जेल में हूँ। २९ वर्ष की जीवनावधि में कितने विचार बने और टूटे—कितनी कल्पनाएँ आईं और गईं—पर जीवन की गति अबाध रूप से चल रही है। जेल में आने का भी एक स्वप्न था—एक कल्पना थी; वह पूरी हो गई। २९ वर्ष में मैंने कभी सालगिरह नहीं मनाई—कभी इतना तक ध्यान नहीं दिया कि कब एक वर्ष गया और दूसरा लगा। पर, यह जेल है। वर्षों की क्या बात, दिन भी गिनने पड़ जाते हैं। २९ वर्षों की मेरी बैलेंस-शीट मुनाफे की है। सभी दृष्टियों से वर्ष प्रतिवर्ष मैं बढ़ती की ओर आता रहा हूँ, पर २९ वर्षों की लम्बी यात्रा में सन् १९४० की १६वीं अप्रैल का दिन था, जिसपर मैं पिछले दिनों की खतौनी करते समय रुक जाता हूँ—उसको भूलूंगा भी कभी नहीं। जिसको इस संसार की जीवन यात्रा के लिये साथी बनाया था, जिसके साथ जीवन-वीणा के स्वर मिला दिये थे, उससे बिछुड़ गया—सदा के लिए मुझे छोड़कर वह साथी चला गया। मेरे जन्मदिन के साथ ही उस साथी की मृत्यु का दिन भी आंखों के सामने ही है। और आज ही के दिन ठीक एक वर्ष पहले बम्बई में गांधी जी और अन्य कांग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी हुई थी जिसके प्रतिवाद में कई महीनों तक सारे देश में एक प्रबल विद्रोह का बवंडर उठा था। उस विद्रोह को शांत हुए भी कई महीने हो गये—पर देश की अवरोधावस्था वैसी ही बनी हुई है। गांधी जी वगैरह सब लोग जेलों में ही हैं। सरकारी रुख में पूरी कड़ाई है—जल्दी कोई समझौते की बात होने की उम्मीद नहीं है। गांधी जी और वायसराय में पत्र-व्यवहार होने की भी बड़ी अफवाहें थीं और ता० ९-८-४३ को उस पत्र-व्यवहार की बातें मालूम होंगी—ऐसी प्रतीक्षा थी पर कुछ नहीं हुआ। अब तो शायद अक्टूबर-नवम्बर से पहले कुछ नहीं होगा।

अंतर्राष्ट्रीय जगत में मुसोलिनी के पतन की खबर से पिछले दिनों काफी सनसनी रही। इटली में मुसोलिनी की शासन सत्ता समाप्त हो गई। फिर भी इटली की वास्तविक स्थिति के बारे में पूरी बातें अभी तक समझ में नहीं आतीं। मुसोलिनी के पद त्याग में क्या कोई भीतरी चाल है। जो कुछ हो, इस कांड से मित्र राष्ट्रों के पक्ष में और जर्मनी के विपक्ष में मनोवैज्ञानिक वातावरण बन गया। अभी जर्मनी में भी ऐसा ही होने की खबरें प्रकट होने लगीं। ब्रिटेन और अमेरिका पहले से ज्यादा मजबूत प्रतीत होते हैं।

इस बीच में मैंने M. N. Roy द्वारा लिखित 'From Savagery to Civilization' पुस्तक पढ़ी। छोटी सी पुस्तक है जिसमें उन लेखों का संग्रह है जो दो तीन वर्ष पहले अमृत बाजार पत्रिका में प्रकट हुए थे। सारी पुस्तक में यूरोप में हुए वैज्ञानिक विकास का इतिहास है। जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थन पर लेखक ने जोर दिया है। जीवन के वैज्ञानिक रीति से होने वाले विकास का चरम बिन्दु लेखक ने साम्यवाद को माना है। लेख दिलचस्पीपूर्ण है।

उसके बाद Sidney and Beatrice Webb द्वारा लिखी हुई 'Soviet Communism' (दो भाग) पढ़ना शुरू किया है। रूस के विषय में खूब विस्तारपूर्वक इस पुस्तक में विवेचन किया गया है। रूसी साम्यवाद के हर पहलू पर विशद रूप से व्याख्या की गई है। दोनों भागों में कुल मिलाकर १२६० पृष्ठ हैं। बहुत विशद और विश्वसनीय विवरण और आंकड़े हैं। रूस सम्बन्धी साहित्य में यह किताब खूब प्रसिद्ध भी है। अभी मैंने एक भाग पढ़ा है—दूसरा भी पढ़ने के बाद और लिखूंगा।

१४. १०. ४३

लियाँ ट्रॉट्स्की (Leon Trotsky) द्वारा लिखा हुआ रूस को क्रांति का इतिहास (The History of the Russian Revolution) पढ़ रहा हूँ। कल समाप्त हो जायगा। ट्राट्स्की ग़ज़ब का आदमी था; ग़ज़ब की यह किताब है। रूस की सन् १९१७ की क्रांति संसार के इतिहास में सबसे बड़ी घटना हुई है। इसका असर सारी मानव जाति के जीवन पर पड़ा। यह क्रांति केवल 'राजा के खिलाफ सत्ता की क्रांति' ही नहीं थी, बल्कि राजा के खिलाफ, धनी और शोषक वर्ग के खिलाफ गरीब सत्ता की, पददलित लोगों की क्रांति थी। विश्व के घटनाचक्र पर इसका इतना असर पड़ा है और पड़ रहा है कि सारी बीसवीं शताब्दी के विभिन्न देशों के इतिहास में इस क्रांति की भावना का खास स्थान होगा। इस क्रांति ने असंभव समझी जाने वाली बात को संभव बना दिया—मार्क्स के सिद्धांत की सच्चाई साबित की—और गरीबों की दुनिया में आशा का चन्द्रमा उग आया। जगत् के इतिहास में रूसी क्रांति की बात अमिट रहने वाली है—और उस क्रांति के इतिहास में अमर रहेंगे—लेनिन और ट्रॉट्स्की। वैसे तो जैसे ट्रॉट्स्की ने खुद कहा है, क्रांति कोई पैदा नहीं करता, वह तो स्वयंभू होती है। पर फिर लेनिन ने जिस तरह उसको सही मार्ग पर लाकर मजबूत बना दिया—वैसे ही

ट्रॉट्स्की ने उसका रक्षा की। बौद्धिक करामातों में ट्रॉट्स्की बीसवीं शताब्दी का सबसे महान व्यक्ति हुआ है। मानो वह तो क्रांति का मूर्त्त स्वरूप ही था। क्रांति की रक्षा के लिए उसने जिस शक्ति, योग्यता और बहुदूरदर्शिता के साथ लाल सेना का संगठन और संचालन किया तथा गरीबों की चेतना और ताकत की शत्रुता वाले लगभग सभी दूसरे देशों के लगातार होनेवाले आक्रमण से क्रांति को बचाया। सन् १९१७ के अक्टूबर के बलवे का नेता वही था। लेनिन ने खुद एकबार मैक्सिम गोर्की से कहा था—Show me another man who could organise almost a model army in a single army। मैंने ट्रॉट्स्की को कभी नहीं देखा (अगस्त १९४० में उसकी किसी ने हत्या की थी) पर उसके बारे में और उसका लिखा जो कुछ पढ़ा है उससे मुझे सदा ही ट्रॉट्स्की के प्रति बड़ी भावना रही है। जिसने रूस की क्रांति में इतना बड़ा हिस्सा अदा किया, जिसने आज के रूस की स्थापना और संगठन किया, वह मरते समय रूस में नहीं रह सका—रूस से उसे निकाल दिया स्टालिन ने। ट्रॉट्स्की अत्यन्त विलक्षण क्षमता और प्रतिभा का पुरुष था। यह पुस्तक शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से लिखी हुई कहानी है। ट्रॉट्स्की का क्रांति में खुद का इतना हाथ होते हुए भी उसके अपने बारे में पुस्तक में कम से कम लिखा है—और जहां लिखना पड़ा है वहां 'अन्य पुरुष' का प्रयोग किया है। एक तरफ ट्रॉट्स्की की यह वृत्ति और दूसरी ओर स्टालिन की रूस के विश्व-कोष तक में परिवर्तन कराने की नीति। उसने खुद ने लिखा है—The authorspeaks of himself in so far as that is demanded by the course of events, in the third person. And that is not a mere literary form ; the subjective tone, inevitable in autobiographies or memoirs is not permissible in a work of history.

ट्रॉट्स्की के लेखन में भी खूब तेजी है। क्रांति उसके वर्णनों में आंखों के सामने मूर्त्त हो उठती है। 'Five days' पांच दिन—२३ फरवरी से २७ फरवरी १९१७ के पांच दिनों का वर्णन कितना लोमोत्कर्पक है। विवेचन खूब विस्तारपूर्वक किया गया है। प्रथम भाग में ही करीब ५०० पृष्ठ हैं। ट्रॉट्स्की के खुद के कामों का विवरण तो दूसरे भाग में—अक्टूबर क्रांति—के इतिहास में मिलेगा। अमेरिका से ३ मई को ट्रॉट्स्की रूस में पहुंचा था। और तभी से लेनिन के साथ उसने बाल्शेविक पार्टी का पुनर्गठन करने का काम शुरू किया।

१०-२-४४

महीनों से डायरी नहीं लिखी—और आज भी शाम के ४ बजे तक कोई ऐसी बात नहीं थी कि जिसके कारण यह पृष्ठ लिखता। पर करीब ४ बजे अचानक श्री सीताराम जी और बसन्तलाल जी को रिहाई की खबर मिली। मुझे और स्वयं उन दोनों को कितना आश्चर्य हुआ। सुबह हम सोच रहे थे—कितने महीने और रहना होगा—और शाम को रिहाई का आदेश! वे गये और उससे बड़ी खुशी हुई पर मानो

बनारसी

खुशी के साथ वियोग-जन्य कष्ट भी हुआ ही। हृदय में एक खालीपन महसूस होता है। १४ महीने के साथ के बाद इस प्रकार अचानक विछोह हो जाने से ऐसा लगना स्वाभाविक ही है।

जब से उनको कोट से बिदा करके आया हूँ, मन कैसा-सा हो रहा है। सोता हूँ—नींद नहीं आती, किताब पढ़ता हूं—पढ़ा नहीं जाता। सीताराम जी को ही एक चिट्ठी लिख सका। □

पत्र

सिंघी जी की पीढ़ी के सार्वजनिक लोगों का यह गुण रहा है कि वे पत्रों का तुरंत जवाब दिया करते हैं। फिर सिंघी जी तो शुरू से ही बहुत व्यवस्थित व्यक्ति रहे हैं। ऐसे में उनका पत्र व्यवहार भी बहुत व्यवस्थित और नियन्त्रित रहा—उन्हें लिखे गए पत्र और उनके द्वारा लिखे गए पत्र सभी फाइलों में सुरक्षित हैं। पचास वर्ष से भी अधिक के सार्वजनिक जीवन में उनके मित्रों और परिचितों का दायरा बहुत व्यापक रहा है। इसमें राजनीतिक नेता, लेखक, युवा कार्यकर्त्ता, रंगकर्मी सभी आते हैं। उन्हें लिखे गये पत्रों की संख्या विपुल है और उनमें से चुनना बड़ा कठिन काम था। नाना विषयों पर प्रकाश डालने वाले इन पत्रों में से हमने केवल उन व्यक्तियों के पत्रों को लिया है जिनसे सिंघी जी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और जो केवल उन पत्रों को लिया है किसी न किसी दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

प्रगाढ़ आत्मीय सम्बन्धों वाले व्यक्तियों में स्व० भागीरथ कानोड़िया और स्व० सीताराम सेकसरिया के पत्र दिए गए हैं। दो पत्र उनके तरुणाई के दिनों के मित्र दुर्गाप्रसाद झुनझुनवाला और सिद्धराज ढड्ढा के दिए जा रहे हैं। बाद के दिनों के दो अत्यंत घनिष्ठ मित्र स्व० जगन्नाथ बेरीवाल और स्व० मोहन सिह सेंगर के पत्र मैत्री की स्मृति के रूप में दिये गये हैं। सिंघी जी के पुत्र और पुत्री के पत्र सिंघी जी के पारिवारिक जीवन की एक झलक के रूप में दिये गये हैं।

सिंघी जी के सार्वजनिक जीवन की शुरुआत जैनियों के बीच रूढ़ियों के विरोधमें आंदोलन से हुई। समाज-सुधार आंदोलन के साथ जैन दर्शन में उनकी विशेष अभिरुचि रही है और इसके चलते प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल जी से सिंघी जी का प्रगाढ़ संबंध बना। एक पत्र पं० सुखलाल का दिया गया है। साथ ही स्व० नाथूराम प्रेमी एवं संतराम जी के पत्र भी हैं जो धर्म एवं जाति से सम्बन्धित विचार रखने वाले हैं।

सिंघी जी का हिन्दी की पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी दोनों के ही लेखकों से समान पत्र-व्यवहार रहा। यहां केवल पांच लेखकों—जैनेन्द्र कुमार, हजारी प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, धर्मवीर भारती और देवराज के पत्र देकर ही संतोष किया जा रहा है। रंगकर्मियों में मात्र श्यामानन्द जालान का एक पत्र दिया गया है।

सिंघी जी द्वारा लिखे गए छह पत्र दिये जा रहे हैं। इनमें भाई पदमचंद सिंघी, स्व० पिता इन्द्रचन्द्र सिंघी (दादा साहब), पत्नी सुशीला सिंघी (शीले) और पुत्र-पुत्रियों को लिखे गए पत्र सिंघी जी के पारिवारिक दायित्व बोध और उनके स्नेह की मार्मिकता को प्रकट करते हैं। प्रतिभा अग्रवाल को लिखा एक अंतरंग पत्र भी है। महत्वपूर्ण है जयप्रकाश नारायण को लिखा पत्र जो सिंघी जी के एक भिन्न रूप पर प्रकाश डालता है।

कुटीर
११-१०-३५

प्रियवर भँवर,

८-१० का पत्र मिला। तुम्हारा १०-७ का पत्र मुझको सैलाने में मिला था और मैंने उसका उत्तर २३-७ को भेज दिया था। मालूम होता है मेरा वह पत्र तुमको नहीं मिला। अस्तु।

जैसी परिस्थिति तुमने अपनी बतलाई है, लगभग वैसी ही परिस्थिति बहुतों की हुआ करती है। इस समय तुम्हारे घर पर कितना कर्जा है? जेवर आदि कुछ रख कर कर्जा दिया जाता है या कैसे? कर्जा मिल कहां से जाता है? तुम बी० ए० पास कर लोगे तब तक कितना कर्जा हो जायेगा? घर का मकान है या किराये का? घर में जेवर आदि कुछ अवशिष्ट है या नहीं? घर में कितने आदमी हैं? पिता जी कहीं नौकरी करते हैं क्या? वे लगभग कितना कमा लेते हैं? वे अपव्यय किस प्रकार करते हैं? उनकी उम्र क्या है, स्वास्थ्य कैसा है? तुम्हारी पत्नी से तुम्हारी कैसी पटती है? वह तुम्हारे अनुकूल है या जैसी जयपुर में हुआ करती हैं वैसी ही है? परिवार के लोगों का विस्तृत हाल लिखना।

बालिकाश्रम का नाम श्री शांताबाई शिक्षा कुटीर रखा है। लड़कियों का आना शुरू हो गया है—जितनी लड़कियों को लेना है उतनी एकाध सप्ताह में आ चुकेंगी। कुछ काम भी शुरू हो गया है। १८-१० से बाकायदा काम शुरू करने का विचार है। अच्छी प्रधानाध्यापिका की बात हो गई थी—परन्तु उनकी अस्वस्थता के कारण गड़बड़ हो गई—आशा है अध्यापिकायें भी शीघ्र आ पहुंचेंगी।

मैं इन दिनों में जयपुर नहीं आ रहा हूँ, तुम यहां आकर मिलो तभी मिलना हो—एक दो दिन के लिए यहां क्यों नहीं आ जाते।

रतन जी आदि यहीं हैं और मजे में हैं। या तो तुम आओगे या उत्तर भेजोगे।

हितैषी
हीरालाल शास्त्री

७ दरियागंज, दिल्ली
२१-४-३७

भाई सिंघी जी,

पत्र मिला। नहीं भाई, श्रद्धा मैं न लूँगा। मैं नहीं ले सकता। मुझे नजदीक से और भीतर से देखोगे तो जानोगे मैं श्रद्धेय तो क्या, उल्टे दयनीय हूँ। भीतर बहुत अपवित्रता है, बहुत मैल है। यह तो मेरी अपनी बात। यों भी श्रद्धा का एक पात्र वह है जो निराकार है, जहां सब द्वन्द्व सब अपोजिट्स पूर्णता पाकर शांत हो गये हैं। श्रद्धा वहीं की अगम अडिग रहेगी। बाकी तो मूर्ति है, पत्थर की भी हो सकती है। पत्थर को पूज्य मानने की भूल, भूल है। लेकिन वह भूल तो इसलिए की भी जा सकती है कि पत्थर विचारा इतना जड़ है कि श्रद्धावान की श्रद्धा को बिलकुल नहीं छूता। पर व्यक्ति को मूर्ति मानने लगना अनिष्टकारक है। श्रद्धा तो श्रद्धावान के लिए सदैव ही लाभकारी है। पर बिचारे मूर्ति बने मानव के प्रति क्षमाभाव भी रखना चाहिये। उसके लिए यह बात अत्यन्त दारुण बन जा सकती है। और कहीं उसके अहंकार को छू गई तो, ओह, एकदम विनाशकारी ही होगी।

भाई सिंघी जी, श्रद्धा की बात को अपनों से एकदम सदा के लिये निकाल बाहर कर दीजे। आदमी का मन, मन है। और अनन्त है। जाने क्या-क्या उलट-फेर होते हैं और होंगे। यहां आदमी का क्या भरोसा। भरोसा उसका ही पकड़े जो सदा है और सदा रहेगा और जो कभी सोता नहीं सदा जागृत है।

लेख जिसको मैंने देखना चाहा था मेरा 'निरा अबुद्धिवाद' नहीं। उसकी तो मुझे याद है और वह मेरे पास है भी। उसको पढ़ कर जो आपने अपना लेख लिख डालने का अपना जिक्र किया था, छपा हो तो मैं देखना चाहता था।

आपका सत्प्रार्थी जैनेन्द्र

पुनश्च: पं० सुखलाल जी का पता क्या होगा ? कब जा रहे हैं और कब तक के लिए?

जैनेन्द्र

दिनांक ६-१२-५५

भाई सिंघी जी,

इधर मैं खबरों से दूर रहा। कल सुना और आज 'तरुण' में पढ़ लिया कि आपको लाठी के प्रहार का सत्कार मिला और अपने सधर्मी बन्धुओं से। यों तो यह बधाई की बात हो सकती है पर जैन होने के नाते बड़ी ग्लानि होती है। अहिंसक रह कर जैन धर्म फैल सकता था, फैल सकता है। लाठी का होने पर उसे डूबना ही है। इस घटना से बालदीक्षा ही नहीं, दीक्षा मात्र के प्रति लोगों को अश्रद्धा हो तो अचरज न होगा। और जैन शब्द यों ही लोगों के मन से उतरा था अब और भी गिर जायेगा और शायद उचित होगा।

अब आप सब तरह स्वस्थ होंगे। पत्र सुशीला को लिख रहा था कि ख्याल आया कि बात दिनों की है और अब आप पहले से स्वस्थ हो बन आए होंगे।

जैनेन्द्र

बम्बई
२६-९-१९३७

प्रिय भाई भँवरमल,

बहुत दिनों की आकुल प्रतीक्षा के बाद 'व्यथित' को 'वेदना' की प्राप्ति हुई। प्राप्ति हुई—पर कैसे कहूँ कि कैसी है। वेदना का मीठा-मीठा दर्द तो हृदय की चीज है और अन्तर को बाहर कैसे निकाला जाय। छिपी रहने दो, भाई, इन अनुभूतियों को हृदय के पर्दे में ही। सह लेने दो इस दर्द को चुपचाप बेजबान की तरह—चुपचाप सह लेने ही में तो मजा है। पलकों के कोनों में अगर आंसू झांकने लगें तो मना कर दो उन्हें—देखो कहीं नीचे ढुलक कर अपनी आब को न खो दें—कह दो उनसे—मेरे मोती, आना तो तब, जब तुम्हें किसी हार में पिरोने की चाह हो।

क्या कहूँ कि 'वेदना' में क्या है। जिसे हम मिट्टी कहते हैं, 'उसमें न जाने कितनी कोमल पंखुड़ियों का यौवन-पराग लुण्ठित हुआ है।' जिसे हम पावस कहते हैं वह न जाने किसके आंसुओं की 'चिरव्यथित रिमझिम' है। जिन घनघोर बादलों के गर्जन को सुन कर मयूर मदमत्त होकर नाच उठता है वह—"होता है केवल मानवता को आकांक्षा के पखों पर उड़ा कर निराशा के श्मशान में ला डालने को।' जीवन में वेदना है और वेदना में जीवन, और वेदना और जीवन की सम्मिलित अनुभूतियों की यह अनन्त साधना। कैसे कहूँ कि यह क्या है। हृदय की अनन्त पीड़ा में भी यह अपनी अमरता घोल रही है।

उसमें यदि वियोग की गीली भावनाएँ है तो है स्नेह का अनन्त उच्छ्वास—इसमें यदि कामना की अरुण रागिनी है तो साधना की थाली में प्रेम की अभिनव व भावनामयी पूजा। स्नेह की मजुल वेदी पर जीवन का यह रोना-रुलाना, हँसना और हँसाना सत्य है, शिव है और सुन्दर है।

भाई भँवर, क्या कहूँ अपने मन से मुझे कुछ कहना नहीं है। संसार की इस अनन्तता में मैं मौलिकता को कहाँ ढूँढूँ। तुम्हारे ही शब्दों में तुम्हारे चित्रों को रेखांकित करने का प्रयत्न किया है। किन्तु ये केवल आड़ीटेढ़ी रेखायें मात्र हैं। इन रेखाओं को लेकर सौन्दर्य का एक अद्भुत जाल तैयार करना तो तुम्हारे जैसे चतुर शिल्पी का ही काम है—'व्यथित' के पागल प्रलापों का नहीं।

पत्र में देर होने के लिये क्षमा करना। भाई, मैं तो साहित्य जगत से बिलकुल दूर होता जा रहा हूं। साहित्य की मधुर रागिनी अब मुझे एक दूरागत अस्पष्ट झंकार सी जान पड़ती है। मेरा तो संसार ही दूसरा हो गया है—जहाँ साहित्य की कोमल भावनाओं को निष्ठुर सांसारिकता निर्ममता पूर्वक अपने पैरों तले रौंदती है। तुम सुखी हो, भाई और सुखी रहो अपनी इस 'वेदना' की अनुभूतियों में।

अधिक क्या लिखूं। यदि अनुचित न हो तो कभी-कभी याद किया करना। भूले हुए जीवन में कभी-कभी तो स्मृति की अरुण छटा दिखा दिया करना। सस्नेह

तुम्हारा

दुर्गाप्रसाद झुनझुनवाला

पुनश्च—'नवयुवक' की प्रति मुझे नहीं मिली। कृपया यहाँ के पते पर भिजवा देना।

पनामी

काशी विश्वविद्यालय, बनारस
५-२-१९४३

भाई श्री भँवरमल जी,

पत्र पढ़कर प्रसन्नता हुई। यह स्थान (जेल) एक तरह से विचार और समाधि का ही स्थान है। उसी में से अरविन्द जैसे निकले। बापू संत की भी वही तपोभूमि है। आप पढ़िए पर साथ कुछ लिखते भी रहिए। हो सके तो आचारांग, सूत्रकृतांग, कल्पसूत्र और उत्तराध्ययन के याकोबी कृत अनुवाद तथा दूसरे आगमों के गुजराती हिन्दी भाषान्तर देखिए। साथ ही बौद्ध ग्रन्थों के हिन्दी अंग्रेजी या बंगला अनुवाद तथा वाल्मीकि महाभारत आदि पढ़िए। वेद और उपनिषद के भी भाषान्तर पढ़ सकते हैं। थोड़ा पढ़ना पर चिन्तनपूर्वक। अवेस्ता या जरथोस्त्रियन धर्म पर अंग्रेजी पुस्तक मिलेगी ही। कुरान भी। दूसरी सामग्री न मिले तब तक पहिले हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर—विन्टरनिट्स की या मैकडोनल की जरूर देखिये। दास गुप्ता की इण्डियन फिलोसोफी ब्योरे के लिए अच्छी है। वह पण्डित है। राधाकृष्णन हर एक विषय में गहरा सोचकर लिखते हैं, ऐसा नहीं मानना। उन्होंने थोड़ी गलती की है। उनका व्यक्तित्व विविध वाचक और प्रतिपादन शक्ति में है। और यह है भी विशिष्ट। जिस समाधि स्थान में आप हैं उसी के अतिथि काशी में सिद्धराज जी भी हुए हैं। अस्तु।

हिंसा का मतलब है प्रमाद या रागद्वेष या आसक्ति। उसका त्याग ही अहिंसा है। जैन ग्रन्थों में प्राचीनकाल से चली आने वाली आत्मघात की प्रथाओं का निषेध किया गया है: पहाड़ से गिर कर, पानी में डूब कर, जहर खाकर आदि प्रथाएँ मरने की थीं और हैं। धर्म के नाम पर भी और दुनियावी कारणों से। जैसे पशु आदि की बलि धर्म रूप में प्रचलित है वैसे ही आत्मबलि भी प्रचलित रही। और कहीं-कहीं अब भी है। खासकर शिव या शक्ति के सामने एक तरफ से ऐसी प्रथाओं का निषेध और दूसरी तरफ से प्राणान्त अनशन या संथारे का विधान, यह विरोध जरूर उलझन में डालने वाला है। पर भाव समझने पर कोई भी विरोध नहीं। जैन धर्म ने जिस प्राणनाश का निषेध किया है वह प्रमाद या आशक्तिपूर्वक किये जाने वाले प्राणनाश का। किसी ऐहिक या पारलौकिक सम्पत्ति की इच्छा से, कामिनी की कामना से और अन्य अभ्युदय की वांछा से; धर्मबुध्या तरह तरह के आत्मवध होते रहे हैं। जैन धर्म कहता है वह आत्मवध हिंसा है। क्योंकि उसका प्रेरक तत्व कोई न कोई आसक्त भाव है। प्राणान्त अनशन और संथारा भी यदि उसी भाव से या डर से या लोभ से किया जाय तो वह हिंसा ही है। उसे जैन धर्म करने की आज्ञा नहीं देता। जिस प्राणान्त अनशन का विधान है वह है समाधिमरण। जब देह और आध्यात्मिक सद्गुण-संयम इनमें से एक को ही पसन्दगी करने का विषम समय आ जाय तब यदि सचमुच संयमप्राण व्यक्ति हो तो वह देह रक्षा की परवा न करेगा, मात्र देह की बलि देकर भी अपनी विशुद्ध आध्यात्मिक स्थिति को बचा लेगा। जैसे कोई सच्ची सती दूसरा रास्ता न देख कर देहनाश के द्वारा भी सतीत्व बचा लेती है। पर उस अवस्था में भी वह व्यक्ति न किसी पर रुष्ट होगा न किसी तरह भयभीत और न किसी सुविधा

पर तुष्ट। उसका ध्यान एकमात्र अपने संयत जीवन को बचा लेने और समभाव की रक्षा में ही रहेगा। जब तक देह और संयम दोनों की समानभाव से रक्षा है तब तक दोनों की रक्षा कर्त्तव्य है। पर एक को ही पसंदगी करने का सवाल आवे तब हमारे जैसे देह रक्षा पसन्द करेंगे और आध्यात्मिक सयम की उपेक्षा करेंगे। जबकि समाधि-मरण का अधिकारी उलटा करेगा। जीवन तो दोनों ही है। दैहिक और आध्यात्मिक जो जिसका अधिकारी होता है वह कसौटी के समय पर उसी को पसन्द करता है और ऐसे ही आध्यात्मिक जीवन वाले व्यक्ति के लिए प्राणान्त अनशन की इजाजत है, पामरों, भयभीतों या लालचियों के लिए नहीं। अब आप देखेंगे कि प्राणान्त अनशनी देह रूप घर का नाश करके भी दिव्य जीवन रूप अपनी आत्मा को गिरने से बचा लेता है। इसलिये वह खरे अर्थ में—तात्विक दृष्टि से अहिंसक ही है। जो लेखक आत्मघात रूप से ऐसे संथारे का वर्णन करते हैं वे मर्म तक नहीं सोचते। परन्तु यदि किसी अति उच्च उद्देश्य से बिना किसी पर रागद्वेष किये, सम्पूर्ण मैत्रीभाव पूर्वक निर्भय और प्रसन्न हृदय से बापू जैसा प्राणान्त अनशन करे तो फिर वे ही लेखक उस मरण को सराहेंगे। कभी आत्मघात न कहेंगे। क्योंकि ऐसे व्यक्ति का उद्देश्य और जीवनक्रम उन लेखकों की आँखों के सामने है। जबकि जैन परम्परा में संथारा करने वाले चाहे शुभाशयी ही क्यों न हों पर उनका उद्देश्य और जीवनक्रम इस तरह सुविदित नहीं। परन्तु शास्त्र का विधान तो उसी दृष्टि से है और उसका अहिंसा के साथ पूरा मेल भी है। इस अर्थ में एक उपमा है। यदि कोई व्यक्ति अपना सारा घर जलता देखकर कोशिश से भी उसे जलने से बचा न सके तो वह क्या करेगा। आखिर को सबको जलता छोड़कर अपने को बचा लेगा। यही स्थिति आध्यात्मिक जीवनेच्छु की रहती है। वह खाहमखाह देह का नाश कभी न करेगा। शास्त्र में उसका निषेध है। प्रत्युत देह रक्षा कर्त्तव्य मानी गई है। पर वह सयम के निमित्त आखिरी लाचारी में ही निर्दिष्ट शर्तों के साथ देहनाश समाधिमरण है और अहिंसा भी। अन्यथा बालमरण और हिंसा।

भयंकर दुष्काल आदि तंगी में देहरक्षा के निमित्त सयम से पतन होने का अवसर आये या अनिवार्य रूप से मरण लाने वाली बीमारियों के कारण खुद को और दूसरों को निरर्थक परेशानी होती हो और फिर और सयम या सद्गुण की रक्षा सम्भव न हो तब मात्र संयम और समभाव की दृष्टि से संथारे का विधान है जिसमें एकमात्र सूक्ष्म आध्यात्मिक जीवन को ही बचाने का लक्ष्य है। जब बापू जी आदि प्राणान्त अनशन की बात करते हैं और मशरुवाला आदि समर्थन करते है तब उनके पीछे यही दृष्टि बिन्दु मुख्य हैं।

भवदीय

सुखलाल

पुनश्च :

यह पत्र तो कब का लिखा है। देरी भेजने में इसलिये हुई है कि गाथाइत्यादि के लेखन की जांच करनी थी। और श्री दलसुख भाई ने इस विषय के सारे ग्रन्थ 'मरण विभक्ति प्रकीर्णक' आदि देखे जिनमें उस ग्रन्थ का भी समावेश है जिसके आधार

मशारी

पर राधाकृष्णन ने लिखा है। वह ग्रन्थ है आचारांग सूत्र का अँग्रेजी भाषांतर अध्ययन सात। राधाकृष्णन ने लिखा है सो शब्दतः ठीक है। पर मूल संदर्भ से छोटा सा टुकड़ा अलग हो जाने के कारण तथा व्यवहार में आत्मवध अर्थ में प्रचलित "स्युसाईड" शब्द का प्रयोग होने के कारण पढ़ने वालों को मूल मंतव्य के बारे में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। बाकी उस विषय का सारा अध्ययन और परस्पर परामर्श कर लेने के बाद हमें मालूम होता है कि यह प्रकरण संलेखना और संथारे से सम्बन्ध रखता है। इसमें हिंसा की कोई बू तक नहीं है। यह तो उस व्यक्ति के लिए विधान है जो एकमात्र आध्यात्मिक जीवन का उम्मीदवार और तदर्थ की हुई सत्प्रतिज्ञाओं के पालन में रत हो। इस जीवन के अधिकारी भी अनेक प्रकार के होते रहे। एक तो वह जिसने जिनकल्प स्वीकार किया हो जो आज विच्छिन्न है। जिनकल्पी मात्र अकेला रहता है और किसी तरह किसी की सेवा नहीं लेता। उसके वास्ते अन्तिम जीवन की घड़ियों में किसी की सेवा लेने का प्रसंग न आवे इस लिए अनिवार्य होता है कि वह सावध और शक्त अवस्था में ही ध्यान और तपस्या आदि द्वारा ऐसी तैयारी करे कि न मरण से डरना पड़े और न किसी की सेवा लेनी पड़े। वहीं सब जवाबदेहियों को अदा करने के बाद बारह वर्ष तक अकेला ध्यान तप करके अपने जीवन का उत्सर्ग करता है। पर यह कल्प मात्र जिनकल्पी के लिये ही है। बाकी के विधान जुदे-जुदे अधिकारियों के लिए है। सबका सार यह है कि यदि की हुई सत्प्रतिज्ञाओं के भंग का अवसर आवे और वह भंग को सहन कर नहीं सकता, उसके लिए प्रतिज्ञा भंग की अपेक्षा प्रतिज्ञा-पालन पूर्वक मरण लाना ही श्रेय है। आप देखेंगे कि इसमें आध्यात्मिक वीरता है। स्थूल जीवन के लोभ से आध्यात्मिक गुणों से च्युत होकर मृत्यु से भागने की कायरता नहीं है। और न तो स्थूल जीवन की निराशा से ऊब कर मृत्यु मुख में पड़ने की आत्मवध कहलाने वाली बालिकाना (बचपना) है। ऐसा व्यक्ति मृत्यु से जितना ही निर्भय उतना ही उसके लिये तैयार भी रहता है। वह जीवनप्रिय होता है जीवन मोही नहीं। संलेखना यह मरण को आमंत्रित करने की विधि नहीं है पर अपने आप आने वाली मृत्यु के लिए निर्भय तैयारी मात्र है। उसके बाद संथारे का भी अवसर आ सकता है। इस तरह यह सारा विचार अहिंसा और तन्मूलक सद्गुणों की तन्मयता में से ही आया है जो आज भी अनेक रूप से शिष्टसम्मत है। राधाकृष्णन ने जो लिखा है कि बौद्ध धर्म "स्युसाईड" को नहीं मानता सो ठीक नहीं है। खुद बुद्ध के समक्ष भिक्षु छन्न और भिक्षु वक्कली ने ऐसे ही असाध्य रोग के कारण आत्मवध किया था जिसे तथागत ने मान्य रखा। दोनों भिक्षु अप्रमत्त थे। उनके आत्मवध में फर्क यह है कि वे उपवास आदि के द्वारा धीरे-धीरे मृत्यु की तैयारी नहीं करते किन्तु एकबारगी शस्त्रवध से स्वनाश करते हैं। जिसे "हाराकरी" कहना चाहिए। यद्यपि ऐसे शस्त्र-वध की सम्मति जैन ग्रन्थों में नहीं है पर उसके समान दूसरे प्रकार के वधों की सम्मति है। दोनों परम्पराओं में मूल भूमिका सम्पूर्ण रूप से एक ही है। और वह है मात्र समाधि जीवन की रक्षा। "स्युसाईड" शब्द कुछ निंद्य सा है। शास्त्र का शब्द समाधि-मरण और पण्डितमरण है जो उपयुक्त है। उक्त छन्न और वक्कली की कथा अनुक्रम से मज्झिम निकाय और संयुक्त निकाय में है। लम्बा पत्र इसलिए भी उपयोगी होगा कि

उस एकाकी जीवन में कुछ रोचक सामग्री मिल जाय। (मैं आशा करता हूँ) यदि सम्भव हो तो पहुंचा दें।

भवदीय
सुखलाल १४-२-४३

नमूने के लिये अब प्राकृत पद्य और उनका अनुवाद देता हूँ।

'मरण पडियारभूया ऐसा एवंच ण मरणणिमित्ता
जह गंडच्छेअकिरिया णो आय विराहणा रूपा'

समाधि मरण की क्रिया मरण के निमित्त नहीं किन्तु उसके प्रतिकार के लिए है। जैसे फोड़े का नस्तर लगाना यह आत्मविराधना के लिए नहीं होता।

'जीवियं नाभिकखेज्जा मरण नावि पत्थए,'

उसे न तो जीवन की अभिलाषा है और न मरण के लिये वह प्रार्थना ही करता है।

'अप्पा खलु संथारो हवई विशुद्धो चरित्रम्मि।'

चारित्र्य में स्थित विशुद्ध आत्मा ही संथारा है।

कलकत्ता, ७ सितम्बर १९४४

भाई श्री भँवरमल जी,

आपका पत्र २५. ८ का समय पर मिल गया था। उत्तर देने में विलम्ब हो गया क्योंकि २-३ दिन के लिए तो मैं एक बार कोंटाई की तरफ चला गया था फिर दो-तीन दिन व्यस्त ज्यादा रहा इसीलिए यह लिखने में विलम्ब हुआ मानना चाहिए।

जेल में समय उपयोगी तरीके से काटने के लिए दो ही साधन है– पढ़ना और कातना। बाकी खेलना और गप्प। वर्षों का एकांगी जीवन कितना नीरस शुष्क और साथ ही बिना विशेष उपयोग के कटता हुआ कितना खटकता है। लेकिन मनुष्य अपने ध्येय के प्रति वफादार बना हुआ चाहे जैसे जीवन में भी संतोष और सुख मानता है। देव और दानवों के युद्ध का वर्णन पुराणों में पढ़ते हैं वह आलंकारिक भाषा में है लेकिन अलंकार उतार कर उसका शुद्ध रूप देखें तो आज सारे संसार में यह युद्ध चलता हुआ स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा है। कंस ने वसुदेव जी को जेल में बन्द कर दिया था क्योंकि उनका पुत्र उसे मारने वाला था और इसीलिए वसुदेव जी के जितने लड़के होते थे उन्हें कंस मरवा देता था। वसुदेव जी के पुत्र के माने—वसुदेव जी के अन्याय के प्रति प्रकट किये हुये विचार और उनका प्रचार। कंस की मान्यता थी कि अगर वसुदेव जी को अपने विचारों का प्रचार करने का मौका मिला तो उससे 'मृत्यु'—याने उसके अन्यायपूर्ण साम्राज्य की मृत्यु—निश्चित है। उठाकर जेल में रख दिया और प्रचार को रोक दिया। लेकिन कृष्ण याने उनके वे सद्विचार जेल की चहारदीवारी और सात ताले तोड़ कर भी बाहर जनता में पहुंचे और कंस की मृत्यु हुई। आज भी ठीक वही हालत है। दूसरे जमाने में भी रही है। सम्भव है आगे भी रहे। [illegible],

जमाने

सत्य, अहिंसा आदि मानवोचित विचारों की जीत तो है ही यह ध्रुव सत्य है लेकिन इसमें जो धीरज, अटूट धीरज की दरकार है, वह भी साथ ही है। हम लोग अल्पकालीन हार-जीत देखकर व्याकुल हो जाते हैं—घबड़ा उठते हैं—धीरज खो देते हैं लेकिन इस विशाल काल—अनन्त समय—में यह छोटा सा काल २-५ वर्ष का १०-२० वर्ष का काल या सौ-पचास वर्ष का काल भी क्या महत्व रखता है। जिनकी इस चीज में श्रद्धा है उनको तो यह मानना चाहिए कि अगर आज की दानवी और अन्यायपूर्ण—दुख का सृजन करने वाली एक प्रणाली को अगर उन्होंने और उनकी आने वाली पीढ़ी ने सतत प्रयत्न करके पचास या सौ वर्षों में बदल दिया तो उन्होंने बहुत जल्दी ही एक बहुत बड़ा महान भले का काम कर दिया।

बाहर में आज इतना काम उन लोगों के लिए करने का पड़ा है, जो लोग कि कुछ करने की हविस रखते हैं—इच्छा और ताकत रखते हैं, कि कुछ हिसाब नहीं। लेकिन वे करें तो किस तरह करें। हाथ पांव बांध कर उन्हें बन्द जो कर दिया गया है। लेकिन बैठे-बैठे भी अपने श्वासों द्वारा ही हवा में वे अपना काम तो कर ही रहे हैं।

आपके विचार पढ़े। मैं उनसे पूरी तरह सहमत हूँ। कुछ थोड़े से लोगों का एक गुट हो गया है और वह यही सोचता और कल्पना करता रहता है तथा केवल इसी तरह की योजनायें बनाता रहता है कि किस तरह अनन्त काल तक लोग जनता उनके इस गुट की गुलाम बनी रहे।

घर में माता-पिता की बीमारी—दूसरा कोई गृहस्थी को सँभालने वाला मेम्बर घर में न हो और फिर बीस-बीस दिन खत न मिलना यह सब आदमी को विकल करने वाली बातें तो हैं ही। इस स्थिति में आप जितने बैलेंस्ड और सुखी रहते हैं वह स्पर्द्धा करने की चीज है।

हम लोग सब मजे में हैं।

स्नेही

भागीरथ कानोड़िया

[आजादी के एक वर्ष के भीतर कलकत्ता में मारवाड़ी विद्वेष की कुछ घटनाएँ हुई। इससे चिंतित होकर भँवरमल जी ने किशोर लाल घ० मश्रुवाला को पत्र लिखा और उस पत्र का जो जवाब उन्हें मिला उसे सिंघी जी के पत्र सहित छापा जा रहा है: सं०]

४-१०-१९४८

श्रद्धेय किशोर लाल भाई,

इस समय मुल्क में प्रांतीयता का जो जहर फैल रहा है, वह हमारे नेताओं के उपदेशों के बावजूद कम होता नहीं दिखायी देता, बल्कि आजादी मिल जाने के बाद तो वह और तेजी और तीखेपन के साथ फैल रहा है। पूज्य बापू जी ने रचनात्मक कार्य-

क्रम में प्रांतीय भेद को तरजीह न देने की बात भी कही थी। पर जैसे दूसरे रचनात्मक कार्यों में हमारी श्रद्धा ढीली रही, वैसे ही प्रांतीयता की भावना भी हमारे दिलों से गयी नहीं, वह दब रही थी और आजाद होते ही जैसे साम्प्रदायिकता का जहर फूटा वैसे ही यह प्रांतीयता का विष भी फैल रहा है। इसके लिए कौन दोषी है, कौन निर्दोष है, यह मालूम करना भी आज कठिन हो रहा है। लोग प्रांतीय भेद के कारण सिर्फ गाली-गलौज ही नहीं करते, अब तो जगह-जगह हिंसा की बातें भी होने लगी हैं। दस बारह दिन हुए होंगे यहां व्यापारिक प्रतिष्ठानों के एक मुख्य अंचल में मारवाड़ी लोगों के खिलाफ बंगाली लोगों ने प्रांतीयता की आग भड़काई। संयोग से उस वक्त मैं भी घटनास्थल के निकट था। जो कुछ मैंने देखा उससे यह नहीं लगा कि हर बंगाली ने मार-पीट में भाग लिया हो या यह कि हर मारवाड़ी पर हमला किया गया हो। पांच-सात आदमियों को तो मैंने स्वयं देखा, जिनपर हमला किया गया और उनको चोट लगी, और खुले आम लोग प्रांतीयता के नारे लगा कर हमले करते रहे।

मुझे यकीन है कि इसमें बहुत कुछ गैर-जिम्मेदार लोगों का ही हाथ होगा। पर इस तरह की घटनाएँ जब होती हैं और उन पर काबू नहीं पाया जाता तो ये फैल जाती हैं और खून-खराबी होती है, उससे भी ज्यादा मनों में तनाव बढ़ जाता है। इस तनाव का असर बाद में वातावरण को खराब बना देता है। इस वक्त यहां ऐसा ही हो रहा है।

मैं मारवाड़ी समाज का व्यक्ति हूँ और मुझे मालूम है कि हममें क्या दोष और कमियां हैं। यह भी समझ में आता है कि इन दोषों के कारण दूसरे लोगों की भावना खराब हो जाती है। पर यह तो साफ है कि खराबी व्यक्तियों में होती है, चाहे उनकी संख्या ज्यादे हो या कम। सारे समाज को खराब समझ लेना गलत है। मारवाड़ी समाज में व्यवसाय की प्रधानता है, इसलिये वह धनी समाज कहा जाता है और धन के दोषों से वह बरी नहीं है। पर काफी संख्या मारवाड़ी समाज में ऐसे लोगों की है जो बहुत गरीब और शोषण के शिकार हैं। परन्तु जब जाति या प्रांत की दृष्टि से मनुष्यों में भेद किया जाता है तब एक जाति या एक प्रांत के अच्छे और बुरे लोग समान माने जाते हैं। यही स्थिति आज पैदा हो गयी है।

इस समय यहां लोगों में इस विषय की काफी चर्चा है। कुछ हैंडबिल आदि भी प्रांतीयता को भड़काने वाले निकाले गए हैं जिनसे स्थिति में खराबी ही होती जा रही है। ऐसी स्थिति में हमलोगों का क्या कर्त्तव्य है। यह आग फैलती ही जायेगी तो मुल्क बरबाद हो जायेगा। पर क्या करना है, इसका रास्ता नहीं दीखता। बापू जी ने सच्चाई और निर्भयता का जो रास्ता दिखाया, उस पर इतमीनान नहीं रहता। हिन्दुस्तान का आज जो नक्शा है और जो हम भविष्य के लिए बनाना चाहते हैं, उसमें तो यह गैरमुमकिन बात है कि एक प्रांत में दूसरे प्रांत के लोग न आवें या न रहें। परिस्थितियों ने मजबूर किया तो दूसरी बात होगी। हिन्दुस्तान को हम इस हालत में कायम रखना चाहते हैं; पर जब एक प्रांत के लोग दूसरे प्रांत में जाकर रहते हैं, तो फौरन वे अपनी वेश-भूषा नहीं बदल दे सकते और (उनके) प्रांत का भेद दीखता रहेगा। तब क्या उस हालत में एक प्रांत का आदमी दूसरे प्रांत में नहीं रहने दिया

जाएगा ? क्या हिन्दुस्तानी संस्कृति के द्वारा प्रांतों के लोग एक नहीं हैं—भाषा, वेश भूषा का मामूली फर्क रहते हुए भी क्या हम आपस में मेल-जोल से नहीं रह सकते। आज तो हालत यह है कि हर प्रांत का आदमी दूसरे प्रांत में रहता हुआ मिल जाएगा। अगर जैसे कलकत्ते में हुई, आपस में मार-पीट हुआ करे तो इसका अन्त कहां होगा और किस प्रान्त का आदमी उस मार पीट का शिकार हुए बिना रहेगा ? यह सोचना ही दर्दनाक और बुरा लगता है। इसमें कोई शक नहीं है कि जो लोग व्यापार में, नौकरी में या शासन व्यवस्था में सामाजिक न्याय के विरुद्ध कार्य करते हैं, उनकी निन्दा अवश्य होनी चाहिये और सरकार को निश्चय ही कड़ा कदम भी उठाना चाहिये। सजा पाने वाला व्यक्ति चाहे जिस समाज का भी हो, ऐसे हजारों व्यक्ति दोषी पाये जाने पर भी कोई सारा समाज दोषी करार नहीं दिया जा सकता। यह गलत धारणा दूर होनी चाहिये। आप इस विषय पर क्या परामर्श देते हैं। आपकी सलाह बड़े मौके की होगी, यह मानकर ही आपको कष्ट दे रहा हूँ।

आपका

भँवरमल सिंघी

१६-१०-४८

श्री भँवरमल जी सिंघी

आपका ता० ४ का पत्र मिला। जब हम देखें कि अच्छे उपदेश का असर नहीं होता और बुराई बढ़ती जा रही है, तब समझना चाहिए कि कोई गहरी कमी उन लोगों में है जो बुराई के शिकार हो रहे हैं।

जहां तक मारवाड़ी गुजराती आदि का सवाल है, यह साफ है कि जो धन हम एक प्रांत से कमाते हैं उनके हम उस प्रांत के लोगों के लिए ट्रस्टी नहीं बनते। जितनी हद तक हम धन के समुचित ट्रस्टी बन जायेंगे और हमारा अपना सामान्य जीवन साधारण पैमाने पर रखने का आग्रह रखेंगे, उतनी हद तक हम उस प्रांत के लोगों की ईर्ष्या के पात्र नहीं बनेंगे। अगर एक आदमी राजस्थान या गुजरात से डोरी-लोटा लेकर आ गया हो और एक छोटी सी खोली में रहकर छोटा सा व्यवसाय या सिर्फ सट्टा या दलाली करता रहे और वही आदमी पच्चीस या पचास साल बाद बड़े भवन का मालिक बन जाय और अपने ही अनेक सगे-बिरादरों का पोसने वाला तथा अपने मूल गांव में बड़े मकान और अपने संस्थाओं को बांधने लग जाय तो यह स्वभाविक है कि वहां के लोगों को उसका अस्तित्व चुभेगा। बंगाल में प्रांतीय संकीर्णता है क्योंकि बंगाल में रहने वाले गुजराती मारवाड़ी आदि बंगाल को अपना भक्ष्य समझते हैं, सेव्य नहीं। अगर हम बंगालियों से द्वेष करें तो उनका क्या दोष ? जितने ही शीघ्र और अधिक से अधिक हम लोग धन के सच्चे ट्रस्टी बनेंगे, उतना ही हम इस जहर को फैलने से रोक सकेंगे।

यह ठीक है कि हम लोगों के साथ प्रांत के गरीब लोग भी आ जाते हैं और जो वहां गरीबी की रोटी कमाते हैं, कभी-कभी वे भी द्वेष के शिकार हो जाते हैं।

इसमें दो कारण हो सकते है एक तो उसी प्रकार का व्यवसाय करनेवाले स्थानिक लोगों से प्रतिस्पर्धा और दूसरा जातपांत की भावना के कारण सामाजिक दिलगाव। जो स्थानिक लोगों से खाने-पीने और शादी वगैरह करने लग जाते हैं, वे शायद ही द्वेष के शिकार बनते हैं।

आपका पत्र पढ़ते-पढ़ते जो विचार दिल में आये, वे लिख दिये हैं, संभव है कि यह पूर्ण न हो, इसलिए अगर आप और कुछ सोच सकते हों तो लिखिये।

आपका

किशोरलाल घ. मश्रूवाला

लखनऊ यूनिवर्सिटी

लखनऊ

७-१२-५३

प्रियवर सिंघी जी,

आपका पत्र पाया। "वेदना" तो ट्रेन में ही पढ़ गया था। आपकी उस समय की अवस्था देखते तो बहुत ही सुन्दर है। सोचता हूँ, पहले से आपको यदि नहीं जाना, तब शायद दोनों ही लाभान्वित होते। आपको मुझमें आत्मीयता मिली, सो आप ही सबके व्यक्तित्वों का प्रतिबिम्ब या प्रतिध्वनि थी। आत्मीयता सब में रहती है, उसको जगाने के लिये साथी अपेक्षित होते हैं। आपके घर तो एक-डेढ़ दिन ही रहा, पर अब सदा के लिए वह अपना "घर" बन गया। लेकिन कलकत्ता दूर है।

दो चिन्ताएं लेकर आया। एक यह कि किस तरह आपको और बहिन सुशीला को ज्यादा निकट देखूं। वे आपके स्वास्थ्य को लेकर बड़ी चिन्तित थीं। दूसरी यह कि आपकी कलात्मक प्रतिभा का अधिक सदुपयोग कैसे हो। गद्य गीत तो आपका स्वाभाविक माध्यम है ही, कभी कहानी ट्राइ की? टैगोर की कहानियां भीतर से लिरिकल हैं। यों आपके पास एक पत्र भी है (कल वात्स्यायन जी का पत्र मिला। एक साइक्लोस्टाइल्ड पत्र निकालना चाहते है) पत्र होना बड़ी बात है। ... एक बात कहूँ, आप अभी भी कुछ ज्यादा सबजेक्टिव रूप में संवेदनशील हैं, शायद रुग्णावस्था में मुझे वैसे और लगे हों। कुछ अधिक आब्जेक्टिव बनिये, मानवता के सांस्कृतिक सामाजिक इतिहास का अध्ययन कीजिए। मनुष्य में सदा से बुराइयां रही है—धूर्तता, शक्ति-लिप्सा, खुशामदीपन—पर सदा से अच्छाइयां भी रही हैं इसलिए आशावान होना चाहिए। ... आपमें मृदुता है, दृढ़ता और गहराई अधिक आनी चाहिए। बर्ट्रेंड रसेल की पुस्तकें पढ़िये—सेलेक्टेड पेपर्स (माडर्न लाइब्रेरी) 'रोड्स टु फ्रीडम', 'कान्क्वेस्ट आफ हैपीनेस आदि।

पता नहीं क्यों मनुष्य अप्राप्त और अलभ्य की कामना करता है। यही उसकी शक्ति है, यही उसके कष्ट का हेतु। शायद हम सब "साथी" से ज्यादा एक्सपेक्ट करते हैं। साथी केवल सहानुभूति दे सकता है, करना तो हमें ही होगा। [illegible] को परिस्थितियों से उलझना पड़ता है। यह नियति है। [illegible]

बाई हिज नीड्स । कल्पनाशील व्यक्ति को "वेदना" लगी रहती है, शायद वह कला—सृष्टि का सम्बल भी है।

आपका अपना
देवराज

पुरानी बस्ती
पो० - साधु आश्रम
होशियारपुर
११-१-५८

प्रिय श्री भँवरमल जी,

सप्रेम नमस्ते। आपका दिनांक ९ जनवरी का पत्र मिला। उसे पढ़ कर आप अनुमान नहीं कर सकते, मुझे कितनी प्रसन्नता हुई। आप ऐसा अपने विचारों का मित्र मिलना संसार में दुर्लभ है। जहाँ दूसरे बड़े - बड़े राजनीतिक और सुधारवादी नेता अपने पत्रों में जात-पांत के विरुद्ध एक लेख तक छापने में डरते हैं वहाँ, आप उस पर एक विशेषांक ही निकालने जा रहे हैं। इसके लिए कोटि-कोटि साधुवाद और धन्यवाद।

इस पुनीत कार्य में मैं आपको पूरा-पूरा सहयोग देने को तैयार हूँ। मैं कुछ दिन में अपने सुझाव और जिन लेखकों को लेख के लिए कहना चाहिये उनके नाम आप के पास लिख भेजूंगा। कुछ अहिन्दी भाषी सज्जनों के नाम भी लिखूंगा। उनके लेखों का अनुवाद किया जा सकता है।

यह विशेषांक कितने पन्ने और किस आकार का होगा।

बसन्तलाल मुरारका स्मारक ग्रन्थ मुझे अभी तक नहीं मिला। भिजवाने की कृपा कीजिए। श्री राम गोपाल मोहता का भी अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार हो चुका है। अब छपना शेष है।

सौभाग्यवती सुशीला सिंघी से मेरी, धर्मपत्नी और मेरी ओर से प्रेमपूर्ण नमस्ते कहिये। सामाजिक सुधार के कठिन कार्य में वे सम्यक रूप से उपयुक्त जीवन-संगिनी हैं। उनके विचार और कार्य देख कर मन बहुत प्रसन्न होता है। भगवान आप दोनों कर्मयोगियों की जोड़ी सदा सकुशल और सुखी बनाए रखें। मैं यह कामना आपको प्रसन्न करने के लिए ही नहीं करता। लखनऊ में मेरे एक मित्र हैं। सामाजिक सुधार में पहले वे बड़ा भाग लिया करते थे। परन्तु दुर्भाग्य से जिस दिन से उनकी जीवन-संगिनी इस संसार से उठ गईं तब से वे निकम्मे हो गये हैं। कुछ उत्साह नहीं रहा।

आपका स्नेहाधीन
सन्तराम

नासिक
२८-५-१९५८

प्रियवर सिंघी जी,

आपका पत्र यथा समय मिल गया था। और पुस्तिका भी। अस्वस्थता के कारण उत्तर न लिख सका। डाक्टर की सम्मति से यहां जलवायु परिवर्तन के लिए आया हूँ, डेढ़ महीने से अधिक हो गया। चल फिर नहीं सकता। पुस्तिका को आद्यन्त पढ़ गया हूँ। तुलसीगणी और उनके तेरहपंथ का नाम ही सुना था, विशेष कोई जानकारी नहीं थी, आपने बड़ी निर्भयता और स्पष्टता से दोनों का स्वरूप सबके सामने खोल कर रख दिया है और उनकी रगरग की पहिचान करा दी है। इसका प्रचार अधिक से अधिक होना चाहिये।

इस पंथ का नाम तेरापथ क्यों पड़ा, यह जानना चाहता हूँ। दिगम्बरों में भी एक तेरापंथ है जो कविवर बनारसीदास श्रीमाल के समय वि० सं० १७०० के आसपास प्रचलित हुआ था। इस पंथ के अनुयायी भट्टारकों को नहीं मानते और अध्यात्म की ओर अधिक झुकते हैं। कान जी स्वामी की तरह समयसार आदि ग्रन्थों का पठन पाठन विशेष करते हैं। भीखम जी से एक सदी पहले यह तेरहपंथ हुआ। तब क्या इसी का अनुकरण करके भीखम जी का तेरह पंथ हुआ? दिगम्बरों का तेरह पंथ पहले पहल आगरा, जयपुर आदि के आस-पास फैला था। आप इस पर प्रकाश डाल सकें तो उपकृत हूंगा।

मैं एक तरह से जीवित मृत हूँ। बिलकुल किनारे आ लगा हूँ।

आपका
नाथूराम प्रेमी

६, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली
४-५-५९

प्रिय भँवरमल जी,

कृपा पत्र और पुस्तक के लिये धन्यवाद।

अणुव्रत उपयोगी है। मेरे लिये इतना बहुत है। अन्य बातों के विषय में क्या चिन्ता करूँ। परन्तु आपका लिखना तर्कपूर्ण है। पूज्य सुखलाल जी की सम्मति का कहना ही क्या। वे मनीषी पुरुष हैं। आचार्य तुलसी जी समाजोन्मुख हो रहे हैं तो यह हमारे लिए शुभ ही है। चिरस्वीकृत संस्कार धीरे-धीरे ही बदलते हैं।

आप स्वस्थ सानन्द होंगे।

आपका
मैथिलीशरण

[illegible]

नई दिल्ली
१९-८-६०

प्रिय भाई श्री सिंघी जी,
सप्रेम वन्दे।

आपका १६/८ का पत्र मिला। मैं आपको लिखने की बात सोच ही रहा था—इसलिए और भी कि आते समय आपसे भेंट नहीं हुई, इसका बड़ा पछतावा रहा। हमारी गाड़ियों का मेल मुगलसराय पर न होकर शायद किसी बीच के छोटे स्टेशन पर हुआ लगता है। इसी से भेंट न हो पाई।

हाँ, मैंने सहज भाव से कलकत्ते में यह कहा था कि मुझे किसी स्थान विशेष से कोई खास मोह नहीं और सदा मैं एक स्थान से दूसरे में भटकता ही रहा हूँ। पर यथार्थ में कलकत्ते का २०-२२ वर्ष का जीवन, इस दौरान में घटी घटनाएँ, हुए परिचय आदि तो अपनी अमिट छाप छोड़ ही गये हैं और उन्हें जीवन भर भूलना सम्भव न होगा।

वैसे आपके साथ जो संसर्ग रहा, वह तो परिचय की औपचारिकता से कहीं दूर की चीज़ है। आपका संसर्ग न होता, तो सन् ४२ की बातें और काम एक तरफ रहे, न तो शायद "नया समाज" पत्र होता और न मैं उससे सम्बद्ध होता। उसे चलाने और बीच-बीच में उठने वाली बातों के सुलझाने में आपने जो कुछ किया, वह क्या कभी भूला जा सकता है। कुल मिलाकर मेरे जैसे शाई (संकोची) और दूसरी ओर काफी उग्र (एक्स्ट्रीम) व्यक्ति के लिए आप बहुत बड़ा सहारा और सेतु साबित हुए। पर अब तो ये सब स्मृतियाँ भर हैं, जो केवल याद ही नहीं रहेंगी, बल्कि सालती भी रहेंगी।

"नया समाज" निकलना बन्द होने के बाद यथार्थ में मेरा मन टूट गया और कलकत्ता से भागने की बात भी मन में आई। पर आज के युग में साधनहीन व्यक्ति एक जगह से बोरिया-बँधना उठा कर अन्यत्र कहीं जाय भी तो क्या करे और सचमुच में कोई रास्ता न निकाल सका।

अब यहाँ हूं, पर मन जैसे मर-सा चुका है। लगता है जैसे—'आए थे हरि-भजन को ओटन लगे कपास', वाली बात सिद्ध हो रही है। पर किया भी क्या जाय?

आशा है आप, सुशीला जी और बच्चे आनन्द हैं। इधर जब भी आना हो, मुझे या तो पहले पत्र दे दें या आकर रेडियो में फोन कर दें। अधिक मिलने पर। सुशीला जी से नमस्कार कहें और बच्चों को प्यार।

आप ही का,
मोहन सिंह सेंगर

२८-२-६१

प्रिय भाई,

पिछले १५ दिन से रोज आपको लिखने को सोचता रहा और फिर टालता रहा। उस दिन की बात आप सुनें तो मेरी नासमझी पर काफी हँसें। हुआ यह कि शांति

श्री रामेश्वरलाल नोपानी के साथ

श्री सिद्धराज ढड्ढा के साथ

श्री भागीरथ कानोड़िया के साथ



श्री जगन्नाथ वेरीवाल के साथ

सीताराम सेकसरिया और काका कालेलकर के साथ

।विंद प्रसाद कानोड़िया, ईश्वरदास जालान और सीताराम जी के साथ

पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी के साथ

श्रीमती ज्ञानवती लाठ के साथ

प्रसाद जी के यहां से चला तो उनका ड्राइवर प्रिन्स अनवर शाह स्ट्रीट ले आया। पर आपका नम्बर मकान का भूल गया था केवल 'सुस्मिता' याद था। ड्राइवर महोदय ने पहले तो कहा वे सिंघी जी को नहीं जानते। फिर और विस्तार से बताने पर एक बार प्रसन्न होकर बोले—हां, हां, सिंघी जी को हम १० साल से जानते हैं। इस कोलम्बस को खोज में ११ बज गये। अन्त में एक किसी ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां साधना या शक्ति या किसी औषधालय का कारखाना था। वाह क्या वातावरण था वहां का! शरत् बाबू ने जरूर उस पर कोई छोटा उपन्यास लिखा होगा। वहां से आपको फोन किया तो मालूम हुआ आप दफ्तर गये। पर उस नम्बर के मकान की सही स्थिति कहां है सारे बंगाली कान्फ्रेन्स करके भी यह निर्णय नहीं ले पाये और मुझ पर सभी हंसते रहे कि बंगाल का चप्पा-चप्पा तीर्थ स्थान है और मैं हूं कि एक घर का पता ठीक नहीं जानता हूं।

सो यह तो रही उस दिन की बात।

आचार पत्रिका का नया अंक देखा जिसमें धार्मिक क्रान्ति सम्मेलन वाली बात थी। यह आन्दोलन बहुत महत्वपूर्ण है। धर्मयुग में शीघ्र ही इस पर शायद टिप्पणी दूं। पुष्पा सन् ५९ के कलकत्ता सम्मेलन की बातें बता रही थी। उसका कोई सोविनियर छापा हो तो भेजियेगा।

सुशीला जी से प्रणाम कहियेगा। वे तो नाराज होंगी ही। उनको कभी समझाइये कि देवरों से नाराज न हुआ करें। हिन्दी साहित्य में एक दुर्घटना हो चुकी है। भाभी की नाराजगी के कारण बेचारे भूषण वीर रस के कवि बन गये थे।

सस्नेह

धर्मवीर भारती

चण्डीगढ़

२-७-६३

प्रिय भाई भंवरमल जी, नमस्कार।

आपका २३-६-६३ का कृपा पत्र मिला। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप चण्डीगढ़ आना चाहते हैं। यह शहर सचमुच देखने योग्य है। अवश्य आइए, सपरिवार। यहां के कई आकर्षण हैं—(१) भाखड़ा का रास्ता इधर से ही है, (२) कसौली और शिमला निकट हैं और (३) पाण्डव लोग जब सदेह स्वर्ग की ओर रवाना हुए थे (पहुंच तो एक ही सका था) इधर से ही गए थे। कहते हैं पंजोर (जहां मुगलों ने एक सुन्दर बाग बना दिया था और जो यहां से १० मील पर है) वही स्टेशन है जहां से स्वर्ग यात्रा शुरू हुई थी। उक्तं च—

"आदिममध्यम-आधुनिक, सकल स्वर्ग की राह।
जय चंडीगढ़ गढ़ विमल, अभिनव शिल्प प्रवाह॥

आधुनिक ढंग की नगर-निर्माणकला और नवीन वस्तुकला का यह उत्तम नमूना है। मैं विश्वविद्यालय में गांधी भवन का डाइरेक्टर भी हूं। यह भवन नई वस्तु का

[illegible]

बहुत ही उत्तम निदर्शन है। पर कोई देखने भी तो आए। आइए, अवश्य आइए।

शेष कुशल है। आशा है आप और सुशीला जी सानन्द हैं।

आपका

हजारी प्रसाद द्विवेदी

श्री रमेन्द्र नाथ भट्टाचार्य पर आपकी कृपा दृष्टि बनी रहनी चाहिए।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

कलकत्ता

१६ फरवरी, १९६५

आदरणीय सिंघी जी,

कार्यकारिणी (अनामिका की) की पिछली बैठक में जो हुआ, उसके बारे में आपसे टेलीफोन पर बात करने के बजाय मैं यह चिट्ठी लिख रहा हूँ। मुझे यह लगता है कि जो हुआ वह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण और तकलीफदेह था।

मैं इस पत्र द्वारा आपके प्रति अपना आदर, कृतज्ञता-भाव और प्रशंसा-भाव भी प्रकट करता हूँ। मुझे यह लगता है कि हमारे सारे कार्य-कलाप के मूल में आपका प्रोत्साहन, निर्देशन और समर्थन रहा है। मुझे आपके नेतृत्व में पूरा विश्वास है और मैं यह सब सिर्फ अपनी ओर से नहीं कह रहा हूँ। अनामिका के सभी मित्रों और सहयोगियों का भी यही मत है।

लेकिन इसके साथ मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि कई बार आपने जो कुछ कहा और किया है उससे मुझे दुख पहुँचा है। ऐसा न कहना पाखंड होगा। ऐसे अवसरों पर मुझे काफी असंतोष और रोष हुआ है लेकिन मैं उसी तरह चुप रहा हूँ जिस तरह पिता या बड़े भाई के कुछ कहने और करने पर रहता हूँ। आपका स्वभाव और काम करने का तरीका आपका अपना है। जब भी हम एक साथ काम करते हैं तो यह मान कर ही चलते हैं। इसके अपने फायदे और नुकसान हैं। लेकिन फायदे इतने ज्यादा हैं और नुकसान उनकी तुलना में इतना कम होता है कि आपका साथ हमेशा आनन्द और भरोसा प्रदान करता है। बहरहाल मुद्दे की बात करूँ। मैं यह बताना चाहता हूँ कि आपने अपने निष्कर्षों पर मेरी राय को जिस तरह दर किनार किया उससे मुझे आघात पहुंचा है। मुझे आपका दर्शक-आलोचक गोष्ठी में अपनी ओर से बयान देने पर जोर देना, उचित नहीं मालूम पड़ता और अन्य दो-तीन अवसरों पर भी मुझे आघात लगा, लेकिन वह उत्सव के दौरान मुझे और मेरे मित्रों को आपसे जो स्नेह और भरोसा मिला उसके आगे नगण्य था। हमें हमेशा यही लगता था कि आपका सहयोग व समर्थन हमारे साथ है और ऐसे में कुछ भी गड़बड़ हुई तो हम आपके भरोसे रह सकते हैं। आप इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि उत्सव में काम करते समय इस भावना से हममें कितना भरोसा और संतोष रहता था।

मुझे इस बात का दुख है कि एक ऐसा अवसर पैदा हो गया है कि जब मुझे अपनी बात कहनी पड़ रही है। मैंने आशा की थी कि मेरी भावनाओं को आप हमेशा

समझेंगे। लेकिन अब जब एक अप्रिय स्थिति पैदा हो गयी है तो मुझे लगता है कि मैं आपको अपनी बात बताऊं ताकि आप यह न सोचें कि विष्णुकांत जी हम सब की ओर से बोल रहे थे।

विष्णुकांत जी हमेशा से सच्चे मित्र रहे हैं और हमलोगों के साथ लम्बे अरसे से काम कर रहे हैं। मैंने उन्हें हमेशा सच्चा भरोसेमंद और खरा पाया है। दुर्भाग्य वश उन्हें (आपकी बात से) बहुत आघात लगा और उन्होंने सम्पूर्ण स्थिति के बारे में जल्दबाजी में कुछ निष्कर्ष निकाल डाले। हो सकता है कि आपने अपनी राय थोपी हो पर खुद को नहीं थोपा। यही फर्क है जो ध्यान देने का था। मुझे लगता है कि विष्णुकांत जी को इसे समझना चाहिए था। आपने हमेशा हमें नेतृत्व दिया है लेकिन संगठन पर हुक्म नहीं चलाया है। तानाशाही प्रवृत्ति का कोई सवाल ही नहीं उठता। आपकी अध्यक्षता के दौरान हमें कार्य करने और राय प्रकट करने की पूरी स्वतन्त्रता रही है। अब जब आप अध्यक्ष नहीं हैं तो आपके तानाशाही तरीके से काम करने की बात उठती ही नहीं। संगठन में तानाशाही प्रवृत्तियों के बढ़ने का सवाल ही नहीं उठता।

अनामिका का अब तक का वातावरण अत्यन्त समरसता का रहा है। ऐसे अवसर भी आये हैं जब हमें एक दूसरे से कष्ट पहुंचा है लेकिन स्नेह, सद्भावना और निष्ठा के चलते हम एक दूसरे से गुंथे रहे हैं। मैं यही आशा करता हूं कि इस घटना से इसमें कोई अवरोध नहीं आयेगा। हम आपके छोटे भाई की तरह हैं। यदि हम किसी चीज के बारे में नाराजगी महसूस करें तो यही उचित होगा कि उसे मन में पालने के बजाय खुल्लम खुल्ला प्रकट करें। मुझे लगता है कि विष्णुकांत जी ने इसी भावना से अपनी बात कही और उनकी बात के पीछे आपके प्रति सम्मान और स्नेह की तनिक भी अवज्ञा नहीं थी—स्नेह और सम्मान आपके प्रति हम सबके मन में है।

इस पत्र की एक प्रतिलिपि मैं विष्णुकांत जी को भेज रहा हूँ।

आपका
श्यामानन्द
(श्यामानन्द जालान)

२१ अप्रैल ६७

पूज्य बाबूजी,

आपको गये हुए एक महीना होने आया और अभी आने में दो-तीन हफ्ते और बाकी हैं। यहाँ सब लोग बेताबी से आपका इन्तजार कर रहे हैं।

यह पत्र हम आपके दो पत्रों के जवाब में लिख रहे हैं, क्योंकि जिस दिन ७ अप्रैल को लिखा आपका पत्र मिला, उसके एक दिन पहले हमने आपको चिट्ठी लिखी थी। कल शाम को आकर देखा—आपके दो पत्र—एक माँ के नाम, एक हमारे। अंजू की भी चिट्ठी आई थी—कल की डाक बहुत उत्सुकता एवं अधीरता से खोली। हम और माँ जब लौटे तो ऊपर (छत) वाले फ्लैट के लिये किसी को बुलाया था, वे आये हुये थे—उनको करीब दस मिनट बिठाकर पहले पत्र खोले, पढ़े, उनसे लेकर बातें की, फिर कहीं उन सज्जन से कुछ कहा। वो फ्लैट लेंगे ऐसा लगता है—

सिद्धार्थ

एक आसामी कपल है। नीचे का फ्लैट भी एडवरटाइज किया था—कुछ लोगों ने देखा भी है, पर अभी कुछ सेट्ल नहीं किया है। मेज़नी का फ्लैट भी अभी नहीं हो पाया है।

खैर, छोड़िये इन सब से निश्चिन्त होकर आप वहाँ हैं—फिर घर-गृहस्थी की समस्याओं में उलझा रहे हैं। वैसे इस उलझन को भी आप कितना सुलझा कर रखने का प्रयत्न करते हैं, यह आपकी अनुपस्थिति में और भी अधिक मालूम पड़ता है।

यह सुन कर बहुत आनन्द हुआ कि कान्फरेंस में आपने ही प्रस्तावों का ड्राफ्ट तैयार किया और बाकी सदस्यों ने प्रशंसा की। आपकी प्रसन्नता का अन्दाजा लगाना तो सहज ही है—जीवन के आरम्भ में किये हुये घोर परिश्रम और निष्ठापूर्ण संघर्ष का परिणाम तो मिलना ही था—वह भी यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मिले, तो खुशी और सन्तुष्टता होना स्वाभाविक ही है। हमने पहली चिट्ठी में लिखा था कि यहाँ बैठे हमलोगों को आपके जाने का और आपकी प्रसिद्धि का इतना गर्व एवं आनन्द है, तो स्वयं आपको कैसा लग रहा होगा, यह सोचना मुश्किल नहीं।

और तो यहाँ सब ठीक है। गर्मी के कारण परेशानी है—वैसे कल परसों थोड़ी बारिश होने की वजह से कुछ ठण्ढ सी है।

आपको खाने पीने का खूब आराम रहा—यह तो सबसे अच्छा रहा। आपने श्री भैया की चिट्ठी में लिखा है कि रात को ढाई बजे पत्र लिख रहे हैं—दिन भर की व्यस्तता के बाद भी रात को इतनी देर तक पत्र लिखने की शक्ति रह जाती है, यह तो आश्चर्य की बात है।

और एक बात है—जिस किताब का नाम दिया था वो ला सकें तो ले आइयेगा (लेटेस्ट एडीशन) अगर असुविधा हो तो और किसी तरह मँगवाने की व्यवस्था कर सकें, तो देख लीजिएगा। बाकी चीजें तो आप खुद अपनी सुविधानुसार लाइयेगा। कोई खास बात तो है नहीं।

आपके पत्र पढ़ कर पत्र लिखने की कम, पाने की इच्छा बढ़ती जाती है लेकिन फिर भी लिख तो रहे हैं—

आपकी बेटी
अन्नू
(सुषमा गुप्त)

कलिंगपोंग
२१-५-६८

प्रिय भाई सिंघी जी,

आपका पत्र मिला। पढ़कर प्रसन्नता हुई। आज सुबह से ही कोहरा छाया हुआ है। सब लोग गंगटोक गये हैं। इसलिये घर में बैठे-बैठे किताब पढ़ कर थक गया था। ऊंचाई-नीचाई के कारण घर से निकलना भी सम्भव नहीं है। ऐसे में आपका और सुशीला जी का पत्र मिला तो तबीयत बाग-बाग हो गई। आपने

ठीक ही लिखा है कि दौड़-भाग के बिना जीवन का कोई क्षण नहीं है। परन्तु मैं तो दौड़ भाग करने में अपने को बिलकुल असमर्थ ही पाता हूं। १४ वर्ष पहले मैं कलिंगपोंग में था, तब रोज १० मील चल लेता था। अपने तो आप जैसे मित्रों के सहारे और बात बनाने के जोर पर काम चला लेते हैं। कलिंगपोंग वास्तव में बहुत शांत शहर है। बाजार में दुकानें काफी हैं। सामान से भरी हुई हैं, परन्तु किसी में भी ग्राहक दिखाई नहीं देते हैं। अन्य कोई व्यापार है तो अन्दर ही अन्दर होगा। फौजी लारियां दौड़ती रहती हैं।

मेरी तबीयत यहां आने के बाद पहले से अच्छी ही है। परन्तु ऐसा लगता है ५-७ दिन तक कलकत्ता वापिस आ जायेंगे। १-२ दिन में कर्सियांग जाने का विचार है। वहां पर एक मित्र की कोठी है। २-३ दिन वहां ठहरेंगे ताकि बच्चे दार्जिलिंग आराम से घूम सकें।

आशा है आप प्रसन्न होंगे।

श्रीनगर के लिये रिजर्वेशन हो गया होगा। सीताराम जी जा रहे हैं या नहीं लिखियेगा। वह हो आवें तो अच्छा है। नपसी की परीक्षा ठीक हो गई होगी।

आपका

जगन्नाथ बेरीवाल

१६, लार्ड सिन्हा रोड, कलकत्ता-१६

दिनांक: १६-४-७१

चि० सुशीला और भँवरमल जी,

शुभाशीष और मंगल कामना।

आज आप लोगों के विवाह को २५ वर्ष पूरे हो गये। तुम लोगों के विवाह की मेरे मन में अनेक स्मृतियां है। इस अवसर पर २५ वर्ष के जीवन की ओर उसके पहले तुम्हारे बचपन के जीवन की और भंवरमल जी के कलकत्ते आगमन से जो सम्बन्ध हुआ, उसकी अनेक स्मृतियां मन में आती हैं। इन २५ वर्षों में जिन परिवर्तनों के अन्दर से देश और हम लोग गुजरे राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक कामों में साथ-साथ रहने का मौका मिला और भंवरमल जी के परिवार से और तुम्हारे पीहर के परिवार से जो कौटुम्बिक सम्बन्ध बना और सौहार्द मिला यह भी स्मरण होता है।

उम्र में मैं तुम दोनों के पिताओं से बड़ा हूं इसलिये तुम दोनों के प्रति मेरे मन में उस तरह का भाव होना स्वाभाविक है। पर कामों में हम लोग साथियों की तरह परस्पर समभाव से काम करते रहे हैं और अनेक अवसरों पर देश, समाज के सेवा के कामों में ज्यादा से ज्यादा सहयोग रहा है। विचारों का कोई खास दूसरा मतभेद रहते हुए भी तुम लोगों के नये से नये विचारों के साथ मेरे मन का विचारों का मेल रहा है।

आज के २६ वर्ष पहले एक नवयुवक मेरे साथ आया और वह चला भी गया। उसका साथ भी बड़ा सुखद था। मेरा जीवन में अनेक लोगों से सम्बन्ध आया है। बड़े से बड़े लोग देश के, गांधी जी और गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर दोनों की कृपा भी प्राप्त की। पूज्य जमनालाल जी से मेरा कौटुम्बिक सम्बन्ध बना और बहुत गहरा। भाई बसन्त लाल जी से बचपन से जीवन पर्यन्त बहुत ज्यादा गहरा सम्बन्ध रहा। भाई भागीरथ जी की तो क्या बात कहूं। १९२६ में मैंने एक पेंसिल से नोट लिखा था किसी कापी में वह मिल गया कहीं, १०-१५ वर्ष पहले। उसमें लिखा कि मेरा भागीरथ जी का पूर्व जन्म का सम्बन्ध है और वे निहायत साधु और सज्जन हैं। उन दिनों मेरा भागीरथ जी का कोई गहरा और नजदीक का सम्बन्ध नहीं था तब भी यह स्वाभाविक रूप से लिखा गया। इसके बाद तो जो सम्बन्ध बढ़ा और है वह हृदय का है ही। सुख-दुख और जीवन के हर काम में उनका साथ और सहयोग रहा है।

ऊपर जिस युवक का जिक्र किया है वह हैं श्री जगन्नाथ जी बेरीवाल जिनकी मृत्यु २-३ महीने पहले हो गयी। उनको भूला नहीं जा सकता। उन्होंने भी मुझे पिता जैसे माना और हर काम में हृदय से सहयोग दिया। और उनका मेरा २५-२६ वर्ष का सम्बन्ध इतना प्यारा, घरेलू और स्नेह भरा रहा। दुःख है कि वे इतनी जल्दी चले गये। उनका अभाव सदा खलता रहेगा, उनका स्नेह भरा सम्बन्ध बार-बार हृदय को द्रवित करता है। वे निहायत सज्जन सहयोगी उदार और प्रेमिल आदमी थे।

मैं जानता हूं कि पिछले ७-८ वर्षों में तुम दोनों का भी उनसे बहुत ही अच्छा और बहुत ही गहरा प्रेम भरा सम्बन्ध रहा है। उनका अभाव हम सब को ही खलता है। तुम दोनों के विवाह की इस रजत जयन्ती पर वे होते तो हो सकता है इसे हम लोग अधिक सुखद रूप में मनाते पर ये सब तो किसी के वस की बात नहीं है। जो भी हो इस शुभ अवसर पर मैं तुम दोनों की तथा सारे परिवार की मंगल कामना करता हूं। इस बहाने से जैन साहब और चि० पद्म, रतन, अन्न, अंजू इन सब के सारे परिवार के लिये मेरी शुभ कामना। तुम लोग अच्छे से अच्छे रहो, सुखी रहो। सबसे बड़ी मेरी चाह या कामना तो यही है कि तुम लोगों के द्वारा देश, समाज और साहित्य की सेवा होती रहे।

यह तो कहने की बात नहीं है कि मैं स्वयं उपस्थित होकर यह सब कहता और सुख अनुभव करता क्योंकि तुम जानती ही हो मैं पैर में चोट लगने के कारण बिछौने पर हूं और मेरी बीमारी में आप लोग जो कर रहे हैं उसके लिये क्या कहूं। तुम लोगों तथा मित्रों की शुभ कामनाओं से अच्छा हो जाऊंगा।

शुभकामनाओं के साथ
सीताराम सेकसरिया

फुलवारी कैम्प जेल (पटना)
८-८-७५

प्रिय भाई भँवरमल,

तुम्हारा ता० १४-७ का पत्र पाकर बहुत खुशी हुई। इससे यह पता चला कि मेरा मासिक पत्र डाक में रोका नहीं गया—मित्रों के पास पहुंच गया। यहां भी भेजा हुआ तुम्हारा उत्तर मिल गया—इसका मतलब यह है कि इस सिरे पर भी वह इन्टरसेप्ट नहीं हुआ। रामकुमार जी भुवालका का उत्तर भी मिला है। अभी और किसी के उत्तर नहीं आये हैं। मैं यह पत्र करीब ७०-८० मित्रों को देश भर में भेजता हूं।

लेकिन ज्यादा खुशी तो पत्र पाकर इसलिये हुई कि यहां जेल में पत्र ही एक प्लेजेंट डाइवरशन होता है और फिर पत्र भी तुम्हारे जैसे निकट मित्र के।

जयपुर से संयोग से पिछले तीन सप्ताह से कोई पत्र नहीं है। मालूम नहीं क्या बात है। तुम्हारी भाभी जी ७-८ जुलाई को यहां मिलने आई थीं। लेकिन उसी समय आंतरिक सुरक्षा कानून में मेरी नजरबन्दी का आदेश भी आ गया अतः और मुलाकातें बन्द हो गईं। तब से मेरी मुलाकातें भी बन्द हैं।

तुम जयपुर हो आये होगे। घर पर सब ठीक है न? इस पत्र के पहुंचने तक तुम कलकत्ते वापस आ गये होगे।

तुमने एक दो बार पहले भी जिक्र किया था और इस पत्र में भी संकेत लिखा है कि जयप्रकाश जी के आंदोलन और उनके तौर-तरीकों के बारे में भिन्न राय हो सकती है, और है भी—कुछ विस्तार से लिखोगे तो अच्छा होगा। तुम्हारे जैसे मित्र को जो शंकाएं हैं वह जानना चाहूंगा।

विनोबा जी के बारे में तुमने लिखा वह जाना। 'अनुशासन पर्व' वाली बात ने तो मुझे भी आश्चर्य में डाल दिया—दुःख भी हुआ। या तो वे कुछ भी नहीं बोलते लेकिन बोले तो गिरफ्तारियों, सेंसरशिप आदि के बारे में कुछ नहीं कहना उनके विचारों की बुनियाद को ही खत्म करता है। विनोबा जी के सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूंगा कि शायद उम्र आदि के कारण वे ऊँचाई से नीचे के स्वाभाविक धरातल पर आ गये हैं या फिर उनकी उस समय की ऊंचाई हमारा भ्रम था।

जेल में समय तो है ही—अतः स्वास्थ्य को ठीक से संभालने की कोशिश करता हूं। आराम, व्यायाम, खेलना आदि सब चलता है। खाने में भी जहां तक नार्मल फूड मिर्च-मसाले छोड़ दिये हैं। रोटी और उबली सब्जी या खिचड़ी खाता हूं। नाश्ते में डबल रोटी, मक्खन, डिब्बे का दूध लेता हूं। जेल में जो दूध मिलता है वह दूध भी है या नहीं इसमें भी कभी-कभी शक होता है।

पत्र जब तुम्हें फुरसत मिले, लिखते रहना। मुझे तो फुरसत ही फुरसत है। सुशीला को सस्नेह स्मरण।

सस्नेह
सिद्धराज ढड्ढा
[illegible]

९-८-८३

पूज्य बाबू जी,

आपके इस पावन जन्म दिन पर हम सबका आदर भरा प्रणाम।

आज हम सब मिल कर इस दिन का अभिनन्दन करते हैं। एवं आशा करते हैं कि यह दिन बार-बार आकर इसी प्रकार हमें यह उल्लास देता रहे।

आपने जीवन एक कर्मयोगी की तरह जिया और आज भी उसी लगन और उत्साह से जीवन कर्म में लगे हुए हैं, यह हम समझ पाये हैं, देख सके हैं, शायद यही हम लोगों की उपलब्धि है। हम अपने जीवन को इस प्रकार का बना पायेंगे, यह संदेह है।

आपका और माँ का जीवन एक आदर्श बन चुका है। अब हम सब इसके, चाहे कुछ अंशों में ही सम्भव हो पालन की कोशिश में लगें। आज हमें यही आशीर्वाद चाहिए।

चीकू, रिंकू, मुनमुन और तपती, सबका सादर प्रणाम।

आपका

श्री



सिंघी जी द्वारा लिखे गये पत्र

सेक्योरिटी प्रिज़न प्रेसिडेंसी जेल

कलकत्ता

२२-१२-४२

प्रिय पदम,

सप्रेम आशीर्वाद। जहाँ तक मुझे याद है, तुम्हें यह पहली बार ही चिट्ठी लिख रहा हूँ। अब तुम इतने बड़े हो गये हो कि मेरी चिट्ठी अच्छी तरह पढ़ सकते हो और जवाब भी दे सकते हो। संयोग भी कैसा है कि तुम्हें यह चिट्ठी जेल की दीवारों से घिरा हुआ अपनी कोठरी में बैठकर लिख रहा हूँ। तुम अभी बच्चे हो जैसा एक दिन मैं भी था। हम बचपन में यही जानते थे कि जेलों में चोर, डाकू, बदमाश और ख़ूनी लोग रखे जाते हैं, पर तुम्हारे बचपन तक दुनिया और हिंदुस्तान की हालत बहुत बदल गयी है। अब चोर, डाकू और बदमाशों के अलावा जेल में एक किस्म के लोग और रखे जाते हैं जिनके बाहर रहने को पुलिस और तथाकथित सरकार खतरनाक समझती है, फिर चाहे ऐसे लोग खतरे का कोई काम करते हों या नहीं। खैर तो इस बार मुझे भी जेल की दुनिया देखने का मौका पुलिस की मेहरबानी से मिल गया। बाहर की दुनिया से जेल की दुनिया न्यारी होती है। यहाँ आ जाने के बाद बाहर की दुनिया से सारा सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है—मैं तुम लोगों से भी अलग पड़ा

हूं। कलकत्ता में मैं रहता था और तुम लोग जयपुर में, उस समय जो अलगाव था उससे इस समय का अलगाव एक खास विशेषता रखता है। दो पत्रों की चिट्ठी लिखने और तुम्हारी आयी हुई चिट्ठियां पढ़ने के अलावा तुमसे और कोई सम्बन्ध नहीं है। यही जेल में रखने का मकसद है। इन परिस्थितियों में तुम लोगों को कितनी चिन्ता होगी, इसका खयाल जेलवालों को थोड़े ही होता है। इस बात की हमें उम्मीद भी नहीं होनी चाहिये। तुम लोगों को मेरे बारे में वृथा किसी तरह का खयाल नहीं करना चाहिए। पूज्य दादा साहब को मैं दो पत्र अब तक दे चुका हूँ—वे पहुंचे होंगे। उनकी तबियत बिलकुल अच्छी तरह होगी—चि० लाडू, रतन और भी सब अच्छी तरह होंगे। माँ की तबियत राजीखुशी होगी—उनको मेरा प्रणाम कहना। वे मेरे बारे में चिन्ता न करें। मैं बहुत राजी खुशी हूँ खाने-पीने पहनने ओढ़ने-बिछाने वगैरह की कोई तरह की तकलीफ नहीं है—पढ़ने, कातने, बातें करने, खाने-पीने में हमारा समय बीतता है। अखबार और किताबें हम लोगों को बाहर से पढ़ने को मिल सकती हैं—सप्ताह में हम लोग चार चिट्ठियां लिख सकते है। और पन्द्रह दिन में एक बार रिश्तेदारों से एक घन्टे के लिए मुलाकात करने दी जाती है। मैंने श्री कँवर साहब से मुलाकात कराने के लिये लिखा है—शायद दो-चार दिन में वे यहां आवेंगे, तब मुलाकात होगी।

श्री दादासाहब से जो सोना मैं लाया था, उसे बेचने के लिये कँवर साहब से कह दिया था। मुझे पता नहीं उन्होंने बेचा या नहीं। शायद बेच ही दिया होगा। उनसे मुलाकात होगी तब मालूम पड़ेगा। रुपये दो सौ भी उन्होंने भेज दिये होंगे। आज मैंने अपने आफिस के आदमी श्री विश्वनाथ उपाध्याय को लिखा है कि मेरी तनखाह के रुपयों में से रु० १२५) हर मास दादासाहब के नाम भेज देंगे। मुझे मालूम हुआ है कि इतना रुपया यानी आधी तनखाह मुझे जेल में रहने पर भी मिलती रहेगी। श्री दादा साहब को कह देना कि रुपये बहुत देखकर खर्च करेंगे क्योंकि पता नहीं कि कब तक यह आधी तनखाह भी मिलेगी और कब तक मुझे जेल के अन्दर बन्द रहना पड़े और आगे कैसा जमाना आवे। अगर रुपये बचाकर नहीं रखे तो मुश्किल हो सकती है। जिनसे ७५) आने की बात थी, वे अब शायद नहीं आवेंगे। तनखाह के जो रुपये तुम्हारे पास आवेंगे, उनसे ही काम चलाना होगा।

दो पत्रों से ज्यादा नहीं लिख सकता इसलिए आज इतना ही। आज अखबार में देखा कि कलकत्ते के पास की कुछ बस्ती पर जापानी बम गिरे हैं—नुकसान कम ही हुआ है। इस समाचार से तुम लोगों को चिन्ता होगी पर कुछ घबराहट न करना भगवान सब अच्छा करेंगे।

तुम्हारा
भँवरमल

[illegible]

प्रेषक

भँवरमल सिंघी, सेक्योरिटी प्रिज़नर

प्रेसिडेंसी जेल, कलकत्ता

११-१०-४४

पूज्यवर दादा साहब,

सेवा में सादर प्रणाम। आपकी चिट्ठी आये इस बार भी कई दिन हो गये। आजकल चिट्ठियों के आने जाने में देर होती है जिसकी शिकायत आपको भी है और मुझे भी; पर बात न आपके वश की है, न मेरे वश की। जेल के जीवन में यह देरी तो बहुत मामूली बात है। चारों तरफ विलम्ब और प्रतिबन्ध ही तो हैं। दो वर्ष पूरे होने को आये—सरकार अभी तक कितने लोगों को बन्दी ही रखे हुए है। दूसरे प्रांतों में कुछ कुछ लोग छूटते भी हैं पर बंगाल में तो कई महीनों से रिहाई एकदम बन्द सी ही है। और आज भी स्थिति ऐसी नहीं मालूम होती जिससे जल्दी ही रिहाई की आशा की जाय। ऐसी हालत में केवल पत्रों द्वारा हमलोग परस्पर क्षेम कुशल के समाचार जान सकते हैं। और इसमें भी जब विलम्ब हो तो दुख होना स्वाभाविक ही है।

पर इन छोटी छोटी बातों के लिये चिन्ता भी क्या करें? चिन्ता के कितने दूसरे कारण हैं, हालांकि मैंने जेल जीवन के दो वर्षों में यहां शरीर या मन से कोई तकलीफ नहीं पायी है—पढ़ने-लिखने, कातने, खेलने आदि में समय अच्छी तरह चला गया। पर आप लोगों से इतने दिनों दूर रहने और वृद्धावस्था में आपकी कुछ भी सेवा न कर सकने का क्षोभ बराबर रहा ही है। बीच-बीच में आप लोगों में से किसी की अस्वस्थता का समाचार मिलने पर तो और भी ज्यादा व्याकुलता रही।

चिंता का दूसरा विषय जो बराबर मेरे दिमाग में मौजूद रहता है—पदम, रतन व श्री की शिक्षा का है। उनकी शिक्षा का यह वह समय है जबकि अधिक से अधिक सँभाल और ध्यान रखने की जरूरत है। और यह काम आपका नहीं, मेरा है। मेरे मन में इस सम्बन्ध में कई कल्पनाएँ थीं—पर आज कुछ भी नहीं कर सक रहा हूँ। शिक्षा के विषय में न आपकी जानकारी है न अनुभव। बच्चों को प्यार करने और अच्छी तरह से उनका लालन पालन करने से शिक्षा का सवाल अलग है। आप लोगों ने मेरी शिक्षा के समय जो कुछ किया वह साधारणतया हमारी स्थिति के माता-पिता खूब कम कर पाते हैं। आपने जो कुछ किया उसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। जिन लड़कों को माता-पिता ने हजारों लाखों की सम्पत्ति दी, उनकी अपेक्षा मैं अपने को ज्यादा सौभाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि मैंने अपने माता-पिता से जो प्यार और ज्ञान पाया उसकी बराबरी हजारों लाखों की सम्पत्ति नहीं कर सकती। कष्टों की साधना में से मैंने जीवनीशक्ति पाई है। छोटे भाइयों की शिक्षा सम्बन्धी जिम्मेदारी मेरी है पर जब कि उनकी देखभाल का समय है, मैं जेल में बन्द हूँ। इस कारण काफी क्षोभ होता है—पर करूँ भी तो क्या? आप कितनी भी सम्हाल रखें, इस विषय में मैं जो कुछ करना चाहता था—या कर सकता था, वह नहीं हो सकता। आज बच्चों

पर, खुद पर ही सब कुछ निर्भर करता है। आप उनके लिए योग्य अध्यापक रखकर ही जो कुछ कर सकते हैं, करते हैं। मुझे संतोष है तो इतना ही कि पदम वगैरह को खुद को इस विषय में अपने कर्त्तव्य का ध्यान है।

आदमी कुछ भी कर ले, आर्थिक चिंता से बिल्कुल मुक्ति मिलना प्राय: असम्भव सा ही होता है। आर्थिक विषय में मेरी कभी अपनी कोई महत्वाकांक्षा नहीं रही, इससे मुझे जीवन में बेईमानी करने की बहुत कम जरूरत पड़ी है। आप शायद मुझसे सहमत न हों, पर बड़ी महत्वाकांक्षाओं का मतलब है ज्यादा बेईमानी, धोखा, फरेब और झगड़ा। उससे मैं बच पाया हूँ—धन-दौलत न होते हुए भी अच्छे-अच्छे लोगों की संगति और उनसे इज्जत पा सका हूँ। पर आप लोगों को कभी जीवन निर्वाह सम्बन्धी आर्थिक चिन्ता न हो, इस बात का अपनी जान सदा ही ध्यान रखा है और आज भी आर्थिक विषय में अगर मुझे कोई चिन्ता है, तो यही कि मेरे जेल में बन्द होने की वजह से आय तो रही नहीं और खर्च है ही। ज्यों-ज्यों अधिक समय गुजरता है, यह प्रश्न अधिक चिन्ता का कारण होता जाता है। जिस आधार पर अब तक काम चलता रहा वह भी अब बन्द होने वाला ही समझना चाहिये। और किसी घनिष्ठ से घनिष्ठ मित्र या रिश्तेदार से भी रुपया उधार लेना मैं पैरों में बेड़ियाँ डालने के समान समझता हूँ। ऋण से बढ़कर मनुष्य का दूसरा कोई शत्रु नहीं होता। ऋण के बोझ से दबे हुए व्यक्ति की सच्चाई, इज्जत और तन्दुरुस्ती भी नष्ट हो जाती है। फिर भी जहां जीवन रक्षा का ही सवाल हो वहां, आदमी को ऋण लेना ही पड़ता है। पर कोशिश हमेशा यही रहनी चाहिए कि इन बेड़ियों से कभी हमारे पैर न बंध सकें। दो वर्षों में मुझे आर्थिक विषय में विशेष चिंता नहीं थी। पर अब चिन्ता होने लगी है। न मालूम और कितना समय यहां रहना हो—कुछ ठीक थोड़े ही है। आपको दिक्कत न हो, इसका कुछ प्रबन्ध करूंगा ही पर आप भी इतना जरूर ध्यान रखें कि कम से कम प्रबन्ध करने की जरूरत हो। आपका हाथ ढीला है, यह मैं जानता हूँ। मैंने यह भी सोच रखा था कि इस विषय में आपको कुछ न लिखा करूँगा—और आज भी अगर मैं बाहर होता और मेरी आय रहती तो आपको कुछ न लिखता—आखिर आप ऐसा खर्च करते भी क्या हैं? पर जेल में बन्द होने के कारण जो परिस्थितियां सामने हैं, उनको देखते हुए मेरे मन की सारी उधेड़ बुन आपके सामने रख रहा हूँ। न तो मुझे यह ही मालूम है कि कितना और क्या-क्या खर्च होता है और न मैं यह सब जानना ही चाहता हूँ पर आपको इतना ही याद दिलाना है कि आज की महंगी के जमाने में जो नितांत आवश्यक है, वही खर्च किया जाय। मेरे यह लिखने का मतलब यह न समझें कि मैं आपको किसी प्रकार कष्ट पाने के लिए लिखता हूँ। खाने-पहनने का साधारण खर्च बच्चों की शिक्षा दूध आदि का खर्च तो रहेगा ही। शादी-ब्याह है ही नहीं और जरूरत भी नहीं है—फिर दूसरा खर्च जो छोटा-मोटा होता है वह होता ही। इसलिये लिखने जैसी बात दरअसल कुछ है नहीं। फिर भी मन की सब बातें आपको लिखने की आज इच्छा हो आई सो यह पत्र लिख दिया। और लिखूँ भी किसको? खर्चा कम करें, पर इसका मतलब यह नहीं कि आप किसी प्रकार का अनुचित कष्ट उठावें। यह मैं बिल्कुल नहीं चाहता। खर्चा कम करके कहां तक

एक और बात

कष्ट पावें, तो मेरी चिन्ता कम न होगी। जो अनावश्यक खर्च है वही रोका जा सकता है। इतना अगर आप कर सकें तो चिन्ता से मैं कुछ मुक्ति पाऊँगा।

चि० लाड़ की तरफ की मुझे कोई चिन्ता नहीं है। कँवर साहब योग्य, होशियार और कमाऊ हैं। खाने-पहनने की दिक्कत नहीं है; इससे अधिक की मैं चिन्ता नहीं करता। लाड़ प्रसन्न होगी—उसे मेरा आशीष कहें। कँवर साहब भी अब किशनगढ़ जाने वाले ही हैं। रास्ते में जयपुर तो ठहरेंगे ही, मैं उनसे कह भी दूंगा।

आप सब प्रसन्न होंगे। मां को ढोक कहना। चि० पदम, रतन व श्री को आशीष। मैंने अपना काता हुआ सूत बुनने के लिए बाहर भेजा है—कँवर साहब के जाने के पहले अगर कपड़ा बुनकर आ गया तो उनके साथ भेज दूंगा। पदम, रतन व श्री सबको मेरे हाथ के सूत के कुर्ते-कमीज बनवा दें। जेल में से और तो क्या भेजूं? अब जो सूत कात रहा हूँ—वह पतला हो रहा है—उससे लाड़ के लिए साड़ी बुनवाऊँगा, पर उसमें अभी कई महीनों की देर है।

बहुत सी बातें आज आपको लिख डालीं। मित्रों को बड़े बड़े पत्र लिखकर केवल साहित्य या दर्शन की ही चर्चा कर पाता हूँ। घर-संसार की चिंताओं की बातें किसे लिखता—पर इससे यह कदापि न समझें कि मुझे किसी प्रकार की कष्टकर चिंता या तकलीफ है। मैं बिलकुल अच्छी तरह हूँ और अच्छी तरह दिन कट रहे हैं। आप मेरी ओर की जरा भी चिन्ता न करें।

सबको यथायोग्य कहें--पत्र जल्दी दें।

आपका
भँवर

१०-३-५५

श्रद्धेय भाई जयप्रकाश जी,

सादर। उस दिन तरुण संघ द्वारा आयोजित सभा में हुए वाद-विवाद से आप जो 'इम्प्रेशन' लेकर गये और जिसको आपने अपने भाषण में भी व्यक्त किया था, उसके सम्बन्ध में पूरी स्थिति आपके सामने रखने के लिये ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ, क्योंकि आपका इम्प्रेशन सही नहीं है और जो सही नहीं है उस 'इम्प्रेशन' से आपको कष्ट हुआ, उसका मुझे भी बहुत दुख है। वह सभा तरुण संघ के सदस्यों की ही नहीं थी, उसका आयोजन जरूर संघ के द्वारा हुआ था। उसमें संघ के बाहर के ही लोग ज्यादा थे और प्रश्न पूछने या आलोचना करनेवालों में सेंगर जी और चोपड़ा जी के अतिरिक्त बाकी दूसरे ही लोग थे। सभा की सूचना में जो लोग भूदान के आलोचक हैं उनके साथ वार्तालाप करने का विशेष हेतु बताया गया था। सभा बुलाने के बारे में भाई रघुनाथ जी से आपकी जो बात हुई थी, उससे सम्भव है यह आयोजन भिन्न प्रकार का हो गया हो। आपने भाई सीताराम जी को जो पत्र लिखा उससे ऐसा लगता भी है। इस प्रकार सभा के आयोजन के बारे में ही गलतफहमी रह गई हो तो उसके लिये हम क्षमा चाहते हैं।

आपने जब कहा कि 'मुझे यहां अपमानित और दुखित करने के लिये बुलाया गया है' तो स्वयं मुझे बहुत चोट लगी। माना कि जो प्रश्न पूछे गये थे उनके तरीके और भाषा में बहुत कुछ था, जिसको मैंने और बहुत से दूसरे साथियों ने न उस दिन पसन्द किया और न आज करते हैं, पर जिस सभा के आयोजन के पीछे हमारा कुछ भी हाथ हो, उसके विषय में आपको यह भी लग सकता है कि आपको अपमानित करने के लिये बुलाया गया है, इससे अधिक हमारे लिये दुख और दुर्भाग्य की बात क्या हो सकती है। वह धारणा बनी और भाई सीताराम जी को लिखे आपके पत्र से मालूम होता है कि अब भी बनी हुई है। 'तरुण संघ' विचार-प्रधान प्रगतिशील सामाजिक संगठन है। जहां तक राजनीतिक विचारों का सवाल है उसकी अपनी कोई भी एक पक्षीय विचारधारा नहीं है। प्रत्येक सदस्य के अपने अपने विचार हैं, गणेशमल वैद और नवल किशोर शर्मा आदि साथी जो बड़ा बजार में भूदान और सर्वोदय के खास कार्यकर्त्ता हैं, संघ के अन्यतम सदस्य और कार्यकर्त्ता हैं। पिछले वर्ष अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के अधिवेशन में हमारे इन्हीं सदस्यों ने भूदान सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया और वह पास हुआ, उसका विरोध करने वालों में भी हमारे संघ के ही दो-एक सदस्य थे। इस मत-भिन्नता के कारण कभी हम लोगों में आपस में किसी प्रकार के राग का अवसर नहीं आया। पिछले दिनों हमने 'तरुण' में भूदान के सम्बन्ध में दोनों पक्षों के लेख छापे—समर्थन में लक्ष्मीनारायण 'भारतीय', गणेशमल वैद, महावीर प्रसाद केडिया के और विरोध में—सेंगर जी और ओंकार बोहरा आदि के। इन लेखों के बारे में मैंने ता० १ अगस्त १९५४ के 'तरुण' में जो टिप्पणी लिखी थी उसकी कटिंग आपको भेज रहा हूँ जिसे आप अवश्य पढ़ने की कृपा करें। तरुण संघ के सम्बन्ध में यह सब जान लेने के पश्चात् भी अगर आपकी वही धारणा बनी रहे जो अभी है, तो मुझे कुछ भी नहीं कहना है। संघ विचार-स्वातन्त्र्य को अपने संगठन की आत्मा मानता है और विचारों की प्रक्रिया में हमेशा ही मीठी या नरम बातें नहीं होती। विचार को हम सबसे ऊपर मानते हैं—ऊँचे से ऊँचे व्यक्ति के ऊपर किसी भी भूमिका पर से अगर विचार-प्रक्रिया का अवरोध होता है तो हमारी मान्यता है कि जिसे विचार आन्दोलन कहा जाता है, वह विचार से हटकर भक्ति और श्रद्धा में जाकर खतम हो जाता है। यह हमारे विचारों को भूमिका है।

भाई महावीर प्रसाद केडिया ने मुझसे दो तीन बार बातचीत की और कहा कि तरुण संघ 'भूदान' के कार्य को आगे बढ़ाये और यह भी कहा कि मैं स्वयं उसमें आगे आऊँ। मैंने अपना दृष्टिकोण उन्हें समझाया और बताया कि विचारों की दृष्टि से भूदान की 'लॉजिक' मेरे गले नहीं उतरती और तरुण संघ के सदस्य तो अलग-अलग विचारों के हैं ही। तरुण संघ ने मौके-मौके पर जाजू जी, धीरेन्द्र भाई, और आपके भी व्याख्यान भूदान पर कराये हैं और आपलोगों के विचार सुने हैं। जो साथी उन विचारों में ढले हैं वे कार्य करते हैं और अगर मैं यह कहूं तो अतिशयोक्ति न समझें कि ये साथी बड़ाबाजार में जो लोग भूदान का कार्य करते हैं उनमें विचारों की दृष्टि से दूसरों से अधिक स्पष्ट और ईमानदार हैं। मुझे एक मित्र ने बताया कि सभा के बाद आप जिनके यहां भोजन के लिये गये थे, उनके यहां आपने कहा कि तरुण

संघ के लोग कम्यूनिस्ट हो रहे हैं। जिन लोगों के सामने आपने यह कहा, उनके कांग्रेस-वाद, समाजवाद और भूदान एवं सर्वोदयवाद के बारे में तो क्या कहूँ ? उनको हम नजदीक से जानते हैं। हम इस बात की परवाह नहीं करते कि वे क्या मानते हैं और क्या नहीं मानते। सेठों की भाषा तो यह होती है कि जो कांग्रेस की या उनकी बात नहीं करते या फिर भूदान की बात भी नहीं करते वे कम्युनिस्ट हैं, पर आप भी ऐसा ही कह देते हैं क्या ? सेंगर जी की ही बात लें। कम्युनिस्टों के विरुद्ध आज हिन्दी पत्रकारों में जो लोग लिखते हैं उनमें शायद ही वे किसी से कम साबित हों। वे कम्युनिस्टों और उनकी विचारधारा का विरोध विचार-भूमिका के आधार पर करते हैं, अपनी सुविधा-असुविधा के आधार पर नहीं। जो आपको भोजन कराकर आपके सामने समाजवाद या भूदान या सर्वोदय की 'भक्ति' दिखाते हैं, वे इनमें से किसी भी वाद की उत्क्रांति का इतिहास तो दूर क, ख, ग, भी नहीं जानते। उनकी राय की हमारे निकट कोई वकत नहीं है, चाहे वे आपका सर्टीफिकेट लेकर बोलें या किसी और का। अगर किसी दिन कम्युनिस्ट ताकत में आये तो ये उस वक्त भी चांदी की थालियों में जिमायेंगे और जीमेंगे, और उनकी लड़ाई अगर कोई होगी तो हमसे, आपसे। इनका हृदय-परिवर्तन बहुत आसानी से हो जाता है। आपने हमारी खादी पहिनने और बापू के सिद्धान्तों को न मानने की बात तो कही, हमारा असली रूप तो आपने पहिचाना पर आपके इन खादीधारी भक्तों का रूप तो हम बहुत अर्से से जानते हैं। ऐसे लोगों की बापू भक्ति सारे देश को मालूम है। खैर, इस सबके बावजूद एक विचारक और निष्ठावान देश सेवक होने के नाते आपके प्रति हमारी श्रद्धा तो वैसी ही बनी हुई है।

आपने हमारे द्वारा आयोजित सभा में आकर अपने आपको दुखित और अपमानित अनुभव किया, इसका कारण अगर यह है कि आपकी विचारधारा से बिलकुल भिन्न विचार व्यक्त किये गये और दो विभिन्न भूमिकाओं की 'टक्कर' हो गई, तब तो क्षमा चाह कर भी हम सम्भवतः आपकी अनुभूति को बदल नहीं सकते, परन्तु अगर आपने यह मान लिया और किसी ने आपको यह समझा दिया कि हमने आपको दुखित और अपमानित करने के लिये निमंत्रित किया था, तो मैं कहूंगा कि जाने-अनजाने आपने हमारे साथ अन्याय किया है, और जब मैंने सीताराम जी से अपने दुखी होने की बात कही थी, तो यही भावना काम कर रही थी। आपको मैं विश्वास दिलाऊं कि आपको अपमानित करने वाले हम नहीं हैं। आपकी भक्ति का व्यवसाय करने वाले लोग ही ऐसा करते पाये जायेंगे। विचारों का तीव्र भेद होते हुए भी हम आपकी विचारशीलता को समझते हैं आप एक लम्बी विचार-यात्रा में से गुजरते हुए चल रहे हैं। कितना घात-प्रतिघात आपके मानस में हुआ होगा, कितने अनुभवों ने आपको झकझोरा होगा, इस विचार वेदना का मैं कभी-कभी अनुभव किया करता हूं। आप बदल रहे हैं, उसमें विचार-मंथन है। यह हम समझ रहे हैं। उसके साथ आपके मानस की, देश के जन-मानस की क्रिया-प्रतिक्रिया है। उस दिन जब आप बोल रहे थे, बीच-बीच में आपकी उस वेदना का दर्शन हो जाता था।

मैं मानता हूं कि जितना और जैसा पूछना-कहना हो चुका था, उसके बाद धन्यवाद की बात कुछ और तरह की होनी चाहिये थी और मुझे बाद में लगा भी कि मैं सारी चर्चा का उपसंहार करता तो अच्छा रहता, पर सुशीला जी देर से आने के कारण सारी चर्चा से पूरी तरह अभिज्ञ नहीं थीं, मंत्रिणी के नाते बोलने उठ खड़ी हुई। आपके यज्ञ में जाने और भूत वगैरह की बात जब से पढ़ी थी तब से हमें अजीब लग रहा था, फिर जब उस संवाद का आपकी ओर से कोई खण्डन नहीं निकला, तब तो और भी कैसा लग रहा था। इसीलिए सुशीला ने उस बात का जिक्र कर दिया था।

उसी दिन शाम को मैं आपसे मिल कर बात करना चाहता था, पर आपकी बातों में उस दिन व्यथा के साथ-साथ रोष और बौद्धिकता के प्रति जो व्यंग झलक रहा था उससे अधिक चर्चा करने से लाभ के बदले हानि ही अधिक दीखी। सोचा था कि जब आप अगली बार आयेंगे तब मिल कर सारी स्थिति बताने की कोशिश करूंगा, पर इसी बीच श्री सीताराम जी के पास आपका जो पत्र आया, वह मुझे उनसे देखने को मिल गया और मुझे यह पत्र लिखने की प्रेरणा हुई जो काफी लम्बा हो गया है, क्षमा करें।

आप स्वस्थ और सानन्द होंगे।

आपका ही
भँवरमल सिंघी

श्रीनगर काश्मीर
दिनांक—९-८-६०

प्रिय प्रतिभा,

जिस होटल के कमरे में बैठा यह पत्र लिख रहा हूं, वह काश्मीर के महाराजाओं का भूतपूर्व महल है—जिस विलास और वैभव की कल्पना किया करते थे और स्वतंत्रता की राजनीति के नाम पर जिस पर अपने मन का असंतोष और द्वेष उगला करते थे, उसी का वातावरण लिये-दिये यह होटल है। कमरे तो कमरे, हजारों फीट लम्बे-चौड़े वैरंडे में भी कीमती कालीन बिछे हुए हैं—जो चीज भी है, नायाब है। मनुष्यकृत इस वैभव के नीचे, ऊपर और सम्मुख प्रकृति का हर तत्व सजा हुआ, संवारा हुआ और खुलता हुआ है। पीछे पहाड़ की चोटियां, जिनके ऊपर सुबह सूर्य और रात को चांद आ बैठते हैं—और सामने उस झील का तरंगित विशाल वक्ष है जिस पर रंग-बिरंगे शिकारे अस्ताचलगामी सूर्य की अरुणिमा में पतवारों के संगीत की मस्ती भर देते हैं। एक पूरा लैंडस्केप है। यदि काश्मीर स्वर्ग है, तो यह स्थान उस स्वर्ग का नन्दनकानन है। पहले यह अदृश्य, अस्पृश्य ही था हम जैसे लोगों के लिये, पर प्रजातंत्र की नई व्यवस्था ने इसे भी जनता के अधिकार में सौंप दिया है। हां, खुला अधिकार भी कितनों का वास्तविक अधिकार

है ? एक वेड का रु० ५५) प्रति दिन। जो हो, यह इस स्वर्ग का चुना हुआ कोना है।

इतना सौन्दर्य और मैं हूं कि केवल सोचे जा रहा हूं। परसों दोपहर में यहां पहुंचा था और आज ६-७ घंटों के बाद दिल्ली पहुंच जाऊंगा वापस ! कुल मिला कर ४५ घंटे, जिनमें दो रातें भी हो गईं, पर यह कमरा और मैं, मैं और यह कमरा। देखने को है चारों तरफ, सचमुच बहुत है, पर देख कम रहा हूं, सोच ज्यादा रहा हूं—४५ घंटों में से काम तो था और हुआ है अब तक कुल ४॥ घंटों का—२-३ घंटे और काम के लिये समझो श्रीनगर छोड़ने से पहले। ऐसी हालत है—और कम्बख्त ९ अगस्त भी आज ही है, जो जन्म-दिन है मेरा। एक तो यों ही यहां बैठे को किताब, कागज और कलम के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझ रहा है, और फिर यह ९ अगस्त तो स्मृतियों का, विचारों का, मृत और जीवित कल्पनाओं का ज्वार ला रहा है। रात को डाइनिंग रूम से निकल कर लान पर लाल हाथ, पीली पीठ और हरे पैरों की कुर्सी पर बैठा दो घंटों से भी ज्यादा झील की ओर देखता रहा—दूर क्षितिज तक, अँधेरा और उजाला—तल का अंधेरा और आकाश का उजाला। झील विचारों के समुद्र में समा गई—और मैं जीवन के अंधेरे-उजाले में तैरता रहा—तैरते-तैरते डूबा या निकल आया कि सो गया। बैरे ने वेड टी के लिये किवाड़ खड़खड़ाये इसके बहुत पहले ही कमबख्त ९ अगस्त ने ऐसी स्मृतियां जगाई कि जब पड़े-पड़े नहीं चला तो किताबें इधर-उधर करने लगा—एयर पोर्ट से दो किताबें ले आया था Duchess of windsor's 'The Heart has its reasons' और D.H. Lawrence की 'The thorn in the flesh'. इनके पन्ने उलटे तो जीवन के अपने पन्ने उलट-पुलट होने लगे। अजब हैरानी है। क्या करूं, समझ में नहीं आता। अभी यहां बैठा हूं—अब पत्र ही लिखने लगा। ४ घंटों के बाद दिल्ली को जाती हवा के साथ उड़ूंगा—दिल्ली में हूंगा—रात को जनपथ में हूंगा। वहां कुछ बोलने-बतलाने वाले मिलेंगे—वाला वहीं है न ? और संभव है कुछ पत्र भी मेरी प्रतीक्षा कर रहे हों। आज का दिन और इस प्रकार ? तभी सोचता हूं कि इधर तो कुछ साल से ऐसे ही तो बराबर चल रहा है। आदमी के इतिहास को आदमी बनाता है---या कोई और ? जो और है, वह आदमी से कितना बाहर है ? है क्या बाहर ? आदमी अपने भीतर को अपने बाहर से काटकर अपने ही भीतर में अपना शत्रु खड़ा कर लेता है। वह बाहर से सफल और सुखी होने और उससे ज्यादा दीखने के लिये अंदर को कितना झुठलाता चलता है। इस झूठ ने दीवारें खड़ी कर दी हैं दीवारों ने सत्य को दबा लिया और खुद सत्य बन गईं। 'इन सत्य की दीवारों' के नीचे असल सत्य, नींव का सत्य घायल पड़ा है। यह सारी दुनिया दीवारों की दुनिया है और कहीं भी मुंह निकालने की गुंजाइश नहीं है—मैं वहां जा रहा था कि दीवारें सामने आ गई हैं। घायल सत्य कराह भी नहीं सकता। हां, लगता है कि जन्मदिवस के अवसर पर ये सब भी सोचने की बातें हैं ? पर क्यों नहीं हैं, जो है, उस पर ही तो चलना होगा। समय दौड़ रहा है—मेरे ९ अगस्त को एयरपोर्ट (श्रीनगर) की ओर ले चलने को और वहां से उड़ा कर नई दिल्ली की 'जनपथ होटल' तक पहुंचाने

को। फिर भी, ३-४ घंटे बचेंगे इस उड़ान और दौड़ से। उनमें पत्र ही लिखना सबसे अच्छा लगता है दो पत्र लिख चुका हूं तीसरा यह लिख रहा हूं और हुआ तो एक दो और भी लिखूंगा। स्याही की शीशी खरीद लाया हूं और हाथों को बात! आज वे भी नहीं दुखते—९ अगस्त के अकेले प्राणी पर उन्हें भी कुछ करुणा है। शरीर और आत्मा तो अलग होकर नहीं रह सकते, शरीर दुख पाकर भी आत्मा को अपनी पीड़ा के भार को कम करने में सहायता देगा ही। मन, मन को सहायता देने को जल्दी तैयार नहीं होता। दीवारों से घिरा हुआ मन। लंबे-लंबे पत्र लिख रहा हूं—पता नहीं जिनको लिख रहा हूं, वे मेरे बोझ के इन क्षणों को लेकर या फेंककर (असम्भव कुछ नहीं है) क्या करेंगे? जो हो, पीड़ा का भी एक आल्हाद होता है—अपनी पीड़ा तो आदमी की अपनी विलास-सृष्टि है। इस दुनिया में वह भी न लुट जाय, यही बड़ी बात है।

पत्र ने यदि थका नहीं दिया है, तो लिखना जनपथ होटल के पते पर।

तुम्हारा
भंवरमल

पुनश्चः लिफाफा बन्द करने लगा और स्टाम्प लगाने लगा तो देखा उस पर भी—आषाढ़स्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं, वप्रक्रीड़ा परिणत गज प्रेक्षणीयं ददर्श, याद हो आया—'आषाढ़ का एक दिन' क्या—कितना—कैसे हो रहा है उसका? वह अनामिका वाला नोट हुआ हो तो भेज देना।

ओबेराय पैलेस, श्रीनगर
९-८-६०

प्रिय शीले,

नौ अगस्त है। जिन्दगी के पूरे ४६ वर्ष पार कर ४७ वें वर्ष के प्रथम प्रभात की प्रथम किरणें होटल के कमरे में प्रवेश कर रही हैं। मैं हूं, बेड है, और अभी-अभी रख गया है बैरा पास ही बेड-टी। इसके अलावा जो कुछ है, अन्दर, सब अन्दर। ४६ वर्षों के पन्नों पर मेरा अन्दर दौड़ लगा रहा है। कहीं आह्लाद के दो क्षणों में ठहर जाता हूं और जो होकर चला गया है आज नहीं है, उसे भी रिक्रिएट कर रहा हूं और सिहर उठता हूं उन क्षणों के सामने जो व्यथा और वेदना को लिये आज भी सोये हैं। सोया आह्लाद, सोयी व्यथा।

तो तुम्हें प्यार, आज की सुबह का। व्यथा और आह्लाद का घुना-मिला प्यार। उन क्षणों का प्यार जिनमें मैंने अपने को सृजन किया है, उन क्षणों का प्यार जिनमें तुमने अपने को सृजन किया है और उन क्षणों का प्यार जिनमें तुमने और मैंने जीवन का सृजन-पुनर्सृजन किया है। आज का—९ अगस्त का हवाई जहाज तुम तक मुझे नहीं ले जा पायेगा; मेरे इस खत को ले जायेगा—खत से जायेगा, मेरी स्मृतियों का सृजन-पुनर्सृजन, मेरी कल्पनाओं—आशा-आकांक्षाओं का नवसृजन। जानता हूं, तुम भी इसी सृजन-पुनर्सृजन में लगी होगी। और शाम को दिल्ली पहुंचते ही होटल में पूछूंगा—बाला (बहन) से पूछूंगा—कोई पत्र है? वह पत्र तुम्हारा होगा—होगा न?

शीले, पुरानी बातें हम दोनों की अलग-अलग हैं—उनमें अपने-अपने ढंग का मीठा कड़ुवापन है, पर १४ वर्ष ३ महीने और २४ दिन हम लोगों ने एक साथ, एक होकर बिताये हैं। एक से एक उल्लास के विभोर कर देने वाले क्षण, और एक से एक व्यथा भर देने वाले क्षण भी। दोनों, हां दोनों। और इसी में जीवन का वास्तविक तारतम्य है। पेपर सेट करते वक्त पिछले वर्षों में जितनी बार बैठा हूं, पंत की एक कविता सामने आती रही है—'सुख-दुःख।' 'जीवन भारी अति सुख से, जीवन भारी अति दुख से'—अति से विरक्ति चाहिये। एकरूपता जीवन की गति नहीं अगति है। व्यथा से आक्रांत जीवन भागने को होता है—प्रिय से प्रिय कड़वा और तीखा लगने लगता है—उससे भी विरक्ति होती है, जीवन ही काटने लगता है और तभी सुख भी दूर नहीं दिखाई देता।

फिर सुख ही सुख जब पागल बनाने लगता है और पागलपन उबाने लगता है तब व्यथा अपना वरदान लाती है। कवि ने कहा—सुख-दुख की आंख मिचौनी रे यह जीवन—उषा-निशा का मिलन। जिन्दगियों का यही क्रम रहता चलता आया है और हमारी जिन्दगी भी इसी क्रम में है। क्रम तो क्रम है—हर क्षण दूसरे क्षण से जुड़ा हुआ है—कठिनाई तब होती है जब हम एक क्षण को दूसरे से काटकर देखने लगते हैं। वह देखना अपूर्ण है—वह एक अंश है और जो पूरा नहीं है, उसपर से हमारे जो विचार और कल्पनाएं बनेंगी वे कटी हुई ही रहेंगी।

आज मैं यहां दूर—सबसे दूर, प्रिय अप्रिय सबसे दूर (बात करने के लिये भी कोई नहीं है) बैठा अपने जीवन के धागों को उलझा-सुलझा रहा हूं। सफलताएं कम नहीं, और असफलताएं उससे ज्यादा। लोग ईर्ष्या करते हैं सफलताओं से, नाम और कीर्ति की उपलब्धि से; और सफलताएं दूसरे की नहीं, मेरी अपनी होकर रह जाती हैं-वे कचोटती हैं। जिन्दगी का यह अपूर्ण चित्र जो सम्पूर्ण हुआ दीखता है। कविता के छोर से वेदना को मैंने खूब गाया और अब कभी-कभी लगता है कि वेदना मुझे गा रही है। कलकत्ता से आते वक्त रेल में 'सुहाग के नूपुर' पढ़ रहा था। उसमें कहीं एक पंक्ति है—'मनुष्य अपने ही जादू से तैयार की हुई दुनिया में कैद है।' और तबसे मैं अपनी जादू की कहानी को याद कर रहा हूं—सचमुच अपने ही जादूघर में कैद हूं आज। जादूघर की दीवारें ऐसी बन गई हैं कि जिन्दगी का हर निमंत्रण वहां पर खुद फंस जाता है। लेने आता है, खुद रह जाता है। और जादू यह दूसरों पर भी हावी होना चाहता है—जो निकट है, प्रिय है, उसपर सबसे ज्यादा। स्कूल, कॉलेज, युनिवर्सिटी के अल्हड़ दिन (नहीं, अल्हड़ कहना गलत होगा, यह कम्बखत जादू तो उसी वक्त सवार हो गया था) नियमों की, व्यवस्था की, मर्यादा को, संघर्ष की कहानी हैं—और फिर घर, कुटुम्ब, समाज और देश सबसे ऊपर बुद्धिवाद को लिये ऐसे कर्त्तव्य ओढ़ लिये कि और कुछ के लिये जीवन में कोई द्वार खुला नहीं रह गया। मैं एक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व भर रह गया—इससे 'बाहर' मेरा फैला—बड़ा हुआ और जो कुछ हो सकता था, वह हुआ; पर भीतर का संकोच बढ़ा। बाहर की तृप्ति तो बढ़ी, भीतर की भूख रह गई। मेरी बाहर की दुनिया में हजारों-हजारों व्यक्ति आये, और हैं पर भीतर...?? बाहर में चमक है, साधन और सुविधा का सहयोग है—पर भीतर तो मैं

खुद ही कुण्ठित हूँ—जल रहा हूँ—उस जलन में क्यों कोई अपने को जलायेगा। जलन की तपिश तेज होगी तो जलन को समझने की कोशिश करने वाला व्यक्ति भी भागता है—भाग सकता है। मैं अपने आसपास की जिन्दगियों को इससे काफी भिन्न पाता हूँ—एक बार बहुत अच्छा लगता है उनसे ईर्ष्या होती है, तभी मेरा जादू फिर सिर पर सवार होकर मुझे ऐसा बांध देता है कि मैं बन्धन की बात कहता-करता हूं। तुम्हारे साथ मेरे व्यवहार में यही अक्सर हो जाता है। मेरा जादू मुझे ही नहीं तुम्हें भी बांधे रखना चाहता है—शायद यह जादू आन्तरिक ईर्ष्या ही हो बाहर से। तब लगता है—बारबार लगता है कि मैं दूसरों को ठीक नहीं समझता—या दूसरे ही मुझे गलत समझते हैं। मुझे तो यही लगता है कि जिस तरह मैं आज दूसरों को सामान्य की भूमि पर ठीक ठीक समझने की कोशिश करता हूँ, दूसरे मुझे 'बाहर' के बिना समझने को मानो इनकार कर रहे हैं। तुम अक्सर कहती हो—मैंने तुम्हें आज तक नहीं समझा। यह ठीक नहीं है—समझने की ही बात है तो तुम मुझे नहीं समझ पाईं। यों, इतनी बात साफ है कि मेरे जादू की दीवारें जो मुझे बांधे रखना चाहती हैं, तुम पर भी हावी होना चाहती हैं। मैं सचमुच इन दीवारों को तोड़ना चाहता हूँ क्योंकि मैं देख रहा हूं कि दीवारों ने मुझे तोड़ दिया है—सबलोग—कोई भी इन दीवारों के इधर-इधर नहीं आ पाते, और मैं कटा रह जाता हूँ—और मैं निकलने की कोशिश करूँ या कोई साहस कर दीवारों के भीतर पैर रखे तो दीवारें शोर मचा उठती हैं—और मैं दीवारों के शोर में डूब जाता हूँ। तुम इन दीवारों के इस पार—जिधर मैं हूँ—आ चुकी हो—पर ये दीवारें तुम्हारे जीवन में सहज नहीं हैं—हों भी क्यों? मैं ही क्या इनमें सुखी हूँ—संतुष्ट हूं? तुमने एक सामान्य जीवन जिया है—आज एक असामान्य जीवन में घिरी हुई हो—असामान्य को सामान्य बनाने—कम से कम सामान्य मानने की कोशिश में हो—मैं असामान्य पर से सामान्य को लेकर चला और असामान्य ही मानो मैं हो गया—अब जब सामान्य की ओर देखकर मैं कुछ हल्कापन अनुभव करने लगता हूं और उसे पकड़ रखना चाहता हूं तो फिर मेरा जादू मुझे आ घेरता है और मैं उसे पकड़ नहीं पाता। मैं मेरी दुनिया की पकड़ में हूं—मेरी पकड़ में कोई नहीं।

बेड है, बेड—टी है—और मैं यानी कि आज तो बाहर भी वैसा ही है जैसा अन्दर। काश, तुम तो समझ पातीं—क्या आज के क्षण हमें अपनी कमियों को देखने-समझने की आंखें देंगे?

सातवां पन्ना भी शुरू करूँ—चाहे जितना लिख सकता हूं—पर अब हवाई जहाज पकड़ने की तैयारी करना है। मेरा मीठा-कड़ुआ प्यार।

तुम्हारा
भंवरमल

दिल्ली में पत्र मिलेगा न?

भारतीय वायुयान 'नया पर्वत' पर
१८ मई १९६७
सुबह ७-३०

प्रिय एक, प्रिय दो, प्रिय तीन, प्रिय चार और प्रिय पांच,

तुम अलग-अलग होकर पांच हो और एक होकर एक तो हो ही। एक से पांच और पांच से एक। छठवां यहाँ एटलांटिक महासागर की अथाह जल राशि पर न्यूयार्क और लन्दन के बीच—न्यूयार्क से दूर और लन्दन के निकट-उड़ते, गाते (हाँ, गाते क्योंकि मधुरसंगीत हो रहा है) इस विमान पर तुम्हारे साथ तुम्हारी परिक्रमा में सम्मिलित है। प्रत्येक व्यक्तित्व की एक संख्या है—और एक संख्यातीतता भी। हरेक का अपने में एक अर्थ है और हरेक का दूसरे और दूसरों में मिलकर एक अर्थ है। एक अर्थ दूसरे अर्थ से मिलकर अधिक सार्थक है। अर्थों की ऊँचाई पर मेरा मन व्योम विचरण कर रहा है और यह विमान अपने चरणों पर व्योम अवगाहन कर रहा है।

मेरी घड़ी में अमेरिका के २-३० बजे हैं, गगन-सखी ने अभी बताया कि लन्दन के ७-३० बजे हैं और काल गणना के नियम बता रहे हैं कि तुम लोगों की घड़ी में दोपहर बीत चुकी होगी। समय और समय, कितना आगे कितना पीछे, और तब भी साथ। सूर्य अपनी धुरी पर अटल है, पृथ्वी ऊँचे-ऊचे पर्वतों को और नीचे-नीचे समुद्रों को अपनी छाती से लगाये सूर्य से अपना सम्बन्ध कायम रखे घूम रही है।

यद्यपि घड़ी में ढाई ही बजे हैं पर मैं सोकर उठ गया हूं और खिड़की से बाहर देख रहा हूं कि सूरज काफी उग आया है—न्यूयार्क से रवाना होकर लगातार छह घन्टे की उड़ान पूरी होने जा रही है। घन्टे भर में तो लन्दन में होऊंगा। बस, अब तो स्टाक होम, मास्को और दिल्ली—कलकत्ता। मन तुम लोगों के पास है, यहाँ तो बस समय भर है।

न्यूयार्क ४-५ दिन रहा, वही पूर्ण व्यस्तता जिसने इस यात्रा को दिलचस्प बनाये रखा है। लोगों से मिलना, विचारों का आदान प्रदान करना। शनिवार को अपना अमेरिका का कार्यक्रम समाप्त किया—और शनिवार को राजा, उसकी पत्नी सीता और ज्ञान बाई के साथ नाटक देखा—घूमना-फिरना किया। सोमवार को नाइगरा प्रपात की वायुयात्रा की—वहाँ से उसी दिन रात को मांट्रियल (कनाडा) पहुंचा, जहाँ आजकल विश्व प्रदर्शनी (एक्सपो-६७) हो रही है। दिन भर वहाँ पर विश्व मेला देखा। ज्ञानवती भी गई थी—वहाँ तो बहुत लोग मिले। बड़ा विशाल मेला था—चेकोस्लेवाकिया रूस, जर्मनी भारत आदि के मण्डप बड़े सुन्दर हैं।

लन्दन में तो थोड़ा आराम करूँगा और कुछ खरीददारी भी, जो अब तक तो नहीं जैसी ही हुई है। सम्भवतः यह इस यात्रा में मेरा आखिरी पत्र है। जो, हो सकता है कि पहुंचने के बाद तुम लोगों को मिले।

जैसे मैं लिख चुका हूँ ता० २६ मई को रात में ९.५० बजे दिल्ली से आई० सी० फ्लाइट २६४ द्वारा दमदम पहुंचूंगा। तुम लोगों को वहाँ देखने की उत्सुकता रहेगी।

पांच से छह हो जायेंगे—सारा घर हो जायेगा। विमान अब उतरने ही वाला है—बस।

तुम्हारा
भंवरमल

संस्मरण

संस्मरण-लेखक

अमृतलाल नागर	विष्णु प्रभाकर	कल्याणमल लोढ़ा
विष्णुकांत शास्त्री	गोविन्द प्रसाद केजड़ीवाल	विश्वनाथ मुखर्जी
कन्हैयालाल सेठिया	धर्मवीर भारती	
मोहन सिंह मेहता	लक्ष्मीमल सिंघवी	विजय सिंह नाहर
विश्वनाथ उपाध्याय		
नंदकिशोर जालान	गणेशमल वैद	शरद कुमार साधक
कृष्णचंद्र बेरी	गणेश मंत्री	कृष्णचंद्र अग्रवाल
राजेन्द्र यादव	रतन शाह	
मोहनलाल गुप्त	ज्ञानवती लाठ	सुशीला सिंघी
पदमचंद सिंघी	रतनचंद सिंघी	श्रीकांत सिंघी
सुषमा गुप्ता	सुस्मिता गुप्ता	
अतुल्य घोष	रेणुका राय	जतीन चक्रवर्ती
जे० एन० वर	शिवकुमार जोशी	लीना राय
सविता सहगल	तरुण राय	

सहृदय मित्र

अमृतलाल नागर
प्रसिद्ध हिन्दी लेखक

कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनसे मिलने—जुलने के अवसर कम प्राप्त होने पर भी मन को लगता है कि इन्हें मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। भाई भँवरमल जी सिंघी मेरे ऐसे ही मित्र हैं। उनसे मेरी भेंट हुई तो स्वतन्त्र भारत में थी, किन्तु उनका यश मैं पहले ही सुन चुका था। वे उन गिने-चुने विरले व्यक्तियों में हैं जो स्वयम् अपने से अधिक दूसरों की भलाई के लिए जीना अच्छा समझते हैं। बीते हुए अनेक वर्षों में कई बार, कइयों से उनकी लगनभरी समाज सेवा के सम्बन्ध में सुन चुका हूँ। सिंघी दम्पति की सहृदयता और कार्यतत्परता तो मेरा ख्याल है कि उनके मित्रों और शुभचिन्तकों के द्वारा ही नहीं, शत्रुओं (यदि होंगे तो) के द्वारा भी सराही जाती होगी।

भाई भँवरमल जी के सम्बन्ध में बरसों पहले किसी से सुना हुआ एक रोचक प्रसंग इस समय सहसा याद आ गया है। यह बात उन दिनों की है जब भारत शायद ब्रिटिश गुलामी में था। एक विद्वान ने बड़े ही परिश्रम से पाली साहित्य पर शोध प्रबन्ध लिखकर डॉक्टरेट की उपाधि पायी थी। उन दिनों डॉक्टरेट आज की तरह वेभाव न थी। वह गूलर का फूल बड़ी मुश्किल से लोगों के हाथ आता था। उनका शोध-प्रबन्ध इतना अच्छा था कि कई विद्वानों ने उनसे उसे प्रकाशित करा देने के लिए कहा, किन्तु डॉक्टर साहब के पास इसका कोई इलाज न था। पुस्तक प्रकाशन की मृगतृष्णा से बंधे हुए वे कलकत्ता पहुंचे। सीधे स्वभाव के डॉक्टर साहब कई सेठों के यहां गये। सेठगण किसी धार्मिक पुस्तक के प्रकाशन में दान देकर पुण्यलाभ करने का लोभ तो अवश्य रखते थे, किन्तु आली-पाली को वे भला क्या जानें। बेचारे निराश होकर कलकत्ते से लौटने की सोच रहे थे कि उनके सद्भाग्य ने भँवरमल भाई से कहीं उनकी भेंट करा दी। भँवरमल जी ने उनकी व्यथा-कथा सुनी, फिर कुछ मौन कर बोले : "आप मेरे साथ चलिये, मैं आपको पैसा दिला दूंगा।" उनके परिचित एक लक्ष्मीपति राजस्थान के पालियाग्राम के मूल निवासी थे। उनके पास जाकर कहा, "भाई इस विद्वान ने न जाने कितनी मेहनत करके तुम्हारे पाली गाँव पर ऐसा अमोल ग्रन्थ लिखा है जो उसकी कीर्ति को बढ़ा देगा इस पुस्तक को छपाने का खर्च इन्हें दो, तुम्हारे गांव का माहात्म्य बढ़ेगा, तुम्हारा यश फैलेगा।" पालीग्राम के माहात्म्य और अपनी यशोवृद्धि के बढ़ने की लालसा से सेठ जी ने पुस्तक प्रकाशन का सारा व्यय-भार

अपने ऊपर ले लिया। सेठ जी के घर से लौटते हुए ईमानदार डॉक्टर ने भँवरमल जी से कहा : आपने उनको गलत सूचना दी है। मैंने पाली ग्राम के सम्बन्ध में नहीं वरन् पाली साहित्य के सम्बन्ध में पुस्तक लिखी है। जब देखेंगे तो कहेंगे कि लेखक ने धोखा देकर उनसे रुपया ठगा है।" भँवरमल जी डॉक्टर की पीठ पर हाथ रखकर बोले : "इसकी चिन्ता न करें। उन्हें न तो पुस्तक पढ़ने का लोभ है और न अवकाश। अपनी पुस्तक में उनका एक फोटो छाप दीजियेगा कि पालीग्राम निवासी सेठ अमुक-अमुक जी की सहायता से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। वे अश्वत्थामा को जानते हैं "नरो वा कुन्जरों वा" से मतलब नहीं रखते। आपके इस ग्रन्थ के प्रकाशन से उनके धन का सदुपयोग होगा, इसमें धोखा-धड़ी की बात ही कहां उठती है।"

ऐसे पुण्यात्मा और सहृदय मित्र के अभिनन्दन के अवसर पर उनके प्रति मेरी हार्दिक सद्भावनायें सादर, सविनय, सप्रेम समर्पित हैं।

एक गतिशील व्यक्तित्व

विष्णु प्रभाकर
प्रसिद्ध हिन्दी लेखक

भाई भँवरमल सिंघी के बारे में मैं कभी नहीं सोच पाता कि वह किसी व्यापार-व्यवसाय से जुड़े हो सकते हैं। वह मारवाड़ी हैं और वणिक वृत्ति उनके रक्त में है। मैं जब भी उनके बारे में सोचता हूं तो मुझे वे दिन याद आ जाते हैं जब मैं सन् १९४४ में पंजाब छोड़ कर दिल्ली आ गया था। उस समय हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में काम करने वाली अनेक संस्थाओं से जुड़ना हुआ। 'हिन्दी साहित्य मण्डल' और 'शनिवार समाज' जैसी संस्थाओं की स्थापना में भी योग दिया।

आज भी जिस घर में मैं रहता हूं उस घर की अनेक संध्याएं इन संस्थाओं की बैठकों के कारण गुलजार रहती थीं। ऐसी ही किसी एक बैठक में मैंने पहली बार सिंघी जी को देखा था। वह अकेले नहीं थे। उनके साथ,, उनकी नव-विवाहिता पत्नी भी थीं। किसी ने उनका परिचय देते हुए मुझ से कहा था, "भँवरमल जी क्रान्तिकारी समाज सुधारक हैं। ऐसा ही क्रांतिकारी विवाह करके कलकत्ता से राजस्थान जा रहे हैं।"

मैं भी कभी आर्य समाज से गहरे जुड़ा था, सुनकर गद्गद हो आया। जब तक वह गोष्ठी में रहे प्यार और प्रशंसा के भाव से देखता रहा दोनों को। यह तो याद नहीं कि वे उस गोष्ठी में बोले थे या नहीं पर यह खूब याद है कि वे दोनों एक कोने में बैठे थे और अत्यन्त शांत व सौम्य लग रहे थे और सुन्दर भी। जो सुन्दर कार्य करता है वही तो सुन्दर है।

फिर बहुत दिन बीत गये। सुनता रहा उनके बारे में पर भेंट नहीं हो सकी। हमारे प्रिय मित्र स्व० मोहनसिंह सेंगर के वह बहुत निकट रहे हैं। सेंगर जी प्रायः उग्र सुधारक और राजनीतिज्ञ की भंगिमा अपनाये रखते थे। जितना कड़वा लिखते थे, कभी-कभी उतना ही कड़वा बोलते भी थे। उनसे बात करते हुए अनेक बार सिंघी जी की चर्चा आती। तब पता लगा कि उस दिन के सौम्य-शान्त सिंघी भी अब अग्निशर्मा बन गये हैं। दीर्घ बलिष्ठ काया, समाज में फैली कुरीतियों और नारियों के शोषण पर आक्रोश से भरी आंखें और कुछ करने को आगे बढ़ने को आतुर-व्याकुल उनकी भंगिमा, वाणी से उफनते स्फुलिंग—कैसे पहचानूं ८१८ कुण्डेवालान के कमरे में बैठे उस दिन के सिंघी को। उस आक्रोश में वह कुछ भी आ सकता है जो किन्ही मित्रों को प्रिय नहीं भी लग सकता। जो खुले आकाश के नीचे आग्रही होकर विचरते हैं आंधी की रेत उन्हीं की आंखों में पड़ती है। इसलिये सिंघी का व्यक्तित्व विवादास्पद हो रहा हो तो इसमें अस्वाभाविक कुछ नहीं है।

लेकिन सिंघी केवल समाज सुधारक ही नहीं हैं, साहित्य और कला के क्षेत्र में भी उतने सजग रहे हैं। उनकी लेखनी में रचनात्मक आक्रोश और गहरी दृष्टि है। कितनी ही पत्रिकाओं और संस्थानों से वह जुड़े रहे हैं पर सुप्रसिद्ध नाट्य संस्था अनामिका से जुड़ना एक अर्थ रखता है। वह उसके परम आत्मीय और अत्यन्त सक्रिय सदस्य रहे हैं। मैं साक्षी हूं अपनी बेलाग राय देने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। अनामिका के तत्वावधान में हुए एक सात दिवसीय नाट्य समारोह में अच्छा सतसंग रहा था उनके साथ। किसी प्रसंग में उन्होंने मेरे नाटक 'देवी' के बारे में मुझसे स्पष्ट कहा था—"मुझे यह कथानक ही पसन्द नहीं है।"

'आवारा मसीहा' की रचना प्रक्रिया के दौरान अनेक बार कलकत्ता जाना और रहना हुआ तब उनसे कहीं न कहीं भेंट हो ही जाती थी। उन्हें मेरा उस प्रोजेक्ट पर काम करना अच्छा लगता था। इसलिए उसके प्रकाशित होने पर वह बहुत खुश हुए थे और एक सभा में बंगालियों को चुनौती दे डाली थी। नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण शरच्चन्द्र के दृष्टिकोण से बहुत कुछ मिलता है। तभी तो उन्होंने 'आवारा मसीहा' के माध्यम से शरत् और उनकी नारी को लेकर एक सुन्दर लेख धर्मयुग के लिये लिखा था। शरच्चन्द्र की भविष्यवाणी की चर्चा करते हुए कि "आगे चल कर एक ऐसा समय आयेगा जब प्रेम के द्वारा दोनों (स्त्री और पुरुष) का मिल कर एक होना अधिक महत्व का समझा जाएगा और कानून के द्वारा दोनों का मिल कर एक होना गौण माना जाएगा," उन्होंने लिखा, "लगता है कि शरत का 'शेष प्रश्न' ही अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष का शेष प्रश्न है जो विभिन्न नामों से और विभिन्न रूपों में समस्त विश्व में घूम रहा है, पूछ रहा है कि स्त्री जीवन की इस सबसे बड़ी त्रासदी (जैसा शरत ने कहा है) का अन्त कहां है, है कि नहीं।"

और यह शेष प्रश्न है, "क्या सतीत्व ही सम्पूर्ण नारीत्व है, क्या शरीर ही सारा नारीत्व है?"

शरच्चन्द्र और भंवरमल सिंघी यहां एक हैं और यह एक होना ही सिंघी जी की पहचान है।

भँवरमल सिंघी : एक उपलब्धि

कल्याणमल लोढ़ा
भूतपूर्व वाइस चांसलर जोधपुर विश्वविद्यालय

भाई भँवरमल जी सिंघी पर सोचते व लिखते समय मुझे उनकी दैनन्दिनी में लिखे एक वाक्य का अनायास स्मरण होता है। उनके जीवन एवं व्यक्तित्व को समझने एवम् परखने के लिए मैं इसे सूत्र-रूप में स्वीकार करता हूं। उन्होंने लिखा था "मैं जब कभी किसी महापुरुष की जीवनी, डायरी या पत्र-संग्रह पढ़ता हूं तब उसके समान बनने की कामना करने लगता हूँ—पर जो चाहता हूं वह कहाँ हो पाता है ? क्या कभी सचमुच हो सकेगा ? असंभव कुछ भी नहीं है। मनुष्य ने सब कुछ संभव किया है और कर सकता है। आज भी मेरे जीवन में जो हुआ है, वह भी किसी दिन असंभव ही था" (१०-१-८३)। यदि संक्षिप्त अवतरण में सिंघी जी के जीवन और व्यक्तित्व की मैं व्याख्या करना चाहूं तो इसके लिए यही उपयुक्त और सार्थक कथन है। मनुष्य की परिभाषा करते हुए कहा गया है "मत्वा कर्माणि सीव्यति इति मनुष्यः"—जो ज्ञान और बुद्धि से अपने कार्यों का ताना-बाना बुनता है, वही मनुष्य है। इसलिए उसे कार्यो के द्वारा, बुद्धि से परिष्कृत हो ज्ञान और कर्म के मार्ग पर सतत अधिगमन कर, प्रकाशवान बनने का निर्देश है। मनुष्य की उत्तमता के लिए जो पांच साधन आवश्यक हैं वे हैं कर्म, कर्मो का समन्वय, व्यक्तित्व की पूर्णता एवम् अखंडता, प्रकाशयुक्त मार्ग का अनुसरण एवम् जीवन का विस्तार। इन्हीं विशेषताओं में मानवत्व की प्रतिष्ठा संभव है और इन्हीं से व्यक्ति अपने जीवन की भौतिक, बौद्धिक व नैतिक शक्तियों का बृहत् सामयिक संघटन और विकास की भूमिका पर संयोजन करता है। भाई सिंघी जी को जीवन की इन्हीं विशेषताओं और शक्तियों के संदर्भ में समझा और परखा जाना चाहिए। दुःख और संघर्ष में तपे बिना व्यक्ति अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करने में सदैव समर्थ नहीं होता। सोरेन किर्कगार्द ने कहा था कि "दुःख का कांटा जीवन में जितना गहरा धंसेगा, संघर्ष जितना प्रबल और घना होगा, मनुष्य में उतना ही अधिक अपने जीवन-मूल्यों के प्रति अडिग आस्था और विश्वास होगा क्योंकि हर व्यक्ति 'दुनिया' से अपना बदला लेना चाहता है, बदला है—अपने दुःख को अन्तर्मन की पूरी गहराई के साथ सहना और आगे बढ़ना"। सिंघी जी ने लिखा है—"महावीर को कठिन परीक्षण सहने पड़े। बुद्ध को अत्यन्त भारी प्रलोभनों से काम पड़ा, ईसा को फाँसी पर चढ़ना पड़ा, सुकरात को जहर पीना पड़ा और मुहम्मद को घर से भागना पड़ा—पर इन सबने जीवन के मकसद से कभी मुंह नहीं मोड़ा, सत्य को प्रकट करने में किसी शक्ति की परवाह नहीं की।" सिंघी जी का जीवन भी दारिद्रय, जड़ परम्पराएं, मध्ययुगीन खोखले व जर्जर मूल्यों, सामन्ती अवशेष और अंध-विश्वासों से प्रारम्भ हुआ था। दारिद्र्य से संघर्ष करते हुए किशोरावस्था में कभी उन्होंने आंकड़ एण्ड कम्पनी में कार्य किया तो कभी पान की दूकान पर पान लगाए। कभी शिक्षक बनने का स्वप्न देखा

तो कभी अपनी शिक्षा को गतिमान रखने के लिए दो चार रुपए तक मांगे। इसी विपाद-योग से वे जीवन समर में अग्रसर हुए। उन्होंने लिखा "इन वाईन वर्षों में गरीबी की वेदना की जो व्यथा मैंने देखी, उसमें मुझे बहुत कुछ सीखने और समझने को मिला। उसी गरीबी में मैंने वेदना की ज्योति देखी।" घोर तमिस्रा में ज्योति से साक्षात्कार करने की यह लगन और क्षमता ही मनुष्य के जीवन को मूल्य-वोध (वैल्यू सिस्टम) प्रदान करती है और परम्परा के द्वारा वंधित होकर उसकी सीमा में वह अपने भाग्य का विधाता वन जाता है, क्योंकि ऐसे ही मनुष्य का अंतःकरण अविभाज्य रूप में क्रियाशीलता से संवद्ध होकर अपना विकासात्मक परिणाम खोजता है। यही अस्तित्व की पूर्णता और शक्ति की अविरल प्रक्रिया है, जो वाह्य और आंतरिक वंधन से मुक्त कर उसमें मूल्य, विश्वास और आस्था का निर्माण करती है एवम् उसके अहं को इदम् से जोड़ती है। मानव जीवन मूल्यों की प्रयोगशाला है। मनुष्य अपनी रुचियों और अरुचियों का सार्वजनिकीकरण करता है एवम् निजी जीवन का अतिक्रमण कर मूल्यों का उद्‌घाटन करता है। आत्म-विस्तार की यह चेष्टा ही जाग्रत चेतना का उद्‌गम है और इच्छाओं का विवेकीकरण, जिसका उद्‌देश्य वृहत् धरातल पर समाज और संस्कृति का विकास करना होता है। इसी जाग्रत चेतना से प्रारम्भ होकर सिंघी जी का जीवन कठोर श्रम, संघर्ष और चुनौतियों के मध्य अपना आत्म विस्तार (या विकास) करता हुआ रुचियों, इच्छाओं और मूल्यों का विवेकीकरण और सार्वजनिकीकरण करता रहा है।

आधुनिक मनोविज्ञान में व्यक्तित्व[1] का निरुपण करते हुए, प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मर्फी ने व्यक्तित्व के विकास के समन्वित रूप (सिनथेसिस आफ पर्सनेलिटी) के लिए विभिन्न स्तर प्रतिपादित किए हैं। ये स्तर हैं व्यक्ति की नैतिक संश्लिष्टता, वैयक्तिकता, समाज व पर्यावरण। इनका सम्यक् समीकरण कर व्यक्ति अपना वैशिष्ट्य निर्धारित करता है, क्योंकि व्यक्ति की पूर्णता उसकी आंतरिक क्षमता में ही निहित रहती है और इसी क्षमता के द्वारा वह अपना भाग्य-निर्णायक वनता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने इसके लिए आचरण की संगति आवश्यक गिनते हुए आत्मिक क्रियान्विति (सेल्फ एक्यूएलाइजेशन) सिद्धि, और आदर्शों में संघर्ष की सघनता अपरिहार्य वताई है। भँवरमल जी के व्यक्ति-विकास की यही सही पहचान है। उनका व्यक्तित्व आंतरिक व वाह्य संघर्षों में ही विकसित हुआ है और इनसे ही उन्होंने आत्मिक सिद्धि की संकल्पात्मक क्रियान्विति पाई है।

वे गद्य-गीतकार वने, निवंध लेखक हुए और समाज सुधार का बीड़ा उठाया; सांस्कृतिक आंदोलन और जागरण के विविध क्षेत्रों में वे अग्रसर हुए। उनका वैचारिक और भाविक जीवन व्यक्ति और समाज के साथ व्यापक संश्लिष्टता प्राप्त करता रहा क्योंकि "व्यक्तित्व एक ऐसी गत्यात्मक व्यवस्था है, जिसमें व्यक्ति अपनी मानसिक व भौतिक पद्धतियों का पर्यावरण के साथ अनुपम सामंजस्य स्थापित करता है।" 'प्रत्येक मनुष्य भौतिकी विज्ञान के समकक्ष, अपने जीवन में भी एक विशिष्ट क्षेत्र (फील्ड) निर्मित कर, अपनी समस्त ऊर्जा शक्ति का उसमें संचरण करता है।' मुझे ऐसा लगता है कि वैज्ञानिक मेक्सवेल का "वैद्युत चुम्वकीय क्षेत्र" वाला सिद्धांत व्यक्ति और पर्यावरण

के पारस्परिक घात-प्रतिघात व आदान-प्रदान में मानसिक दृष्टि से भी उतना ही उपयुक्त है। व्यक्ति जीवन में 'विशिष्ट क्षेत्र' का निर्माण कर उसमें उसकी समस्त ऊर्जा तथा शक्ति का विद्युतीकरण करता है। श्री भँवरमल जी सिंघी की जीवन-प्रक्रिया व उनकी वैयक्तिकता के विकास को हमें इसी दृष्टि से देखना चाहिए। उनका जीवन विविध आयामी व भिन्न स्तरीय है। उनकी विविधता और भिन्नता का यही उपक्रम है। इन सब के साथ मैं व्यक्तित्व की मूल धारा, उसके अहं की चेतना को समझता हूँ, जिसके बिना मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता। किसी भी क्रिया के मूल में 'होने' का बोध ही, व्यक्ति की उच्च स्थिति का बोध है और यही व्यापक अर्थ में मानवीय व सांस्कृतिक त्विषा का हेतु बनती है और मनुष्य के गहन और गंभीर अंतर्जगत को बाह्य संसार से जोड़ती है। मैंने सिंघी जी में अहं की चेतना के इस मूल की क्रिया को देखा है। उनके सदैव निर्भय, दृढ़ और निष्ठावान रहने का यही कारण है।

हाँ, तो उनका व्यक्तित्व और जीवन बहुआयामी और विविध रहा। उन्होंने स्वाधीनता संग्राम में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई। समाज सुधार और तज्जन्य आन्दोलनों में सदैव आगे रहे। धर्मान्धता, रूढ़िवादिता और जर्जर परम्पराओं का उन्होंने खुलकर विरोध किया। अनमेल विवाह के विरुद्ध प्रदर्शनों में उन पर लाठियाँ पड़ीं। विधवा विवाह का उन्होंने समर्थन ही नहीं किया, वरन् अपने जीवन में भी उसका उदाहरण रखा। पर्दा-प्रथा का विरोध किया तो जैन बालदीक्षा का भी। इसी धुन में अपने अनुज रतन का विवाह भी उन्होंने स्थगित कर दिया क्योंकि यह बाल विवाह था। कारावास में अपना सारा समय पुस्तकें पढ़ने में लगाया और सैकड़ों पुस्तकें पढ़ीं ही नहीं, उनके सविस्तर नोट लिए। जहाँ अपनी डायरी और दैनिक-चर्या लिखी वहां बंगाल सिक्यूरिटी प्रिवेनशन रूल (१९४०) भी उतारे। परिवार नियोजन के लिए सन् १९४८ में समिति बनाई तो साथ ही अनामिका की स्थापना भी की। थियेटर सेंटर से संबद्ध रहे और स्वयम् अनेक नाटकों के मंचन में उतरे भी। मिनर्वा में उन्होंने शौकिया नाटक खेला तो कलकत्ते में नाट्य महोत्सव का आयोजन भी किया। इधर सामाजिक क्रांति सम्मेलन बुलाया तो उधर हिन्दू कोड बिल का समर्थन किया। मारवाड़ी सम्मेलन से जुड़े तो तरुण संघ से भी। "ओसवाल" "नवयुवक" का संपादक किया, तो "तरुण जैन" का भी। किशोर जीवन से ही राजनीति में आए और आगे बढ़ते गए पर साथ ही साहित्य-क्षेत्र में भी। एक ओर सन् १९४२ में व्यक्ति-सत्याग्रह में जेल गए तो क्रांतिकारी बनकर दूसरी ओर जमालपुर से २०० डायनामाइट ले लुकते-छिपते कलकत्ता आए और ऐसी निपुणता से कि पुलिस आकर भी पकड़ नहीं सकी।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन इस बात का प्रमाण है कि जीवन की विभिन्न भूमिकाओं में श्री सिंघी जी ने अपना सक्रिय योगदान दिया। व्यापक और प्रभावी जीवन प्रक्रिया, जो हर दृष्टि से रचनात्मक व प्रचुर घनीभूत रही हो और प्रमाण, परिमाण व परिणाम में पूर्णतः फलप्रद, उनके कृत-संकल्प होने का स्पष्ट प्रमाण है। पर, (और यह 'पर' भी कम महत्वपूर्ण नहीं) इन सबके भीतर उनका रागात्मक बोध

और सर्जनात्मक चैतन्य साहित्य के क्षेत्र में भी आगे बढ़ता गया। इस पर हम अभी विचार न कर, उनके कृतित्व का और अधिक विवेचन करें। मैंने अभी-अभी उनके कर्म-क्षेत्र की व्यापकता का उल्लेख किया। सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, राजनीतिक व साहित्यिक क्षेत्रों से वे सदैव जुड़े रहे—उनके अपरिहार्य अंग रहे। सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने अंध-विश्वासों, जड़ परम्पराओं व खोखली मान्यताओं का खुलकर विरोध किया। तरुण संघ, ओसवाल नवयुवक समिति, अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन, मारवाड़ी छात्र संघ, मारवाड़ी छात्र निवास (जिसका नाम उन्होंने अपने मंत्रित्व में पोद्दार छात्र निवास किया) कुछ नाम हैं। सांस्कृतिक व कला जगत में अनामिका, थियेटर सेंटर, अनामिका कला संगम के साथ वे संबद्ध थे और आज भी हैं। शैक्षिक दृष्टि से वे शिक्षायतन, शारदा सेवा सदन, श्री कानोड़िया महिला विद्यालय (जयपुर) विकास विद्यालय (रांची) नोपानी विद्यालय आदि के संस्थापक सदस्य हैं। राजनीति से उनका जीवन प्रारम्भ से ही बंधा रहा और स्वतंत्रता-संग्राम में सदैव आगे रहे। सामाजिक क्रांति तो उनका ध्येय था ही। परिवार नियोजन उनका लक्ष्य रहा और आज भी है। इस पर बहुत पहले उन्होंने सरल व शिष्ट भाषा में एक पुस्तिका भी लिखी। पहली बार सामाजिक क्रांति सम्मेलन का अखिल भारतीय स्तर पर उन्होंने आयोजन किया। इन सब के साथ साहित्य में भी अपनी लेखनी और रचनात्मक प्रतिभा का उन्होंने प्रचुर परिचय दिया। यही नहीं कई पत्रों का संपादन भी किया, जैसे ओसवाल नवयुक, तरुण ओसवाल, समाज सेवक, तरुण जैन, 'तरुण'। 'नया समाज' मासिक साहित्यिक पत्र को निकालने की प्रेरणा भी उन्होंने की थी। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से भी वे सक्रिय रूप से संबद्ध रहे।

इन विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हुए अनेक मनीषियों के सपर्क में आए और इन्होंने संस्मरण लिखे। उनका प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा और इन्हीं मनीषियों ने उनकी जीवन-धारा को मोड़ भी दिया। इनमें महात्मा गांधी, काका कालेलकर, प्रेमचन्द, जैनेंद्र, पं० सुखलाल, विश्वनाथ उपाध्याय, रवीन्द्रनाथ, हीरालाल शास्त्री, शिशिर भादुड़ी, राजेन्द्र प्रसाद, डा० दौलत सिंह कोठारी, सिद्धराज ढड्ढा; सीताराम सेकसरिया, भागीरथ कानोड़िया, बसन्तलाल मुरारका, रामेश्वर लाल नोपानी, इन्दुमती गोयनका आदि का प्रभाव उन पर सर्वाधिक पड़ा।

अब हम उनके साहित्यिक पक्ष को विस्तार से देखें। मेरी दृष्टि में—श्री भँवरमल जी का बाह्य जो कुछ भी है या रहा हो, उनकी आभ्यंतरिक वृत्ति और चेतना साहित्यिक रही है। उनमें संवेदना की मूल धारा प्रारम्भ से ही प्रवाहित है और यह संवेदना ही किसी भी साहित्यकार की वह शक्ति है जिसके बिना न तो वह अनुभूति की सघनता प्राप्त कर सकता है और न अभिव्यक्ति की उर्वरता। मेरी अपनी धारणा है कि सिंघी जी ने अपना तादात्म्य (आईडेंटिटी आफ सेल्फ) अपनी रचनाओं में ही खोजा और प्राप्त किया। सर्जनात्मकता मौन और अज्ञात प्रक्रिया होती है। व्यक्ति के ही भीतर एक पूर्ण विश्व रहता है, और यह पूर्णता ही व्यक्ति की अस्मिता निर्धारित करती है। साहित्यिक सर्जन मनुष्य की पूर्णता की खोज और यात्रा है और इसीसे रचनाकार सदैव एक "निरन्तर संवाद" में संलिप्त रहता है।

साहित्य घटनाओं को प्रत्यय देता है। मनुष्य की बौद्धिकता साहित्य में "विज़न" से पूर्ण हो उसकी भावसम्पदा, ज्ञान शक्ति और इच्छा-धारणा से सांगिक एवं संश्लिष्ट पूर्णता प्राप्त करती है। भंवरमल जी के गद्यगीत (या गद्य काव्य) इसके साक्ष्य हैं। "वेदना" इसलिए चर्चित नही हुई कि उसकी भूमिका डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने लिखी और न उसकी प्रसिद्धि का कारण कविगुरु रवीन्द्र नाथ का आशीर्वचन या आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अपने इतिहास में उल्लेख है। सिंघी जी के गद्यगीत (वेदना या अन्य) मनुष्य की लघुता का बोध होते हुए भी, उसकी विराट चेतना और वेदना की विराट-भूमि हैं, जहां लेखक की आंतरिक जागरूकता अपनी रचना-प्रक्रिया में रूपान्तरित होती हुई खोज का अंत या लक्ष्यबोध न होकर, सौंदर्य बोध की आकांक्षा और उसके संधान का सार्थक प्रयास बन जाती है। रचनाकार प्रकृति के वैभव में उस चिरन्तन सौन्दर्य से साक्षात करना चाहता है—"नदी के प्रवाह का कलकल निनाद कभी न थकने वाले निर्भर का मादक संगीत", जिसमें "कोमल पत्तियाँ नाच-नाच कर खिलाड़ी की मादक कल्पना से निस्तब्ध बन रही हैं और यही उस "विश्व गायक" का रूप है—मानव जीवन का मूक संदेश।" "वेदना" का लेखक" स्मृति के नेत्रों से "कल्पना का सरोवर खोजता' है, जिसमें 'जीवन की अनन्तता का बोध' है, क्योंकि उसकी आस्था है कि "अंधकार की आवाज प्रकाश में नहीं ठहरती' और इसीसे "उसके आँसू उस सागर की लहरें हैं, जिसकी ऊर्मियों का कभी उतार नहीं होता और जिसके वक्ष पर सदा अनन्त की छाया प्रकाशित रहती है।" गद्यगीत में एक भाव ही रचना के केन्द्र में विद्यमान रहकर वैयक्तिक अनुभूति के द्वारा आंतरिक अस्मिता और समन्विति स्थापित करता है। सिंघी जी के गद्य-गीत इसी रहस्यानुभूति से प्रेरित होकर प्रेम, सौन्दर्य व वेदना में उनके आकुल मन की अभिव्यक्ति बन जाते हैं। वे कहते है "कवि मैं नहीं। कविता का रसज्ञ भी नहीं, मैं कलाकार नहीं हूं, पर जल का वह स्रोत हूं, जिसमें अनन्त प्रवाह है—अन्नत लहरें। वेदनाहीन राग मुझे अच्छा नहीं लगता, वेदनाहीन जीवन मुझे नहीं भाता (मुझे) विस्फोट की अग्नि चाहिए—जड़जीवन नहीं, चिर प्रज्वलित वियोगाग्नि का एक स्फुलिंग।" हमें यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वह युग छायावाद का युग था। अनेक गद्य-गीतकार रचनाएँ कर रहे थे। मेरी समझ में आधुनिक गद्य-गीतों का वास्तविक प्रारम्भ भारतेन्दु के "समर्पणों" से हुआ। बंगला का "उदभ्रांत प्रेम" हिन्दी में अनूदित होकर आ गया था। गद्य और पद्य की भाषा एक हो गई थी। साहित्य रचना में अमूर्त तत्व, प्रतीक और बिम्ब स्थापित हो रहे थे। जगमोहन सिंह, रायकृष्ण दास, वियोगी हरि के गद्य गीत प्रसिद्ध थे ही। स्वयम् जयशंकर प्रसाद ने भी गद्य गीत लिखे। इन लेखकों के सन्दर्भ में ही भँवरमलजी का रचना-संसार देखा और परखा जाना चाहिए। यही कारण है "वेदना" के गद्य-गीतों को अनेक विद्वानों ने भिन्न भिन्न दृष्टियों से देखा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन पर "गीतकाव्य का प्रभाव" गिना तो नन्ददुलारे वाजपेयी ने इन खण्ड चित्रों को "अत्यन्त सधा और भाषा की उपयुक्त योजना से सजा हुआ पाया।" रामनरेश त्रिपाठी को "इन सें वास्तविक वेदना की अनुभूति हुई"

तो गंगाप्रसाद पांडेय को मिला "भावना के तरल प्रशान्त धरातल का मनोवैज्ञानिक विवेचन।" शांतिप्रिय द्विवेदी ने इनमें "चित्र काव्य और संगीत के द्वारा हृदय का अमृत तारुण्य" पाया तो पीताम्वर दत्त बड़थ्वाल ने "कल्पना से प्रसून अभिनव चित्रों के" दर्शन किए।

मेरी यह धारणा है कि सिंघी जी ने अपनी वाग्देवी (म्यूज) से तादात्म्य इन गीतों के द्वारा ही प्राप्त किया और इन्हीं गीतों में अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति का आधार भी "होमोज दि दोअलियर"—अर्थात् वेदना और दुःखानुभूति का यह व्यक्ति जिसकी विशिष्टता की पहचान व परख उसकी पीढ़ी की कसौटी में ही संभव है। ई० एम० फारेस्टर के अनुसार "प्रत्येक मनुष्य के हृदय में एक अज्ञात टापू निहित रहता है चाहे उसके अतीत ने इसका निर्माण किया हो चाहे भविष्य की आकांक्षा या वर्तमान की उद्विग्नता ने, चाहे वह सौन्दर्य की सूक्ष्म दृष्टि हो या स्मृति, परन्तु वह मूलतः उसकी आंतरिक वेदना की ही सृष्टि है उनके संत्रास की, जो संसार ने उसे दिया है, (आन हैपीनेस)"। मैं यह मानता हूँ कि सिंघी जी के गद्य गीतों की, उनकी रचना-धर्मिता की यही सही पीठिका है। शांतिप्रिय द्विवेदी ने ठीक कहा कि "वेदना के बाद लेखक इस ओर आगे नहीं बढ़ पाया शायद "भावना के जगत से उसे उपराम हो गया, अपनी सृष्टि से विमुख।" इसका कारण यह भी हो सकता है कि उसकी मुड़ती हुई जीवन-धारा अन्य क्षेत्रों या अन्य दिशाओं में अपना मार्ग निर्धारित करने लग गई। परवर्ती काल में सिंघी जी ने जो निवन्ध लिखे (और वहुत लिखे) उनमें भी उनके "भग्न हृदय" (उनका उपनाम) का परिचय तो मिलता ही है। इन भावात्मक निवन्धों में यही भग्न पीड़ा व्यंग्य भी बन गई। क्यों? इस पर विचार करें। यौवनावस्था का उद्दाम वेग जब शांत और शिथिल हो जाता है, जब जीवन अन्तर्मुखी से अधिक वाह्यापेक्षी होकर भाव से अधिक "विचार" को अपनाता है, जब मनुष्य की बौद्धिकता यथार्थ को ग्रहण कर "प्रत्यक्ष" से दीप्त रहती है, तब आक्रोश के धरातल पर सारा असंतोष व्यंग्य बन जाता है। सिंघी जी के "भग्न हृदय" ने भी यही किया। उनके व्यंग्य प्रधान विचारात्मक निबंधों में "हृदय यात्रा पर तो निकला, पर बुद्धि को साथ लेकर" (रा० चं० शुक्ल)। भँवरमल जी ने स्वयं स्वीकारा है कि "जो लेखक आवरण की कला नहीं जानता वह भूखों मरेगा (चाहे यह भूख मन की ही हो)"। इसी से अब लेखक भारतीय समाज के संक्रमण की इन अंधेरी गलियों को तय करना चाहता है, इसी से, घटनाओं से परे, इन व्यंग्यात्मक निवन्धों का विषय और धारणा युगबोध के साथ-साथ आत्मबोध से भी परिष्कृत है। उनका "भग्नदूत" निवन्ध संग्रह इसका प्रमाण है। "गांधी जी की कब्र पर खादी के फूल" "गांधी महाराज की सवारी आ रही है", "बलिदान की घड़ी", "भूख, भूख, भूख", "सुनो सुनो सुनो", "महावीर जयन्ती", "सत्यमेव जयते" 'लिफाफे व लिफाफे" आदि कुछ ऐसे ही निवन्ध हैं। इन व्यक्तिगत निवन्धों की सामाजिक व जातीय उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। लेखक का मन ऊब उठा है—इस आडम्बर से इस चतुर्दिक पतन और मूल्य ह्रास से, इस फैले हुए मिथ्यात्व से—इन मुखौटों से—मनमानेपन से, जहां मनुष्य, अपनी मानविकता, अस्मिता और संवेदना खोकर स्वार्थ-लिप्त

पाशविक मनुष्य का ढांचा मात्र रह गया है—केवल "होमो सेपियन्स या होमो इकोनोमस"। उदाहरण लें।

"तुम्हारे सत्य के साथ जय जुड़ा है, पर तुम्हारी जय में सत्य नहीं है। तुम्हारी लाठियों और गोलियों की जय देख रहा हूँ पर भूखे पेट की ज्वाला का सत्य भी देख रहा हूँ (सत्यमेव जयते)"

"अर्थ के पिशाच ने कर्म के देवता का रूप सजाकर मुझ पर जितने युगों से प्रहार किए हैं, कर्म के फूल देकर कितना हलाहल घोला है" (लाश का बयान)

"गांधी महाराज की सवारी चल रही है, मोटर ट्रक पर चढ़ कर, बैलगाड़ी चल रही है और मिल पर चढ़कर चर्खा गा रहा है" (गांधी महाराज की सवारी)

"भारत का व्यास वही है पर वाणी बदली है, राम बदला है, रामायण वही है। महाभारत वही है, पर दुर्योधन बदला है। कविता वही है पर छंद नया है—संस्कृति वही है पर स्वर बदले हैं" (बलिदान की घड़ी)। "आज सत्य के लिफाफे में झूठ का मज़मून चल रहा है। संसार एक लिफाफा है (लिफ़ाफे व लिफाफे)।

इन उदाहरणों से लेखक का भाव-बोध स्पष्ट है। वह वर्तमान से क्षुब्ध है आजादी के पूर्व स्वप्न और वर्तमान के कठोर सत्य और उसकी विसंगतियों के वैषम्य और विरोध में वह कराह रहा है। यह "कराह" केवल "व्यंग्य" नहीं वरन् उससे अधिक पीड़ा की सार्थक और संगत अभिव्यक्ति है, जिसमें वही नहीं, समस्त जनमानस भी आज झुलस रहा है। व्यक्ति-चित्त की यही लोक-चित्त में परिणति है। मैकाले ने एक स्थान पर कहा है कि "उपन्यास में इतिहास प्रारम्भ होता है और निबन्ध में समाप्त।" सिंघी जी के वे व्यंग्य प्रधान भावात्मक निबन्ध हमारे वर्तमान इतिहास के दस्तावेज हैं।

भावात्मक निबन्धों के साथ साथ सिंघी जी नें अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक व चिन्तन प्रधान निबन्ध लिखे हैं। इन निबन्धों का विषय क्षेत्र व्यापक और विविध है। कुछेक साहित्यिक निबन्ध भी लिखे : 'जैसे रंगमंच की राजधानी कलकत्ता', '—साहित्य और समाज', 'साहित्य में राष्ट्रीयता', 'आवारा मसीहा की आलोचना', जार्ज लुई वर्जे। इनके अतिरिक्त रवीन्द्र नाथ और महात्मा गांधी के बीच काल्पनिक संवाद की शैली पर शिक्षा का आदर्श आदि। पर सच तो यह है कि सामाजिक निबन्ध ही लेखक की विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये निबन्ध लेखक के विचार और उसकी मान्यताओं के निरूपण के साथ साथ "प्रचारात्मक" हुए और सम्भवतः यही लेखक का प्रयोजन भी रहा हो। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि 'प्रचारात्मक' होने के नाते इनमें वह रचनागत गम्भीरता नहीं मिलती और न उस प्रौढ़ता का ही निदर्शन होता है, जो उनके व्यंग्यात्मक एवं आत्मपरक निबन्धों में है। वस्तु-निष्ठता के कारण ये कहीं रिपोर्ताज बन गये हैं तो कहीं स्थूल विश्लेषण। निबन्धों के साथ साथ सिंघी जी ने यात्रा-विवरण, डायरी व संस्मरण, भी लिखे। उनके द्वारा लिखे गए पत्र भी काफी चर्चित हुए। मुझे उनका डायरी लेखन अत्यन्त वैज्ञानिक, स्पष्ट और सरल लगा। इसे पढ़कर सहसा ऐनी सेनीन का डायरी-लेखन याद आ गया। लेखक ने घटनाओं व स्थितियों का दिन—चर्या के साथ साथ जिस स्पष्टता व उन्मुक्तता से गहराई में जाकर विवेचन-विश्लेषण

किया है, उससे उसकी सूक्ष्म दृष्टि स्पष्ट है। उदाहरणार्थ : "आज तो भारत का स्वाधीनता दिवस है। भावावेग की जगह मन में दृढ़ता होनी चाहिये। हम अपने लिए नहीं हैं—हम देश के हैं (२६-१-४३)।" यह उदाहरण मेरे उपर्युक्त कथन का प्रमाण है। ठीक इसी प्रकार 'किसी प्राचीन स्थान के आसपास पड़े हुए प्रस्तर खण्ड में कितने युगों का इतिहास भरा है। वर्षों से वह जो सृष्टि के जन्म-मरण की कहानी कह रहा है—उसको कौन समझता है ?' सिंघी जी का इतिहास-बोध बहुत मार्मिक है। वे घटना से स्थिति और स्थिति से उसकी अन्तर्भूमि तक पहुंचते हैं और वहीं से उनकी रचना अनुस्यूत होती है। इतिहास के प्रति यह चैतन्य बोध उनकी प्रातिभशक्ति का परिचायक है। सिंघीजी ने यात्रा विवरण और रेखाचित्र व संस्मरण भी प्रभूत मात्रा में लिखे। इनमें जहां परिचय की निकटता व सघनता है, वहां दूसरी ओर फलक की व्यापकता और विषय की विविधता भी।

अब अपनी बात !

सिंघी जी से मेरा परिचय आज से लगभग तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व मेरे मित्र स्वर्गीय मोहन सिंह जी सेंगर के सौजन्य से हुआ था। सिंघी जी के विषय में व्याप्त भिन्न और विपरीत धारणाओं से मैं परिचित था। कुछ समय के उपरांत श्रीमती सुशीला सिंघी हिन्दी विभाग में स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए आईं। इसी बीच अनेक दृष्टियों से हमारा परिचय नैकट्य और साहचर्य में परिणत हो गया था। अनेक बार, अनेक विषयों पर अनेक सन्दर्भों में उनसे विचार विमर्श होता था। उन्हीं दिनों "कामायनी" के नाट्य मंचन के समय उनसे बराबर मिलना हुआ। शनैः शनैः यह मित्रता अन्तरंग आत्मीयता बन गई। उनका व्यक्तित्व बाहर से कठोर या असहिष्णु भले ही लगे, पर उनका भीतर अत्यन्त कोमल और संवेदनापूर्ण है। दूसरे के दुःख में गहरी सहानुभूति और साझा देना, विवेक और तर्क के आधार पर अपनी बात कहना और दूसरे की सुनना, निस्संकोच पर निष्कपट और अकृत्रिम व्यवहार, जिसमें निर्बाध बहने वाला स्नेह का मधुर स्रोत है—सिंघी जी की व्यक्तिगत विशेषता है। वे अपनी शक्ति और सीमा दोनों से परिचित हैं। संयम, नियम-बद्धता और सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता उनकी चारित्रिक विशेषताएं हैं। वे समय को अपने साथ लेकर चलते हैं तो समय भी उनका संग नहीं छोड़ता। उनमें युगबोध और आत्मबोध का मणि कांचन योग है। मैंने उनमें दृढ़ता देखी, पर कटुता नहीं,—आत्मविश्वास पाया पर दोषदर्शन नहीं, सिद्धान्तों पर अडिग रहने की क्षमता देखी, पर पूर्वग्राहिता नहीं। वे खुलकर समर्थन करते हैं, तो निडर होकर विरोध भी। एक छोटी घटना है : मैं उनके साथ एक सभा में गया था। वहां से मुझे अन्यत्र जाना था। मैंने सभा में पहुंच कर उनसे कहा कि "अब हम अलग होंगे—" उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—"अब क्या, कभी नहीं।" मैं स्तब्ध रह गया। गद्‌गद् हो गया। सम्भवतः ऐसे ही क्षणों के लिए (जो अपने में पूर्ण और सार्थक होते हैं) कहा गया है 'ऐसे क्षण आते हैं जब कुछ नहीं कहना—या बहुत कम कहना—बहुत कहने से अधिक शक्ति सम्पन्न बन जाता है, क्योंकि व्यक्तित्व की आकर्षक क्षमता उसकी निष्कपट सच्चाई में ही विद्यमान रहती है।'

आज से कुछ पूर्व मैंने श्री रतन शाह को एक पत्र लिख कर सिंघी जी के सम्मान-आयोजन का सुझाव इसलिए दिया था कि आज की विकल्पग्रस्त और मूल्यहीन पीढ़ी उनके जीवन और व्यक्तित्व से व संघर्ष और चुनौतियों से पूर्ण जीवन और साहस पूर्वक अदम्य उत्साह से उनका सामना करने की क्षमता से, परिचित होकर इतिहास का एक प्रमाणसिद्ध दस्तावेज बने। आज वह कार्य पूर्ण हो रहा है—यह एक उपलब्धि है क्योंकि सिंघी जी स्वयम् एक उपलब्धि हैं। उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के लिए मैं प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सी० आर० रोजर्स की आत्मकथा के इस कथन को ही अपेक्षित और उपयुक्त समझता हूँ "I want to have an impact. I am not a person who is ambitions in the ordinary sense...but it is important to me to have influnce. I want what I do to count, to make a difference somewhere."

सिंघी जी ने भी एक बार लिखा था "इस जड़ जमीन के लिए मुझे नहीं जीना है, नहीं जीना है मुझे इस बंधन के लिए। मुझे तो विस्फोट की वह अग्नि चाहिए, जीवन के अन्तर की वह ज्वाला, जिसकी राख से बनी हुई उर्वरा भूमि में अनुभूति सत्यमय और ज्ञान प्रकाशमय हो सके।"

दृढ़चेता सिंघी जी शतायु हों

विष्णुकांत शास्त्री
सुपरिचित लेखक एवं प्राध्यापक

चार दशकों से अधिक समय से श्री भँवरमल सिंघी कलकत्ते के हिन्दी-भाषी समाज के अग्रणी पुरुष के रूप में स्वीकृत—सम्मानित होते रहे हैं। सामाजिक परिवर्तन के वे जबर्दस्त समर्थक रहे हैं और राजनीति में समाजवादी चेतना के पक्षधर। शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्रों में भी वे नई चेतना को उभारने का भगीरथ प्रयास करते रहे हैं। वे प्रभावशाली वक्ता, विचारप्रधान लेखक और कुशल संगठक रहे हैं। उनका बहुआयामी जीवन उनकी भविष्योन्मुखी दृष्टि एवं सतत सक्रियता के कारण निरन्तर विकासशील रहा है। शारीरिक अस्वस्थता के कारण पिछले कुछ वर्षों से वे पहले की तरह कर्मठ नहीं रह गए हैं किन्तु अब भी उनका मनोबल तरुणों को भी लज्जित कर सकता है। स्वाभाविक ही है कि वे अपने इन सद्गुणों के कारण समाज के विभिन्न वर्गों की श्रद्धा के पात्र बने हुए हैं।

मैं उनके संपर्क में १९५०-५१ में ही आया था। उन दिनों मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम० ए० (हिन्दी) का विद्यार्थी था। सिंघी जी की पत्नी सुशीला जी मेरी सहपाठिनी थीं। उसके पहले सिंघी जी को दूर-दूर से सभा समितियों में तो व्याख्यान देते हुए देख चुका था परन्तु उनसे घर में सहज आत्मीय के रूप में मिलने का सौभाग्य सुशीला जी की कृपा से ही प्राप्त हुआ। उसके बाद तो अनामिका के माध्यम

से हमलोग और निकट आते गए। अपने इस लंबे साहचर्य के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि सिंघी जी अपने इरादों के बहुत पक्के हैं, अपने निर्णयों को वे जल्दी नहीं बदलते, भले ही उसके कारण उन्हें विरोध करना या झेलना क्यों न पड़े। स्वयं-निर्मित व्यक्ति के रूप में उन्होंने संभवतः जीवन के आरंभिक दिनों में ही जो संघर्ष किया था उसकी छाप उन पर बहुत गहरी पड़ी थी और वे अपनी इस प्रवृत्ति से अभी तक मुक्त नहीं हो पाए हैं। फिर भी उनके बाह्य कठोर कलेवर के भीतर एक कोमल हृदय छिपा है जिसका आभास उनकी प्रथम साहित्यिक कृति 'वेदना' से तो मिलता ही है निकटस्थों के प्रति व्यवहार से भी मिलता है।

अनामिका के पहले तरुण संघ के माध्यम से समाज सुधार को दृष्टि में रखकर कई नाटक खेले गए थे। सुधारवादी आग्रह और कलात्मक मूल्य के द्वंद्व में वे प्रायः सामाजिक परिवर्तनवादी दृष्टि का ही समर्थन नाटक के क्षेत्र में भी किया करते थे। श्यामानन्द जालान ने उनके इस अतिरेक का परिहार करने के लिए ही तरुण संघ के स्थान पर अनामिका के माध्यम से नाट्य प्रस्तुति की पहल की थी। सिंघी जी ने अनामिका को पूरा सहयोग देकर और उसमें भी अग्रणी अंश ग्रहण कर यह साबित किया कि वे कलात्मक मूल्यों के उत्कर्ष के प्रति भी आस्थाशील रहे हैं। अपने विश्वासों का मूल्य चुकाने के लिए सदैव तत्पर रहनेवाले सिंघी जी जो नया समाज बनाना चाहते थे वह शायद उनकी आशाओं के अनुरूप तो नहीं बन पाया किन्तु इसमें संदेह नहीं कि रूढ़ियों को दूरकर समयानुकूल विचारों को समाज द्वारा स्वीकृत कराने का उनका संकल्प काफी बड़ी सीमा तक सफल रहा।

प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि सिंघी जी काम करते-करते हुए ही शतायु हों।

सव्यसाची सिंघी जी

गोविन्द प्रसाद केजरीवाल
संयुक्त सम्पादक साप्ताहिक हिन्दुस्तान

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनके चतुर्दिक महत्ता का प्रभामण्डल व्याप्त रहता है। ऐसे मेरे परिचित लोगों में श्री भँवरमल सिंघी भी हैं। वे मुझसे वय में बड़े हैं। मैं छात्र-जीवन से ही उनसे प्रभावित रहा हूँ। वे किस मायने में महत्वपूर्ण हैं, इसका विश्लेषण मेरे लिए बहुत मुश्किल है। मैं यह महसूसता रहा हूँ कि यह व्यक्ति विशिष्ट है, साधारण नहीं। श्रद्धा का यह तकाजा है कि वह श्रद्धेय को श्रद्धा देता रहे, मीन-मेख के जंजाल में न पड़े। अतः मैं यह मानकर चलता रहा हूँ कि सिंघी जी सामान्य नहीं, विशिष्ट हैं, उनका अपना एक चिन्तन है, एक लक्ष्य है और वे जो कुछ भी कर रहे हैं ज्ञानपूर्वक कर रहे हैं। अँधेरे में ढेला नहीं फेंक रहे हैं। सव्यसाची की तरह उनके दोनों हाथ सही निशाने पर बैठते हैं।

सर्वाधिक मैं उनके जिस गुण से प्रभावित रहा हूं, वह है उनकी दृढ़ता। उनके चेहरे पर सदा एक भाव बना रहता है, जो उनकी दृढ़ मानसिकता का प्रतीक है। उनकी कथनी-करनी में कोई फर्क नहीं है। जैसे देवनागरी लिपि की एक विशेषता होती है कि जैसा आप लिखते हैं वही पढ़ते हैं, उसी तरह सिंघी जी जो कहते हैं वही करते हैं। इतना ही नहीं जो सोचते हैं, वही करते हैं और जो करते हैं, वही सोचते हैं। अब तक जो सोचा है, वही किया है। उनकी धारणाओं और आस्था-विश्वास की अपनी धुरी है। उस धुरी के चतुर्दिक् उनका चिन्तन चलता रहा है। लोकप्रियता के इस सस्ते युग में 'जैसी चले बयार, पीठ तब तैसी दीजै' का चलन है। मैं श्री भँवरमल के बारे में दावे के साथ यह घोषणा कर सकता हूं कि वे अपने विश्वास की बयार को अपनी छाती पर झेलते रहे हैं। इसके थपड़ों से कभी विचलित नहीं हुए।

उनके चिन्तन की एक दूसरी विशेषता यह रही है कि उन्होंने 'कामचलाऊ' ढंग से नहीं सोचा। सदा दूर की बात सोची है। इसलिए प्रगतिशीलता में आज भी वे नौजवानों से आगे हैं। उनके विचारों में नवता का चंदन महकता रहता है।

हिन्दी-गद्यगीत-लेखकों में उनका विशिष्ट स्थान रहा है और यह सम्मान उन्हें अल्प वय में ही प्राप्त हो गया था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके गद्य-गीतों की चर्चा की है। आचार्य शुक्ल से प्रशंसा पाना कोई खेल नहीं था। शुक्ल जी की खराद पर बड़े-बड़े चढ़ ही नहीं पाए। खरे-खोटे का विवेचन तो आकाश-कुसुम था।

सिंघी जी में बहुत-से गुणों का समन्वय है। वे सुलेखक हैं, चिंतक हैं, द्रष्टा हैं, अभिनेता हैं और एक अच्छे अर्थशास्त्री भी। हिन्दी रंगमंच को जो उनकी देन है, वह अलग से एक पुस्तक का विषय है। अर्थ को उन्होंने अनर्थ की सीमा तक नहीं अपनाया। उसे उन्होंने पेट भरने, तन ढकने और सिर छुपाने तक ही ग्रहण किया। वे द्वितीय विश्व युद्ध के जिस दौर से गुजरे हैं, उसमें यदि वे चाहते तो करोड़ों की सम्पदा बटोर सकते थे। उनके धनपतियों से सम्पर्क-सूत्र-प्रभाव बड़े गहरे रहे हैं, लेकिन उन्होंने कभी उनकी मुसाहिबी नहीं की। उन्हें अपने 'अर्थ' का ज्ञान तो दिया, लेकिन कभी लिया नहीं। मैं एक ऐसी घटना को जानता हूं। देश के एक प्रभावशाली कुबेर ने उनकी ओर अपना हाथ बढ़ाया, लेकिन श्री सिंघी ने उसे फटका दिया था। 'क्षान सेल' वे कभी नहीं रहे, अपने विचारों और आदर्शों की सेल (Cell) में ही सीमित रहे।

स्वर्गीय सीताराम जी सेकसरिया के प्रति मेरी सदा से श्रद्धा रही है। वे कई उपयोगी संस्थाओं के सफल जनक रहे हैं। आज उनके निधन के बाद भी वे संस्थाएं फूल-फल रही हैं। मैं प्राय: उनसे पूछा करता था—'आपके बाद आपकी संस्थाओं की देखरेख कौन करेगा?' वे सदा मेरी इस जिज्ञासा को हँस कर टाल दिया करते थे, लेकिन मैं उनसे मौका पाकर यह प्रश्न पूछता जरूर था। मेरी उनके उत्तरा-धिकारी में गहरी दिलचस्पी रहा करती थी, क्योंकि संस्था बनाना उतनी मुश्किल बात नहीं, लेकिन अपने योग्य उत्तराधिकारी का निर्माण या चयन बहुत ही मुश्किल

है । एक दिन सेकसरिया जी ने मेरी इस जिज्ञासा का उत्तर दे ही दिया । कहा—'भँवरमल जी और मेरी विचारधारा में जेनेरेशन-गैप है । बहुत-सी बातों में हम सहमत नहीं होते । फिर भी हम एक दूसरे को समझते-बूझते हैं । मुझे सिंघी जी को अपनी आस्था और विश्वास का ट्रस्टी बनाने में हिचक नहीं होगी । मुझे एक ही आशंका है । वह यह कि वे मेरी धारणा और विश्वास को ढोना क्यों पसन्द करेंगे ? उनका भी एक रास्ता है, अपनी विचारधारा है ।'

सेकसरिया जी का उत्तर सुनकर मुझे उनके चयन पर बड़ी श्रद्धा हुई थी । मैंने सोचा कि नाम और यश लूटने की एकाधिकार मानसिकता के युग में बहुत-सी संस्थाओं के अधिपति जहां आज अपने उत्तराधिकारियों की भ्रूणहत्या करने में नहीं हिचकते, वहां सेकसरिया जी बड़ी उदारता से अपने योग्य उत्तराधिकारी की स्वीकृति की बाट जोह रहे हैं ।

सिंघी जी के व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी पत्नी सुशीला जी का बहुत बड़ा योगदान रहा है । दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं । ७१ वीं सीढ़ी तक सही सलामत पहुंचाने में सुशीला भाभी का बड़ा सहारा रहा है । इनकी युगलबन्दी देश और समाज में चेतना लाए, इसी कामना के साथ सिंघी जी को अपनी शुभकामनाएं और प्रणाम निवेदित कर रहा हूं ।

सिंघी-परिवार

विश्वनाथ मुखर्जी
पत्रकार व लेखक

बात उन दिनों की है जब श्री मोहन सिंह सेंगर के सम्पादकत्व में "नया समाज" पत्रिका प्रकाशित हो रही थी । हिन्दी में वह पत्रिका अपने ढंग की अकेली थी । इस पत्र में सिंघी जी के लेख बराबर छपते रहे जिसका विषय होता था—परिवार नियोजन । ज्ञातव्य है कि उन दिनों परिवार नियोजन का इतना व्यापक प्रचार नहीं था । "नया समाज" का प्रकाशन बन्द होने के बाद भी सिंघी जी कभी-कभी विश्वमित्र और सन्मार्ग में इसी विषय पर लेख लिखते रहे । कभी-कभी उनके लेख आर्थिक विषय पर प्रकाशित होते थे ।

'दूधों नहाओ—पूतों फलो" जिसका बंगला में भाषान्तर "मां षष्ठिर कृपा होक" संस्कृति में पलने के कारण ऐसे लेखों के शीर्षक से मुझे एलर्जी हो जाती थी । अक्सर सोचता कि इस भलेमानुस को और कोई विषय नहीं मिलता क्या जो परिवार नियोजन पर टूट पड़े हैं ? जवानी का आलम था । ऐसे माहौल में यह विषय उकताने लगता था । अक्सर पुस्तकालय में बैठे हमजोलियों में सिंघी जी के बारे में हम राय देते कि राजकुमारी अमृत कौर को हटाकर सरकार इन्हें परिवार नियोजन मंत्री बना दे ।

एक सी लंगोग

उस वक्त तक हम यह कल्पना नहीं कर सके थे कि आगे चलकर भारत के लिए यह अहम मसला हो जायगा और आम जनता इसे स्वयं ही खुशी-खुशी अपना-येगी। इसके बिना देश की स्थिति नाजुक हो जायगी। सिंघी जी के विचारों की गंभीरता को आज महसूस कर रहा हूँ। बंगाल के सम्बन्ध में कही गयी लोकोक्ति के अनुसार आगामी भारत के भविष्य का चिन्तन सिंघी जी आज कर रहे हैं। उन्होंने आज से तीस पैंतीस वर्ष पूर्व ही जनता को इस विषय पर अपने चिन्तनों के द्वारा आगाह किया था।

इसके बाद एक लम्बा अर्सा गुजर गया। सिंघी जी के विचारों की गंभीरता शनैः-शनैः अनुभव करता रहा। हिन्दी जगत के मूर्द्धन्य हास्य कथाकार भाई राधा-कृष्ण का अभिनन्दन कलकत्ता में ठलुआ क्लब की ओर से हुआ। इस अवसर पर उनके सम्मान में श्रद्धेय सीताराम सेकसरिया जी ने अपने यहाँ चाय-जलपान का आयोजन किया। इसी आयोजन में सिंघी जी को निकट से देखा। साथ में श्रीमती सुशीला सिंघी भी थीं।

सिंघी जी के लेखों को पढ़कर मैं उन्हें वयोवृद्ध नेता समझा करता था, पर उनकी शक्ल देखकर बड़ी निराशा हुई जैसे नागार्जुन को देखकर हुई थी। मेरा शरारती मन कल्पना करने लगा कि अगर इनके सिर पर वासन्ती रंग का रेशमी रूमाल बांध दिया जाय तो बर्मा के भूतपूर्व प्रधान मंत्री ऊनू से मिलते-जुलते नजर आयेंगे। अगर कहीं गोल टोपी पहनायी जाय तो शमशेर सिंह बहादुर थापा का भ्रम निश्चित रूप से होगा।

उन्नत ललाट, फजली आम की तरह आकृति, छोटी-छोटी आंखें जिस पर मोटे शीशे का चश्मा। कुछ शक्लें ऐसी होती हैं जो अनायास लोगों को अपनी ओर आक-र्षित कर लेती हैं, परन्तु सिंघी जी के चेहरे पर कोई विशेषता नजर नहीं आयी। फलतः न तो किसी ने हमारा आपस में परिचय कराया और न हम एक-दूसरे से परिचित हुए। आगत अतिथियों से ही वे बातें करने में लगे रहे। मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। कहने का मतलब उस समारोह में हम अपरिचित ही रहे।

काफी दिनों बाद सिंघी जी का एक पत्र इस आशय का आया कि श्रद्धेय सीताराम सेकसरिया अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित होने जा रहा है, उसके लिए मैं संस्मरण भेज दूँ। इस पत्र को पाने के बाद मैंने अनुमान लगाया कि सेकसरिया जी के मित्रों ने मेरा नाम-पता दिया होगा वर्ना वे मुझे जानते कितना हैं।

उस पत्र के पाने के बाद मैंने सिंघी जी को सुझाव दिया कि वे इस ग्रंथ को संदर्भ ग्रंथ का रूप दें। आमतौर पर संस्मरण या शुभकामना भेजनेवाले तबीयत से लिखते नहीं। इसके आलावा ऐसे ग्रंथों का आगे कोई उपयोग नहीं होता। अभिनन्दन ग्रंथ दो प्रकार के होते हैं जैसे डा० सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रंथ, महावीर प्रसाद द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ, नानूभाई देसाई अभिनन्दन ग्रंथ जिसमें लेखकों को पूरी स्वतंत्रता दी गयी थी कि वे किसी विषय पर शोधपूर्ण लेख भेजें। दूसरे प्रकार के अभिनन्दन ग्रंथ में व्यक्ति के बारे में संस्मरणों के अलावा उसकी विविध रचनाएं रहती हैं जैसे पं० श्री नारायण चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ। तीसरे प्रकार के अभिनन्दन ग्रथों का कोई मूल्य

नहीं होता। लोग अपना संस्मरण पढ़ने के बाद आलमारी में रख देते हैं या पुस्तकालय को दान कर देते हैं।

सिंघी जी का उत्तर आया कि हम सेकसरिया जी के अभिनन्दन ग्रंथ में उनकी रचनाएं तथा स्त्री शिक्षा पर भी लेख छाप रहे हैं, कारण उन्होंने जीवन भर स्त्री शिक्षा के लिए कार्य किया है। जब यह अभिनन्दन ग्रंथ देखा तो मन प्रसन्न हो गया। निस्सन्देह सिंघी जी एक सफल सम्पादक हैं। इनके सम्पादक का दूसरा उदाहरण मुझे श्रद्धेय भागीरथ कानोड़िया स्मृति ग्रंथ में मिला। तब तक मुझे यह ज्ञात नहीं था कि सिंघी जी लोगों के अभिनन्दन में अपने जीवन का अनेक भाग व्यय कर चुके हैं।

मैं यह बात जानता हूं कि सिंघी जी इतिहास-पुरुष हैं यानी आपकी स्थापना आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में की है। जिन दिनों आप गद्यगीत लिखते रहे उन्हीं दिनों शुक्ल जी इतिहास लिखते रहे। दिनेश कुमारी चोरड़िया के साथ-साथ आपके गद्यगीतों की प्रशंसा उन्होंने की है जबकि तत्कालीन अनेक महत्वपूर्ण लेखकों की चर्चा उनके इतिहास में नहीं है।

सहसा एक दिन भाई मोहनलाल गुप्त ने सूचना दी—शिशिर का विवाह सिंघी जी की लड़की से होगा। नम्बर तीन चार रह गये, पांचवां बाजी मार ले गया। अब पीछे से क्रम प्रारंभ हो रहा है।

यह बात सुनकर मैं चकित रह गया। सिंघी जी जैनी हैं। आमतौर पर जैनी बड़े कट्टर होते हैं। तो क्या सिंघी जी मेरी तरह उदारवादी हैं? सिंघी जी के साहस की प्रशंसा मन ही मन करने लगा।

इस बारे में एक बार मैंने उनसे प्रश्न किया तो उन्होंने कहा- "दोनों ने एक दूसरे को पसन्द किया था। जब मैंने सुस्मिता से पूछा कि तुम अपना भविष्य सोच लो मुझे इस विवाह में कोई आपत्ति नहीं है। अगर यह सोचती हो कि इस विवाह से सुखी रहोगी और लड़का अच्छा है तो मैं तैयार हूं। जानते हैं, सुस्मिता ने क्या उत्तर दिया? कहा—"मैंने उसे अच्छी तरह परख लिया है।" इस प्रकार यह विवाह सम्पन्न हुआ।

सुस्मिता की तेज निगाहों ने शिशिर को पहचानने में कोई गलती नहीं की। शिशिर को मैं बचपन से जानता हूं। अगर शिशिर की प्रतिभा से सिंघी जी प्रसन्न हैं तो सुस्मिता की कला की प्रशंसा करते मोहन जी अघाते नहीं। मोहन जी इसलिए प्रशंसा करते हैं कि वे स्वयं भी ३५ वर्ष तक 'आज' के रविवार विशेषांक का सम्पादन-मेकअप करते रहे। आज भी जब किसी पत्र का गेटअप-सम्पादन अच्छा देखते हैं तब उसकी प्रशंसा करते हैं। सुस्मिता "टेलीग्राफ" में यही कार्य करती है।

प्रसिद्ध लेखकों के पुत्र लेखक या पत्रकार होते हैं, यह निश्चित नहीं है पर मोहन जी के दो पुत्र अच्छे पत्रकार हैं। शिशिर के विवाह के समाचार से प्रसन्नता हुई। मैंने उन्हें पत्र दिया कि मैं आनेवाला हूं। मैं जानता था कि इस समारोह में जितने लोग आयेंगे, उनमें अधिकांश मेरे परिचित होंगे और अपनी समधी का गौरव मुझे मिलेगा। लेकिन मोहन जी इतने कंजूस निकले कि बिना सूचना दिये चले गये। जब यह समाचार मिला तो मैं नाराज हो गया। काफी मान-मनौवल के बाद पार्टी में शामिल हुआ। दरअसल मोहन जी मुझे अपने परिवार का सदस्य मानते हैं।

कुछ दिनों बाद पता चला कि सिंघी जी पक्षाघात से पीड़ित हो गये हैं। इस दुःखद समाचार से हम सब सकते में आ गये। श्रद्धेय सीताराम सेकसरिया और भागीरथ कानोड़िया के बाद मारवाड़ी-समाज को नव चेतना देने का जो कार्य सिंघी जी ने किया है, वह अतुलनीय है। उपदेश देनेवाले लाखों हैं, पर अपने जीवन में उन उपदेशों को ढालनेवाला कोई-कोई मिलता है। ऐसे लोगों में सिंघी जी प्रमुख व्यक्ति हैं।

आपने विधवा-विवाह करके लोगों को शह दी। बंगाली दामाद को अपनाया और फिर बंगाली बहू लाकर सम्पूर्ण समाज को मान दिया। इन बातों की सूचना जब मुझे मिली तब मैंने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया। वह इसलिए क्योंकि मेरे ऐसा विद्रोही व्यक्ति भी ऐसा साहस शायद ही कर कर पाता। सिंघी जी ने यह सब करके यह सिद्ध कर दिया कि वे भारतीय आत्मा हैं। जाति-बन्धन की शृंखला उनके निकट कोई मूल्य नहीं रखती। सम्पूर्ण भारत को अपना घर-परिवार और समाज समझते हैं। मानव की मानवता उनके निकट मूल्यवान है।

इसके साथ ही एक गुमनाम महिला की ओर जब मैं आकृष्ट हुआ तब लगा कि पति महान है या पत्नी? श्रीमती सुशीला सिंघी के दिल में उन अनाथ, आवारा, लावारिस बच्चों के प्रति कितना स्नेह है जिन्हें वे आदमी बना रही हैं। कई सौ कामगार महिलाएं उनके स्कूल में अपने बच्चों को छोड़कर रोजी-रोटी की तलाश में जाती हैं। जिन्हें सुशीला जी अपना स्नेह ही नहीं, भोजन-वस्त्र देती हैं, जो आगे चलकर देश के अच्छे नागरिक के रूप में आयेंगे। भारत के किसी भी कोने में इस प्रकार निस्स्वार्थ सेवा मेरी जानकारी में और कोई नहीं करता। अगर मैं यह कहूं कि श्रीमती सुशीला सिंघी बंगाल की "मदर टेरेसा" हैं तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अब यह बताना मेरे लिए कठिन है कि भँवरमल और सुशीला जी में कौन किसके लिए प्रेरक है। दोनों पति-पत्नी आज भी मानव हित के लिए सेवा करते जा रहे हैं।

बहुमुखी व्यक्तित्व

कन्हैयालाल सेठिया

हिन्दी एवं राजस्थानी के कवि

पिछली आधी शती से बन्धुवर भँवरमलजी सिंघी से मेरा अत्यन्त आत्मीय संबंध रहा है। उनके बहुमुखी पौरुष, प्रतिभा और प्रखरता का नाम है "भँवरमल सिंघी"। डा० राम मनोहर लोहिया के अतिरिक्त श्री सिंघी जी के व्यक्तित्व से समता करनेवाला और कोई व्यक्ति मेरे ध्यान में नहीं आता। सत्ता के सामने, ऐश्वर्य के सामने सिंघी जी कभी झुके नहीं; उन्होंने जीवन को अपनी तरह जिया और किया वही जो उन्होंने अनुभव किया।

मेरी दृष्टि में सिंघी जी का साहित्यकार स्वरूप ही सर्वोच्च है। मैं तो इसे दुर्घटना ही मानता हूं कि वे समाज सुधार के चक्रव्यूह में फंसे और अभिमन्यु की तरह

अकेले ही रह गये। अन्य क्षेत्रों में भी उनके अप्रतिम कृतित्व को उसकी समग्रता में नहीं स्वीकारा गया। इससे उनकी उपेक्षा से समाज की अधिक क्षति हुई है।

श्री सिंघी जी का अवदान एक समूचे इतिहास की सामग्री है, उसे कुछ पंक्तियों में बद्ध कर देना उनको नहीं समाज को बौना करना है।

श्री भँवरमल जी का अभिनन्दन श्रीमती सुशीला जी सिंघी के अभिनन्दन के बिना अधूरा रहेगा। वे एक दूसरे के पूरक हैं इसलिये दोनों के व्यक्तित्व और कृतित्व को अभिनन्दन ग्रंथ में आंकलित किया जाना चाहिये।

सिंघी जी से पहली बार भेंट कब कहां हुई थी, बहुत ठीक से याद नहीं आता। ऐसा लगता है जैसे शुरू से ही उनको जानता रहा हूँ, इतने आत्मीय, अनजाने में ही होते गये वे।

विद्रोही युवा

धर्मवीर भारती
सम्पादक साप्ताहिक धर्मयुग

कुछ कुछ धुंधली सी याद आती है। शायद ४८ या ४९ की बात है। मैं रिसर्च कर रहा था और 'संगम' साप्ताहिक में उपसम्पादक था। रिसर्च के सिलसिले में शांतिनिकेतन और कलकत्ता गया था। कलकत्ते मे मेरे मेजवान थे शिवनारायण जी और कमल जोशी। कलकत्ते की साहित्यिक तीर्थयात्रा में एक छोटा सा पढ़ाव था 'नया समाज' का दफ्तर। वहां शायद सेंगर जी के दफ्तर में पहली बार सिंघी जी को देखा था। लम्बे, सांवले, बड़े प्रखर विचार, सामाजिक विषयों पर लिखते थे। एक मारवाड़ी प्रतिष्ठान का कोई कर्मचारी इतने प्रखर विद्रोही विचारों वाला हो यह बात बड़ी अनोखी लगी थी तब मुझे।

उनसे ज्यादा मिलना जुलना हुआ जब पुष्पा जी शिक्षायतन में पढ़ाती थीं और वे शायद शिक्षायतन के मंत्री थे। सारी देख-रेख उन्हीं की थी और संरक्षण था स्वर्गीय सीताराम सेकसरिया का। शिक्षा संस्थान की एक उदात्त कल्पना, खुले विचार, आत्मीयता भरा व्यवहार और कुशल प्रबन्ध। अपनी आजीविका को गौण स्थान देकर सामाजिक कार्यों में अधिक निष्ठा और तत्परता। एक बात और बड़ी महत्वपूर्ण लगी, हिन्दी साहित्य की अधुनातन गतिविधियों से उनका बड़ा गहरा लगाव। अधिकतर पुराने और नये सभी लेखकों से उनके वैयक्तिक स्तर पर सम्पर्क थे। हर नयी महत्वपूर्ण साहित्यक योजना में उनकी सक्रिय रुचि थी और यथासम्भव आर्थिक सहायता भी।

फिर तो उनसे बराबर मिलना जुलना होता रहा। कभी कलकत्ते में, कभी बम्बई में। उनकी रुचियां परिष्कृत थीं, अधिकतर विचारों से मैं अपने को सहमत पाता था सिवा एक तीव्र मतभेद के; मेरी निगाह में प्रयाग विश्वविद्यालय का अध्ययन

स्थान था और वे हमेशा वाराणसी विश्वविद्यालय का गीत गाते रहते थे। पर खैर अच्छे से अच्छे आदमी में कोई न कोई खामी तो होती ही है। करने दो बनारस की तारीफ़, इस एक दोष के अलावा बाकी तो सब चुस्त दुरुस्त है।

इसी बीच में एक प्रसंग ऐसा आया जिससे व्यक्तिगत अन्तरंगता थोड़ी गहरी हो आयी। उन दिनों बम्बई में मैं बिल्कुल अकेला रह रहा था। एक नौकर और पूरा खाली फ्लैट। कोई खास मित्रमंडली भी नहीं बनी थी। तभी सिंघी जी सपत्नीक बम्बई आये। ज्ञात हुआ कि सुशीला भाभी प्राकृतिक चिकित्सा के सिलसिले में महीने दो महीने बम्बई रहेंगी। चूंकि मैं बम्बई में अकेला था, शाम को कोई खास कामधाम नहीं रहता था तो सिंघी जी मुझे सौंप गये कि बीच-बीच में मैं सुशीला भाभी की खोज खबर लेता रहूं। देवर का धर्म निबाहने के लिये मैं भी धनुष-बाण लेकर सन्नद्ध हो गया।

शामों को अक्सर या तो मैं सुशीला भाभी के ठहरने के स्थान पर चला जाता या वे टैक्सी लेकर मेरे यहां आ जातीं। फिर, चूंकि शाम को उन्हें मील दो मील टहलना जरूरी था अतः हम लोग कभी चौपाटी, कभी वरली सी फेस, कभी ब्रीच कैंडी पर समुद्र तट पर निकल जाते। हम दोनों देवर भाभी की गहन अंतरंग बातों की विषय-वस्तु असीम थी। सारे संसार में कहां-कहां क्या-क्या सामाजिक समस्याएं हैं? शिक्षा पद्धति में क्या दोष हैं? नारी स्वातंत्र्य का क्या होगा? साहित्य का कितना पतन होता जा रहा है? व्यक्ति बड़ा है या समाज? गाँधीवाद अब संगत रह गया है या नहीं? इन अत्यन्त रसीले विषयों पर हम लोगों की बहसें होती थीं। संसार की लगभग सभी समस्याएं उन दिनों हम लोगों ने सुलझा ली थीं, बस एक समस्या नहीं सुलझ पायी थी, वह यह यह कि सिंघी जी बातें इतनी जोरदार करते हैं पर उनको समुचित ढंग से व्यवस्थित करके पुस्तकाकार छपवाते क्यों नहीं? इस सवाल का ज़वाब सुशीला भाभी के पास भी नहीं था और मेरे पास भी नहीं?

एक और असफलता मेरी रही। सिंघी जी विवाह संस्था के बहुत खिलाफ थे। मैंने सुशीला भाभी को बहुत भड़काने की कोशिश की कि अपने दाम्पत्य की सुरक्षा के लिये वे सिंघी जी को ऐसी गैरजिम्मेवार बातें करने से रोकें, मगर मैं भड़का नहीं पाया। वे इतनी आश्वस्त थीं कि हमेशा बड़े विजय गर्व से मेरी ओर देख कर हँस देतीं और कहतीं, "ठीक है कहने दीजिए, इससे क्या आता जाता है।"

लेखन की और बोलने की व्याधि सिंघी जी को सदा रही। इधर उम्र के साथ थोड़ी कम ज़रूर हुई है। तीखा लेखन और प्रखर वक्तृता सिंघी जी के साथ अभिन्न रूप से जुड़े रहे हैं। उन्होंने जितना अध्ययन किया है, जितने अनुभव बटोरे हैं जितना मनन किया है और इन सबके फलस्वरूप जितना लिखा है उनको यदि पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाय तो ४-५ पुस्तकें तैयार हो जायेंगी। यदि किसी दिन ऐसा हुआ तो पिछले ४०, ५० वर्षों में बदलते हुए भारतीय मध्यवर्ग पर बहुत अच्छी समाज शास्त्रीय सामग्री का संकलन होगा।

सिंघी जी ने अवकाश ग्रहण किया, घर बनवाया और अधिकाधिक व्यस्त होते गये। अपने अस्वास्थ्य के बावजूद उनकी कर्मठता में कोई कमी नहीं आयी। और न

सामाजिक राजनीतिक, साहित्यिक गतिविधियों के प्रति उनकी सतत जागरूकता में कोई फर्क पड़ा।

वे ७० वर्ष के होने जा रहे हैं, सुन कर सहसा विश्वास नहीं हुआ। अभी भी वे ३५ वर्ष के विद्रोही युवाओं जैसे ज्वलंत विचारों को वाणी देते रहते हैं। मुझे विश्वास है कि उनके विचारों का यह चिर यौवन बराबर बना रहेगा।

विरले मारवाड़ी

मोहन सिंह मेहता
अधिष्ठाता, सेवा मन्दिर, उदयपुर

समाज के अनेक प्रमुख मित्रों का यह निर्णय सर्वथा उपयुक्त है कि भँवरमल जी सिंघी की अवस्था के सातवें दशक के पूर्ण होने के अवसर पर उनकी समाज-सेवा तथा उनके गुण-स्वभाव के लिये सार्वजनिक स्तर पर उनके प्रति श्रद्धा और सराहना प्रकट की जाय।

भाई भँवरमल जी का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत रहा है। उनका नाम और उनकी सेवा की जानकारी कलकत्ते तथा राजस्थान में बहुत लोगों को है। उनका नाम परिचय देने की तो आवश्यकता नही है, किन्तु इस मुद्दे पर जोर देना बहुत आवश्यक है कि उनकी विचार-शैली, उनका नैतिक साहस, उनकी प्रगतिशील मनोवृत्ति और इन गुणों से प्रभावित उनका व्यक्तित्व एक सराहनीय प्रकृति तथा ऊँचे चरित्र का नमूना है। और इसी कारण उनका सामाजिक कार्य भी इतना महत्वपूर्ण रहा है। मेरा अनुमान है कि उनके उदाहरण तथा उनकी सीधी प्रेरणा से अनेक नवयुवकों के जीवन पर बहुत श्रेष्ठ प्रभाव पड़ा है।

उन्होंने सामाजिक कार्य के अनेक क्षेत्रों को अपने गुणों, त्याग-भावना, दृढ़ संकल्प और सतत प्रयत्नों से सींचा है, अनेक संस्थाओं को जन्म दिया है और परिणाम-स्वरूप समाज में सुधार करने का श्रेष्ठ प्रयत्न किया है।

राजस्थानी समाज कलकत्ते में उद्योग और वाणिज्य में अपनी स्वाभाविक कुशलता एवं असाधारण सूझबूझ के बल पर बहुत ही प्रभावशाली वर्ग माना जाता है। उसकी सफलता से अन्य लोग चकित रह जाते हैं। कभी-कभी तो ईर्ष्या और स्वार्थ से प्रेरित होकर मारवाड़ी समुदाय पर अनुचित दोषारोपण करके उन पर आक्षेप भी किये गये हैं। परन्तु उनकी प्रगति का अवरोध करने में वे लोग सफल नहीं हुए। बंगाल के लोग (इसी तरह देश के अनेक अन्य भागों में) मारवाड़ियों के वाणिज्य-कौशल और उद्योग-धन्धों में अपूर्व योग्यता को मान्यता देने को मजबूर हो गये हैं। देश की प्रगति तथा समाज-निर्माण के इतिहास में यह तथ्य उल्लेखनीय है और रहेगा।

किन्तु इसके साथ-साथ यह भी हमको मानना पड़ता है कि राजस्थानी मारवाड़ी समाज उद्योग-धन्धे और वाणिज्य व्यापार में जितना सफल प्रभावशाली और गतिशील रहा है उतना अन्य क्षेत्रों में—यथा समाज सुधार, राजनैतिक क्षेत्र, साहित्य,

विज्ञान, कला, सामाजिक क्रांति आदि-आदि क्षेत्रों में देश के अन्य प्रादेशिक वर्गों के अनुपात में अग्रसर नहीं रहा है।

इस वास्तविक स्थिति को जानते और मानते हुए हमको भँवरमल जी सिंघी जैसी हस्तियों को पाकर विशेष सन्तोष और सराहना ही नहीं, वरन् गर्व भी होता है। ऐसे व्यक्ति कलकत्ते के मारवाड़ी समाज में बहुत ही कम संख्या में मिलेंगे जिन्होंने व्यापार-वाणिज्य के बाहर भी अपने विचारों, सुधार सम्बन्धी विचारों, उद्योग और राजनीति में अपने प्रभाव और उद्देश्यों की गहरी छाप डाली हो, उनके द्वारा सामाजिक जीवन में क्रांति, शिक्षा क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति और समाज सेवा में अपूर्व त्याग और उत्साह का परिचय दिया गया हो। मेरी दृष्टि में यह एक प्रबल कारण है, एक विशेष परिस्थिति है, जिसको देखकर हम भँवरमल जी और उसी तरह के दूसरे मित्रों का सच्चे दिल से अभिनन्दन करें। ऐसा करना समकालीन जन-समुदाय और आनेवाली नई पीढ़ी दोनों ही के प्रति हमारा पुनीत कर्तव्य हो जाता है। मुझे विश्वास है कि मेरी इस धारणा से अन्य मित्र साथी सहमत होंगे।

भाई भँवरमल जी के साथ मेरा परिचय पुराना है। कई वर्षों तक मैंने उनके स्नेह और कृपा का लाभ उठाया है, उनके साथ एक दो समितियों में साथ बैठकर काम करने का भी अवसर मिला है। निकट रहने से उनकी प्रकृति और समाज के लिये उनमें संवेदना देखने को मिली, उससे उनके लिए मन में प्रेम और प्रतिष्ठा बढ़ी है।

मुझको आशा है, विश्वास भी होता है कि भँवरमल जी स्वस्थ रहेंगे और अपनी विचक्षण बुद्धि, प्रगतिशील दृष्टि और निर्भीक प्रवृत्ति से समाज की चतुर्मुखी उन्नति में दीर्घकाल तक अपना योगदान बड़ी मात्रा में देते रहेंगे।

एक सदाशयी सज्जन की सम्मोहक छवि

लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
प्रसिद्ध विधिवेत्ता

सार्वजनिक जीवन में उनके सुयश के कारण श्री भँवरमल जी सिंघी का नाम मैंने बहुत पहले से सुन रखा था। किन्तु उनसे मेरी मुलाकात हुई मेरी धर्मपत्नी कमला जी के माध्यम से। हमारे विवाह के समय कमलाजी ने श्री एवं श्रीमती सिंघी का परिचय "जीजा जी" एवं "जीजी" के रूप में करवाया। श्रीमती सिंघी कमला जी की बाल्य-सखी शशिबाला जी की बड़ी बहिन हैं और इसलिए एक आत्मीय तानेबाने में श्री एवं श्रीमती भँवरमल जी सिंघी के साथ सम्पर्क और सम्बन्ध का सुभारम्भ हुआ। जैसा कि पहले कह चुका हूँ, उनसे परिचय होने से पूर्व ही उनकी कीर्ति से मेरा परिचय हो चुका था। व्यक्तिगत परिचय से उनकी गुण-कीर्ति का आधार और यथार्थ अधिक उजागर हुआ।

श्री भँवरमल जी सिंघी का एक और परिचय पाया मैंने अपने पितृतुल्य स्वर्गीय जयनारायण जी व्यास से। व्यास जी सही माने में स्वतंत्रता संग्राम के समय रजवाड़ों

में चल रहे उत्तरदायी शासन के आंदोलन के प्रवर्त्तक लोकनायक थे। उनका निश्छल; बेलाग व्यक्तित्व कुछ ऐसा था कि बीकानेर के महाराजा श्री गंगा सिंह जी ने ब्रिटिश राज्य के प्रतापी सूर्य के अस्ताचलगामी होने से बहुत पहले ही जोधपुर रियासत के अंग्रेज प्रधानमंत्री को उनकी प्रशस्ति में एक पत्र लिखा था। व्यास जी मेरे पिता जी के अनन्य मित्र और उनके आदरणीय अग्रज-तुल्य थे। उन्होंने श्री सिंघी जी के व्यक्तित्व की सराहना करते हुए कहा था कि ऐसे लोगों ने नींव का पत्थर बनकर स्वतंत्रता आंदोलन का मनोबल बनाए रखा और साथ ही बिना किसी प्रत्याशा के निःस्वार्थ भाव से शिक्षा, सामाजिक सुधार और परिवर्तन का सूत्रपात किया। उन्होंने सिंघी जी के बारे में कहा था—"खरा सोना है यह आदमी"।

कलकत्ता महानगर प्रवासी राजस्थानी समाज का सबसे बड़ा केन्द्र है। हिन्दी भाषा का प्रयोग करने वाले लोगों की संख्या दिल्ली के बाद सबसे अधिक कलकत्ता में ही है शायद। राजस्थानी समाज और हिन्दी भाषी कलकत्ता-समाज में भँवरमल जी का एक विशेष स्थान है। वे व्यवसायकुशल अवश्य थे किन्तु व्यवसाय की कैद उन्होंने स्वीकार नहीं की। धनार्जन को जीवन का मुख्य ध्येय नहीं बनाया। वे सदैव समाजोन्मुखी रहे; सामाजिक कार्यों में बराबर सक्रिय रहे; समाजसुधारक की भूमिका में वे एक प्रबल-प्रखर प्रवक्ता मान्य हुए और साथ ही कलकत्ता की साहित्यिक-सांस्कृतिक शैक्षणिक गतिविधियों को उन्होंने प्राथमिकता दी। बंगाल की सांस्कृतिकता से उन्होंने प्रेरणा ली और राजस्थानी समाज को और उसके तरुणवर्ग को बौद्धिक, सर्जनात्मक, साहित्यिक और सांस्कृतिक मार्गदर्शन दिया। मेरे अभिन्न अग्रज और आदरणीय मित्र मोहनसिंह जी सेंगर कहा करते थे कि श्री भँवरमल जी सिंघी का योगदान भी उद्योगपतियों से अधिक है; वे राजस्थान की सांस्कृतिक धरती के लवण और लावण्य की तरह हैं। लोग पूछते हैं कि क्या हम एक ही परिवार से हैं? मैं कहता हूँ, मेरा उनसे खून का रिश्ता तो नहीं किन्तु आत्मा एवं संस्कार का संबंध अवश्य है।

श्री भंवरमल जी की सहृदयता और उनका सौजन्य उनके सौम्य सस्मित चेहरे को सदैव सुशोभित करते हैं। एक संयम, विनय और शालीनता का सुसंस्कृत समन्वय है उनके व्यक्तित्व में। बोलते कम हैं किन्तु नपातुला। एक मृदुता है उनकी बातचीत में और साफगोई भी। बहुत भरोसे का व्यक्तित्व है उनका, जिसमें भलमनसाहत मूर्तिमंत होती है। एक सदाशयी सज्जन की सम्मोहक छवि उनका नाम लेते ही मानस-पटल पर उभर आती है।

हम भारतीयों में इतिहास की प्रतीति और अनुभूति कम है। शायद इसलिए कि हमारे लिए काल निरवधि है और सब व्यक्ति विराट लीलामय चैतन्य के अंश हैं। हमारा मिजाज दस्तावेजी नहीं है। कालक्रम के प्रति सजगता और तथ्यात्मकता का स्वभाव नहीं है हमारा। किन्तु यदि अनुसंधान की दृष्टि से हम अध्ययन करें तो श्री भँवरमल जी के जीवन और चिन्तन को हमारी आधुनिक राष्ट्रीयता, सामाजिकता और रचनात्मकता के उन्मेष का श्रेष्ठ प्रतिनिधि पाएंगे। भँवरमल जी किसी राजनैतिक दल,

एक भी [illegible]

धर्म, सम्प्रदाय या गुट के नेता नहीं बने, संसद और विधान-सभा के सदस्य निर्वाचित नहीं हुए, मंत्री या मुख्यमंत्री नहीं बने, किन्तु फिर भी वे अपने उन साथी-सहयोगियों से कहीं अधिक हमारी धवल-उज्जवल राष्ट्रीयता की उत्कृष्टता के परिचायक हैं। नेतागिरी के रोग से ग्रस्त एवं दलबदल की अवसरवादी जलवायु की पंकिल मानसिकता से घिरे हुए स्वयंभू सफेदपोश नेताओं से उनकी तुलना नहीं की जा सकती। उन्होंने समाज को अपना योगदान देने में अगुआई की और प्रतिदान मांगने वालों की कतार में वे कभी खड़े नहीं हुए। सामाजिक और रचनात्मक कार्यकर्त्ता के निरहंकारी आत्म-सम्मान के प्रतीक हैं वे।

भँवरमलजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होंने उस प्रतिभा का बहुत संतुलित, सापेक्ष और बहुमुखी वितरण किया। इस सामंजस्य से जिस व्यक्तित्व और कृतित्व का सृजन हुआ और जिसे हम भँवरमल सिंघी के नाम से जानते हैं वह यदि किसी एक क्षेत्र को पकड़ लेता और अपने एकान्त संकल्प और पराक्रम के लिए उस क्षेत्र को ही चुनता तो उसमें अद्वितीय वरिष्ठता प्राप्त कर सकता था। भँवरमल जी के व्यक्तित्व में जैसा सम्मोहन है वैसा ही जादू उनकी लेखनी में भी है। वे एक श्रेष्ठ गद्यलेखक और साहित्यकार हो सकते थे। वे व्यवसाय-कुशल हैं और यदि औद्योगिक उपक्रम और धनार्जन में एक-जुट होकर लग जाते तो व्यापार-वाणिज्य-वित्त-उद्योग में भी पहली पंक्ति का वर्चस्व प्राप्त कर सकते थे। रचनात्मक या गांधीवादी कार्यक्रम में लगे रहते तो समादरणीय श्री सिद्धराज ढड्ढा की भांति एक समर्पित व्यक्तित्व के मानक उदाहरण बन सकते थे। राजनीति में लगे रहते तो भँवरमल जी निश्चय ही यशस्वी मंत्री होते और अपने कई समकक्ष सहयोगियों से अधिक योग्य और चरित्रवान। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति में चेतना का एक प्रवाह होता है और उस चेतना का अपना क्षितिज होता है। भँवरमल जी सिंघी यदि साहित्यकार, उद्योगपति, रचनात्मक कार्यकर्त्ता या राजनेता हुए होते तो उस क्षेत्र में तो उनकी वरिष्ठता बहुत अधिक होती, किन्तु समाज एक अप्रतिम, अद्वितीय, शालीन, संस्कारी, संतुलित और बहुआयामी सामंजस्य से शायद वंचित हो जाता। उन्होंने वस्तुतः भ्रमर की तरह अनेक विधाओं और गतिविधियों को चुन-चुन कर जीवन का मकरंद बांटा।

श्री भँवरमल सिंघी एक धीर-गम्भीर व्यक्ति हैं। एक सहज प्रकाश है जो उनके चेहरे पर, उनकी आंखों की चमक में, उनकी मधुर मुस्कान में अठखेलियां करता है और जो सीधे आपके हृदय तक पहुंच जाता है। एक सच्चाई, ईमानदारी और सहज अच्छाई का समागम है जो अपने उदाहरण से आज की आपाधापी के स्वच्छन्द प्रलाप में भी हमारी मनुष्यता की परम्पराओं के प्रति हमें आश्वस्त करता है। आज हमारे समाज में जिन गुणों का उत्तरोत्तर क्षय हो रहा है और जो मूल्य अमूल्य हैं, उनके पुनर्स्थापन के लिए श्री भँवरमल सिंघी का जीवन, उनका व्यक्तित्व और कृतित्व एक कीर्तिमान है, एक प्रेरणास्रोत है, एक बुलावा है और एक उपालंभ भी।

क्रांतिकारी कार्यकर्त्ता

विजय सिंह नाहर

स्वतंत्रता सेनानी, पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व उप-मुख्य मंत्री

महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत की आजादी की लड़ाई ने संसार में एक अभिनव आदर्श उपस्थित किया था : वह आदर्श था निष्ठा का, त्याग का, बलिदान का, अहिंसा का। और इससे अनुप्राणित होकर सारे देश में हजारों कार्यकर्त्ताओं का दल तैयार हुआ। श्री भँवरमल सिंघी का कार्यक्षेत्र कलकत्ता ही रहा एवं वे उन इने गिने कार्यकर्त्ताओं में हैं जिन्होंने देश-समाज के लिये त्यागमय जीवन को स्वीकार किया एवं विचार-क्रांति को अपनी तेजस्वी वाणी एवं लेखनी से समाज में फैलाया। तरुण जैन के सम्पादन काल में धार्मिक अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों एव बहनों पर होने वाले सामाजिक अत्याचार का उन्होंने डट कर मुकाबला किया। अपने जीवन को अपनी वाणी के अनुरूप ढालकर वे समाज की, नई पीढ़ी की आवाज बन गये। वे पुरानी पीढ़ी के प्रिय एवं नई पीढ़ी के मुखपात्र हो गये थे। साहित्य के क्षेत्र में भी उनका अनुदान स्मरणीय रहेगा। आजादी की लड़ाई में जेल यात्रा की। सुशीला जी से विवाह कर समाज में विधवा और अन्तरजातीय विवाह का आदर्श उपस्थित किया एवं शिक्षायतन जैसी विराट शिक्षा संस्था का सफल संचालन किया। परन्तु सिंघी जी को सामाजिक धार्मिक मान्यताओं में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वालों मे ज्यादा याद किया जायगा।

हमारे साथ उनका लम्बा एवं घना सम्बन्ध रहा है—ओसवाल नवयुवक एवं तरुण जैन के सपादन काल मे एव उसके बाद बहुत क्षेत्रों में वे हमारे साथ रहे। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में हम एवं सिंघी जी जेल गये। जेल में ही उन्होंने एम० ए० की परीक्षा दी एव बगला भाषा सीखी।

सामाजिक आन्दोलनों के दिनों में बाल-दीक्षा का प्रबल विरोध उन्होंने किया। जैन भवन की सभा में तो पुराणपंथी लोगों ने लाठियां ही चला दीं। सिंघी जी को काफी चोट लगी।

हमें बहुत खुशी है—उनके विचारों का, जीवन का अभिनन्दन हो रहा है।

एक निष्काम कर्मयोगी

विश्वनाथ उपाध्याय

घनिष्ठ मित्र, भूतपूर्व विधायक, असम

जिस समय मुझे आदरणीय भाई भंवरमल जी सिंघी को "अभिनन्दन-ग्रन्थ" भेंट करने की योजना के सम्बन्ध में प्रतिभा बहन का पत्र प्राप्त हुआ, उस समय मैं कुछ क्षणों के लिये मौन एवं विचारमग्न हो गया और पत्र मेरे दोनों हाथों में लटका सा

लटका ही रह गया। कारण, उस समय मुझे हर्ष एवं विषाद दोनों की अनुभूति हुयी थी। मेरी पत्नी जो मेरे सामने चाय का प्याला रख रही थी जिज्ञासा भरी दृष्टि से मेरी तरफ देखने लग गयी थी। उसे इस बात की आशंका हो गयी थी कि सम्भवतः पत्र में कुछ अशुभ समाचार है, अतः मैं चिन्तित हो उठा हूं। जब मैंने स्थिति का स्पष्टीकरण किया तो वह हंसने लगी।

सिंघीजी को एक "अभिनन्दन ग्रन्थ" भेंट करने के सम्बन्ध में मैं इधर कुछ महीनों से गम्भीरतापूर्वक सोच रहा था। जब मैंने देखा कि स्वाधीनता-संग्राम, समाज-सेवा, शिक्षा-प्रसार तथा अन्य रचनात्मक कार्यों में जिन लोगों का सक्रिय सहयोग एवं अवदान रहा है, उनमें से अधिकांश को "अभिनन्दन-ग्रन्थ" भेंट किये जा चुके हैं तब मैंने सोचा कि हमारे लिये भी यह उचित है कि हम भी उनके प्रति अपनी स्नेह-श्रद्धा अर्पित करें और एक "अभिनन्दन-ग्रंथ" भेंट कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें। सिंघी जी की तरफ से इस सम्बन्ध में तो कोई संकेत मिलने की आशा थी ही नहीं। कारण, वे आत्म-प्रचार से बहुत दूर रहते हैं। मैं बहुत से ऐसे लोगों को जानता हूं जो अपनी तरफ से अर्थ-व्यय करके अपने लिये स्वागत-द्वार बनवाते हैं, अपनी प्रशस्ति करवाते हैं तथा "अभिनन्दन-ग्रंथ" भेंट करवाते हैं।

मैंने अपनी योजना कुछ मित्रों के सामने रखी और जनवरी में दिल्ली के मार्ग में जब मैं कलकत्ता तथा वाराणसी गया था तब श्रीमोहनलाल जी गुप्त, चिरंजीव शिशिर तथा सौभाग्यवती सुस्मिता से भी इसकी चर्चा की थी। सभी ने मेरे प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया था। बाद में मुझे जब इस बात का पता चला कि हाल ही में आदरणीय श्री ढड्ढा तथा श्री विजय सिंहजी नाहर को "अभिनंदन-ग्रंथ" भेंट किये गये हैं तब मेरी इच्छा और बलवती हुई। और मैंने शीघ्र ही इस दिशा में ठोस कदम उठाकर अपनी योजना को कार्यरूप में परिणत करने का निश्चय किया था।

उक्त पत्र द्वारा यह सूचना पाकर कि आगामी ९ अगस्त १९८४ को सिंघीजी को "अभिनंदन-ग्रंथ" भेंट करने के लिये योजना बनाकर कार्यारम्भ हो गया है तब जहाँ मुझे हर्ष हुआ वहीं विषाद भी हुआ। कारण, मैं सोचता ही रह गया था और इस दिशा में कदम नहीं उठा सका था। इसका विशेष कारण मेरे भतीजे की अस्वस्थता थी जिसकी चिकित्सा में मैं बहुत व्यस्त था और जिसका जनवरी में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली में स्वर्गवास हो गया।

प्रथम परिचय

सन् १९४० में हाईस्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद मैं किसी नौकरी की तलाश में था। वैसे तो मुझे फौज अथवा चाय बगान में नौकरी मिल रही थी, पर ये दोनों क्षेत्र मेरे मन के अनुकूल नहीं थे। मैं कुछ ऐसे काम की तलाश में था जहाँ मुझे स्वतंत्र वातावरण, देश-सेवा तथा समाज-सेवा का सुअवसर मिल सके। विशेषकर राष्ट्र-भाषा के प्रचार कार्य के प्रति मेरा आकर्षण था। अतः मैंने असम राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति के तत्कालीन संचालक श्री यमुना प्रसाद जी श्रीवास्तव को पत्र लिखकर राष्ट्र-भाषा प्रचार कार्य में लगने की इच्छा व्यक्त की पर उनकी तरफ से मुझे निराशा ही मिली।

कुछ दिनों पश्चात् मैंने एक मित्र के परामर्श से कलकत्ते के सुप्रसिद्ध समाज सेवी तथा राष्ट्र-भाषा प्रेमी स्वर्गीय बसन्तलाल जी मुरारका के नाम एक पत्र लिखा और उस समय मेरे आनंद की सीमा न रही जब मुझे उक्त पत्र का उत्तर "पूर्व भारत राष्ट्र भाषा प्रचार सभा" के मंत्री के रूप में "भँवरमल सिंघी" नामक एक अपरिचित व्यक्ति के हस्ताक्षर से मिला जो अत्यंत उत्साहवर्द्धक था। उसमें समय आने पर मेरे लिये एक उचित व्यवस्था का आश्वासन था। मैंने उनके दूसरे पत्र की प्रतीक्षा न कर शीघ्र ही कलकत्ते का कार्यक्रम बनाने का निश्चय किया और फरवरी १९४२ के अंतिम सप्ताह में मैं उनसे मिला। प्रथम साक्षात्कार में ही मैं उनकी स्पष्टवादिता, सहानुभूतिशीलता तथा उनके आकर्षक व्यक्तित्व से काफी प्रभावित हुआ।

पारिवारिक सम्बन्ध

मेरे अनेक मित्रों को इस बात का बहुत बड़ा आश्चर्य है कि एक राजस्थानी से मेरा परिवार-सा सम्बन्ध कैसे स्थापित हो गया। यह बात सच है कि सिंघी जी से मुझे बड़े भाई का स्नेह मिला है। उनके हृदय में जितना स्थान रतनचंद एवं पदमचंद के लिये है उससे कम मेरे लिये नहीं है।

जिस समय मैं उनसे पहली बार मिला था उस समय वे "बंगाल जूट डीलर्स एसोसिएशन" तथा "काशीपुर जूट सेलर्स एसोसिएशन" के मंत्री के रूप में काम कर रहे थे। राष्ट्र भाषा प्रचार का कार्य जो गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का एक अंग था उनका अवैतनिक कार्य था। मुझसे बातचीत हो जाने के बाद उन्होंने मुझे अपने सहायक के रूप में रखने का निश्चय किया। मैं "बंगाल जूट डीलर्स एसोसिएशन", "काशीपुर जूट सेलर्स एसोसिएशन" तथा "राष्ट्र-भाषा-प्रचार" के कार्यों में उनकी सहायता करने लगा। उन दिनों वे युग्म-सम्पादक के रूप में "तरुण जैन" नामक पत्रिका का सम्पादन भी कर रहे थे। उसमें भी मैं उनकी सहायता करता था। कभी-कभी मैं "तरुण जैन" के लिये गुजराती पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का हिन्दी में अनुवाद तथा अपनी कवितायें भी "तरुण जैन" के लिये लिखता था। इसके अतिरिक्त मैं उनके व्यक्तिगत तथा राजनैतिक कार्यों में भी उनकी सहायता करता था। इस प्रकार हम दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ होता गया और मैं उनका विश्वास-पात्र बन गया।

इसी बीच स्वाधीनता-आन्दोलन में जब वे बन्दी बनाए गये तब मैं उनसे मिलने के लिये पुलिस-कार्यालय गया और वहां पर उन्होंने अपने तकिया में रखे गये कुछ सामानों को नष्ट करने का संकेत दिया था। जब मैं ऊपर की कोठरी में गया और तकिया को खोला तो उसमें मुझे डाइनामाइट तथा बिजली के तार काटने वाले प्लायर्स मिले। डाइनामाइट कितना भयंकर पदार्थ है इसकी जानकारी मुझे उस समय नहीं थी। इन वस्तुओं को मैंने एक देवालय में विग्रह के पीछे रखवा दिया था। बाद में मैं जब इलाहाबाद में पकड़ा गया तब श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी के द्वारा श्रीमती अरुणा आसफ अली को, जो उन दिनों कलकत्ते में थीं और कभी-कभी मेरे निवास पर आया करती थीं तथा स्वर्गीय सीताराम जी सेकसरिया को सवाद भेजकर उक्त वस्तुओं को नष्ट करवा दिया। आज इस बात की कल्पना मात्र से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं किन्तु देवालय

में रखे गये डाइनामाइट का सम्पर्क कहीं अग्नि से हो गया होता तो देवालय के साथ-साथ आस-पास के मकान भी ध्वस्त हो गये होते। उसी सिलसिले में उनके निवास की ऊपर की कोठरी में निवास की चीजों को संभालते हुए मैं एक और परेशानी में पड़ा। अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त लोहे की आलमारी में मुझे उनकी पहली पत्नी के आभूषण तथा हस्ताक्षर किये हुए चेक-बुक के कई पृष्ठ मिले। मैंने उन आभूषणों तथा आलमारी की अन्य सभी वस्तुओं की एक सूची बनायी और चेक-बुक के हस्ताक्षरित पृष्ठों को नष्ट किया। बाद में मैंने उनके परामर्श से सारे आभूषण उनके बहनोई श्री उगम सिंह जी रामपुरिया के सुपुर्द कर दिये।

एक जिम्मेदारी और भी मुझे निभानी पड़ी। सिंघी जी के परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। अतः उनके वृद्ध माता-पिता को मासिक खर्च के लिये मुझे प्रति माह कुछ रकम भी भेजनी पड़ती थी। इस प्रकार उनके कार्यालय तथा परिवार का सारा उत्तरदायित्व मेरे ऊपर आ पड़ा था। और मैंने भी यथाशक्ति उसे निभाने का प्रयत्न किया। उन दिनों चिरंजीव श्रीकांत छोटा था और अपने दादा जी के साथ रहा करता था। कभी-कभी उसकी भी खोज-खबर रखनी पड़ती थी। एक बार उसे लेकर मुझे वाराणसी भी जाना पड़ा था। सुशीला बहन के इस परिवार में सम्मिलित होने के बाद उनका भी स्नेह मुझे मिला है। सौभाग्यवती अन्नू और अंजू तो मेरी गोद में खेली हैं। यही कारण है कि मैं आज उनके बहुत निकट हूं और वे मुझे अपने परिवार के एक सदस्य के रूप में ही मानते हैं।

बहुमुखी प्रतिभा

सिंघी जी को भेंट किये जाने वाले "अभिनन्दन-ग्रन्थ" के लिये मुझे संस्मरण-लेख भेजने का अनुरोध करते हुये प्रतिभा बहन ने लिखा कि उनके द्वारा राष्ट्र-भाषा-प्रचार के क्षेत्र में किये गये कार्यों की सबसे पूर्ण जानकारी मुझे है और उनका विवरण देते हुए मैं अपना संस्मरण लिख भेजूं। मुझे तो उनके अन्य सार्वजनिक कार्यों की भी जानकारी है। क्या राष्ट्र-भाषा-प्रचार कार्य तक ही अपना संस्मरण-लेख सीमित रखना उनके प्रति अन्याय नहीं होगा? वे तो बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उनका जितना अवदान राष्ट्र भाषा प्रचार के क्षेत्र में है उतना ही अन्य क्षेत्रों में भी है। यदि उनका विवरण संक्षेप में भी दिया जाय तो एक पुस्तिका तैयार हो जायेगी। वास्तव में वे स्वयं में अनेक संस्थाओं के पुंज हैं।

मैंने ऊपर लिखा है कि उन दिनों वे "पूर्व भारत राष्ट्र भाषा प्रचार सभा" के अवैतनिक मंत्री के रूप में काम कर रहे थे। असम, बंगाल एवं ओड़ीसा में "राष्ट्र-भाषा प्रचार" के लिये जो समिति बनी थी उसके अध्यक्ष श्री भागीरथ जी कानोड़िया थे। सदस्यों में इन तीनों राज्यों के प्रमुख लोग थे। जैसे असम से गोपीनाथ बरदलै, विरंचि कुमार बरुआ तथा अरुण कुमार चन्दा, बंगाल से प्रफुल्ल चन्द्र घोष, सुनीति कुमार चटर्जी, प्रियरंजन सेन, प्रभुदयाल जी हिम्मतसिंहका, सीताराम जी सेकसरिया, बसन्तलाल जी मुरारका, रामकुमार जी भुवालका आदि तथा ओड़ीसा से श्री विचित्रानन्द जी दास। असम में कमलनारायण देव तथा ओड़ीसा में अनुसूया प्रसाद जी पाठक संचालक का कार्यभार संभाल रहे थे और बंगाल के कार्य

में भी रेवतीरंजन सिन्हा सक्रिय सहयोग दे रहे थे। सिंघी जी इन तीनों राज्यों का बीच-बीच में भ्रमण करते और राष्ट्र-भाषा प्रचार कार्य तथा राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित परीक्षाओं की व्यवस्था करते थे। जितने प्रचारक इन तीनों राज्यों में सेवारत थे नियमित रूप से उनको पारिश्रमिक भेजना पड़ता था। बजट में राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, वर्धा के अनुदान की रकम के अतिरिक्त जो घाटा होता था उसकी पूर्ति पूर्व भारत राष्ट्र-भाषा प्रचार सभा के सदस्यों तथा अन्य राष्ट्र-भाषा प्रेमियों के चन्दे से होती थी। जितने लोग प्रचार कार्य में लगे थे एक परिवार के सदस्य के रूप में कार्य करते थे। यह सिंघी जी की व्यवहार कुशलता का परिचायक था।

हाँ, जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है सिंघी जी की प्रतिभा बहुमुखी है। शिक्षा समाप्ति के बाद गद्य काव्य की रचना कर वे एक साहित्यकार के रूप में भी सामने आये। समाज की वर्तमान स्थिति से उनका हृदय व्यथित था। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम के अतिरिक्त समय-समय पर वे सभाओं में भी अपने विचार व्यक्त कर समाज में प्रचलित अंधविश्वासों तथा कुरीतियों की कटु आलोचना करते थे। पर्दा-प्रथा, दहेज तथा मृत्यु-भोज आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध उन्होंने अपने अन्य सहकर्मियों के साथ जेहाद छेड़ रखा था। इसका परिणाम यह था कि वे समाज के रूढ़िवादियों के कोप-भाजन भी हो गए थे। बाद में मेरे कलकत्ता छोड़ने के बाद एकबार तो बड़ाबाजार की एक सभा में उन पर प्राणघातक आक्रमण भी किया गया जिसमें संयोग से ही उनकी प्राण-रक्षा हुई।

धर्म के क्षेत्र में भी उनके विचार अत्यन्त क्रान्तिकारी हैं, धर्म के ठेकेदारों के प्रति उनके मन में बहुत बड़ा रोष है। वे समय-समय पर उनकी तीव्र आलोचना करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उनके भी कोप भाजन हुए हैं।

उनकी कथनी एवं करनी में कोई अन्तर नहीं है। रूढ़िवादियों एवं कट्टर-पंथियों की आलोचना की तनिक भी परवाह न कर उन्होंने सुशीला बहन के साथ परिणय-सूत्र में आबद्ध होकर विधवा-विवाह का पथ-प्रदर्शन किया तथा प्रादेशिकता से ऊपर उठकर अपनी सन्तान का वैवाहिक संबंध बंगाली परिवार से किया।

जिन दिनों मैं कलकत्ते में था क्लाइव स्ट्रीट तथा बड़ाबाजार में जिधर देखो पगड़ी, धोती, कुर्ता तथा चादर ही दिखाई पड़ती थी, पर आज उनका स्थान कोट, टाई तथा पतलून ने ले लिया है। उन दिनों मारवाड़ी समाज ने शिक्षा के क्षेत्र में इतनी प्रगति नहीं की थी पर आज तो स्थिति एकदम बदल गयी है और समाज में कल्पनातीत परिवर्तन हुआ है। आज जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ मारवाड़ी युवक एवं युवतियाँ अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन न कर रहे हों। आज का मारवाड़ी युवक अपने उद्योग एवं व्यवसाय के संचालन के लिये दूसरों पर आश्रित नहीं है। शिक्षा-प्रसार के क्षेत्र में सिंघी जी का जो अवदान है उसका विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। जिन शिक्षण-संस्थाओं से उनका संबंध है उनका काम वे अस्वस्थ अवस्था में भी निष्ठा पूर्वक करते रहते हैं।

[illegible]

इसके अतिरिक्त परिवार नियोजन के क्षेत्र में भी उनका बहुत बड़ा अवदान है।

निष्काम कर्मयोगी

अर्थोपार्जन अथवा पद-प्राप्ति के प्रति सिंघी जी की आसक्ति कभी नहीं रही। जिन दिनों वे "बंगाल जूट डीलर्स एसोसियेशन" तथा "काशीपुर जूट सेलर्स एसोसियेशन" के मंत्री के रूप काम कर रहे थे उन दिनों दोनों संस्थाओं के सदस्यों से, जिसमें प्राय: सभी मारवाड़ी थे, उनका बहुत अच्छा सम्बन्ध था। वे किसी के साथ भी अपनी पांती रखकर कार्य कर सकते थे। पर इस दिशा में उन्होंने कभी भी रुचि नहीं दिखायी। उन दिनों के कई मुनीमों के परिवार आज के लखपती ही नहीं वरन् करोड़पती भी हो गए हैं।

गत दिनांक ९-१-८४ को मैं जब उनसे मिला तब उन्होंने हँसते हुए कहा :— "विश्वनाथ जी, मैंने सोचा भी नहीं था कि मैं लखपती हो जाऊँगा।" उनका अभिप्राय अपने मकान की चहारदीवारी के भीतर निर्मित आवासीय फ्लैटों से था जिनका मूल्यांकन लाखों में है। उनकी यह उपलब्धि सर्वथा स्व-अर्जित है।

ऐसे निष्ठावान निष्काम कर्मयोगी को मेरा अभिनंदन।

विद्रोही आत्मा

नन्दकिशोर जालान
सभापति, अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन

"टुन्डला पहुंचते-पहुंचते मेरी आत्मा की आवाज ने मुझे दहला दिया, झकझोर डाला—तेरा घोर पतन हो चुका है, तू अब किसी काम का नहीं।"—भाई भँवरमलजी के जीवन में घटित यह घटना उनके सन् १९४२ में जयपुर से कलकत्ता की रेल-यात्रा के बीच की है। उनकी आत्मा से गुंजरित हुई उस क्षण की वह प्रतिध्वनि, मेरी नजर में उनकी विद्रोही आत्मा के सजग होने का और उनके जीवन में विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों की दृढ़ नींव पड़ने का अविस्मरणीय पल था। हर व्यक्ति के जीवन में कुछेक ऐसे पल होते हैं जो उस व्यक्ति के जीवन की 'नियति' बन जाते हैं, यद्यपि उन्हें समझ पाना या सहेज लेना सरल नहीं होता। लेकिन सिंघी जी ने उस पल की अन्तरात्मा की आवाज को सहेज लिया था। और तब से अब तक, जब वे ७० वर्ष के हैं, उस दिन जन्मी उनकी विद्रोही आत्मा ने उनके जीवन-पथ को आलोकित किया है और समाज व देश को एक ऐसा नर-पुंगव दिया है जो समाज की अबाध धारा को ऐसे मोड़ देने में सहायक हुआ है जिससे नव-निर्माण की कई सीढ़ियों की रचना हुई है और जिससे समाज का एक नया रूप उभरने में मदद मिली है।

प्रश्न उठता है कि उपरोक्त आत्मा की आवाज और विद्रोही आत्मा के मजग होने के पीछे कौन सा राज था। १९३९ का एक दिन वह था जिस दिन उन्होंने एवं उनके जैसे अन्य युवकों ने गांधीजी के सामने प्रतिज्ञा की थी—पत्नी-वियोग की स्थिति में विधवा से ही पुनर्विवाह करेंगे। दो वर्ष बाद सचमुच पत्नी-वियोग होने के और विधवा विवाह के कई प्रयत्न निष्फल होने के उपरान्त जब स्वर्गीय जमनालालजी बजाज सरीखे कट्टर समाज सुधारक ने भी उन्हें सलाह दी कि—तुम्हारी तपस्या पूरी हुई और तुम्हें कुंवारी लड़की से शादी कर लेनी चाहिए, एवं जब जोधपुर की मैट्रिक पास एवं कवयित्री लड़की से शादी की स्वीकृति देकर भाई भँवरमल जी कलकत्ता आ रहे थे तब रास्ते में अन्तरात्मा की आवाज उद्घोषित होनेवाला दिन यह था। वैसे तो भाई भँवरमल जी ने १५ वर्ष की आयु में स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की जीवनी एवं उनके विचारों का आद्योपान्त अध्ययन किया था लेकिन अध्ययन तो हम इधर-उधर बहुत कुछ करते हैं और उससे हरेक का जीवन प्रभावित हो, ऐसा होता नहीं। जब इस प्रकार का अध्ययन किसी क्षण में मानस पर छा जाता है और उस जीवन को अपने साथ जोड़ लेता है, मनुष्य के जीवन में अध्ययन की मानस पर छाप का सबसे महत्वपूर्ण क्षण वही होता है।

अन्तरात्मा की आवाज के कारण इन्होंने उपरोक्त विवाह के लिए की 'हां' को तत्काल 'ना' में बदल दिया और सन् १९४६ में स्वर्गीय सीताराम जी सेकसरिया के प्रयत्न के फलस्वरूप इनका पुनर्विवाह कुछ समय पहले ही विधवा हुई श्रीमती सुशीला जैन के साथ हुआ। यह उल्लेखनीय है कि तब तक उंगलियों पर गिने जाने जितने विधवा विवाह हुए थे। स्थिति यह थी कि सन् १९२६ में नागरमल लोहिया के विधवा विवाह की पहल करवाने के फलस्वरूप समाज के तत्कालीन पंचों ने सीताराम जी सेकसरिया, भागीरथ जी कानोड़िया, बसन्तलाल जी मुरारका, रामकुमार जी भुवालका, और श्री प्रभुदयाल जी हिम्मतसिंहका आदि ११ व्यक्तियों को समाज से बहिष्कृत कर दिया था। समाज में, विशेषकर ओसवाल समाज में जो अन्यों की अपेक्षा सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में कहीं अधिक पिछड़ा हुआ था, विधवा विवाह काफी हेय दृष्टि से देखा जाता था।

सिंघी जी के पुनर्विवाह के समय उनकी मां ने कहलवाया था—"जीवनभर तेरा मुंह नहीं देखूंगी"। लेकिन जब उनकी पत्नी सुशीला जी उनके पास पहुंची तब यह कहते हुए कि "या तो आपण जिसी ही है" उनकी मां ने उन्हें गले लगा लिया था। सिंघी जी का तत्कालीन निवास स्थान—३४-ए, रत्नू सरकार लेन, विधवा विवाह के आयोजन एवं आशीर्वादों का केन्द्र बन गया था। कम से कम २० विधवा विवाह इनके संरक्षण एव देखरेख में सम्पन्न हुए। मुझे स्वर्गीय सीताराम जी सेकसरिया के जीवन की एक घटना याद आ रही है—दौरे पर एक जगह एक बच्ची ने आकर उनसे कहा कि उसकी दादी, उन्हें बुला रही है और उन्होंने भीतर से लौटकर साथियों को बताया कि बच्ची की दादी ने, जो मारवाड़ी बालिका विद्यालय की छात्रा रह चुकी थी, उनका पुनः आशीर्वाद लेने के लिए उन्हें बुलाया था। मैंने स्वयं सिंघी जी को उनके संरक्षण में हुए विधवा विवाह के पत्रों से किसी भी निर्णय से निकलते हुए

देखा है और यह महसूस किया है कि उजड़ी हुई गृहस्थी को पुनः बसाने के निमित्त होने के कारण कितने आशीर्वाद एवं कितनी शुभकामनाएं कितनी स्त्रियों ने इनकी झोली में डाली होंगी।

समाज में चलाये गये पर्दा आन्दोलन के प्राण-स्तम्भ के रूप में भाई भँवरमलजी का नाम आता है। स्वर्गीय वसंतलाल जी मुरारका एवं अन्य समाज सुधारकों के साथ मारवाड़ी कार्यकर्त्ता सम्मेलन के मार्फत यह आवाज सबसे पहले कलकत्ता में, फिर उड़ीसा में उठायी गयी थी। महात्मा गाँधी एवं जमनालालजी बजाज के प्रयत्नों से मध्य भारत के कुछ अंचलों में पर्दा प्रथा पर सन् १९१८ से ही प्रहार प्रारम्भ हो गये थे और स्वतंत्रता संग्राम से दृश्य या अदृश्य रूप से जुड़ी महिलाओं ने पर्दे का बहिष्कार कर दिया था। स्वर्गीय इन्दुमती जी गोयनका तथा उनके साथ काम करने वाली महिलाएं जब कलकत्ता में असहयोग आन्दोलन के लिए निकली थीं तब उनके मुंह पर पर्दा नहीं था। फिर भी समाज की ९८% स्त्रियां पर्दे में जकड़ी हुई थीं। सारे प्रयत्नों के बावजूद रूढ़ियों की विषमता अपने लंबे हाथ पाँव से कैसे हमें जकड़े रहती हैं, उसका अन्दाज मैंने उड़ीसा के एक छोटे शहर में सन् १९७५ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से निकली हुई बी० ए० पास वधू को पर्दा प्रथा के शिकार के रूप में देखा था। पर्दा प्रथा की सबसे बड़ी विषमता या हास्यास्पदता यह थी कि वह सर्वाधिक अपने घर में या सगे सम्बन्धियों के सामने ही होता था। भाई भँवरमलजी जब स्वर्गीय चौथमल जी सराफ के साथ सन् १९४० के बाद आसाम के दौरे पर गये तब पर्दा प्रथा की इस विषमता ने उनको बहुत कचोटा और इन्होंने पर्दा प्रथा के विरुद्ध धर्मयुद्ध (Crusade) चलाने की प्रतिज्ञा की। सुधारवादी कार्यकर्त्ताओं के नेतृत्व में सन् १९४१ से १९४५ तक मारवाड़ी कार्यकर्त्ता सम्मेलन के उड़ीसा में चार अधिवेशन हुए और पर्दा प्रथा के विरुद्ध आवाजें उठाने का सर्वप्रथम अवसर इन सभाओं में सुलभ हुआ। लेकिन पर्दा प्रथा के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन करने का मौका तब आया जब स्वर्गीय बृजलालजी बियाणी अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के बम्बई अधिवेशन में सन् १९४७ में सभापति बने और उन्होंने 'पर्दा' तथा 'दहेज' के प्रश्नों को सम्मेलन के कार्यों की परिधि में जुड़वाया। उसके बाद भाई भँवरमल जी के नेतृत्व में और स्वर्गीय वसन्तलाल जी मुरारका के अतुलनीय सहयोग से समाज के नवयुवक व नवयुवतियों का एक ऐसा दल गठित हुआ जिसने स्वयं पर्दा प्रथा का त्याग किया, पर्दे से होनेवाले विवाहों में शरीक न होने की प्रतिज्ञाएं कीं, घर-घर जाकर इसके विरुद्ध आवाज गुंजाई और पर्दे से होनेवाले विवाह स्थलों पर जाकर जोरशोर से प्रतिवादी प्रदर्शन किए। स्वर्गीय सीताराम जी सेकसरिया एवं अन्य कई सामाजिक कार्यकर्त्ता शनैः शनैः इस आन्दोलन के साथ जुड़े। पर्दा-प्रथा के विरुद्ध जो शिखा प्रज्ज्वलित की गई थी, वह तीव्र से तीव्रतर होती गई। यद्यपि मेरा विवाह सन् १९४५ में बगैर पर्दे के तथा अन्य कई सुधारों के साथ हुआ था, मैं जब सन् १९४७ में अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के साथ जुड़ा और सन् १९५० में इसका प्रधानमंत्री चुना गया तब मैंने इस प्रदर्शनकारियों के दल के एक सदस्य के नाते इन्हें बहुत नजदीक से देखा। हमने

आन्दोलन तो अनेकानेक देखे हैं लेकिन सामाजिक अन्दोलनों के पीछे मन की दृढ़ता, मानस की स्वच्छता एवं गांधी, बुद्ध, ईसा की मान्यता को निभाने की सबसे वड़ी आवश्यकता होती है, उसका अभाव अधिकतर आंदोलनकारियों में दिखता है। लेकिन भाई भँवरमल जी के जीवन में इस अभाव को कभी स्थान नहीं मिला और एक वार वनी मान्यताओं एवं निर्मित मानस का परिचय आज तक मिलता रहा है।

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के झण्डे के नीचे चलाये जा रहे पर्दा प्रथा के विरोध के आन्दोलनों का मैं प्रत्यक्षदर्शी हूं। प्रदर्शनकारियों पर गालियाँ पड़ती थीं, कपड़े फाड़ दिये जाते थे, थूका जाता था या कभी-कदाच गुमराह किये गये व्यक्तियों या पुलिस की दो-चार लाठियाँ भी पड़ती थीं। मेरे एक दूरस्थ सम्बन्धी वता रहे थे कि अपने को सनातनधर्मी कहनेवालों ने प्रदर्शनकारियों का विरोध करने और उनको पीटने के लिये कुछ कम-वय के युवकों को तैयार किया था जिन्हें एक लाठी और एक रुपया (आज का मूल्य रु० २५/-) दिया जाता था। दो एक वार प्रदर्शनकारियों का विरोध करने के वाद इनमें से अधिकांश युवकों के मन में तथाकथित सनातन धर्मियों के विरुद्ध ही घृणा पैदा हो गई क्योंकि वे समझ गये कि प्रदर्शनकारी कोई गलत काम नहीं कर रहे हैं। और आज के माहौल में उस दृश्य की कल्पना करना भी असम्भव है जव सम्मेलन की एक जनसभा के ठसाठस भरे सभागृह में स्व० वसन्तलाल जी मुरारका के साथ भाई भँवरमल जी ने मुँह पर घूंघट निकाले वैठी स्त्रियों के सर पर से पीले-पोमचे खींच लिये थे। कहना वहुत आसान है, लेकिन सामाजिक सुधारों के लिये, सामाजिक सत्य को स्थापित करने के लिये उस दिन प्रदर्शित दृढ़ मानस और हिम्मत का प्रदर्शन करने वाले कहाँ और कितने व्यक्ति मिलते हैं। जिनकी ओढ़नियाँ खींची गई थीं उनकी मृदुल मुस्कान ने इनकी रक्षा की, वरना शायद उस दिन इन दोनों के सर फूट जाते।

आन्दोलन करना या आन्दोलनों में भाग लेना एक वात है और सत्यता के साथ जीवन में उनका पालन करना और उसके कारण उत्पन्न हुई सारी कटुताओं को, सारे विष को अमृत के रूप में पी जाना दूसरी वात है। सम्मेलन द्वारा चलाये जा रहे पर्दा आन्दोलन के समय और फिर १९७४ के दहेज एवं दिखावा विरोधी आन्दोलन के समय इस जीवन को जीने का प्रत्यक्ष प्रमाण भाई भँवरमल जी ने दिया था। स्व० रामेश्वर जी नोपानी, जो अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के प्रधानमन्त्री रह चुके थे और सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में अपना वर्चस्व रखते थे और जिनका वरद हस्त हमेशा सिंघी जी पर रहता था, कई विवशताओं के कारण अपने लड़के का विवाह पर्दे में कर रहे थे। स्व० रामेश्वर जी स्वयं पर्दे के पक्षपाती नहीं थे तथापि परिस्थितियों से विवश थे। उस विवाह के समय भी काफी कड़ा प्रदर्शन और विरोध भाई भँवरमल जी के नेतृत्व में हुआ। जिस कानोड़िया परिवार के यहां भाई भँवरमल जी २०-२५ वर्षों से कार्य करते थे, सन् १९७४ के दहेज, दिखावे व प्रदर्शन के विरुद्ध उनके यहां भी प्रदर्शन और विरोध में भाई भँवरमल जी उससे कम सक्रिय नहीं रहे वल्कि अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के

तत्कालीन सभापति के रूप में उस समय चलाये जा रहे इस आंदोलन को आयाम देने और इसका नेतृत्व करने का पूरा जिम्मा इन्हीं पर था। दहेज और दिखावे के विरुद्ध इतना सशक्त आंदोलन शायद पहले कभी नहीं हुआ था।

सामाजिक सुधारकों के सामने विषम परिस्थितियाँ तव आती हैं जव अपने ही घर या निकटतम सगे-सम्वन्धी के घर में मान्यताओं के विरुद्ध कुछ होने के क्षण उपस्थित होते हैं। जो ऐसी परिस्थितियों में खरा उतरता है वही वास्तव में समाज को मोड़ देने में समर्थ होता है। सन् १९५१ में अपने छोटे भाई रतनचन्द के विवाह के लिए जव ये जयपुर पहुंचे (उस समय तक कांगण—जोड़ा वँध गया था) तो पता चला कि लड़की की उम्र कम होने के कारण शारदा कानून भंग होगा। सारे परिवार एवं रिश्तेदारों के कड़े विरोध एवं नाराजगी के वावजूद इन्होंने आगाह कर दिया कि अगर शारदा कानून को भंग करते हुए हुए यह विवाह किया गया तो पुलिस को बुलाकर सवको पकड़वा दूंगा।" यह विवाह रुका और आदर्शों की जीत हुई। कुछ समय वाद लड़की के समुचित आयु प्राप्त करने पर वह विवाह अनुष्ठित हुआ। इसी प्रकार इनके दूसरे भाई पदमचंद ने "सिविल मैरेज" का निर्णय लिया तव भी वहुत वड़ा ववाल उठा था। सिंघीजी तथा स्वर्गीय सीतारामजी सेकसरिया और स्व० मोहनसिंहजी सेंगर के संरक्षण के कारण ही वह विवाह 'सिविल मैरेज' पद्धति के अनुसार अनुष्ठित हो पाया।

समाज में एक नहीं अनेक करुण से करुण विषय हैं जो दूर से देखने से विचारों में उथल-पुथल मचा देते हैं। हृदय के कोर-कोर में एक प्रकार की पीड़ा का जलवा उठाते हैं। धर्म के नाम पर, रीति-रिवाज के नाम पर कई घोर विषमताओं को लोग शोर-शरावे के साथ ही नहीं वल्कि जीवन के आवश्यक अंग के रूप में उल्लास एवं उत्साह से स्वीकारते हैं और बड़े-बड़े सामाजिक आयोजनों के वीच उसपर सामाजिक स्वीकृति की छाप लगाते हैं। ओसवाल समाज में 'वाल-दीक्षा' भी एक इसी प्रकार का अभिशाप है। जिस बच्चे-बच्ची को जीवन की किसी सन्धि का ज्ञान नहीं उसे साधु या साध्वी वना देने की क्रिया को 'विषभरा प्याला पिलाने' की संज्ञा दी जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। श्री प्रभुदास पटवारी ने वाल-दीक्षा के विरोध में एक विल रखा था और जैसा होता आया है, धर्म के कट्टरपंथियों द्वारा उसका घोर प्रतिवाद हो रहा था। सिंघीजी इस विल के कटु समर्थक थे और बाल-दीक्षा को बन्द करवाना चाहते थे। बिल के समर्थन में एक बहुत बड़ी जन-सभा कलकत्ता के जैन भवन में हुई जहाँ कट्टर पंथी भी बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे। कट्टरपंथियों ने उस दिन जवाव-सवाल की वात तक ही अपने को सीमित न रखा, जान लेने-देने पर उतर आये। बिजली की लाइन काट दी और विल के समर्थकों पर प्रहार करना प्रारंभ किया। भाई भँवरमलजी सिंघी के सर पर लोहे की छड़ से प्रहार किया गया जिससे वे बुरी तरह घायल हो गये और मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी के डाक्टर अजित बसु ने उनका अच्छी तरह परीक्षण करने के बाद यही कहा कि "रात निकाल दें तो बचने की आशा बँधेगी।' दूसरे दिन हिन्दी के प्रमुख समाचार पत्र 'विश्वमित्र' में प्रथम पृष्ठ पर प्रमुख हेड लाइन में निकला कि 'श्री भंवरमल सिंघी पर लाठी से कायरतापूर्ण आक्रमण—हालत चिंताजनक'। जीवन

को बड़े से बड़ा खतरा होते हुए भी स्वस्थ होने के बाद धर्म के विरोध न करने की इनकी मां की सलाह का इन्होंने केवल एक ही उत्तर दिया—"धर्म रूढ़ियों के पक्ष में होगा तो मैं अवश्य विरोध करूँगा।" इस उत्तर को इन्होंने आजीवन निभाया है।

सिंघीजी के जीवन में सामाजिक सुधारों की आग एवं सामाजिक संगठन की व्यथा कितनी गहरी पैंठी हुई है, उसका इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि दो-दो बार हृदय-रोग से आक्रान्त होने व अस्वस्थता के बावजूद वे इन आवाजों की गुहार जहां उठाने की आवश्यकता हुई, वहां पहुंचे? १९८२ में पूर्वोत्तर प्रादेशिक मारवाड़ी सम्मेलन के शिलांग अधिवेशन में एवं १९८३ में आन्ध्र प्रादेशिक मारवाड़ी सम्मेलन के गुण्टूर और अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के अखिल भारतीय महिला अधिवेशन पर पटना पहुंचना ऐसे अनेक उदाहरणों में से कुछ हैं। अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन का इतिहास सन् १९३८ से आज तक भाई भँवरमलजी सिंघी के कृतित्व से भरा पड़ा है चाहे वह पुराने समय में कुछ सभापतियों के भाषण लिखने की बात हो या अधिवेशनों में विवादास्पद प्रस्तावों के प्रवर्तक के रूप में हो चाहे वह इसके पाक्षिक पत्र का सम्पादन हो या पर्दा-दहेज का आन्दोलन हो चाहे परिवार नियोजन की बात हो या समाज पर हो रहे आघातों से समाज की रक्षा करने के कृतसंकल्प की बात हो, जब जहाँ इनकी माँग हुई, इन्होंने कभी किनारा नहीं काटा। मैं सम्मेलन से जुड़ा तबसे यानी सन् १९५० से आज तक अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के सात में से छः अखिल भारतवर्षीय अधिवेशनों में मैंने इन्हें गरजते, बरसते एवं नई-नई समस्याएँ व बातें उठाते देखा है और देखा है युवक समाज के हृदय में बसे इनके "प्रियनेता" रूप को। स्थापित मूल्यों के विरुद्ध जब कोई बात उठती या प्रस्ताव आता तो इनका रोल कंचन की तरह उभर कर आता और उसके स्पर्श से, इनके तर्क-संगत प्रभावशाली व कड़कते भाषण से वह विषय इतना सुस्पष्ट व हृदयग्राही हो जाता कि हमेशा भारी बहुमत से स्वीकृत होता। गिनाने लगूँ तो बहुत हो जायेगा, लेकिन सन् १९६१ में कलकत्ता में स्व० गजाधर जी सोमानी की अध्यक्षता में हो रहा अधिवेशन उल्लेखनीय है। पंडाल में ४००० व्यक्ति उपस्थित थे स्वागताध्यक्ष स्व० शान्ति प्रसाद जी जैन ने प्रस्ताव रखा कि सम्मेलन के पदाधिकारी पर्दे के विवाह में भाग नहीं ले सकते। इस प्रस्ताव का विरोध करने के कारण और उनके पक्ष में अनेकानेक महारथियों के समर्थन के कारण जो स्थिति बनी थी, वह आज भी मन पर अंकित है। उस दिन प्रस्ताव के समर्थन में मेरे अलावा भाई भँवरमलजी सिंघी का जो हृदयग्राही भाषण हुआ और जिसकी हर चौथी-पांचवीं पंक्ति पर तालियां पड़ीं, उसे मैं बेमिसाल कहने का हकदार हूँ। इतने प्रभावशाली भाषण का ही प्रतिफल था कि वह प्रस्ताव ९५ प्रतिशत बहुमत से स्वीकृत हुआ था।

इसके पहले सन् १९५४ में, जब देश में किसी ने परिवार नियोजन के बारे में बात तक न की थी, स्व० सेठ गोविन्द दास जी के सभापतित्व में हो रहे अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के बृहत् अधिवेशन में 'परिवार-नियोजन' का प्रस्ताव प्रस्तुत करने, उसकी जोरदार वकालत करने और उसे अत्यधिक बहुमत से पारित कराने का सर्वाधिक श्रेय भाई भँवरमलजी को जाता है। यह बात उस युग की है

जब परिवार नियोजन की बात करना कोकशास्त्र की बात करने का ठप्पा लिये हुए थी, १९६० के बाद की नहीं जब उद्योगपतियों ने उसे स्वीकृति दी या १९७० के बाद की नहीं जब भारत सरकार इसके लिये कटिबद्ध हुई। सम्मेलन के पदाधिकारियों द्वारा विभिन्न प्रदेशों के दौरों में मैंने युवकों को प्रायः सभी जगह सिंघी जी को घेर लेते एवं इनसे परिवार नियोजन की गुत्थियों को समझते-सुलझाते देखा है और उसी का परिणाम है कि देश के अधिकतर भागों में मारवाड़ी समाज भारत सरकार का प्रचार प्रारम्भ होने से बहुत पहले ही परिवार नियोजन को अपने जीवन का अंग बना चुका था।

सम्मेलन द्वारा आयोजित सैकड़ों सभाओं के मंचों पर भाई भँवरमल जी के भाषण अपने-आप में अलग ही होते थे। भाषण दो तरह के होते हैं—(१) भाषण केवल भाषण के लिए एवं (२) मन की व्यथा-कथा और हृदय की ठोस भावनाओं के उद्‌गारों से भरे हुए। पहली किस्म के भाषण हम हर दिन राजनीतिज्ञों से (जो सर्व कलाओं के माहिर माने जाते हैं,) तथा तथाकथित समाज सुधारकों एवं समाज व देशसेवियों से सुनते हैं जो आज जो कुछ मंच पर कहते हैं दूसरे दिन ही उसके ठीक विपरीत आचरण में संलग्न हो जाते हैं फिर भी ऐसे आयोजनों को अपना अन्तहीन आशीर्वाद देते हुए पाये जाते हैं। देश के एक प्रान्त के मुख्य मंत्री सम्मेलन के एक प्रादेशिक अधिवेशन में जोरशोर से समाज सुधार की वकालत कर गये और कुछ समय बाद ही शारदा कानून को भस्मीभूत करते हुए छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियों के विवाह में शामिल हुए और अपने आशीर्वाद से उन्हें अभिषक्त किया। एक दूसरे मुख्य-मंत्री ने जो सारे सुधारों की एवं सादगी की बैतरणी बहा गये थे, अपने यहाँ हुए विवाह में कई फिल्म स्टारों को बुलाया, कश्मीर से फूल मंगवाये तथा लाजवाब तामझाम में कोई कसर नहीं की। दूसरे किस्म के भाषण देनेवाले या बातें करनेवाले लोग तो उंगलियों पर गिनने जितने ही होते हैं क्योंकि वे उसी तरह से अपना जीवन जीते हैं। भाई भँवरमल जी को मैंने इस दूसरी श्रेणी में पाया है और यही कारण रहा है वास्तविक कार्यकर्त्ता श्रद्धा से इनके प्रति नत रहते हैं और बारम्बार जगह-जगह निरन्तर इनकी माँग करते रहते हैं। इनका लेखन भी उतना ही स्पष्ट और विचारों की दृढ़ता का द्योतक रहा है और आने वाले युग की बात के संवाहक के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। उसमें भी मानस की निश्छलता एवं शरीर के रोम-रोम में पैठी मान्यता ही प्रमुख रूप में प्रतिबिम्बित हुई है। यही कारण है कि जब उनके पुत्र एवं पुत्रियों ने अन्तर्जातीय विवाह करने की इनकी स्वीकृति चाही तो इन्हें अपनी मंजूरी देने में जरा भी संकोच नहीं हुआ।

भाई भँवरमल जी कहा करते हैं कि जितने सामाजिक आन्दोलन हुए उनकी सफलता का श्रेय निष्ठावान कार्यकर्ताओं के दल के सहयोग के साथ ही "दैनिक विश्वमित्र" संचालक स्व० मूलचन्द्र जी अग्रवाल को भी है। यह सत्य है कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जनमानस को उद्वेलित करने व पलटने का सबसे बड़ा माध्यम अखबार हो गया था। अपने छोटे-छोटे सार्वजनिक कार्यों के सम्बन्धों में मैं भी जब कभी स्वर्गीय मूलचन्द्रजी के सम्पर्क में आया तो उनकी दूरग्राही दृष्टि तथा समाज

की उन्नति की फिक्र का अहसास किये वगैर नहीं रहा। ऐसे व्यक्तियों का सहयोग मिलना सौभाग्य की ही वात है क्योंकि इससे एक ओर मान्यताओं को वल मिलता है तो दूसरी ओर कुछ कर गुजरने की शक्ति के साथ सामाजिक स्वीकृति भी, जो कदम के आगे वढ़ने के लिये आवश्यक होती है।

मेरी नजर में सम्मेलन के इतिहास में केवल दो ही अवसर ऐसे आये हैं जब निर्वाचित सभापति को अन्य सव पदाधिकारियों के मनोनयन का अधिकार दिया गया—१-१-७४ को रांची अधिवेशन में जिसमें भाई भँवरमलजी सभापति वने थे और २५-३-८२ को जमशेदपुर अधिवेशन में। कार्यकर्त्ताओं के वीच इनकी लोकप्रियता कितनी गहरी रही, यह इसी एवं अन्य उदाहरणों से सुस्पष्ट है। जव सन् १९७६ में हैदरावाद में अधिवेशन हो रहा था तो स्वर्गीय छगनलाल जी विजयवर्गीय व अन्य कार्यकर्तागण अड़ गये कि सिंघी जी पुनः सभापति वनना स्वीकार करें तो ही अधिवेशन होगा और अन्ततः भाई भँवरमलजी को मानना पड़ा। कारण स्पष्ट था। सन् १९६६ से १९७३ तक सम्मेलन की अति दयनीय स्थिति के वाद सन् १९७३ के अन्त में रांची अधिवेशन में सिंघी जी को सभापति चुना गया था और तब से सम्मेलन पुनः कार्यशील हो गया था एवं समाज के लिये अपनी अटूट आवश्यकता का परिचय पुनः देने लग गया था। लोग उस क्रम में किसी प्रकार की वाधा वर्दाश्त करने को तैयार नहीं थे। उस अवसर पर दक्षिण भारत के दौरे में मुझे और सिंघी जी को यह देखने को मिला कि दक्षिण भारत में समाज का काफी वड़ा हिस्सा पर्दा प्रथा में जकड़ा हुआ था और लोग यह कहते नहीं अघाते थे कि सामाजिक सुधार तो हवा के साथ होते हैं। ऐसे लोग कितने वड़े भ्रमजाल के शिकार थे? यह जीता जागता प्रमाण था कि जहां के कार्यकर्ता सक्रिय होते हैं, परिवर्तन की आंधी भी वहीं सर्वाधिक प्रभावशाली होती है। भाई भँवरमल जी सम्मेलन के सभापति दो वर्ष ही रहे पर उससे उनकी सेवाओं में कोई अंतर नहीं पड़ा, वे सम्मेलन व समाज को निरन्तर समान रूप से मिलती रही हैं। और सन् १९८४ में तो इन्होंने 'समाज सुधार समिति' की अध्यक्षता स्वीकार कर कार्यकर्ताओं के लिए एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है। सच पूछिये तो सम्मेलन के स्थापक तथा प्राण स्वर्गीय ईश्वरदास जी जालान के वाद सम्मेलन के पितामह के स्थान पर भाई भँवरमलजी सिंघी ही स्थापित हुए हैं।

सामाजिक सुधारों के प्रश्न पर व तत्कालीन सामाजिक समस्याओं से उलझने में शायद भाई भँवरमलजी सिंघी का सानी रखने वाला और कोई नहीं। विषय तलाक का हो या हिन्दू कोड विल का, वाल विवाह का हो या अनमेल विवाह का, उस समय वर्जित या नगरवधुओं तक सीमित नृत्य या नाटकों में समाज के युवक-युवतियों के भाग लेने का हो या अन्तर्जातीय अन्तरप्रान्तीय विवाह का, अस्पृश्यता व जातपांत के भेदभाव का हो या देश की स्वतन्त्रता के संघर्ष का या फिर स्त्री-शिक्षा व उच्चतम शिक्षा का हो, मैं सभी जगह भाई भँवरमलजी सिंघी को सवसे आगे की पंक्ति में अगुवे के रूप में पाता रहा हूं। एक जमाने में जव ये विषय सिंघीजी जैसे समाज सुधारक व्यक्तियों ने उठाये थे, धर्मध्वजियों के लिये इनकी वात करना या इनका समर्थन करना धर्म पर सवसे वड़ा आघात करना था। धर्म और कर्म-ये ऐसे दो शब्द हैं जो

वास्तव में शाश्वत हैं लेकिन जिनकी व्याख्या आदिकाल से आजतक बदलती रही है और समय के अनुसार आने वाले कल में भी समयानुकूल बदलती रहेगी। किसी चलन व रूढ़ि को धर्म का बाना पहनाना और उस बाने की उपयोगिता शेष होने के बाद भी उससे चिपके रहना विवादास्पद बन जाता है। समय की उस पहचान को चिन्हित करने वाले और कर्म को उस ओर मोड़ने वाले व्यक्ति के रूप में सिंघी जी को आंका जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। सच तो यह है कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में महात्मा गांधी जैसी महान आत्मा ने देश की जिन विभूतियों की अन्तरात्माओं को प्रेरित कर प्रकाशित किया, उन विशिष्ट आत्माओं में से भाई भँवरमल जी सिंघी एक हैं और उस समय जन्मी उनकी 'विद्रोही आत्मा' ने उनके जीवन को ही नहीं, उनके माध्यम से समाज के एक बहुत बड़े अंश को प्रकाश से भर देने का अविस्मरणीय कार्य सम्पादित किया है।

सिंघी जी को जैसा मैंने देखा, समझा

गणेश मल बैद

सिंघी जी के तरुण संघ के निकट सहयोगी

श्रद्धेय सिंघी जी के साथ मेरा सम्पर्क ३८ वर्ष का है। सन् १९४६ में जब मैं कलकत्ते आया तब इनसे मेरा प्रत्यक्ष परिचय हुआ। ऐसे इनके लेखों और विचारों से तो बहुत पहले से ही परिचित था। तरुण जैन, पत्रिका को मैं बराबर पढ़ता था, व खासकर इनके 'भग्न हृदय' के लेखों को। इन लेखों ने तेरापंथ समाज में एक तहलका मचा दिया था। लोगों में इन लेखों को पढ़ने की इतनी उत्सुकता रहती थी कि नया अंक निकलते ही लोग 'भग्न हृदय' के लेख को सामूहिक रूप से पढ़ते थे। सन् १९४२ के स्वतंत्रता आन्दोलन में जब सिंघी जी जेल चले गये तो लाडनूं में हम कुछ युवकों ने धार्मिक क्रांति के विचारों के प्रचार हेतु 'तेरापंथ युवक संघ' की स्थापना की और उसके अन्तर्गत एक बुलेटिन भी निकालते थे। सिंघी जी को ये प्रवृतियाँ बहुत अच्छी लगीं और जब तेरापंथ युवक संघ के मंत्री श्री चन्दनमल भूतोड़िया उनसे जेल में मिलने गये तब सिंघी जी ने हमारी इन प्रवृतियों के लिए बहुत उत्साह प्रदान किया। जेल से छूटने के बाद सिंघी जी ने हम कुछ साथियों को लेकर तरुण जैन संघ की स्थापना की और उसके अन्तर्गत 'तरुण जैन' पत्रिका का प्रकाशन फिर आरम्भ किया गया। आगे चलकर इसको व्यापक बनाने की दृष्टि से तरुण जैन संघ का नाम तरुण संघ और पत्रिका 'तरुण' कर दी गई।

मेरा सौभाग्य था कि मैंने सिंघी जी के चरणों में बैठकर जीवन का यथार्थ पाठ पढ़ा। उनकी क्रांतिकारी भावना, चरित्र की अखण्डता, कार्य निष्ठा और व्यवस्था शक्ति ने मेरे ऊपर प्रभावकारी असर डाला। तरुण संघ जैसी क्रांतिनिष्ठ संस्था में

काफी अरसे तक उनके साथ काम करने पर और नजदीक से उनको देखने का मौका मिला। मारवाड़ी समाज में सबसे पहले तरुण जैन संघ ने पर्दा बहिष्कार को एक आन्दोलन का रूप दिया। दिसम्बर १९४६ में लाडनूं में प्रथम पर्दा बहिष्कार सम्मेलन श्री सिद्धराज ढड्ढा के सभापतित्व में मनाया गया। उस सम्मेलन में तरुण जैन संघ के सभापति श्री भँवरमल सिंघी ने अपने क्रांतिकारी विचारों से लोगों में एक खलबली मचा दी। सिंघी जी का भाषण धर्मवाद, साम्प्रदायिकता, अंधविश्वास और कुप्रथाओं पर जबर्दस्त आघात था। उन्होंने कहा, "मैं आज तरुण साथियों की ओर से ऐलान कर देना चाहता हूं कि हम सुधारक कतई नहीं हैं, सुधारक कहना हमारा अपमान है। हम क्रांतिकारी हैं। हम समाज में आमूल परिवर्तन और क्रांतिकारी नव निर्माण चाहते हैं। धर्म के अन्धविश्वासी ठेकेदार और उनके अंध भक्त आज भी हमारे सामाजिक मामलों में दखल देते हैं। हम इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते। इन प्रतिक्रियावादी हरकतों के विरुद्ध हमारा खुला विद्रोह है।"

आगे चलकर तरुण संघ के तत्वावधान में लाडनूं में ही श्री शंकर राव देव के सभापतित्व में धार्मिक क्रांति सम्मेलन मनाया गया जिसमें सिंघी जी ने धार्मिक क्रांति के तात्पर्य को, सम्प्रदाय मुक्ति के तत्व को अपनी ओजस्वी और सारगर्भित वाणी द्वारा स्पष्ट किया। ऐसा ही सम्मेलन बाद में कलकत्ते में भी आयोजित किया गया।

यह समय सन् १९४६ से ५२ तक का था। इसमें मेरी रात दिन की उठ-बैठ सिंघी जी के घर में थी। इनका घर क्या था, उसमें बराबर कार्यकर्त्ताओं का जमघट बना रहता था। 'तरुण जैन' पत्रिका का सम्पादन भी वहीं से होता था। सिंघी जी और चन्दनमल भूतोड़िया सम्पादक थे। हम कार्यकर्त्ताओं का सम्बन्ध इतना आत्मीय बन गया था कि उसमें छोटे-बड़े का कोई भाव नहीं था। सिंघी जी ने कभी भी हमारे जैसे साधारण कार्यकर्ताओं को यह महसूस नहीं होने दिया कि वे बड़े हैं और हम छोटे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि हम जब 'तरुण जैन' पत्रिका को डिसपैच करते तो सिंघीजी भी रैपर लगाने बैठ जाते।

सन् १९४७ जुलाई में मेरी पत्नी पर्दे से बाहर प्रथम बार कलकत्ते आयी। तब सिंघी जी चितरंजन एवेन्यू के जिस मकान में रहते थे, हम भी उसमें ही रहने लग गये। परिणामस्वरूप मेरी पत्नी को बहन सुशीला जी का साहचर्य मिला। वे जहां भी बाहर जातीं मेरी पत्नी को साथ में रखतीं। उनके सान्निध्य से उसको अच्छी ट्रेनिंग मिली, जिसका उपकार हम कभी भी भूल नहीं सकते।

यद्यपि तरुण संघ एक छोटी संस्था थी, कार्यकर्त्ता इने-गिने थे, लेकिन समाज पर उसका नैतिक प्रभाव था। इसका मूल कारण था कि कार्यकर्त्ताओं में कथनी और करनी में काफी साम्य था, जो कुछ बात कहते थे उसको पहले अपने जीवन में उतारने की कोशिश करते थे। पर्दा की बात उठायी तो पहले अपने घरों से शुरुआत की गई। विधवा विवाह की बात उठायी तो विधुर सिंघी जी ने प्रतिज्ञा की कि मैं अपना पुनर्विवाह एक विधवा से ही करूंगा और ऐसा उन्होंने किया भी। तरुण संघ की दूसरी विशेषता यह थी कि अपने कार्यक्रम के लिए लोगों से चंदा नहीं लिया गया। तरुण संघ में एक विशेष नियम था कि सदस्य को अपनी आय का पांच

प्रतिशत सार्वजनिक काम में खर्च करना पड़ता था। इसलिए जब भी कोई कार्यक्रम बनता तो सदस्यगण उसके खर्च की व्यवस्था कर देते। मैंने बराबर देखा कि सिंघी जी सबसे आगे अपनी रकम लिखाते। सिंघी जी की सूझबूझ के कारण ही तरुण संघ का कोई भी कार्यक्रम अर्थ के अभाव में नहीं रुका और न कभी पैसे का बाहुल्य हुआ जो कार्यकर्त्ताओं में झगड़े का कारण बनता।

सन् १९५२ के प्रथम आम चुनाव में सिंघी जी लोकसभा के लिए खड़े हुए। यद्यपि हम साथी कार्यकर्त्ताओं को यह अच्छा नहीं लगा, लेकिन घनश्याम दास जी बिड़ला ने पूरे मारवाड़ी समाज को चुनौती देते हुए कहा था कि "समाज में दूसरा कौन है जो प्रभुदयाल जी के सामने खड़ा हो सकता है।" राजनीति से दूर होते हुए भी सिंघी जी ने उस चुनौती को स्वीकार कर चुनाव में खड़ा होना तय किया। इस काम में सिंघी जी को दमतोड़ परिश्रम करना पड़ा, रात-दिन मीटिंगों का तांता लगा रहता और सिंघी जी के क्रांतिकारी विचारों को हजारों लोगों ने मुग्ध होकर सुना। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मेघनाथ साहा और कांग्रेस के उम्मीदवार श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका के सामने सिंघी जी के जीतने का प्रश्न नहीं था, लेकिन उनके क्रांतिकारी निष्पक्ष विचारों की लोगों पर अच्छी छाप पड़ी और संभवतः मेघनाथ साहा की जीत का कारण भी बनी।

चुनाव के कुछ अरसे बाद ही सिंघी जी बड़ाबाजार छोड़कर बालीगंज में रहने लग गये, तब हमारा जाना-आना बहुत कम हो गया। सिंघी जी भी दूसरी प्रवृतियों जैसे परिवार नियोजन और शिक्षण संस्थाओं के संचालन में काफी समय देने लग गये और धीरे-धीरे तरुण संघ का काम एक तरह से बंद-सा हो गया।

सिंघी जी का सार्वजनिक कार्य पेशेवर नहीं था। भागीरथ जी कानोड़िया को नौकरी करते हुए काफी समय वे सार्वजनिक प्रवृतियों में लगाते थे। वे अकसर कहते थे कि "मैं १० बजे से ५ बजे तक बिका हुआ हूँ। उस समय सार्वजनिक काम को भूल कर फर्म के कार्य में तल्लीन रहता हूँ।" इतनी स्पष्ट मर्यादा से वे बराबर चलते थे, इसलिए मालिकों के साथ उनके संबंध सदैव मधुर रहे और वे पूरी इज्जत और गरिमा के साथ वर्षों तक भागीरथ जी के यहाँ रहे।

विवाह शादियों के अवसर पर मारवाड़ी सम्मेलन के द्वारा दहेज, दिखावा और आडम्बर के विरुद्ध प्रदर्शन हुआ करते थे, जिनमें सिंघी जी प्लेकार्ड लिए सबसे आगे रहते थे। भागीरथ जी कानोड़िया की एक पौत्री के विवाह में मारवाड़ी सम्मेलन ने प्रदर्शन करना तय किया तो उनके यहाँ नौकरी करते हुए भी सिंघी जी उसमें आगे रहे जिसका शायद भागीरथ जी ने बुरा भी माना। लेकिन सिंघी जी के सामने व्यक्ति का महत्व नहीं था, अपने सिद्धांत और कार्यक्रम की बात थी। इससे सिंघी जी का नैतिक बल प्रदर्शित होता है।

सिंघी जी बहुत ही साधारण परिवार से आये। वे जो कुछ हैं, स्वनिर्मित हैं। अपनी प्रतिभा, चरित्र की उज्ज्वलता, व्यवहार कुशलता और कार्य-निष्ठा के कारण आज वे मारवाड़ी समाज के चंद शीर्ष लोगों में गिने जाते हैं। सिंघी जी की महानता का कारण उनकी वक्तृत्व शक्ति नहीं, उनकी लेखन-कला नहीं, बल्कि

प्रगतिशील विचार और विशुद्ध सेवा भावना से सतत काम करने की वृत्ति है। जिस किसी जिम्मेदारी को वे उठाते हैं, पूरी शक्ति से उसको पूरा करते हैं। आज रुग्ण शरीर होते हुए भी वे परिवार नियोजन और श्री शिक्षायतन के काम में बराबर समय देते हैं। अपने लिए कुछ चाह नहीं, निःस्वार्थ भाव से सेवा करना ही उनको अभीष्ट है। आजादी की लड़ाई में उन्होंने सक्रिय भाग लिया, जेल भी गये। लेकिन आजादी के बाद वे इस भ्रष्ट सत्ता की राजनीति से बिलकुल दूर हट गये और उसके कटु आलोचक बन गये। यद्यपि कई बड़े राजनीतिज्ञों से उनका सम्पर्क था, उनका परिचय-क्षेत्र भी बहुत बड़ा है जिसमें राजनेता, साहित्यिक, समाजसेवी, शिक्षण शास्त्री, कलाविद आदि हैं। वे चाहते तो कांग्रेस में रहकर किसी मंत्री पद पर पहुंच सकते थे। लेकिन उन्होंने नौकरी करते हुए बाकी समय में जितनी भी समाज सेवा हो सके उसमें ही सन्तोष माना और अपने को बेदाग बनाये रखा।

सिंघी जी बड़े गुणग्राही हैं और उनमें सबको लेकर चलने की एक अपूर्व क्षमता है। लेकिन अपनी बात को अपने ढंग से रखने में कहीं संकोच नहीं करते। इन गुणों के कारण ही सिंघी जी जहां भी जाते हैं, अपनी छाप छोड़ते हैं। कलकत्ते के जूट बेलर्स एसोसियेसन के जहां पाट के व्यापारियों और उद्योगपतियों का जमघट है सिंघी जी वर्षों तक सफल मंत्री बने रहे और लोगों पर उनका अच्छा प्रभाव बना रहा।

कलकत्ते की कुछ प्रसिद्ध शिक्षण संस्थाओं के संचालन में सिंघी जी ने अपनी व्यवस्था शक्ति का परिचय दिया है। श्री शिक्षायतन कालेज के शुरू से मंत्री और वर्षों तक नोपानी विद्यालय के भी मंत्री रहे। इनके मंत्रित्व काल में इन दोनों संस्थाओं ने बड़ी उन्नति की। वास्तव में वे संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं की जिम्मेदारी को समझते हैं और मंत्री होकर भी उनके अधिकारों में कभी दखल नहीं देते। मुझे याद है मेरी बड़ी लड़की शिक्षायतन कालेज में पढ़ती थी। बीमारी के कारण वह बी० ए० के सेंटअप में एक या दो विषय में पास नहीं हो सकी। मैंने सिंघी जी को कहा कि आप इसे सेंटअप कर दें अन्यथा पढ़ाई रुक जायेगी क्योंकि लड़की काफी बड़ी हो गई है। सिंघी जी से मेरा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी उन्होंने मुझसे स्पष्ट कहा कि "इस काम में मैं कुछ नहीं कर सकूंगा, तुम चाहो तो सीधे प्रिन्सिपल से बात करो। मैं प्रिंसिपल को कुछ नहीं कहूंगा, वह चाहेंगी तो सेंटअप कर सकती हैं।" मुझे उनका उत्तर बहुत अच्छा लगा। वास्तव में इतनी कड़ाई और निष्पक्षता के कारण ही संस्था का काम सुचारु रूप से चलता है और कार्यकर्त्ता अपनी जिम्मेदारी समझते हैं।

सिंघी जी और सुशीला जी का जोड़ा भी कैसा अनूठा है। जहां सिंघी जी एक वक्ता हैं, लेखक हैं वहां सुशीला जी कर्मठ कार्यकर्त्री हैं। बालीगंज के बस्ती इलाके में गरीब बच्चों के लिए परिवारिकी जैसी शिक्षण संस्था वर्षों से चला रही हैं। जहां सिंघी जी विचारों की ऊंची उड़ान भरते हैं, वहां सुशीला जी व्यावहारिक ढंग से हर प्रश्न को सोचती हैं। अपनी व्यावहारिक सूझबूझ के कारण ही आज कलकत्ते में इनका अपना मकान खड़ा हो गया जो बुढ़ापे में आमदनी का एक जरिया बन गया। सुशीला जी ने काफी परिश्रम करके अपनी देखरेख में यह मकान खड़ा किया है।

विवाह शादी के मामले में सिंघी जी के विचार बड़े प्रगतिशील हैं। वे चाहते हैं कि पूरे योग्य हो जाने पर लड़के और लड़की स्वयं अपना चुनाव करें एवं माता-पिता को खुशी-खुशी उसको स्वीकार करना चाहिए। खुशी की बात है कि उनके लड़के और लड़कियों ने स्वयं ही चुनाव करके अन्तर्जातीय विवाह किये हैं। लड़के के विवाह में तो हजारों लोग विवाह देखने गये थे क्योंकि सिंघी जी के घर में बंगाली लड़की के साथ सिविल मैरेज हो रही थी। कलकत्ते जैसी महानगरी में विवाह देखने के लिए इतनी बड़ी संख्या में लोगों का उपस्थित होना इस बात को सिद्ध करता है कि लोगों में नई चीज़ देखने की चाह तो होती है, लेकिन ऐसा करने का साहस कितने लोगों में होता है।

ऐसे हैं सिंघी जी। ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क को मैं जीवन की एक उपलब्धि मानता हूँ। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि सिंघी जी शतायु हों। उनके चरणों में मेरे शत-शत प्रणाम।

धार्मिक क्रांति के सक्रिय साथी

श्री शरद कुमार साधक
सम्पादक 'आचार्य कुल'

सम्प्रदायवादी चोला, सामंतवादी संस्कार, पूंजीवादी रहन-सहन और प्रच्छन्न भोगवादी साधुता ने हमारे मनों में विद्रोह का बीजारोपण किया, तब 'भग्न हृदय' लेकर सिंघी जी ने खाद-पानी नहीं पहुंचाया होता तो क्या हम अभी धार्मिक क्रान्ति का बिगुल बजा पाते? सिंघी जी शायद स्वयं नहीं जानते कि उनसे हमें कितना सम्बल मिला है और उनके आचार-व्यवहार ने किस तरह सम्प्रदायों के खिलाफ खड़ा होने की शक्ति दी है।

हम बचपन में गृह त्यागकर संन्यासी बन बैठे। कुछ ही समय बाद हमारे सामने यह तथ्य उजागर हो गया कि चंद साधुओं और श्रावकों ने धर्म को अपनी साधों की कठपुतली बना रखा है और वे हर तरह से गरीबों को होम कर रहे हैं। हमने उनके खिलाफ सोचना, बोलना और लिखना शुरू किया, तब क्या नहीं सहना पड़ा! सारी प्रतिकूलताओं के बीच जैसे-जैसे हमारी रचनात्मक भूमिका खड़ी हुई, वैसे-वैसे सम्प्रदायों के घेरे से मुक्त होने के आकांक्षी मुनि लिखने लगे कि "आप लोग धन्य हैं, जो अखंड जीवन की उपासना करने हेतु कठोर परिश्रमी बन बैठे हैं। अफसोस कि इतना परिश्रम हमसे नहीं हो सकता। क्योंकि त्याग की आड़ में सारी सुख-सुविधाएं पाकर हम लोगों की कर्तव्य शक्ति अप्रभावी हो गयी है। इस हालत में हम क्या करें!"

तेरापंथ, स्थानकवासी, मूर्तिपूजक और यहां तक कि सनातन और वैष्णव सम्प्रदायों में दीक्षित सन्यासियों ने हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा जब हमसे आगे का मार्ग प्रशस्त करने की अपील की, तब हमने भग्न हृदय के दरवाजे खटखटाए और वहीं श्री सिंघी जी सहित अनेक मित्र मिले। उन दिनों वे तरुण संघ के मंच से सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्ति के विचारों का प्रतिपादन कर रहे थे और धार्मिक क्रान्ति हमारे आचरण से हवा पा रही थी। हमने सहचिंतन के नाते तरुण संघ तथा उसके समान विचार रखने वाली संस्थाओं के सम्मुख साधुओं को समाज में पुनर्स्थापित करने की योजना रखी। सबने उसका स्वागत किया। तब हमने 'आह्वान' देकर साधुओं को सम्प्रदायों से मुक्त होने की अपील की। हमारी अपील पर जब कुछ साधु सम्प्रदाय छोड़ आए, तब क्रान्ति की बात करने वाले मित्रों ने उन्हें बाजार भाव बताना शुरू कर दिया। बाजार भाव के अनुसार मुक्त साधु रोटी और कपड़ा पाने की स्थिति में भी महँगे पड़े। तब मैंने भरे दिल से लिखा कि—"हमारे मित्र क्यों साधुओं की अकर्मण्यता पर प्रहार करते हैं, जबकि कर्मक्षेत्र में उनकी व्यवस्था करने से कतराते हैं। क्रान्ति बाजार भाव को मद्‌देनजर रखकर नहीं की जा सकती। उनके लिए तो बाजार-भाव ही उपयोगी हो सकता है।" मैंने संस्थाओं की निरीहता की चर्चा करते हुए अपनी जिम्मेदारी पर साधुओं को आह्वान दिया कि "वे हिम्मत के साथ सम्प्रदाय छोड़ कर आना चाहते हैं तो अवश्य आएं। उनके लिए हमारा खुला निमंत्रण है। उनकी पेटी तो नहीं, मगर पेट भरने की व्यवस्था करने में हम सहभागी रहेंगे और 'मानव-मन्दिर' जैसी संस्था हमारा कार्यस्थल रहेगी।"

अनेक संस्थाओं में मेरा वह लेख पढ़ा गया। किन्तु उसे चुनौती और चेतावनी के रूप में किसी ने लिया तो वे एकमात्र सिंघी जी थे। उन्होंने तत्काल लिखा कि "आचार के जुलाई ६० के अंक में श्री साधक जी की आवाहन शीर्षक से लिखी हुई पंक्तियों को पढ़कर मुझे लगभग २२ वर्ष पहले की बातें याद आ गईं। जब 'ओसवाल नवयुवक' मासिक में छपे हुए 'साधुत्व' शीर्षक लेख ने सारे जैन समाज में विशेषकर कलकत्ता के जैन समाज में खलबली पैदा कर दी थी और मुझे तथा भाई विजयसिंह जी नाहर को उस पत्र के सम्पादकत्व से 'त्यागपत्र देना पड़ा था। जिस लेख की बात कह रहा हूं, उसमें साधुत्व को ललकारा गया था, उसके ढोंग और खोखलेपन को झकझोरा गया था। उसके बाद समाज में प्रतिक्रियाओं का जो बवंडर उठा, उसके दौरान कुछेक कारावद्ध साधुओं के पत्र भी मिले, जिनमें यह सवाल सामने आया कि जिस कारागार पर हम चोट कर रहे हैं, उसमें से जो लोग निकलकर आना चाहते हैं—सामाजिक जीवन का नवप्रभात देखना चाहते हैं—मुक्त मानव की तरह मुक्त बुद्धि से रहना चाहते हैं, उनके लिए क्या व्यवस्था की जा सकती है? सबसे बड़ी बात थी कि जो मोटे साधु या श्रावक, इस कारागार के संरक्षक और संचालक थे, उनके दमनपूर्ण कार्यों से बचने की दिशा में इन मुक्तिकामी युवा साधुओं को क्या और किस प्रकार सहायता पहुंचाई जाय। बहुत बड़ा प्रश्न था, जिसके सामाजिक और आर्थिक दोनों पहलू काफी उलझे हुए थे। लेख लिखने तक कटु संघर्ष झेल लेना एक बात थी, किन्तु इस जेल के अन्दर जो फौज जमी थी और चारों तरफ लाखों-लाखों रुपयों की सेवा का जो

घेरा था, उसका मुकावला करना आसान नहीं था। मैं स्वीकार कर लूँ कि हम, जिन्होंने आग में जलने की वात कही, आग से उन्हें वाहर निकालने का सम्वल नहीं दे सके। इस वात को लेकर एक व्यथा और अनुताप वर्षों से मेरे मन पर रहा है। जब साधक जी का उक्त लेख पढ़ा गया तो वह अनुताप और भी तीव्र हो उठा, मैं विह्वल हो गया। श्री साधक जी, जो उस कारागार से निकल आए हैं, जिन्होंने विचार और प्रेरणा के साथ-साथ सम्वल और सहायता की भी आशा की थी, जो हम नहीं कर सके। उसका अनुताप मुझे कष्ट पहुंचाता रहा और जिस दिन हमने पहले-पहल सुना कि साधक जी, सतीश जी और उनके दूसरे साथी जो साधुत्व के कारागार में—अविवेक और जड़ता में घुट-घुट कर छटपटा रहे थे, स्वयं साहस कर निकल आए हैं और समाज—जिसकी दृष्टि से वे साधुत्व अंगीकार कर चुके थे—के वीच पुनर्स्थापित होने का यत्न कर रहे हैं, तो मुझे वड़ी खुशी हुई। निरन्तर संघर्ष करते हुए इन साथियों ने राख में से जो दीप्ति पैदा की है, लघु प्रयत्नों से जो महान कार्य किया है, उसके लिए मेरा मस्तक, जिस पर अनुताप छाया हुआ था, कई बार झुका। श्री साधक जी के ये शब्द हमलोग तथा तरुण संघ जैसी संस्थाओं को चलाने वाले हमारे अन्य साथी साधु समाज की अकर्मण्यता पर आए दिन प्रहार करते रहते हैं। लेकिन जव कुछ साधु सम्प्रदाय को छोड़कर वाहर आते हैं, तव हम उनसे नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं और उनकी व्यवस्था करने के प्रश्न को यह कहकर टाल देते हैं कि वे साधु समाज की दृष्टि से निकम्मे हैं और उनका कोई वाजार भाव नहीं है। विल्कुल सही वात है। ऐसा ही हुआ है और मैं भी ऐसा करने वालों में से हूं।"

कलम के धनी, शब्दों के जादूगर, क्रांतिप्रिय सिंघी जी इतने नम्र हो सकते हैं, यह कोई सोच भी नहीं सकता। वे जितनी जिम्मेदारी के साथ अपने विचार रखते हैं, उतनी ही जिम्मेदारी के साथ उसे क्रियान्वित होते देखना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने आगे का मार्ग प्रशस्त करने के लिये सुझाया—"जैसे मजदूरों की लड़ाई पूर्णरूप से उसी दिन होगी, जिस दिन उन्हीं में से कुछ लोग आगे आकर लड़ाई का संचालन सँभालेंगे, उसी प्रकार कारावद्ध साधुओं को मुक्त करने और उनकी व्यवस्था करने के कार्य को उस कारा में रहकर आए हुए लोग ही सँभाल सकते हैं। श्री साधक जी, सतीश जी आदि मानव मन्दिर के द्वारा जो कार्य कर रहे हैं, उसमें सचमुच साधना की एक झलक है। वे मुक्त हुए कैदी पीछे रह रहे और आज भी वंधे हुए कैदियों की पीड़ा को जितना जान और समझ सकते हैं, उतना मैं और मेरे जैसे व्यक्ति सहज ही अनुभव नहीं कर सकते। जो भी हो, परिस्थितियाँ काफी वदली हैं। यहाँ तक वदल गई हैं कि कारागार रखने, चलाने वाले धर्मध्वजियों ने भी अपनी कार्य प्रणाली वदली है। अब एक अच्छे संगठन की आवश्यकता है जो कारावद्ध साधुत्व से मुक्त हुओं को मानवीय विकास के पथ पर अग्रसर होने में सहारा देने का कार्य कर सके।"

श्री सिंघी जी सचमुच सक्रिय सहायक सिद्ध हुए, जव हमने धार्मिक क्रांति परिसंवाद एवं सम्मेलनों का आयोजन किया। सभी साथियों के साथ खुली चर्चा के दौरान वरावर सिंघी जी ने जिस सख्य भाव का परिचय दिया, उसे कौन सा प्रतिनिधि भुला सकता है?। छोटे से छोटे और गहन से गहन विषय पर उन्होंने चर्चा करने में

जितनी रुचि ली, वह हम सबके मन को मोहने वाली रही। चर्चा के अन्त में इसी कारण जो निवेदन तैयार करने में उनका साहचर्य रहा वह इस प्रकार है—

"गत वर्ष कलकत्ता में जो धार्मिक क्रांति परिसंवाद हुआ था, उसमें हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि धर्म, शास्त्र एवं सम्प्रदायों में आबद्ध नहीं है और न वह ईश्वर या अन्य किसी अदृश्य शक्ति के आधार पर चलने वाली परलोक साधना, मोक्ष प्राप्ति, पुनर्जन्म अथवा स्वर्ग-नरक की कल्पनाओं में सन्निहित है। धर्म जीवन सम्बन्धी उस ज्ञान और दृष्टि का नाम है—जो व्यक्ति और समाज से सीधा सम्बन्ध रखती है। और चूंकि समाज निरंतर परिवर्तनशील है, इसलिए स्वभावतः वह दृष्टि भी सतत विकासोन्मुख तथा परिवर्तनशील ही होनी चाहिए।"

"इसी सन्दर्भ में धार्मिक क्रांति परिसंवाद एवं सम्मेलन लाडनूं में हुआ, जिसका विचारणीय विषय 'धार्मिक सम्प्रदायों का विघटन और साधु संस्था का समाजीकरण था।' इस विषय के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न पहलुओं पर जो चर्चा हुई, उसमें यह अनुभव किया गया कि जीवन-दृष्टि के विकास का आधार सत्य ही हो सकता है, जिसकी शोध निरंतर चल रही है और चलती रहनी चाहिए। जब कभी भी सत्य की उपलब्धि को अन्तिम मानकर इस शोध के मार्ग को अवरुद्ध किया गया, तभी सम्प्रदायों को जन्म मिला, धर्म कुंठित हुआ और ज्ञानार्जन की गति मंद हो गयी। इन सम्प्रदायों ने अपने उपलब्ध सत्य को ईश्वरत्व अथवा सर्वज्ञत्व के नाम पर सनातन सत्व कहने का दावा किया, जो सर्वथा निराधार, कपोलकल्पित और विकास में बाधक है। परिणाम यह हुआ कि सत्य कहीं पीछे रह गया और अमुक भाषा अथवा बाह्याचार ही धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। ऐसे तथाकथित धर्म का दावेदार बनकर साधु-संन्यासी कहा जाने वाला वर्ग समाज में पूजा-प्रतिष्ठा पाने लगा है। यह सम्मेलन इस परिस्थिति को समाज में रूढ़ि और अन्धविश्वास का प्रसारक, सत्य की शोध के लिए बाधक और व्यक्ति व समाज दोनों के लिए अकल्याणकारी मानता है।

"सत्य के निरंतर अनुसंधान की आवश्यकता है और चूंकि आज के धर्म सम्प्रदाय और साधु वर्ग इसमें बाधक सिद्ध हुए हैं, इसलिए इस युग की यह अनिवार्य आवश्यकता है कि धर्म सम्प्रदायों का परिहार हो। साथ ही हम मानते हैं कि निवृत्ति के नाम पर समाज के प्रश्नों से एवं सामाजिकता के स्वस्थ निर्माण से अलग-अलग रहकर धर्म साधना का दावा करने वाले साधु वर्ग की भी आवश्यकता नहीं है।"

श्री शंकरराव देव, आचार्य दादा धर्माधिकारी, प्रो० गोरा, श्री सिद्धराज ढड्ढा, श्री पूर्णचंद्र जैन, श्री चंदनमल भूतोड़िया, श्री गणेशमल बैद, श्री म्हालचंद्र बोथरा, श्री मांगीलाल भूतोड़िया, श्री सतीश आदि अनेक मित्रों के साथ-साथ श्री सोहनलाल दूगड़ ने भी धार्मिक क्रांति परिसंवाद एवं धार्मिक क्रांति सम्मेलन में भागीदारी निभाई थी। उसके कारण धार्मिक क्रांति विचार व्यापक चर्चा का विषय बना और तब जो मंतव्य प्रकाशित हुआ, वह एक प्रकार से हमारे घोषणा-पत्र के परिप्रेक्ष्य में ही 'राजनीति का विकल्प' खोजने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई है। इसलिए प्राक्कथन में ही हमने स्पष्ट किया है कि—

"वह व्यवस्था निकम्मी है, जो जीवनघाती प्रक्रिया सुझाती हैं। वह धर्म निकम्मा है, जो जातिवाद को प्रश्रय देता है। वह सम्प्रदाय निकम्मा है, जो मानवता को विभाजित करता है। वह साधु निकम्मा है, जो केवल उपदेश से समाज बदल देने का दावा करता है। हम उस व्यवस्था, सम्प्रदाय और साधु को अमान्य करेंगे।

"व्यवस्था का निकम्मापन सौदागरों ने साबित किया। धर्म का निकम्मापन सम्प्रदाय ने साबित किया। सम्प्रदायों का निकम्मापन मुफ्तखोर साधुओं ने साबित किया। साधुओं का निकम्मापन आजादी के सवालों ने साबित किया। हमें इस व्यवस्था, सम्प्रदाय और साधुओं को अखण्ड सामाजिकता कायम करने की दिशा में ले चलना है।

"व्यवस्था वह है, जो सबकी जिजीविषा के बीच सुसंवाद कायम करे। धर्म वह है, जो प्रतिकूलताओं के शमन का मार्ग प्रशस्त करे। सम्प्रदाय वह है, जो सामुदायिक भावना को विकसित करे। साधु वह है, जो समाज को समर्पित होकर 'योगः कर्मसु कौशलम्' का जीता जागता नमूना बन जाए। हमें व्यवस्था, धर्म, सम्प्रदाय और साधुओं के इन नए मूल्यों की स्थापना करनी है।"

पिछले चार दशकों में हमने इस दृष्टि से जो कुछ किया, उससे साधुओं के समाजीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ, लेकिन सम्प्रदायों का निराकरण नहीं हो पाया है। राजनैतिक दलों की तरह वे भी विभाजित होकर अपने आप को क्रांतिकारियों की श्रेणी में प्रतिष्ठापित कराने के प्रयास में लगे हैं और यही धार्मिक क्रांति सम्मेलन की सबसे बड़ी विफलता भी है। क्योंकि सम्प्रदाय वालों ने समझ लिया कि सम्प्रदाय से अलग होने वाले साधुओं के साथ समाज की समरसता नहीं है। सामाजिक सम्बन्धों का आधार रक्त और यौन है और इन दोनों के रहते वैचारिक आधार को मजबूत नहीं किया जा सकता। धार्मिक क्रांति का झंडा उठाने वाले हम लोगों में सिंघी जी जैसे कितने हैं, जिन्होंने अपने सारे सम्बन्धों का अधिष्ठान वैचारिकता को बनाया हो? सिंघी जी हमारे बीच इसी कारण अभिनंदनीय हैं कि उन्होंने अपनी जीवनचर्या, पारिवारिक माहौल, शादी-विवाह और लेन-देन जैसे हर मामले में वैचारिकता मान्य की और सारी परम्पराओं को विचारपूर्वक अमान्य किया। यह अमान्यता जिस दिन सामुदायिक जीवन का आधार हो जाएगी, उस दिन निश्चय ही सम्प्रदायवादी चोला, सामंतवादी संस्कार, पूँजीवादी रहन-सहन और प्रच्छन्न भोगवादी साधुता समाप्त हो जाएगी। तब एक शासक और दूसरा शासित, एक मालिक और दूसरा मजदूर, एक पूज्य तथा दूसरा पूजक नहीं होगा, वरन् होंगे सब सहधर्मी, सहयात्री, साथी। साथियों से सिंघी जी के अभिनंदन-अवसर पर एक ही निवेदन करना है और वह कवि के शब्दों में यह कि—"साथी हाथ बढ़ाना, एक अकेला थक जाएगा मिलकर बोझ उठाना।..."

एक कर्मठ व्यक्तित्व

कृष्णचन्द्र बेरी
प्रसिद्ध हिन्दी प्रकाशक

सिंघी जी का नाम लेते ही मस्तिष्क के गलियारे से स्मृतियों का सिलसिला गुजरने लगता है। भूली-बिसरी बातें मन के परदे पर उभरने लगती हैं। यह दुःखद घटना १९३८ की है जब मेरे बालसखा दयाराम सेठ को एक संक्षिप्त बीमारी के बाद मृत्यु निगल गयी। उस समय उसकी उम्र महज १८ वर्ष की थी और उसकी पत्नी की अवस्था सिर्फ १४-१५ साल की। यौवन की दहलीज में पैर रखते ही नियति ने उसकी मांग का सिंदूर पोंछ दिया।

वह बाल विधवा कलकत्ते के जोड़ासांकू के प्रसिद्ध डा० सरजू वर्मन की लड़की थी। हम लोगों का विचार था कि उसका विवाह कर देना चाहिए, पर उस समय ऐसे अनेक लोग थे जो विधवा विवाह के विरोधी थे। उन्हीं में हमारे खत्री समाज के स्वनामधन्य लाला दामोदर दास खन्ना उर्फ लाला बाबू भी थे जो उस बाल विधवा के भविष्य को एक अनजान सन्नाटे में ही छोड़ देना चाहते थे।

उन दिनों मारवाड़ी समाज में भी विधवा विवाह एक अपराध माना जाता था, किन्तु कुछ समाज-सुधारक इन सारे विरोध और वर्जनाओं के बावजूद आगे आये। अखबारों की सुर्खियों में एक मसीहा की तरह श्री भँवरमल सिंघी का नाम आने लगा था। इनकी एक त्रिगुटी थी जिसमें सर्वश्री सिद्धराज ढड्ढा, बेगराज सिंघी एवं भँवरमल सिंघी थे। मुझे ठीक याद है, भँवरमल सिंघी की दृढ़ता एवं संकल्प ने हमें प्रेरणा दी और उस बाल विधवा के पुनः विवाह की व्यवस्था हम कर सके।

हमारी नारायण बाबू लेन की दुकान और श्रीकृष्ण प्रेस में एक नितान्त पुरातनपन्थी ब्राह्मण हनुमान जोशी आया करते थे। वे 'मारवाड़ी ब्राह्मण' दैनिक के सम्पादक थे। खल्वाट खोपड़ी पर लम्बी चुटिया और चिपटी नाक वाले इन जोशी जी का व्यक्तित्व जितना विचित्र और रूढ़िवादी था, उससे उनका कर्तृत्व कम विचित्र और कूड़ापंथी नहीं था। लगता था पूरे धर्म और कर्मकाण्ड का ठेका उन्हीं के पास है। वे हमारी दुकान पर बैठकर समाजसुधारकों को गालियां दिया करते थे और उनके सम्बन्ध में सनसनीखेज समाचार अपने 'मारवाड़ी ब्राह्मण' में छापते थे। मेरी दुकान पर आना उनका नित्य का काम था। उनका विश्वास था कि इस दुकान पर से जो भी कहा जायेगा वह आकाशवाणी की तरह पूरे बड़ा बाजार में प्रसारित एवं प्रचारित हो जायेगा। उनके इस विश्वास में बल भी था, क्योंकि मेरी दुकान उन दिनों क्रांति-कारियों, समाज सुधारकों एवं कुछ सिरफिरे पुरातनपंथियों का अड्डा थी। इसी अड्डे पर एक सिरफिरा समाज सेवी अजमेरा भी आता था। उसने चांद प्रेस के मालिक श्री रामरिख सहगल पर मारवाड़ी अंक निकालने पर शारीरिक हमला किया था।

हनुमान जोशी, वहुधा श्री भँवरमल सिंघी के प्रगतिशील विचारों की खिल्ली उड़ाते थे और 'कहनी अनकहनी' कहा करते थे। सिंघी जी के परदा-प्रथा के विरोध से वे इतने नाराज हुए थे कि उन्होंने आवेश में कहा था कि औरतों को वेपर्द करने वाले भँवरमल की कुटम्मस की जायेगी। जव यह वात सिंघी जी तक पहुंची तो वे मुस्करा कर रह गये, एक स्थितप्रज्ञ की तरह जैसे उन पर इसका कोई प्रभाव ही न हुआ हो।

उन्हीं दिनों पं० शिवशंकर मिश्र की एक पुस्तक पर्दा-प्रथा पर प्रकाशित हुई थी। जिसका कटु विरोध जोशी जी के 'मारवाड़ी ब्राह्मण' में छपा था, पर सिंघी जी ने उस पुस्तक का खुलकर समर्थन किया था।

एक विचित्र सभा की मुझे याद आती है। यह सभा कलकत्ता के शोभाराम वैसाख स्ट्रीट स्थित माहेश्वरी विद्यालय के सभागार में हुई थी। विषय था समाज में विधवाओं की समस्या। दो प्रमुख वक्ता थे—भँवरमल सिंघी और वसन्तलाल मुरारका। श्री वसन्तलाल जी एक दूसरी त्रिगुटी से भी जुड़े थे जिसमें सर्वश्री सीताराम सेकसरिया, वसन्तलाल मुरारका, भगीरथ कानोड़िया थे। वाद में इस त्रिगुटी में श्री प्रभुदयाल जी हिम्मतसिंहका और स्व० रामकुमार जी भुवालका के नाम भी जुड़े।

उस सभा में ही भँवरमल सिंघी का भाषण तेजस्वी एवं ज्ञानवर्द्धक था। उसकी वड़ी तारीफ हुई, पर श्री वसन्तलाल जी काफी वहक गये। उन्होंने जोश में यहां तक कह डाला कि आज हम निश्चय करते हैं कि घर-घर में विधवा आश्रम खुलवा देंगे। ऐसी जोशीली घोषणा के वाद उन्हें तालियों की गड़गड़ाहट की अपेक्षा रही होगी, पर मिली एक प्रगल्भ हँसी।

आज के 'वीमेन लिव' आन्दोलन से उन दिनों का नारी-स्वातंत्र्य आंदोलन वहुत भिन्न था। आज 'वीमेन लिव' आंदोलन की कर्णधार मात्र महिलाएँ हैं, पर उन दिनों पुरुषों की भूमिका इस आंदोलन में प्रमुख थी। जहाँ एक ओर भगिनी निवेदिता, रमाबाई आदि नेत्रियों का नाम इस संदर्भ में आता है वहीं स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े पुरुषों ने भी भारतीय नारी मुक्ति आंदोलन में गम्भीर हिस्सा लिया था।

कलकत्ता के वड़ावाजार के प्रसिद्ध आर्यसमाजी श्री सत्यव्रत विद्यालंकार की पत्नी श्रीमती सुभद्रा देवी जव वड़ा वाजार कांग्रेस की अध्यक्ष वनीं, तव लोगों को वड़ा आश्चर्य हुआ। सुभद्रा देवी का कांग्रेस का अध्यक्ष होना एक अनहोनी वात थी। पर सिंघी जी ने इस चुनाव का स्वागत किया। ऐसी सौंदर्यगर्विता और कोमलांगी का विदेशी कपड़ों की दुकानों पर पिकेटिंग करना और प्रभातफेरी निकालना लोगों को सहज आकर्षित कर लेता था। फलतः उनके कार्यक्रमों में ऐसे लोग भी जुड़ते गये जो कांग्रेस से दूर थे। फिर भी पं० हनुमान जोशी जैसे लोगों की कमी नहीं थी; जो नारी की इस प्रगतिशीलता को महज गालियां ही देते थे।

विश्वमित्र के सम्पादक स्व० मूलचन्द्र अग्रवाल स्वयं वड़े प्रगतिशील विचारों के थे। वे समाज सुधारकों एवं समाज सेवियों की खवरें वड़े मनोयोग से छापते थे और उन्हें प्रोत्साहित भी करते थे। मुझे याद है कि उनके कालमों में वहुधा भँवरमल जी की चर्चा होती थीं।

जब गांधी ऐसे व्यक्ति का विरोध हुआ, जब नारी मुक्ति आंदोलन में रमाबाई, भगिनी निवेदिता,, सरोजिनी नायडू ऐसी महिलाओं का विरोध हुआ तब भला सिंघी जी का विरोध क्यों न होता। पोंगापंथी और पुराने दिमाग के सिरफिरे लोगों ने उनका जम कर विरोध किया, खरीखोटी और गालीगलौज तक उन्हें सुनाया। भाड़े के आदमियों द्वारा उनका तिरस्कार कराया गया, पर सिंघी जी कभी भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। वे ईसा की तरह अपने आलोचकों और विरोधियों का सदा भला चाहते रहे। सिंघी जी का संकल्प, दृढ़ता एवं उनकी स्थितप्रज्ञता में उनकी आदर्श धर्मपत्नी का बहुत बड़ा हाथ रहा है। यदि उन्हें सुशीला जी ऐसी आदर्श गृहिणी न मिली होती तो सिंघी जी अपने संकल्प में शायद इतने सफल न होते।

वस्तुतः सिंघी जी के व्यक्तित्व में एक सच्चे समाज सेवक की संकल्पबद्धता एवं निर्भीकता, गांधी जी के सादे जीवन और उच्च विचार तथा मालवीय जी की चारित्रिक पवित्रता के तत्त्व समवेत हो गये हैं।

सामाजिक इतिहास का उज्जवल अध्याय

गणेश मंत्री

प्रखर पत्रकार, धर्मयुग के सहायक सम्पादक

उम्र रही होगी यही पन्द्रह-सोलह साल। परन्तु कुछ तो घर का वातावरण और कुछ पिता जी के मित्रों का प्रभाव था कि हंसने-खेलने की उस उम्र में ही सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों, समाज परिवर्तन के विचारों में दिलचस्पी हो गयी। तब का कोटा आज जैसा औद्योगिक केन्द्र नहीं था। छोटी-सी दुनिया थी उसकी। पीछे खड़ा था सांमती अतीत। धीरे-धीरे सुनाई देने लगी थी औद्योगीकरण की पदचापें। अतीत और भविष्य के बीच सहमे-सहमे उस शहर में ही कुछ विचारवान, अग्रगामी सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता एक साप्ताहिक निकालते थे—'जयहिन्द।' सम्पादक थे राजस्थान में समाजवादी आन्दोलन के संस्थापक श्री हीरालाल जैन। सम्पादक मण्डल में अन्य लोगों के साथ मेरे पिताजी भी थे। घर के सामने की सड़क पार करते ही 'जयहिन्द' का कार्यालय था। वहीं दस से चौदह वर्ष की उम्र में हीरालाल जी के मार्गदर्शन में राष्ट्रीय आन्दोलन और भारतीय नवजागरण के अग्रदूतों की जीवनियां पढ़ी थीं। वहीं पहली बार भंवरमल जी सिंघी से परिचय हुआ—प्रत्यक्ष नहीं, उनके द्वारा सम्पादित 'तरुण' के माध्यम से।

'जयहिन्द' कार्यालय में आनेवाले ढेर सारी पत्र-पत्रिकाओं में "तरुण" सबसे अलग था। कलेवर में छोटा, परन्तु अग्रगामी विचारों से परिपूर्ण। परिवार नियोजन के महत्व, किशोरों की सेक्स-शिक्षा की आवश्यकता, दहेज जैसी कुप्रथाओं का विरोध, सामाजिक अवसरों पर टीमटाम के प्रदर्शन के निषेध पर सिंघी जी और उनके सहयोगियों की तीखी किन्तु तर्कपूर्ण टिप्पणियों-लेखों की जो छाप मन पर पड़ी, वह आज तक

मिटी नहीं है। सिंघी जी का व्यक्तित्व तबसे ही जिज्ञासा और आकर्षण के केन्द्र रहे हैं।

कुछ वर्ष बाद। हीरालाल जी के प्रभाव से ही मैंने थोड़ा-बहुत लिखना शुरू किया। पढ़ाई के साथ ही छात्र राजनीति और ट्रेड यूनियन का भी काम चल पड़ा। लोहिया जी की बेबाक बातें, सिद्धान्त और आचरण की एकता पर जोर देने का उनका आग्रह, राजनीति और सामाजिक परिवर्तन को अभिन्न समझनेवाली उनकी विचार-सरणी इन सबके सम्मिलित प्रभाव ने किशोरावस्था में ही मुझे लोहिया राजनीति से जोड़ दिया। इस बीच बढ़ते हुए आर्थिक दबाव के कारण 'जयहिन्द' कभी का बन्द हो चुका था। उस कमी को पूरा करने के लिए एक नया साप्ताहिक शुरू हुआ, तो उसके सम्पादन की थोड़ी जिम्मेदारी मुझे भी दे गयी। चार पन्नों का था वह, बाद में आठ पन्नों का हुआ। फिर हम कुछ विशेषांक भी प्रकाशित करने लगे। ऐसे ही एक विशेषांक में एक परिसंवाद आयोजित किया था—'जनतंत्र और जाति प्रथा'। भला इस विषय पर भँवरमल जी से आग्रह किये बिना मैं कैसे रहता? सहमे-सहमे मन से पत्र लिखा और सचमुच उनकी टिप्पणी आ गयी। अपरिचित, किन्तु विचारों से जुड़े हुओं के प्रति यह उनकी सहज सहृदयता का ही परिचायक था।

बाद के वर्षों में तो इस सहृदयता का दर्शन अनेक बार हुआ। कब की घटना है, यह तो याद नहीं। शायद १९७५-७६ की। धर्मयुग कार्यालय में काम में जुटा था। तभी कोई बुजुर्ग सज्जन भारती जी के कक्ष में से निकले और सामने आ खड़े हुए। परिचय दिया, तो मैं चौंक गया। जिन भँवरमल सिंघी के लिखे को वर्षों से मन ही मन सराहता रहा हूं, जिनके बेलौस व्यक्तित्व, समाज-सुधार के प्रति अटूट निष्ठा की कितनी ही घटनाएं सुनता रहा हूं—वे सामने खड़े हैं। मैं खुलकर कुछ कह भी पाऊं उसके पहले ही वे मेरे लेखन में अपनी गहरी दिलचस्पी दरसा रहे हैं। पत्र-पत्रिकाओं के दफ्तर के साथ जुड़े तमाम तनाव की तपिश के बीच उनके आत्मीयतापूर्ण शब्द बहुत गहरे तक ठंडक दे गये।

अकसर बुजुर्ग लोग कम उम्र लोगों से खुद पहल करके मिलते नहीं। मिलते भी हैं, तो अपनी बुजुर्गियत, अनुभव और पांडित्य के बोझ से दबे-दबे। किन्तु यह एक अलग ही अनुभव था। वे अपने बारे में बताने से ज्यादा मेरे बारे में जानने में दिलचस्पी ले रहे थे। अपने लिखे की चर्चा करने के बजाय मेरे टूटे-फूटे लेखन का सहृदयता से जिक्र कर रहे थे। यदि कोई बुजुर्ग आपसे यह कहे कि वह आपके लिखे को ध्यान से पढ़ता है, उसे पसन्द करता है, तो आपको कैसा लगेगा? फिर ये तो एक ऐसे बुजुर्ग थे जो मेरे लिए प्रेरणादायी भी रहे थे। वर्षों पहले ऐसा ही अनुभव अपने नौसिखिया लेखन के बारे में लोहियाजी के प्रोत्साहन के शब्द सुनकर हुआ था।

इस घटना के दो-तीन वर्ष बाद। १९७९ का मार्च-अप्रैल महीना। बम्बई अस्पताल में रोग-शैया पर पड़ा स्वास्थ्य लाभ कर रहा था। हृदयरोग के जबरदस्त झटके से आगे गहरा अन्धकार दिख रहा था। आत्मविश्वास डिग चुका था और मन बेहद कमजोर हो गया था। गहन निराशा के बीच उन दिनों जिन शुभेच्छुकों ने बिखरे ताने-बाने को जोड़ने को प्रेरित किया उनमें सिंघी जी भी थे। अजीब संयोग की बात कि उन्हीं

दिनों बम्बई में अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन का अधिवेशन था। सिंघी जी उसके अध्यक्ष थे। मेरे किसी मित्र ने उन्हें मेरी बिमारी के बारे में सूचित किया। सम्मेलन की तमाम व्यस्तता के बीच वे समय निकाल अगले ही दिन श्रीमती सिंघी के साथ फूलों का गुलदस्ता लिए अस्पताल आ पहुंचे। उनके बुजुर्ग चेहरे पर खिली दिलासा और प्रेरणा की स्मित-रेखाओं और शुभेच्छा के शब्दों ने भीतर ही भीतर बिखरे ताने-बाने को फिर से बुनने में जो मदद की उसे भूल नहीं सकता।

हाल के वर्षों में सिंघी जी से चार-पांच बार मुलाकातें हुई हैं। वे थक रहे हैं। आयु और रोग का प्रभाव शरीर को कमजोर करने लगा है। पर मन का संकल्प, विचारों की ताजगी और विषम से विषम परिस्थिति में भी जूझते रहने का उनका जीवन आज भी वैसा ही है, जैसा वर्षों पहले था। उनसे होनेवाली हर मुलाकात, बीच-बीच में मिलनेवाले उनके आत्मीयतापूर्ण पत्र, विचारहीनता और दो-मुंहेपन के इस दौर में मन पर बरबस घिर जानेवाली उदासी और निराशा के धुंधलके में विचारशीलता और सामाजिक चेतना की ज्योति जगा जाते हैं। उनका अभिनंदन करना इस सदी में अपने सामाजिक इतिहास के एक उज्जवल अध्याय को ही पुनः स्मरण करना है। सिंघी जी दीर्घायु हों। सामाजिक संवेदन-हीनता के इस युग में उनके जैसे अन्तरात्मा के प्रहरी की पहले से कहीं अधिक जरूरत है।

भँवरमल सिंघी : एक चिनगारी का नाम

कृष्णचंद्र अग्रवाल
सम्पादक विश्वमित्र

मुझे लिखा गया कि श्री भँवरमल सिंघी के लिए आपको लेख लिखना ही है। मैंने कभी लिखने से इन्कार नहीं किया। श्री घनश्यामदास जी बिड़ला ने कहा था कि "किसी का अभिनंदन वह क्या करे जो उसे निकट से जानता ही न हो। वह अभिनंदन नहीं केवल तमाशा होता है।" बात सच है। मैं सिंघी जी को अच्छी तरह जानता हूं अतः लिखने का अधिकारी हूं।

भँवरमल सिंघी राजस्थानी समाज में सबसे उपयुक्त शब्द में कहा जाय तो एक चिनगारी का नाम है। इस समाज में सन् १९३० में सीताराम जी सेकसरिया, मूलचंद्र जी अग्रवाल एवं बसन्तलाल जी मुरारका के त्रिगुट ने सामाजिक क्रांति के निमित्त एक सामाजिक यज्ञ का प्रारंभ किया था जिसमें से ही एक चिनगारी प्रकट हुई भँवरमल सिंघी। धुँआ बहुत हुआ, समाज में गहरी हलचल हुई। और भी कई चिनगारियां निकलीं जो अधिक और कम जलती रहीं। पर सिंघी जी ने अपनी तरुणाई इन तीन सामाजिक नेताओं को पूर्ण रूप से समर्पित कर दी। तीन नेता तीन प्रकार से राजस्थानी समाज में कुरीतियों, अंधविश्वास और पिछड़ेपन के खिलाफ अपने-अपने तरीके से संघर्ष कर रहे थे।

सीताराम जी ने महिला शिक्षा, खादी, हिन्दी प्रचार, देशप्रेम और गांधी जी के संदेश के प्रचार का भार एक साथ विना साधन होते हुए भी अपने कंधों पर उठाया। उनका सक्रियता किन्तु मौन साधना में अधिक विश्वास था। वसन्तलाल जी मुरारका फायर-ब्रांड थे। वे दिन-रात अलख जगाने और हर क्षण हर किसी कुरीति के विरुद्ध मोर्चा वनाकर संघर्ष करने को प्रस्तुत रहते। कभी-कभी वे इतनी शीघ्रता में और इतनी कटुता के साथ अपना जोश प्रकट करते कि साथियों को धर्म-संकट भी हो जाता। वे इतनी जल्दी में थे कि चाहते थे कि एक दिन में ही सारी कुरीतियों को जला दिया जाय। वुरी प्रथाओं को फूंक दिया जाय। राजनैतिक तरीके से हो या सामाजिक सत्याग्रह के माध्यम से हर दिन उनका विद्रोह का झंड़ा उड़ता रहता।

मूलचंद्र जी अग्रवाल वास्तव में सीताराम जी के गाँधीवादी हृदय और वसंतलाल जी मुरारका के उग्रवादी कार्यकलाप के वीच सेतुवंध रामेश्वर थे। और मौके वे मौके तराजू के दोनों पलड़ों को समझा-वुझाकर ठीक संतुलित कर लेते। अपनी लौह लेखनी में वे वसन्तलाल जी से भी अधिक उग्रवादी थे किन्तु हृदय से सीताराम जी की नीति को अधिक प्रश्रय देते।

इतना कुछ इसलिए संक्षेप में लिखना पड़ा क्योंकि ऐसे त्रिगुट के सम्पर्क में आज के जीवन-चरित्र के नायक भँवरमल सिंघी उन दिनों आए। यह भी उल्लेखनीय है कि अव सिंघी जी का अभिनंदन हो रहा है और सिंघी जी ने ही सर्वप्रथम सामाजिक कार्य-कर्ताओं के अभिनन्दन की परम्परा डाली जिसमें पहला अभिनंदन उन्होंने सन् १९४५ में विश्वमित्र के संस्थापक मूलचंद्र जी अग्रवाल का किया जव विश्वमित्र की रजत जयंती समारोह का आयोजन मैंने ५ वर्ष विलंव से किया था। विश्वमित्र का प्रकाशन सन् १९१५ की १ जनवरी को हुआ था। वंगाल के तत्कालीन प्रमुख उद्योग मंत्री श्री नलिनी रंजन सरकार ने श्री विशुद्धानंद विद्यालय के सभागार में इस प्रथम अभिनंदन की अध्यक्षता की थी। इसके वाद मृत्यु के निकट क्रांतिकारी वसन्तलाल जी मुरारका का लोकनायक जयनारायण व्यास और श्री राजवहादुर की उपस्थिति में सिंघी जी ने अभिनंदन का आयोजन किया और आखिरी सीताराम जी सेकसरिया का महादेवी जी वर्मा की उपस्थिति में। इस प्रकार भँवरमल जी ने अपने सामाजिक जीवन के तीनों नेताओं के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की।

चिनगारी जब शोला बनी : उन दिनों मैं अंग्रेजी से दैनिक "एडवांस" का प्रकाशन भी करता था और सवेरे ८ वजे से कार्यालय में पहुंच जाया करता था। एक दिन जव पूरे कार्यालय में अकेला था, एक परिचित युवती मेरे सामने गुस्से में तमतमाती हुई आयी। आकर वैठी और प्रश्न किया कि उस दिन के "दैनिक विश्वमित्र" में यह समाचार कैसे और किस सूत्र से प्रकाशित हुआ कि उसका पुनः विवाह हो रहा है। आज इस प्रकार के समाचार का इतना महत्व नहीं रहा, किन्तु ४० वर्ष पूर्व यह समाचार समाज में खलवली उत्पन्न करने वाला धड़ाका था।

वह युवती पूर्व रेलवे के एक वरिष्ठ अधिकारी रायसाहव अशर्फीलाल जैन की पुत्री सुशीला जैन थी। पिता जी श्री मूलचंद्र अग्रवाल ने वसन्तलाल जी से सूचना प्राप्त करके वड़े शीर्षक में इस "सामाजिक क्रांति" की सूचना देते हुए युवक और

युवती को बधाई दी थी। सवेरे से ही खलबली मच गई थी। और समाचार सत्य होने पर भी इस प्रकार अचानक प्रचार से जैन परिवार को जवाब देना कठिन हो गया था। युवक श्री भँवरमल सिंघी थे।

तब तक समाज में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं हुआ था। केवल सभाओं में चर्चा ही होती थी। इसके पूर्व जहां तक मुझे स्मरण है केवल एक अन्य उल्लेखनीय विधवा-विवाह कानपुर के समाज सेवी एवं जुग्गीलाल कमलापत उद्योग समूह से संबंधित श्री नवल किशोर भरतिया का हुआ था।

गाड़ी चल पड़ी : श्री भँवरमल जी सिंघी जो तब तक चिनगारी के रूप में ही थे, इस विवाह के बाद शोले बन कर चमक उठे। इसके बाद उन्होंने कभी मुड़कर नहीं देखा। पारिवारिक जीवन के दोनों पहियों का सामंजस्य मिलने के कारण क्रांतिकारी जीवन के अगले वर्षों का सफर सुगम हो गया।

सुशीला सिंघी ने महिलाओं का मोर्चा सँभाला। तब तक राजस्थानी महिलाओं में सामाजिक अथवा राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाएं-भगवान देवी सेकसरिया, स्वदेश्वरी देवी अग्रवाल, रमादेवी मुरारका, बहुत शिक्षित नहीं थीं और केवल अपने जीवन-साथियों को यथाशक्ति साथ दे रही थीं। यों, यह भी बहुत बड़ी बात थी कि तीनों देवियों ने तीनों नेताओं को पारिवारिक चिंता से मुक्त कर रखा था और घर में भले ही राशन नहीं हो किन्तु पचासों कार्यकर्त्ताओं का भोजन दो घण्टे की नोटिस में ही आयोजित कर लेती थीं।

सुशीला सिंघी का साथ मिलने से भँवरमल जी को महिलाओं से सीधा संपर्क करने का मौका मिला जो पर्दा और अन्य प्रथाओं के कारण लोहे की दीवार बना हुआ था। भँवरमल जी में आत्म-विश्वास जाग्रत हुआ और उन्होंने स्वयं युवा-पीढ़ी का एक दल बनाया जो "तरुण-संघ" बना। उनके जैसे दर्जनों युवक-युवतियां धीरे-धीरे उनके झण्डे के नीचे एकत्रित होते गये। एक के बाद एक मंजिल पार करते गये। राजस्थानी समाज की परिधि से बाहर निकल कर बंगाली समाज की समविचार धारा के साथ सम्मिलित हुए। कार्य-क्षेत्र व्यापक होता गया। सामाजिक कार्य के साथ ही साहित्य में सदैव रुचि रही। लेखन के साथ ही प्रभावशाली वक्ता भी। धीरे-धीरे दिल्ली और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी सिंघी दम्पति ने प्रवेश किया। नई कहानी आज की पीढ़ी को ज्ञात है, इसलिए बस इतना ही।

अपने में लौटने वाली नदी : भँवरमल सिंघी

राजेंद्र यादव
सुप्रसिद्ध साहित्यकार

मेरे लिए आज भी यह तय कर पाना मुश्किल है कि उन दिनों कलकत्ते में अगर मेरा परिचय श्री भँवरमल सिंघी और फिर उनके माध्यम से श्री भगवती प्रसाद खेतान से न हुआ होता तो मेरी जिन्दगी की रूपरेखा क्या होती? हो सकता है मैं

आज भी ज्ञानपीठ की नौकरी कर रहा होता या वच्चूप्रसाद सिंह की तरह हिन्दी टीचिंग स्कीम से किसी और विभाग में रिटायरमेण्ट के निकट होता या फिर··· ।

१९५१ में एम०ए० करने के वाद मैंने तय कर लिया था कि लेखक ही वनना है, कोई नौकरी नहीं करनी या कम से कम पढ़ाने का काम नहीं करना है। किसी पत्र-पत्रिका में अस्थायी नौकरी करूंगा, ताकि लेखकीय जीवन के संघर्षों का हिस्सा वनकर निकट से उसे देख सकूं। एक डेढ़ महीना प्रभाकर जी के पास सहारनपुर में 'ज्ञानोदय'' में रहा, 'प्रवाह' के सम्पादकीय विभाग में जाने लिए स्व० व्रिजलाल वियाणी के पास अकोला गया, स्वयं दो-एक उलटे-सीधे काम किये और पूजा के अवसर पर १९५३ में कलकत्ते आ गया। जीजा जी मेजर थे और हेस्टिंग्ज में रहते थे। दरअसल गया था मैं कलकत्ते में रहने की संभावनाएं देखने। सिंघी जी के नाम आगरा से रावी जी का पत्र लाया था। सीधा पत्र-व्यवहार था "नया समाज" के सम्पादक कथाकार मोहनसिंह सेंगर से। उन्हीं दिनों रतु सरकार लेन में सिंघी जी से भेंट हुई।

ये वे दिन थे जव सिंघी जी कलकत्ते के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र थे और अपने विद्रोही तेवर के साथ "तरुण" निकालते थे। अनामिका' की नींव पड़ रही थी। जव मैं पहुँचा तो शायद "अनामिका" के ही दो-तीन लोग वैठे थे। सिंघी जी का भव्य व्यक्तित्व आत्मविश्वास से खनकती आवाज और निर्णायक होने का अहसास एक सम्मोहक प्रभाव छोड़ता था। मैं कलकत्ता आना चाहता था और इसके लिए चाहिये था एक आधार 'प्रवाह' के संचालक श्री वियाणी भी गद्य-गीत और लघु-कथाएं लिखते थे। मेरी रचनाएं देखकर उन्होंने कहा था, "आप वर्ग-संघर्ष में विश्वास रखते हैं और हम वर्ग-सामंजस्य में। आप प्रगतिशील हैं, इसलिए 'प्रवाह' में आना मुश्किल होगा।" गद्यगीत सिंघी जी भी लिखते और उनके संग्रह की भूमिका स्वयं रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखी थी। मगर सिंघी जी ने कहा, 'आप प्रगतिशील हैं, सामाजिक कुरीतियों को वदलने की वात सोचते हैं, इसलिए साथ आने में दिक्कत तो नहीं होनी चाहिए" फिर उन्होंने वताया कि 'तरुण' और 'नया समाज' दोनों की आर्थिक स्थितियां ऐसी नहीं है कि वहाँ कोई गुंजायश हो, हाँ, आप आ जाइए, कुछ न कुछ तो होगा ही। आपकी जरूरतें क्या हैं? सव मिलकर सिंघी जी वहुत आत्मीयता और सहानुभूति से मिले थे।

मेरे हाथ में उन दिनों "योग-दर्शन और हिन्दी कविता" नाम के शोध का झुनझुना था और उसे मैं परम-गंभीरता से अकसर वजाया करता था। हालांकि शायद तव भी जानता था कि मुझे तो अपना ही लिखना है। "किसी ट्रस्ट या व्यक्ति से कुछ न कुछ हो ही जायेगा, वाकी आप अपना लिखिए-पढ़िए" सिंघी जी ने आश्वासन दिया था। नाश्ता करके, कलकत्ते में रहने के सपनों की जुगाली करता मैं परम-प्रसन्न लौटा था। शाम को काफी-हाउस में सेंगर जी को वताया। 'नया समाज' के प्रति संचालकों की घटती हुई रुचि के कारण सेंगर जी मारवाड़ियों की पैसा प्रवृत्ति का मजाक उड़ाया करते थे और उनके कटु-आलोचक थे। जो कुछ उन्होंने कहा उसका सार यही था कि सिर्फ एक व्यक्ति के आश्वासन पर कलकत्ता आने का निर्णय लेने

से पहले सोच लीजिए, क्योंकि बहुत आसानी से अपने वायदे से मुकर जाना भी मारवाड़ियों का एक गुण है। लेकिन मैं कलकत्ते में सिवा डा० सत्येन्द्र के किसी को भी नहीं जानता था। हाँ, 'ज्ञानोदय' तब तक वहीं आ गया था और मैं अपने सहारनपुर के अनुभव आधार पर वहाँ भी कुछ उम्मीद कर सकता था।

बहरहाल, मैं आगरा वापस आ गया और, १९५४ में बोरिया-बिस्तर लेकर फिर कलकत्ता। आठ-दस दिनों जीजी के पास रहा, फिर कृष्णाचार्य के साथ डायमण्ड-हार्बर रोड। सिंघी जी ने सौ रुपये महीने का प्रबन्ध कर दिया था, श्री भगवती प्रसाद खेतान के माध्यम से। "जब तक तुम्हारा अपना कोई प्रबन्ध न हो, यह लो और जो भी करना हो करो।" फिर मेरा संकोच तोड़कर बोले, "बदले में 'तरुण' में कुछ लिखते रहिये…" सिंघी जी के व्यवहार की बेतकल्लुफ़ आत्मीयता ने मेरे हर अगर-मगर को स्थगित कर दिया था। अब वे सदर्न-एवेन्यू में डा० मेघनाथ साहा के मकान की तीसरी मंजिल पर आ गये थे।

फिर एक दिन मैंने जाकर कहा, "इस तरह पैसे लेने में मुझे संकोच होता है। बदले में मैं कुछ करना चाहता हूं।" सिंघी जी ने गौर से मुझे देखा और चुप हो गये। अगले दिन बताया "हफ्ते में एकाध दिन तुम भगवती बाबू के बच्चों को हिन्दी-साहित्य के बारे में कभी-कभी बता दिया करो।" दो महीने बाद ही मैंने उन्हें बताया कि "बच्चे पहले ही होम-वर्क से आक्रान्त रहते हैं, इसलिए यह सिलसिला बहुत संतोषजनक नहीं है।" मगर इस बहाने श्री भगवती प्रसाद खेतान से जो बड़े और छोटे भाई का सम्बन्ध बना वह आज तक बना है। मन्नू उनके स्कूल 'बालिका शिक्षा-सदन' में पढ़ाती थी इसलिए हमलोगों के विवाह में वे मन्नू के पिता की भूमिका में आये थे। मैं उनके हिसाब में हिन्दी-अंग्रेज़ी की मंहगी पुस्तकें खरीद लिया करता और मन हुआ तो पढ़कर उनके व्यक्तिगत पुस्तकालय में दे आया करता। हम लोग अक्सर किताबों पर बातें किया करते।

हां, तो अब मैं दो विरोधी दुनियाओं में रहने लगा था। एक सेंगर जी के साथ की काफ़ी हाउस की दुनिया—जहां मारवाड़ियों की धूर्तताओं, मूर्खताओं, बेइमानियों और पैसा-परस्ती की आलोचनाएं, मज़ाक थे और दूसरी तरफ़ थे सिंघी जी और भगवती बाबू—जिनसे कामू के 'आउट-साइडर' पर दो-दो घण्टे बातें होती थीं। सिंघी जी से अक्सर ही घर पर महीने में दो-एक बार मिलना होता, सुबह आठ के आस-पास। उन दिनों न कहीं सुबह पहुंचना पहाड़ लगता था और न ही एपोइंटमैण्टो हिचकिचाहट थी। सुशीला जी प्रेम से नाश्ता कराती थीं और दुनियाभर की योजनाएं बताती रहती थीं। उनका बचपन भी मथुरा जिले के उसी सुरीर क्षेत्र में बीता था जहां मेरा। उन दोनों का दूसरा विवाह था और यह काफ़ी क्रान्तिकारी कदम माना जाता था। उन दिनों वे सिंघी जी के बड़े पुत्र श्री कांत और अपने सम्बन्धों की जटिलताओं से गुज़र रही थीं।

मैं सिंघी जी के आत्मविश्वास, देह और दिमाग की चुस्ती, नियमबद्धता और सामाजिक कार्यों के प्रति उनके सरोकार से प्रभावित था। मुझे लगता कि अगर ये गुण हों और आदमी के पास एक सपना या विज़न हो तो वह क्या-कुछ नहीं कर सकता। साधन तो थे ही। पैसेवालों का उनपर विश्वास भी था। मैं हमेशा कहा

से उत्प्रेरित होकर लौटता। लिखने-पढ़ने की बातें होतीं, मेरे भविष्य की योजनाएं बनतीं, संशोधित होतीं और हास-परिहास का वातावरण घरेलू सम्बन्धों का प्रभाव बनाये रखता। बाद में तो मिलना कम होता गया मगर प्रारंभ में कलकत्ता के महासागर में 'बिना लंगर का जहाज़' की भावना शायद इसी परिवार के कारण मेरे भीतर नहीं आ पायी। सुशीला जी बहुत घी-मसाला डालकर आलू की एक विशेष सब्जी बनाती थीं। एकबार मुझे भी बुलाया। आगरा के लोग वैसे भी ज़बान के चटोर होते हैं, फिर अभी तक कलकत्ते ने मेरी भूख को अपने गिरफ़्त में नहीं लिया था। शायद कुछ ज्यादा ही खा गया। वही सिंघी जी के यहाँ मेरा अन्तिम भोजन था। बाद में नाश्ते से ही काम चलाया जाता रहा। वैसे वह सब्ज़ी याद अभी भी आती है।

तीन बार मैंने 'ज्ञानोदय' में काम किया और छोड़ा। दो-चार महीनों बाद ही या तो मुझे याद आने लगता कि अपना लिखना है या जगदीश जी से अनबन हो जाती और मैं घर आकर उपन्यास-कहानियां लिखने लगता। तभी जगदीश जी का पत्र पहुंचता, "भाई···" सिंघी जी हमेशा मेरे इस 'आवागमन' का मजाक उड़ाया करते। वे शायद सचमुच चाहते थे कि मैं एकाग्र-भाव से बैठकर लिखूँ। 'नया समाज' में तो मैं लिखता ही था, 'तरुण' में भी मेरे लेख आते थे, काफ़ी तेज़-तर्रार। फिर 'तरुण' बन्द हो गया। सेंगर जी रेडियो में चले गये। सिंघी जी भी अब समाज-सुधार या सांस्कृतिक कार्यों से हटकर क्रमशः शिक्षा-जगत तक ही सीमित होने लगे थे। वहां न मेरी रुचि थी और न ही गति। फिर लेक गार्डन में सिंघी जी का अपना मकान बन गया और वे वहां आ गये। यानी पहुंचने का रास्ता और टेढ़ा हो गया।

उद्दाम बहती नदी को तालाब में सिकुड़ते हुए देखते जाना बहुत सुखद दृश्य नहीं होता। 'मैं' शब्द का प्रयोग सिंघी जी पहले भी करते थे, मगर तब उसकी व्याप्ति 'हम सब' और अनुगूंज 'वे सब' तक होती थी। अब वह धीरे-धीरे एकार्थी 'मैं' हो रहा था। व्यक्तित्व की जिस ऊर्जा, क्षमता और प्रतिभा के साथ सिंघी जी ने समाज में जिहादी क़िस्म के युवकों का दल तैयार किया था उसकी स्वाभाविक परिणति तो यही थी कि वे पर्दा-प्रथा, दहेज विरोध या धार्मिक-अन्धविश्वासों के खिलाफ़ शुरू की गयी लड़ाई को 'मारवाड़ी समाज' से उठाकर बड़े धरातलों पर ले जाते, समाज की और अधिक मूलभूत विषमताओं को अपना कार्य-क्षेत्र बनाते···समाज-सुधार का आग्रह गहराई में उतर कर समाज-परिवर्तन की ज़रूरत में बदलता···मगर किन्हीं भी कारणों से ऐसा नहीं हुआ···शायद सुरक्षा की भावना, शायद एक विशेष प्रतिष्ठा और सुविधाओं में जीने का अभ्यास, सही वक्त पर निर्णय न ले सकने की पारिवारिक और व्यक्तिगत मजबूरी अर्थात् खंडित व्यक्तित्व के अंतर्विरोधों की पहचान को स्थगित करते जाने के बहाने···या फिर आगे फैले हुए राजनीति-सागर के विस्तार में खो जाने का भय···

करिश्मेवाला व्यक्तित्व, परिवर्तनकामी, स्वप्नदर्शी युवावर्ग को अपने साथ बांध तो लेता है, मगर उसे दिशा देने के लिए जो गत्यात्मकता (डायनेमिज़्म) चाहिए, सिंघी जी बार-बार उसी सीमा से लौट आते रहे होंगे। नेता का लौटना साथियों को दिग्भ्रमित और विक्षुब्ध छोड़ जाता है। गांधी जी के आह्वानों पर चरम तक पहुंचे

हुए जनान्दोलन जब-जब स्थगित हुए—हर बार युवावर्ग को हताश और दिग्भ्रान्त छोड़ गये। काफ़ी-हाउस या दूसरी जगहों पर अक्सर ही ऐसे मारवाड़ी युवकों से भेंट हो जाती थी जो कभी सिंघी जी के नेतृत्व में 'घरनों' और प्रदर्शनों में सक्रिय रहे थे मगर अब उनके बारे में चुप रहना पसन्द करते थे। वे उनके आलोचक नहीं थे, न उनकी शिकायत यह थी कि सिंघी जी ने उन्हें 'इस्तेमाल' किया या अपना कोई फ़ायदा उठाया। वे उनके व्यक्तित्व के चुम्बक और चकमक दोनों से प्रभावित थे—मगर कहीं कुछ था जो उन्हें ठण्डा छोड़ गया था। उधर सिंघी जी छिटपुट लेखों या 'शिक्षायतन' की प्राध्यापिकाओं के अनुशासन में ही अपनी सार्थकता तलाश कर रहे थे। शायद उन्हीं दिनों सुशीला जी ने काश्मीर से लिखा हुआ उनका एक पत्र अलग-अलग हम सबको सुनाया था। अपने कार्य-क्षेत्र से दूर, एकान्त में उन्हें अपने भीतर उतरने और आत्मविश्लेषण कर सकने का अवसर मिला था। उन्होंने कहा था कि वे 'अहं' की दीवारों में अपने को इस तरह क़ैद करते चले गये कि धीरे-धीरे सभी से उनका संवाद क्षीण होता गया। कर्मठता में व्यक्त होनेवाली ऊर्जा अब सिर्फ़ 'मैं' सर्वनाम में ही सिमट कर रह गयी। बाहरी स्थितियों की हर परिभाषा और हर अपनी स्मृति उन्हें निरन्तर इसी सर्वनाम तक ले जाकर लौटती रही।

निस्सन्देह सिंघी जी मेधावी व्यक्ति हैं और उनमें प्रथम-कोटि के जन-नेता बनने का परिमार्जित व्यक्तित्व है। कर्म के क्षेत्र से छूटकर वे आसानी से लेखन या पत्रकारिता को अपना क्षेत्र चुनते तो निश्चय ही उनके व्यक्तित्व की तेजस्विता एक सार्थक धार ग्रहण कर लेती। मगर सही अवसर की प्रतीक्षा करनेवाले हर आशावादी की तरह वे अपने आपको अकेला ही करते चले गये। सिंघी जी की बनावट वाले व्यक्तित्व जन-सम्मान की उन ऊंचाइयों पर पहुंचकर अकेले पड़ जाने का जोखिम नहीं उठाते, वे अरविंदाश्रम जैसी 'आध्यात्मिक ऊंचाइयों' में आत्म-संतोष खोजने लगते हैं। मगर उनकी तर्कबुद्धि ने वहां जाकर हथियार नहीं डाले, इसके प्रति मेरे मन में सचमुच उनके लिए गहरा सम्मान है। फिर उनके जैसे सुदृढ़ व्यक्तित्व की आन्तरिक मांस-पेशियों पर पक्षाघात की शुरूआत कब और कैसे हुई।

प्रबुद्ध और बौद्धिक रूप से चौकन्ने व्यक्ति को अपनी क्षमताओं का आश्वासन बाहरी उपलब्धियों की मान्यता से ही मिलता है, मगर व्यक्ति और समाज का यह संवाद दुहरा या द्वन्द्वात्मक है। कभी-कभी मान्यता पाने की उतावली में हम इस संवाद को जरूरत से विश्वास खोने लगते हैं। इस नाजुक क्षण में अगर इस विश्वास को साधनेवाली दृष्टि या दर्शन न हो तो केन्द्र या नियंता अपने आपको ही मानने का सिलसिला शुरू हो जाता है। तब विश्वास की जगह जिद ले लेती है और आत्म सिर्फ़ 'मैं' रह जाता है। तूफान में बचे हुए तख्ते की तरह तब यह 'मैं' हमें इतना अधिक कीमती लगता है कि हर लहर उसे डुबाने या खाने आती हुई लगती है। नतीजे में हम और अधिक सिकुड़-सिमट कर अपने अतीत के एकाकी अंधेरों में ही उतरते चले जाते हैं, क्योंकि यहीं वह गौरव और सम्मान बचा हुआ दिखायी देता है जिसे आप कभी बाहर से प्राप्त किया करते थे। शायद यही कारण है कि अपने वर्ग को नकारनेवाला हर प्रतिष्ठित और सम्भ्रान्त व्यक्ति क्रमशः उन सम्पर्कों को काटता चला जाता है जो उसे

"तू" कहकर सम्बोधित कर सकते हैं या जिनके सामने वह फिर से "छोटा या बराबर" का हो जाता है। उसे अपने से 'छोटों' के बीच ही 'बड़े' होने का आश्वासन मिलता है इसी स्थिति पर मैंने कभी एक कहानी लिखी थी, "नये-नये आनेवाले" जहां एक विशेष ऊंचाई पर पहुंचा हुआ सम्भ्रान्त व्यक्ति पुराने परिचित मित्र के नौजवान पुत्र की भाषा कोशिश करने पर भी नहीं समझ पाता, और यह चीज उसे बेचैन किये हुए है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्री भँवरमल सिंघी के साथ समर्थ गद्य-गीतकार के रूप में जिस दूसरे रचनाकार को याद किया है वह हैं दिनेशनन्दिनी चोरड़िया। ठीक इसी तरह के व्यक्तिगत गद्यगीतों की वैभवशाली, रूमानी गलियों ने उन्हें जा निकाला डालमिया-हाउस की व्यावसायिक गहमा-गहमी में। भारत के सबसे प्रबुद्ध उद्योगपति की सहभागिनी ने एकदिन उस सारे गौरव-गरिमा को अन्धी दुनिया में डूबते पाया और तब उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए उपन्यासों को चुन लिया। चार-पांच उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने उस सब का विश्लेषण और सिंहावलोकन करने की कोशिश की। निश्चय ही ये उपन्यास बहुत महान नहीं है और उनमें व्यक्ति पूजा की छाया में अपने अपने आप को निर्दोष सिद्ध करने, या इस सबको कह देने का अपराध-बोध भी है, मगर ये उपन्यास ईमानदारी के साथ भारतीय पूंजीवादी समाज के अन्तर्विरोधों, उत्थान-पतन की कहानी को संवेदना की सचाई से कहने की कोशिश करते हैं।

सिंघी जी भी अपने आपको इस तरह स्थगित न करके अपनी अनुभव-यात्रा को कथा या आत्मकथा का रूप दे सकते थे—अपने ही समाज का वैज्ञानिक और वैचारिक विश्लेषण-विवेचन कर सकते थे कि क्यों स्वतंत्रता के बाद आनेवाला मध्यवर्गीय भारतीय युवक हर क्षेत्र में अपरिमित संभावनाएं दिखा सकने के बावजूद अनिवार्यतः एक बिन्दु पर आकर रुक जाता है और ऐसा लगने लगता है मानो उसका सारा संघर्ष एक सुरक्षित और संभ्रान्त जिन्दगी तक पहुंचने की यात्रा-भर थी। अपने सत्य की यह खोज हो सकता है केवल उपलब्धियों और आत्मप्रशस्तियों का ब्योरा हो न होती, उन फिसलनों और भूल-भुलैयों का भी जायजा होती जहां से यात्राएं दूसरी दिशाएं लेने लगती हैं—सामने की ओर न जाकर वापस अपनी ही ओर लौटने लगती हैं। तब निश्चय ही उनकी यह कहानी सिर्फ उनके 'मैं' की ही कहानी न होती, हम सबकी कहानी होती जो अपने-अपने स्तरों पर उसी एक टेक को जी रहे हैं। क्योंकि साहित्य का हर ईमानदार सच सिर्फ व्यक्ति का सच नहीं होता, अपने को अतिक्रमित करके वह हम सबका सच बनता है और तब यह बहुत प्रासंगिक नहीं रह जाता कि व्यक्ति का नाम भँवरमल सिंघी है या राजेन्द्र यादव। अजीब विडम्बना है कि जब हम सबका सच लिखने के दंभ से कलम उठाते हैं तो किसी का सच नहीं लिख पाते, और जब सिर्फ और सिर्फ अपना सच लिखते हैं तो न जाने कितनों का सच लिख रहे होते हैं। निश्चय ही सिंघी जी के पास इस गहराई में जा सकने की कलम, दृष्टि और साहस तीनों हैं।

सिंघी जी के कर्म क्षेत्र का एक कम चर्चित पहलू

रतन शाह

श्री सिंघी जी के बारे में लिखने को सोच रहा हूं तो यादों और संस्मरणों में होड़ सी लगी हुई है किसको लिखूं किसको छोड़ूं उनको लिपिबद्ध करता हुआ चलूं तो शायद यह बात स्पष्ट हो कि मेरे नजरिये में वे क्या हैं और मेरे जीवन पर उनका क्या प्रभाव पड़ा है। परन्तु यहाँ पर मैं कुछ इस तरह का नहीं लिख कर एक जानकारी प्रधान लेख लिख रहा हूं जो उनके कर्मक्षेत्र का बहुत ही कम चर्चित अध्याय है—श्री भँवरमल सिंघी और राजस्थानी।

कलकत्ते की आबोहवा में राजस्थानी भाषा और साहित्य की गूंज-अनगूंज मौजूद तो हमेशा ही रही है। यह अलग बात है कभी कम कभी ज्यादा। जब कभी सिलसिलेवार इतिहास लिखा जायेगा तभी सारी बातें सामने आयेंगी परन्तु जो फुटकर जानकारियां मिलती हैं वे भी निर्णायक व महत्वपूर्ण हैं।

बीसवीं सदी के चौथे दशक के समय राजस्थानी के फलक पर कलकत्ते में दो पुरोधा पुरुष उपस्थित थे—श्री रामदेव चोखानी व श्री रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया। श्री भँवरमल जी सिंघी उन दिनों कलकत्ता आये ही थे। जीवन का शैशव काल जिस व्यक्ति का राजस्थान की मिट्टी में गुजरा हो, वहाँ की महक से संवरा हो उसके दिल और दिमाग पर राजस्थान के साहित्य की अमिट छाप का रह जाना लाजिमी था। उस समय के हर उत्साही विद्यार्थी की शब्दावली टाड के इतिहास से प्रभावित होती थी। कहने की जरूरत नहीं है कि श्री सिंघी के मानस पर इन सबका जाने-अनजाने प्रभाव था। कलकत्ते में उस समय राजस्थान रिसर्च सोसायटी की स्थापना हो चुकी थी जिसके अध्यक्ष थे श्री रामदेव चोखानी और मंत्री रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया। श्री रामदेव जी चोखानी व्यवसायी होने के साथ-साथ साहित्यिक प्रवृत्तियों के धुरी-पुरुष थे। १९३७ की बात है ज्योग्राफिकल सोसायटी ऑफ द वर्ल्ड के अध्यक्ष सर फ्रांसिस यंग हसबैंड कलकत्ता पधारे थे। श्री चोखानी जी ने रिसर्च सोसायटी की तरफ से उनके स्वागत में एक बैठक का आयोजन किया। सर फ्रांसिस ने राजस्थान के साहित्य के बारे में कुछ सुनने की इच्छा जाहिर की। समस्या खड़ी हुई। समय कम है और इस विषय पर कौन बोले, कौन लिखे। नजर श्री भँवरमल जी सिंघी पर गई और उन्हें यह काम सौंपा गया। समय केवल २४ घण्टे का था और इस बीच लेख पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दूसरे दिन वितरित होना था। ३३, चासा धोबा पाड़ा लेन में श्री रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया ने एक प्रेस बैठा रखा था। उसी मकान में एक तल्ले पर श्री भँवरमल जी सिंघी अपनी प्रथम पत्नी के साथ रहा करते थे। श्री भँवरमल जी सिंघी ने बीड़े को उठाने की जिम्मेवारी इस शर्त के साथ ले ली कि उनका लिखा वे खुद ही पढ़ेंगे। शर्त मंजूर कर ली गई थी। रात भर श्री सिंघी जी जागते रहे, पत्नी केवल चाय देने के लिए कमरे में आती-जाती रही।

ज्यों-ज्यों पेज लिखा जाता रहा, टाइपों में ढलने के लिये नीचे भेज दिया जाता था। श्री रघुनाथ प्रसाद जी सिंहानिया का प्रेस उसी तत्परता के साथ उसे मुद्रित करता रहा और दूसरे दिन समय से पहले "जेम्स ऑफ राजस्थानी लिटरेचर" के नाम से छप कर एक छोटी सी पुस्तिका तैयार हो गई। इसमें राजस्थानी दोहों का अंग्रेजी अनुवाद भी था व टाड की शब्दावली के ढंग में ही राजस्थान के शौर्य को लिपिबद्ध किया गया था। जब लेख पढ़ा गया तो फ्रांसिस हसबैन्ड के साथ अन्य लोगों में भारी चर्चा रही। यह बैठक श्री सिंघी के आगे जीवन में भी मोड़ लेने वाली सिद्ध हुई। बैठक में उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० सुनीति कुमार चटर्जी उपस्थित थे तथा हमारे समाज के राजनीतिक समाज सेवी श्री ईश्वरदास जालान भी। सुनीति बाबू ने श्री सिंघी को बुलवाकर एम० ए० करने को प्रेरणा दी तथा श्री जालान जी ने उनसे सम्मेलन के मंच पर काम करने का वचन लिया। गैर राजस्थानी लोगों के सामने राजस्थानी साहित्य की अनुपम निधि को श्री सिंघी जी ने जिस रूप में रखा वह एक अविस्मरणीय घटना थी। साथ ही साथ यह पुस्तक इस बात की परिचायक थी कि श्री सिंघी जी ने राजस्थानी साहित्य का कितना गहरा अध्ययन किया है एवं उसके प्रति उनके दिल में कितना लगाव है। मैं इस लेख को श्री सिंघी जी के राजस्थानी सम्बन्धी अनजाने पक्ष तक ही सीमित रख रहा हूं क्योंकि अन्य बातों की चर्चा करने पर लेख का कलेवर बहुत बड़ा हो जायेगा। श्री सिंघी जी ने राजस्थानी साहित्य के सम्बन्ध में श्री रवि बाबू से चर्चा की और रवि बाबू ने राजस्थानी वीर रस के लिए अविस्मरणीय शब्द कहे। राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित "राजस्थान के गद्य-काव्यकार" पुस्तक के पेज नम्बर १९५ पर श्री भँवरमल जी सिंघी का परिचय दिया गया है और वे इतर समाज में राजस्थानी सम्बन्धी जानकारी के लिये समर्थ व्यक्तित्व के धनी माने जाते हैं। जैसा मैंने ऊपर लिखा है वे उसी समय से सम्मेलन से जुड़ गये थे और उन्होंने सम्मेलन के माध्यम से विभिन्न कार्य किये, राजस्थानी भाषा और साहित्य के विभिन्न समारोह करते रहे। दिसम्बर १९५३ की बात है, सम्मेलन के ७ वें महाअधिवेशन के अवसर पर राजस्थानी चित्रकला प्रदर्शनी का एक बृहत् आयोजन टाँटिया स्कूल में किया गया जिसका उद्घाटन गवर्नमेंन्ट कालेज आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट के प्रिंसिपल श्री रमन चक्रवर्ती के द्वारा हुआ था। जयपुर के रामगोपाल विजयवर्गीय, उदयपुर के श्री गोवरधन जोशी और कलकत्ते के श्री इन्द्र दुग्गड़ की कलाकृत्तियों को प्रदर्शनी में रखा गया था। सुप्रसिद्ध चित्र समीक्षक स्वर्गीय अर्धेन्दु कुमार गांगुली द्वारा उस चित्र प्रदर्शनी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी। इसी अधिवेशन के अवसर पर २ व ३ जनवरी को राजस्थान कवि दरबार के आयोजन की योजना भी श्री सिंघी जी के दिमाग की उपज थी जिसके लिये रिसर्च सोसायटी के मंत्री श्री रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया, राजस्थान पुरातत्व मंदिर के श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ने काफी प्रयास किया था। कवि दरबार में मीरा बाई, चन्द्र बरदाई पृथ्वीराज, बाकीदास, राजिया आदि विभिन्न कवियों के रूप में समाज के विभिन्न साहित्य अनुरागी व्यक्तियों को प्रस्तुत किया गया था पूरा कार्यक्रम अपने आप में अनूठा था जिसकी भारी प्रशंसा

हुई। ३ जनवरी को राजस्थानी कवि सम्मेलन हुआ था जिसमें श्री मुकुन्द, श्री कन्हैयालाल सेठिया, रेवतदान, गजानन वर्मा आदि कवियों ने भाग लिया था।

सम्मेलन के १९६१ के महाअधिवेशन के समय महाजाति सदन के सभागार में राजस्थान की रसधारा नामक एक नृत्य रूपक प्रस्तुत किया, जिनकी प्रयोजना श्रीमती ज्ञानवती लाठ के साथ श्री भँवरमल जी सिंघी ने की थी। इसी तरह ७ जनवरी १९७४ को अनामिका कला संगम के तत्वावधान में श्री भँवरमल जी सिंघी ने श्रीमती सुशीला सिंघी के साथ मिलकर "सैनाणी" नामक नृत्य-नाटिका भी मंच पर प्रस्तुत की जिसकी काफी दिनों तक चर्चा रही।

इस तरह से सामाजिक साहित्यिक एवं शैक्षणिक प्रवृत्तियों में ज्यादा घुल मिल जाने मे कारण जन्म के समय घूंटी के साथ पी हुई संस्कृति के प्रति अपने लगाव को श्री सिंघी समय-समय पर प्रस्तुत करते रहे हैं। १९६३ म रामकृष्ण मिशन द्वारा प्राचीन संस्कृति पर एक भाषण माला का आयोजन किया गया था। राजस्थान की संस्कृति पर बोलने के लिए श्री भँवरमल जी सिंघी आमंत्रित थे। श्री सिंघी जी ने दो व्याख्यान दिये जो हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड के पूजा विशेषांक १९६३ में "राजस्थान ओल्ड एण्ड न्यू" के नाम से प्रकाशित हुए। उपयुक्त लेख से कितने ही अहिन्दी भाषी लोगों में राजस्थानी संस्कृति के प्रति रुचि के अंकुर फूटे और उन्हें प्रसन्नतामूलक जानकारी मिली। सम्मेलन के मंच से पिछले दशक में मेरे आने के बाद राजस्थानी भाषा को संवैधानिक मान्यता, राजस्थानी भाषा, साहित्य व कला सम्बन्धी लोगों की पुरस्कृत करने की योजना आदि में श्री सिंघी जी की उत्साहप्रद प्रेरणा रही है। मैं कभी-कभी सोचता हूं कि श्री रामदेव चोखानी व श्री रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया के बाद कलकत्ता में राजस्थानी का फलक सूना-सूना क्यों हो गया था तो लगता है इनका एक कारण यह भी हो सकता है कि सिंघी जी जैसे बुद्धिजीवी अन्य कामों में फंस गये जो सम्भवतः उस समय की ज्यादा बड़ी जरूरत थी, राजस्थानी नहीं। परन्तु उन जैसे लोग इस प्रश्न पर समर्पित रूप से जुड़ जाते तो आज नक्शा बदला हुआ होता। राजस्थानी राष्ट्र की अन्य भाषाओं की तरह ही संवैधानिक मान्यता प्राप्त फली-फूली भाषा होती।

एक संत, साधु, सज्जन पुरुष

मोहनलाल गुप्त

सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं सिंघी जी के समधी

आज जब कि देश की आबहवा खराब हो रही है, वातावरण भ्रष्टाचार के प्रदूषण से विषाक्त हो रहा है, मूल्य, मूल्यहीन हो रहा है, राजनीति-नीति, नैतिकता-विहीन, कीचड़ का दलदल और काजल की कोठरी बन गयी है, सार्वजनिक जीवन भी

निष्कलुष नहीं रह गया है, ऐसे में जब कोई धवल व्यक्तित्व और निर्मल चरित्र का व्यक्ति सामने आ खड़ा होता है तो अपवाद स्वरूप लगता है।

इसी पृष्ठभूमि में श्री भंवरमल सिंघी का चित्र और चरित्र उभरता है देशसेवा का संकल्प, समाज सेवा का व्रत, जनसेवा को समर्पित निष्काम जीवन-यात्रा, सरल स्वभाव, धवल वेशभूषा, खादी की सादगी, गंगाजल की पवित्रता, शील-सौजन्य, शिष्टाचार और शालीनता की प्रतिमूर्ति—मन सहज ही श्रद्धाभिभूत हो उठता है। लगता है जैसे गांधीवाद पूर्ण और जीवंत रूप में सामने खड़ा है। आज हम गांधी जी को भूल सा गये हैं पर जब हम सिंघी जी जैसे कुछ लोगों को अपने बीच पाते हैं तो लगता है कि गांधीवाद मरा नहीं है। गांधी जी अभी भी जिन्दा हैं।

श्री सिंघी शत प्रतिशत गांधीवादी हैं। गांधी जी का वर्धा आश्रम आपका प्रेरणा स्रोत रहा है, आप गांधी जी के साथ चले हैं, गांधी जी के साये में पले हैं और गांधी जी के विचारों के सांचे में ढले हैं, आपका समस्त जीवन गांधी दर्शन से ओतप्रोत रहा है। सत्याग्रही मूल्यों के प्रति निष्ठा, सिद्धांतों, आदर्शों पर चट्टान की तरह अटल—कोई समझौता नहीं। त्यागमय-तपोमय-जीवन-देशसेवा, समाजसेवा, साहित्यसेवा के लिए पूर्ण समर्पित, क्रांतिकारी विचारों, सुधारों का वज्र-संकल्पी दृढ़ता से कार्यान्वय-समन्वय, समझौते के लिए कोई स्थान नहीं, उच्च जीवनादर्श की हर कसौटी पर खरे उतरते हैं सिंघी जी।

श्री सिंघी जी के बहुआयामी व्यक्तित्व का प्रसार और कार्यक्षेत्र का क्षितिज-विस्तार राजस्थान की सीमा पार बंगभूमि की राजधानी कलकत्ता में हुआ। सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र, हर दिशा में आपने अपनी छाप छोड़ी। राजनीति, साहित्य, शिक्षा, संस्कृति, ललित कला, समाज सेवा—कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा, कोई भी समस्या अनछुई नहीं रह पायी।

श्री सिंघी वज्र संकल्प के व्यक्ति हैं। उनके समाज सुधार के कार्यक्रम और क्रांतिकारी विचार केवल भाषण-प्रवचन तक ही सीमित नहीं रहे। पहला क्रांतिकारी कदम उन्होंने स्वयं उठाया। जो कहते हैं उस पर स्वयं आचरण भी करते हैं। आज के सार्वजनिक जीवन का सबसे बड़ा दोष है कथनी करनी का यह अन्तर। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' लोग अधिक दिखाई देते हैं। अभिनेता, नेता और बहुरूपिया जनसेवक की बाजीगरी, वाक्‌चातुरी और दुरंगे चेहरे सार्वजनिक मंचों पर देखने को मिलते रहते हैं। पर जब हम मंच-प्रकाश से दूर सेवारत साधनारत सिंघी जी को देखते हैं तो सूफी संत का कथन सत्य सा लगता है—'दुरंगी छोड़कर इकरंग हो जा।' लीक छोड़कर 'नव-निर्मित पथ पर' एकला चलो, का नारा लगाते हुए कभी श्री सिंघी जी को देखते थे पर संतोष की बात है कि आज समाज उनके साथ चल रहा है, उनके पीछे चल रहा है।

स्वातंत्र्य संग्राम के लम्बे संघर्ष ने सबसे बड़ी क्षति सामाजिक सेवाओं को पहुंचायी। देश के चुने हुए बुद्धिजीवियों, राष्ट्रकर्मियों को राष्ट्रीय आन्दोलन ने खींच लिया। फल यह हुआ कि सामाजिक संस्थाएं इनकी सेवाओं से वंचित रह गयीं। समाज-सेवा और समाज-सुधार का कार्यक्रम उपेक्षित हो गया। इस स्थिति को तृतीय कोटि

के स्वार्थी व्यक्तियों ने भरा जिसका कुपरिणाम हम आज भी देख रहे है। समाज आज बढ़ने की जगह पीछे खिसक रहा है। ऐसे अवसरवादी तत्व और स्वार्थी चेहरे हर सेवा-संस्था में चिपके हुए, समाज सुधार के क्रांतिकारी कार्यक्रम में रोड़े अटकाते दिखाई दे जायेंगे। कलकत्ता का सौभाग्य है कि समाज को प्रबुद्ध विचारकों और समाज सुधारकों का नेतृत्व, निर्देशन और सेवाएँ सुलभ रही हैं। समाज सेवकों की अग्रिम पंक्ति में श्री सिंघी जी का नाम भी प्रतिष्ठित है। कभी अपने क्रांतिकारी विचारों और समाज-सुधार कार्यक्रम के कारण ईंट-रोड़ों का, विरोधों-अवरोधों का सामना किया था। संतोष की बात है, आज समाज उनका पुष्पहार से स्वागत कर रहा है। आज राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक हर क्षेत्र में प्रगति के द्वार खुले हैं, नयी चेतना की लहर दौड़ी है पर उसका बहुत कुछ श्रेय उन महान समाज सुधारकों, जन सेवकों को जाता है जिन्होंने प्राचीन रूढ़ियों, परम्पराओं और अंधविश्वासों के नागपाश तोड़ने के लिए सामाजिक क्रांति का पांचजन्य फूंका था। समाज-सुधार एवं सामाजिक सेवा कार्यक्रम में प्रसिद्ध उद्योगपतियों के सहयोग का मूल्य भी कम नहीं आंका जा सकता।

आज व्यक्ति स्वयं-सेवी और स्वार्थी हो गया है। परिवार की परिधि में कैद होकर रह गया है। समाज-सेवा, देशसेवा की चिन्ता वह दूसरों को सौंप देता है। पर श्री भँवरमल जी इस भँवर-जाल से मुक्त उन्मुक्त विचरण करते रहे। अपने परिवार के प्रति दायित्वबोध होते हुए भी उन्होंने बृहत्तर परिवार के लिए अपने को समर्पित कर दिया। इसी परिवेश में पारिवारिकी की स्थापना हुई जहां फुटपाथ के बच्चों को शिक्षा के साथ ही परिवार की सुख-सुविधा भी प्राप्त है। 'पारिवारिकी' को देख कर लगता है कि हम पूर्णरूप से अंधे-बहरे नहीं हुए हैं। समाज में ऐसे भी लोग हैं जो गरीबों का दुःख दर्द सुनते हैं, उसके निवारण के लिए कुछ करते है। 'पारिवारिकी' एक ऐसी संस्था है जिस पर कलकत्ता के समाज को गर्व होना चाहिए। अपने परिवार की चिंता तो हरेक को होती है पर श्रीमती सुशीला सिंघी को अपने 'पारिवारिकी' की चिंता है। फुटपाथ के जो बच्चे अपराध जगत की वृद्धि करते हैं अब योग्य नागरिक बन रहे है। संस्था के कुशल संचालन का दायित्वभार श्रीमती सिंघी संभाल रही हैं। इनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय कम होगी। कलकत्ते के अनाथ बच्चों की सेवा के लिए एक विदेशी महिला के खूब ढोल पीटे गये। देश-विदेश के प्रेस ने कालम पर कालम रंगे पर 'पारिवारिकी' पर किसी पत्रकार की आज तक दृष्टि नहीं गयी। यह हमारी मानसिक दासता का परिचायक है।

सिंघी जी मेरे मित्रों के मित्र और सहपाठी रह चुके हैं। इसलिए मेरे भी मित्र हैं। पहली मुलाकात में ही उनकी सादगी, सरलता, मधुर स्वभाव से प्रभावित हुआ। प्रथम परिचय प्रगाढ़ मैत्री में परिणत हो गया। सिंघी जी अब मेरे समधी है। वैसे हम दोनों हम-उम्र, हम सफर हैं। एक साथ लेखनी चलायी, देश सेवा, समाज सेवा, साहित्य सेवा का व्रत लिया। मेरा कार्य क्षेत्र वाराणसी बना और सिंघी जी का कलकत्ता। समान प्रकृति, अभिरुचि, आकांक्षाएं और बौद्धिक धरातल ने मैत्री सेतु का निर्माण किया। आत्मीयता और हार्दिकता दूरियाँ कम कर देती है। साधुता, सज्जनता संबंधों में मिठास घोल देती है। जो एक बार मिला सदा के लिए

मित्र बन गया, स्वजन बन गया। सार्वजनिक जीवन में ऐसे सहृदय, संवेदनशील, संत, साधु, सज्जन पुरुष विरले ही मिलते हैं।

मैं श्री भँवरमलजी सिंघी का—एक संत, साधु और सज्जन पुरुष का अभिनंदन करता हूँ।

सिंघी जी

ज्ञानवती लाठ

सिंघी जी के संबंध में व्यक्तिगत संस्मरण लिखते समय अतीत की कितनी स्मृतियां चेतना में चित्रवत् अंकित हो गईं। स्मृतियों की झांकियां मुझे अतीत के उस काल-खंड में ले गईं जब मैंने सबसे पहले सिंघी जी को एक उद्यानवाटिका में एक समाज सुधारक गोष्ठी में देखा था। उनके व्यक्तित्व की छाप मेरे किशोर मन पर गहरी पड़ी। लम्बा कद, गौरवर्ण और बड़ी-बड़ी भावपूर्ण आंखें जिनमें विद्रोह के भाव झलकते नजर आए। उनका वह व्यक्तित्व आज भी मेरे मन में अंकित है।

इसके बाद मैं उन्हें दूर से ही देखा करती थी क्योंकि उस समय का समाज सुधार का दायरा पर्दा दूर करो आंदोलन, खादी पहनने और देश को स्वतंत्र करने की विवेचना तक ही सीमित था। स्त्री पुरुष अलग-अलग बैठते थे यहाँ तक कि एक बार मोटर में एक पुरुष को एक स्त्री के बगल में बैठने पर झिड़की मिली। जहाँ तक मुझे याद है उस जमाने में परिवार के व्यक्तियों के अतिरिक्त अकेली स्त्री के साथ कोई पुरुष सामने की सीट पर भी नहीं बैठ सकता था। जब तक सुशीला से भेंट नहीं हुई तब तक मैं उन्हें एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में ही जानती थी।

सुशीला से मेरी भेंट सबसे पहले मदनपाल्ली में हुई जहाँ हमारे दोनों परिवार इलाज की दृष्टि से गए थे। सुशीला मुझसे पहले चली गई थी और हमारे परिवार से बहुत घुलमिल गई थी। एक दिन नन्दू चाचाजी ने मुझसे कहा 'यह लड़की बहुत मेधावी, स्नेहशील तथा घर के कामकाज में चतुर है। अगर तुम किसी अच्छे नवयुवक को जानती हो जो इसके योग्य हो तथा विवाह करने में सहमत हो तो कलकत्ते जाकर इसकी शादी की चेष्टा करना।' यह चर्चा उन्होंने कई बार की। चाचा जी से ऐसी प्रगतिशील बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि समाज में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं के समान था। उसी समय अचानक उस नवयुवक का चित्र मेरे सामने आया, जिससे मैं किशोरावस्था में प्रभावित हुई थी।

कलकत्ते आकर मैं प्रसिद्ध समाजसेवी बसन्तलाल जी से मिली और उनसे इस विषय की चर्चा की। बसन्तलाल जी स्वभावतः बहुत उत्साही और कर्मठ व्यक्ति थे। कोई काम उनसे कहिए, इनकार का तो नाम नहीं। "अभी करता हूँ" कहकर उस काम में लगन के साथ जुट जाते थे। बहुत प्रयत्नों के बाद यह संबंध पक्का हुआ। संबंध पक्का होने के साथ-साथ भँवरमल जी से मेरा संबंध भी निकट का हो गया क्योंकि

इनकी कोर्टशिप के मैं और प्रतिभा सहयोगी तथा दर्शक थे। उस कोर्टशिप से इनके संबंध इतने गहरे हुए कि उसकी मिठास आज भी इस दम्पति के जीवन में है।

शादी के पहले एक दिन जब मैं सुशीला से मिली तो उसने बताया कि उसकी शादी का पौरोहित्य काका कालेलकर कर रहे हैं। मेरे मुंह से अचानक निकला "शादी ही क्यों कर रहे हो ? अब तो तुम्हारी मित्रता बहुत गहरी हो गई है, घनिष्ठ मित्र के रूप में रहो।" ऐसी बात कहने के पीछे कारण था। मुझे मालूम था कि गांधी जी जो शादी करवाते हैं उसमें दम्पति को स्वराज्य-प्राप्ति तक ब्रह्मचर्य पालन करना है। मैं असमंजस में पड़ गई। समय हाथ में बहुत कम था और शाम को सिंघीजी से मिलाने के लिए सुशीला का घर से उद्धार असंभव सा ही था। सुशीला के पिता जी के कठोर नियमों से बचकर जब सिंघी जी से मिले तो इस दृढ़प्रतिज्ञ युवक को अपनी दृढ़ता से डिगाना मुश्किल हो गया। घंटे-डेढ़ घंटे की बहस के बाद मैंने सिंघी जी को बहुत स्पष्ट शब्दों में समझाया कि "इस प्रतिज्ञा का निर्वाह बहुत कठिन है। आप दोनों विधुर हैं, शादी की क्या आवश्यकता है ? यदि ब्रह्मचर्य व्रत का ही पालन करना है तो फिर शादी क्यों ? आप इस बात को गहराई से सोचिए। देश में अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए एवं पत्रों में चित्र छपवाने के लिए यों दिखावटी प्रतिज्ञा करनी है तो बात दूसरी है।" बहुत समझाने के बाद मेरी बात से सहमत हुए और काका साहब की जगह सज्जन देवी महनोत (एम० एल० ए०, बनारस) ने पौरोहित्य का काम किया।

शादी के बाद नव-दम्पति के जीवन में नया परिवर्तन आया। दोनों समाज सुधार के भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्रों में जम कर जुट गए। तरुण-तरुणियों से रतू सरकार लेन का उनका मकान रात-दिन घिरा रहता था। स्थायी मेहमान के रूप में नया समाज नामक पत्रिका के सम्पादक मोहन जी सेंगर वर्षों सिंघी जी के साथ रहे। तरुण संघ नामक संस्था में एक सुन्दर पुस्तकालय था। साथ ही नित नए-नए सांस्कृतिक कार्यक्रमों की योजना बनती रहती थी। युवकों के दल के दल जिसमें गोविन्द प्रसाद कानोड़िया, गणेशमल बैद, चन्दनमल भूतोड़िया, इन्द्र दूगड़, श्रीचन्द जी मेहता, म्हालचन्द जी बोथड़ा, पुरुषोत्तम जी केजड़ीवाल आदि व्यक्ति सिंघी जी के साथ थे। ये लोग पर्दा-बन्दी तथा वृद्ध विवाह की रोक आदि के लिए विवाह-स्थल पर केसरिया दुपट्टा बांधकर जत्था बना-बनाकर, धरना देने जाया करते थे, मानों योद्धागण संग्राम में जूझने जा रहे हों। तिलक लगाने का भार प्रायः मुझ पर पड़ता था। भर्त्सना के साथ इन लोगों को कई बार लाठियों का सामना भी करना पड़ा था। आज वह समस्या नगण्य है किन्तु उस समय इसका बहुत महत्व था। सिंघी जी इन सबके अगुआ थे।

जिस युवक की आंखों में प्रथम भेंट पर मैंने विद्रोह के भाव लक्षित किए थे या जिसका मुझे आभास हुआ था उसका उग्र रूप मैंने मारवाड़ी सम्मेलन के एक अधिवेशन में देखा। शान्ति प्रसाद जी जैन स्वागताध्यक्ष थे, सिंघी जी वक्ता। चार घंटे का भाषण सूई की आवाज न हो उतनी स्तब्ध खामोशी में हजारों आदमी तन्मय होकर सुन रहे थे। कार्यकर्ताओं के दो दल हो गए और रात्रि तक यह बहस इन लोगों के मध्य चालू रही। मुझे पता भी न चलता किन्तु संगीत ध्यामना द्वारा आयोजित "राजस्थान

की रसधारा" सांस्कृतिक कार्यक्रम का भार इन्होंने मुझे दिया था। कार्यक्रम आरंभ हो गया, बहुत सुन्दर हो रहा था: मेरी आँखें कार्यक्रम की परिकल्पना करनेवाले को खोज रही थी कि पास में बैठे हुए राजस्थान के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री जयनारायण जी व्यास ने कहा "आज आप जिन्हें खोज रही हैं वे एक दूसरी ही संस्कृति में उलझे हुए हैं।" सांस्कृतिक कार्यक्रम इतना सुन्दर था कि व्यास जी ने स्वयं कहा कि "हम राजस्थान में भी इतना सुन्दर राजस्थानी कार्यक्रम नहीं कर पाते। मैंने उत्तर दिया "यह बंगभूमि है जहां रवीन्द्रनाथ जैसे संस्कृति के निर्माणकर्ता पैदा हुए और जहां गली-गली में एक संगीत-शाला है, घर-घर से नृत्य और संगीत की ध्वनियां झंकृत होती रहती हैं। हमने तो सिर्फ अभी सीखना ही शुरू किया है।" मन में उनकी प्रशंसा से बहुत टीस सी उठी—सिंघी जी अभी नहीं हैं, नहीं तो देखते भी और सफलता में भाग भी लेते।

हिंदी भाषी सारी शिक्षण संस्थाएं साथ-साथ बैठ कर अपनी समस्याओं पर विचार विमर्श कर सकें इस उद्देश्य से शिक्षायतन कालेज के मंत्रित्व काल मे सिंघी जी ने एक एसोसियेशन आफ एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन की स्थापना की थी। हिंदी स्कूलों और कालेजों की एक लिस्ट बनी जिसकी मीटिंग प्राय: होती रहती थी। सरकार हिंदी स्कूलों पर अपना नियंत्रण रखना चाहती थी। उसके खिलाफ निरंतर लिखा-पढ़ी होती थी। चीन के साथ हुए युद्ध के दौरान सब स्कूलों के छात्र-छात्राओं की एक रैली हुई थी, उसमें प्राय: १०,००० छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। हर स्कूल के अलग-अलग बैंड थे। यह भव्य रैली मोहमडन स्पोर्टिंग मैदान में हुई थी।

सिंघी जी बहुत उदार व्यक्ति हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण मैंने न्यूयार्क में देखा। मैं अपने छोटे लड़के राजा के पास गई हुई थी। सिंघी जी भी परिवार नियोजन के काम तथा अमेरिका-भ्रमण की दृष्टि से न्यूयार्क आए। कनाडा में मोण्ट्रियल में एक बहुत बड़ी उद्योग प्रदर्शनी हो रही थी जिसे देखने हम दोनों साथ ही साथ गए थे, नियागरा फाल देखते हुए। टिकट के अतिरिक्त जो खर्च हुआ वह सब उन्होंने ही किया। खर्च काफी था और वह भी डालर में। मुझे बहुत संकोच हो रहा था। मैंने बहुत कहा कि "सिंघी जी, राजा ने मुझे बहुत से डालर दिए हैं" किन्तु वह मेरी बात अनसुनी कर जाते थे, और उत्तर देते—"एक फॉरेन गेजेट कम खरीदेंगे।" रुपए और डालर में बहुत फर्क होता है। देश में रुपयों की व्यवस्था कहीं भी हो सकती है पर डालर के बिना विदेशों में एक कदम चलना मुश्किल हो जाता है। आज भी हम समाज, संस्कृति और संस्थाओं के कार्य एक साथ करते हैं। जीवन के सम्बन्ध समय के साथ-साथ गहरे होते जाते हैं और हमारी मित्रता भी समय के साथ साथ गहरी होती जा रही है। ऐसी मित्रता जिसके पीछे कोई स्वार्थ नहीं है। खलील जिब्रान के शब्दों में—"मित्रता के पीछे कोई मकसद नहीं होना चाहिए सिवाय आत्मिक गहनता की उपलब्धि के। अपना श्रेष्ठतम अपने मित्र के लिए रखो और जीवित रहने के लिए उसे सदा अपने निकट पाने का प्रयत्न करो।"

शायद मैं जीवन संगिनी बन पायी

सुशीला सिंघी
पत्नी, समाज सेविका एवं शिक्षाविद्

मुझसे जब कहा गया कि इस अवसर पर आपको भी कुछ लिखना पड़ेगा तो सचमुच एक बार सोचना पड़ा। वास्तव में पत्नी को पति के बारे में कुछ लिखना कुछ आत्म प्रशंसा ही लगती है, जो मुझसे होगी नहीं। हां, सिंघी जी की वे विशेषताएं जो सामाजिक आदर्श रही या बनी उनके कारण और उनमें सम्मिलित होने की सजा मुझे कैसे-कैसे तब भोगनी पड़ी, यह मैं अवश्य लिखने की सोच रही हूं।

सिंघी जी के नाम से मेरा परिचय विचित्र अवस्था में हुआ। एक गोल्ड मेडल, जो मारवाड़ी छात्र संघ द्वारा समाज में शिक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने पर दिया जा रहा था, मुझे माध्यमिक परीक्षा में दो डिसटिंक्शन तथा विशेष अंक प्राप्त करने के कारण दिया जानेवाला है, ऐसी सूचना मारवाड़ी छात्र संघ के कुछ सदस्यों ने आ कर दी और वार्षिकोत्सव में आमन्त्रित कर गये। मैं अपनी सहेलियों को ले कर जब वहां गयी, तो सुना कि जेल से एम० ए० में फर्स्ट पोजीशन पानेवाले भंवरमल सिंघी को वह स्वर्ण-पदक देने का आखिरी निर्णय किया गया है। आयोजन करनेवाले काफी शर्मिंदा थे कि वे पहले मुझे खबर नहीं कर सके और उन्होंने वह पदक दिखाया जिसके ऊपर मेरा नाम लिखा जा चुका था और उसी के ऊपर वह नया नाम लिखा हुआ था। विशेष व्यक्ति का नाम उस पदक पर लिखे मेरे नाम पर लिखा गया था क्योंकि मैं न मारवाड़ी थी और न मैंने एम० ए० किया था। यह हुआ श्री गणेश। उस दिन मुझे आयोजकों पर क्षोभ और घृणा तो हुई ही पर जेल से परीक्षा देनेवाले उस व्यक्ति के प्रति कौतूहल भी हुआ। किसने जाना था वह व्यक्तित्व १९४४ के उस दिसम्बर में पदक पर ही नहीं मेरे जीवन के हर पल पर लिखा जायेगा।

मैं १९४५ में कॉलेज में पढ़ती थी। भागीरथी के घर पर ज्ञान से परिचय हुआ और परिस्थितियां ऐसी बनी कि मैं भागीरथी के साथ मदनापल्ली टी० बी० सैनीटेरियम गयी। वहां ज्ञान, भागीरथी, भागीरथ मुरारका और श्री नंदलाल जी जालान, जिन्हें हम चाचा जी कहते थे, मुझे हर समय सिंघी जी के व्यक्तित्व और विचारों के विषय में बताकर हम दोनों की जोड़ी कैसी रहेगी, समाज में कैसे सुधार होगा, कुछ काम कर सकेंगे, इसकी चर्चा किया करते थे। बाल वैधव्य की शिकार मैं कल्पना नहीं कर पाती थी कि यह कैसे सम्भव होगा। मेरे पिता जी की ८ संतानों में सबसे बड़ी मैं जैन परिवार के कट्टर वातावरण में पली थी। समाज के ४ वर्षों की लांछना, बंधन के प्रति विद्रोह करके ही १९४४ में परदा विरोधी सम्मेलन में मैंने परदा छोड़ कर माध्यमिक परीक्षा देकर कॉलेज में प्रवेश लिया था। ऐसी स्थिति में विवाह की कल्पना से भी डर लगता था। अंततः कलकत्ता आ कर सीताराम जी और बसन्त लाल जी के प्रयास से यह संभव हुआ और मेरा इनसे परिचय हुआ। परिचय के बाद इनका प्रश्न था कि आर्थिक आय इतनी कम है, तुम कैसे काम चलाओगी? सदा जीवन

में क्या करने की सोचती हो ? जेल से निकले देश भक्त के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा से मेरा मन उन दिनों त्याग के सिवा कुछ सोचता ही नहीं था। मैंने जीवन में एक नयी दिशा देखी और समाज में नारी के प्रति जो अन्याय देखा था, सहा था उसके खिलाफ संघर्ष करने का निश्चय किया और इन्हें बताया। इन्होंने फिर पूछा कि क्या तुम शरत बाबू की कमल बन सकोगी ? मैंने शेष प्रश्न पढ़ा और इनकी कल्पना की नारी को पहचाना। इन्हें लगा, मैं इनके जीवन की कल्पना से बिल्कुल मिलती हूं। विधवा होने की शर्त, कॉलेज में पढ़नेवाली लड़की, देखने में भी ठीक-ठाक, फिर आदर्शों में अनुरूप विचार वाली मैं इनके जीवन से बंधने को तैयार हो गयी। और फिर मेरी यात्रा शुरू हो गयी।

गवर्नमेंट ऑफिसर की बेटी मैं। कार्यकर्ता की पत्नी बन कर मुझे क्या सहना पड़ा है, उसकी गाथा बड़ी लंबी है, पर कुछ घटनाएं मैं जरूर लिखूंगी। २०-२१ वर्षीय युवती विवाह की कल्पना से कितनी सिहर-सिहर उठती है, मधुर कल्पनाएं घर की, जीवन की उसे कितनी विभोर करती है, मैं कोई उसका अपवाद तो थी नहीं। मुझे कहा गया कि गांधी-विधि से विवाह होगा, काका कालेलकर पौरोहित्य करेंगे, उसमें शर्त है स्वराज्य प्राप्ति तक ब्रह्मचर्य पालन करना। आदर्श तो बड़ा था पर उसका उल्लंघन मैं बरदाश्त न कर पाती, अतः ज्ञान को बताया। ज्ञान ने मनोवैज्ञानिक पहलू पर प्रकाश डालते हुए इंदुमति तेंडुलकर और डॉ० तेंडुलकर का उदाहरण देते हुए इन्हें समझाया। तब महाशय की समझ में आया और विचार बदला। हमारे विवाह का पौरोहित्य किया स्वर्गीय सज्जन देवी महनोत ने। शायद किसी महिला के पौरोहित्य में पहला ही विवाह हुआ। विवाह के दिन सुबह से पाखाना साफ करने से ले कर जितनी नियमावली गांधी विधि में थी सभी का पालन किया गया। विवाह के बाद मारवाड़ी छात्र संघ में दूसरे दिन हरिजन बालकों के हाथ से शरबत और खाना खाने की नियमावली भी हमने बड़े आग्रह और उत्साह से पूरी की।

विवाह के उपहार स्वरूप इन्होंने मुझे अपने दो भाई पदम और रतन क्रमशः १६ और १४ वर्ष के तथा पुत्र श्रीकांत पौने आठ वर्ष का बिल्कुल शिशु जैसा, दिये जिन्हें गढ़ने, बड़ा करने का पूरा दायित्व मेरा ही था।

ऑफिस के बाद मीटिंग और घर में हर सुबह-शाम समाज सुधार की योजना तथा कार्य ही इनका व्यसन था। पर्दा-सत्याग्रह, विधवा विवाह, साहित्यकारों का जमघट न जाने कितने काम होते रहते थे। घर के कामकाजों के बीच अकेली मैं। एक २०-२१ साल की लड़की पुरुषों से रात-दिन घिरी रहती पर क्रांति की लगन में कभी लगा ही नहीं कि खाना और चाय आदि देने के सिवाय मैं एक औरत भी हूं। समान स्तर पर बहस करना, लिखना, पर्दा-सत्याग्रह आदि में भाग लेते-लेते मेरा मानस विद्रोही बनता गया। समाज में कुछ करने की आग ने अचानक अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग किया। इसी बीच अनेक बाधाओं के बावजूद मैंने बी० ए० और एम० ए० पास किया तथा तीन वर्ष तक लॉ भी पढ़ा। मैंने १९४९-५० में महिलाओं की संस्थाओं में रुचि लेना शुरू किया। इस बीच जुलूस, भाषण के साथ-साथ स्टेज पर सामाजिक ड्रामा आदि न जाने कितने कार्य किये। पर उनमें से सामाजिक क्रांति सम्मेलन के अवसर पर मिनर्वा थियेटर के स्टेज पर उतर कर ड्रामा करने में

बड़ी झिझक लगी थी लेकिन इनके अनुरोध पर मैंने जो स्वीकार किया या कहा, वह करना ही है। इनके जीवन में इन्होंने जो कहा, भाषण में या लेखन में, वह पूरा उतरे इसके लिये मैं बड़ी सचेत थी, क्योंकि मैंने देखा है—अक्सर औरतों की छोटी-छोटी कमजोरियों के कारण विवाह में दहेज, दिखावा और दावतें करके कितने नेता सिर नीचा कर इस स्थिति को स्वीकार करते हैं। इनका सिर नीचा न हो, तथा मैं स्वयं गर्व से यह कह सकूं कि कोई कहे तो कि हमने जो कहा, वह नहीं किया। कभी किसी अनजाने मुहूर्त में इनसे कहीं कुछ चूक होती दिखी तो मैं कड़ी हो जाती थी।

मेरे हाथों पांच विवाह—दोनों देवरों पदम, रतन के, तीन हमारे बच्चों के हमारे घर में हुए। पाँचों में ही इनके आदर्शों और सिद्धांतों के कारण बावेला मचा और जिसका अधिकांश तूफान मुझे ही झेलना पड़ा।

इनके दोनों भाई पदमचन्द और रतनचन्द भी हमारे आदर्शों तथा आंदोलनों के साथ क्रमशः अपना व्यक्तित्व विकसित कर रहे थे। पदमचन्द ने बम्बई स्कूल ऑफ इकोनामिक्स से एम० ए० किया तथा काका कालेलकर के साथ दो वर्ष बैकवर्ड क्लास कमीशन के माध्यम से देश के लोगों की गरीबी तथा समस्याओं का अध्ययन कर अन्त में मिल के मैनेजर के पद को अस्वीकार कर बी० डी० ओ० से शुरू किया। आइ० ए० एस० हो कर आज वे जिलाधिकारी पद पर कार्यरत हैं और वह भी बांसवाड़ा जिले में, क्योंकि वहां आदिवासी अधिक हैं। वे अपने आदर्शों में इनसे भी कुछ ज्यादा जिद्दी रहे हैं और उसके लिए उनकी पत्नी लीला हमेशा मुझे कोसती रही क्योंकि जयपुर के समाज में अर्थ और आदर्श की हमेशा तुलना होती रहती थी।

छोटे भाई रतनचन्द ने पुश्तैनी व्यापार की ट्रेनिंग ली और अपनी दक्षता से वे आज लोगों के कहे अनुसार लखपतियों से बड़े हुए हैं। आज वे ज्वेलर्स एसोसियेशन के जाने माने कार्यकर्ता हैं व विभिन्न पदों पर काम करते हैं। समाज का या देश का कोई काम हो, तो भाई अर्थात् इनके नाम से ही चन्दा देते हैं। इन दोनों के विवाह की घटनाएं याद आ गयीं। रतन ने अपने पड़ोस में रहने वाली एक सुन्दर सुशील लड़की को पसन्द कर लिया। मां और दादा साहब ने पत्र लिखा। विवाह की तैयारी करने मैं अपनी ननद और बच्चों के साथ पहुंच गयी। हमारे आदर्शों और आर्थिक साधनों के अनुसार पूरी तैयारी हो गयी। रतन तथा वधू पर हल्दी चढ़ गयी, कंकन डोरे बँध गये। सिंघी जी विवाह के एक दिन पहले पहुंचे। किसी ने उन्हें बताया कि लड़की १३ वर्ष की ही है। बाल विवाह, शारदा एक्ट का उल्लंघन हमारे ही घर में कैसे हो? बस, विवाह बन्द। यह विवाह एक साल बाद होगा। कन्यापक्षीय औरतें मेरे पास आयीं, उन्हें संदेह था कि लेन-देन की उनकी क्षमता नहीं है, इसीलिये इन्होंने आकर बन्द कर दिया। जयपुर के समाज की दुहाई, [illegible] लड़की का जीवन खतरे में तथा लांछना, सब मैं सुनती रही। शब्दों में मैं उस बिरादरी के तूफान और गालियों को बता नहीं सकती। अन्त में मुझे एक उपाय सूझा। विवाह पर चढ़ाने के लिये गहने और कपड़े जो हम ले गये थे, लड़की को बुला कर सब पहना दिये और कहा विवाह तो हो गया, बहू को मुकलावा (गौना) करके साल भर बाद बुला लेंगे। विवाह एक वर्ष बाद ही हुआ।

पदम के विवाह में तो और भी परेशानी हुई। एक तो इनके आदर्श और दूसरे पदम उग्र विचार-एक तो करेला और दूजे नीम चढ़ा। बस, ठीक हुआ कि विवाह में सिविल मैरिज के सिवा कुछ नहीं होगा। कन्या के पिता ने सोचा, स्वीकार कर लो, फिर देख लेंगे। मैजिस्ट्रेट को जाकर कह आये कि विवाह नहीं है, अतः वे अपाइंटमेंट रद्द कर दें। बारात पहुंच गयी कन्या के यहां। कहां गया मैजिस्ट्रेट नहीं आयेगा, अतः दूसरे दिन मुहूर्त देख कर हिंदू पद्धति से विवाह करेंगे। ये आ गये इनको समझाने श्री कंवरलाल जी बापना तथा हीरालाल जी शास्त्री तक भी आये, जिन्हें ये बड़ी श्रद्धा करते थे, पर दोनों भाई तैयार नहीं हुए और मैजिस्ट्रेट को विशेष आग्रह कर बुलाया गया। विवाह की रजिस्ट्री हुई। श्रीमोहन सिंह सेंगर और श्री सीताराम जी सेकसरिया कलकत्ते से वहां गये थे, उनकी गवाही हुई। कन्या के पिता ने लड़की विदा नहीं की, बड़ा तूफान उठा। वधू को स्वयं ही विश्वास नहीं था कि यह विवाह कानूनी है या नहीं। पर क्या हो, आदर्शों के भूत दोनों भाई अटल रहे। कल्पना कीजिए, मेरी उस सारी स्थिति में क्या अवस्था हुई। बिरादरी के अनुसार मैं ही कारण थी क्योंकि मैं जयपुर समाज के नियम-कानून नहीं जानती थी।

फिर बारी आयी हमारे बच्चों के विवाह की। हमारा एक मात्र पुत्र श्रीकांत वसु परिवार की कन्या तपती को पसन्द कर चुका था। एक बार तो जैन परिवार की कन्या मुझको बंगाली मांसाहारी परिवार की कन्या को घर में बहू बनाने में हिचक हुई, पर दूसरे ही क्षण श्री के जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता मे बाधक बनने की कल्पना हुई। बड़े ठाट-बाट से सिंघी पार्क में उसके विवाह का आयोजन किया गया। विश्वास कीजिए १५०० लोग हमने बुलाये थे, २५०० लोगों का इन्तजाम किया था। अखबार में पढ़ कर इस अन्तर्प्रांतीय विवाह में सम्मिलित होना है, सोच कर करीब ४५०० लोग आये थे। एक कप चाय या काफी देनी थी, वह भी हम नहीं दे पाये। लोगों का प्यार और अपनापन हमें अभिभूत कर रहा था। तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन से लेकर समाज के हर तबके के लोग वहां थे।

सुषमा हमारी बड़ी लड़की पढ़ने में तेज थी। प्रेसिडेंसी कालेज में बी० एस० सी० पढ़ रही थी। उसका गुप्ता परिवार के बंगाली लड़के उज्ज्वल गुप्ता से प्रेम हो गया। उज्ज्वल मेधावी छात्र था। विवाह हुआ। वर पक्षीय माता-पिता तैयार नहीं थे। फिर १९६९ में उज्ज्वल अपने चाचा-ताऊ के साथ आया। बेटी विदा होकर अपने घर में नहीं जा रही, कोई उसे दुलार कर स्वीकार नहीं करेगा यह कल्पना मन को झिझोड़ रही थी पर बच्चों के चुनाव-स्वातंत्र्य में बाधक नहीं, हम साधक बनें, यही प्रेरणा हमें बल देती थी। इस विवाह में भाषा विशेषज्ञ श्री सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, सुप्रसिद्ध लेखक मनोज बोस की उपस्थिति ने हमें बल दिया। विवाह को रजिस्ट्री के गवाह थे—काका कालेलकर, सीताराम सेकसरिया तथा जगन्नाथ बेरीवाल। अब तक बेरीवाल जी अपने सारे संस्कारों के बावजूद हमारे परिवार के अभिन्न अंग बन गये थे। उनका परामर्श और सहयोग हमें बड़ा बल देता था।

छोटी कन्या सुस्मिता के विवाह में जाति-पांति तो हमें नहीं छूती थी पर शिशिर अपने दो कुंवारे भाइयों से छोटा था। यह समस्या उठी। बनारस के प्रसिद्ध

पत्र "आज" के साहित्य सम्पादक श्री मोहनलाल जी गुप्त का पत्रकार बेटा हमारा छोटा जमाई बना। उसकी मां तथा पिता से मिलकर बड़ा संतोष हुआ। यह विवाह भी शिशिर और सुस्मिता के चुनाव से निश्चित हुआ। विवाह की रीतियों में दहेज-दिखावा नहीं होगा, किसी प्रकार की रीति नहीं पालन की जायेगी, यह तय था। वर पक्ष की कोई मांग नहीं थी पर एक वैवाहिक पद्धति और नियम को कैसे निबाहें और करें, बनारस वालों के साथ, यह विचार-विवाद तो करने ही पड़े।

इनकी एक ही बहन हैं लाड़ बाई। समवयसी होने के कारण हम मित्र भी हैं। उनके बच्चे बड़े प्रतिभाशाली हैं, पर उनके विवाहों में भी हमारे कारण परदा-दिखावा तो नहीं होता ही है, पर कोई अधिक रीति-रिवाज न हो, इसकी सावधानी बरती जाती है ताकि भाई विवाह में सम्मिलित हों। मेरे पिताजी के यहां भी इन बातों का ध्यान रखा जाता है तथा लगता है हमारे यहां विवाह करनेवालों को इनके विचारों के कारण कभी राहत, कभी परेशानी उठानी तो पड़ती ही है। इसी तरह कटते जा रहे थे वर्ष के बाद वर्ष। सारे कामों के बीच कितनी शक्ति और लगन थी। उन दिनों लगता था समाज से कुरीतियां हटा कर ही हम दम लेंगे। सारांश में यह कि इनके हर काम में हर कदम मैं इनके लिये हुए दायित्वों को निभाने की धुन में मैंने कभी सोचा ही नहीं कि मैं मोटी हो रही थी, शारीरिक जर्जरता मुझे तोड़ रही थी और इन्हें भी डायबिटीज खोखला करती जा रही थी। बीच-बीच में ये बीमार हो जाते तो इनको तो विश्राम मिल जाता था पर मेरी गतिविधि द्विगुणित हो जाती। बात यहीं तक थोड़े ही थी। पर्दा-सत्याग्रह करने जाते तो लाठी, धक्के, थूक और कपड़े फाड़ने तक की नौबत आ जाती थी। ऐसा कई बार सहना पड़ा। अब कभी-कभी सोचती हूं इस व्यक्ति की प्रतिभा और जिजीविषा कितनी बड़ी थी पर समाज तथा साहित्य के छोटे-छोटे टुकड़ों के काम ये कितने मनोयोग से करते तथा मेरी सम्पूर्ण शक्ति उसमें लग जाती। हम कभी बाहरी मूल्य प्रचार के लिए स्वयं को कुछ बनाने की सोच ही नहीं पाते थे। आज के युग में जब जिम्मेवारी लेने से पहले लोग नाम तथा महत्व की बात करते हैं तो सच, कभी-कभी मैं हतप्रभ हो जाती हूं।

बीच-बीच में इनके मित्र इन्हें नौकरी छोड़ राजनीतिक या सामाजिक कार्यों में पूरी तरह लगने के सुझाव देते थे। श्री हीरालाल जी शास्त्री जब राजस्थान के मुख्य-मंत्री बने तो इनके बहुत पीछे पड़े कि ये राजस्थान चले जायें, उद्योग सेक्रेटरी के रूप में या किसी भी प्रकार। और तब मेरा कलकत्तावासी हृदय कांप उठा और बंगाल की बेटी मैं इसे छोड़ नहीं पायी। घर पर आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे। वर्षों के वर्ष इसी धुन में कट रहे थे कि अचानक लगा कि समाज की या देश की कोई भी योजना शिक्षा स्तर में उन्नति और जनसंख्या रोकने के बिना सम्भव नहीं। अगर परिवार नियोजन नहीं होगा तो कोई उन्नति नहीं हो सकती। १९४८ में मातृ सेवा सदन में पहली क्लीनिक खोली गयी जिसमें छह महीनों में दो-चार लोग ही आये। तभी इन्होंने "परिवार नियोजन क्यों और कैसे" नामक हिंदी किताब लिखी जिसे पढ़ कर इन पर काम शास्त्र या कोक शास्त्र लिखने का आरोप लगाया गया। परिवार नियोजन का काम बड़ा कठिन था पर हमने इसे पूरी शक्ति से चलाने का

निश्चय किया। फेमिली प्लानिंग एसोसिएशन की बंगाल शाखा खोली गयी। १९५२ में तीसरी इंटर नेशनल कांग्रेस बम्बई में हुई तब हम परिवार नियोजन की जन्म दात्री श्रीमती मार्गरेट सेंगर से मिले। ४५ मिनट के साक्षात्कार के बाद हमें ज्ञात हुआ कि अमरीका में वे १७ बार जेल गयी थीं, संतान निरोध के प्रचार करने के कारण और आज विश्व कान्फ्रेंस की महामना अतिथि थीं। हमारी कटिबद्धता और बढ़ गयी। मैंने पश्चिम बंगाल की परिवार नियोजन शाखा का मंत्रित्व तथा अन्य अनेक पदों पर काम किया। हमारे सामने काम आते ही गये। परदा निवारक आंदोलन, सत्याग्रह, मीटिंग, विधवा विवाह के कार्यों का आयोजन हमारे घर के प्रांगण में ही होता था। अक्सर दोनों पक्षों की जिम्मेदारी हमारी ही होती थी। कन्या को सजाना, वर पक्ष की अभ्यर्थना तथा उनके खाने पीने का इन्तजाम। कभी-कभी तो हमें अपने सोने का कमरा तक वर-वधू के लिए छोड़ना पड़ता। दो बच्चों के साथ अपनी जरूरतों को समेटती मुझे याद नहीं आता मैं कभी इन्हें दोष भी दे पायी। महिलाओं की शिक्षा, तरुण पुस्तकालय, सांस्कृतिक प्रोग्राम, सेंगर जी के माध्यम से साहित्यिक जमघट, साथ ही साथ परिवार नियोजन के विशेषज्ञ भी हो गये। रोज ही एक नया कार्यक्रम होता, एक नयी योजना बनती और हमारा घर सुबह योजना के लिए, शाम को कार्यक्रम के लिए निश्चित स्थान था ही। वे दिन याद आते हैं जब सामाजिक क्रांति सम्मेलन में ड्रामा की सफलता के बाद यह निश्चय किया गया कि नाटक प्रचार का एक महत्वपूर्ण साधन है अतः तरुण संघ के अंतर्गत १९४९ से १९५५ तक, जब तक अनामिका की स्थापना हुई, हर वर्ष एक या दो ड्रामे किये जाते, नाटक किये जाते, उनकी रीडिंग से लेकर अंतिम रिहर्सल तक सब हमारे ही घर में होते। दो कमरों के सामने एक छोटी-सी छत थी। हर शाम १५-२० लोग इकट्ठे होते, रिहर्सल की जगह ११ बजे तक होते ही। बिना कहे मेरी यह समझ में आ जाता कि सब लोग खाना भी खायेंगे। सोच कर देखिए कि एक नौकर और दो बच्चों के साथ गृहस्थी चलाने वाली मैं, कैसे क्या करती थी। कुछ तो आज की अपेक्षा सस्ता जमाना था, कुछ मन का उत्साह हमारे कार्यक्रम बिना किसी परेशानी के चलते रहते।

पर्दा-सत्याग्रह या विधवा विवाह कोई भी आयोजन हो तीन मील चल कर जुलूस खत्म हुआ, विवाह का कार्यक्रम समाप्त हुआ, चाय जलपान होगा ही, खाना भी बनेगा ही क्योंकि आज का सर्वेक्षण और अगले कार्यक्रम की योजना जो बनानी है। यह मत समझिएगा कि किसी संस्था की ओर से आर्थिक भार उठाया जाता था। गिने हुए रुपयों में जयपुर के परिवार, देवर की बंबई में एम० ए० की पढ़ाई का खर्च, और बच्चों की पढ़ाई के साथ अपना इतना बड़ा परिवार चलाना कितना मुश्किल था, यह मैं आज सोचती हूं। तब तो बस इन महापुरुष की अनकही इच्छाओं की पूर्ति ही मेरी जीवन का ध्येय था। अतः एक ही निश्चय किया स्वयं का कोई खर्च मैं नहीं करूंगी। विश्वास कीजिए मैंने आज तक ३८ वर्षों में अपने लिए एकाध साड़ी के सिवाय कभी कपड़े-गहने नहीं खरीदे, न सोचा ही। मुसीबत तो तब आती थी जब पांच-सात लोगों को शाम को आने का निमंत्रण दे आते और मुझसे कहते

तक नहीं। लोगों के आने का ढंग और कभी-कभी चाय को पूछने पर अब तो खाना ही खायेंगे कहते तब मालूम पड़ता। पर सच कभी आफत नहीं लगी, पता नहीं आदर्शों के लिए कितनी शक्ति थी।

इनकी आतिथ्यप्रियता मित्रों को विदित थी। बात यहीं तक थोड़े ही थी। बक्स-बिस्तर लिये अधिकांशतः राजस्थान से, कभी यू० पी० से नौकरी की तलाश में युवक आते और हमारे घर का दरवाजा उनके लिये खुला था। दिनों की बात नहीं नौबत महीनों और सालों तक की भी रही। लोग रहते, अपनी आगे की शिक्षा के लिये छात्र वृत्ति की कोशिश इनसे करवाते। कुछ लोगों को तो विदेश भेजने में ये सहायक हुए। कुछ मित्र बड़े आदमी हो गये। नौकरी करके अफसर हो गये। ये मित्र आज भी हमें बड़ा सम्मान देते हैं। पर सीमित आय, दो बच्चे, काम का भार साथ ही मेरी पढ़ाई, इन सबके बीच दिन कैसे निकल जाते, पता ही नहीं चलता था। श्री मोहन सिंह सेंगर ने हमारे साथ आठ वर्षों तक खाना खाया। शाम को महफिल डाइनिंग टेबिल पर जुटती, व्यंग्य-हास्य और इनके साहित्यिक मेहमानों की खातिर के साथ ऐसे भी मेहमान आते थे, जिन्हें, कभी-कभी किराया देकर विदा करना पड़ता था। छात्रों की उच्च शिक्षा, या किसी भी तरह की सहायता करने में ये बहुत देर नहीं लगाते थे। आर्थिक सीमायें थीं पर इनके मित्र रामेश्वर जी नोपानी, रामेश्वर जी टांटिया, रघुनाथ जी खेतान तथा जगन्नाथ जी बेरीवाल आदि इनके कहने के बाद फौरन सहायता किया करते थे। बच्चों के बड़े होने के बाद मेहमान ठहराने में मैंने कुछ बंधन लगा दिये थे, पर इनकी आदत थोड़े ही छूटी है। और अब तो और मुसीबत है। मेरी भी आदत काफी खराब हो गयी है। इसलिये घर में कुछ भी हो पूरा ही नहीं पड़ता। किन मुहूर्त में कौन-सी सहायता किस व्यक्तित्व का निर्माण करेगी अपनी अभिज्ञता के कारण इनका यह परम विश्वास है और इसमें यह किसी प्रकार की मीन-मेख बरदाश्त नहीं करते।

१९५२ हम परिवार नियोजन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा समाज सुधार के काम में जुटे थे। साथ ही स्त्रियों की शिक्षा के बिना कोई भी चेतना सम्भव नहीं है इस विश्वास के साथ शिक्षण संस्थाओं के गढ़ने का काम भी इन्होंने शुरू कर दिया था। श्री शिक्षायतन, नोपानी विद्यालय, अनामिका, थियेटर सेंटर तभी स्थापित हुए।

१९५५ में बाल दीक्षा आन्दोलन की मीटिंग में इन पर जो प्रहार हुआ उस समय मैं गर्भवती थी। मेरी छोटी लड़की सुस्मिता तब होने ही वाली थी। चोट लगते ही जब इनको देखने गयी तो इन्हें ४८ घण्टे की बेहोशी में देखते ही मुझे स्वयं अस्पताल जाना पड़ा। कल्पना कीजिए मेरी मानसिक स्थिति की। पर न जाने कौन सी इनकी संघर्ष शक्ति मुझमें उतर आयी थी, मैं टूटती नहीं थी। मिशन और आत्मविश्वास हमें खींचता रहता। १९५५ के बाद हमारे कार्यक्रम कुछ अव्यवस्थित हो गये थे। हम बड़ा बाजार से दक्षिण कलकत्ता चले आये और फिर हमने अपने कार्यक्रम बांट लिये। मैं महिला सेवा समिति, वीमेंस कोआर्डिनेटिंग काउन्सिल तथा परिवार नियोजन का काम अधिक करती और ये अनामिका, शिक्षायतन, विकास विद्यालय, नोपानी विद्यालय आदि में लगे रहते। उसके बाद सम्मिलित कार्यक्रम परिवार नियोजन का ही था।

१९५७ में परिवार नियोजन की अखिल भारतवर्षीय तीसरी कान्फ्रेंस आयोजित की। उसमें करीब चार महीने लगे। तब लगा कि गांव-गांव में तथा बस्तियों में काम किये बिना प्रगति संभव नहीं है। १९६२ से १९६७ तक मुझे प्रेसिडेंट द्वारा फैमिली प्लानिंग एजुकेशन सेंटर आफ वेस्ट बंगाल में नियुक्त किया गया था। तब मैंने आसनसोल, कोल्डफील्ड एरिया, अलीपुरद्वार, चायबागान और पुरुलिया के आदिवासियों के बीच काफी धूमधाम से काम किया। इस बीच १९६१ में मुझे श्री अतुल्य घोष ने कांग्रेस डेलीगेट बना दिया और ए० आइ० सी० सी० में सम्मिलित होने का आग्रह किया। मैं १९६१ से १९६६ तक ए० आइ० सी० सी० ओपन सेशन में बोली जहां मेरा परिचय शीर्ष स्थानीय सभी नेताओं से हुआ। हां, ये कांग्रेस में नहीं थे, पर इन्होंने कभी विरोध नहीं किया। मैं चाहे परिवार नियोजन के काम से गांव में घूमी, या ए० आइ० डब्ल्यू० सी० और ए० आइ० सी० सी० के सम्मेलनों में गयी इन्होंने कभी बाधा नहीं दी। बच्चों का कोई बहाना भी नहीं बनाया। हां, मेरी बड़ी बेटी पर बोझ था जिसकी शिकायत वह आज भी करती है। घर वह भी उस समय संभाल तो लेती ही थी।

१९६६ के बाद मैंने राजनीति छोड़ दी। ये भी शिक्षा और परिवार नियोजन में लगे रहे। अब हम अपने-अपने विचारों की स्वतन्त्रता के कारण लड़ने जरूर लगे थे पर देश की गरीबी हटाने के लिए शिक्षा और परिवार नियोजन का काम एक साथ ही करते थे। दूसरे शब्दों में काम करते-करते आत्मविश्वास मुझमें जम गया था, अतः अब इनकी जिद्द स्वीकार करने में मैं पूर्ण समर्पित नहीं हो पाती थी। १९६८ में हमने गरीबों की सर्वांगीण उन्नति की दृष्टि से परिवारिकी नामक संस्था शुरू की, जिसमें बस्ती के गरीब बच्चों को २ साल से ले कर १६ साल की उम्र तक शिक्षा दी जाती है और जो कि मेरे जीवन के उद्देश्यों को पूरा करने की सबसे बड़ी सफलता है। 'पारिवारिकी' में श्री जगन्नाथ बेरीवाल, श्री रामकुमार भुवालका, श्री रामेश्वर टांटिया और श्री भगवती प्रसाद खेतान का बड़ा सहयोग रहा है।

पारिवारिकी के साथ-साथ पिछले २० वर्षों से मैं महिला सेवा समिति और कोआर्डिनेटिंग काउंसिल में भी पूरी शक्ति के साथ काम कर रही हूं। वृद्धाओं के आवास के लिए नवनीड़, सूखा–बाढ़ आदि में हजारीबाग, मिदनापुर जिले में पानी में डूबते-तैरते नावों से काम करते दूर-दूरांतर गांवों के लोगों को खाना-कपड़ा देना मुझे बहुत अच्छा लगता है। ऐसी ही एक घटना में १९७९ में जब हम बंगाल की बाढ़ के दौरान हावड़ा जिले में काम कर रहे थे, हम एक गांव में पहुंचे। यह गांव सौभाग्य से वह गांव था जहां उपन्यास सम्राट शरत्चंद्र ने अंतिम दिनों में रूपनारायण नदी के किनारे एक कच्चा मकान बना कर अपना निवास स्थान बनाया था। बाढ़ ने उनके मकान, उनका स्थापित किया पुस्तकालय तथा स्कूल सब तोड़-फोड़ दिये थे। वीमेन्स कोआर्डिनेटिंग काउंसिल ने पुस्तकालय और स्कूल का पुनर्निमाण तथा कुछ जलकूप बनाने की व्यवस्था करने का काम हाथ में लिया था, मैं उप-सभानेत्री थी, अतः हम अक्सर वहां जाया करते थे। १९७९ में जून के आखिरी हफ्ते में गाड़ी की सामने की सीट पर मैं बैठी थी। सामने से एक ट्रक से टक्कर हुई। दोनों गाड़ियों के

ड्राइवर समझ चुके थे, अतः पूरा जोर मेरे वाले हिस्से पर ही पड़ा। गाड़ी का दरवाजा खुल गया और मेरे बायें हाथ तथा पैर उसमें आ गये। ट्रक के एक धक्के ने दरवाजा बन्द कर दिया। दरवाजा तोड़ कर मुझे निकाला गया। इसी ट्रक पर जब मुझे उठा कर अस्पताल ले जाया गया, तो होश आया। और जाने किस शक्ति ने मुझे चेतना दे रखी थी कि मैं ६० किलोमीटर से वापस कलकत्ता आने की जिद पर एंबुलेंस में यहां ले आयी गयी। मेरी आठ हड्डियां टूट गयी थीं। उनमें से कुछ तो अभी भी गड़बड़ हैं। पर मेरी जिजीविषा और आत्मशक्ति के साथ सिंघो जी के अथक परिश्रम तथा खर्च ने शायद मुझे पुनर्जीवन दिया। इसका श्रेय डॉ० बी० डी० ककरानिया और डॉ० बापना को है। करीब १५ महीने बाद मैं उठ कर खड़ी हो सकी और चलने-फिरने लगी। उस समय इस अडिग निःस्पृह व्यक्ति का रूप देखते ही बनता था। दरअसल इन्हें तो आदत नहीं थी कुछ करने की या व्यवस्था करने की। अकेले चिंता सहन करने के कारण ही ये १९८० से बीमार चलने लगे जिसमें १९८१ जनवरी में पैरेलिसिस की नौबत ला दी।

हां, एक अभिज्ञता हुई लोगों की हमारे प्रति प्यार की श्रद्धा की। बंगला के पत्र आनंद बाजार में एक्सीडेंट की खबर छपी थी। दूर-दूर से गांवों के लोग मुझे दल बांध कर देखने आते। ट्रैक्शन में बंधे पैर, स्लिंग में झूलते हाथ तथा ऑक्सीजन के बावजूद जब मुझे होश आता तो मैं डॉक्टरों से मेरे दूर से आनेवाले भाई-बहनों को मेरे पास भेजने को अवश्य कहती। लोगों का कहना है कि मेरे 'परिवारिकी' के बच्चों और नवनीड़ की वृद्धाओं के आशीर्वचन और लोगों के प्यार ने ही मुझे बचा लिया। जो भी हो। सब के बावजूद मैं पारिवारिकी, मारवाड़ी बालिका विद्यालय, महिला सेवा समिति, वीमेन्स कोआर्डिनेटिंग काउंसिल, नवनीड़ आदि में आज भी व्यस्त रहती हूं।

इनके सारे काम की धुन और जिद्दों के बावजूद मैं काम करती रहती हूं और मैं जितने काम नहीं कर पाती हूं इसके लिए ये सुबह-शाम मुझे डांटते रहते हैं, मेरे आगे-पीछे छोड़े हुए कामों को करते रहते हैं। ३८ वर्षों का यह सान्निध्य मुझे एक ऐसा व्यक्ति बना गया है कि मैं काम के बिना रह नहीं सकती। औरतों की तरह घर-परिवार और बच्चे मुझे उलझा नहीं पाये। ईश्वर की कृपा से हमारा परिवार एक सुन्दर परिवार है। जिसमें एक दूसरे के प्रति स्नेह-श्रद्धा सभी कुछ है। बच्चे सभी अपने जीवन में प्रसन्न हैं। छोटी बिटिया ने तो "द टेलीग्राफ (अंगरेजी दैनिक) में सब-एडिटर बन कर इन्हें पूर्णता दी है। इनकी दिशा पर चल कर वह पत्रकार बन गयी, यह गर्व की बात है। जमाई भी पत्रकार हैं, वे हिंदी में अच्छा लिखते हैं।

पर मैं इन्हें माफ नहीं कर सकती। इन्होंने मुझे सहज प्रतिभाशालिनी लड़की की क्या खिचड़ी बनायी है, जिसके कामों का कोई अंत नहीं। कामों के बीच उलझती, खीजती मैं अपने जीवन को देखती रहती हूं। कभी-कभी सचमुच अपने जराजीर्ण टूटे हाथ पैरों को लेकर डर लगता है भविष्य का। पर इसके सिवाय अपने जीवन की विविधता की गरिमा से मैं सुखी हूं। साहित्य में राहुल सांकृत्यायन, महादेवी जी, निराला, बच्चन, जैनेंद्र जी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, धर्मवीर भारती और

अश्क से लेकर मोहन राकेश, डॉक्टर देवराज, नामवर सिंह, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर आदि सभी से केवल परिचय ही नहीं, हमारे घर इनका ठहरना और निरंतर बहस-मुबाहसे का सम्बन्ध रहा है। रजनी पन्निकर, और लक्ष्मीचंद्र जी जैन, कुंथा जी, ज्ञानवती लाठ, प्रतिभा, मदन बाबू, सुशीला और पराक्रम भंडारी आदि हम सबका एक ग्रुप था जो अकसर मिलते, खाते पीते और संस्कृति, कला और साहित्य सब पर बातचीत कर बड़ा सुख मिलता था। नाटक में लीन श्यामानन्द और प्रतिभा कभी घर आते और फिर बैठक जमती थी।

राजनीति के चोटी के नेताओं से तो मैं इतनी खुली हुई थी कि एक दिन जयप्रकाश जी को कुछ कह दिया। उन्होंने एक पत्र में सीताराम जी से इसका जिक्र भी किया। जयप्रकाश मेरे हीरो थे। उनकी या किसी की भी कोई निंदा मैं सह नहीं सकती थी।

परिवार नियोजन में विश्व के विशेषज्ञों की खातिर करने का, उनसे बातचीत करने का भी मौका खूब मिला। पंडित नेहरू की तो मैं बड़ी फैन थी। सौभाग्य से ६१ से ६४ तक उनसे हर बार ए० आइ० सी० सी० मीटिंग में मुलाकात होती। मुझे एमेंडमेंट विथड्रा करने को वे कहते और मैं नहीं करती, बड़ा मजा आता था।

ड्रामा के क्षेत्र में सिंघी जी बड़े लोकप्रिय थे। अहींद्र चौधरी, शिशिर भादुड़ी, पृथ्वीराज कपूर, मामा वरेरकर, तथा शंभु मित्र, तृप्ति मित्र से भी काम पड़ा, सभी का बड़ा स्नेह मिला। श्री तरुण राय और कृष्णा राय तो हमारे साथी थे ही। मैंने १९५२ तक ड्रामा में अभिनय किया। उसके बाद प्रोडक्शन और डायरेक्शन किये। पिछले दिनों अनामिका कला संगम में सैनाणी नामक नृत्य नाट्य का निर्देशन किया था मैंने, जो लोगों को बहुत पसंद आया।

१९८२ में हमारे परम मित्र श्री म्हालचंद जी बोथरा, जो कि समाज सुधार में हमेशा गीत और जोशीली कविता बना कर अगुआ रहे हैं, ने तो मुझे पुरोहित भी बना दिया। उनके पौत्र के विवाह का पौरोहित्य मुझे करना पड़ा। कुमार सिंह हॉल में सैकड़ों मित्र उपस्थित थे यह देखने कि नयी पद्धति से महिला पुरोहित कैसे विवाह करायेगी। नयी-पुरानी स्मृतियां याद आयीं। पर मित्रों के आदर व प्यार से मन भर उठता है।

अपने बारे में इतनी बातें लिखनी इसलिए पड़ीं कि इन्होंने ठोंक पीट कर वैद्यराज की तरह मुझे पूरी तरह अपने अनुरूप काम में अपनी गति से काम करने के लिये बाध्य कर दिया है और यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता बन गई।

संस्थाओं और मित्रों के बीच जीवन कट रहा है। एक ही संतोष है कि इन्होंने किसी से भी कुछ नहीं मांगा, लिया या समझौता नहीं किया। और हमारे सिद्धांत, हमारी बात, हमारे मित्र सब साथ हैं।

इस प्रकार से पिछले ३८ वर्षों से मैं इनकी पत्नी और इनके बच्चों की मां ही नहीं बनी, बल्कि समाज और देश के हर काम में जीवन संगिनी रही। इन्होंने जो प्रतिज्ञाएं लिखी थीं और जो हम दोनों ने कीं, वे हर प्रकार से सफल हुईं। उस मौके पर स्वर्गीय सज्जनदेवी महनोत, स्वर्गीय काका कालेलकर, स्वर्गीय प्रज्ञाचक्षु सुखलाल

जी, भागीरथ जी कानोड़िया, सीताराम जी सेकसरिया, बसंतलाल जी मुरारका, मूलचंदजी अग्रवाल ने हमें जो आशीर्वाद दिये थे तथा इनके पिता, मेरी मां और पिताजी ने जो आशीर्वचन दिये थे उनको हमने सिर माथे लिया था। हम अपनी प्रतिज्ञाओं के अनुरूप और गुरुजनों की आशा के अनुरूप आचरण कर पाये, इसका हमें गर्व एवं संतोष दोनों ही है।

भाई साहब : मेरे पिता

पदमचन्द सिंघी

छोटे भाई, सम्प्रति बांसवाड़ा (राजस्थान) जिलाधीश

९ अगस्त, १९८४ को भाई साहब अपने जीवन के ७० वर्ष कर पूरे है और कलकत्ता नगरी में उनका या कहूँ उनके कार्यों का अभिनन्दन किया जा रहा है। भाई साहब मुझसे १५ वर्ष बड़े हैं। मैंने जब से होश सम्हाला तब से आज तक हमेशा ऐसा अनुभव करता रहा हूं और मानता रहा हूँ कि मेरे वास्तविक पिता भाई साहब हैं चाहे शारीरिक दृष्टि से मुझे संसार में लाने वाले पिता वे नहीं थे। हम कुल तीन भाई हैं और हमारी केवल एक बहिन। पिता जी ने अपनी जिन्दगी में कभी कुछ नहीं कमाया। "ऋण लेओ और घी पीओ" ही मानो उनकी जिन्दगी का लक्ष्य था। पत्नी और परिवार का दायित्व उन्होंने कभी समझा ही नहीं। मां बेचारी गरीबी की आग में जलती रहीं और उन्होंने पति और परिवार की इज्जत को सब कुछ सहन करके भी बचाये रखा। मैंने जब से होश संभाला, तभी से यह देखा कि हम बहन-भाइयों के पालन-पोषण, उनकी शिक्षा और विवाह आदि सबका दायित्व भाई साहब पर ही रहा।

भयंकर गरीबी में जन्म लेकर भी वे गरीबी की आग में गले नहीं वरन् उत्तरोत्तर उसमें तप कर चमकते हुए हीरा बनते गये। मां की प्यारी गोद और उनके आंसुओं ने उनको अनजाने ही ऐसी गहरी वेदना की अनुभूति बाल्यकाल ही में करा दी कि वे अपनी कुशाग्रबुद्धि, अथक परिश्रम, लगन और ईमानदारी से जीवन के हर क्षेत्र में सफलता के सोपान चढ़ते रहे। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में कवि, लेखक, पत्रकार और चिन्तक के रूप में स्थान पाया तो राजनैतिक क्षेत्र में आजादी की लड़ाई में बसंत सिपाही बन जेल में रहे और सामाजिक क्षेत्र में क्रांति का जो बिगुल बजाया तो समूचे देश के मारवाड़ी या कहूँ प्रवासी राजस्थानियों के बीच नौजवानों को एक नया मार्ग दिखलाया। पर्दा प्रथा की समाप्ति, विधवा-विवाह का प्रचार, दहेज-प्रथा का उन्मूलन, जातिवाद के विरुद्ध जिहाद, अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन, धन के भद्दे प्रदर्शन का विरोध, व्यापार एवं उद्योग के क्षेत्र में पूंजीपतियों द्वारा अल्प वेतन कर्मचारियों के शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने, स्त्री-शिक्षा के प्रसार का आन्दोलन आदि

अनेक क्षेत्रों में भाई साहब ने नौजवान युवक-युवतियों को न केवल प्रेरणा दी बल्कि प्रभावशाली नेतृत्व भी प्रदान किया। कलम के धनी होने के साथ-साथ क्रांतिकारी वक्ता के रूप में सारे हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों में नाम कमाया। आज भी याद है मुझे भाई साहब की वह ओजस्वी वाणी—वे उद्‌गार—जो कलकत्ते के मुहम्मदअली पार्क में आयोजित सामाजिक क्रांति सम्मेलन में उन्होंने प्रकट किये थे। क्रांतिकारी भी वे "कथनी" में नहीं "करनी" में रहे। उनका प्रथम विवाह बहुत कम उम्र में पिता जी द्वारा कर दिया गया था। भाभी अनपढ़ थीं पर स्नेह की साकार मूर्ति। उनकी मृत्यु विवाह के बाद कुछ ही वर्षों में टी० बी० से हो गई। उसके बाद भाई साहब सन् ४२ को आजादी की लड़ाई में २-३ वर्षों के लिये जेल चले गये, उम्र थी केवल २७-२८ वर्ष। दूसरे विवाह के लिये बहुत दबाव था सभी का, पर तय किया कि यदि विवाह करेंगे तो केवल किसी बाल-विधवा से। वही हुआ और हमें भाभी के रूप में मिली सुशीला भाभी। स्वयं भी एक प्रतिभाशाली वक्ता, लेखिका, समाज-सुधारिका—बंगाल की जानी मानी कार्यकर्त्री। जयपुर के समाज ने बड़ा विरोध किया—परिवार को जाति से बाहर करने का निर्णय लिया पर उसकी चिन्ता न भाई साहब को थी और न पिता जी या मां को। इसी तरह भाई साहब ने अपने एक मात्र पुत्र का प्रेम-विवाह सम्पन्न किया एक बंगाली लड़की से तो दूसरी ओर अपनी बड़ी पुत्री का प्रेम-विवाह किया इसी प्रकार बंगाली लड़के से। दूसरी बेटी का भी प्रेम-विवाह हुआ। दोनों पति-पत्नी क्रमशः हिन्दी-अंग्रेजी के सफल पत्रकार हैं। भाई साहब की वाणी में ही नहीं लेखनी में भी ओजस्विता है—भाषा और चिन्तन दोनों की, जो बहुत कम दिखलाई देती है। सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक अन्धविश्वासों, राजनैतिक भ्रष्टाचार, आर्थिक शोषण, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों, परिवार-नियोजन, साहित्य और कला आदि सभी विषयों में उनकी लेखनी ने मौलिक विचार समाज को दिये हैं। उनकी गद्य-काव्य पुस्तक "वेदना" पर कविगुरु रवीन्द्र ने आशीर्वाद दिया तो डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने भूमिका लिखी। हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाबू रामचन्द्र शुक्ल ने इस पुस्तक को हिन्दी गद्य-काव्य में एक श्रेष्ठ रचना के रूप में मान्यता दी तो "भग्न हृदय" के नाम से लिखे उनके अनेक क्रांतिकारी लेख नौजवानों को आज भी झकझोर देते हैं।

भाई साहब ने सिद्धांतों पर कभी समझौता नहीं किया। फिर प्रश्न किसी भी व्यक्ति का हो या संगठन का। याद है, छोटे भाई की शादी में लड़की की उम्र १४ वर्ष से २ माह कम थी तो तेल चढ़ी लड़की का ब्याह रोक दिया। बड़ा हो-हल्ला तथा विरोध हुआ। इसी तरह मेरे विवाह में भी गड़बड़ हुई। पर भाई साहब उन दोनों लड़कियों को बहू बना कर लाये और अपना पूरा लाड़-प्यार उनको दिया। हम भाइयों से जब भी कोई भूल पत्नियों के प्रति हुई तो उन्होंने हमें न केवल समझाया पर कभी-कभी डांट भी पिलाई। मेरी पत्नी लीला और छोटे भाई की पत्नी लाड़ आज भी अपने भाई साहब की लाड़ली बहुएं हैं। मेरी दोनों बेटियों वनमाला और रुचिरा को उच्चतम शिक्षा प्राप्त हो सकी, इसका भाई साहब को बड़ा गर्व है। उन दोनों बेटियों को भी अपने ताऊ जी व ताई जी खूब अच्छे लगते हैं। । वे उनकी लाड़ली जो हैं। आज भी जब मैं अपनी साहित्यिक अभिरुचि के बारे में सोचता हूं तो स्पष्ट लगता है—मेरे सारे

चिन्तन और अभिव्यक्ति की शैली पर भाई साहब के विचार और लेखनी का भारी प्रभाव है। वास्तव में जीवन में जो भी उपलब्धियां हुई हैं, उनमें पूज्य मां, भाई साहब, भाभी और पत्नी की ही प्रेरणा, मार्गदर्शन और सम्बल रहा है।

भाई साहब ने मुझे अपने एक पत्र दिनांक १९-८-५३ में लिखा था......... "तुम्हें दिल्ली में काका साहब के पास काम करने का अवसर मिला है। काफी वर्षों में इधर मुझे इससे अधिक सुखद संवाद नहीं मिला। ......तुम जैसे कार्य की कल्पना करते थे, वैसा ही काम मिल गया। बहुत कुछ सीख सकोगे। ......हर कार्य में मनुष्य अपने को इस प्रकार अभिव्यक्त करे कि नये कार्यों के द्वार अपने आप आगे से आगे खुलते रहें। कार्य के प्रति ईमानदारी, लगन, तत्परता, परिश्रम और सबसे ऊपर अपने से बड़ों के प्रति विनयशीलता और अनुशासनशीलता मनुष्य के लिये रास्ता स्वयं बना देते हैं।" पत्र के ये शब्द, ये वाक्य जीवन भर के लिये पथ-प्रदर्शक बन गये। विद्यार्थी जीवन के बाद कर्मशील जीवन के पिछले ३० वर्षों में अनेक ऐसे अवसर आए हैं, स्थितियां बनी हैं, दुर्घटनाएं घटी हैं, मन व्यथा और वेदनाओं से आलोड़ित हुआ है, पैर डगमगाये हैं, हौसला पस्त हुआ है पर हर ऐसे समय पर भाई साहब ने ही मार्ग सुझाया या हौसला बढ़ाया।

पूज्य पिता जी की मृत्यु सन् १९५४ में हो गई थी। मैं केवल २४ वर्ष का था। बम्बई से एम० ए० करके दिल्ली में पूज्य काका साहब कालेलकर के पास "पिछड़े वर्ग आयोग" में रिसर्च आफिसर के रूप में काम करने का अवसर मिला था। छोटा भाई तब तक जयपुर में जवाहरात का धन्धा प्रारम्भ कर चुका था। भाई साहब ने मुझे मेरे अनुरूप तथा छोटे भाई रतन को उसके अनुरूप हर प्रकार से प्रोत्साहन दिया। हमेशा हम दोनों, भाइयों को भी अपने स्वंय के पुत्र की भांति मानते रहे। हमें लगा ही नहीं कभी कि पिता जी की मृत्य हो चुकी है। हमारी छोटी से छोटी जरूरतों का उन्हें ध्यान रहा। सुशीला भाभी ने भी इसमें अपना उदारतापूर्वक सहयोग दिया। मुझे तो हमेशा लगता है—भाई साहब मेरे पिता ही हैं और भाभी मां जैसी।

हम तीन भाई हैं—तीनों के कार्य क्षेत्र अलग-अलग हैं। विचारों की दृष्टि से भी छोटा भाई हम दोनों भाइयों से कुछ भिन्न है पर तीनों के बीच कभी भी किसी भी प्रकार का मतभेद नहीं हुआ। भाई साहब का पितृवत् स्नेह और आशीर्वाद सारे परिवार को, बढ़ते परिवार के छोटे से छोटे सदस्य को एक स्नेह के सूत्र में बांधे हुए है। जब-जब वे जयपुर आते हैं या कलकते में मिलते हैं तो सारे लोग—बच्चे और बड़े सब भाई साहब के चारों ओर घेरा लगाकर बैठ जाते हैं और सुनते हैं उनके जीवन की हजारों कड़वी-मीठी अनुभूतियों की कहानियां। वे कहते-कहते आर्द्र हो जाते हैं—गला भर आता है और हम सुनते-सुनते रो पड़ते हैं। पता नहीं ये सब आंसू सुख के होते हैं या दुःख के पर इतना सच है कि वे भोगी हुई सत्य कथाएं हम सबके जीवन-निर्माण की मजबूत ईंटें बनती गई हैं।

भाई साहब ने जीवन के ७० बसन्त देख लिये हैं—जीवन की इस अवधि में जितना कुछ उन्होंने पाया है, उससे अधिक उन्होंने हम सबको, समाज को और देश को दिया है। उनका जीवन हमारे लिये गौरवमय प्रेरणा का स्रोत है और सनातन रहेगा।

एस. सी. [illegible]

भाई साहब भरे-पूरे परिवार में अब पिता हैं, बाबा हैं, ताऊ जी हैं, नाना हैं और सबसे बड़े एक ऐसे बुजुर्ग हैं जिन्हें परिवार का हर सदस्य प्यार करता है, आदर करता है और मुश्किल के वक्त उनसे मार्गदर्शन पाता है। हर सफल जीवन के पीछे एक नारी होती है और उस रूप में सुशीला भाभी को भी हम सब कैसे भुलायें। दोनों की जोड़ी बनी रहे, यही कामना है।

उनके इस ७० वें जन्म दिन पर परिवार के हम सब लोग उनके शतायु होने की कामना करते हैं।

मेरे भाई : मेरी प्रेरणा

रतनचंद सिंघी
छोटे भाई

आज मुझे यह जानकर अपार खुशी हो रही है कि पूज्य भाई साहब का अभिनन्दन किया जा रहा है। उन्होंने देश की, समाज की व घर की जितनी निःस्वार्थ सेवा की है वह हमारे सामने एक उदाहरण के रूप में है।

आज से ३०-४० वर्ष पूर्व जब हमारा समाज अन्धविश्वासों व कुरीतियों की जंजीरों में पूर्णतया जकड़ा हुआ था, ऐसे समय उन्होंने लोगों को इन बुराइयों के दुष्परिणामों को सामने लाकर एक नई दिशा प्रदान की। पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा आदि का खुलकर विरोध किया व स्त्रियों में एक नई चेतना जागृत की जिसमें अधिकांश सहयोग मेरी भाभी का भी है। उन्होंने घर-घर जाकर लोगों को समझाया व कई विधवाओं का पुनर्विवाह करवाया और उनमें नये सिरे से समाज में इज्जत से जीने की उमंग भर दी। और आज भी उनके कदम आगे की तरफ बढ़ रहे हैं।

भाई साहब को मैंने हमेशा पिताजी की तरह माना है। मैं आज जो कुछ भी बन पाया हूँ वह उनकी प्रेरणा का ही परिणाम है।

भाई साहब के जीवन की एक-एक घटना अविस्मरणीय है। मुझे अपनी शादी की बात याद आ रही है। मेरी शादी का दिन तय हो चुका था। घर मेहमानों से भरा था। ऐसे में उन्हें पता लगा कि लड़की अभी शारदा ऐक्ट के अनुसार विवाह के योग्य नहीं है। उन्होंने तुरन्त शादी रुकवा दी। आज से ३५ वर्ष पूर्व ऐसी बातें करना समाज से विरोध मोल लेना था। पूरे शहर में यही एक चर्चा का विषय बन गया कि तेलचढ़ी लड़की की शादी रोक दी गई है लेकिन, उन्होंने इन बातों की परवाह नहीं की और एक साल बाद मेरी शादी कर लोगों को नई दिशा की तरफ सोचने पर मजबूर कर दिया। व्यक्ति के मूल्यों की परीक्षा तभी होती है जब कथनी व करनी में फर्क नहीं हो, वही बातें स्वयं पर, अपने परिवार पर लागू की जायें। उन्होंने वही

कर दिखाया है। अपनी दो पुत्रियों व एक पुत्र तीनों का अन्तर्जातीय विवाह किया है व स्वयं विधुर होकर एक विधवा से शादी की।

आज मुझे सोचकर भी आश्चर्य होता है कि कैसे उन्होंने सबकी जरूरतें पूरी की। जब मेरी शादी हुई तब मैं अपने पैरों पर पूर्णतया खड़ा नहीं था। आवश्यकताएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थीं। ऐसे समय भाई साहब कलकत्ते में २००) रुपये की नौकरी करते थे। हमेशा यही लिखते थे कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करना। पढ़ाई में मेरी ज्यादा दिलचस्पी न देखकर व घर की परिस्थितियों को समझते हुए उन्होंने मुझे जवाहरात के काम की ओर प्रेरित किया।

भाई साहब को कई वर्षों से "मधुमेह" की बीमारी है। लेकिन मैंने कभी भी उन्हें अपने स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित नहीं पाया बल्कि मेरी छोटी-सी परेशानी भी उनके लिये अधिक पीड़ादायी होती है जैसे कि कोई मां अपने बच्चे की पीड़ा से तड़प उठती है।

उन्होंने तन, मन व धन से मेरे लिए इतना किया है कि मैं उनके उपकारों का बदला जीवन भर पूरा नहीं कर सकता। मैं हमेशा यही सोचता रहता हूँ कि कैसे उनकी सेवा कर सकूँ व उनके योग्य बन सकूँ। मैं अपने लिये गौरव की बात मानता हूँ व साथ ही भगवान से यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरे जैसे भाई और भाभी सबको मिलें। भाई साहब की जितनी प्रसंशा की जाए उतनी ही कम है। आज जो कुछ मैं और मेरा परिवार है, वह पूज्य भाई साहब व पूज्य भाभीजी के आशीर्वाद का ही फल है।

बाबू जी : जैसा मैंने देखा, जैसा मैंने जाना

श्रीकांत सिंघी
पुत्र

आज जिस व्यक्ति की अभिनन्दन योजना है, जिसके संघर्षमय जीवन के माध्यम से सामाजिक क्रांति, परिवार-नियोजन और शिक्षण विकास की उपलब्धियों को आंकने का प्रयास किया जा रहा है उसकी पृष्ठभूमि में मेरी अपनी सीमित उपलब्धियों में सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि मैं उनका पुत्र हूँ। उनकी बेहद व्यस्त दिनचर्या के कारण बचपन में उन्हें बहुत नजदीक से नहीं जान पाया और कब, किस समय उनके किस सिद्धांत ने उनके किस गुण ने मुझे प्रभावित किया, इसका ब्योरा दे पाना मेरे लिए मुश्किल है। क्योंकि बरगद के पेड़ के बीच पनपे हर पौधे को छांव मिलती है, नमी मिलती है पोषण मिलता है लेकिन उसके किस हिस्से से उसे यह सब मिलता है, कहना मुश्किल है। मुझे अपने पिता हमेशा बहुत ही गंभीर स्वभाव के और अनुशासन प्रिय लगे। लेकिन थोड़ा और बड़ा होने पर मैंने अनुभव किया कि वह तो वह नारियल है जो ऊपर से जितना भी पत्थर की तरह कड़ा हो, पर उसके अन्दर तो प्यार का सोता

एक सी नियामतें

भाई साहब भरे-पूरे परिवार में अब पिता हैं, बाबा हैं, ताऊ जी हैं, नाना हैं और सबसे बड़े एक ऐसे बुजुर्ग हैं जिन्हें परिवार का हर सदस्य प्यार करता है, आदर करता है और मुश्किल के वक्त उनसे मार्गदर्शन पाता है। हर सफल जीवन के पीछे एक नारी होती है और उस रूप में सुशीला भाभी को भी हम सब कैसे भुलायें। दोनों की जोड़ी बनी रहे, यही कामना है।

उनके इस ७० वें जन्म दिन पर परिवार के हम सब लोग उनके शतायु होने की कामना करते हैं।

मेरे भाई : मेरी प्रेरणा

रतनचंद सिंघी
छोटे भाई

आज मुझे यह जानकर अपार खुशी हो रही है कि पूज्य भाई साहब का अभिनन्दन किया जा रहा है। उन्होंने देश की, समाज की व घर की जितनी निःस्वार्थ सेवा की है वह हमारे सामने एक उदाहरण के रूप में है।

आज से ३०-४० वर्ष पूर्व जब हमारा समाज अन्धविश्वासों व कुरीतियों की जंजीरों में पूर्णतया जकड़ा हुआ था, ऐसे समय उन्होंने लोगों को इन बुराइयों के दुष्परिणामों को सामने लाकर एक नई दिशा प्रदान की। पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा आदि का खुलकर विरोध किया व स्त्रियों में एक नई चेतना जागृत की जिसमें अधिकांश सहयोग मेरी भाभी का भी है। उन्होंने घर-घर जाकर लोगों को समझाया व कई विधवाओं का पुनर्विवाह करवाया और उनमें नये सिरे से समाज में इज्जत से जीने की उमंग भर दी। और आज भी उनके कदम आगे की तरफ बढ़ रहे हैं।

भाई साहब को मैंने हमेशा पिताजी की तरह माना है। मैं आज जो कुछ भी बन पाया हूँ वह उनकी प्रेरणा का ही परिणाम है।

भाई साहब के जीवन की एक-एक घटना अविस्मरणीय है। मुझे अपनी शादी की बात याद आ रही है। मेरी शादी का दिन तय हो चुका था। घर मेहमानों से भरा था। ऐसे में उन्हें पता लगा कि लड़की अभी शारदा ऐक्ट के अनुसार विवाह के योग्य नहीं है। उन्होंने तुरन्त शादी रुकवा दी। आज से ३५ वर्ष पूर्व ऐसी बातें करना समाज से विरोध मोल लेना था। पूरे शहर में यही एक चर्चा का विषय बन गया कि तेलचढ़ी लड़की की शादी रोक दी गई है लेकिन, उन्होंने इन बातों की परवाह नहीं की और एक साल बाद मेरी शादी कर लोगों को नई दिशा की तरफ सोचने पर मजबूर कर दिया। व्यक्ति के मूल्यों की परीक्षा तभी होती है जब कथनी व करनी में फर्क नहीं हो, वही बातें स्वयं पर, अपने परिवार पर लागू की जायें। उन्होंने वही

कर दिखाया है। अपनी दो पुत्रियों व एक पुत्र तीनों का अन्तर्जातीय विवाह किया है व स्वयं विधुर होकर एक विधवा से शादी की।

आज मुझे सोचकर भी आश्चर्य होता है कि कैसे उन्होंने सबकी जरूरतें पूरी की। जब मेरी शादी हुई तब मैं अपने पैरों पर पूर्णतया खड़ा नहीं था। आवश्यकताएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थीं। ऐसे समय भाई साहब कलकत्ते में २००) रुपये की नौकरी करते थे। हमेशा यही लिखते थे कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करना। पढ़ाई में मेरी ज्यादा दिलचस्पी न देखकर व घर की परिस्थितियों को समझते हुए उन्होंने मुझे जवाहरात के काम की ओर प्रेरित किया।

भाई साहब को कई वर्षों से "मधुमेह" की बीमारी है। लेकिन मैंने कभी भी उन्हें अपने स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित नहीं पाया बल्कि मेरी छोटी-सी परेशानी भी उनके लिये अधिक पीड़ादायी होती है जैसे कि कोई मां अपने बच्चे की पीड़ा से तड़प उठती है।

उन्होंने तन, मन व धन से मेरे लिए इतना किया है कि मैं उनके उपकारों का बदला जीवन भर पूरा नहीं कर सकता। मैं हमेशा यही सोचता रहता हूँ कि कैसे उनकी सेवा कर सकूँ व उनके योग्य बन सकूँ। मैं अपने लिये गौरव की बात मानता हूँ व साथ ही भगवान से यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरे जैसे भाई और भाभी सबको मिलें। भाई साहब की जितनी प्रसंशा की जाए उतनी ही कम है। आज जो कुछ मैं और मेरा परिवार है, वह पूज्य भाई साहब व पूज्य भाभीजी के आशीर्वाद का ही फल है।

बाबू जी : जैसा मैंने देखा, जैसा मैंने जाना

श्रीकांत सिंघी
पुत्र

आज जिस व्यक्ति की अभिनन्दन योजना है, जिसके संघर्षमय जीवन के माध्यम से सामाजिक क्रांति, परिवार-नियोजन और शिक्षण विकास की उपलब्धियों को आंकने का प्रयास किया जा रहा है उसकी पृष्ठभूमि में मेरी अपनी सीमित उपलब्धियों में सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि मैं उनका पुत्र हूँ। उनकी बेहद व्यस्त दिनचर्या के कारण बचपन में उन्हें बहुत नजदीक से नहीं जान पाया और कब, किस समय उनके किस सिद्धांत ने उनके किस गुण ने मुझे प्रभावित किया, इसका ब्योरा दे पाना मेरे लिए मुश्किल है। क्योंकि बरगद के पेड़ के बीच पनपे हर पौधे को छांव मिलती है, शांति मिलती है पोषण मिलता है लेकिन उसके किस हिस्से से उसे यह सब मिलता है, कहना मुश्किल है। मुझे अपने पिता हमेशा बहुत ही गंभीर स्वभाव के और अनुशासन प्रिय लगे। लेकिन थोड़ा और बड़ा होने पर मैंने अनुभव किया कि यह तो वह नारियल है जो ऊपर से जितना भी पत्थर की तरह कड़ा हो, पर उसके अन्दर तो प्यार का मीठा

पानी और स्नेह व परोपकार की मीठी सफेदगिरी ही भरी हैं। उनके जीवन को मैंने हमेशा दूसरों से बहुत भिन्न पाया। वे अपने प्रति सच्चे रहे, जो ठीक समझा उसे किया और सबके सामने उसको स्वीकार किया। सच बात कहने से कभी भी डरे नहीं। उनकी स्पष्टवादिता लोगों को बुरी भी लगती थी लेकिन इससे उनके प्रति लोगों का आदर बढ़ा ही, घटा नहीं। उनकी कार्य-कुशलता अपने आप में एक उदाहरण बन गयी थी। मुझे याद नहीं आता कि उन्होंने कभी अपनी पी हुई चाय का कप या पानी का गिलास उठाने के लिए हमें या किसी नौकर को बुलाया हो।

सवेरे बहुत जल्दी उठना और अपने पूरे दिन की कार्य-योजना बना लेना उनकी एक विशेष आदत रही है। एक कागज पर फेहरिस्त बनती है, पूरे परिवार के हर सदस्य के काम उसमें दर्ज हो जाते हैं। भूलने का कोई प्रश्न ही नहीं। इस योजना बद्ध तरीके से समय का अपव्यय नहीं होता। घर की हर वस्तु एक निश्चित जगह है। और मजाल है कि वह दूसरी जगह रख दी जाये। ये बातें छोटी लगती हैं पर इनका जीवन में कितना अर्थ है यह आज इस उम्र में समझ में आता है। एक खास बात मैंने उनमें पायी और वह है हर नयी सीखने योग्य बात को हमेशा अंगीकार करने को तत्पर रहना। उनका सिद्धांत रहा है कि कोई भी उम्र सीखने के लिए ज्यादा नहीं है। जब भी वे विदेश गये या देश में ही कहीं गये तो जिस किसी बात ने या आचार-विचार ने प्रभावित किया, मैंने आश्चर्य से देखा कि कुछ दिनों में ही उन्होंने उसे अपने जीवन में उतार लिया। वे इनको ही जीवन की असली उपलब्धि मानते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में वे अग्रणी रहे हैं। एक विशेषता है कि उनकी बातचीत और तर्क इत्यादि बड़े साधारण और सहज रूप में ही लोगों को प्रभावित कर लेते हैं। यह तो सर्व विदित ही है कि लेखनी और वाणी के ऊपर उनका कितना अधिकार रहा है। मैं उनकी सशक्त और ओजभरी आवाज और भाषण शैली का हमेशा ही प्रशंसक रहा हूँ।

बचपन में हमारा घर साहित्यकारों, लेखकों एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का अड्डा रहा। निराला और महादेवी जी से लेकर जयप्रकाश नारायण इत्यादि को मैंने बहुत निकट से देखा और उनकी जितनी बन सकी सेवा भी की। माँ और बाबूजी इन सब के कितने निकट थे और इनके संबंध कितने सच्चे और मधुर थे यह मैंने जाना। जिस क्षेत्र में भी बाबूजी ने काम किया—उस क्षेत्र में नामीगिरामी व्यक्तियों में वह गिने गये। यह उनकी समर्पित कार्य कुशलता का ही परिचायक है। बाबूजी के कई सुझावों में से एक मैं कभी भूल नहीं पाऊंगा। उन्होंने मुझसे कहा था—"कहीं भी नौकरी करो—ईमानदारी तो रखनी ही है। साथ ही ईमानदारी दिखानी भी उतनी ही जरूरी है। मैंने इसे आजमा कर देखा है।" वे हमेशा कहते हैं कि "आय तो सीमित ही रहेगी। खर्चे कम रखना और अपनी इच्छाओं पर लगाम लगाना ही जीवन की समस्याओं को काफी हद तक कम कर सकता है।"

उन्होंने हमारे परिवार के हर सदस्य, निकट के क्या और दूर के क्या, के लिए जो भी हो सका किया है। सलाह मांगने पर वे उनकी कमियों और उनके गुणों से उनके व्यक्तित्व को तौलते हैं और उन्हें बहुत ही व्यावहारिक सुझाव देते हैं। आज उन

लोगों में से करीब सभी अपने क्षेत्रों में सफल सिद्ध हो चुके हैं। उन्होंने कभी भगवान या मन्दिरों को नहीं माना, लेकिन कभी किसी की भगवान के प्रति आस्था का निरादर भी नहीं किया। वे अपने कर्म के पक्के हैं, अपने आप में सच्चे हैं और किसी का अहित करने की सोच ही नहीं सकते हैं। सच पूछिए तो मैंने तो भगवान और मन्दिर उनके अन्दर ही पाया। इतना, व्यस्त जीवन, कार्य के हर क्षेत्र में एक विशिष्टता प्राप्त करने की चेष्टा और मेहनत और सचाई से कमाई गई इज्जत को असंदिग्ध रखना यह बाबूजी जैसे व्यक्ति के ही लिए हो संभव रहा है। मैं जब भी बीमार पड़ता, मां तो देख-संभाल करती ही, शाम को मेरे बुखार से तपते शरीर को लगता जैसे वह शीतल हो गया है। आंखें खुल जातीं। देखता बाबूजी का हाथ सिर पर हैं और वे मां से पूछ रहे हैं—'अब इसकी तबीयत कैसी है।' सारे दिन की थकान के बावजूद उनके चेहरे पर शिकन नहीं होती और वे अपना स्नेह उड़ेलने के लिए तत्पर रहते।

बाबूजी स्वादिष्ट खाने के शौकीन ही नहीं हैं, बनाने के भी हैं। अब तो कम ही बनाते हैं पर पहले जो व्यंजन वे खुद बनाते थे वह पूरी मित्र मण्डली में मशहूर था। मैंने भी देखा है, उसकी तैयारी में उनका साथ दिया है और उनसे सीखकर हमने भी विरासत में ले लिया है। आज जब भी वे व्यंजन बनाते हैं और लोग प्रशंसा करते हैं, तब बाबूजी याद आ जाते हैं (चूंकि मैं दिल्ली में रहता हूं, इसलिए बाबूजी पास नहीं होते हैं) कोई विश्वास नहीं कर सकता कि बाबूजी आज भी खुद यह सब बना सकते हैं। खाने और खिलाने का इतना शौक मैंने उनसे ही पाया। उनको पता चल जाये कि हम लोगों को किसी वस्तु विशेष की इच्छा है, तो वह आ ही जायेगी। हां, वह पता करने की कोशिश का समय उनके पास पहले कम ही रहता था। मां और उनके बीच व्यक्तित्व-संघर्ष होता ही आया है—आज भी है पर इससे भी हम लोगों ने कुछ सीखा ही।

अपना सवेरे का समय आज भी वे अपनी लाइब्रेरी में ही गुजारते हैं। पढ़ना, लिखना और अपने कागजों को यथास्थान रखना उनकी आदत है। चाय का दौर चलता रहता है और साथ ही काम भी तीव्र गति से चलता रहता है। उसके बाद शुरू होता है मिलने वालों का तांता—स्कूल, कालेज, सभा, सोसाइटी के कार्यकर्ताओं एवं अन्यान्य संस्थाओं से कोई न कोई आता ही रहता है। उनसे निपटना उनके रोज के जीवन का हिस्सा है विचारों में कोई असंगति नहीं, सिद्धांतों के मामले में कोई उलझन नहीं, तो फिर सामने वाला बात समझ ही लेता है, अच्छी लगे या बुरी। क्योंकि जब कोई खुद कर्मठ हो, जो करता हो वही कहता हो, तो किसी को उसके प्रति बेवजह कोई आक्रोश नहीं होता। मैं अपने काम के दौरान भारत के कई हिस्सों में यात्रा पर गया—बाबूजी को जानने वाले जहां भी मिले—उनके बारे में लोगों की आदर भावना देखी। उन्हें अपने शरीर के प्रति कभी भी दया नहीं आई। उसे रगड़ा, खूब रगड़ा और आज भी यथासम्भव रगड़ते रहते हैं। ४० साल से ऊपर से वे मधुमेह के मरीज हैं। पर जिस जीवट और कर्म शक्ति से वे जीवन जी रहे हैं, वह अपने आप में एक अद्वितीय उदाहरण है। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, वे उसी निष्ठा से कर्म पथ पर चले जा रहे हैं। कुछ समय पहले जब वे बहुत बीमार पड़े

और डाक्टरों ने उनको काम करने से मना कर दिया, तब उन्होंने कहा—"यह सब मुझे जीवित रखने के लिये ही किया जा रहा है। लेकिन जिस दिन मैं अपने कार्य से विमुख हो गया मौत तो उसी घड़ी आ गई समझो। नहीं, मुझे अपना काम करने दो।" और सचमुच उनकी जिद देख कर डाक्टरों को उन्हें फिर से काम करने की मंजूरी देनी पड़ी। वे मानते हैं मनुष्य तभी तक जीता है, जब तक उसके जीने का कोई मकसद हो, कोई ध्येय हो, नहीं तो उसके दुविधा में होने या न होने से क्या फर्क पड़ता है। बाबूजी एक गरिमामय शिला की तरह आज भी अडिग खड़े हैं। उनकी मौजूदगी हमारे लिए और अनेकानेक संस्थाओं के लिए कितना बड़ा सम्बल है इसे शब्दों में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं।

हमारे बाबूजी

सुषमा गुप्त
बड़ी पुत्री

हमारे बाबू जी को आजकल यह कहते हुए अकसर सुना जाता है—"मैंने अपने बच्चों के लिये कुछ नहीं किया। अपने विभिन्न कामों में मैं इतना व्यस्त रहा कि बच्चों की उपेक्षा हुई।" लेकिन जिस 'उपेक्षा' की वे बात करते हैं, उससे हम तीनों ने जितना सीखा है और ज़िन्दगी में अपने को औरों से भिन्न महसूस किया है, उसका अहसास शायद उनको भी नहीं है। न ही उसकी उनको शिकायत है क्योंकि उनकी ही तरह हमने कभी अपना स्नेह और कृतज्ञता शब्दों में व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं समझी। शायद इसीलिये मुझसे जब कुछ लिखने को कहा गया, तो काफी हिचकिचाहट सी हुई।

अच्छे पिता की कोई परिभाषा नहीं होती। बचपन में हर छोटी मुश्किल हल करने में मुझे पिता का साथ नहीं मिला (न ही अपनी माँ का, क्योंकि वे भी समाज-सेवा में उतनी ही व्यस्त थीं, जितना कि बाबू जी)—बल्कि यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि वे दिखते ही बहुत कम थे। अकसर वे दोनों शहर से बाहर किसी सम्मेलन में भाग लेने चले जाते थे, और जिन दिनों कलकत्ते में रहते उनकी शामें किसी साहित्यिक गोष्ठी अथवा समाज-सुधारकों की सभा में गुजरती थीं। उन दिनों हमने अपने ननिहाल में बहुत समय बिताया या घर में आते-जाते जो और लोग रहा करते थे उनके साथ। इसलिये 'उपेक्षा' नहीं हुई—हाँ, इस वातावरण ने हमारे परिवार को, उनको और मुझे दूसरों से अलग जरूर बना दिया। बराबर के और बच्चों से पहले ही मुझमें अपनी समस्याओं से जूझने की शक्ति आ गई—उससे मैंने ज़िन्दगी में पाया ही, कुछ खोया नहीं।

पारिवारिक जीवन के लिए जब उनके पास वक्त होता था, चाहे वह कलकत्ता हो, जयपुर या काश्मीर। काश्मीर में हम लोगों ने बचपन में कई छुट्टियाँ बिताईं।

वह इसलिये कि वहाँ उनके मालिकों की एक कार्पेट फैक्टरी थी जिसके सिलसिले में उनको साल में कई बार वहां जाना पड़ता था। अपने सामाजिक, राजनीतिक अथवा साहित्यिक सम्मेलनों में भाग लेने के अलावा उन्होंने कभी छुट्टी ली हो, ऐसा याद नहीं आता। इन छुट्टियों के दौरान उनका सांसारिक रूप दिखाई देता था। इन अवसरों पर उनका स्नेह, रसिकता और प्रफुल्लता सबको मुग्ध कर देती थी। हमारे चाचाओं और हमारी बुआ जी की श्रद्धा देखने लायक थी—इतनी कि बाबू जी की हर इच्छा, बिना सवाल-जवाब के पूरी हो जाती थी। आजतक वे लोग अपनी सफलता के लिए बाबू जी के कृतज्ञ हैं, वे भी अपने भाइयो के बारे में बड़े गर्व से बात करते हैं। ऐसे ही एक मौके पर उनको एक विधवा बुआ से मुलाक़ात हुई और बातों ही बातों में पता चला कि बाबू जी सालों से उनको हर महीने रुपये भेजते रहे हैं, जिसका हमारे घर में कभी ज़िक्र भी नहीं होता था। ऐसे तो बहुत अवसर थे जब उनकी ख्याति और सम्मान से लोग गर्व बोध करते थे, लेकिन उस दिन उनके व्यक्तित्व के बड़प्पन ने मुझे फिर से प्रभावित किया। अपनी परिवारिक ज़िम्मेदारियों के प्रति उनकी सचेतनता मानो समाज की ओर उनकी उदार मनोभावना का एक अंश थी।

हमारे छोटे से अपने परिवार ने कभी आधुनिक परिवार की सीमाएं नहीं जानीं, और ग़लती से उस ओर कभी ध्यान गया तो डाँट ही खाई। अपने कमरे में अपनी बूढ़ी दादी जी के सोने से और उनके सुबह चार-पांच उठ जाने से जो दिक्कत होती थी, वह व्यक्त करने पर बाबू जी से जो डांट खाई थी, अभी तक याद है। आग बबूला हो कर उन्होंने तो घर से निकालने की धमकी भी दे दी थी। हमेशा इतने लोग आते-जाते रहते थे कि हमको बड़े परिवार में पलने का आनन्द मिला। सुबह-शाम मेहमानों का प्रवाह चलता रहता था, घर में ठहरे हुए अतिथि तो थे ही। उनमें साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दुनिया के विख्यात व्यक्ति भी थे, और बहुत से साधारण और अनजाने लोग भी, लेकिन बाबू जी की आन्तरिकता में कोई अन्तर नहीं था। इस तरह 'केन्द्रित परिवार' के संकुचित दायरे से बाहर लोगों के साथ जीना और उन्हें अपनाना सीखा और जाना, सफलता का मूल्य व उसके नियंत्रण!

घर के लिये उनको वक्त नहीं रहा, यह भी सही नहीं है। जब घर की सफाई में हाथ बँटाने लगते तो उनकी तरह काम कोई नहीं कर पाता था। माँ चिल्लाती रहती थीं, रविवार को बिना खाये-पिये तीन बजे तक लगे रहते थे। उस दौरान अकसर घर के नौकरों के बिस्तरों की जाँच भी हो जाती थी, और अगर असंतुष्ट हुए तो उठा कर फेंक देना मामूली बात थी। अगले दिन मां का पहला काम होता नये तकिये—गद्दे बनवाना, नहीं तो घर में महायुद्ध छिड़ जाता। नौकरों के प्रसंग में एक और किस्सा याद आता है। पांच साल की उम्र में एक बार मैंने गुस्से में किसी नौकर को 'साला' कह दिया था। मार तो पड़ी ही, तीन दिन तक उन्होंने मेरा कमरे से निकलना बन्द करवा दिया और एक अक्षर बात नहीं की। शायद उस नौकर के लगातार विनती करने पर ही सज़ा खत्म हुई। उस दिन से आजतक नौकरों के साथ बुरा व्यवहार देख कर मुझसे चुप नहीं रहा जाता।

प्रेसिडेन्सी कॉलेज में Botany Hons. (बॉटनी आनर्स) के तीन सालों में कई बार कलकत्ते से बाहर भ्रमण के लिए जाना हुआ। उनमें से एक बार की घटना याद आती है। कलकत्ता लौटते वक्त ट्रेन में हमारे एक सहपाठी को काफी तेज़ बुखार हो गया। उसकी आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी और मुझे यह भी मालूम था कि वह कलकत्ते में अपने एक ममेरे भाई के साथ रहता था, जहाँ उसकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं था। बिना हिचकिचाहट के मैं उसको स्टेशन से सीधे ही अपने घर ले आई। वह उसके पहले कई बार हमारे यहाँ आ चुका था, फिर भी संकोच कर रहा था। लेकिन घर पहुंचने के कुछ ही घंटों में उसकी अस्थिरता दूर हो गई। बाबू जी और मां की सहज आंतरिकता उसके लिये आश्चर्यजनक थी, पर मेरे लिये उनकी सहृदयता का एक और प्रमाण मात्र! वह मेहनती छात्र था और कुछ सालों बाद जब उसने एम० एस० सी० में प्रथम स्थान प्राप्त किया तो बाबू जी ने विदेश जाने के लिये उसकी छात्रवृत्ति की व्यवस्था की। अब वह पीएच० डी० करके किसी अमेरिकन यूनिवर्सिटी में पढ़ा रहा है। आज स्थिति यह है कि जब वह भारतवर्ष आता है, मुझसे मिले न मिले, बाबू जी के पास ज़रूर आता है।

पन्द्रह साल पहले का वह दिन भी याद आता है जब उन्होंने हमारी शादी के तुरन्त बाद ही उज्ज्वल और मुझे बधाई देते हुए कहा था—"तुमने युद्ध जीत लिया।" उनके स्वर में गर्व और खुशी के सिवाय कोई भाव नहीं था, यद्यपि जिस 'युद्ध' की ओर उनका संकेत था; उसमें किसी हद तक वे भी विरोधी पक्ष में ही शामिल थे। हुआ यह था कि कॉलेज में साथ पढ़ने के दिनों में जब हमारी जान-पहचान साधारण दोस्ती से ज्यादा घनिष्ठ होने लगी तब बाबू जी विदेश में थे। लौटने पर दो-तीन बार उनकी उज्ज्वल से मुलाकात हुई। उसके बंगाली होने से तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा; यह भरोसा तो मुझे था; लेकिन उसके माता-पिता की सहमति न होने के कारण बाबू जी और माँ को भी इस सम्पर्क का कोई भविष्य नहीं दिखा। उसके कुछ ही महीनों बाद उज्ज्वल पढ़ाई के लिए अमेरिका चले गये। उसके पहले और बाद में हमारे घर में काफी तहलका मचा। खैर छोटे-बड़े विरोधों के बीच मैंने करीब दो साल काटे। शादी के दूसरे प्रस्ताव अस्वीकार किये, और मां-बाबू जी की अनुमति बगैर पत्रों का आदान-प्रदान चलता रहा। फिर उज्ज्वल का एक पत्र आया कि एम० बी० ए० खतम होने के पहले ही वह दो हफ्तों की छुट्टी ले कर आ रहे हैं—शादी करने। दोस्तों से उधार लेकर मेरे टिकट का भी इन्तजाम कर रहे हैं (गनीमत थी, नौकरी पहले ही मिल गई थी, दो महीने बाद के नियुक्ति-पत्र की कॉपी भी साथ थी) और मैं पॉसपोर्ट, वीसा आदि के लिये आवेदन कर दूँ। बाबू जी के विचारों की आधुनिकता और रूढ़िहीनता पर भरोसा कर के मैंने बहुत डरते-डरते पहली बार उनसे बात की। डर था कि यदि उन्होंने बिल्कुल ही मना कर दिया, तब क्या होगा। लेकिन उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया से मुझे चौंका दिया। जैसे ही चिट्ठी पढ़ कर सुनायी, उन्होंने कहा—"लड़का ज़िम्मेदार है। मेरा अन्दाज़ ग़लत था: मुझे जो करना चाहिये, मैं करूँगा।"

अपने उसूलों पर भरोसा करने का महत्व तो मैंने हमेशा ही जाना था, लेकिन उस दिन मुझे उस ईमानदारी के महत्व का भी पता चला, जो व्यक्ति को अपनी भूल

स्वीकार करने की और अपना निश्चय बदलने की शक्ति देती है। लोग कहते हैं कि आपस की व्यक्तिगत समस्याएं एक दूसरे से अधिक अपेक्षा रखने के कारण ही पैदा होती हैं, लेकिन जब ऐसे अवसरों का ख्याल आता है, तब मुझे लगता है कि अपनों से अपेक्षा न कर भी हम आत्मीयता के रिश्ते को एक हद तक नकार देते हैं। उसकी अन्तरंगता और खूबसूरती को विकसित होने का मौका नहीं देते।

बाबू जी : मेरे पथप्रदर्शक, मेरे मित्र

सुस्मिता गुप्ता
छोटी पुत्री, पत्रकार

बाबूजी को जीवन में जिन कुछ बातों पर गर्व हुआ है, उनमें से एक है मेरा पत्रकार बनना। 'द टेलिग्राफ' में पत्रकार होने के बाद से मैं उनकी नजरों में काफी उठी और आज स्थिति यह है कि वे मेरी तारीफ करते नहीं थकते। शायद मुझमें वे अपने पत्रकार का एक प्रतिबिंब पाते हैं।

दरअसल, इसका सारा श्रेय बाबूजी को ही है। स्कूल से कॉलेज तक, और कॉलेज से आज तक उन्होंने मुझे बराबर लेखन के लिये प्रेरित किया और बताया कि लिखना किसी भी दूसरे काम की तुलना में ज्यादा सम्मानजनक है।

बाबूजी कभी भी चालू अर्थों में पिता नहीं रहे शायद मेरे सबसे विश्वसनीय बाबूजी-मां ही रहे हैं और यही वजह है कि मेरी जिन्दगी के हर फैसले में उनकी एक बड़ी भूमिका रही है। हमारे रिश्तों में गहरी अन्तरंगता और परस्पर सम्मान की भावना रही है। मैं तो यह दावा करने का साहस दिखा सकती हूं कि मैंने उन्हें बहुत करीब से जाना है। परिवार में सबसे छोटी होने का एक यह भी फायदा रहा। श्री भैया के दिल्ली जाने और दीदी के विवाह के बाद मैं लगभग बारह साल तक बाबूजी-मां के साथ अकेले रही। घर में सभी का कहना है कि इसी वजह से मैं कुछ ज्यादा ही लाड़ली हूं, लेकिन सचमुच, उन कुछ वर्षों में मैंने जितना देखा, समझा और सीखा, वह अनुभव दूसरों से कुछ अलग ही है। पर आज भी लगता है कि बहुत कुछ जानना बाकी है। अकसर, बाबूजी के व्यक्तित्व का कोई अनदेखा पहलू सामने आ जाता है और मुझे लगता है कि उनका नये सिरे से मूल्यांकन करना चाहिये।

मेरा पक्का विश्वास है कि बच्चों के जीवन में माता-पिता की भूमिका उनकी उम्र के साथ साथ बदलती जानी चाहिये। मैंने पाया है कि बाबूजी भी इस बात को बखूबी समझते रहे हैं। एक उम्र के बाद मैंने कभी भी उनकी डांट नहीं सुनी।

बल्कि आज यदि हिसाब लगाया जाये, तो पता चलेगा कि शायद मैं ही उन्हें ज्यादा डांटने लगी हूं, खासकर उनकी बीमारी के दौरान। हमेशा से ही बाबूजी अपनी शर्तों पर बीमारी से लड़ने की कोशिश करते हैं, और हमें उन्हें तैयार करना पड़ता है कि वे सब कुछ दूसरों पर छोड़ दें।

कई बार तो लगता है कि बाबूजी का जीवन जरूरत से ज्यादा ही व्यस्त है। हर रोज का वहीं सिलसिला, चिट्ठियां लिखने का कभी न खत्म होने वाला क्रम, लोगों से मिलने-जुलने की फिजूल औपचारिकता, सभा, संस्था, सोसाइटी; मुझे लगता कि उनके पास हमारे लिये ही कोई समय नहीं है। पर जैसे-जैसे मैं बड़ी हुई, मैंने पाया कि जिसे मैं फिजूल की माथापच्ची समझती रही थी, वह उनके व्यवस्थित जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है। अगर किसी कारण, कोई काम नहीं हुआ, तो परेशान हो जाते हैं बाबूजी। और कभी भी इस तरह के काम में हम लोगों से कोई चूक होती दिखी, तो बस। सचमुच मैंने बहुत कुछ पाया है बाबूजी से। आज गर्व होता है कि मैं उनकी बेटी हूँ। इसमें शक नहीं कि मेरे व्यक्तित्व के रोम-रोम में बाबूजी और मां की छाप है और उसे मैं एक उपलब्धि मानती हूं।

लिखते लिखते, एक मजेदार वाकया याद आ गया। ६५ साल की उम्र में उन्होंने 'अनामिका' की रजत जयंती के अवसर पर २३ वर्षों बाद पुनः प्रस्तुत नाटक 'नये हाथ' में हिस्सा लिया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, पर उसके बावजूद उन्होंने तीन घन्टे के उस नाटक में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की जिम्मेवारी स्वीकार कर ली। दरअसल २३ साल पहले नाटक की पहली प्रस्तुति में उन्होंने भाग लिया था और इसीलिये फिर से वही भूमिका निभाने को तैयार हुए थे। १९८० की इस प्रस्तुति में मैंने भी एक भूमिका निभायी थी—उनकी नाजायज संतान की। इस प्रस्तुति के बारे में जब भी सोचती हूं; तो रोमांच होता है। बाबूजी ने अच्छा अभिनय किया था, पर कई दृश्यों में संवाद भूल गये थे। पर चूंकि मंच का उनका खासा अनुभव रहा है, इसलिये वे हर बार दूसरे संवाद बोल कर आगे बढ़ जाते। मुश्किल हमें होती कि उनके बोल चुकने के बाद कहां से अपना संवाद शुरू करें हांलाकि इस वजह से वह प्रस्तुति एक चुनौती बन गई थी,। मेरे लिये एक अद्‌भुत अनुभूति थी कि मंच पर बाबूजी के साथ अभिनय कर रही थी।

बाबूजी के बारे में बहुत कुछ लिखने का मन हो रहा है, लेकिन अभी यहाँ इतना ही।



Bhanwarmalji : A Devoted Friend

ATULYA GHOSH
Veteran Congress Leader

I know Shri B. M. Singhi for more than 50 years. I think that I should not use the word 'know', we are good friends. His wife Sushila is also very sincere and a hard working lady and they have always treated me with respect and love. It may be news to many that both husband and wife married second time. After his first wife died, Bhanwarmalji promised to himself that as a social reformer he will only marry a widow. In those days, widow re-marriage was not very customary and popular. So that was a very bold step. But for Bhanwarmalji it was a part of his normal constructive work. He was associated very closely with the constructive wing of the West Bengal Pradesh Committee and used to work whole heartedly. Whenever there was a request by me to lend his co-operation for constructive work, he never failed to respond to my request.

I remember his close association with us to preserve the memory of the great Sarat Chandra Chatterjee. Some persons, when I was in jail, started to build a structure in Debanandapur, the birth-place of Sarat Chandra, in memory of the great novelist. When we went there, we found that the memorial was in a pitiable condition. A start had been made, but somehow it did not progress and for a few years nobody paid any attention to complete the memorial building. When we took up the matter, I immediately sought Bhanwarmalj's co-operation and he readily responded to my request. I still remember the hard work he put in to popularise the venture and ultimately it was completed according to the plan

Soft spoken, mild tempered Bhanwarmalji is very amiable while discussing any controversial point. I am fortunate to have a sincere and loving friend like him and I wish both of them a long, peaceful and meaningful life.

B. M. Singhi : A Selfless Worker

RENUKA ROY
Famous Social Worker

Born in 1914, we can look back to the years of service to the nation that Shri B. M. Singhi has rendered throughout until he has reached the ripe and experienced age of seventy. He has a long career of dedicated public service in various fields of activity.

He joined the non-cooperation movement and continued his academic career and appeared for his M. A. examination even while he was in prison in the Presidency Jail in connection with the freedom movement. Yet he obtained a First Class from the Calcutta University in 1944.

After serving in many business firms he concentrated on social work. Following the reformist movement in the Marwari Samaj, he, as a widower of several years, married a widow Sushila Jain who is a well known social worker in her own right. Apart from this, he has been connected with many movements for social reform under the All India Marwari Federation and the Tarun Sangha which he founded in 1940. As a young man and leader of the Marwari Students' Union he assisted in the movement in support of the Hindu Code Bill in 1948-49, and organised the All India Social Reform Conference in Calcutta. He also took up educational activities and has been the Secretary of Shri Shikshayatan College which has been established by the well known reformer the Late Sitaram Seksaria.

It was when he was working with the well known social reformers, Late Sitaram Seksaria, Basanta Lal Murarka that I came to know him. In the late 40's I came to know his wife Sushila who was already participating in social work and joined us in the All India Women's Conference. Sushila had also joined the Indian National Congress when I was actively participating in its work. It was then that I came to know them well. They have both been dedicated social workers throughout their lives and in the earlier years, Shri Singhi was well known in the Indian National Congress as a freedom fighter. Shri B. M. Singhi is not merely a theoretical supporter of women's right but in his personal life he recognises the right of his wife to give full expression to her own personality and independent work. This has enabled Sushila to contribute her best towards social work without any impediments. In fact, Shri Singhi encouraged her and they have shared their combined responsibilities equally.

Although Shri Singhi has given yeoman service in almost all fields of social work from his youth onwards, he is perhaps best known for being a pioneer in the field of family planning. The devotion and care that he has given to this work almost since its inception in India and the remarkable manner in which he has carried on as one of the prominent leaders of the Family Planning Association, has projected him as one of the foremost workers in this difficult pioneering field.

I am indeed happy to be able to contribute to this souvenir that is being brought out to commemorate his 70th birthday. He has always done selfless work. He has willingly surrendered coveted business

positions which he could have held in view of his ability and conscientious service. It is well known that he has given up a highly remunerative position in order to dedicate himself to social work. He belongs to a long line of social and political workers who were prominent during the Gandhian era.

Both Shri Singhi and his wife have become so much a part of this State and its culture and language that anyone, even including those who have a narrow approach, never consider them as an outsider and have accepted them fully. Their son and the elder daughter have married Bengalis and they are fitted in fully in the society here. In fact, both Shri and Shrimati Singhi are true Indians in the wider sense of the term. They believe that narrow walls cannot contain the human spirit and that service to the nation and humanity renders a satisfaction that no wealh or privileged position can ever bring. Shri Singhi is a man of innate courtesy and always helpful to his colleagues and all others.

I wish him all happiness, sustained good health and a long life, so that he is able to continue his useful work and his endeavour to bring about the changes in social attitudes through which the struggle for economic and social freedom, as a part of Gandhian aspiration, can become a reality.

A Dynamic Personality

JATIN CHAKRAVARTY
Freedom-Fighter, Minister for P. W. D., West Bengal

It is gratifying to note that arrangements are being made to felicitate Shri B. M. Singhi in Calcutta on August 9, 1984, on the completion of his 70th year. Shri Singhi's has been a very eventful career and on this occasion I am sure various aspects of his life will be highlighted.

My association with Shri Singhi dates back to 1942 when he was arrested in connection with the Quit India Movement and I was also in the same jail for the same cause. The clarion call for the Quit India struggle was given by Mahatma Gandhi on August 9, and it is significant that on the same date this year Shri Singhi is going to be felicitated. He, with three other equally patriotic men of business, viz. Shri Sitaram Seksaria, Shri Basanta Lal Murarka and Shri Ram Kumar Bhuwalka, and also another noted revolutionary, Shri Makhan Lal Sen, who later on turned to the management of the widely circulated

vernacular newspaper - Ananda Bazar Patrika - had been in the same Presidency Jail. The ward where they were lodged is known as 'Joradigri'. As a representative of the prisoners of my ward, I used to visit 'Joradigri' for supervising the cooking, when I became more intimate with all of those four belonging to the same community. I being a vegetarian, was always given a share of the food they used to get from their homes, specially the various types of pickles. This brought us closer and made us more intimate with one another.

Though I was associated with revolutionary activities and belonged to an old revolutionary organisation and Shri Singhi was a staunch believer in non-violence propagated by Mahatma Gandhi, I found in him the spirit of a true soldier who was deeply involved in his struggle against foreign rule, and each of us, having the same goal, looked upon the other as a comrade.

After our release from the jail, our ways parted. I took to trade unionism and he became a social worker. We came into close contact again when he was the Chairman of the Family Planning Department of the Indian Chamber of Commerce during the seventies and we worked very closely to implement this programme amongst all sections of society, particularly the working class. He was also the Chairman of the Family Planning Association and, through his initiative and untiring zeal he spread the message of family planning in various industrial sectors.

During that period I also found in him the same devotion to his duty and sense of dedication to the cause he had adopted and this was one of the important traits of his character. Since then, we have often met and have been associated in various common ventures. Even at this age, he is not only very dynamic but he also possesses a youthful exuberance. Jointly with his wife, he is even now deeply involved in various social welfare activities, Like him, his wife is also an active worker and connected with many women's organisations, and thereby she has proved herself to be his partner in the true sense of the term.

A soft spoken man with a persuasive approach, a dedicated servant of the weaker section and the exploited classes, firmly rooted to true Indian culture and tradition, he is always pulsating with life. Shri Singhi goes on working steadfastly without any fanfare or publicity with the passion of a missionary, He is loved by his friends, respected by his co-workers and adored by the public. A life such as his is worth emulating, for it is freely given to the service of the country and the community.

Shri Bhanwarmal Singhi : As I Have Known Him

J. N. DAR

Educationist, Ex-Principal, Shri Daulatram Nopany Vidyalaya

I had the privilege of meeting Shri Bhanwarmal Singhi for the first time in Calcutta in late 1955 in connection with the selection of a Principal for the newly planned Hindi medium school in Calcutta at 2, Nando Mullick Lane, Barra Bazar, named Shri Daulatram Nopany Vidyalaya. I was immediately struck by Shri Singhi's very relevant and searching questions.

As I had the good luck to be selected Principal for establishing this school and as Shri Singhi was a member of the School's managing committee, his liberal and progressive ideas on education and social and cultural activities proved very helpful in persuading the late Shri Rameshwarlalji Nopany (1) to permit the appointment of capable and respectable lady teachers for the junior section (ii) to include fine arts and music in the school curriculum and as hobbies to be pursued by the pupils and (iii) to pursue dramatic activities including lady's role and (iv) and persuade the managing committee not to select teachers primarily on the basis of divisions secured in University degree exam but on the basis of their sense of devotion and dedication to teaching work and help drawing the best out of each pupil and help him develop an all-round personality.

Mr. Singhi, himself being an all-rounder, he was able to spot the right persons.

Mr. Singhi, a business executive by profession, is a very capable man. He was trying to encourage the study of Hindi at the highest level in the Calcutta University and organised Hindi dramatic activities in Calcutta at a high level. He was actively associated with the establishment of many educational institutions in Calcutta and elsewhere.

It was a genuine pleasure for me to be shown round the girls' school and college, Shri Shikshayatan by Padma Bhushan Sitaramji Seksaria who gave great praise to Singhiji, the secretary of Shikshayatan college.

Later, as Principal, Vikas Vidyalaya, I had the privilege of meeting quite a few girls from Shri Shikshayatan who came to meet me as mothers of pupils studying in the Vidyalaya and I was happy to find that these mothers took a more sensible view of their son's education at the school than many other mothers who would visit the school.

I was even more impressed by my visit to the Kanoria Girls College, Jaipur with which again Shri Singhi was closely associated.

But I came into much closer contact with Shri Singhi during the seventies when I was heading the Vikas Vidyalaya, Ranchi founded by the late Shri Rameshwarlalji Nopany, an honest sincere promoter of education with an ideal Indian cultural background but some times taken too far—even onions could not be used in the kitchen and bread was taboo. Though it was a Higher secondary school, Biology could not be taught in school as it would require dissection in practical biology work.

Shri Singhi was to a great extent able to help slowly ease the situation. It was here that I learnt that Shri Singhi was the first Marwari to have married a widow girl—Shrimati Sushila Singhi, I met her revered father, brother and other relations too. It is very heartening to find Shrimati Singhi taking an equally active part in promoting care of poor children, their education and creative and cultural activities. The ever growing activities of PARIVARIKEE are a matter of great satisfaction for those interested in helping our underprivileged class children. Mr. Singhi has made a great contribution in Family planning also and has been a member of the International body of Family Planning.

Liberal in his views, his children have gone in for approved inter-caste marriages and thank god, the family, is a well-knit unit dedicated to social, cultural and educational development.

May god bless the Singhi couple and give them a long life and health to serve the country.

A Close Friend

SHIV KUMAR JOSHI
Noted Gujarati Writer

It is difficult for me to describe my relations with Sri Bhanwarmalji as our close relations have been built through various fields and on several planes.

Theatre had been our common interest. He was contributing his bit through Anamika and I through Gujarati Sahitya Mandal of Calcutta. Incidently we met again on the executive of Theatre Centre and subsequently—perhaps simultaneously—through Anamika.

Not only was Shri Singhi residing close to me as we stayed in the same locality 'Lake Gardens' at least for two decades - but also some of my elders and close friends of Gujarat made us closer to each other. They gave us ample opportunities to be together in fields of literature and cultural get-togethers. Late Kaka Saheb Kalelkar, Late Paramanandji Kuvarji Kapadia (editor of Prabuddh Jeewan), Sri Umashanker bhai, Prof. C. C. Mehta and Sri Gulabdas Broker are dear friends of Sri Singhiji also. Actually Late Sri Paramanandji Kapadia and Shri Singhi were revolutionaries in their own way as far as their attitude towards orthodox Jainism was concerned. Both were basically Gandhians but with a difference - very much Gandhian in spirit and action but would not ever be branded as pseudo Gandhians. They always accepted the good things of life and enjoyed it thoroughly. Both of them worked for the emancipation of women and contributed with their sincere feelings translating their attitude into concrete actions.

Singhiji along with Sushilaji has been always a social reformer in his own community as well as in many other communities of metropolitan Calcutta and has worked in a few moffussil centres also.

We can safely declare Sri Singhiji as one of our inter-state personalities to whom the entire country belonged. He is above all types of narrow mindedness which has unfortunately developed into unsurmountable dimensions recently. We are in search of more and more people of his stature and understanding in all fields of national activities. He applies profound devotion to whatever task he has been assigned. He can accept challenges, can deal with them appropriately and gracefully.

All these qualities make him different person whom we all respect.

Our Secretary : Mr. B. M. Singhi

Mrs. LINA ROY

Principal, Shri Shikshayatan College

It is really difficult to write about somebody who is very close to you, but as soon as I was asked to write about Mr. Singhi whom I have known as our Secretary for last twenty three years, I at once

recalled my interview with him for the post of a lecturer in Education in this college. There were three persons who sat facing me that day - our then Principal Dr. Pratima Bowes, the late Mr. Priyaranjan Sen and Mr. Singhi. While Dr. Bowes and Mr. Sen questioned me from my field of knowledge, Mr. Singhi's questions surprised me. He asked me to mention three greatest qualities in a teacher. When I replied 'Punctuality, honesty and sense of Justice' he smiled and scribbled something on a paper. I was told that I will be informed in time. It was after more than a month that I was called to report to the principal. It was years later that Mr. Singhi incidentally told me the reason for the delay. He said that he had to yield to the pressure from an influential source to appoint somebody else, though I was first on the list and he could not sleep for nights, thinking that he had done injustice to an innocent person and no one was happier than him when that lady could not carry on and resigned. This little anecdote showed me that he believed in principles. At that time he was really a stern man who did not tolerate any nonsense but I found him to be extremely kind and tolerant who loved to follow principles and with a very strong sense of justice. I remember one incident when two of my colleagues went to complain against me for a trivial matter. Mr. Singhi asked them whether they had taken my permission to approach him.

That is Mr. Singhi as I have seen him on several occasions. Every year parents of detained students approach him but he always turns down their request saying "you must not approach me. It is the Principal who is to decide the sent up cases". This faith has definitely kept me alert and cautious so that I do not let down the man who trusts me. A brilliant administrator and organiser, he has relentlessly worked for our college and his contribution towards its reputation today can never be denied or under estimated. Once one of our lecturers went abroad though Mr. Singhi regretted his inability to grant her leave. On her return she and her friends started pleading for her re-instatement. When I requested Mr Singhi to consider her case on the ground that she was a good teacher of her subject, he at once agreed to give her re-employment. As an efficient administrator he is always ready to pick up what is good for the students, for to him the welfare of the students gets the top priority. His profound love for the institution has enabled him to devote all his energy to its service. I recall one meeting of the Governing Body where the then westernised principal made some adverse comments about our college. While other members were too modest to say anything, our secretary banged the table with his fist saying "You must withdraw your remarks. I will not tolerate this" and as soon as she did, Mr. Singhi

smiled and said "I am sorry for losing my temper but you must not say anything against the college." Like a true Leo, I have seen him often misunderstood and even maligned by the very people who have been benefitted by him but I have never seen him upset. But a trivial adverse remark about the college can cause him immense sorrow and upsets him easily.

Once during his critical illness, I had to take one office staff with me, to have some U.G.C. papers signed by him and found him semi-conscious. I was ashamed that I had to trouble him with office matter and was telling my assistant that we should leave when he overheard me and in a feeble voice told me to hand over the papers. When he found that he could not even move his fingers, he lost consciousness. That is how I have seen Mr. Singhi. Devotion to duty and a deep love and concern for the college and its employees are the two greatest qualities in him which are so rare in the secretaries who run schools and colleges these days.

One trait in Mr. Singhi has revealed another side of his character-that is he has never taken any important decision without consulting the President for whom he has got profound respect. I remember the meeting where Mr. Singhi declared "Time has come when we should have a solicitor President and I propose Sri B. P. Khaitan's name". This remarkable foresight and caution in everything are two other admirable traits in him which has saved our college on many occasions. Whenever I see him, I recall Frost's lines which he seems to have adopted as the guiding light in his life :

"The woods are lovely dark and deep
But I have promises to keep
And miles to go before I sleep
And miles to go before I sleep"

I pray to God to give him energy and physical strength to be at the helm of affairs for many more years to come.

B. M. Singhi : A Study in Profile

SAVITA SAIGAL
A Scholar

"What a noble piece of work is man................."

—Shakespeare.

Trying to sketch Mr. Singhi in a few words is like grappling with so many images and trying to capture the truth behind them all in a few strokes on a panoramic canvas. For who, of the residents

of West Bengal, or the Hindi-speaking community of Northern India; is not familior with his name ? And yet, not all know him for the same thing or in the same context — for what a world of visions and memories and allusions and anecdotes crowd the mind at the very mention of his name — the world of politics and social reform, of family planning and womens' education and of art and literature.

Such a man, one might be tempted to believe, must either be a superman or a protean assuming innumerable roles and personalities and here I am reminded how a friend of mine, an intellectual, very national and intelligent, whose judgement I greatly respect, at my very mentioning the various well-known speakers at a Gandhi Celebration (and Mr. Singhi was one of them) very nonchalantly remarked at the very mention of Mr. Singhi that he was the right person to speak on Gandhi and Gandhian principles and Gandhian thought, and on such occasions as his centenary celebrations too. At this I immediately reported that he was wrong, for though there was great truth in his words, there was great irony in his tone, and yet you could not blame him, for he, an intellectual and a recognised intellectual at that, was viewing and assessing Mr. Singhi as one of the Marwaris, a Hindi-propagating nationalist, a member of the capitalistic world, for Mr. Singhi does move in that world too, but yet he is free from all the narrow - mindedness, orthodoxy, rigidity, backwardness and parochialism of that society and is more at home in the world of literature, sociology, education, drama etc.

It is really very confounding and bewildering to note that here is a man equally accepted and respected by the social workers, educationists, intellectuals. artists and business-like utilitarian and materialistic capitalists—worlds directly opposed to and excluding each other. Here I would like to emphasise that we Bengalis are proud and snobbish and the attitude of the artists and intellectuals. specially when it comes to accommodating people of other language-groups, is rather disdainful or condescending and is even more so, if the person happens to be a Marwari. But when it comes to Mr. Singhi, the responses are different and you might rightly wonder why ! For Mr. Singhi is not a resident of Bengal by birth ; nor does he belong to that group of sophisticated Marwaris born in affluent homes. Far from it, his youth and training is a story of one great struggle, and hard work and unbelievable poverty. What is surprising and admirable is not how he overcame and scaled all these hurdles and managed to top the list of successful candidates in his own State, Jaipur in his High School Examination and then later at more challenging centres like Benaras and Calcutta Universities,

for there are many similar stories of honest poverty urging and driving a person to work hard and crowning him with success, but now even when he sincerely felt obliged for all the aids and stipends he received and knew how imperative it was for him to have a decent education for any standing and stability in life, in 1931, when only a student of class IX, he had the vision, daring and the courage to organise a students' strike on the death of Shri Motilal Nehru (father of our late Prime Minister Jawaharlal Nehru) in pre-Independent India. Neither was he haloed or praised for this daring and patriotic act—it is horrifying to note how politics and teachers can intimidate the young, fiery and zealous idealists, and break their spirits, enthusiasm and fire and implant a sense of fear and guilt and abject servility for the love of security and acclaim. And this young leader was made to kneel down from ten in the morning to four in the afternoon, and made an object of scoff and ridicule—this for the brightest boy of the school. But even at this young age, the sense of righteousness, the zeal, the passion and the daring all steeled his resolve to follow the ideals of the leaders of the nation—Gandhi and Nehru, and even in his college days at Benaras Hindu University, as General Secretary of the Students Union, continued to organise several students' movements.

This was just the beginning. The patriotic fervour seemed to grow with the passing days, and no tie of home or family could hold him back. This youth had only one thought on his mind—the Independence. It is strange to note how certain traits persist. He always has a Project Number one, and becomes its vehement crusader, and today it is Family Planning.

He was incarcerated for twenty nine months following the Quit India movement of 9th August, 1942. Incidentally, 9th August is his birthday also. He plunged himself into the movement and became one of the principal workers in Calcutta. And here again he spent most of his time in jail reading 1008 odd books made available to him from the Imperial Library (the present National Library) and Calcutta University Library. This, he says, was very noble and generous on the part of the then Government and he thanks them for this great human liberality. And while recalling these days—the most formative and beneficial days of his life—he, amassing and imbibing political knowledge and lofty idealism, in the company of the most illustrious and idealistic of political gurus he says how he was further convinced of his philosophy, which he had very poetically and profoundly uttered in his slim collection of poetic-prose and lyrics and myths, which he entitled 'VEDANA'—the throes of the heart leading to creative joy. And incidentally when Rabindra-

nath Tagore, before writing his blessings which go as foreword with this book asked him why he had called it 'Vedana' Mr. Singhi clinched even in his own words and asked him of the interpretation of his prayer. "The highest honour, I crave for, O God, is pain". It is this pain, the trial and stress, this throe of the heart that reveals the meaning of life, and chisels it and gives one a sense of direction, Here Singhi seems to sympathise with the modern youth and wonders (and rightly too) if he does or even can, today experience that same fearlessness of death and the sense of adventure in sacrifice. I am here tempted to digress, for Mr. Singhi seems to understand the modern youth as probably others of his generation do not. While speaking to their parents and teachers (for Mr. Singhi is the Founder Secretary, of two leading womens' Colleges and a member of the Executive Committee of several schools) he tries to show to them the terrible and horrifying vastations that happen to haunt the modern youth and is pledged to help them attain an orderliness that arises out of discipline and develop a healthy and positive attitude to life. Commenting on the student unrest and wrong leadership, he recalls how during the Bengal Famine of 1943, when even in jail along with personalities like P. C. Sen, (the ex—Chief Minister of West Bengal) they decided to share half of their one and half rupees pittance with the famine-stricken outside, how the jail authorities refused to let them do so and how a great fight ensued, ending only with their victory. This story was enacted everyday till the Independence. And with Independence, his involvement and identification with the future of the country and the Congress grew and he found himself assuming many new roles and positions in the nation-building activities.

If Mr. Singhi is not in the political news today, it is because he resigned from the Congress in 1950. The growing love of power and self-interest and profit that he noticed growing in the Congress workers outraged his sense of independence and freedom and self-rule and brooding over the words he overheard the Mahatma utter just two months after independence, 'Independence has taken the shape of a calamity, a catastrophe, a monster', and he left the world of politics, never to return to it again.

Mr. Singhi could easily have retired into or entered into the world of literature and poetry and fine arts and philosophy. His slim book 'Vedana' had been acclaimed and appraised by nearly every critic, and the introduction of a new medium and a genre; more plastic than any then known to Hindi literature, the poetic-prose and lyrics in prose had given him a place in the history of Hindi literature. These pieces

and warblings and lyrics and myths were a dance round the moon—in beauty, in romance, in form. There were tender emotions and moving passions, sincerity simplicity and largess and profound philosophy and truth—the *myth of the stars, or what men live by, or if he could*—and all without a touch of regreat or complaint or malice. The most beautiful and graceful of pieces, all, ending on the sojourner, for Mr. Singhi is a sojourner ever.

But he was too much of a man of vision and organisation and action, too committed to humanity and society to withdraw to the world of literature, and art and philosophy—the world of contemplative thought.

And even during his days of political activities, besides his literary and creative writing, he had made a mark in the world of social reforms also. Here you can imagine and marvel at the youth of tremendous energy and drive and zeal and imagination, filling himself with and giving himself to different fields—politics, literature and social reform. Talking of his social-reform drives, one cannot help but admit that he is a reformer with a difference. His is a more convincing approach, a personal and persuading approach, and some might even say, a dramatic approach, and here again one cannot doubt his sincerity and his earnestness for he translates all the principles he preaches, (as far as possible) into practice, and then will more disarmingly strike, 'Look at me !' and he can say it more than once. Talking of widow-remarriage, he himself married a widow after his first wife died when he was only 32. Talking of free-mixing or self-made and inter-caste marriages, both his son and daughter have married into Bengali homes and then you might be tempted to ask ; what about Family Planning ? Don't. For he will bowl you over by 'you see me, I am vasectomised'. He feels this is the only rational, humane, man-to-man approach for dispelling fears and breaking through built-in complexes and prejudices, and implanting convictions.

But once he entered the field of social reform, though he championed the cause of widow-remarriages and denounced social evils like the dowry and the purdah system, he dedicated himself chiefly to two things : education, education in general and womens' education in particular and family planning. Here we must give credit to his foresight and vision and planning. He believed, to quote him, "Once I entered into this field (social reform), our growing numbers appelled me, and I was convinced that unless we pledged to control our families, we could attain no good and all the social reforms and economic developments or political peace would prove utterly futile". And none can doubt the barriers, ignorance and illiteracy can pose.

He started crusading and very ardently at that against over-population and illiteracy. So much so that quite simultaneously as he withdrew from politics in 1950, he started, with a few friends the first Family Planning Clinic in Calcutta. He has been working on this scheme, his Project Number one, India's Project Number one too, today with the greatest of devotion and conviction.

He speaks about it, writes about, broadcasts on it, organises lecture-series on Family living in Colleges, attends seminars, discusses papers, crosses seas and would even cross planets, if it comes to that, to study and propagate Family Planning. Mr. James Andrews, Managing Editor of the National Catholic Weekly "Ave Maria" published from Notre Dame in the United States writing about him rightly said, "But Singhi is unlike most other dedicated men of his generation in that he was an articulate advocate of birth-control as a national policy when it was unpopular in India— long before India became the first country to initiate a national programme". When paid tributes such as these, he acknowledges his deep indebtedness to Lady Rama Rau, the mother of Family Planning in India. He was, however, the first to write on this problem in Hindi. And today, with over a hundred articles on this subject in Indian newspapers and periodicals in English and Hindi and a book 'Family Planning Vs. National Planning' to his credit, besides the editing of magazines on Family Planning (Parivar Niyojan), and several speeches and broadcasts, Mr. Singhi is identified with this project in India (is often called Mr. Family Planning or the Family Planning man) ; was Vice-President of the Family Planning Association of India for many years, was Chairman of the Family Planning Sub-Committee of The Indian Chamber of Commerce, Calcutta, was President of the Family Planning Voluntary Organisations' Co-ordinating Council, was a member of the Family Planning Sub-Committee of the Federation of Indian Chambers of Commerce and industry, and was also a member of the Governing Body of the International Planned Parenthood Federation. In connection with these plans and projects and to gain first-hand experience of the Family Planning work in different countries, he has visited almost all countries in the world and has developed personal contacts with prominent personalities in the field of family planning all over the world. He had twice met and interviewed Margaret Sanger who, as the world knows, lived and died fighting for birth control.

It is easy for Mr. Singhi to develop personal contacts with people for he is so clear and rational and has no moral qualms. And while speaking in open debates or discussions, he touches up his convictions with a pure and lively sense of humour; for example, I

still remember his beautiful quip on lóve being different things in different countries and in India, only 'mama knows' and his moving, human and penetrating appeal to women, in a special way, when deeply concerned about the fate of under-fed and over-populated India. He says things like "we had our Gandhi and Nehru who sacrificed and went to jail to give us freedom, our birth-right, and America had a great woman who went to jail and suffered to give women everywhere their birth-right—the right to decide when and how many children they shall have."

Yet this is not the full portrait of Mr. Singhi. There are sides and sides more. For one can never form a right estimate of his personality, unless one knows his various activities in the field of art and culture and the theatre. In his early years he founded the Tarun Sangh (the Youths' Social Reform Forum) and was editor of the forthnightly 'Tarun' (The Youth) and then one Sub-committee of the Sangh matured into Anamika, the Hindi Theatre Group of repute. He himself acted in several plays including the 'Naye Hath' which won the First prize at the first Sangeet Natak Academy contest. His interest in theatre continues unabated inspite of many different activities he is currently involved in. To-day he is Vice-President of the Theatre Centre, Calcutta of which he was one of the founder Secretaries. This Centre helped in building a new theatre movement and, through it, a new cultural movement for integration and cohesion among the multi-lingual people living in Calcutta.

The more one thinks of him and all the facets of his personality, his role in politics, social reform, education, literature and art and theatre, one is dazed and confused and bewildered for some of these worlds are directly opposed to each other and do exclude each other, but it is a fact that Mr. Singhi has made his mark in all of them alike. The more one thinks of all this, one might be led to believe that Mr. Singhi seems to tower head and shoulders above others, even as the great colossus with his feet planted on different well-defined and opposed territories. The more one thinks deeply, one realises that the real man still evades him, for he is like the ice-berg which, while revealing one-eighth of itself above the surface, glittering in the open sun, yet conceals seven-eighth of himself—emotions, fears and doubts. For though there is a personal touch about everything he does, he is distant and reserved and aloof when it comes to matters very personal. But yet if one keeps in mind some of his activities and some of his beliefs such as, "what is worth doing is worth doing well" and "Don't rest at second best, when you can achieve the best," one begins to apprehend the intelligence, efficiency, and sense of perfection behind the various schemes, the various roles, the various images as they rise on the panoramic scene.

Singhiji : A Multi-Faceted Person

TARUN ROY

Noted Playwright, Director-Actor

Singhiji's is a rare and multifaceted talent. His first claim to fame came in the form of 'Vedana'—a book of prose poems for which he received the blessings of Gurudev Rabindranath. From poetry he moved on to a wide range of fields from commerce to social reform. Inspired by Gandhiji's ideals he devoted a lifetime's effort to the eradication of 'social' ills. As an able administrator he rose to the top of the commercial organisation where he worked. His contribution to the cause of popularising Hindi is noteworthy and so is his contribution to the running of a host of schools and colleges. throughout the country. He is also wellknown as an author and editor of various magazines. Last but not least, he is a great theatre person whose love for the theatre expressed itself in his sensitive renderings as an actor as much as in his ardent espousal of the cause of various amateur groups in Calcutta—the city of theatre, that he has made his home for close to fifty years.

I first met this ever busy amiable gentleman in 1950. I had just finished college and bore the unmistakable stamp of 'fresh from the University'. I joined the family business of freight broking—earning a small commission by arranging shipment of exporters. This was my first exposure to a world where people all around everywhere understood and appreciated only money — profit and loss. I started writing poetry, stories and plays while I was still a student and had already embarked on a stage career as well. My dreams were made of literature and theatre — a far cry from the cross commercialism of Clive Street. My mind pined for another world, but my days were spent in moving from one commercial organisation to another in search of fresh business and following up old ones. One such office I frequented was that of General Fibre Dealers where Singhiji worked. For quite a few days I noticed great excitement among the staff of this office. On enquiring I found out that the cause was a Hindi play that was about to be staged. The theme of the play was Jehad against the conventional social mores rooted in prejudice and exploitation, Female roles were being played by women — a rarity in those days of amateur theatre. The chief organiser was none but Shri Bhanwarmal Singhi. I did not have the opportunity of seeing the play but heard that it was enacted before an enthralled audience who filled up every seat in the auditorium; and created quite a stir in the conservative Marwari society of those days.

In the first meeting itself, I was fascinated by this tall handsome man. He was soft spoken, amiable and had an enquiring mind. I did not have any direct business dealings with him but he insisted that I should meet him whenever I came to their office. At first I was a little hesitant, because Singhiji was a senior officer who never had a moment free. Whenever I peeped into his office I found him either dictating to his secretary, or discussing business matters with colleagues or outsiders, or even better, talking on two telephones simultaneously (yes, it was possible to do so in that bygone era when if you had two phones they both generally worked). But he invariably waved me in, got the others quickly out of the way and started chatting with me. We talked mainly of the cultural happenings in the city—the new play launched by Sombhu Mitra, what was the latest brainwave of Utpal Dutt, the uptodate development regarding Satyajit Ray's film in the making, the recent efforts by the stalwarts and avant-garde of Bengali literature—the whole gamut of who was doing what culturally and how well. We exchanged notes on the Hindi and Bengali language worlds and supplemented each other's knowledge. It was he who introduced me to the legendary Premchand by presenting me a copy of his famous 'Godan'.

In those days the Singhis lived in a small flat in Ratu Sarkar Lane and were the main inspiration behind the publication of a progressive Hindi monthly—Tarun. It was decided that a play in Hindi would be staged, sponsored by Tarun Sangh. The responsibility for writing and directing the play was entrusted to me. I wrote the play in Bengali—a social drama on the day to day problems which best middle class existence. It was called 'Samasya' and translated into Hindi by Smt. Sushila Singhi, and serialised in 'Tarun'. Singhiji himself, Sushilaji, Govind Kanoria, Sushila Bhandari and many others took part in the play. For rehearsals I frequenly visited the Singhi residence and from those days a close bond developed with the whole family. Shri and Smt. Singhi acted with great feeling and I still remember Sushilaji's tearful breakdown at the end of the show—so completely immersed was she in the character that she played. It would not be an exaggeration to say the onward march of amateur Hindi theatre started with the untiring efforts of Singhiji. Through him, I came to know Pratibha Agrawal, Shyamanand Jalan, Badriprasad Tiwari and many others, whose contributions to the cause of Hindi theatre are well-known.

In the fifties we used the small stage next to the drawing room of my uncle Late Ranjan Sen's ship-shaped 'Ajana' on Elgin Road for

continuously experimenting with new plays and dramatic forms. An organisation called the 'Jatiya Natya Parishad' was formed. The Late Dr. Kalidas Nag was the President and Singhiji was an active participant in this group. Tapas Sen had then just come to Calcutta from Delhi and it was here that he first started casting magical spells with his lights, and Utpal Dutt first staged excerpts from 'Othello' in English. This little stage hosted performances by great artistes like Uday Shankar, Rukmini Devi, Shanta Rao and many others. Here it was possible to create an environment that breathed culture which transcends all linguistic and parochial barriers. That this happened was in no small measure due to the earnest efforts of Singhiji.

In 1955, a small auditorium with 100 seats was started in Chakraberia Road in South Calcutta. It was named 'Theatre Centre' Calcutta. The original inspiration came from Smt. Kamala Devi Chattopadhyaya. Singhiji and I were joint secretaries of Theatre Centre for many years. Competition of one-act plays in Calcutta was first started by us. Various groups participated in this, and from these groups emerged the talents of Badal Sircar, Manoj Mitra, Sailesh Guha Neogi (Piklu) and many more.

We also started festivals of plays—first at the New Empire and then at Mahajati Sadan. Plays in most major Indian languages were here—Bengali, Hindi, Gujarati, Marathi, Punjabi, Telegu and also English. The credit for first bringing together theatre of diverse groups in many languages on the same stage goes to the Theatre Centre. For achieving these notable firsts and successfully organising these competitions and festivals, the untiring efforts of the Singhis will always be remembered by Calcutta's theatre lovers.

It was in one of these festivals that 'Anamika' staged 'Naye Haath' in which Singhiji played one of the major characters. This play was also performed in Delhi where it won the first prize in an All - India Competition.

For many long years Singhiji has been closely associated with the Theatre Centre — as Secretary, President or Vice President. In the running of the organisation, many a time we have had differences of opinion but never really a parting of minds. His well-reasoned ideas have always helped the organisation to steer the right course.

We came to know the Singhi family so closely and well, that I wrote a play 'Ek Pashla Brishti' about them. This has been staged many times and has won several prizes. I will always cherish the warmth, love and affection that they have showered on us. ●

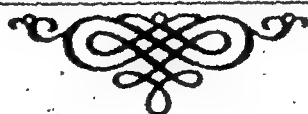
कृतित्व

साहित्य

समाज और राजनीति

धर्म, शिक्षा और संस्कृति

परिवार नियोजन



सिंघी जी का रचना-संसार

श्री भँवरमल सिंघी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उनकी यह प्रतिभा जहाँ सामाजिक सुधार, शिक्षा एवं सांस्कृतिक कार्यों में दृष्टिगत होती है, वहीं उनके सर्जनात्मक लेखन में भी दिखाई देती है। सिंघी जी की प्रतिभा का प्रस्फुटन एक लेखक के रूप में ही होता है, जो आयु के बढ़ने के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों में फैलता चला जाता है। सिंघी जी के कार्य-क्षेत्र की विभिन्नता एवं व्यापकता को देखकर यह कहना कठिन है कि वे प्रमुख रूप से किस क्षेत्र में क्रियाशील रहे, किन्तु उनके रचना संसार की निरन्तरता एवं व्यापकता को देखकर लगता है कि वे मूल रूप से एक सर्जनात्मक लेखक हैं और उनकी सबसे बड़ी चिंता समाज को रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं से मुक्त करते हुए एक स्वस्थ एवं गतिशील समाज की रचना है।

सिंघी जी ने सन् १९३२ से लिखना आरम्भ किया था और यह क्रम आज तक चल रहा है। आरम्भ में वे प्रेमचंद के सम्पर्क में आये और 'हंस' में उनके कई गद्य-गीत प्रकाशित हुए। उनके गद्य-गीतों का एक संकलन 'वेदना' शीर्षक से प्रकाशित हुआ जिसकी भूमिका लिखी सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने तथा आशीर्वाद दिया रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने। बाद में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखते समय पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'वेदना' का उल्लेख किया और पहली रचना पर ही उन्हें लेखक होने का गौरव मिला। उनकी कुछ रचनाएँ 'भग्न हृदय' नाम से भी लिखी गयी हैं।

सिंघी जी ने सर्जनात्मक एवं विचारात्मक दोनों ही प्रकार के साहित्य की रचना की। जीवन में बौद्धिकता, तर्कसंगतता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के साथ भावुकतापूर्ण साहित्य की रचना क्रमशः कम होती गई और विचारोत्तेजक लेखों की संख्या बढ़ती चली गई। सिंघी जी के इन लेखों के मूल में उनका सामाजिक सुधार आन्दोलनों, परिवार नियोजन के कार्यक्रमों तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध होना है। वास्तव में जीवन के इन क्षेत्रों में उनकी सक्रियता जैसे-जैसे बढ़ती चली गई, वैसे-वैसे सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पर चोट करने वाले विचारोत्तेजक लेखों का भी प्रकाशन होता गया, अर्थात् उनकी यह सक्रियता जीवन और लेखन में बराबर बनी रही।

सिंघी जी की लिखी विपुल सामग्री विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी है। 'हंस' से लेकर 'धर्मयुग' तक सभी पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख सम्मानपूर्वक प्रकाशित हुए। कलकत्ता के 'विश्वमित्र' में तो वे अनेक वर्षों तक नियमित लिखते रहे। सिंघी जी ने अपने सात सौ लेखों और करीब इतने ही सम्पादकीयों में जीवन, समाज और राष्ट्र से सम्बन्धित ऐसा कोई विषय नहीं था जो अछूता छोड़ दिया हो। अतः उनके रचना-संसार से कुछ चुनी हुई रचनाओं एवं लेखों का चुनाव करना बड़ा कठिन कार्य रहा। फिर भी हमने उनके सर्जनात्मक एवं विचारात्मक साहित्य की एक झाँकी प्रस्तुत रचनाओं के माध्यम से देने की चेष्टा की है। हमारा प्रयत्न रहा है कि जीवन एवं राष्ट्र के सम्बन्ध में उनकी जो विचारधारा रही है, तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं में उन्होंने जो सर्जना की है, उनका एक प्रतिनिधि रूप पाठकों के सामने उपस्थित हो सके। हमें विश्वास है कि पाठक काफी दूर तक संतुष्ट होंगे। □

साहित्य

गद्य-गीत

कविता

निवन्ध

यात्रावृत्त

रेखाचित्र और संस्मरण

व्यंग्य

साक्षात्कार



गद्यगीत

(१)

अनन्त वर्षों से साधना करता हुआ, निर्जन वनस्थली में घूम-घूम कर वहता हुआ नाला किसकी मूक आराधना में व्यस्त है ?

किसी सुदूर पर्वत के एकान्त शिखर पर विकसित हुआ गुलाव का फूल किसकी आंखों को अपना कलात्मक सौन्दर्य प्रदान करता है ?

घोर अन्धकार-पूर्ण रजनी के तमिश्र पटल पर झिलमिलाता हुआ लघु आकाश-दीप अपने इस छोटे से प्रकाश से किसकी हित साधना करता है ?

किसी प्राचीन स्थान के आसपास में पड़े हुए प्रस्तर खण्ड में कितने युगों का इतिहास भरा है ? वर्षों से वह जो सृष्टि के जन्म-मरण की कहानी कह रहा है—उसको कौन समझता है ?

हृदय के स्पन्दन में इन प्रश्नों की ध्वनि वार-वार सुनाई देती है ! कल्पनाओं की सहायता पाकर भी मैं केवल इतना ही समझ सका हूं कि यह तो साधना की थाली में प्रेम की पूजा है।

(२)

आशा के सूत्र में बँधी हुई कल्पनाओं की भूमि पर नाचती हुई मेरी कामनाएँ किसी विदग्ध ज्वालामुखी के विस्फोट की तरह टूट क्यों नहीं जातीं ? उनके रुके रहने में क्या रहस्य है ? क्या जादू है उनकी प्रेरणाओं में ? क्यों हृदय उनके पीछे बँधा-बँधा दासत्व की शृङ्खलाओं में जकड़ा है ? कौन कहता है कि जीवन का विकास कामनाओं की प्रेरणा में सन्निहित है ? क्या, यह जड़ विकास ही जीवन का अन्त है ?

देव ! मेरे विचारों में यह भूकम्प क्या है ? अरे, ओ जीवन के भूकम्प, हिला-हिला कर ही क्यों रह जाते हो ? विस्फोट की तरह क्यों नहीं टूट जाते ? अपनी लपटों से इसे क्यों नहीं भस्मीभूत कर देते ? क्यों नहीं टूट निकलते, हे मेरे स्वप्नों के विस्फोट ?

इस जड़ जीवन के लिये मुझे नहीं जीना है; नहीं जीना है मुझे इस बन्धन के लिये ! मुझे तो विस्फोट की वही अग्नि चाहिये—जीवन के अन्तर की वह ज्वाला चाहिये जिसकी राख से बनी हुई उर्वरा भूमि में अनुभूति सत्यमय और ज्ञान प्रकाशमय हो सके।

(३)

तेरे अनन्त कष्टों की साधना बन कर, तेरी चिर कामनाओं का केन्द्र बन कर, तेरी निर्वन्ध आशाओं का अमृत-बिन्दु बन कर, मां, तेरे कल्पना-लोक की एकाकी अभिलाषा बन कर मैं यहां चला आया। न मालूम किस अज्ञात हृदय ने तेरी वेदना के मर्म को समझा-समझ कर न मालूम किन अज्ञात करों से उसने मुझे तेरी गोदी में फेंक दिया। तूने सौ-सौ हाथ फैला कर मुझे अपनी छाती से लगा लिया—अपरिमित साधना के इस रत्न को तूने अपनी पलकों में बसा लिया। अपने आनन्दाश्रु से मां, तूने मेरे क्रीड़ा-चापल्य को अमृतमय बना दिया।

मुझसे इतना प्रेम क्यों है, मां ?

तेरे कष्टों की इतिश्री नहीं हुई थी मां, पर फिर भी तू मुझ में, मेरी बाल-क्रीड़ाओं में इतनी लीन हुई कि सब कुछ भूल गई। मैं तेरी गोदी में पड़ा-पड़ा दूध पीता, तू मेरी ओर एकटक से देखती रहती। मैं ऊधम करता, तू धमका देती; मैं एक बार चुप होकर फिर हँस देता, तू चट बलैया ले लेती। वात्सल्य का स्रोत उमड़ पड़ता ! वह तेरा चूमना —वह मेरा झूमना !

मां, उन दिनों की स्मृतियां ही वात्सल्य भर-भर लाती हैं, उस दिन से भी ज्यादा मां, आज मेरा सिर तेरे कोमल वरद हाथों का आश्रय चाहता है। अव्यक्त वेदना आज भी तेरी गोदी में रो लेना चाहती है। जटिल जीवन की अग्नि में जलता हुआ मैं एक बार तेरे वात्सल्य रत्नाकर में डूब जाना चाहता हूँ—और यदि उसकी लहरों में अपने को मिला पाऊँ ?

मां ऐसा वर दे कि मैं उस वात्सल्य-सागर की एक लहर बन गीत गाने लगूँ। मैं गा-गाकर पागल बन जाऊँ, तू सुन-सुन कर झूमने लगे।

(४)

कल्पना बाला के चिर-नवीन रागों में जब कभी आशा की वाद्य-ध्वनि मिलती हुई दिखाई देती है, तो नृत्य करती हुई कामनाएँ नाच-नाच कर उस वाद्यध्वनि को मानो पकड़ कर वश में कर लेना चाहती हैं !

देव ! क्या कामनाओं के नृत्य को तू यह शक्ति प्रदान कर सकेगा ?

एक पर एक पड़े हुए बादलों की तरह जुटी हुई स्मृतियों में से जब कोई अज्ञात चन्द्र अपनी अरुण रश्मियों का जाल फैलाता है, तब जागृत वेदना का कलापूर्ण प्रदर्शन दिखाई देता है।

देव ! क्या वेदना की इस कला को समझने की मुझे क्षमता देगा ?

चटकती हुई कलियों की तरह मनमोहक, किन्तु लहरों की तरह चपल और विद्युत प्रकाश की तरह अस्थिर वासनाएँ जब स्वप्नों की गोदी में खेलती रहती हैं तो प्रभात-रश्मियाँ उनकी तरफ देख कर हँस देती हैं।

हे रहस्यज्ञाता ! इस मुस्कान का रहस्य तो तू ही बतावेगा !

(५)

अलसाती हुई रजनी को जब नींद खुल जाती है, प्रभात को उसके क्रोड़ में दे अमर चन्द्र जब छिप जाता है, तो आती हुई अरुण उषा के साथ खेलता हुआ मलय समीर उस समय किसी सुन्दरी के स्मित की तरह खिलनेवाली कलियों को न जाने कौन सा राग, किसका संदेश सुना जाता है जिसके कारण उनका यौवन एक बारगी ही उमड़ आता है। यौवन-मदिरा का वह नशा उन कलियों में झूम-झूम कर उनको रसविभोर बना देता है—उनका रूप ही बदल देता है।

देव ! यह किसका संदेश है ?

हरे-हरे वृक्षों की कोमल पत्तियाँ हिल-हिल कर, नाच-नाच कर किसका स्वागत करने को डोल रही हैं ? सरोवर की लघूर्मियाँ—जो कुछ ही घंटों पहले तारों के साथ खेल-खेल कर पागल हो रही थीं—मौन हो अब किसकी प्रतीक्षा करने बैठी हैं ? किस खिलाड़ी की रहस्यमय मादक कल्पना इनको निस्तब्ध बनाये है !

देव ! यह किसके स्वागत का आयोजन है ?

नदी के प्रवाह का वह कलकल निनाद, कभी न थकनेवाले निर्झर का यह संगीत, छलकती हुई मदिरा के प्याले की तरह मस्त करनेवाली नव-बालाओं की यह कोमल रागिनी—सब किसके स्वागत के गीत गा रहे हैं ?

मादकता से ओतप्रोत स्वागत के आयोजन रचने वाले स्वर्ण-विहान ! यह किसके स्वागत की रचना है ? प्राची का महान् पथिक सूर्य क्या इतने स्वागत का मूल्य चुका सकेगा ?

देव ! क्या सूर्य स्वागत की आड़ में छिपी हुई उस वेदना को समझ सकेगा ?

(६)

जीवन की सरिता वह-वह कर भी अभी उस समुद्र के गर्भ में नहीं पहुंच सकी, जिसमें मिलने के लिये वह बहती है, जिसके आलिंगन के लिये उसमें आवेग है आवेग में चापल्य है !

इस सागर की अनन्त सौन्दर्य-राशि में मुझे अपनी हृदय-वेदना साधना के पंखों पर ले उड़ना चाहती है। परन्तु वेदना में अभी इतनी शक्ति नहीं, साधना में स्वातंत्र्य नहीं !

जीवन-सरिता की स्मृतियां और अनन्त सागर की कल्पनाएं— दोनों की निकली हुई स्वर-लहरियों से एक संगीतात्मक छंद की रचना होती है जिसे मैं ही सुनता हूं, मैं ही समझता हूं !

जिस दिन इस एकाकी जीवन को रूप-विहीन स्मृतियां सागर के जीवन की अनेक रूपी कल्पनाओं में समा जायेंगी, उसी दिन मेरी जीवन-सरिता उस सागर के अनन्त जीवन में मिल जायगी।

(७)

मेरी वेदना जीवन का वह पारस पत्थर है जिसको छूकर हृदय की ओर-ओर भावनाएँ भी सुवर्ण बन जाती हैं। उसकी अमृत-धारा में डूब कर संगीत नया हो जाता है; वह तो भूली हुई आत्मा का प्रकाश है! जीवनरूपी सर्प के मस्तिष्क की मणि है! जिसके पास यह रत्न है, वही जीवन का मर्म समझता है! जीवन का आलोक वेदना के प्रकाश से है।

देव! यदि तूने मुझे इस रत्न के मूल्य को समझने की बुद्धि दी है, तो उसको रखने का साहस भी तो दे!

मैं तो यह चाहता हूं कि जर्जरित स्मृतियों की माला बनाऊँ और उस माला के बीच में इस रत्न को पिरो कर गले में पहने रहूं!

क्या मैं इतना भी नहीं कर सकूंगा?

(८)

यात्री,

यों यकायक रुक कर जीवन के उच्छ्वासों को समाधि-स्थल पर पहुंचने से पहले मार्ग में ही न बिखेर !

इन्हें वहां ले जाकर डाल जहां विश्व का मधु सौन्दर्य 'उसकी' तेजोमय मूर्ति का पावन अभिसार झूमते हुए ज्योतिपंद्मों पर करता है।

यदि वह समा देख कर तू अपने नेत्र खुले न रख सके तो भी उस संगीत को सुनना न भूल जाना जिसके तरानों में जीवन और मृत्यु एक ही प्याले के झागों में छलकते मिलते हैं।

यदि कविता करने को अब जी नहीं चाहता तो इन स्वप्नों को लेकर काल की मंदाकिनी में स्वयं उतर पड़ और इन स्मृतियों को उसके अन्ततंम तल पर छिपा दे।

यदि कोई कविता से भी गहरा उतरेगा, तो मंदाकिनी तल की ये स्मृतियां उसको बहुमूल्य साधना समझावेगो।

यात्री, जीवन-यात्रा के उच्छ्वासों को बिखेर न दे !

('वेदना' से, १९३७)



कविता

आकुल-स्पन्दन

नीरव पीड़ा के प्रांगण में, जीवन-तरु झुलसा जाता।
संसृति के कम्पित पथ में, जीवन का रोदन गाता।
कब होगा वह विषण्ण विस्फोट, जिसका यह स्वागत कम्पन।
कह न सको तो बिखर पड़ो, अन्तर के आकुल स्पन्दन।

जीवन है मादक गरलामृत, शक्ति नहीं कैसे पीना।
कर प्रकम्प से टूट जायगा, मद-भीना जीवन-सपना।
किस दिन होगा वह दिव्य विहान, जब होगा मर्म विहाग।
कह न सको तो बिखर पड़ो, जीवन के आकुल अभिशाप।

शून्य निशा में बहता जाता, कहाँ मिलेगी दीप शिखा ?
नई तूलिका नई रंगीनी, रंगो न जीवन-अभिलाषा।
अस्थिर लहरों में जीवन खोता, आशा का बुद्बुद् रहता।
पर इस अस्थिर बुद्बुद् में भी, जीवन आँख मिचौनी करता।

कह न सको तो बिखर पड़ो, अन्तर के आकुल स्पन्दन।

(ओसवाल नवयुवक, नवंबर १९३७)

युवक से : विवाह के अवसर पर

विवाह की मंगल-वेला में
आनन्द और उछाह की सरस घड़ियों में
जीवन के नये प्रभात की ओर बढ़ने के वक्त
आजीवन साथ रहनेवाले साथी से स्नेह का संबंध
स्थापित करने के मुहूर्त्त में

तुमने उस साथी के हृदय को भी समझने की
कोशिश की है जिसका समर्पण तुम लेने जा रहे हो ?

० ० ०

कल जब तुम जीवन का नया प्रभात पाकर उठोगे,
नयी कल्पनाएँ,
नये स्वप्न,
नयी आकांक्षाएं,
तुम्हारे दिल में भरी होंगी,
उस वक्त क्या तुम अपने चिरजीवन के साथी की मूक वेदना भी देखोगे,
और उसके जीवन पर पड़ी हुई श्रृंखलाओं को समझोगे ?

० ० ०

आज जो स्वतंत्र है,
कल का प्रभात उसे परतंत्र बना देगा,
और, उसकी परतंत्रता तुम्हारे कारण होगी।
तुम उसे बन्दिनी बना रहे हो।
समाज की परम्परा के नाम पर
तुम उसे पर्दे में बांध रहे हो;
रूढ़ि के आवरण में ढक रहे हो,
साथी के प्रति अविश्वास के साथ तुम जीवन की यात्रा शुरू कर रहे हो।
जीवन-संगिनी को परम्परा की श्रृंखलाओं में बांध,

जीवन का मुक्त गान,
मुक्त हास्य
करने जा रहे हो ?
कैसी विडम्बना।

० ० ०

तुम सुन रहे हो,
युग तुमसे कुछ कह रहा है,
समाज कुछ आशा कर रहा है,
सदियों से पीड़ित, शोषित नारी जाति
इस अपमान, विश्वास, अविचार और अन्याय को
वन्द करने के लिये कह रही है।
इसके विपरीत तुम कब तक चल पाओगे ?
क्या जीवन की नयी क्रांति की ध्वनि
तुम्हारे कानों में नहीं आती,
क्या विस्फोट के बिना तुम न जागोगे ?

० ० ०

इसे ही तुम-विवाह अनुष्ठान कहते हो।
यही है तुम्हारी जीवन-यात्रा का मंगल-प्रभात।
जिसे साथ लेकर तुम बढ़ना चाहते हो,
उसी के विकास में बाधक बन रहे हो।
युवको, तोड़ो इस बंधन को,
युवतियो, तोड़ फेंको इस आवरण को।
जीवन का नया प्रभात तुम्हें बुला रहा है।

(विश्वमित्र, मार्च १९४९)

निबन्ध

साहित्य और समाज

साहित्य जीवन का प्रकाश तो है ही, पर वह उसका प्रकाशक भी है। अर्थात् व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के जीवन के अनुरूप तो साहित्य बनता ही है परन्तु इन्हीं के जीवन को नये सांचे में ढालने का काम भी साहित्य किया करता है। इस तरह से साहित्य समाज की दो तरह से सेवा करता है—एक तो उसके बाह्य और आन्तरिक स्वरूप को व्यक्त करके और दूसरे उसको जीवन की नई भावनाएं और नई प्रेरणाएं देकर। साहित्य और समाज का यह अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध बराबर से चला आता है। किसी भी देश या जाति के साहित्य को देखने से ही इस कथन की सत्यता प्रमाणित हो सकती है। इस बात को समझ लेने के बाद हम एक दूसरे महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचते हैं और वह यह कि समाज की संस्कृति यानी जीवनादर्शों की रक्षा, निर्माण, उन्नति या अवनति के प्रधान कारणों में से मुख्य उसका साहित्य होता है। इसलिये कवि का यह वचन कि 'मुर्दा है वह जाति, जहां साहित्य नहीं' सत्य है। जिस देश या जाति का साहित्य नष्ट हो जाता है, अथवा जो बराबर अपने साहित्य से अनुप्राणित नहीं होती रहती, उसके लिये अपने जीवन और संस्कृति की रक्षा करना असंभव होता है।

इन्हीं विचारों की भूमिका के साथ हम मारवाड़ी समाज के बारे में विचार करने को उद्यत हुए हैं। इस स्तम्भ में हम मारवाड़ी समाज की साहित्यिक प्रवृत्ति के बारे में पाठकों को जानकारी कराना चाहते हैं। जानकारी की दृष्टि से इस स्तम्भ में जो तीन लेख छपे हैं, वे उपयोगी हैं।

मारवाड़ी समाज आज भारतवर्ष के हर प्रान्त में फैला हुआ है पर उसकी मूल जन्मभूमि राजस्थान है, इसमें कोई शक नहीं, परन्तु आज मैं अपने इस लेख के लिए 'मारवाड़ी समाज' और 'राजस्थानी समाज' में अन्तर मानकर ही विचार करना उपयुक्त समझता हूं। जहां राजपूताने से बाहर जाकर बसे हुए हर एक राजस्थानी को ही मारवाड़ी नाम से संबोधित किया जाता है; वहाँ राजपूताने में यह नाम इस अर्थ में बहुत कम या बिलकुल नहीं के समान प्रचलित है। जब हम 'मारवाड़ी' और 'राजस्थानी' समाजों का अन्तर मानकर साहित्य जगत् में अपना स्थान देखने चलते हैं, तो तुरन्त मालूम हो जाता है कि मारवाड़ी समाज साहित्य के क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ है। परन्तु राजस्थानी समाज में आज भी साहित्य-सेवियों और साहित्य-प्रेमियों की अच्छी संख्या मौजूद है। 'समाज सेवक' मारवाड़ी समाज का मुखपत्र है, पर

अपनी मूल जन्मभूमि राजस्थान के साथ भी उसका घनिष्ट सम्बन्ध है, इसलिए उसे तो दोनों ही ओर देखना होता है।

प्राचीन राजस्थानी-साहित्य

प्राचीन राजस्थानी साहित्य, जो हमें सारा का सारा तो आज उपलब्ध भी नहीं है, को देखकर उसके निर्माण-कर्त्ताओं के प्रति किसका मस्तक श्रद्धा के साथ नहीं झुक जायेगा ? वह साहित्यनिधि अत्यन्त विशाल ही नहीं, परन्तु बहुत उच्च कोटि की भी है और उच्च कोटि की वह हो क्यों नहीं, जब कि उसमें राजस्थान के उन वीरों की तपस्या का वर्णन है, जिन्होंने अपने शौर्य, त्याग और बलिदान के द्वारा राजस्थान को समस्त आर्यावर्त में अद्वितीय गौरव का स्थान प्रदान किया था। हम पहले बता चुके हैं कि जीवन के अनुरूप ही साहित्य होता है। यह साहित्य पाठक को जीवन की बहुत ऊंची भूमिका पर ले जाने वाला है, क्योंकि उसी ऊँची भूमिका पर जाकर वह साहित्य लिखा गया था। इस साहित्य की विशालता और विविध-विषयकता के बारे में राजस्थानी साहित्य की खोज करने वाले स्वर्गीय या मौजूदा देशी और विदेशी सभी विद्वानों की एक सी राय है। इन विद्वानों में कर्नल टाड, डा० जी० ए० ग्रियर्सन (जिनका तो अभी कुछ ही दिनों पहले स्वर्गवास हुआ है), डा० टेसीटोरी, सर आशुतोष मुखर्जी, डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, ठाकुर किशोर सिंह बार्हस्पत्य-पुरोहित हरिनारायण, मुनि जिनविजय जी, पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पं० रामकरण आसोपा, पं० सूर्यकरण पारीक, पं० नरोत्तमदास स्वामी, पं० मोतीलाल मेनारिया, श्री रघुनाथ प्रसाद सिंहानिया आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी विद्वानों का यह मत मिलता है कि राजस्थानी साहित्य अगर पूरा उपलब्ध हो जाय तो दुनिया का कोई भी साहित्य परिमाण और सौन्दर्य में शायद ही उसका मुकाबला कर सके। इस साहित्य में अधिकांश में तो वीर रस का ही प्राधान्य है, पर श्रृंगार, शांत और करुण रसादि की रचनाएं भी प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इस साहित्य की आत्मा तो वीर रस से ओत-प्रोत है। डा० टेसीटोरी ने लिखा है कि "राजपूताना में जिस विशाल और महान् साहित्य का निर्माण किया गया, उसमें से अधिकांश तो उन स्थानों में लिखा हुआ है, जहाँ राजपूत वीर अपनी जन्मभूमि के लिए प्राणों का बलिदान देकर अपनी जननी और जन्मभूमि का गौरव बढ़ाते थे।" सर आशुतोष मुखर्जी के कई भाषण में इस बात का उल्लेख मिलता है कि यदि इस साहित्य की पूरी तरह खोज की जाय, तो सारे प्राचीन भारतीय साहित्य में शायद इसकी बराबरी का दूसरा साहित्य नहीं निकले। चार वर्ष पहले इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध विद्वान सर फ्रेंसिस यंग हसबैंड जब सायंस कांग्रेस के मौके पर कलकत्ते में आये थे, उस समय राजस्थान रिसर्च सोसाइटी की तरफ से आयोजित सभा में मैंने उनके स्वागतार्थ अंग्रेजी में राजस्थानी साहित्य पर जो निबन्ध पढ़ा था, उसका जबाब देते हुए उन्होंने भी ऐसे ही विचार प्रकट किये थे। वे कई वर्षों पहले राजपूताने में एजेन्ट जनरल के पद पर रहे थे। उस समय उनको राजस्थानी साहित्य के सम्पर्क में आने का मौका मिला था। और भी, कलकत्ता में जब श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को इस साहित्य की बानगी चखाई

गई तो वे उसके सौरभ से झूम उठे थे। उन्होंने फिर एक मौके पर कहा था कि "कुछ समय पहले कलकत्ते में मेरे कुछ राजस्थानी मित्रों ने रण सम्बन्धी कुछ राजस्थानी गीत सुनाए। मैं तो उनको सुनकर मुग्ध हो गया। उन गीतों में कितनी सरसता, सहृदयता और भावुकता है। वे लोगों के स्वाभाविक उद्गार हैं, मैं तो उनको संत-साहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूं। क्या ही अच्छा हो अगर वे गीत प्रकाशित किए जांय। वे गीत संसार के किसी भी साहित्य और भाषा का गौरव बढ़ा सकते हैं। ईश्वर ने चाहा तो मैं उनको शांतिनिकेतन के हिन्दी-भवन द्वारा प्रकाशित करवाऊँगा। राजस्थानी साहित्य को भारत की जनता के सामने लाने की मैं हिन्दी भवन द्वारा पूर्ण कोशिश करूँगा।"

कितने दुःख की बात है कि यह विशाल और अनुपम साहित्य अन्वेषण और प्रकाशन की प्रतीक्षा करता हुआ दीमकों के पेट में अथवा राजपूताना के गांवों में 'ढूमले' (जो कागज को कूटकर उसकी लुगदी से बनाये जाते हैं) बनाने में जा रहा है। जिस मारवाड़ी समाज को अपनी प्रचुर धन-राशि का गर्व है, वह क्या उस विशाल साहित्य की निधि को खो देगा, जिसके कारण उसका ही नहीं, सारे भारत का गौरव होता है। इस साहित्य के अन्वेषण, संग्रह और प्रकाशन की ओर श्री घनश्यामदास जी बिड़ला और रायबहादुर रामदेव जी चोखानी का ध्यान गया था और आज भी होगा ही। श्री बिड़ला जी की सहायता से पिलानी में स्वर्गीय पं० सूर्यकरण जी पारीक ने अपने अनन्य सहयोगी श्री नरोत्तमदासजी स्वामी के सहयोग से कुछ किताबें प्रकाशित कीं और कलकत्ता से राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, जिसको जन्म देने में रायबहादुर रामदेव जी चोखानी और श्री रघुनाथप्रसादजी सिंहानियां का मुख्य हाथ था, ने इस दिशा में काफी काम किया। सोसाइटी की ओर से दो वर्ष तक राजपूताने के गाँव-गाँव मे घूमकर प्राचीन साहित्य की खोज और संग्रह किया गया। पर, यह कहते बड़ा खेद होता है कि अब सोसाइटी करीब-करीब बन्द हो गई है और उसके द्वारा संग्रहीत साहित्य भी यों ही पड़ा है। कोई उपयुक्त विद्वान उसका शोधन और सम्पादन करे तथा धनी व्यक्ति उसके लिए रुपया खर्च करने को तैयार हो तो यह कार्य अवश्य पूरा किया जाना चाहिए। आदरणीय रामदेव जी चोखानी यदि पहले की तरह अपना उत्साह पुनर्जीवित करें तो कोई उपयुक्त कार्यकर्त्ता भी मिल ही जायगा, और इस तरह एक बड़ी जरूरी कमी की पूर्ति हो जायगी। राजस्थान में कुछ विद्वान इस दिशा में प्रवृतिशील हैं ही, जिनमें श्रीअगरचन्द जी नाहटा हैं।

राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र में यह खोज, संग्रह और प्रकाशन का कार्य ही मुख्य रूप से आवश्यक है। क्योंकि राजस्थानी भाषा में नवीन साहित्य-निर्माण की मुझे कोई सम्भावना नहीं लगती, यों चाहे कुछ व्यक्ति मनोरंजन के लिये या 'लिखने के लिये ही' भले ही राजस्थान की किसी भाषा में कहानी या कविता लिख दें। इसकी आज आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि राजस्थान के विद्वान आज हिन्दी में ही साहित्य निर्माण कर रहे हैं, और राजस्थान के आधुनिक साहित्य-प्रेमी भी उसी भाषा के पठन-पाठन के आदी हैं।

आधुनिक साहित्य-निर्माण में हमारा स्थान

इस विषय का एक लेख इसी स्तम्भ में छपा है, उससे पाठकों को यह अनुमान लगाने में कठिनाई न होगी कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माण में भी हमारे समाज के लोग काफी भाग ले रहे हैं। इस विषय में मैंने उस लेख के साथ छपे अपने नोट में कुछ विचार व्यक्त किये हैं। मैंने वहाँ लिखा है कि राजस्थान के कौन-कौन व्यक्ति आज साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान कर रहे हैं, इसकी पूरी सूची बनाना बहुत कठिन है। पर हमारे लिये संतोष की बात यहीं है कि राजस्थान वासियों में ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार हो रहा है, त्यों-त्यों साहित्यिक प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है, इतिहास दर्शन, कविता, आलोचना कहानी-उपन्यास, तथा चिन्तनपूर्ण निबन्ध आदि साहित्य की सभी दिशाओं में राजस्थान के लोग भाग ले रहे हैं।

मारवाड़ी समाज का एकांगी जीवन

इस स्तम्भ में सबसे अधिक ध्यान मैं 'समाज-सेवक' के पाठकों का इस बात की तरफ आकर्षित करना चाहता हूँ कि प्रवासी राजस्थानी अर्थात् मारवाड़ी समाज के प्रायः ९० प्रतिशत लोगों का जीवन न केवल साहित्य से ही, वरन् जीवन के दूसरे भी क्षेत्रों से हटकर केवल धनोपार्जन में परिसीमित हो गया है। यह एकांगी जीवन हमारे समाज के लिये बहुत हानिप्रद सिद्ध हुआ है और हो रहा है। आज व्यापार-व्यवसाय को छोड़कर साहित्य, संस्कृति, कला आदि मानव-जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने वाले विषयों की तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता है। हमारे जीवन को सुबह से रात तक व्यापार ही इतना घेरे रहता है कि इन महत्वपूर्ण विषयों की तरफ हमारा ध्यान जाने ही नहीं पाता। इसलिये साहित्य के साथ सम्पर्क न रखने से हमारा संसार के सर्वोत्तम विचारों के साथ सम्पर्क नहीं रहने पाता।

हमारा समाज के व्यक्तियों से अनुरोध है कि अपने जीवन की एकांगिता को नष्ट कर उसमें सर्वांगीणता उत्पन्न करें। जीवन के दूसरे आवश्यक क्षेत्रों में केवल अपने द्रव्य का सहयोग देकर ही सन्तुष्ट न हो जांय, बल्कि अपने जीवन को भी सर्वतोमुखी बनावें। श्री घनश्यामदास जी बिड़ला ने हाल ही में जो दो पुस्तकें हिन्दी संसार को दी हैं, उनसे साहित्य का गौरव तो बढ़ा ही, परन्तु माड़वाड़ी समाज के सामने भी एक आदर्श रखा गया है, जिससे यह स्पष्ट है कि इतना बड़ा व्यापार करते हुए भी उन्होंने अपने जीवन को सर्वथा उस पर ही नहीं लगा दिया है, राजनीति और साहित्य के लिये भी उनके पास शक्ति है। जब हम यह सीखेंगे कि व्यापार की जगह व्यापार, साहित्य की जगह साहित्य और कला की जगह कला, तभी अपने जीवन को सफल और सुखी बना सकेंगे। मनुष्य का जीवन भी उसके शरीर की तरह विभिन्न अंगों में बँटा हुआ है। एक अंग दूसरे अंगों का कार्य नहीं कर सकता। इसलिये जीवन के सभी अंगों के विकास की हमें जरूरत है। आज हमारा समाज एकाग्रह पूर्वक व्यापार के पीछे ही पकड़कर जीवन के दूसरे अंगों की खबर तक नही लेता, यह समाज के नैतिक और सांस्कृतिक स्वास्थ्य के लिये घातक है।

गन्दा साहित्य

इस लेख में मैं एक विपय की और चर्चा करना चाहता हूं। राजस्थानी साहित्य और खासकर गीत-साहित्य के नाम पर कभी-कभी राजस्थानी भापा में लिखा हुआ गन्दा साहित्य हमारे देखने में आता है। अभी हाल ही में कलकत्ता से प्रकाशित की हुई दो-तीन पुस्तकें देखने में आई थीं, जिनको देखकर किसी भी विचारशील व्यक्ति को अत्यन्त शर्म और दुःख हुए विना नहीं रहेगा। अशिक्षा के कारण खास तौर से इस तरह की वासना को उत्तेजना देने वाली पुस्तकें निकाल कर और उससे भोली-भाली जनता को ठगने तथा उनका नैतिक पतन कराने में हमारे ही समाज के कुछ लोग पाये जाते हैं। हमें ऐसे लोगों के प्रति अत्यन्त घृणा होती है। एक ओर तो हमारे राजस्थानी गीतों के सम्वन्ध में श्री टैगोर जैसे व्यक्ति यह कहें कि मैं तो उनको [गीतों को] संत-साहित्य से भी ऊँचा समझता हूं, और दूसरी तरफ गीत साहित्य के नाम पर इस तरह की कुत्सित तुकवन्दियाँ चलाकर समाज को पतन की ओर ले जाने वाले तथा दूसरे लोगों की नजर में समाज को हेय प्रमाणित करने वाले लोग पाये जाते हैं। यह साहित्य कच्ची उमर के वालक-वालिकाओं और युवक युवतियों के हाथों में पहुंचकर उनकी नैतिकता और चरित्र पर तथा साथ ही स्वास्थ्य पर कितना विनाशकारी असर डालता है, इसके लिये मैं कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं समझता। जिस साहित्य का उद्देश्य मनुष्य को अधिक सांस्कृतिक वनाने का होता है, वही जव हमारी रही-सही संस्कृति को भी विनष्ट करने का उपक्रम करता हो तव उस जाति के दुर्भाग्य के लिये भी क्या कहा जाय ? इस गन्दे साहित्य के प्रचार को रोकना समाज और साहित्य दोनों ही के लिये जरूरी है। इस तरह का साहित्य जव दूसरी जातियों के लोगों के पास पहुंचता होगा, तो वे हमारी असभ्यता और असंस्कृति के वारे में अवश्य घृणा प्रकट करते होंगे। मेरा साहित्यिकों से अनुरोध है कि इस तरह का साहित्य किसी भी तरह प्रकाशित न हो, इसकी उन्हें सावधानी रखनी चाहिये।

मैं इस विवेचन को समाप्त करने के साथ अपने नवयुवक वन्धुओं से यह अनुरोध किये विना नहीं रह सकता कि उन्हें साहित्य और कला को अपने जीवन का अंग वनाकर समाज को सर्वांग सुन्दर और समुन्नत वनाने की ओर लक्ष्य रखकर अपने कर्त्तव्य-पालन में अग्रसर होना चाहिये।

(समाज सेवक, १० अप्रैल १९४१)

साहित्य में राष्ट्रीय भाव

उत्थान और पतन का सिद्धांत अनिवार्य है, किन्तु इस सिद्धांत को क्रियात्मक रूप देने का सारा भार साहित्य पर अवलम्बित है। जब किसी देश का पतन होता है, तो इस पतन के भाव—चाहे पतन कैसा ही क्यों न हो—वहां के साहित्य में प्रस्फुटित होते हैं। कवि और लेखकों के हृदयों में ऐसी निर्बल और पतित भावनाएं जागृत होती हैं, जो समाज के लिए नरक-कुण्ड के साधन जुटाने में अग्रसर होती हैं। धीरे-धीरे यही भावनाएं जाति को गुलाम और पतित बनाकर महानाश के गहन गह्वर में ढकेल देने के साधन संकलित करती हैं। इसी प्रकार उत्थान का भी सारा श्रेय जातीय साहित्य को है। यदि कोई जाति चाहती है कि वह उच्च बने, संसार में ख्याति प्राप्त करे और स्वेच्छित फलों का उपभोग कर सके, तो आवश्यक है कि वह सबसे पहले अपने जातीय साहित्य को ऊँचा उठावे। यदि किसी जाति की वास्तविक सजीवता और क्षमता के दर्शन करना है तो उस देश के साहित्यरूपी मुकुर में देख लिया जाय। यही सबसे उत्तम और सच्चा साधन है।

लेखक और कवि की मानसिक भावनाओं तथा आदर्शों के भाषा-बद्ध रूप का ही नाम तो साहित्य है। बाह्य जगत् की सम्वेदनाएं और अनुभूतियां जब कवि अथवा लेखक के हृदय में प्रवेश पाकर तथा फिर अन्तर-जगत् की छाप लेकर जनता के सम्मुख प्रकट होती हैं, तब वह 'साहित्य' के नाम से अभिहित होती हैं। राष्ट्रनिर्माण में साहित्य का जितना हाथ है, उतना कदाचित् अन्य किसी वस्तु का नहीं हो सकता। किसी अंश में यह कहना ठीक होगा कि देश की जैसी अवस्था होती है, समय का जैसा प्रभाव होता है, साहित्य भी वैसा ही बन जाता है। किन्तु इतना ही नहीं है; मनुष्य हमेशा अपने से ऊँचे आदर्शों की कल्पना किया करता है, अपने समकालीन निस्तब्ध वातावरण में वह अपने भविष्य की उज्ज्वल ज्योतिर्मय भावनाओं की कल्पना करता है। तात्कालिक वातावरण की सारी अवस्थाओं को वह अपना बना लेता है और अनुभूतियों को वह 'अपनेपन' का रूप देकर समाज का मार्ग प्रत्यक्ष कराता है। अतएव भावी राष्ट्र की सफलता की कुंजी उन आदर्शों की महत्ता पर ही निर्भर है। चाहे उस समय के यथार्थ (Real) का चित्रण रहने से वह साहित्य तत्कालीन जनता पर प्रभाव न डाले, किन्तु आगे आनेवाली सन्तान का भोज्य तो वह होगा ही। जिस प्रकार के ग्रन्थ वे पढ़ेंगे, वैसा ही उनका मस्तिष्क और शक्तियां हो जायेंगी। इस प्रकार राष्ट्र और साहित्य का सम्बन्ध बहुत गहरा है।

ऊपर बताया जा चुका है कि साहित्य राष्ट्र की संस्कृति का प्रकाश है। किन्तु यदि ठीक तरह से देखा जाय, तो वह समाज के हृदय में उठनेवाली भावनाओं और विचारों का प्रकाश नहीं, अपितु उनका संरक्षक और विकासकर्ता है—इसलिए प्रत्येक

देश में राष्ट्र और समाज में जो परिवर्तन हुए या नूतन निर्माण हुए हैं, वे सब साहित्य की नींव पर ही खड़े किए गये हैं। संसार के श्लाघ्य त्याग, वल, जीवन, जागृति और वलिदान—जैसे उच्च गुणों का समन्वय एकमात्र साहित्य की विभूति हैं। जिस 'पोप' शव्द ने सारे योरप को हिला दिया था, जिसकी महान् उच्छृंखलता से सारे योरपवासी परेशान थे, उसका भी नाश साहित्य द्वारा किया गया। फ्रांसीसी स्वतन्त्रता के युद्ध के प्रवर्त्तक भी वहाँ के साहित्य-निर्माता ही थे। तात्पर्य यह कि प्रत्येक देश में साहित्य हमेशा उसकी जातीय शक्ति, सामूहिक क्रान्ति, एकता और राजनीतिक महत्ता का एक विशेष कारण रहता आया है।

हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा है। भाषा और साहित्य ही तो समाज, देश और जाति की आत्मा है। जिस देश के पास निज की भाषा नहीं है, कोई अपना साहित्य नहीं है, वह देश कैसा होगा—यह कल्पना-विषयक वात है। हिन्दीभाषा के अनुसंधान के इतिहास से मालूम होता है कि भारतवर्ष की सारी भाषाओं का सम्बन्ध न्यूनाधिक रूप में हिन्दी से है। अतः हमें यहाँ हिन्दी-साहित्य के विषय में ही विचार करना अधिक उपयुक्त होगा। हम यहाँ यह देखेंगे कि हिन्दी साहित्य ने भारतवर्ष के उत्कर्षापकर्ष में कितनी सहायता दी है।

भारतवर्ष के इतिहास का विषय वड़ा मनोहर है, किन्तु साथ-ही साथ जटिल भी है। आज तक भारत में सैकड़ों भीषण संघर्ष उपस्थित हुए और एक के वाद दूसरे का आगमन भी होता गया। भारत का प्राचीन साहित्य हमें वतलाता है कि उस समय भारत धन-धान्य, कला-कौशल, वीरता और पराक्रम सारी वातों में अप्रतिम था—एक उन्नतिशील जाति में जो-जो गुण होने चाहिए, उस समय वे सभी विद्यमान थे। जिसको भारतीय इतिहास का तनिक भी ज्ञान है, वह अच्छी तरह जानता है कि भारत के इतिहास में एक समय वह था जव भारत-भर में वीरता का दौर-दौरा था। यह वीर-रसपूर्ण साहित्य का काल था। पृथ्वीराज जैसे पराक्रमशाली भारत में विद्यमान थे। किन्तु यदि चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज को उसकी शक्ति का भान न कराया होता, तो लोग पृथ्वीराज को उस आदर की दृष्टि से न देखते जैसे आज देखते हैं। यदि पृथ्वीराज और चम्पादे ने राणा प्रताप को उनके प्रण और आन का दिग्दर्शन न कराया होता तो प्रताप शायद अपनी आन से च्युत हो गये होते। यदि भूषण ने शिवाजी को इतना उत्साहित न किया होता तो महाराष्ट्र-साम्राज्य की जड़ दक्षिण में न जमती। धन्य है वीर-साहित्य, जिसके प्रवल प्रताप से जनता में वीरता निखरी पड़ती थी।

अव स्वभावतः हमारे सामने भारतवर्ष का पतन—रोमाञ्चकारी पतन—उपस्थित हो जाता है। भारतवर्ष की अवनति का एक कारण राजप्रासादों में शृंगार-रस-प्रधान कवियों का आदर ही है। जव से वीर-साहित्य को दवाकर शृंगार ने अपना सिक्का जमाया, तभी से हमारे यहाँ शक्ति का ह्रास होने लगा। हमारा तेज और गौरव विलीन हुआ और सारा देश विलासिता में सरावोर हो गया। जहाँ कवि लोग राजा-महाराजाओं के साथ जाकर युद्धभूमि में उनको तथा सैनिकों को वल और उत्साह वढ़ानेवाले, छटपटा देनेवाले, वीररसपूर्ण गान सुनाते थे, वहाँ अव नायिकाओं

का अभिसार और अभिसरण प्रारम्भ हुआ। शीघ्र ही इस विलासिता प्रधान देश का पतन आरम्भ हो चला। पाठक इससे अनभिज्ञ नहीं हैं कि किस प्रकार मध्यकालीन नग्न अश्लीलता के चित्रों भरे साहित्य ने उन्नति शिखरारूढ़ देश की हरी-भरी फुलवारी का नाश किया। अब हमें यह देखना है कि आज हमारा साहित्य राष्ट्रोन्नति में कैसा कार्य कर रहा है। आज कवि और लेखकों का उत्तरदायित्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। साहित्यसेवा और देशसेवा एक दूसरे की पूरक हैं। जहाँ राष्ट्रीय अभ्युत्थान से देश का समष्टिगत व्यक्तित्व बनता है, वहाँ साहित्य से संस्कृति बनती है और उस व्यक्तित्व का प्राणोन्मेष होता है। साहित्यसेवी का काम बहुत बड़ा है, उसकी लेखनी को सारे राष्ट्र का निर्माण करना है। हिन्दी के वयोवृद्ध विद्वान् लेखक पं० सकलनारायणजी शर्मा ने एक बार कहा था—"साहित्यसेवी का क्षेत्र अधिक विस्तृत है और यों भी देखा जाय तो राष्ट्र की सेवा साधना है; संस्कृति उसकी सिद्धि है। इस दृष्टि से राष्ट्र की आत्मा का विकास करनेवाला तथा उसके मनोभावों और संस्कृति-कारक उपकरणों का नियोजक है।"

यह स्पष्ट है हिन्दी-साहित्य में आज जीवन जागृत हो चुका है। चारों ओर आन्दोलन-संघर्ष जाग उठा है। प्रत्येक समस्या लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच रही है। हिन्दी एकमत से समस्त देश में राष्ट्र-भाषा पद पर आसीन हो चुकी है और धीरे-धीरे राष्ट्र-भाषा के नाते हिन्दी का साहित्य भी बढ़ रहा है। वर्तमान हिन्दी साहित्य की कलेवर-वृद्धि का अनुमान लगाना भी कठिन है। किन्तु जैसे ऊपर बताया जा चुका है, उत्तम और आदरणीय साहित्य का राष्ट्रोत्थान में समुचित सहयोग देने का ही है। ऐसे साहित्य की अब भी यहाँ कमी है। माना कि आज हमारे साहित्य में एक नवीन धारा दिखायी पड़ रही है। कविता, उपन्यास, नाटक सर्वत्र नयी बातें, नयी भावनाएँ प्रवेश कर रही हैं। किन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि संसार के चित्र-पट पर राष्ट्रोत्थान के एक अद्भुत और अपूर्व आन्दोलन के उमड़ते हुए दृश्य ने हमारे साहित्य पर बहुत ही कम चिह्न छोड़े हैं। इसका मतलब यह नहीं कि आज हिन्दी साहित्य में राष्ट्रनिर्माण के उपयुक्त साहित्य की रचना हो ही नहीं रही है। यह क्योंकर हो सकता है? जब जीवन के प्रत्येक अंग में राष्ट्रीय भावनाएँ जागृत हो रही हैं, तब लेखक अथवा कवि का हृदय इससे नितान्त अछूता नहीं रह सकता। किन्तु बहुत ही कम ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें यथार्थ ओज उत्पन्न करने की क्षमता है।

किन्तु जिस समय देश की सारी सजीव शक्तियाँ राष्ट्र-निर्माण में जुटी हुई हैं, जिस समय देश की उन्नति के सामने अन्य सारी वस्तुएँ गौण समझी जा रही हैं, उस समय प्रत्येक लेखक और कवि का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपनी सारी प्रतिभा और शक्ति इच्छित आदर्श की पूर्ति के लिए—भावी राष्ट्र के निर्माण के लिए—खपा दे। राष्ट्र के उत्थान में उनका सबसे बड़ा हाथ है, वे उसके निर्माता हैं। भारत के सच्चे उत्थान का सबसे उत्तम और आवश्यक साधन ऐसे साहित्य की रचना करना है जो भारतीयों को उनकी श्रेष्ठतम संस्कृति के योग्य बनावे और राष्ट्र के नवजीवन का संदेश प्रत्येक भारतवासी तक पहुंचा सके। यही साहित्य का सच्चा मर्म है।

(माधुरी, जुलाई, १९३४)

आवारा मसीहा : एक वहुमूल्य उपलब्धि

संयोग किसी के वनाये नहीं वनते, किस ने सोचा होगा कि अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष १९७५ में ही मनाया जायेगा, जो वंगला के अमर कथाशिल्पी शरतचंद्र चटर्जी की जन्म-शताब्दी का वर्ष है। उनका जीवन साधारण नारी के सामाजिक-धार्मिक वंधनों, तज्जनित पीड़ा तथा इस सब के विरुद्ध उसके संघर्ष की कहानी है, उनका सारा लेखन नारी मात्र के प्रति उनकी संवेदना का प्रेरक इतिहास है। आनुषंगिक रूप में यह संयोग भी अपूर्व और सार्थक है कि हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कथाकार श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा प्रणीत उनकी वृहत् जीवनी ('आवारा मसीहा' : प्रकाशक : राजपाल एण्ड संज कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठ संख्या : ४७१; मूल्य : ४५ रु०) अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष की मूल्यवान प्रस्तावना के रूप में गत वर्ष ही प्रकाशित हुई।

जीवन-लेखन अपने-आप में ही वड़ा दुरूह कार्य है। फिर शरतचंद्र जैसे व्यक्ति की जीवनी लिखना तो और भी कठिन है, क्योंकि उन्होंने अपने वारे में कभी कुछ नहीं लिखा। वे आत्मप्रकाश से सदा भागते ही रहे। संभवतः इसीलिए 'आवारा मसीहा' से पूर्व उनकी सांगोपांग जीवनी लिखने का किसी ने प्रयास ही नहीं किया। आत्म-कथा उन्होंने लिखी नहीं। एक वार रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा तो वे वोले, "गुरुदेव, यदि मैं जानता कि मैं इतना वड़ा आदमी वनूंगा, तो मैं किसी और प्रकार जीवन जीता।" वे कहते थे, "मेरा जीवन अंततः मानो एक उपन्यास ही है। इस उपन्यास में मैंने सव कुछ किया, पर छोटा काम कभी नहीं किया। जव मरूंगा, निर्मल खाता छोड़ जाऊंगा। उसके वीच स्याही का दाग कहीं भी नहीं होगा।"

१४ वर्षों का वनवास

स्वर्गीय शरतचंद्र के इस 'निर्मल खाते' के आधार पर ही उनके जीवन का सम्पूर्ण उपन्यास विष्णु प्रभाकर जी ने 'आवारा मसीहा' में प्रस्तुत किया है। इसके पीछे उनकी वहुत वड़ी साधना है। चौदह वर्षों का वनवास लेकर उन्होंने शरत के साहित्य-उद्यान में सतत् विचरण किया। न केवल उनके उपन्यासों, कहानियों, नाटकों, निवंधों और भाषणों के सागर में डुवकियां लगायीं, वल्कि उनके जो सम्वन्धी और मित्र मिल सके, उनके साथ भेंट-वार्ता की तथा उनके पास उपलब्ध शरत के निजी पत्रों का भी अध्ययन किया। इसके लिए उन्होंने वंगाल, विहार और वर्मा में उन सभी स्थानों की यात्रा भी की, जहां शरतचंद्र रहे अथवा गये थे। वहां के जिस वातावरण में, जिन घरों में, जिन लोगों के साथ वे रहे थे, उनको देखा और समझा। इस सारी शोध-यात्रा में जो पृथुल सामग्री (पूरी शायद तव भी नहीं) हाथ लगी, उसका मंथन करके, आखिर में उन्होंने इस उपन्यासकार का महान जीवन-उपन्यास खोज ही लिया।

इसे पढ़ कर जीवनी-लेखक का यह दावा बिलकुल सही उतरता है, "मैंने कला को भले ही खोया हो, लेकिन आस्था को एक क्षण के लिए भी नहीं खोया और निरंतर सशक्त और सच्ची संवेदना की घड़ियों को खोजने का प्रयत्न किया है।"

कहना न होगा कि जिसने 'सशक्त और सच्ची संवेदना की घड़ियों' को खोज लिया, उसने मानो संपूर्ण शरत को पा लिया। संवेदना ही शरतचंद्र के जीवन और लेखन का हार्द था और संवेदना भी प्रधानतः साधारण कहे जानेवाले चरित्रों के प्रति। साधारण के मध्य भी साधारण नारियों के प्रति विशेष और उनमें भी मुख्यतः उन पतिताओं एवं भ्रष्टाचारियों के प्रति, जिनसे समाज घृणा करता है, जिनको पापी कहा जाता है। शरतचंद्र इस वर्ग के लोगों के जीवन में जितनी संवेदना देखते और पाते थे, उतनी भद्र कहे जानेवाले समाज में नहीं। इस संवेदना ने उनको इतना प्रभावित किया था कि अपने जीवन का बड़ा भाग उन्होंने तथाकथित छोटे लोगों के साथ, पतिताओं के संसार में ही रह कर गुजारा था। उन्होंने कभी उन आरोपों, लांछनाओं, विरोधों और गालियों की जरा भी परवाह नहीं की, जिनकी भद्र समाज के लोगों ने उन पर निरंतर बौछार की थी। वे सदैव अपने आवारापन में मस्त रहे बल्कि आवारापन में ही उन्होंने सच्चे मनुष्यत्व की खोज की। समाज में अनीति और भ्रष्टाचार फैलाने का जो आरोप उन पर बार-बार लगाया जाता था, उसके जवाब में उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा था, "मैंने अनीति का प्रचार करने के लिए कलम नहीं पकड़ी। मैंने तो मनुष्य के अंतर में छिपी हुई मनुष्यता को उस महिमा को, जिसे सब नहीं देख पाते, नाना रूपों में अंकित कर के प्रस्तुत किया है।" इस बात को सभी जानते हैं कि शरतचंद्र अपने उपन्यासों में चित्रकार कम और चरित्रकार ही मुख्य रूप में थे। प्रभाकर जी ने शरत के चरित्र की संवेदनाओं के घनीभूत रूप में स्वयं शरत को जीवन-संवेदना को प्रस्तुत किया है—"भ्रांत और अभ्रांत घटनाओं के पीछे शरत के जीवन का जो मूल सत्य रहा है, उसको पहचानना है, घटनाओं से परे जो वास्तविक शरतचंद्र है, उसका रूप प्रस्तुत किया है।" सचमुच 'आवारा मसीहा' जीवन-चरित्रों के इतिहास में एक विशिष्ट योगदान है।

निष्कर्ष के रूप में जीवनीकार ने बताया है और बिलकुल ठीक बताया है कि "शरत-साहित्य की रीढ़ नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण है।" वे यह मानते थे कि पुरुषों के द्वारा बनाये हुए सामाजिक-धार्मिक विधि-विधानों की कैद में स्त्रियों पर बड़ा अत्याचार हुआ है, उनके मनुष्यत्व के सहज विकास में कठोर बाधा पहुंची है। इस स्थिति की व्यथा भोगनेवाली नारी के प्रति उनकी सम्पूर्ण सहानुभूति सदा उन्मुख रही है।

वे समाज-सुधारक नहीं थे—सुधार या क्रांति के उपदेष्टा नहीं थे। वे मात्र शिल्पी थे, स्रष्टा थे। अपने आखिरी और शायद सबसे अधिक क्रांतिकारी उपन्यास 'शेष प्रश्न' की एक आलोचना के जवाब में लिखे गये एक व्यक्तिगत पत्र में उन्होंने स्वयं कहा था—"अन्त में तुम से एक बात कहता हूं, समाज-सुधार की कोई दुरभिसंधि मेरी नहीं है · · · यह काम दूसरों का है। मैं केवल कहानी-लेखक हूं, इसके सिवाय और कुछ नहीं।" वास्तव में उन्होंने सर्वत्र नारी की पीड़ा और संवेदना का ही चित्रण किया, विद्रोह का विचार या मार्ग नहीं दिया। जीवनीकार के शब्दों में, "शरतचंद्र के मत में नारी की दासता मानवीय अधिकारों का हनन है, पर क्रांति का स्वर हृदय के

भीतर से ही उठना चाहिये। समाज को यदि जीवित रहना है तो हृदय के गुण से ही रहना है। इसलिए सामाजिक अत्याचारों के प्रति विद्रोह उनके साहित्य में मुखर नहीं हुआ ••• तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि शरतचंद्र उन परिस्थितियों का चित्रण करने में निश्चय ही सफल हुए, जो पाठक के अन्तर में विद्रोह की अनिवार्यता को स्पष्ट करती हैं, और यह विद्रोह दृढ़ और सत्य सिद्धांतों पर आधारित है।" इस बात को और स्पष्ट करने के लिए जीवनीकार ने शरत के इस कथन को उद्धृत किया है—"मैं तो केवल चिंतन के मार्ग का संकेत दे कर चुप हो जाता हूं। आप लोग समस्या का समाधान करें।"

नारी जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी

परन्तु अंततोगत्वा विद्रोह की अनिवार्यता से स्वयं शरतचंद्र भी अपने को अलग नहीं रख सके और जिन उग्र विचारों और क्रांतिकारी बातों से वे अपने आप को अब तक अलग रखे हुए थे, उनको उन्होंने 'शेष प्रश्न' में निर्भीकतापूर्वक उठा ही लिया। इस उपन्यास की नायिका 'कमल' का जो चरित्र उन्होंने निरूपित किया, वह स्वर्गीय एम० एन० राय के शब्दों में "सर्वबन्धन विमुक्त भारतीय नारी का प्रतीक है। यद्यपि वह नारी अभी तक मानसिक ही है, हाड़-मांस की नहीं, फिर भी इस पात्र के माध्यम से शरत बाबू ने नवयुग की दिशा का संकेत किया है।" स्वयं शरतचंद्र को अपने दृष्टिकोण की इस नवीनता और उसके खतरे के बारे में पता था। उन्होंने स्वयं कहा था, "अन्त तक चलकर 'शेष प्रश्न' से मैं शायद बहुतों को व्यथित करूंगा। फिर भी जो कुछ ठीक है, उसे कहना जरूरी है। इसके बाद जो होगा, देखा जायेगा।" इतना ही नहीं, जीवनीकार के अनुसार उन्होंने अपने मित्र श्री कमलिनीकांत कर से कहा था, "दस वर्ष बाद बंगाल के घर-घर में कमल जैसी नारियां पैदा हो जायेंगी, जो विवाह को संसार में होनेवाली अनेक घटनाओं में से एक घटना मानती हैं, और यह मानती हैं कि विवाह को ही जिस दिन से नारी का सर्वस्व मान लिया गया, उसी दिन से स्त्रियों के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी शुरू हो गयी।" इसी बात को एक दूसरे अवसर पर शरत ने बिलकुल स्पष्टता के साथ यों कहा, "हृदय में प्रेम नहीं तो मंत्रपूत-विवाह विडम्बना मात्र है। इसलिए सतीत्व और नारीत्व को पृथक् दिखाने के लिए मैं बाध्य हुआ हूं। एकनिष्ठ प्रेम और सतीत्व एक ही वस्तु नहीं है। यह बात यदि साहित्य में स्थान नहीं पाती, तो सत्य जीवित कहां रहेगा?"

'शेष प्रश्न' में उठाया हुआ शरत का अन्तिम प्रश्न—क्या सतीत्व ही सम्पूर्ण नारीत्व है?—क्या शरीर ही सारा नारीत्व है? आज भी स्त्री-जीवन का सबसे बड़ा प्रश्न है और अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मूल रूप में इसका विश्लेषण कर रहा है और समाधान की तलाश भी। इस सत्र के मध्य गूंज रही है, मानो शरतचंद्र की भविष्य वाणी ('नारी का मूल्य')—"आगे चल कर एक ऐसा समय आयेगा, जब प्रेम के द्वारा दोनों (स्त्री और पुरुष) का मिल कर एक होना अधिक महत्व का समझा जायेगा और कानून के द्वारा दोनों का मिल कर एक होना गौण माना जायेगा।"

लगता है कि शरत का 'शेष प्रश्न' ही अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष का शेष प्रश्न है, जो विभिन्न नामों से और विभिन्न रूपों में समस्त विश्व में घूम रहा है। पूछ रहा है—'स्त्री-जीवन की इस सबसे बड़ी त्रासदी (जैसा शरत ने कहा है) का अन्त कहां है—है कि नहीं?'

('धर्मयुग', दिसम्बर, १९७५)

यात्रावृत्त

जापान : अनदेखा और देखा

मैं 'लुफ्तहंसा' के विमान में बैठा हूँ जो जापान की ओर उड़ रहा है। जर्मन भाषा में 'लुफ्तहंसा' का क्या अर्थ है, मुझे नहीं मालूम, पर यदि इसका नाम लुत्फहंसा होता तो हमारी अपनी भाषा में खूब सार्थक लगता, क्योंकि उड़ान का जो आनन्द मिल रहा है और आराम की जो व्यवस्था पा रहा हूं, उसमें सचमुच खूब लुत्फ है। उड़ रहा हूँ, पर उड़ान का पता ही नहीं चलता। कुछ मिनट ही हुए कि विमान ने जमीन को छोड़ दिया और अभी-अभी हिन्द-महासागर का हिस्सा पार किया है। क्या रौनक भरी रफ्तार है। मानव-ज्ञान के इस क्षितिज पर से बहुत लम्बी यात्रा पीछे को—आगे की दीख रही है। कितनी बातें अभी-अभी दमदम एयरपोर्ट पर छोड़ आया हूँ और कितनी टोकियो-ओसाका तक की लिये, उड़ते विमान में उड़ रहा हूँ। उड़ने की सीमा नहीं, पर सीमा के ज्ञान और स्पर्श के बिना असीम का आनन्द नहीं है। देखे भारत और अनदेखे जापान के बीच स्मृतियों और कल्पनाओं का हिण्डोला बन रहा है।

कलकत्ता से डेढ़ घण्टे भर से ज्यादा नहीं हुआ होगा कि तीस हजार फुट की ऊँचाई पर आ गये हैं, जहां से नीचे झांको तो सफेद बादलों का सागर है और ऊपर देखो तो आकाश की नीलिमा। लगभग दस घण्टों तक इसी प्रकार से उड़ते जाना है और जबकि काल-क्रम में केवल कुछ घण्टों का ही अन्तर पड़ेगा, देश क्रम में कई हजार मीलों का अन्तर हो जायेगा। यह नयी दुनिया की नयी गति है, जो क्षिप्रता के साथ विस्तार भी देती है। हां, तो मैं गति की इस क्षिप्रता के साथ, दृष्टि की इस विशालता के साथ एवं मानवोपलब्धि के नये क्षितिजों की कल्पनाओं के साथ जापान की ओर देख रहा हूँ। अभी वह बहुत दूर है पर कल्पना की आंखों से मैं वहां पहुंच गया हूँ।

हिन्दुस्तानियों के लिए जापान की गति और प्रगति का इतिहास बड़ा प्रेरणादायक रहा है। विगत सौ-डेढ़ सौ वर्षों में जापान ने विज्ञानाधारित औद्योगिक-क्रान्ति में जो महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की, उसने एक प्रकार से सारे एशिया के लोगों को गर्वोन्नत किया, क्योंकि जिस भौतिक उपलब्धि की शक्ति लेकर पश्चिम ने एशिया में अपना प्रभुत्व और आधिपत्य कायम किया, उसका यदि किसी ने जवाब दिया तो वह जापान ने। इस शक्ति की बात सोचते-सोचते जापान की राष्ट्रभक्ति अर्थात् राष्ट्र के गर्व और गौरव की रक्षा के लिए मुस्कराते-मुस्कराते हारीकिरी कर देने वाले वीरों की परम्परा की ओर मन की आँखें देखने लगती हैं और तभी याद आ जाती हैं, द्वितीय महायुद्ध में जापान के गर्जन की बातें। सही या गलत, जापान की हर विजय के

समाचार से भारतीय मन उछलता था और नाचता था। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जापान पहुंचने और आजाद हिन्द फौज के संगठन का समाचार मिलने से भी पहले की बात मैं कह रहा हूँ। जापान की विजय में क्यों हम अनायास खुश होते थे? इसलिए कि जिन शक्तियों ने भारत और दूसरे एशियाई देशों में अपना औपनिवेशिक साम्राज्य कायम कर रखा था, उनको चुनौती देने में केवल जापान समर्थ हुआ था। इस चुनौती की बात के साथ ही मैं पराजित जापान, अणुबम से विनष्ट, क्षत-विक्षत जापान के लाखों नर-नारियों की पीड़ा एवं चीत्कार को देख सुन रहा हूँ। मेरी आँखें हिरोशिमा और नागासाकी की संहार भूमि पर ठहर गयी हैं और बार-बार प्रश्न आता है—क्या अब भी मनुष्य युद्ध को सदा के लिए बन्द नहीं कर देगा? युद्ध की भूमि, सन्धि की भूमि जापान क्या शान्ति का सन्देश नहीं देता?

उड़ते विमान में कल्पना की उड़ान

विमान अपनी गति से उड़ रहा है। अभी-अभी बैंगकाक पर उतरा था और फिर वहां से उड़ चला है। मैं भी दूसरे यात्रियों के साथ-साथ विमान से निकलकर हवाई अड्डे पर घूम आया पर मेरे विचार मानो बैंगकाक पर नहीं उतरे। वे जापान की ओर ही उड़ते रहे। कल्पना की सीमाएँ नहीं होतीं और उसकी गति पर कोई नियन्त्रण नहीं होता। अभी मैं जापान की युद्ध-शक्ति, उद्योग-शक्ति और दोनों के योग से उत्पन्न राष्ट्र एवं साम्राज्य-शक्ति की बात कह रहा था कि अचानक मेरी कल्पना उनके साहित्य, धर्म और संस्कृति की स्रोतस्विनी में बहने लगी। किताबों में पढ़े हुए वर्णनों पर मेरी आँखें तैरने लगीं। मेरे पास बैठा हुआ अमरीकी यात्री जब जर्मन मदिरा का आपान कर रहा है, मैं कई वर्ष पहले कलकत्ता में सुनी हुई जापान के महान कवि नोगुची की कविता के रस-वर्षण का आपान कर रहा हूँ और वे छोटी-छोटी कविताएँ भी याद आ रही हैं, जो अभी थोड़े दिनों पहले जापान-प्रवास से लौटकर आने के बाद हिन्दी में नये प्रयोगों के महान कवि 'अज्ञेय' ने प्रकाशित की थी। उन कविताओं का स्मरण कर मैं जापान के बादलों के पास पहुंच गया हूँ, उसके तट पर की सागर की लहरों से बात करने लगा हूँ और ज्वालामुखियों की तपिश में भी कविता का ओज पा रहा हूँ। और, कविता के सेतु से अब मैं उसके धर्म और संस्कृति के मन्दिरों की सीढ़ियों पर भी चढ़ रहा हूँ। भगवान बुद्ध ने एशिया को जो सांस्कृतिक एकता प्रदान की और विभिन्न देशों की भौगोलिक सीमाओं को पार कर मानव-मैत्री का जो सन्देश दिया, वह भी मेरी कल्पना की आंखों के सामने चमक रहा है। भारत और जापान को एक करने वाले भगवान बुद्ध सचमुच इस समय मुझे एशिया के आलोक (लाइट ऑफ एशिया) के रूप में समझ में आ रहे हैं। कलकत्ता में रोज सुबह जब लेक पर घूमने जाता हूँ तो प्राय: जापानी बौद्ध भिक्षुक छोटे-छोटे ड्रम बजाते हुए मुझे दिखायी पड़ जाया करते हैं। उनके देश की ओर जाते समय आज वे भी याद आ रहे हैं।

और, याद मुझे गीशा लड़कियों की भी आ रही है, जिनके बारे में इतना पढ़ा है और सुना है। वे जापान की सौन्दर्य-संस्कृति में एक विशेष स्थान रखती हैं,

आतिथ्यरंजन की अद्भुत कला में वे निष्णात होती हैं। इसी प्रकार से मुझे जापानी चित्रकला का भी स्मरण आ रहा है। प्रकृति जापानी चित्रों में भी जीवन की रानी है। उसीका राज्य है। अपने नाना रूपों में वह कला को मुखरित करती है। जापान को सूर्य का देश, फूलों का देश और सपनों का देश जो कहा गया है, यह उसकी चित्र-कला में भी प्रतिच्छायित और संगीत कला में भी प्रतिध्वनित होता है। लीजिये मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं इस चित्रोपमता और संगीत की मर्मर ध्वनि के साथ 'कबुकी' देखने जा बैठा हूं, जो जापान का परम्परागत नाटक है और जिसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक प्रसृत है। इस प्रकार से जापानी जीवन की सुरम्य परम्परा के एक शिखर से दूसरे पर कल्पना को फैलाते हुए मैं अपने सारे पठित और श्रुत ज्ञान का आनन्दानुभव कर रहा हूँ। और इस ज्ञान में से जो चित्र जापान का आज तक बना पाया हूँ, उसे लिए हुए, उसमें से उभरी जिज्ञासा और उत्सुकता भरे हुए मन से जापान की ओर दौड़ता ही जा रहा हूँ। ज्यों-ज्यों घड़ी देखने पर लगता है कि अब हम काफी नजदीक हैं, तो उत्सुकता और बढ़ जाती है। शायद आप विश्वास न करें कि मैं अपनी इस कल्पना के तरल तारतम्य में ऐसा उलझा, बल्कि कहिये, रमा हुआ हूँ कि मुझे पूरा सा मालूम ही नहीं कि बीच में कब हांगकांग उतरे और फिर उड़ चले। विमान अब प्रशान्त महा-सागर की नीली जलराशि पर ऊंचा ऊंचा और इतना ऊंचा चल रहा है कि उस अतुल जलराशि के ऊपर मानो बादलों ने इस विमान-हंसिनी के लिए मुलायम रुई का पथ बना दिया है। मेरा मन इस समय केवल अन्दर की ओर दौड़ रहा है, क्योंकि एक तो बाहर मेरे लिये देखने-करने को कुछ है ही नही, और दूसरे, अन्दर की आँखों से मैंने जापान-दर्शन का एक विशाल चित्रपट तैयार कर लिया है, जिसकी मोहक रंगीनियों में, उत्सुकता भरी जीवन-जिज्ञासाओं में और कर्मण्यता के विविध क्षेत्रों में अपने को भली भांति रमा चुका हूँ। युद्ध के बाद ही जापान में जो बालक-बाढ़ आई उससे परिवार ढहने और टूटने लगे तो वहाँ की प्रतिभा और कर्मशक्ति ने परिवार नियोजन का आन्दोलन कर जो समाधान प्राप्त किया, वह दुनिया का उदाहरण बन गया। इस आन्दोलन के आंकड़े मेरे सामने खड़े हैं।

मेरे सामने सिमॉन द बोउवा की आत्मकथा का दूसरा भाग (द प्राइम ऑफ लाइफ) पड़ा है, पर बोउवा का लेखन मुझे इतना रोचक और बांध रखने वाला लगने के बावजूद मेरे अन्तर्मन की आँखें कल्पना के सोपानों पर जापान के 'सत्यं शिवं सुन्दरम' पर लगी हुई है। दूसरे लोग कभी धूम्र पान और कभी मदिरा पान में आनन्द ले रहे हैं, पर मेरे लिए तो न धूम्र-पान है, न मदिरा-पान, बस, केवल, कल्पना द्वारा जापान के सौन्दर्य का रस-पान करना है। रस-प्लावन मुझे सराबोर किये हुए है कि विमान-आतिथ्यका ने पहले जर्मन में और बाद में अंग्रेजी में कहा—'हम कुछ मिनटों में ही टोकियो के अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर उतरेंगे। सिगरेट बुझा दीजिए और कमर में पेटी बांध लीजिए।' पेटी बांधते हुए मैंने अपनी कल्पनाओं की पेटी भी संभाली और खिड़की के शीशे में से झांककर देखा। जापान की भूमि पर, प्रथम दृष्टिपात के लिए यह खिड़की ही मेरा माध्यम थी। अब आकाश से हम भूमि की तरफ उतर रहे हैं और मैं कल्पना की ऊंचाइयों से वास्तविकता के दर्शन के लिए तत्पर हो रहा हूं। बादलों में होकर जापानी भूमि की हरीतिमा के दर्शन

की उत्कण्ठा से देख रहा हूं, पर जो दिखायी पड़ने लगी है वह बिजली, बिजली और केवल बिजली है, जिसके नीचे हरीतिमा कहीं दबी-छिपी होगी। यह विद्युच्छटा ही जापान का प्रथम दर्शन, प्रथम परिचय बनकर मेरा स्वागत कर रही है, मेरे नमस्कार के विनिमय में चमक-दमक रही है। कल्पना लेखन की कलम पॉकेट में रख रहा हूं और कमर पेटी खोलकर जापान की भूमि पर उतर रहा हूं। नमस्कार सूर्य की भूमि को, फूलों की भूमि को और विज्ञान के क्षितिजों पर विजयी नये जापान को।

पूरे बीस दिनों के प्रवास के बाद आज जापान से लौट रहा हूं। इस बार जल-हंसिनी (जापान एयर-लाइन्स का विमान) के परों पर उड़ रहा हूं। और जिन कल्पनाओं को बिछाये हुए जापान पहुंचा था, उनको अब वास्तविक दर्शन की उपलब्धियों को मिलाकर समेट रहा हूं। सबसे मुख्य बात जो देखे हुए जापान के विषय में मेरे दिमाग में इस समय घूम रही है, वह है उसका अमरीकीकरण। वैसे तो सर्वत्र ही आज अमरीका का प्रभाव काफी दिखायी देता है पर जापान की प्रतिकृति-प्रवृत्ति ने तो मानो अपने-आपको अमरीका बना लेने की ही ठान ली है। अणु विजयी अमरीका अब अपने आर्थिक और सामाजिक-सांस्कृतिक विधि-निषेधों की व्यवस्था से जापान को विजित कर रहा है। आज वहां अमरीकावासियों का बाहुल्य बहुत नहीं है पर जापान की नयी पीढ़ी के लोग खुद अमरीकी बन रहे हैं। जिस किमोनो (जापानी स्त्री की परम्परागत वेशभूषा) के सौंदर्य की कहानियाँ सुना करता था, वह आज जापान के आम मेलजोल की जगहों में बहुत कम दीखता है। वह पोशाक विशेष सामाजिक रीति-रिवाजों के अवसर के लिए सीमित हो गयी है। आफिसों और कारखानों में, स्टोर और दूकानों में, रेस्तरां और अन्य स्थानों में काम करने वाली हजारों-हजारों लड़कियां अमरीकी ढंग के स्कर्ट-ब्लाउज में ही दिखायी देती हैं। जापानी ढंग का केश-विन्यास भी अब बहुत नहीं दिखायी देता। अंग्रेजी भाषा लिखने-बोलने का चाव सर्वत्र प्रकट हुआ दीखता है। मेरे एक भारतीय मित्र का लड़का वहां के क्योटो विश्वविद्यालय में 'पदार्थ-विज्ञान' में शोध कार्य के लिए गया हुआ है। उसने बताया कि वह अंग्रेजी अच्छा बोल लेता है, यह उसके व्यक्तित्व का बड़ा आकर्षण है और अंग्रेजी सुन-बोल सकने की दृष्टि से उसके साथ का लोभ पढ़नेवाले लड़के-लड़कियों में खूब दिखायी देता है। यहां तक कि जिन गीशा लड़कियों के सौन्दर्याकर्षण में किमोनो की साज-सज्जा का प्रमुख स्थान हुआ करता था, उनमें भी कभी-कभी नयी वेशभूषा के उपयोगितावादी सौन्दर्य की ललक दिखायी देती है और वेशभूषा के इस परिवर्तन के साथ वहां के जीवन के प्रति दृष्टिकोण में भी, रहन-सहन में भी काफी परिवर्तन और स्वच्छन्दता का वातावरण बना है। यह जापान के युवक-युवतियों के लिए नये जीवन का दौर है, जिसमें गुण और अवगुण दोनों ही आये हैं।

तथापि यह आश्चर्य जरूर होता है कि जापानी स्त्री का स्थान आज भी वहां के कौटुम्बिक और सामाजिक जीवन में पिछड़ा हुआ है। स्त्री वहां पुरुष की दासी नहीं तो भी अनुगामिनी और आज्ञाकारिणी है और इसलिए वह पुरुष के समान नहीं है। समान शिक्षा प्राप्त की हुई महिला भी काम का ओहदा और समान वेतन नहीं

पाती। उसका स्थान पुरुष से गौण है और यह कौटुम्बिक एवं सामाजिक जीवन की गौणता वृहत् राजनीतिक और सांस्कृतिक नक्शे पर भी दीखती है। इस दृष्टि से वहां एक नयी क्रांति की आवश्यकता है और मैं समझता हूं, उसका आरम्भ अप्रत्यक्ष रूप से वहां हो भी चुका है। आखिर परम्परावादी जापान ने जब प्रगति का पथ स्वीकार किया है तो यह केवल उद्योग-धन्धे और जीवन के रहन-सहन तक ही सीमित नहीं रहेगा। जिस विज्ञान ने वस्तुओं के उत्पादन के क्षेत्र में नये क्षितिज खोले हैं, वह चिन्तन और जीवन-मूल्यों के क्षेत्र में भी नये क्षितिज खोलेगा ही।

अणु-विस्फोट की विभीषिका और पुनर्जागरण

हां, जापान के लोग आज भी निष्ठा, लगन और परिश्रम-प्रियता के अपने जातीय संस्कारों को कायम रखे हुए हैं। पन्द्रह वर्षों में पराजित और विनष्ट जापान पूरी शक्ति के साथ पुनर्जीवित हो उठा है। हिरोशिमा में अणुबम द्वारा हुए विध्वंस के उदाहरण के रूप में बनाकर रखा हुआ घर यदि देखने को न मिलता तो मैं समझ ही नहीं पाता कि कितनी विध्वंस-लीला वहां हुई थी। विध्वंस के अजायबघर में वहां जो नमूने देखे और अस्पताल में जो अणु-विस्फोट के प्रभाव से पीड़ित दो-एक रोगी देखे, उनसे कल्पना कर सका कि कितनी भयानक विभीषिका में से लाखों-लाखों लोग गुजरे होंगे, पर जिस अणु के विज्ञान ने यह कहर बरसाया उसी के परिणामस्वरूप प्राप्त निर्माण और उत्पादन की नयी शक्तियों ने हिरोशिमा और नागासाकी को ज्यादा बड़ा, ज्यादा सुन्दर और ज्यादा सशक्त बनाया है। हिरोशिमा के जिस स्थल पर बम का निक्षेप हुआ था, वहां शांति का स्तूप बना हुआ है जो आज एक पूजा-गृह की तरह देखा और माना जाता है।

शान्ति के स्तूप से अलग हटते ही आंखें उन रंग-बिरंगे फूलों की ओर चली जाती हैं, जो उस मिट्टी में उगे हैं जिसमें न जाने कितने निरीह बच्चों, बूढ़ों और जवानों की जीवन-समाधि की कहानी छिपी है। ये रंग भरे फूल उन जीवनों की मुस्कराहट देते हैं और वेदना के मर्म-गीत भी। ये पंक्तियां याद आ जाती हैं—'आवर स्वीटेस्ट सांग्स आर दोज दैट टेल अस ऑफ द सैडेस्ट थाट्स।' इतिहास भी कितना निर्मम और साथ ही कितना मर्मान्तक होता है। ध्वंस की मिट्टी में से निर्माण का यह नया पौधा उग रहा है।

इन देखी हुई वास्तविकताओं को अपनी जमा की हुई कल्पनाओं में पिरोये हुए मैं जापानी द्वीप समूह के अन्तर-समुद्र की शान्त जल-राशि पर से गुजरते हुए चारों तरफ की पर्वतमालाओं की अनुपम सौन्दर्य राशि को देख रहा हूं और सोच रहा हूं कि इस भूमि में कहां से यह अद्भुत जीवनी-शक्ति आयी और क्यों नहीं एशिया के दूसरे देशों में भी यह कर्मठता का व्यक्तित्व उभरा? जल पर, थल पर, और नभ पर आज जापान किसी का मुखापेक्षी नहीं है। वह हर क्षेत्र में स्वावलम्बी और स्वत्वाधिकारी है।

नया जीवन : नये प्रतीक

जापान कला का भण्डार है। मैं अभी क्योटो में लगी हुई कला-प्रदर्शनी में घूम रहा हूं जहां सैकड़ों-सैकड़ों कला-कृतियां टंगी हुई हैं। इनमें नये जीवन की झलक

नये प्रतीकों में मुखरित हुई हैं। मेरे चारों तरफ सैकड़ों जापानी स्त्री-पुरुष इन कृतियों के सौंदर्य-पान में अपनी छुट्टी का दिन विता रहे हैं। सब कुछ सुन्दर और प्रेरक लग रहा है और संयोग से इस वाजार में भी आ गया हूं, जहां कितावों की दूकानें हैं। मैं भाषा नहीं जानता पर कागज, गेट-अप और चित्र देखकर अपने साथी से प्राप्त जानकारी के आधार पर आश्चर्य में पड़ जाता हूं कि कितनी कितावें निकल जाती हैं और खप जाती हैं। यहां हर चीज वहुतायत से पैदा होती है और वहुतायत से खप जाती है। हर आदमी अपनी मेहनत से उत्पन्न करता है और अपने आनन्द के लिये व्यय करता है। यह वात किसे आश्चर्य में नहीं डाल देती कि इतनी मशीन और विजली की इतनी अधिकता के वावजूद यहां हर आदमी के पास काम है और वह जीवन का आनन्द प्राप्त कर लेता है। यह तो मानो जापानी जीवनपर सर्वत्र लिखा हुआ है—काम के समय काम, मनोरंजन के समय मनोरंजन। इसने उनके जीवन को सार्थक और स्वस्थ वनाया है।

और मुझे याद आ रही है नाइट-क्लवों की रोशनी। इसमें भी जापान ने पश्चिम की नयी विधियों को वहुतायत से अपनाया है। आज टोकियो और ओसाका ही नहीं, कोवे में क्योटो में—कही चले जाइये, रात केवल कैब्रे, वार और नाइट क्लव की हो जाती है, जव रात की वाँहों में दिन सो जाता है। इन क्लवों आदि की अपनी एक जिन्दगी होती है। दिन भर काम करके सन्तोष पाये हुए व्यक्ति यहां आकर पीते हैं और खेल-तमाशे देखते हैं। जिन्दगी के इस दौर के साथ नैतिक-अनैतिक, श्लील-अश्लील का प्रश्न लगा हुआ है पर इस प्रश्न पर हजारों-सैकड़ों वर्ष पहले लिखे हुए सूत्र-पाठों की दृष्टि से सोचना और वात करना अलग होता, पर जीवन के विकास क्रम में यथार्थ की दृष्टि से सोचकर इनपर विचार करना कुछ भिन्न होता है। मैं इस नाइट क्लव में देख रहा हूं कि जो लोग यहाँ आते हैं, अकेले या मित्रों के साथ, वे शराव पीते हैं और 'होस्टेसेज' (परिचारिकाएँ) कहलाने वाली लड़कियों के साथ हलकी-फुलकी वात करते हैं। जापानी लड़कियां आतिथ्य-कला में अत्यन्त निपुण होती हैं। जिस नाइट क्लव में मेरे व्यापारी मेजवानों ने मुझे निमन्त्रित किया था, वहां मेरे सामने वैठी वह लड़की और उसकी वातें याद आती हैं। शराव और सिगरेट से परहेज रखनेवाला मैं वहां क्यों गया, यह उसने अपनी टूटी-फूटी अँग्रेजी में पूछा और मैं जव केवल मुस्कुरा कर रह गया, तो उसके चेहरे पर गम्भीरता की रेखाएँ चमकने लगीं। उसने मेरे साथ के जापानी मेजवानों से वातें करना शुरू किया और उनके माध्यम से जीवन में भरी कुण्ठाओं और तृप्तियों के विषय में जो कुछ कहा, उसे नाइट क्लव में पाने की कभी आशा नहीं थी।

शराव की थिरकन और सिगरेट के कश विना नाइट-क्लव के वे दो घन्टे खुले और वन्द जीवन के कितने ही धागों को सुलझाते-उलझाते मेरे मस्तिष्क में घूम रहे हैं। जव उस लड़की ने कहा—'मेरे पति मुझे लेने आ गये है, मैं जा रही हूं फिर आइए।' तो मेरी सारी कल्पनाएँ झुठला गयीं और नाइट-क्लवों के पीछे रही अवस्था व्यवस्था का इतिहास या उपन्यास वहुत विरोधाभासी हो गया, जिसके पृष्ठ उड़ान में भी इस समय उड़ रहे हैं। जापानी पुरुष के चेहरे पर जिन प्रकार कर्मठता, व्यवस्था

और अनुशासन का समन्वित चित्र दीखता है और वह उसका आकर्षण है, उसी तरह जापानी महिला के मुख पर भोलापन और निश्छलता राज करती है, जो उसके शारीरिक सौंदर्य की कोमलता में मन के सौंदर्य की विपुलता भर देती है। उसके व्यवहार में कहीं कुटिलता नहीं लगती और विनम्रता तो उसकी जगत-प्रसिद्ध है। जब तक उसकी शादी नहीं हो जाती वह उपार्जन का कार्य अवश्य करती है—आफिस में हो कारखाने में हो, दूकान में हो, पर विवाह करने के बाद वह लगभग शत-प्रतिशत पति की पत्नी, बच्चों की मां और घर की स्वामिनी रहती है और इससे एक बहुत पूरक-कुटुम्ब-व्यवस्था का निर्वाह होता है। एक या दो बार जब मैं जापानी कुटुम्ब में गया तो ऐसा लगा कि भारतीय परिवार में ही बैठा हूं। जापानी लोग विदेशी अतिथियों को अपने घर बहुत कम बुलाते हैं, घरों में वे बहुत कम चीजें रखते हैं। बहुत-सा फर्नीचर उनके यहां नहीं होता। गृह-व्यवस्था में तीन बातें बहुत अपनी सी लगीं—एक, जमीन पर गद्दा बिछाकर सोने की बात, दो, जूते घरके दरवाजे पर खोल देने का रिवाज, तीन, खाने के लिये अपने यहां की तरह नीचे पट्टों पर थाली-प्लेट रखने की व्यवस्था।

जल हंसिनी की दोनों परिचारिकाएं आतिथ्यपूर्ण सेवा कार्य में जुटी हुई हैं, कभी खाने की चीज लाती हैं और कभी पेय। एक किमोनो की वेष-भूषा में और दूसरी अमरीकी वेष-भूषा में है। परम्परा का जापान और नया जापान दोनों दीख रहे हैं। और जब मैं इन दोनों को देख रहा हूं—समूचे जापान के खेत-खलिहानों से लेकर बड़ी-बड़ी फैक्टरियों तक, बाजारों से लेकर उद्यानों तक फैले हुए जन-जीवन के दृश्य मेरी आंखों के सामने नाच रहे हैं और हर जगह कर्मठता की प्रतिमा उभर रही है। वहां के स्कूल और कालेज का अनुशासन पूर्ण वातावरण कितना प्रेरणादायी है। हां, यह बताना यहां आवश्यक है कि वहां के हर स्कूल और कालेज में सह-शिक्षा है। लड़के, लड़कियां साथ पढ़ते हैं। और मुझे वहां के नाटक, सिनेमा, क्लब और वह चाय-त्योहार सब एक साथ याद आ रहे हैं और मेरी कल्पना की जो आंखें जाते समय आगे-आगे उड़ रही थीं, वे इस समय जल हंसिनी की तेज गति के साथ आगे जाते हुए पीछे की ओर देख रही हैं। जब मैं सोचने लगता हूं कि जापान से अपने लिए, अपने देश के लिए क्या लाया तो मुझे उत्तर मिल रहा है—हर कोने से प्रतिध्वनित हो रहा है—जापान का अतुलनीय श्रम, जापान की गहन जीवन-निष्ठा और निर्माण का महान सपना।

('धर्मयुग', ३ तथा १० जनवरी १९६५)

रेखाचित्र और संस्मरण

जैन साहित्य के महान् विचारक पंडित सुखलाल जी

हिन्दी साहित्य-महारथी पूज्य पंडित महावीर प्रसाद जी का अभिनन्दन करते हुए श्रीयुक्त सियाराम शरण जी गुप्त ने 'तव उत्तुंग गिरिकाय' कह कर केवल अपनी अक्षमता प्रकट की थी पर वही उनका अभिनन्दन था। आज मेरी स्थिति तो उससे भी नाजुक है। जिस अगाध साहित्य के क्षेत्र में श्रद्धेय पंडित जी 'उत्तुंग गिरिकाय' हैं, मेरी पहुंच उसमें नहीं के बराबर है। जिस महान् विचारक के 'नेत्र विहीन' आचार्यत्व से जैन साहित्य की सदियाँ मुखरित हो रही हैं, जिसकी निष्पक्ष प्रतिभा से साहित्य का मनोहर प्रासाद निर्मल किया जा रहा है उसके विषय में मेरा छोटा मुंह क्या कहने का साहस करे?

जैन-साहित्य की विशालता, भव्यता, अद्वितीयता और सुभाषितता का कितना महत्व है, इसको जानने के लिये योग्य समयानुकूल सम्पादन और लेखन के अभाव में देशी भाषाओं द्वारा साधन प्राप्त नहीं हैं। इस दिशा में अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मनी के विद्वानों के ग्रन्थों को देख कर उनके परिश्रम के लिये हमें नतमस्तक हो जाना पड़ता है। पुस्तकालय इन विदेशी विद्वानों के महान परिश्रम के ज्वलंत उदाहरण देते हैं।

श्रद्धेय पण्डित जी ने हिन्दी और गुजराती में जो लेखमालाएं प्रकाशित की हैं उनको पढ़ कर पाठक न जाने कितनी दफा लेखक के प्रतिभापूर्ण पांडित्य पर न्योछावर हो चुके होंगे। 'सन्मति-तर्क' जैसे महान् ग्रन्थ का सम्पादन कर वे अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों के प्रिय हो गये हैं। जिनको उनके व्याख्यान सुनने का सौभाग्य मिला है वे अवश्य ही पंडित जी के दृष्टिहीन किन्तु प्रज्ञात्मक व्यक्तित्व पर मुग्ध हुए बिना न रहे होंगे। जिनको उनके निकट सम्पर्क में रहने का काम पड़ा है, वे अवश्य ही उनके कोमल स्वभाव, अथक परिश्रम-प्रियता और कार्यतत्परता से प्रभावित हुए बिना न रहेंगे।

काशी विश्वविद्यालय में जैन साहित्य और तत्वज्ञान के महान् प्रेरक और अध्यापक के रूप में जिन्होंने पंडित जी की अपूर्व अध्यापन योग्यता और प्रतिभाशाली विद्यार्थी की तरह अखण्ड जिज्ञासा-वृत्ति का परिचय पाया है—वे जानते हैं कि विद्या-ग्रहण और विद्या-वितरण की दृष्टि से पंडित जी किस कोटि के विद्वान हैं!

घंटों तक पास बैठ कर जिनको पंडित जी से साहित्य, धर्म और समाज के विषय में बातचीत करने का शुभावसर मिला है उन्हें मालूम है कि कर्त्तव्यशीलता

दृष्टि से आयु की अपेक्षा वे अधिक कम उम्र के युवक हैं; अगाध विद्वान होने पर भी वे नितान्त निरभिमानी हैं; क्षीणकाय होने पर भी उनमें हमारी अपेक्षा अधिक कर्म-शक्ति है और चक्षु-विहीन होने पर भी उनमें मानसिक पर्यवेक्षण का तीव्र वल है। वहुश्रुतता और आन्तरिक प्रज्ञात्मक विवेचन शक्ति के वल पर उन्हें प्रगतिशील संसार की साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक संवर्त्तनात्मक शक्तियों का परिचय है।

चक्षुरेन्द्रिय के सन्निकर्ष से देखे जानेवाला वाह्य आलोक चाहे उन्हें प्राप्त न हो, पर पुण्योदय से प्रकाशित उनकी आत्मा अन्तर्प्रकाश से तो उद्भासित है। उनके ज्ञान में प्रगतिशीलता है—उनके व्यवहार और स्वभाव में स्वजात कोमलता और उदारता है—उनके संभाषण में भाव-शवलता और वाद-सहिष्णुता है और उनकी अभिव्यक्ति में विचार-मन्थन की गहराई। न्याय और व्याकरण की उच्च प्राच्य शिक्षा प्राप्त सरल हृदय प्रतिभा सम्पन्न इस युगनिर्माता को अपना समझ कर आज हमारी जाति गौरवान्वित है।

प्राचीनता की थाती और नवीनता का वर्धमान विकास उनको मिला है। वांग्मय का अध्ययन और वाग्मीकों का सम्पर्क पंडित जी को उपलब्ध है। उनके ज्ञान में जीवन की अनुभूति है और अभिव्यक्ति में उसका मर्मवल। उनकी चीजों में जैनत्व का विशाल अध्ययन है और सव में समालोचक की निष्पक्ष दृष्टि। उनकी सम्मतियों में लोक-मंगल की पूर्णता और व्यावहारिक आदर्शोन्मुखता है। उनकी सामाजिक निर्माण पद्धति में भारतीय आदर्शों की प्राच्यता और नवीन वैज्ञानिक अन्वेषणों की पाश्चात्यता का अद्भुत युग्म है।

इस वदलते हुए जमाने में भी आपकी विद्वता के लाभ से हम अपने को धनी मानते हैं—आपकी वोल चाल की सरलता और सदाशयता की कल्पना से हमारे ज्ञान-गर्व की तितलियाँ उड़ने लगती हैं। अनन्त रूपी श्रद्धा के अनेक अभिन्दन हो सकते हैं—मेरी पहुंच यहीं तक है!

'तव उत्तुंग गिरिकाय,...'

(१९४० के आसपास लिखा लेख)

सात पंक्तियों के रवीन्द्रनाथ

रवीन्द्रनाथ का नाम सुना था। मैट्रिक तक पहुंचते-पहुंचते उनकी एक-दो किताब भी पढ़ ली थी। तदनन्तर गीतांजलि के गद्य-गीतों से प्रभावित होने के बाद तो ऐसा चाव बढ़ा कि चन्द महीनों में ही हिन्दी और अंग्रेजी में उनकी कई किताबें पढ़ डाली। और, फिर सौभाग्य हुआ कि युनिवर्सिटी से बी० ए० पास करने का प्रमाण-पत्र भी उनके हाथों मिला। वह दिव्य व्यक्तित्व आज भी ज्यों का त्यों याद है, जिसके सामने सन् १९३६ में नतमस्तक होकर बी० ए० की उपाधि ली थी। वह व्यक्तित्व, रूप में, रेखाओं में सम्पूर्ण कवित्व ही था।

सन् १९३६ में ही मेरा कलकत्ता आना हुआ। दिन को नौकरी और रात को लिखना। नौकरी पेट की भूख की पूर्ति के लिए; लिखना मस्तिष्क की भूख तृप्ति के लिये। गद्य-गीत लिखता था, जिनकी प्रेरणा में गीतांजलि के प्रभाव को इन्कार नहीं कर सकता। सरस्वती प्रेस से मेरे गद्य-गीतों का संग्रह छपने की बात प्रेमचन्द जी के सामने आई थी, पर उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। और, उस संग्रह को 'वेदना' नाम से कलकत्ता में ही छपवाने का निर्णय मैंने किया। पहला फॉर्म छप चुका था। और दूसरे फॉर्म का फाइनल प्रूफ प्रेस में देकर आया था कि अचानक अखबार में पढ़ा 'रवीन्द्रनाथ कलकत्ता आए हैं।' पता नहीं, कैसे मन में आया कि 'वेदना' के गीत रवीन्द्रनाथ को सुनाऊँ। एक मित्र से बात की और, साहस कर लिया—कितना बड़ा साहस! दूसरे ही दिन प्रातः 'वेदना' का एक छपा फॉर्म और दूसरे का प्रूफ बगल में दबाए रवीन्द्रनाथ के घर पहुंच गया। सन् १९३७ में जब मेरी उम्र केवल २३ वर्ष ही थी। वहाँ पहुंचकर जिस व्यक्ति से भेंट हुई, उसी से मैं बोला—'मैं रवीन्द्रनाथ से मिलना चाहता हूं।' बंगला मैं बिल्कुल नहीं जानता था! किताब मेरी हिंदी में! बोला मैं अंग्रेजी में! उस व्यक्ति ने शायद मेरे दुःसाहस से ही प्रभावित होकर मुझे रवीन्द्रनाथ के सामने पहुंचा दिया। वहाँ तक नहीं पहुंचा था, तब तक इतना उत्साह था कि मुझे एक क्षण के लिये भी यह अनुभव नहीं हुआ कि मैं किसके सामने जा रहा हूं और क्या बात करूंगा? वह व्यक्ति, जो सम्भवतः रवीन्द्रनाथ के निजी सचिव ही होंगे, मुझे उनके सामने छोड़कर चले आए तब मुझे उस महान व्यक्ति के सामने अपनी लघुता का, उस बाल्य चपलता का ऐसा अनुभव हुआ कि मैं पसीना-पसीना हो गया। हाथ में की चिट्ठी पढ़ चुकने के बाद, रवीन्द्रनाथ ने मेरी ओर देखा और बंगला में कुछ कहा, जिसे मैं नहीं समझ सका। मैंने अपनी ओर से ही एक-दो वाक्य अंग्रेजी में, जो पहले से ही जोड़ रखे थे, कहे और उसके साथ ही 'वेदना' के १६ पृष्ठ—आठ छपे हुए और आठ प्रूफ के—उनके सामने रख दिए। कलकत्ता भर में जो ५० व्यक्तियों को भी नहीं जानता हो,

वह रवीन्द्रनाथ के पास पहुंचे और अपनी पुस्तक की बात करे ? आज तो मैं स्वयं ही नहीं समझ पा रहा हूँ ! पर, उस दिन तो किया ही ऐसा !

मैंने उनसे कहा---"इन गद्यकाव्यों को आप देखें, यह कामना लेकर मैं आया हूँ; दो-चार दिनों में आगे के पृष्ठ भी मैं ले आऊँगा।" उन्होंने कहा---"मैं हिन्दी तो बहुत कम समझता हूँ।" मैंने कहा---"आप कहें, तो मैं पढ़कर सुनाऊँ ? मैं समझता हूँ, इस हिन्दी को समझने में आपको बहुत कठिनाई नहीं होगी।" मैंने दो-एक गीत पढ़े। एक-दो पंक्तियों पर रुकवाकर, मुझसे उन्होंने कुछ पूछा। मेरा हृदय खुशी से उछल पड़ा, जब उन्होंने कहा---"तुम ये पृष्ठ रख जाओ, मैं समय निकालकर पढ़ूँगा या किसी से पढ़वाकर सुनूँगा।" मैंने नमस्कार किया और चलने को हुआ। 'मैं फिर कब आऊँ ?' उत्तर में सुना---'डे आफ्टर टुमारो, विल इट सूट यू ?' मैंने कहा नहीं, पर अनुभव किया---सूट मी ? एनी टाइम, एनी टाइम, एनी टाइम ! मैं फौरन कमरे से बाहर निकल आया। चारों तरफ एक दिव्य महानता मुझे खींच रही थी।

ठीक याद नहीं कि कैसे दो दिन निकले। मैं ! रवीन्द्रनाथ ! डे आफ्टर टुमारो ! 'डे' गया, 'टुमारो' हुआ और फिर---'डे आफ्टर' आया ! बताए हुए समय पर मैं पहुंच ही गया। दो दिनों में ही 'वेदना' के अगले दो फार्म और तैयार करवा लिये थे। उन्हें लिये-दिये पहुंचा। और, वहाँ मुझे इस प्रकार उनके पास पहुंचा दिया गया, मानो मेरी प्रतीक्षा हो। इसके पहले कि मैं और दो फॉर्मों का प्रूफ उनके पास रखूं, उन्होंने कहा---'मैंने तुम्हारी पुस्तक के कुछ अंश और पढ़वाए।' मैं सोचने लगा किससे पढ़वाएं, उसने कैसे पढ़े, कुछ टीका-टिप्पणी तो नहीं की उसने ? एक लमहे में कितनी बातें सोच गया। तभी कान में पड़ा---'मुझे ये गीत अच्छे लगे···अच्छे लगे···' और, उन्होंने पुस्तक के सारे पृष्ठ मुझे लौटाने को हाथ बढ़ाया, तो मैंने कहा---'यदि आपको ये अच्छे लगे, तो क्या मुझे आशीर्वाद लिखकर नहीं देंगे ? 'अच्छा ठीक है' और फिर उन्होंने चारों फॉर्म रख लिए। 'परसों आना, लिख दूँगा'---सुनकर लौट आया। उस समय जितने आनन्द का अनुभव किया, उससे बढ़कर आनन्द अभी तो दूसरा नहीं मिला। अपने युग में भारतीय साहित्य के सबसे महान् प्रतिनिधि का, जिसकी काव्य-प्रतिभा को सारे विश्व ने माना, लिखित आशीर्वाद मुझे मिलेगा !··· दो रात और एक दिन निकले, पर इस बीच मैं कल्पना के पंखों पर उड़-उड़ कर न मालूम कितनी बार रवीन्द्रनाथ के उस कमरे में हो आया। सपने देखते रहा---रवीन्द्रनाथ ने क्या लिखा होगा। मैं उसे पुस्तक में कैसे सजाऊँगा ?

दूसरा परसों आ गया। आनन्दोल्लास के उन्माद में बहता हुआ मैं कवि के घर के प्रांगण में पहुंचा। मोटरों की भीड़; सारे वातावरण में सन्नाटा ! मैं ठिठका ! कोने में खड़े एक ड्राइवर से पूछा—'क्या बात है' ? उसने कहा—"चश्मे से तुम पढ़े-लिखे आदमी लगते हो, मालूम नहीं है कि रवि ठाकुर सख्त बीमार हैं ? अखबार देखते हो ?" मैं कितना शर्मिन्दा ! पर जो रवीन्द्रनाथ के आशीर्वाद के सपने देख रहा था, वह अखबार कहां देखता ? अब तो गली के बाहर निकलते ही, सड़क के मोड़ पर अखबार खरीदा। समाचार था—'कविवर रवीन्द्रनाथ की अवस्था अभी भी चिन्ताजनक' और फिर न जाने रोग और चिकित्सा के बारे में क्या-क्या लिखा था। मेरे सारे सपने

चरमराने लगे। चिन्ताजनक अवस्था की चिन्ता और मेरे लिए, वह आशीर्वाद मिलने की वात की भी चिन्ता। वह दिन बीता। दूसरे दिन फिर अखबार देखा, लिखा था—'हालत में कुछ सुधार।' तीसरे दिन, चौथे दिन और पाँचवें दिन का अखबार खबर देता रहा—हालत में सुधार है। जिस दिन यह समाचार पढ़ा कि अब चिन्ता की कोई बात नहीं रही और कवि बहुत शीघ्र ही पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ कर लेंगे, तो भी मेरे टूटे हुए सपनों के जुड़ने की बात नहीं रही। अवसर मिला था, मेरा दुर्भाग्य उसे ले गया। फिर मिलेगा वैसा अवसर ? होगी वह बात ? सोचा—देखूं।

दूसरे दिन प्रातः मैं फिर उनके घर गया। प्रांगण में आज भी सन्नाटा। कोई भी दिखायी नहीं दिया। तब तक किसी नौकर ने कोठरी से बाहर निकल कर बताया कि कवि 'श्री निकेतन' चले गए हैं। आकांक्षा और उत्साह पर तुषारापात। मैं लौट पड़ा। दस-बीस कदम चला होऊंगा कि जिस कोठरी में से वह नौकर निकला था, उसी में से दूसरा आदमी दौड़ता आया, कहता हुआ—'अरे भई देखना, यह चिट्ठी आपकी तो नहीं है ? मैं मुड़ कर लपका—मेरी चिट्ठी ? देखूं ? लिफाफा उसने हाथ में दिया। बंगला में बहुत सुन्दर अक्षर लिख हुए थे। पढ़ नहीं सका, पर लगा कि मेरा ही नाम लिखा होगा किससे पढ़वाऊं ? कोठरी से बाहर निकल कर एक छोटी-सी दूकान पर जो बंगाली बाबू बैठा था, उससे कहा—जरा यह चिट्ठी पढ़ दीजिए तो ? आदमी पढ़ा-लिखा सा था। लिफाफे पर लिखा हुआ मेरा नाम पढ़ता हुआ बोला—यह तो रवि ठाकुर का हस्तलेखन है। उनकी कलम से मेरा नाम ! मेरा आनन्द छलछलाने लगा। और लिफाफे के अन्दर क्या है, यह पढ़ने लगा। मैं उसकी आंखों में आंखें गड़ा कर उसके शब्दों पर कान गड़ा कर सुनने लगा अपनी प्रशंसा के शब्द। आशीर्वाद की वे पंक्तियाँ कवि गुरु के हाथ से लिखी। एक बार पढ़ी गई, हजार-हजार बार मेरे सामने चमकने लगीं, कौंधने लगीं। अपने सारे स्वरों से उन्हें गुनगुनाता हुआ घर लौट आया। और, दौड़ा-भागा प्रकाशक पास पहुंचा—इन सात पंक्तियों का कवि गुरु की स्वलिपि का ब्लाक बनाओ, छापो। धन्य हो गया। डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के, जिन्होंने बाद में पुस्तक की भूमिका लिखी, पास पहुंचा। लिफाफा और चिट्ठी ज्यों की त्यों उन्हें बताई, उन्होंने कहा—तुम्हारा बड़ा भाग्य है।

आशीर्वाद मिल गया, छप गया और 'वेदना' के पाठकों ने उसे पढ़ लिया। मेरे भाग्य को भी सराह लिया होगा उन्होंने, पर मुझे इस आशीर्वाद की सात पंक्तियों की घटना में जिस रवीन्द्रनाथ के दर्शन हुए, वह महा-मानव है। उनकी प्रेरणा के पारावार की जो लहर मुझे भिगो गई, वह उस सारे साहित्य से ऊपर है, जो छपा है और हमने पढ़ा है। इन सात पंक्तियों के माध्यम से जो रवीन्द्रनाथ मुझे मिला, वह मेरे लिए लेखों, कहानियों और कविताओं से ऊपर का रवीन्द्रनाथ है। बात उनकी है, जिसको मैंने अपने साथ जुड़ी होने के कारण अपनी बना कर लिखी है। बंगला साहित्य को, भारतीय साहित्य को, विश्व साहित्य को, रवीन्द्रनाथ ने मानवता को जो कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है उसका बिल्कुल निखालिस रूप उस घटना में है, जो इन सात पंक्तियों के साथ जुड़ी हुई है। न मालूम कवि का जीवन कितनी-कितनी ऐसी दूसरी घटनाओं से ओत-प्रोत रहा होगा। हिमालय की तरह उच्च सागर की तरह

विशाल और गहन, उनका व्यक्तित्व जितना महान् उनके साहित्य में था उतना ही जीवन के छोटे से छोटे व्यवहार में भी था। उनकी महानता छोटे से छोटे को अपने अंक में भर कर महान् बना लेती थी। जिस दिन उनका निधन हुआ, उनकी शव-यात्रा में हजारों की भीड़ में चलते हुए जाने-पहचाने लोगों से कितनी तरह की बातें सुनीं पर मेरी बात—यह सात पंक्तियों की बात—थी तो छोटी पर कितनी बड़ी लग रही थी ?

रवीन्द्रनाथ ने साहित्य को जो भावभूमि प्रदान की, भाषा को जो अभिव्यक्ति दी और शैली को जो व्यक्तित्व प्रदान किया, वह उनके नाना छोटे-बड़े ग्रन्थों के पृष्ठों पर अंकित है और रहेगा। जीवन को उन्होंने जो सांस्कृतिक मूल्य दिए, संगीत को उन्होंने जो संवेदना दी, वह महान् है, दिव्य है, पर उन्होंने ऐसी छोटी घटनाओं में जीवन का जो दर्शन किया और दिया, वह अतुलनीय है।

इसीलिए मैंने उस छोटी-सी घटना में जिस रवीन्द्रनाथ का दर्शन किया, वह आज भी मेरे सामने सारे साहित्य से ऊपर खड़ा है। वह साहित्य का रवीन्द्रनाथ नहीं, जीवन का रवीन्द्रनाथ है। इस रवीन्द्रनाथ की भूमिका में ही तो साहित्य से भी ऊपर का रवीन्द्रनाथ है। भावों का कवि, जीवन का स्रष्टा।

(लहर, मई १९६०)

कहानी नहीं हुई, कहानी हो गयी !

बचपन से ही किताबों को, कागजों को समेट-सहेज कर रखने की आदत रही है और इसलिए वर्षों की कागज-चिट्ठियाँ आदि मेरे पास है। मेरे इस संग्रह के धन पर राजनीतिक डाका पड़ा सन् १९४२ में, जेल जाने से मुझे जो यन्त्रणा हुई, उसमें सबसे मर्मान्तक पीड़ा की बात यही है कि गिरफ्तारी के वक्त आधी रात को मेरे इन कागजों को पुलिस ने जिस बेरहमी और बेतरतीबी से तलाशी ली और फेंक-पटक की और उन सबको इतस्ततः पड़े छोड़कर मुझे काले वान में बिठा कर ले गये, तो फिर पूरे २९ महीनों के बाद वापस मैं उस कमरे में आया। एक मेरे साथी ने मेरी उस धन-राशि को बटोर कर, सहेज कर बक्स में बन्द करके रख तो दिया था, पर जब मैंने इन कागजों को फिर देखा और समेटा तो वह कागज नहीं मिला, जिसकी याद मेरे जीवन की बहुत बड़ी याद है।

वह सफेद कागज था जिस पर लाल स्याही में प्रेमचन्द जी ने कस कर मेरी खबर ली थी। उस जमाने की बात है जब वे मासिक 'हंस' का प्रकाशन-सम्पादन करते थे। प्रकाशन काशी से होता था और प्रेमचन्द जी बम्बई में थे। मैं लगभग हर महीने के 'हंस' में गद्य-काव्य लिखता था। गद्य-काव्य लिखने का उनकी ओर से खुला, अनियन्त्रित निमन्त्रण था। मैं उस वक्त काशी विश्वविद्यालय में पढ़ता था।

आकांक्षा नाना भांति से जगाती और झकझोरती थी। मन में बहुत आया कि कहानी लिखूं, और साहित्य के विद्यार्थी की हैसियत से कहानी के तत्वों के विषय में जितनी सैद्धान्तिक जानकारी थी, उसको लेकर मैंने एक कहानी का ढांचा खड़ा कर लिया और मैंने कहानी लिखकर 'हंस' में प्रकाशनार्थ भेज दी इस विश्वास पर कि प्रेमचन्द जी को जानता हूं, गद्य-काव्य 'हंस' में छपते हैं और एक-आध वार उनकी लेखनी से लिखे हुए प्रशंसा और प्रेरणा के दो-चार वाक्य भी छप चुके थे। इसलिए अगले अंक में ही कहानी प्रकाशित होगी और मैं कहानीकार भी हो सकूंगा। दो-चार दिन वाद जब 'हंस'—कार्यालय में जाकर भाई प्रवासीलाल जी वर्मा मालवीय से मिला, तो उन्होंने कहानी लौटायी, जिसके साथ लगे एक सफेद कागज पर लाल स्याही में प्रेमचन्द जी ने कई पंक्तियां लिखी थीं। हर पंक्ति का स्वर यही था कि कसरत से कहानी नहीं हुआ करती। मैं लज्जित हुआ, मेरी चोरी पकड़ी गयी। कसरत ही तो थी मैं अपनी भूल समझ कर भी इस निराशा को सहज, सरल, भाव से नहीं ले सका। न मालूम कितने दिनों तक मेरा लिखने को जी ही नहीं हुआ!

कहानी खत्म हुई हमेशा के लिए, लेकिन कहानी की वात प्रेमचंद जी के उन लाल स्याही में लिखे अक्षरों के साथ मुझे कचोटती रही और तव एक दिन जव प्रेमचंद जी फिल्म के कार्यक्षेत्र को लात मार कर वड़ी पीड़ा लेकर काशी लौटे ही थे, उनके साथ उन्हीं के उपन्यास पर वनी हुई फिल्म 'मजदूर' को देखने का संयोग हो गया। मैं यह तो नहीं मानता कि मेरी कहानी से मिली मेरी व्यथा को समझाने को वे मुझे उस सिनेमा में ले गये थे। पर जव करीव आधी फिल्म हो चुकी थी, एक घटना का प्रसंग आया जो नितान्त अस्वाभाविक और लाने के लिए ही लायी गयी वात लगती थी, तो प्रेमचन्द जी ने कहा : 'यह है प्रेमचन्द की हत्या।' और दूसरे ही क्षण उन्होंने यह भी कहा : 'तुम्हें अपनी कहानी की वात याद आती है न!' वात मेरे मन की थी। मैंने कहा : 'हां' अव कहिए।' उन्होंने केवल इतना ही कहा : 'मैं जानता था कि तुम यह सोच रहे हो, पर जो कुछ तुम देख रहे हो, वह प्रेमचन्द की कहानी नहीं, फिल्म के डायरेक्टर और मालिक की कहानी है।' और मैंने देखा कि कि उनकी आंखों में आँसू भी ढल आये थे।

मेरी कहानी नहीं हुई, पर यह कहानी होकर हमेशा के लिए मेरी रह गयी।

(धर्मयुग, २६ जनवरी १९६४)

युगांतरकारिणी इन्दुमती गोयनका

'इनके पास हजार हवाई जहाज हों, हजार वम हों, पर ये जीत नहीं सकते, यदि आप इनका साथ छोड़ दें। हमें दुख है कि अभी तक आपने अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की है। हम से रोये बिना रहा नहीं जाता, जव हम आपको अपने भाइयों पर लाठी वरसाते हुऐ देखते हैं। क्या पेट इतनी बुरी चीज है कि हम उसके लिए अपने भाइयों, सम्बन्धियों, अपनो सगी मां और वहनों पर हाथ उठा सकें। आप इस राक्षसी सरकार का साथ एक दम छोड़ दीजिए।' यह उद्धरण उस परिपत्र से है, जो सन् १९३० में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान पुलिस कर्मचारियों से अपील के रूप में राष्ट्रीय महिला समिति की मंत्री की हैसियत से श्रीमती इन्दुमती गोयनका ने छपवाकर वितरित किया था। आज इन शब्दों में कोई बहुत बड़ा ववण्डर न लगता हो पर २० जून सन् १९३० को कलकत्ता में प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट के कोर्ट में इसी को लेकर बड़ा संगीन मामला हुआ था। अंग्रेज पुलिस अधिकारी गवाहियों और तर्कों से सिद्ध कर रहे थे कि सम्बन्धित परिपत्र से पुलिस को वरगलाने की चेष्टा की गई थी और उसका परिणाम सरकार के लिए खतरनाक हो सकता था। इन्दुमती उस समय कोर्ट के कटघरे में खड़ी थीं। उनसे पूछा गया—'आपको क्या कहना है?' और उन्होंने तपाक से उत्तर दिया था—'मुझे कोई सफाई नहीं देनी है' साढ़े पन्द्रह वर्ष की लाडली गुड़िया जैसी सुकुमार वालिका (ये शब्द उन दिनों मासिक 'माधुरी' को एक टिप्पणी में प्रयुक्त हुए थे) के मुख से यह निर्भीक उत्तर सुन कर कोर्ट चकित हो गया। अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने राजाज्ञा दी कि युवती अपराधी है और उसको दो अपराधों पर क्रमशः ६ महीने और तीन महीनों का कारावास होगा। इन्दुमती कारादण्ड की आज्ञा सुनने के बाद हंसती हुई कोर्ट से बाहर आई।

दूसरे दिन इन्दुमती को दिये गये कारादण्ड के प्रतिवाद स्वरूप कलकत्ते में आम हड़ताल हुई। बेथून कॉलेज, जहां इन्दुमती पढ़ती थी, में हड़ताल रही। बाजार, दुकानें बन्द हो गई। स्थिति अनियंत्रित न हो जाये, इसके लिए अतिरिक्त पुलिस कांस्टेबल और घुड़सवार शहर में घूमते रहे। कलकत्ता कार्पोरेशन का अधिवेशन स्थगित रखा गया। उसके लिए कार्पोरेशन में जो प्रस्ताव स्वीकार किया गया, उसमें कलकत्ता म्युनिसिपल गजेट के २८ जून १९३० के अंक में प्रकाशित टिप्पणी के अनुसार कहा गया—राष्ट्रीय आंदोलन के सिलसिले में गिरफ्तार होनेवाली बंगाल की पहली महिला इन्दुमती गोयनका के प्रति सम्मानार्थ कार्पोरेशन का अधिवेशन स्थगित रखा जाये। इस प्रकार श्रीमती गोयनका की गिरफ्तारी के साथ ही वंगाल में सत्याग्रह के कानून अवज्ञा आदोलन का नारी युग आरंभ हुआ। जिस वंगाल में देश

की स्वाधीनता के लिए त्याग और वलिदानमय संघर्ष का इतना लम्बा इतिहास रहा है, उसमें मारवाड़ी समाज की अल्पवयस्का इन्दुमती गोयनका ने उस दिन एक गौरवपूर्ण अध्याय की सृष्टि की थी। उस समय जहां देश परतंत्रता की शृंखलाओं में जकड़ा हुआ था, समाज कुरूढ़ियों, कुप्रथाओं और कुसंस्कारों से जकड़ा हुआ था। इस प्रकार के संघर्ष और आंदोलन में नारी समाज के आगे आने में सामाजिक रूढ़ियों की वहुत वड़ी वाधा थी। पर्दा प्रथा ही एक वहुत वड़ा अवरोध थी। श्रीमती गोयनका पुलिस की सरकार के विरुद्ध आह्वान करके कारादण्डित हुईं, परन्तु सामाजिक कुप्रथाओं की कारा से तो मुक्त हो गईं। उनमें एक नई चेतना और अद्भुत शक्ति का आविर्भाव हुआ। अपनी एक सहकर्मिणी राष्ट्रकर्मी श्रीमती चमेली देवी के निधन पर दैनिक विश्वमित्र में प्रकाशित अपने एक लेख में उन्होंने लिखा था, 'जव तक हमारा देश पूर्ण स्वतंत्र नहीं हो जाता, तव तक हम भारत की नारियां चैन नहीं करेंगी, चाहे एक के वाद एक हमें इसी प्रकार कितनी ही आहुतियां मातृभूमि की वलिवेदी पर क्यों न चढ़ानी पड़े। अभी तो हम जेल ही गई हैं, पर एक दिन आ सकता है, जव हमें गोली और गोला वारूद का शिकार वनना पड़ेगा।' हमारी भाषा में, हमारे इतिहास में नारियों के मुंह से इस प्रकार के शौर्य, वलिदान और दृढ़ विश्वास के शब्द पहले कहां सुनाई पड़ते थे? गांधी जी की अहिंसक प्रतिकार योजना ने देश में सचमुच एक युगान्तर उपस्थित कर दिया। उस युगान्तर की नारी थी इन्दुमती।

इस वीर और विद्रोही व्यक्तित्व का निर्माण और विकास जिस कर्मठ जीवन-शाला में हुआ था, उसके दोनों ही पक्ष—पिता का और पति का वहुत ही जागृत, विचारवान और कर्तव्यनिष्ठ थे। इन्दुमती के पिता स्वर्गीय पद्मराज जी जैन मारवाड़ी समाज के सवसे अग्रणी सामाजिक और राष्ट्रीय नेताओं में थे और इन्दुमती के ससुर दिल्ली के सुप्रसिद्ध समाज सुधारक श्री केदारनाथ जी गोयनका थे। अपने पिता पद्मराज जी के विचारों की भूमिका लेकर इन्दुमती ने अपने वचपन में जो विकास किया, उसी प्रकार की विचारभूमि उन्हें अपने ससुराल में मिली। उनके पति श्री केशवदेव जी खुद वड़े विचारशील और क्रियाशील क्रांतिकारी समाज सुधारक थे। वर्षों पहले 'मारवाड़ी अग्रवाल समाचार' प्रकाशित 'समाज का आह्वान' शीर्षक लेख में श्री केशवदेव जी ने लिखा—'पूर्ण सुधार करने के लिए समाज में एक महान् क्रांति की आवश्यकता है। समय सुधार नहीं चाहता, क्रांति चाहता है··· 'किन्तु क्रांति लाने के लिए सच्चे और निडर नवयुवकों की आवश्यकता है। वृद्धों से हमें कुछ आशा नहीं। समाज सुधार उनके हाथों कभी न होगा। सुधार होगा नवयुवकों के वल पर। अतएव नवयुवकों को निडर होकर स्वतंत्र विचार के साथ आगे आना चाहिए। उनके मार्ग में कितने ही कांटे क्यों न हों, वृद्ध जन उनके पथ में कितने ही रोड़े क्यों न अटकाएं सव विघ्नों को कुचल कर, परास्त करके उनको आगे वढ़ना होगा··· समाज सुधार के लिए अव लेखों और व्याख्यानों की भी आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है व्यावहारिक रूप में काम करने की।' इस व्यावहारिक रूप का आरंभ इन्दुमती और केशवदेव जी के विवाह से हुआ। दैनिक 'विश्वमित्र' के १७ दिसम्वर, १९२५ के अंक में 'पुरानी रूढ़ियों पर प्रहार' शीर्षक से इस विवाह का जो विवरण प्रकाशित हुआ,

उसके अनुसार हावड़ा के तत्कालीन सिविल सर्जन डॉ० गोयल ने कहा था, 'अब हिन्दू समाज के सुदिन आ रहे हैं। मारवाड़ी समाज में इस प्रकार के विवाह बहुत बड़ा काम करेंगे।" स्वर्गीय बसंतलाल जी मुरारका, स्वर्गीय देवी प्रसाद जी और श्री दुर्गाप्रसाद जी खेतान, स्वर्गीय अम्बिका प्रसाद जी वाजपेयी, श्री भागीरथ जी कानोड़िया, श्री सीताराम जी सेकसरिया, पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी; पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार आदि ने इस विवाह को सामाजिक सुधार की दृष्टि से महान प्रेरणा दायक आदर्श बताया था। सब की ओर से इस आदर्श दम्पति का अभिनंदन करते हुए स्वर्गीय मूलचन्द्र जी अग्रवाल ने उस दिन वर-वधू को कहा था :—

'आज कलकत्ते का मारवाड़ी तरुण समाज अपनी सदिच्छा, प्रेम और सहानुभूति के सच्चे आभूषण आपकी गोद में उपहार स्वरूप डालकर आपका मंगल चाहता है। समाज सेवा को ही आप अपना आभूषण समझें।"

सचमुच गोयनका दम्पति सरलता और सादगी के आभूषण ही बने रहे। सरलता ऐसी कि सब कुछ करने का सुअवसर पाकर और उसे पूरा करके भी दोनों में से किसी ने भी किसी प्रकार के मान सम्मान, पद प्रतिष्ठा, नाम उपाधि की तरफ कभी देखा ही नहीं। बस निरंतर उन आदर्शों को अपने जीवन में, अपने परिवार में मानते और विकसित करते गये जिनको लेकर जीवन की यात्रा शुरू की थी। अपने दो लड़कों और दो लड़कियों को भी इसी प्रकार के संस्कार देने में उन्हें सफलता मिली। सारा का सारा परिवार एक आदर्श बन गया।

इन्दुमती जी ने बाद में राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया। वस्तुतः उनमें राजनीति तो कभी थी ही नहीं, उनमें तो थी राष्ट्र और समाज की उन्नति के लिये उत्सर्ग की भावना। चुनाव और शासन की राजनीति में उनकी कभी कोई दिलचस्पी थी ही नहीं। उत्सर्ग की भावना से ही उन्होंने सामाजिक क्रांति के कार्यों में योग दिया। जब हम लोगों ने तरुण संघ की ओर से पर्दा सत्याग्रह का आन्दोलन किया तो इन्दुमती जी बिना बुलाये उसमें आईं और आगे रहीं। विरोध, लांछना, आरोप, गालियाँ और थूथूकार सब सुने पर पर्दा हटाओ का झण्डा ऊपर रखने में वे कभी पीछे नहीं रहीं। उन्होंने समाज की प्रगति के लिये जो व्रत लिया था, उसे निरंतर निभाती गईं। एक नये युगान्तर के लिये उन्होंने मशाल जलाई थी, अपने व्यक्तिगत उदाहरण से जो तेजस्विता समाज को दी थी, उसे कालांतर में सैकड़ों और हजारों मारवाड़ी तरुणियों में, जब वे देखती थीं तो गद्‌गद् हो उठती थीं। और वह युगान्तरकारिणी हर नये युगान्तर के लिये आशीर्वाद देती थीं, आह्वान में शामिल होती थीं और नये विचारों का सदैव स्वागत करती थीं। उनके पति श्री केशवदेव जी इन सब दिशाओं में उनको हर प्रकार की प्रेरणा और प्रोत्साहन देते थे। वास्तव में वे पीछे से एक बड़े शक्तिपुंज का काम करते थे। उनका आदर्श दाम्पत्य हर प्रकार से कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व की संयुक्त उपलब्धि थी।

चार महीने पहले श्री केशवदेव जी का देहावसान हो गया। तब भी इन्दु बहन बराबर दुःसह एकाकीपन की वेदना अनुभव करती थीं। वह वेदना ही उन्हें गत शनिवार, दिनांक २८ अगस्त को सदा के लिये ले गई। उनको श्रद्धांजलि देने के

लिये विभिन्न सामाजिक संस्थाओं की ओर से उस दिन जो सार्वजनिक सभा आयोजित की गई थी, उसके प्रस्ताव में बिलकुल ठीक ही कहा गया था—"श्रीमती इन्दुमती ने दीर्घ काल तक निःस्पृह और निरभिमान भाव से समाज की जो और जितनी सेवा की तथा नारी उत्थान के कार्य में जो योगदान दिया, वह सामाजिक सुधार और क्रांति के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा—वे विचार से और कार्य से आजीवन समाज सेवा का कार्य करते हुए समस्त महिला समाज को प्रेरणा प्रदान करती रहीं।" वह प्रेरणा ही है, अब जिसका नाम है ... इंदुमती गोयनका।

(दैनिक 'विश्वमित्र', २२ सितम्बर, १९७१)

अप्रतिम व्यक्तित्व--सीताराम सेकसरिया

मातृभूमि, मातृभाषा, और मातृजाति की मुक्ति एवं महिमा के लिए श्री सीताराम जी सेकसरिया पिछले साठ वर्षों से जो सेवा-कार्य कर रहे हैं, वह मूक होते हुए भी मुखर है, क्योंकि उसकी सुगन्ध से हजारों-हजारों परिवार सुवासित हैं। मातृत्व के वे पुजारी हैं, मातृपूजा उनके जीवन का मंत्र रहा है। कलकत्ता में और बाहर भी हजारों की संख्या में ऐसी माताएं और बहनें हैं, जो आज जो कुछ हैं, सीताराम जी की प्रेरणा और सहायता के कारण हैं। उनकी यह मान्यता रही है कि एक महिला का निर्माण पूरे कुटुम्ब का निर्माण है, जो अन्ततोगत्वा सारे समाज और राष्ट्र का निर्माण है। मूलाग्र निर्माण की इस कल्पना और इसकी सिद्धि के लिए सर्वांग साधना ने ही सीताराम जी को वह बनाया जो वे हैं।

इस साधना का आरम्भ संघर्ष से हुआ, जैसा कि हुआ करता है। जीवन के दस वसन्त भी पूरे नहीं हुए थे कि सीताराम जी मातृ-पितृ विहीन हो गये। राजस्थान के तत्कालीन नवलगढ़ जैसे छोटे गांव में इस अकेले बालक के लिए कौन क्या सोचता? उनके दादाजी के एक भाई ने उनका पालन-पोषण किया और जल्दी से जल्दी उनका अपना घर बांध कर खड़ा कर देने की दृष्टि से तुरन्त साढ़े दस वर्ष की आयु में ही विवाह कर दिया। इस प्रकार इतनी छोटी उम्र में ही उन पर गृहस्थी का भार आ पड़ा। न शिक्षा, न क्षमता, न साधन, केवल संघर्ष और संघर्ष। सीताराम जी संघर्ष की साधना और भगवान की आराधना में लग गये। धार्मिकता के सारे संस्कार उन पर छा गये और वे पूजापाठ तथा ज्ञान-ध्यान के ऐसे बन्दी बन गये कि गृहस्थी चलाने के लिए उपार्जन की दृष्टि से कलकत्ता के लिए रवाना तो हुए, पर दिल्ली तक आकर ही लौट जाने को व्यग्र हो उठे क्योंकि वहां तक पहुंचने में ही उन्हें खान-पान, स्नान और संध्यादि के मामले में छुआछूत आदि की कठिनाइयां दीखने लगी, परन्तु गृहस्थी

की चिन्ता थी और गांव के लोगों का यह ताना था कि ऐसे अयोग्य और निकम्मे लड़के से क्या होने-जाने को है। इन कारणों से ही वे अपना मन कड़ा करके कलकत्ता आ गये और यहां पच्चीस रुपये प्रति माह की नौकरी से जीवन का आरम्भ किया। यह सन् १९११ की बात है।

इस बीच उनकी पहली पत्नी का देहावसान हो चुका था और भगवान देवी के साथ दूसरा विवाह भी हो गया था। कलकत्ता में उस समय राजनीतिक जागरण और सामाजिक नवोन्मेष का तेज प्रसारित होने लगा था। इसके पहले संस्पर्श में ही सीताराम जी को परिवर्तन की प्रेरणा मिलनी शुरू हो गयी। कलकत्ता यात्रा उनके लिए जड़ता से जागृति की यात्रा हो गयी। वे स्वयं अपने बाल्यकाल के जड़ संस्कारों को छोड़ने के लिए विद्रोह भरी प्रेरणा से उद्वेलित हो उठे और स्वयं उन सामाजिक धार्मिक परम्पराओं और प्रथाओं में परिवर्तन करने के लिए आतुर हो उठे थे जिनके कारण वह दिल्ली तक आकर नवलगढ़ लौट जाना चाह रहे थे। उनमें यह परिवर्तन इतनी जल्दी हुआ और इतना गहरा हुआ कि सीताराम जी का समूचा व्यक्तित्व परिवर्तन का पर्यायवाची हो गया। जहां बड़ी से बड़ी शिक्षा के बावजूद परिवर्तन का पथ आसानी से नहीं खुलता, वहां शिक्षा से बिल्कुल विहीन सीताराम जी ने परिवर्तन किया और परिवर्तन-प्रेरक बने। इसमें उनके व्यक्तिगत मित्रों (जिनमें स्वर्गीय वसन्तलाल जी मुरारका मुख्य थे) का सतत साथ और सान्निध्य था। इन्हीं दिनों देश के कई प्रभावशाली नेताओं के सत्संग और सान्निध्य का उन्हें लाभ मिला। इस प्रकार सीताराम जी का जीवन पूरा-पूरा सामाजिक सार्वजनिक कार्यों में ढल गया। उनकी पत्नी भगवान देवी ने पूरी तरह से अपने पति का साथ देकर जीवन दृष्टि का यह परिवर्तन और यह आरोहण स्वीकार किया और सीताराम जी के सब कार्यों में पूरा-पूरा साथ दिया।

सीताराम जी के जीवन में परिवर्तन की इस सारी प्रक्रिया के पीछे गांधी जी की प्रेरणा मुख्य थी। मातृ-भूमि की मुक्ति के लिए उन्होंने हर आंदोलन में भाग लिया तथा कष्ट सहन किया और बार-बार जेल यात्रा की। निरन्तर वे अपना अधिक से अधिक समय सार्वजनिक कार्यों में, विशेषकर स्वाधीनता-संग्राम के पृष्ठबल के रूप में संगठित रचनात्मक कार्यों में लगाते रहे। यह प्रेरणा अन्त में इतनी बलवती हो गयी कि सन् १९२९ में उन्होंने व्यापार के कार्य से पूरा-पूरा अवकाश ग्रहण कर लिया। उस समय हजारों रुपयों की उनकी मासिक आमदनी थी और शेयर बाजार में प्रतिष्ठा थी। यह संकल्प लेकर उन्होंने अपना मुक्त जीवन राष्ट्र और समाज को अर्पित कर दिया। जीवन-परिवर्तन के प्रवर्तन में एक दिन उन्होंने धर्म के संस्कारों को छोड़ समाज-सुधार के लिए अपने को अर्पित किया था, अब उन्होंने धनोपार्जन की प्रवृत्ति का पूर्ण त्याग कर मातृभूमि की सेवा-वेदी पर अपने को सम्पूर्णतः लगा दिया। ऐसा संकल्प बहुतों ने नहीं किया, बहुत से हो भी नहीं सकता, परन्तु सीताराम जी को इससे संतोष मिला, शांति मिली और शक्ति मिली। इसी संकल्प के अनुसार वे पिछले ४२ वर्षों से अपना सारा समय और सारी शक्ति शिक्षा और सेवा के कार्यों में ही लगा रहे हैं।

शरीर और मन से सीताराम जी बहुत नाजुक हैं। स्वर्गीय जमनालाल जी बजाज तो उनको नवाब साहब कहा करते थे। परन्तु स्वाधीनता-संग्राम के दरम्यान उन्होंने कठोर से कठोर जीवन का वरण सहज भाव से कर लिया। गांधी जी के बताए हुए मार्ग पर खादी प्रचार, साम्प्रदायिकता निवारण, हिन्दू-मुस्लिम एकता, राष्ट्र-भाषा प्रचार, हरिजनोत्थान और स्त्री शिक्षा की अनेक योजनाओं, आंदोलनों और संस्थाओं के वे संस्थापक, नियामक और संचालक रहे हैं।

इस प्रकार से निरंतर सेवारत और त्यागमय जीवन के कारण बंगाल के सार्वजनिक जीवन में उनका एक विशेष स्थान रहा है। राष्ट्रीय आन्दोलन के सिलसिले में जब कभी उनके संस्मरण सुनने को मिलते हैं, तो ईर्ष्या होने लगती है कि कितने महान अवसरों पर कितने महान लोगों के साथ काम करने का उन्हें मौका मिला। महात्मा गांधी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल, पंडित मोतीलाल नेहरू, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, मौलना अबुल कलाम आजाद, डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष और जयप्रकाश नारायण आदि सबसे उनका बहुत निकट का सम्पर्क रहा है।

संघर्ष एवं साधना के सोपानों पर चलते हुए उनकी चरम साधना का बिन्दु बनी मातृसेवा। माताओं की क्षमता और शक्ति में उनका अगाध विश्वास है। अपनी दैनन्दिन डायरियों में उन्होंने इस भावना को जगह-जगह प्रगट किया है। जनवरी १९३१ में उन्होंने एक दिन अपनी डायरी में लिखा था 'स्त्रियों की पूजा से मन को बड़ा सन्तोष मिलता है। अपने को इस आन्दोलन (स्वतंत्रता) में आनन्द मालूम होता है।'''परन्तु स्वाधीनता प्राप्ति के बाद तो देश के रचनात्मक कार्यों में लगना है और हर काम जहां तक हो बहनों का ही करना है।' और थोड़े दिनों बाद ही फिर एक जगह लिखा—समय आ रहा है कि इस गिरे देश को लड़कियां ही उठायेंगी। यह बात कितनी सच्ची थी। कितनी सच्ची साबित हो गई, हम आज देख ही रहे हैं।''

स्वाधीनता का युद्ध समाप्त हुआ और हम स्वतन्त्र हो गये, तो महिलाओं की शिक्षा और विकास के लिये कार्य करना ही सीताराम जी के जीवन का केन्द्र बिन्दु बन गया। महर्षि कर्वे और लाला देवराज के आदर्शों से प्रेरित होने वाला यह व्यक्ति उनके जैसा ही बनता गया। छोटी-सी संस्था मारवाड़ी बालिका विद्यालय आज श्री शिक्षायतन के रूप में विस्तार पाकर कितनी बड़ी संस्था बन गई है। जहां आज सीताराम जी की छत्र-छाया में लगभग चार हजार बालिकाएं प्रारम्भिक श्रेणी से लेकर शिक्षक-प्रशिक्षण वर्ग तक शिक्षा पा रही हैं। सीताराम जी की मातृ सेवा-भावना का यह वट-वृक्ष आज अपनी शाखा-प्रशाखाओं के साथ नारी विकास के एक महान प्रांगण को सुशोभित कर रहा है। सीताराम जी के आदर्श, जिसमें गांधी की सेवा भावना और रवीन्द्र की संस्कृति-धारा दोनों का समन्वय है, के अनुसार यह संस्था सत्यम्, शिवं सुन्दरम् के आदर्श से अनुप्राणित हो शिक्षा, साहित्य, संस्कृति और कला का एक आदर्श संगम है। आज भी वृद्धावस्था के बावजूद सीताराम जी इस संस्था के कार्य में अपना समय देते हैं और शक्ति लगाते हैं और हम जैसे कार्यकर्ताओं को प्रेरणा और मार्ग दर्शन देते रहते हैं।

राष्ट्र-भाषा हिन्दी के सम्बन्ध में भी स्वराज्य मिलने के समय उनके मन में बड़ी-बड़ी कल्पनायें थीं और आकांक्षाएं भी। महात्मा गांधी, काका कालेलकर और बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन के साथ उन्होंने हिन्दी के प्रचार के लिए बहुत बड़ा कार्य किया था। इसलिए आज हिन्दी की शोचनीय स्थिति से उनको बड़ी पीड़ा होती है। हिन्दी को लेकर सरकार की जो नीति रही है, उससे भी उन्हें बड़ा असन्तोष रहा है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सारे देश में प्रतिष्ठित होना चाहिए था, पर वैसा नहीं हुआ। इसकी बड़ी कसक वे अनुभव करते हैं और आज भी राष्ट्रभाषा की सेवा के लिए उनसे जो भी बन पड़ सके, उसके लिये वे हमेशा तत्पर रहते हैं।

इस प्रकार से श्री सीताराम जी अपनी सेवा वृत्ति से, दर्दी स्वभाव से, निश्छल स्नेह से, मातृपूजा की अखण्ड भावना से, सामाजिक-सार्वजनिक जीवन में एक अप्रतिम व्यक्तित्व हैं। समाज से कम से कम लेने और उसे अधिक से अधिक देने का जो महान और कठिन व्रत उन्होंने ४५ वर्ष पूर्व लिया था, वह आज भी बिना किसी पश्चाताप के अक्षुण्ण है। यही उनकी महानता, उनका सच्चा अभिनन्दन है, जिसको किसी उपाधि या अलंकरण की अपेक्षा नहीं होती। आज से १२ वर्ष पहले राष्ट्रपति ने उनको पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया था, जो उनकी सेवाओं को देखते हुए सर्वथा औचित्यपूर्ण था, पर उनका सच्चा सम्मान और अलंकरण वह श्रद्धा भावना है, जो हजारों-हजारों लोगों के हृदय में उनके लिए विद्यमान है।

(देश और समाज साप्ताहिक, १९७४)

स्नेह-मूर्ति रजनी पनिकर

८ नवम्बर, १९७४।

रात्रि के ९॥ बजे।

ट्न—— न न न न न न !

"हलो, किसको चाहते हैं ?"

"तुम्हीं को। यार, गजब हो गया न ?"

"क्या हुआ ? बताओ तो सही।"

"रेडियो नहीं सुना ? रजनी चली गयीं।"

"माने ? "

"माने और क्या होते हैं ? अपनी रजनी पनिकर का देहावसान हो गया।"

"यह क्या कहते हो ? ऐसा कैसे हो सकता है ? अभी तीन दिन पहले ही तो दिल्ली में घण्टों उनके साथ था।"

"तो क्या हुआ ? रेडियो की खबर गलत थोड़े ही होगी ? रजनी तो रेडियो की ही अफसर थीं।"

"अगर यह खबर सही ही है तो वाकई गजब हो गया ! बेचारे कैप्टेन और विट्टू और हम सब दोस्त कैसे यह वज्रपात सहेंगे।"

"रेडियो ने बताया कि अचानक यह कैसे हो गया ?"

"नहीं। बस इतनी ही खबर दी गयी है कि वे चली गयीं।"

टेलीफोन पर बात खत्म हो गयी पर मन में बातों का सिलसिला चलता ही रहा। प्रश्न और प्रश्न, उत्तर और उत्तर ! विश्वास ही नहीं हो रहा था कि जिसको तीन दिन पहले ही दिल्ली में भला-चंगा देखा था, हँस हँसकर जिससे बातें हुई थीं, वह अचानक इस प्रकार कैसे चली गयी ? किसी तरह की बीमारी का कोई संकेत ही नहीं था।

सुबह यह दुःसंवाद अखबारों में भी आ गया और मन चाहे तब भी विश्वास करने को तैयार हुआ या नहीं खबर को सही मानना ही पड़ा।

रजनी की स्नेह-मूर्ति बराबर सामने आती रही। उसका व्यक्तित्व और और कृतित्व, उसके उपन्यास और कहानियाँ, उसका संभाषण और वार्तालाप, उसकी पारदर्शी हार्दिकता और निश्छलता। जैसा बाहर, वैसा भीतर। बनावट नहीं, लुकाव-छिपाव नहीं। सही को सही और गलत को गलत कहना।

जहाँ एक ओर उसके उपन्यासों और कहानियों के पात्र बोलने लगे, वहीं दूसरी ओर आत्मीय पत्रों की पंक्तियाँ आँखों के सामने फिरने लगीं। जैसे पात्र, वैसे पत्र। उसका लिखना केवल लेखन के लिए नहीं, जीवन के लिए होता था। कोई कृत्रिमता नहीं।

शायद १२-१३ वर्ष पहले वह आकाशवाणी के कलकत्ता केन्द्र की उप-निदेशिका होकर आयी थी। उसी समय उससे मेरा सम्बन्ध बन गया। जुड़ा जो घनिष्ठ से घनिष्ठतर होता गया। एक वार्ताकार के रूप में मिला था पर शीघ्र ही घर-परिवार जैसा सम्बन्ध बन गया। एक सम-विचारक मित्र के रूप में उसके अपनेपन ने सचमुच अपना बना लिया। वह 'अपनेपन' को जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि मानती थी। एक व्यक्तिगत पत्र में उसने लिखा था: "मनुष्य का सबसे बड़ा साथी है उसका 'अपनापन'। जो व्यक्ति उसी से भागता हो, वह सुखी कैसे हो सकता है ? सिनेमा के पर्दे पर जीवन के कुछ क्षण झुठलाये जा सकते हैं पर जिन्दगी को झुठलाना मुश्किल है।" सच, उसका जीवन 'अपनेपन' का जीवन था। उसने खुद के 'अपनेपन' को पूरी तरह पहचाना था—समझा था और जीवन सदा उसके साथ ही जीया। उक्त पत्र में ही उसने फिर लिखा था "आप यदि अपने उस 'अपनेपन से मेरा परिचय करवा देते तो मैं आपको उसके साथ रहना सिखला देती।" पर जिसने खुद 'अपनेपन' को नहीं पहचाना—नहीं समझा, वह उसके साथ दूसरों का परिचय कैसे करवा पाता ? आदमी दूसरों को बहुत पहचान लेता है—समझ लेने का भी दावा करता है, पर अपने को पहचानना, समझना सहज नहीं होता और अपने को न पहचानने की हालत में ही वह भ्रान्तियों और अवास्तविकताओं में चक्कर लगाता

रहता है। अपने को पहचानने के लिए आदमी को एकाग्रता लानी होती है, ध्यान की साधना करनी होती है। रजनी के पत्र के ही शब्दों में—"जीवन में कंसन्ट्रेशन बहुत बड़ी चीज है—शान्ति का उपाय यही है। टुकड़ों में बिखर जाना स्वयं को भी शान्ति देता है और दूसरों को भी, जो सम्पर्क में आये। इसीलिए कभी-कभी मेरी विकलता इतनी बढ़ जाती है कि मुझे तोड़ देती है।···मेरी कमजोरी है कि मैं एक स्थायित्व चाहती हूँ—बहुत ही गहरी अण्डरस्टेंडिंग जो शायद मुमकिन नहीं है।"

रजनी का अधिकांश लेखन उसकी आंतरिक विकलता की ही अभिव्यक्ति है। अपने चारों तरफ की सृष्टि को वह गहरी दृष्टि से देख पाती थी। अपनी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं को सामाजिक और मानवीय परिवेश में फैलाकर वह जो साहित्य-सृष्टि करती थी, उसकी मानवीय संवेदना का यही रहस्य था। असाधारण स्थिति का साधारणीकरण ही उसकी विशिष्टता थी। उसकी रचनाओं में जो कल्पना-प्रसूत लगता है, वह विभिन्न अवसरों पर, विभिन्न प्रसंगों और विभिन्न घटनाओं में उसके अनुभूत और जीवित क्षणों का ही प्रावलम्बित प्रकाश है। वह अपनी यादों को बहुत अच्छी तरह समेटकर रखती थी। सन् १९६९ के एक पत्र में उसने खुद लिखा था: "सोचती हूँ—जिन्दगी शायद मधुर यादों का सिलसिला है। जीवन के पहले तीस वर्ष कल्पना में बीतते हैं, फिर यादों में।··दिमाग के एक खाने में सब जमा होता रहता है। कब उभरकर आ जाता है, कह पाना मुश्किल है।" सच उभरकर आ जाने में ही तो साहित्य की सचाई है। रजनी के उपन्यासों में घटनाओं का तारतम्य देखे और अनुभव किये हुए जीवन का ही तारतम्य है। जिन पात्रों को लेकर उसने उपन्यासों का ताना-बाना बुना है, वे उसको मिले हैं, अनुभव दे गये हैं। उसने पात्रों को देखा है, उनके साथ वह रही है, संवेदनाशील रही है। बस, लिखते समय उनके नाम बदल गये, पर उनके चेहरे, उनके विचार, उनकी हँसी-खुशी सब उसकी साहित्य-सृष्टि के ताने-बाने बुनते रहे। उदाहरण के लिए 'महानगर की मीता' नामक उसका उपन्यास ले लें। वह उसके कलकत्ता-प्रवास में देखे और अनुभव किये गये जीवन पर आधारित है। उसमें जो कुछ है उसको कल्पना के आवरण में से निकाल लें तो उसमें अंकित सारा जीवन हम कलकत्ता वालों को अत्यन्त अपना लगता है। उस उपन्यास का उल्लेख करते हुए उसने मुझे २० अगस्त, १९६९ के पत्र में लिखा था, "'महानगर की मीता' को मैंने बीमारी के दौरान दो बार लिखा और आजकल मैं उसको पूरा करने में लगी हूँ। आप लोगों को पढ़कर सुना चुकी हूं। देखें कैसा उभरता है!"

रजनी ने कभी कविता भी लिखी थी क्या, मुझे नहीं मालूम। कम से कम मैंने उसकी कोई कविता नहीं पढ़ी। परन्तु कह सकता हूँ कि कवि का हृदय उसके पास था। दार्जिलिंग से लिखे हुए एक पत्र की इन पंक्तियों में कितनी कविता है, इसका कोई भी सहज ही अनुमान कर सकता है: "धूप की पहली किरण से कंचन-जंगा जगमगा रही है। सुप्रभात का समीर सुखद है। ऐसे में अच्छे क्षणों की स्मृति बारम्बार आ जाये तो किसी को दोष नहीं दिया जा सकता। अच्छा कागज

निकालूं तो लोग जाग जायेंगे। फिर कागज, कलम और स्याही की क्या महत्ता है ? महत्ता तो है भावनाओं को। भावनाओं का होना ही अपने में यथेष्ट है। भावना की बात आ गयी तो कहूं कि आपकी भावनाएं केन्द्रित नहीं रहतीं। वे यहां के आकाश में उड़नेवाली बादल की टुकड़ियों की तरह उड़ती रहती हैं। ये टुकड़ियां तो किसी भी पहाड़ से टकराकर टूट जाती हैं। नहीं, मैं नहीं जानती क्या होता है ? शायद वर्षा बनकर प्यासी धरती पर बरस जाती है। क्या आपकी भावनाएं भी कहीं बरसती हैं ? वह बिन्दु सचमुच भाग्यशाली होगा। कलकत्ता में पिछले दिनों बहुत-बहुत मानसिक तनाव में थी, उस तनाव में उस मानस की तलाश रहती है जो हृदय के धरातल पर समान हो। दुनियादारी और समाज के धरातल पर नहीं ̈ ̈यहां बहुत अच्छे-अच्छे पत्थर मिलते हैं। बेलकट और बेल चीजल्ड। एक ओर देखने से हल्का नीला रंग लगता है, दूसरी ओर देखने से हल्का गुलाबी और तीसरी ओर देखने से कुछ और। इसमें मुस्कराता हुआ लाल (गहरा गुलाबी रंग) मुझे बहुत पसन्द है। कविता—यानी कवि-मन कभी भी मरता नहीं है, बुझ सकता है कुछ समय के लिए, परिस्थिति विशेष में। ऐसे सुखद सुहावने मौसम में मैं शिकायतें लेकर नहीं बैठूंगी। मैंने तय कर लिया है कि शिकायतों को एक ओर अलग ढककर रख दूंगी। नारी का शिकायत वाला रूप, सच पूछिए तो मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। . . .'मन' बड़ा विचित्र जीव है। जहां उसे भटकना चाहिए, वहां तो जायेगा नहीं। रेगिस्तान में विचरण करेगा। तपेगा, सहेगा, सहन करने में उसकी खुशी है। क्या कीजिएगा ?"

क्या यह कविता नहीं है ? छन्दात्मकता भले ही न हो, कवितात्मकता तो है ही।

इस कवि-मन ने अपनेपन के साथ हम लोगों से जो सम्बन्ध बना लिया, वह कभी नहीं मर सकता। चाहे रजनी शरीर से मर गयी हो, उसका यह सम्बन्ध तो अमिट और अमर है। उसके इसी भावना-प्रबल मन की खूबी है कि उसको न अपना जन्म-स्थान (पंजाब) और न पति का स्थान (केरल) इतना भाया जितना कलकत्ता। कलकत्ता के साथ उसके सम्बन्ध कवितापूर्ण हैं। जब कलकत्ता से उसका तबादला हुआ और वह दिल्ली गयी तो उसको अटपटा लगने लगा। सूखा-सूखा। एक बार उसको दिल्ली से कलकत्ता की छोटी-सी यात्रा के आसार दीखते ही उसने पत्र में लिखा "मैं कलकत्ता और कलकत्ता वालों को खूब याद करती हूं . . . यहां कोई किसी को नहीं पूछता, जब तक उसे अपना कोई विशेष काम न हो, कोई विशेष मतलब न हो। कलकत्ता वाली आत्मीयता यहां नहीं है, यहां तो बस ! ! ! कलकत्ता रहकर मेरी आदत खराब हो गई है। यहां न कोई अच्छा कहता है, न वातावरण अच्छा लगता है। यहां उतना 'अपनापन' कहां मिलेगा ? दिल्ली वाले लोग अब बेगाने लगने हैं।" कलकत्ता का यह काव्य-मन सभी को भाता है—उसकी विशालता उस गहराई में कोई अन्तर नहीं पड़ने देती।

कलकत्ता है और दिल्ली भी है पर दोनों के बीच इस मधुर सम्बन्ध की रजनी नहीं। इस अभाव की पीड़ा जितनी कलकत्ता अनुभव कर रहा है, उतना रजनी के सन्दर्भ में शायद ही कोई दूसरा खयाल कर सके, अनुभव कर पाये। उस दिन आकाशवाणी के दफ्तर से उसकी सहकर्मिणी कविता सिन्हा बात-बात में बिल्कुल ठीक

बोल गयी कि रजनी के चले जाने पर हमारा कलकत्ता ही हमें कैसा अटपटा लगता है उसकी स्वाभाविक उष्णता भी कहीं ठंडी और खण्डित-सी लगती है।

जब कभी दिल्ली जाता था—और काफी चला जाता था—तो रजनी के साथ दो-चार घण्टे बिताये बगैर लौटता नहीं था। केवल विचारों और भावनाओं की ही बात नहीं, वह अपने हाथों से पनीर मटर बनाकर खिलाती थी, वह भी हमारी भेंट का एक अटल अंग था। उसकी मृत्यु के तीन दिन पहले ही मैं दिल्ली में था। केवल दो दिन के लिये गया था। कार्यालय में जाकर उससे मिला पर उससे संतोष न मुझे हुआ, न उसको। उसने कहा—"साग खाने कब आयेंगे?" मैंने कहा—"कल शाम के विमान से वापस जाना है। समय नहीं मिलेगा क्योंकि दोपहर में तो तुम कार्यालय में रहोगी।" उसने तपाक से जवाब दिया—"अभी मेरी केजुअल छुट्टियाँ हैं, इसलिए कोई असुविधा नहीं होगी। आप अवश्य कल दोपहर में ही रखिये।" हम दोनों एक दूसरे की आँखों में देखने लगे—कितना गहरा स्नेह अब वैसा बोल और वैसा स्नेह कहाँ मिलेगा?

अभी महीने भर पहले जब मैं दिल्ली गया और उसी घर में जाकर बिट्टू और उसके पिताजी से मिला तो वे कमरे, वे दीवारें, वह रसोई, सब कितनी यादों को कुरेदते रहे। बस वे स्नेह-रंजित आँखें नहीं थीं और वह पनीर भी नहीं था। एक अभाव जिसने भाव को और गहरा बना दिया। वे यादें जो कितने साहित्य की सृष्टि का आधार बन गयीं, अब मौन हैं। हैं, पर नहीं हैं। इस सब में आज भी मुखर है स्वयं रजनी!

('लेखिका' रजनी-स्मृति-ग्रन्थ, अक्टूबर, १९७५)

व्यंग्य

रोटी के मोर्चे पर संस्कृति के गीत

भूख, रोटी, भूख—बन्द करो यह रौरव। यह देव-भूमि है, नरक का रौरव यहाँ नहीं हो सकेगा। भूख का अनुभव करने वालों के लिए भारत की देव-भोग्या वसुन्धरा में जगह नहीं है। दो जून रोटी मिले या न मिले, यह इतनी बड़ी बात नहीं है। आदमी भी रोटी जितना छोटा नहीं हो सकता, फिर इस देव-भूमि के देवता तो इतनी छोटी बात सोच ही कैसे सकते हैं। इसीलिए तो कहता हूँ कि तुमने चमड़ी भारतीय रख भी ली तो क्या, खून दूसरा ले लिया है। वह खून, जो तुमने लिया है, बहुत पतला है। तुम्हें बहुत भूख लगती है। लेकिन भारतीय खून मोटा होता है, जो मेरे अन्दर है, भूख मुझे क्या कर सकती है? ज्यादा से ज्यादा तो वह मेरा शरीर ले सकती है, मुझे मार नहीं सकती। आत्मा अमर है, उसे कोई क्या मारेगा? मरने वाला मरेगा ही—भूख से हो, रोग से हो, आक्रमण से हो। पर आत्मार्थी के लिए भूख और मौत दोनों ही उपेक्षणीय है।

न भूख मेरी इतनी बड़ी है कि वह मुझे वश में कर सके, न मेरा उससे इतना अनुराग ही है कि उसके कारण मैं अपने देवत्व से गिर जाऊँ। यह देवत्व कई हजार वर्षों की साधना का धन है। उसे भूख की मिट्टी में मिल जाने दूं? भूख आज है, कल नहीं रहेगी। यह शरीर भी, जिसे भूख लगती है, जिसके लिए रोटी की जरूरत होती है, आज है, कल नहीं रहेगा, पर देवत्व की परम्परा का लोप हो गया, तो जीवन को रख कर ही क्या होगा? जिस अमृत को पीकर आत्मा की भूख पूरी कर चुका, उसे छोड़ कर अब यह छाछ पीऊंगा? तुम्हारी तरह इतना छोटा बनूंगा कि रोटी को ही जीवन का केन्द्र बना लूं, और फिर, फिर ऐसा खूंखार बन जाऊं कि दूसरे के पास दो रोटियां देख कर उस पर झपट पड़ूं? मैं भूखे पेट सोकर भी अपनी संस्कृति की मर्यादा रखूंगा। ऋषियों की सम्पदा को अन्न के दानों में फेंक देने का महान् पाप मैं नहीं करूंगा। मुझे परवाह नहीं—भूख मेरे शरीर को नष्ट कर दे। मैं रोटी के बदले आत्मा के धर्म को नहीं बेचूंगा।

भूख और रोटी कभी अमर रहे हैं, जो अब रहेंगे? भूखों के साथ भूख मर जाएगी और रोटी का भी मजार बन जाएगा। बची रहेगी संस्कृति, और उसका पोषक धर्म! संस्कृति और धर्म पर रोटी आज जो आघात कर रही है, उसे रोके बिना, उसका प्रतिकार किये बिना संस्कृति की रक्षा नहीं है। धर्म और संस्कृति के विरुद्ध जिहाद में रोटी आज पांचवें दस्ते का काम कर रही है। यह रोटी ला रही है

हमारे देश में विदेशी सभ्यता के विचार। रोटी को इतना बढ़ा दिया गया है कि वह धर्म के विरुद्ध एक षड्यन्त्र हो रही है और संस्कृति के विनाश का एक शस्त्र।

पर जिस सभ्यता का हृदय आध्यात्मिक है, उस पर रोटी की हरकतों का कोई असर नहीं हो सकता। हमारी धर्म-साधना ने रोटी के लिए जीना हमें नहीं सिखाया है। हमारे संस्कारों में रोटी पाप है, पाप का कारण है। आज उसने संस्कृति के विरुद्ध सिर उठाया है, उसे हम कदापि नहीं उठने देंगे। उठा कि मारा। यह रोटी का नारा हमारे देश में विदेशी विचारों का वाहन बना हुआ है। रोटी में भारतीयता नहीं है। वह रोटी से ऊपर है। उसका मूल्य रोटी की अपेक्षा कहीं ज्यादा है।

हमारे वेद, उपनिषद्, काव्य, नाटक भारतीय संस्कृति के वाहक हैं। इनमें रोटी के केन्द्र-बिन्दु से जीवन को देखने की गलती नहीं की गई है। तुम आज रोटी का अभियान लेकर इन्हें खत्म करना चाहते हो। पर तुम्हें पता नहीं—वेद या उपनिषद् का एक मंत्र ही तुम्हारे अभियान का सारा बल खत्म कर देगा। रोटी से यह देश बड़ा नहीं हुआ है, रोटी से यह कभी पराजित भी नहीं होगा।

भारतीय संस्कृति की आत्मा रोटी पर आश्रित नहीं है। तुम हो कि बीस आदमियों को भूखों मरते देखा कि सब्र खो बैठे, त्योरियाँ चढ़ गईं, लड़ाई शुरू कर दी और इन्कलाब को पुकारने लगे। भारतीय दृष्टि किन्तु इतने संकीर्ण स्वार्थों में कभी नहीं उलझती। करोड़ों भूखे और नंगे मेरे सामने मरे हैं—एक बार ही नहीं, कई बार, पर क्या मैं कभी बेसब्र हुआ, क्रोध किया, संघर्ष और क्रांति की आवाज़ उठाई? मैं तुम्हारी-सी पोची संस्कृति का व्यक्ति नहीं हूँ। मेरी धमनियों में उस रक्त की कमी नहीं है, जो करोड़ों मरते हुए को देखते रह कर भी ईश्वर की सर्वोपरि सत्ता और एक-मात्र उसी की कर्तृत्व-शक्ति में विश्वास किए रखने की गर्मी देता रहता है। गीता हमारी संस्कृति–माता है। उसने हमें 'अनासक्ति' का मर्म दिया है। हम भूख को भी निष्काम करें और रोटी की आसक्ति में न पड़ें। महाभारत में भगवान ने कहा है—"मेरी बात में तनिक भी सन्देह न करो। अंधों और गूंगों की तरह निःशंक होकर मैं जैसा कहूं, उसके अनुसार आचरण करो।" जब भगवान नहीं चाहता, तो तुम्हारे किए क्या होगा? तुम रोटी दिलाने के लोभ से मुझे मेरे भगवान से अलग कर रहे हो। रोटी बड़ी है या भगवान, इसका भी तुमने खयाल नहीं किया?

मुझे खुशी हुई कि जब रोटी के सहारे हमारी संस्कृति पर अभारतीयता मंडराने लगी, उस समय वन देवियों के कल्पना-विलास से शिक्षा लेकर अपनी सनातन संस्कृति की अमर आत्मा का साक्षात्कार करने वाले मुंशी-जैसे ऋषि-पुत्र के हाथों में रोटी के मोर्चे पर संस्कृति की रक्षा करने का काम आया। कोई रोटी की चिन्ता वाला व्यक्ति होता, तो वह उसी में लग जाता। मुंशी ने गद्दी पर बैठते ही रोटी के इन्कलाबी गीतों को वनश्री के संस्कृति-गीतों से दबा देने का अभियान शुरू कर दिया। वन देवियों का सुन्दर कल्पना-विलास, मधुर-संगीत और आकर्षक नृत्य नेताओं के हृदय को गुदगुदाने लगे। कृषि और खाद्य में भी काव्य का, संस्कृति का नन्दनवन मुखरित हो उठा। हमारी संस्कृति की मान्यता रही है कि जो वनोत्सव करते हैं, वृक्ष-रोपण करते हैं, वे आत्मा-शक्ति के स्रोत को पाकर दीर्घकाल तक स्वर्ग भोगते हैं। रोटी देह

का सवाल है, इहलोक का सवाल है। उसका संस्कृति से क्या मुकाबला? जिन्होंने भूख की शिकायत की, खाद्याभाव के कारण संकट बताया, उनको ऋग्वेद का यह मन्त्र बताओ—"वरुण, अग्नि, पानी और औषधि। आप सब तृप्त हों। मरुतों के आलिंगन से हमें सुख मिले और इन सब देवताओं के आशीर्वाद से हमारा रक्षण हो।" वृक्षों के पत्तों पर प्रभात में जो जल-कण पड़ते हैं, उनका जलपान करके हमारे पूर्वज तृप्त और धन्य हुए थे। हम भी उस ओर अभिमुख हों। वृक्ष लगावें, उनके पत्तों पर के जल-कण का जलपान करें। भूख होगी ही नहीं, वन देवियां प्रसन्न हो जायेंगी, जीवन में उल्लास आ जायगा। उपनिषदों के मन्त्र पढ़-पढ़ कर हम वृक्ष लगाते जायें और स्वर्ग का सुख हमारे चरणों में लोटने लगेगा। न लगेगी भूख, न चाहिएगी रोटी। यह है रोटी की समस्या का शुद्ध भारतीय समाधान। वन-प्रधान संस्कृति का अमर संदेश।

ये वनोत्सव रोटी के अभियान में हमें बचायेंगे। वन देवता हमारी मनोकामना पूरी करेंगे। संस्कृति की शिक्षा देकर ये हमारे पेट की 'अभारतीय' आग को शांत करेंगे। जिस आग ने आज वर्ग-संघर्ष की आग फैलाना शुरू किया है। हमारी संस्कृति का पाया अहिंसा है, हम रोटी के लिए रोटी के अपराधियों पर हिंसा नहीं करेंगे। सहस्रों वर्षों के बाद मुंशी ने हमें एक 'विदेशी' समस्या का स्वदेशी, स्वसांस्कृतिक और स्वधर्मीय समाधान दिया है। साहित्यकार की कल्पना शक्ति का चमत्कार है यह।

रोटी की कसौटी पर संस्कृति को तौलने-जोखने की बात मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगती। यह भारतीय आदर्श के बिलकुल विपरीत है। तुम कहते हो—यह मनुष्य की प्राथमिक चिकित्सा है, पर क्या मैंने तुमसे कह नहीं दिया कि मैं मनुष्य पीछे हूं, भारतीय पहले। मनुष्य होने की परवाह मुझे नहीं, अगर भारतीय होने में बाधा है। भारतीय होकर तो मैं पशु बनने को भी तैयार हूं, बना हूं, बन सकता हूं और इसलिए भारतीयता की रक्षा में जब अमानवीय (कह लीजिए—दानवी) कार्य करता हूं, तुम्हारी मानवीय आलोचनाओं की मुझे परवाह नहीं होती। भारत की देव-भोग्या वसुन्धरा देवताओं की रही है और रहेगी। जिसको देवों का वरदान प्राप्त है, उसकी हर कृति में स्वभावतः देवत्व होता है। वह भूख और रोटी का पिंड-मात्र नहीं है। अगर तुम भारतीय नहीं हो, तो तुम्हारे लिए इस देवत्व की प्राप्ति तो क्या, दर्शन भी दुर्लभ है। तुम्हें भूख दीखती है, देवत्व कैसे देखोगे? मैं भारतीय हूं, मुझे देवत्व की विरासत प्राप्त है, इस मधुरस का पीने वाला अब मैं तुम्हारे मानववाद की छाछ पीऊंगा?

मेरी चमड़ी का रंग ही भारतीय नहीं है, भीतर का रंग भी इतना ही पक्का है। और अकारण ही ऐसा नहीं हुआ है। कितनी वेदना का कालकूट पीने वाले शिवजी का रक्त मेरी शिराओं में प्रवाहित है। मैं इस खून को बदल कर अशिव नहीं होना चाहता। यह 'नया खून' की बातें बिलकुल परकीय है, अभारतीय है। अभारतीय खून से ही जिन्दा रहना है, तो मौत भली। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।' जिन्दा रहने के लिए बदलूं, जिन्दगी में ऐसी क्या विशेषता पड़ी है? जिन्दगी और मौत में कितना अन्तर है? तुम अन्तर मानते हो, इसलिए तुम्हारी बुद्धि में अन्तर पड़ गया है।

तुम्हारे लिए ज़िंदगी है, मौत है, संघर्ष है, क्योंकि तुम रोटी को छोटी दृष्टि से देख रहे हो। तुम्हारे लिए रोटी के एक तरफ है जिन्दगी, दूसरी तरफ मृत्यु। मेरे निकट जीवन भी वही है, जो मृत्यु है। आज रोटी के अभाव में मुझे मरा समझते हो, पर तुम्हें मालूम नहीं है कि भारतीयता कभी मर ही नहीं सकती। मृत्यु स्वयं ही अभारतीय है। देवत्व कभी मर सकता है ? वह हमेशा वैसा ही रहता है, जैसा है। और देवत्व का प्रतीक है—भारतीय—हमेशा वैसा ही रहूंगा, जैसा हूँ।

जिसने तुम्हें बताया है कि परिवर्तन सार्वभौम, सार्वकालिक नियम है, उसका स्वर निश्चय ही भारतीय नहीं है। अगर यह नियम मानकर चला गया होता, तो भारत अपनी अबाध गति से चली आई परम्परा का गर्व कैसे करता ? परिवर्तन अगर नियम है, तो छोटा, संकीर्ण और दुर्बलता का नियम है। बदले वह, जिसको बदल दिये जाने का डर हो या नये की उपलब्धि से वंचित न रहने का मोह हो। मैं किसकी परवाह करता हूं ? मैं उस धारा में खड़ा हूँ, जिससे परे ही युगों का प्रवाह आया और निकल गया। युग मुझसे बड़े हैं—जो मैं उनकी परवाह करूं ? मैं भारतीय हूँ—मुझे शिक्षा मिली है कि जो युग बीत गए उनमें और जो अब आयेगें उनमें, ऐसा कुछ न होगा, जो भारतीयता में पहले से मौजूद न हो। मेरा निर्माण एक बार में ही सब युगों के लिए हो गया। मैं ईश्वरीय विधान का प्रतिफलन हूं। ईश्वर के विधान से तो कुछ बड़ा नहीं है; पत्ती भी नहीं हिलती बिना उसकी मर्जी के। वह स्वयं जिस भारतीयता का स्रष्टा और संरक्षक है, उसका परिवर्तन कौन करेगा ? उसके लिए परिवर्तन मिथ्या है, माया है। यह रोटी भी मिथ्या है। रोटी—मायाविनी के जाल से संस्कृति की रक्षा हो।

(तरुण, जुलाई १९५०)

भूमि दो !

उपनिषदकार ने कहा है—'त्यक्तेन भुंजीथा' : भोग करो; पर त्याग के साथ। मैं संत हूं। युग-युग से यही बात तुम्हें कहता आया हूं। तुम्हारी सारी ऋद्धि-सिद्धि को दरिद्रनारायण की उपासना के चरणामृत से सींचता आया हूं। दरिद्र को नारायण बनाकर मैंने रखा है और उसको कायम रखने में तुमसे भी उसका 'दान' और मेरी 'दक्षिणा' लेता रहा हूँ। क्योंकि दरिद्रनारायण के अभाव में तुम्हारे वैभव और समृद्धि का मापदंड क्या होगा ? यज्ञ, दान और तप की कर्मत्रयी की ओर संकेत कर मैं तुम्हें बताता रहा हूँ—तुम्हारे पास हविषा है और रहे, इसलिए यज्ञ करो, देने के लिए और रहे, इसलिए दान करो, और तपाने को कुछ है और रहे, इसलिए तप करो। परिवर्तन की आवाज से घबराओ नहीं, निराश न होओ। संतों की परम्परा, यज्ञ, दान और

तप की कर्म-विधि आज भी तुम्हारे साथ है। इनके अस्तित्व के बिना तुम ठहर न सकोगे। इसलिए कहता हूं—हम पुराने शब्दों को छोड़ते चले जायेंगे, तो एक-एक शस्त्र खोते जायेंगे। हमारा शस्त्रागार खाली हो जायगा। फिर जजमान, तुम कहां रहोगे? तुम्हारा यह संत ब्राह्मण कहां रहेगा? आओ, मेरे काम में सहयोग दो। वास्तव में यह तुम्हारा ही काम है। मैं पुराने शब्दों की शक्ति को कायम रख उनमें नया रस डाल रहा हूं। पुराने वृक्ष में नई कलम लगा कर नई शक्ति पैदा कर रहा हूं। ऋषियों के बताए हुए इन शस्त्रों को छोड़ न देना, नहीं तो तुम्हारा रहना, चलना-फिरना सब बन्द हो जायेगा।

आज विद्रोह की आंधी चल रही है, जो हमारी सैकड़ों-हजारों वर्षों से चली आई मान्यताओं को, धारणाओं को और विचार-पद्धतियों को झकझोर रही हैं। जिन कल्प वृक्षों से हम आज तक जीवन का मनोवांछित रस खींचते रहे हैं, उनको यह आंधी उखाड़ फेंकना चाहती है। यज्ञ, तप और दान की पावन गंगा, जो हमारी चतुर्वर्ण संस्कृति को सींचती रही है, आज उथल रही है। भूमि की भूख ने आज विद्रोह किया है: भूख शान्त हो, पाप शान्त हो, विद्रोह शान्त हो। जमीन की भूख ने तेलंगाना का पाप किया, जमीन की भूख ने आम के वनांचलों में खेलती हुई देव-संस्कृति को चुनौती दी, जमीन की भूख ने श्रीमानों की दान-निधि को तौलना शुरू किया। इसीलिए मैं कहता हूं—भूमि दो, ताकि यह पाप शान्त हो, भूमि का पेट इन लाल शोलों को अंदर ही दबाए रखे। तुम अपनी जमीन दोगे तो दोगे थोड़ा, पाओगे बहुत। जीने का अधिकार दे दो, ताकि भोग का अधिकार रख सको। 'षष्ठांश मधुमायी' यह हमारा रिवाज रहा है। छठा हिस्सा राजा को मिलना चाहिये। सामंतवादी किले की दीवारों को अगर बनाए रखना चाहते हो—उसके बिना तुम्हारा भोग नहीं बच कर रहने दिया जायगा—तो आज के राजा—दरिद्रनारायण—को षष्ठांश दो और उसके आशीर्वाद लो। उसके नारायण को खुश करो, ताकि तुम्हारा नारायण विद्रोह की आंच से बचा रह सके।

इधर दरिद्रनारायण है, उधर, भूमिवान नारायण है। दोनों सम-स्वरूप है। दोनों के हित में कोई विरोध नहीं। इनका हित भूमि लेने में है, उनका हित भूमि देने में है। दोनों के बीच में शून्य बनकर आध्यात्मिक प्रेरणा जगा रहा है। भूमिवान-भूमि देकर भूमिहीन होने के लिए मैं तुम्हें नहीं कह रहा, बल्कि भूमि का एक हिस्सा देकर पांच हिस्सों का राजा बने रहने का उपाय बता रहा हूं। सच मानो, मैं तुम्हारे लिए ही आज सबसे अधिक चिन्तित हूं। तेलंगाना में बेजमीनों की चिन्ता, मुझे इसलिए हुई कि उनके दरिद्रनारायण में धधकती हुई आग तुम्हारे भूमिवान नारायण की ओर अपनी लाल लपटें निकालने लगी। इन लपटों ने अगर तुम्हें लील लिया, तो भारतीय संस्कृति, यज्ञ दान और तप की संस्कृति, अहिंसा की परम्परा, बापू की साधना का पावन प्रवाह—इनको कौन कायम रख सकेगा? हम किसके भरोसे टिकेंगे, हमारा क्या रचनात्मक कार्यक्रम रहेगा?

मैं शून्य हूं। मेरे पीछे तुम हो, सम्मुख दरिद्र नारायण है। तुम हो, तो मेरा मूल्य है। और मेरा मूल्य है, तो दरिद्र नारायण भी तुम्हारा मूल्य बढ़ाता है।

अर्थात् मूल्य की कुंजी तुम्हारे हाथों में है, और इस कुंजी के मालिक तुम ही रहो, इसी हेतु कहता हूं कि दान में कृपण न बनो, दान तुम्हारे वैभव का प्रहरी है। प्रहरी के हाथों को सबल बना कर रखो। उन हाथों से तुम्हारी रक्षा होगी। तुम्हारा नाम भी चमकेगा। राष्ट्र कवि की वाणी सुनो।

मांगते हैं मात्र तुमसे प्रेम करके,
वैर करके अन्य लेने को लड़ेगा।
वहुत संग्रह हो चुका त्याग भी हो।
नाम में तो चार चाँद वही जड़ेगा।

—बहुत संग्रह हो चुका, अब कुछ त्याग भी हो, ताकि वह संग्रह बचा रह सकें और तुम्हारा नाम चमके। तुम चूक गये तो यह समय कहीं काल बन जाय न, हाँ।

और, स्वयं 'वीरभोग्या वसुंधरा'। तुम भी आज अपना धैर्य खो रही हो? अपने नारायण की मर्यादा भूल रही हो? पाश्चात्य भूमि की अंधी नकल कर अपनी सहज जीवन-यात्रा के पथ से विमुख हो रही हो? कितनी अशांति है वहां? भौतिक सुखों के पीछे मनुष्य कितनी कटाकटी कर रहा है। शांत मानव-जीवन में कितनी हलचल मच गई है। हमारे जीवन की सार्थकता मर्यादा-पालन में रही है। सनातन है हमारे धर्म का नाम, और त्याग, सहिष्णुता एवं अवैर रहे हैं, तुम्हारे ऊपर उगाए हुए, संतों की वाणी से सींचे हुए कल्प वृक्ष। आज तुम भी बदलने लगी। परिवर्तन का शौक तुम्हें भी हुआ? सदियों से चली आई जीवन-परम्परा में तुम्हारा विश्वास भी डिगने लगा? जिस वीर का तुमने वरण कर रखा है, उसे क्या इस प्रकार घर में आग लगानेवाले विदेशी विचार विभीषण के भुलावे में आकर छोड़ दोगी? यह बात तुम्हारी मर्यादा के लायक नहीं है। पातिव्रत का आदर्श है एक बार जिसको वरण कर लिया, जिसको जीवन में ग्रहण कर लिया, उसके साथ मृत्यु पर्यन्त रहना। तुमने इस मर्यादा को रखा है। आज पश्चिम से आई नई हवा क्या इस आदर्श को उड़ा जायगी! देवी, तुम पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। हमारी सारी संस्कृति और धर्म की लाज तुम्हारे आचरण पर टिकी है। तुम किधर देखती हो, किस ओर कदम उठाती हो, किसका विच्छेद करती हो, किसको वरण करती हो, इस पर हमारा सारा भविष्य निर्भर करता है। आज दरिद्र नारायण का दावा है तुम्हें आयत्त करने के लिए, पर जो जन्म-कर्म से दरिद्र हैं, वे तुम्हें रख नहीं सकेगें। क्या तुम वीर-भोग्या से 'दरिद्र भोग्या' होकर मुंह उठा सकोगी? आज विकट घड़ी है। धरती की लाज स्वयं उसके हाथ में है। वह दिखा दे कि भारत-भूमि अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेगी। वह जिसकी है, उसी के पास रहेगी। यह सारा 'तूफान' खत्म हो जायेगा। पर इस भूमि की मर्यादा को कोई खंडित नहीं कर सकेगा। धर्म ने जिसका हाथ पकड़ रखा है, संत ने जिसको आशीर्वाद दे दिया है उससे यह भूमि कौन छीन सकता है? हाँ, वह अपनी इच्छा से दान दे सकता है। और आज वह यही करना चाहता है, ताकि उसका अधिकार अक्षुण्ण रहे, उसका नाम चमकता रहे।

भाई मुझे भूमि दो!

(नया समाज, जुलाई १९५२)

लाश का बयान

'डाक्टर, तुम मेरा पोस्टमार्टम करके यह जानना और साबित करना चाहते हो कि मेरी मृत्यु कैसे और किन कारणों से हुई है ? तुम्हारी जांच और राय के आधार पर मेरी मृत्यु के कारणों और परिस्थितियों का निदान होगा, और अगर यह साबित हुआ कि किसी ने मेरी हत्या की है या किसी के कारण से मैंने आत्मघात किया है, तो उसके लिए सरकार के नियम और कानून के अनुसार कारा दंड या मृत्यु दंड का विधान होगा ।

'डाक्टर, तुमने कितने पोस्टमार्टम किये होंगे ? पर सच-सच बताना, क्या तुम आज तक लाश की उस परत को खोल सके हो, जिसमें मृत्यु की असली कहानी लिखी होती है ? तुम्हारे जड़ छुरे और चाकू उस चेतन कहानी को इस पोस्टमार्टम में नहीं पा सकते । तुम पेट की आंतों को देख सकते हो, खून की रासायनिक परीक्षा कर सकते हो, घाव और चोट की हालत के संबंध में निर्णय दे सकते हो, मरने के वक्त की शारीरिक अवस्था का बयान कर सकते हो, पर क्या तुम्हें विश्वास होता है कि तुम वास्तव में जीवन और मृत्यु के बीच होने वाले संघर्ष की उस तह में पहुंच पाते हो, जिसमें वास्तविकता लिखी रहती है ? मैं तुमसे कहती हूं कि तुम्हारा ज्ञान और अनुभव लाश की, मृत्यु की उस चेतन कहानी को नहीं पा सकते ।

'सुनो, जो सरकार आज मेरी मृत्यु के कारणों को जानना और साबित करना चाहती है, वह स्वयं मेरी हत्या करने वालों से अलग नहीं है। उसके नियम और कानूनों की अन्यायपूर्ण व्यवस्था ने ही मुझे सता-सता कर मारा है । अन्तिम सांस तक मैं दो दाने अन्न के लिए और किसी से प्यार और सहानुभूति के दो शब्द सुनने के लिए संघर्ष करता रहा । अपने ही प्राणों की आग जला कर किसी प्रकार अपने को गर्मी पहुंचाता रहा, पर किसी ने मेरे संघर्ष को समझना तो दूर, देखा तक नहीं । तुम उस समय मेरा पोस्टमार्टम करते, तो कहने और समझने को तुम्हें कुछ मिलता । डाक्टर, मैं उसी संघर्षमय जीवन की लाश हूं । निष्क्रिय हो आज तुम्हारी टेबुल पर पड़ी हूं । अपने संघर्ष के घात-प्रतिघातों की तस्वीरें मैं तुम्हें आज नहीं दिखा सकती । किस तरह मेरा जीवन तिल-तिल करके कटता रहा है और कटते-कटते लाश बन गया है, इसका बयान सुनने की तुममें हिम्मत होगी ? छोड़ो, तुम्हें अपना चाकू चलाने की जल्दी होगी । काटना शुरू करो । मुझे क्या डर है ? जिसका जीवन ही कटता रहा है, उसकी लाश को, काटने में तो डर ही क्या है ? तुम्हारा चाकू उस चाकू के

सामने क्या है, जो जीवन को काटता रहा है और आज तक भी काटता रहा होगा। उस चाकू से कटे हुये को इस जड़ चाकू से काट कर न्याय के नाटक का कथानक पूरा करना चाहते हो ? तुम जहाँ भी, जिस तरह भी काटना चाहो, काटो। जो देखना चाहो, देखो, अपने विद्यार्थियों को दिखाओ। मैं उफ तक नही करूंगी। तुम्हारा चाकू कितना ही तीव्र हो, मुझे उसकी वेदना नहीं होगी। मैं तो जीवन से ही मृत्यु का क्लोरोफार्म लेकर आया हूं। मैं फिर एक बार कहना चाहता हूं, डाक्टर कि जीवन की वेदना को लाश में ढूंढ़ना व्यर्थ है। अगर लाशों को काटते-काटते तुम लाश जैसे नहीं बन गये हो, तो जीवन की मर्म-वेदना को, न्याय की चीख-पुकार को उन जीवितों के संघर्ष में देखो, जो कटन और कचोटन के घावों से लथपथ होकर तुम्हारी टेबुल की ओर रेंग रहे हैं। इस स्थितप्रज्ञ जैसी अवस्था में, जहाँ सुखःदुख, हास्य-रुदन, राग-विराग समरूप हैं, तुम चाकू चलाओगे, ताकि न्याय के लिए सबूत मिल सके। अगर तुम या तुम्हारी सरकार या दूसरे लोग न्याय ही कर सकते हैं, तो मैं स्वयं ही तुम्हें बता रहा हूं कि मैंने ही मेरी लाश की है। मेरे हाथ ने ही चाकू मेरी छाती में भोंक दिया है। क्यों ? यह भी जानना चाहते हो ? उसे सुनने का साहस है तुम में ? वह बहुत भयावना सत्य है, डाक्टर, जिसमें समाज की विभीषिकाएँ उग्र रूप में दिखाई देंगी। विभीषिका जीवन को दबोचे हुए रहती है, इसलिये जीवन मुंह खोलकर बोल नहीं सकता। उसका बयान सिर्फ लाश दे सकती है। जो जीवन में उस सचाई को हासिल करने का अधिकार चाहता है, उसे जिन्दगी से हाथ धोना पड़ता है और लाश बनकर तुम्हारे सामने पड़ना होता है। विभीषिकाओं से कोई अपरिचित नहीं है। सब उनके शिकार हैं, किसी न किसी रूप में। एक जगह तुम स्वयं शिकार बन जाते हो, तो दूसरी जगह किसी दूसरे को तुम अपना शिकार बना लेते हो। इस क्रम में वास्तविकता तुम्हारी आंखों से ओझल हो जाती है। तुम्हें कोई काट रहा है, इस बात की तुम फिक्र नहीं करते, क्योंकि किसी दूसरे को तुम भी काट रहे हो। कटते जाओ और काटते जाओ—यही तो जिन्दगी का क्रम चल रहा है।

'डाक्टर, अर्थ के पिशाच ने धर्म के देवता का रूप सजाकर मुझ पर कितने युगों से कितने प्रहार किये हैं। उनके चिन्ह तुम पोस्टमार्टम में नहीं देख पाओगे। उस पिशाच ने धर्म को घूस देकर मेरे जीवन में कितना हलाहल घोला है, मेरी मानवता की सारी कल्पना, कामनाओं को उजाड़ कर अपनी दानवी विभीषिकाओं से सुखा दिया है यह एक घड़ी की, एक दिन की चोट नहीं है। निरंतर चोटों के प्रहार सह कर यह जिंदगी लाश बन गई है। शरीर की त्वचा पर, माँस पर, या खून में तुम युगों की इस वेदना के अक्षर नहीं पहचान सकते। जिस अर्थ व्यवस्था में आज तुम जी रहे हो, जिन समाजिक विषमताओं को उस व्यवस्था ने पैदा किया है, इसमें न मालूम मेरी जैसी कितनी लाशों का क्रंदन बोल रहा है। तुमने उसको कभी सुना हैं ? तुमने क्या कभी उन घावों को देखा है जो इस व्यवस्था के कारण युगों से जीवन की छाती पर किए गये गये हैं।

'आँखें बन्द मत करो, डाक्टर, मैं कोई विभिषिका नही हूं। मै विभीषिका से सताया हुआ एक रूप हूं। अच्छा तुम अपना काम शुरू करो। इतनी देर में न

मालूम और कितनी लाशें आ चुकी होंगी, जिन्हें भी तुम्हें काटना होगा। काटते जाओ—वैसा ही खून, वैसा ही मांस, वैसी ही हड्डियाँ। इसके अलावा जो कुछ था, वह तो छिन गया है। उसे ही बचाने के लिए संघर्ष किया था, पर वह किसी ने लूट लिया है। जिससे छीन लिया है, उस पर यह तुम्हारा चाकू, न्याय का चाकू, नहीं चलता। मैं सब न्यायालय देख आया हूं। जिसका सब कुछ छिन गया है, उसी की लाश को काट कर न्याय भी करना चाहते हो। तुम काटते जाओ, ताकि तुम और तुम्हारे बच्चे जी सकें।

न्यायाधीश के सामने तुम अपनी जाँच के संबंध में बयान दोगे न? उस समय क्या वह सब भी कह सकोगे, जो मैंने तुमसे कहा है? न्यायाधीश से कहना कि लाश के लिए न्याय का कोई मूल्य नहीं है, न्याय चाहती है जिन्दगी। मनुष्य की जिन्दगी के साथ न्याय करने का विवेक और बल अगर तुम्हारे पास है, तो लाश के पोस्टमार्टम में क्या रखा है? जिन्दगी पर होने वाली चोटों को देखो और उन्हें बन्द करवाओ। मनुष्य को जो विषपान करना पड़ रहा है और बर्बरता के साथ उसका हनन हो रहा है, उसके लिए जो जिम्मेदार है, उनको पकड़ सके, ऐसी पुलिस तुम्हारे पास नहीं है। उनको सजा दी जा सके, ऐसा न्याय अभी नहीं है। आज समाज पर जो अन्याय करते हैं, उनको बचाने की कला का नाम न्याय है। अपना चाकू मुझे दे दो और मैं जिन्दगी का असली पोस्टमार्टम करके तुम्हें दिखाऊँ। जहाँ जिन्दगी के साथ न्याय न होकर लाश पर न्याय का खेल होता है, उस समाज का न्याय हकीकत में अन्याय है।

(तरुण, मार्च १९५२)

लिफाफे और लिफाफे

जो मजमून आप दस पैसे के पोस्टकार्ड के जरिए भेज सकते हैं, उसे ही अगर लिफाफे में भेजना चाहें, तो डाक महसूल पचीस पैसे लगेगा। मूल्य मजमून का नहीं, लिफाफे का होता है। इसलिए कि लिफाफा गोपनीयता का साधन है, पोस्टकार्ड नहीं है। मूल्य का आधार आवरण होता है। जैसा आवरण, वैसा मूल्य।

और, जीवन में भी मूल्यांकन आवरण के अनुसार ही तो होता है, साफ-सीधी बातों का जीवन में कब-कहाँ मूल्य हुआ है? मूल्य बढ़ाने के लिए आवरण की कला चाहिये, यह कला जिसने जितनी हासिल की है, वह उतना ही सफल है। जीवन-मानों के अर्थ में वह उतना ही बढ़ा हुआ है। जीवन एक आवरण है, लिफाफा है,

अगर उसकी कुछ कीमत होनी है, जीवन का मजमून जब लिफाफे के कारण ही अधिक मूल्य का हो जाता है, तो स्वाभाविक है कि आदमी लिफाफा बनता चला जाये।

धर्म, समाज, राजनीति सब के मूल में मानव है और मानव के लिये ये सब हैं। पर जब ये सब लिफाफों में दब जाते हैं—लिफाफे बन जाते हैं तो बात यह नहीं रहती। लिफाफा है जिसमें यह चलते हैं। भेद न धर्म का है, न समाज का, भेद तो लिफाफे का है। यह भेद कुछ को ऊपर, कुछ को नीचे रख कर लिफाफों की दुनिया गढ़ लेता है सारा जीवन नीचे से ऊपर की ओर दौड़ बन जाता है और लिफाफे के हाथ में आ जाती है उसकी लगाम। इस दौड़ में लिफाफा ही रह जाता है, मजमून मिट जाता है। व्यक्तिगत संबंधों से लेकर समाज और राष्ट्र की परिधि तक लिफाफा ही लिफाफा चल रहा है।

जिसका लिफाफा बढ़िया है, वह सफल है। जो अपने विचारों को, भावों को, जितना छिपा सकता है, वह उतना ही सफल है। धर्म-गुरु वह है, जो खुद चाहे जो भी करे और करने को स्वाभाविक माने, पर कहे वह, जिसका करने से कोई ताल्लुक न हो, और कभी, कहीं, किसी युग में जिसे कोई कर न सके। तभी तो उसका महत्व है—ऐसा महत्व, जिससे बढ़ कर कुछ होगा ही नहीं। लेखक आत्माभिव्यक्ति की बात कहता है, पर क्या वह आत्मा की सच्ची अभिव्यक्ति दे सकता है ? उसकी सफलता उसके अनुभवों की वास्तविकता की अभिव्यक्ति में नहीं है, बल्कि अनुभवों की सचाई पर आवरण रख कर ऐसी चीज लिखने में है, जिसका पाठकों द्वारा मूल्य माना जाय और दिया जाये। जो लेखक आवरण की कला नहीं जानता, वह भूखों मरेगा, और कोई उसका नाम तक पूछने नहीं जायगा। व्यापारी की कुशलता का तो सर्वस्व ही आवरण के अधीन है। जो बात को छिपा सकता है, सजा सकता है, बना सकता है, वह व्यापारी है। और आवरण पर ही बैठा है नेता, जो यदि अपने भीतर को बाहर रख दे, तो नेतृत्व ही ढह जाय। टैक्ट और डिप्लोमेसी सफल नेतृत्व के दो मुख्य आधार हैं। ये दोनों आवरण के सिवा और क्या हैं ?

आज सत्य के लिफाफे में झूठ का मजमून चल रहा है। तत्ववेत्ताओं ने कहा कि साध्य और साधन अलग नहीं हो सकते, यानी कि अच्छे साध्य के लिये साधन भी अच्छे होने चाहिये। कहा जो भी गया हो, देखा यह कि उत्तम साध्य के लिये भी अधम साधनों का प्रयोग किया गया। लेकिन आज अधम साध्य के लिये उत्तम साधन का प्रयोग किया जा रहा है। साध्य झूठा है, साधन सच्चा है साधन साध्य को ठग रहा है। धर्म लिफाफे बनकर काम दे रहे हैं। जहाँ जाकर इन लिफाफों की परिधि खत्म हो जाती है, वहाँ क्या होता है, उसे किसी ने देखा नहीं है। देखने की कोशिश की कि नास्तिकता शुरू हुई। और साधनों को जैसे हम लोग देख लेते हैं, साध्य उस तरह दीखता भी तो नहीं। यह परलोक तक छिपा हुआ रह सकता है। परलोक का लिफाफा बहुत बड़ा है। उसमें हर मजमून जगह पा जाता है।

संसार स्वयं एक लिफाफा है। इसने एक ही तरह के मजमून को कितने-रूपों में लिया, दिया और देखा है। एक लिफाफा निकम्मा हुआ कि दूसरा लिफाफा

मिल जाता है। यह फेरा फेरी करने में मजमून मिट जाते हैं और उनके भी लिफाफे बन जाते हैं। मजमून की हालत में जिसकी कद्र नहीं की गई, जिसको छिप कर रहना पड़ा, विरोध और लांछना सहने पड़े, वह लिफाफा बन कर सब का हो गया। मजमून में आग है; तो कोई उसे पकड़ कर हाथ जलाना क्यों चाहेगा? लिफाफे के दर्शन में ऐसा करना 'मूर्खता' है। मजमून को मिट जाने दीजिये। न मिट पाता हो तो जोर लगाकर मिटा दीजिये—घिसकर, रगड़ कर, काट कर, मार कर, चीर कर जैसे भी हो, मिटा दीजिये। और जब बिलकुल मिट जाय, तो उसके रूप को अपना आवरण बनाइये। जीवित को मिटा दीजिये, मिटे हुए को जीवित रखिये। हम तो लिफाफे ही की पूजा करते आये हैं। ईसा एक मजमून लेकर आया, हमने उसे मिटा दिया। और जब-जब वह मिट चुका; तो ईसा को अपना आवरण बनाने के लिये उसकी भक्ति आरम्भ कर दी। ईसा एक लिफाफा बन गया जिस तरह कि बुद्ध और महावीर और दूसरे महान पुरुष बन गये। बुद्ध का लिफाफा महावीर के लिफाफे से टकराया, मजमून दोनों में नदारत। बिना मजमून के लिफाफों की टक्कर होती रही। फिर नये मजमून भी उठे, हमने उनको भी मिटाया और लिफाफा बना दिया।

सबसे चलता लिफाफा गांधी का हुआ, जब उसने मजमून पर सत्याग्रह किया, तो हमने गोली दाग दी। मगर जब उस सत्य की दिशा में उठे हुए कदम का मजमून हमेशा के लिये मिट गया, तो हमने उसे एक खूबसूरत लिफाफा बना लिया जो खूब चला और चल रहा है। खूब बिका और बिक रहा। कल ही एक लिफाफा सामने पड़ा। हाथ के कागज का बना हुआ था, पीठ की ओर "मुख्य मंत्री···प्रदेश' उभरे हुए अक्षरों में छपा था। भीतर भी था हाथ का बना कागज, जिस पर टाइप के अक्षरों में मुख्य मंत्री का मत था कि 'ग्रामोद्योग को प्रधानता देकर चलने वाली अर्थ नीति संभव नहीं है। मिलें और कारखाने बड़े पैमाने पर हमें चलाने ही होंगे।' हाथ के बने कागज के इस लिफाफे को गांधी का प्रतीक कहें या कि गांधी का लिफाफा मात्र! बाहर गांधी, भीतर गांधी का निषेध। इस प्रकार गांधी को खत्म कर गांधी का लिफाफा चल रहा है। इस लिफाफे के जरिये बीड़ी बिकती है, एसेम्बली बिकती है और बिकता है सत्य। हम वह विक्रेता हैं, जो आप कहें, उसे बेच दें। हमें लिफाफा बनाना आता है, बेचना भी आता है। मार्क्स तक यहां आ कर देख लें उसका भी हम लिफाफा बनाकर छोड़ेंगे।

हम लिफाफे हैं, लिफाफों के पुजारी हैं। लिफाफा ही सत्य है, उसी का मूल्य होता है। मजमून-झूठा है, उसका मूल्य नहीं होता। मजमून को पकड़ कर रहो, तो मिट्टी में मिलोगे। और वह मिट्टी भी तुम्हारी न होगी। लिफाफे को पकड़े रहो, एक नहीं तो दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवा या छठवां कोई तो चलेगा।

लिफाफा निरांत है। मजमून जो भी और जितने भी आयें, हम सबका लिफाफा बनाते जायेंगे। लिफाफे की कला ही सबसे ऊंची है, उनका मूल्य ही सबसे ऊपर है, और सब झूठ। इसलिए जीवन की यात्रा है—लिफाफे और लिफाफे।

तारीख और तवारीख

जी, हेयर-कटिंग सैलून से बोल रहा हूं। ऊँची कुर्सी पर, पहने हुए कपड़ों को एक सफेद कपड़े से ढँके हुए, कटर के हाथों में अपना सिर दिये, हाथ पर हाथ धरे बैठा हूं। कटर की कैंची चल रही है—कटे हुए बाल आगे-पीछे, दायें-बायें गिर रहे हैं। उन अपने बालों को, जिनमें अधिक काले, पर कुछ सफेद भी हैं, देखने के छलावा में बँधा हुआ-सा हूं। हाँ, जैसे कची चल रही है, वैसे मन अवश्य दौड़ रहा है—यह करना था, नहीं हुआ; वहाँ जाना था, उससे मिलना था, पर कितने दिन निकल गये। मन के सूत्र कहाँ-कहाँ पहुंच रहे हैं—जुड़ और टूट रहे हैं। तब ही सामने के शीशे पर आँखें गयीं, तो दीखा कैलेण्डर—तारीखें और तस्वीरें! एक नजर तारीख पर, दूसरी तस्वीर पर। मन भी तस्वीरों में उलझा-उलझा तारीखों में दौड़ लगा रहा था। जो पहली नजर में दीखा, वह तो पीछे की दीवाल पर लगे कैलेण्डर का प्रतिबिम्ब था। इसी बीच कटर ने ठोड़ी पकड़ सिर को ऊँचा किया, तो देखा कि सामने भी कैलेण्डर था। और, फिर तो दायें-बायें जिधर उसने घुमाया, उधर ही कैलेण्डर! आगे, पीछे, दायें, बायें कैलेण्डर और कैलेण्डर! एक साथ इतने क्यों? सब में एक-सी ही तारीखें तो हैं। तब तारीखों की इतनी भीड़ क्यों? हाँ, समझ रहा हूं—तस्वीरें सब अलग-अलग हैं जो! मैं भी तारीखें नहीं, तस्वीरें देख रहा हूं।

कटर की कैंची चल रही है—कटे बाल गिर रहे हैं, काले-सफेद। ये कटे बाल कभी उलझे होंगे, उलझ कर सुलझे होंगे। बिना उलझे जीवन क्या? जो उलझा नहीं, वह सुलझने की पीड़ा क्या जाने? और इन कटे बालों की पृष्ठभूमि में मैं तारीखों और तस्वीरों के बीच अपने मन को उलझा-सुलझा रहा हूँ। जीवन तारीखों का क्रम है, पर उसके साथ तस्वीरें न हों, तो वह कितना फीका, कितना अनचाहा हो जाता है! जीवन की निश्चिति तारीखों में है, पर परिचिति परिचित तस्वीरों में हैं। दौड़ है परिचिति के लिये। मेरी नजर कैलेण्डर की तस्वीर पर है—परिचिति पर है। किसी में हर तारीख के साथ एक तस्वीर है, किसी में एक ही तस्वीर को देखते सारा महीना गुजारना पड़ता है, और ऐसा मनहूस कैलेण्डर भी है, जिसमें वर्ष के हर दिन पर एक ही तस्वीर है। किसमें कैसी और कितनी तस्वीरें हैं, उस पर है कैलेण्डर का मूल्य—बनाने वाले और लेने वाले दोनों की दृष्टियों से।

कलायें दोनों हैं कैलेण्डर में—उपयोगी और ललित। मूल्य किसका ज्यादा किसका कम—या दोनों का समान है, यह आदमी पर निर्भर करता है, जिसने उसे लाकर रखा है। तारीखें छूटती नहीं, पर बड़ी भयावनी हैं, जबकि तस्वीरें लुभावनी

हैं। तारीखों में यथार्थ हैं, जिसको पकड़ा जा सकता है—जाना, पहचाना और परखा जा सकता है—तस्वीरों में कल्पना और आदर्श है, जो श्लील-अश्लील की सीमा से परे है। ऐसे कैलेण्डर बहुत कम हैं, जिन पर तारीख बदली पर तस्वीर भी बदल जाय। तारीखें तो दौड़ रही हैं, पर तस्वीर रह जाती है। जीवन तारीखों में दौड़ रहा है, पर वही तस्वीर लिए—महीनों-महीनों। बात तो उठी है कैलेण्डर से, पर जीवन के सवालों में उलझा जा रहा हूँ। तारीखों में उलझन हो, तस्वीरों में है। घर में, दफ्तर में, दूकान में, अदालत में, अस्पताल में लगे हर कैलेण्डर में एक-सी ही तारीख है—आज भी, कल भी, और कल के कल और उसके कल भी। पर तस्वीरें तो सब जगह अलग-अलग हैं क्योंकि सभी कैलेण्डर समान नहीं हैं—न आकार-प्रकार में, न रंगों में, न रेखाओं में। तारीख में सीमा है, चौबीस घण्टों की परिधि उसे बांधे हुए है—न मुहूर्त इधर न मुहूर्त उधर। पर रंगों की गहराई और रेखाओं का विस्तार तो सीमा से परे है। रंगों और रेखाओं की सृष्टि में सीमा-विहीन विस्तार है—तारीखों की सीमाएँ वहां नहीं हैं।

कैलेण्डर का उपयोग तारीख-दर्शाने में है। तब, तस्वीर न रहे, तो भी तारीख में क्या अन्तर होगा ? पर क्या आदमी तारीख और तारीख ही देखता जाय ? तीन सौ पैंसठ दिन गिनने लगे, तो भी दूभर हो जाय। फिर यहां गिनना ही नहीं, गुजारना भी तो है। तस्वीर-विहीन तारीखें कैसे गुजरें ? तवारीख तारीखों को लेकर है, पर तस्वीरें हैं, जो तवारीख बनाती हैं। तस्वीरों को निकाल दीजिये, तारीख सिमट कर फिर तीन सौ पैंसठ खानों में आ जायेगी। तब प्रश्न होता है—यदि यही सत्य है, तो तस्वीर-ही-तस्वीर क्यों न हो, तारीखों के झमेले में पड़ा ही क्यों जाय ? और भी तो तस्वीरें बनती हैं, लगती और सजती हैं। कलाकार भी वही हैं। तब कैलेण्डर की—तारीखों की तस्वीर में ही क्या सिफत है ? तारीख अकेली नहीं रह सकती, तो न रहे; पर तस्वीर क्यों न अकेली रहे ? नहीं, यह भी सम्भव नहीं है। जैसे तारीख को तस्वीर की प्रेरणा है, वैसे ही तस्वीर को तारीख का सहारा है ! बिना तारीख की तस्वीर तवारीख नहीं होगी। तस्वीरें हैं, जो राजप्रासाद में लगी हैं—वे तवारीख नहीं हैं। वे किसी का शौक-शृंगार हो सकती हैं, तवारीख नहीं। तवारीख तो तारीख के साथ बनी तस्वीर ही है।

कटर की कैंची की चाल धीमी पड़ रही है—बाल जो कटकर गिर रहे हैं, छोटे-से-छोटे होते जा रहे हैं। इससे अधिक कटेंगे, तो तस्वीर कट जायगी। मैं भी इन तारीखों और तस्वीरों के बीच जीवन की तवारीख के सफों पर की तस्वीरों पर चलने लगा हूँ। किसी ने तस्वीर बनायी और मैं तथा मेरे-जैसे अनेक उन पर चल रहे हैं—तस्वीर के रंग खो रहे हैं। छोड़िये, हेयर-कटिंग सैलून में लगे कैलेण्डरों की तस्वीरें झांक रही हैं, और एक नया खयाल दौड़ रहा है। तारीख भी क्या गजब की चीज है, उसके सहारे से तस्वीर रख पाते हैं। जो तस्वीरें देख रहा हूँ, अगर ये केवल तस्वीरें हों—तारीखें इनके साथ न हों-अर्थात् ये कैलेण्डर न हों, तो हमारा संकोच, हमारी संस्कृति और सभ्यता इन्हें रखने न देगी। यह तो कृष्ण हैं, जो नदी में नहाती हुई यौवनाओं के वस्त्र छिपाकर वृक्ष की डाल पर बैठे वंशी बजा रहे हैं। उनमें तो शंकर-पार्वती की मुद्रा है—

'जगत:पितरौ'; यहाँ तो वनवास में राम-सीता का सहगमन है; उस चित्र में दुष्यन्त-शकुन्तला की भेंट है; और इसमें राधा-कृष्ण की लीला है। मेरे कानों में शब्द गूंज रहे हैं, जो बाजारों में, क्लबों में, कालेजों में, सिनेमाओं में चलती-फिरती युवतियों के बारे में प्राय: सुनता हूं—यह क्या साड़ी पहनना ? यह कैसा आलिंगन ? यह क्या वाहियात ढंग की कंचुकी ? इन चित्रों में भी तो अश्लीलता झाँकती है, पर तारीखें (यानी इतिहास) जो लगी हैं उनके साथ। प्रेम जो इन कैलेण्डरों की तस्वीरों में हैं—तवारीखी तस्वीरों में—वह तो रसराज हैं; काव्य, जो इन भावों पर लिखा है, वह रस-साहित्य है, रीति साहित्य है ! भ्रष्टता वहाँ है, जहाँ तारीखें नहीं हैं। आप स्वनिरपेक्ष भाव से कैलेण्डर को रखिये—तस्वीरों में रस लीजिए—कोई कुछ कहे, तो तारीख की ओर अँगुली निर्देश कर दीजिये। कैलेण्डरों की छीना-झपटी के पीछे, अमुक-अमुक कैलेण्डरों के लिए आरजू-मिन्नतें करने के पीछे यही तो रहस्य है। इसी का नाम कैलेण्डर-दर्शन है !

इन चित्रों के साथ तारीखें हैं, इतिहास हैं। आप भी इन तारीखों को तस्वीरें बनाते जाइये। जब ये तस्वीरें बन जायें, तारीखों के क्रम से हट जायें, और तारीखें सिर्फ इनके साथ लटकी रहें, तब आँखें गड़ाकर देखिये—दिल पसार कर खेलिये इनसे। जीवन्त तारीखों की जीवन्त तस्वीर बनाने की सजा होती है, पर मरी तारीख की तस्वीर पुजती है। पाप-पुण्य का ही लेखा-जोखा करें, तो जीवन के साथ पाप है, धर्म मृतक के साथ है। जीवन जब जीवनी बन जाता है, तो पाप की तस्वीरें भी पुण्य की हो जाती हैं। देवताओं और ऋषियों ने जो किया, उसकी कथाएँ हैं—रस और अलंकार के उदाहरण के लिए उनके नाम स्तवन हैं। आदम और हव्वा वैसे चाहे उन्मुक्त भाव से रहते रहे पर जब जानना चाहा तो पाप का उदय हुआ। डी० एच० लारेंस ने कहा है :—'उन्होंने जानना चाहा और तभी से पाप का उदय हुआ—करने से नहीं वरन् उसके बारे में जानने से।'

मैं देख रहा हूं पीछे की तारीखें, आगे की तारीखें; और तस्वीरें जो पीछे से झांक रही हैं—और एक दूसरे से प्रतिबिम्बित हो रही हैं। जीवन कैलेण्डर है तारीखों का, तस्वीरों का ! सच क्या है—तारीख या तस्वीर?

हेयर-कटर की कैंची चल रही है, छोटे-बड़े बाल आगे-पीछे गिर रहे हैं—ज्यादा काले, कुछ सफेद। तारीखें दीख रही हैं, तस्वीरें झांक रही हैं।

कैंची चल रही है, कैलेण्डर दीख रहा है, काले सफेद बाल, तारीखें-तस्वीरें।

ज्ञानोदय, जनवरी १९५९

गांधी की कब्र पर खादी के फूल

मैं गांधी की कब्र के सम्मुख खड़ा हूं। श्रद्धा लेकर आया हूं—वही श्रद्धा जो बुद्ध, महावीर, ईसा और पैगम्बर सब के मरने के बाद एक दिन इसी तरह मानव के मन में लगी थी। यह गांधी की कब्र है, इसलिए मैं खादी के फूल लेकर आया हूं। वही खादी जिसको मैंने अपने जीवन के लिये कभी छुआ भी नहीं। मैं खड़ा हूं कि अचानक मुझे एक काली छाया घेर रही है और उसी में से लाल-लाल अक्षरों में चमकते हुए कुछ शब्द दिखाई दिए :

'आज देश में कई चीजें चल रही हैं, उनमें मेरा जरा भी हिस्सा नहीं है : यह बात मुझे जोर-जोर से कहनी चाहिए। मैं कह तो चुका हूं कि यह छिपी हुई बात नहीं है कि जब से कांग्रेस ने हुकूमत सँभाली, तब से वह अहिंसा को तिलांजलि दे चुकी है। साफ बात यह है कि मेरी बात की आज कोई कीमत नहीं रही। मेरी आवाज की कीमत अब अरण्य-रोदन या जंगल में रोने के बराबर हो गई है।'
'हरिजन-सेवक'—२ नवम्बर, १९४७।

इन शब्दों को पढ़ना समाप्त भी नहीं हुआ था कि इन्हीं अक्षरों के पीछे से आवाज आने लगी—"ठीक ही तो मैं जंगल में रो रहा हूं, नदी के किनारे यह अरण्य रोदन ही तो है। जिसने मेरी छाती पर गोली दागी, वह मेरा भक्त नहीं था। तथापि उसने मुझे इच्छा-मृत्यु दी, यह मेरे लिए कम आभार नहीं है। पर मैं क्या कहूं ? तुमने सेना के जुलूस से मेरी शव-यात्रा सजाई। हुकूमत मिलते ही नशे में पागल होकर तुमने मुझे बीते युग का मनुष्य कहना शुरू कर दिया।

मैंने जहर पिया है और अमृत दिया है। भारतीय संस्कृति से, विश्व संस्कृति से और मानव-संस्कृति से सदा मैंने यही सीख ग्रहण की और इसी पर जिया। मैंने आखिर जहर पिया, वह भी राम नाम के साथ अमृत बन कर ही गले के नीचे उतरा। मैंने इतना जहर पी लिया है कि युगों तक जीऊंगा। पर तुम्हें मैंने जो अमृत दिया, उसका तुमने क्या किया ? उसको तुमने फिर जहर बना दिया। काश ! उसे भी मैं पी पाता। लेकिन तुम शायद यह भी नहीं चाहते थे।

तुम्हें जो करना हो, करो। जहां जाना हो, जाओ। जैसे रहना हो, रहो। पर मेरी शांति को यहां आकर भी न छेड़ो। मैं आज तुम्हारी दुनिया में कोई बाधा नहीं हूं। किन्तु मेरी कब्र पर तुम अपने राजप्रासाद खड़े न करो। तुम्हारे राजप्रासादों की नींव बनने के लिए मैंने कब्र नहीं संभाली है। राजप्रासाद ही मुझे भी प्रिय होते तो १२५ वर्ष जीने के अपने संकल्प को बदल देने की आवश्यकता न होती।

हां, एक बात और ! तुम मुझे बिलकुल भूला ही दो न। मेरा नाम ही अपनी जबान पर लाना बन्द कर दो न। मेरी कब्र पर ये दूकानें न सजाओ, ये मेले न लगाओ, तीर्थधाम न खड़े करो। भक्त या पुजारी बनने की तो कल्पना भी न करना। जीते-जी मैंने तुम्हें कम नहीं देखा है। कब्र की आँखों से देखने के लिए बाध्य न करना। कब्र की आंखें खुल जायेगी, तो तुम देख न सकोगे। तुम्हारी दुनिया का तो जहर पीकर मैं आया हूं, उसे देख कर तुम स्वयं चिघाड़ उठोगे। मत देखना, मत पास आना। जीवन की अहिंसा को तुम झेल न सके, मृत्यु की अहिंसा-शक्ति को तो तुम छू तक न सकोगे।

यह क्या मेला है ? अहिंसा और शान्तिवाद की पूजा पढ़वा रहे हो मेरे नाम पर। तुम्हारे राजप्रासाद, तुम्हारी पार्टियां, तुम्हारी तोपें और बन्दूकें इन पूजाओं से लज्जित होंगी, या फिर मेरी कब्र पर ही लज्जा का आसन लगा होगा। इन खादी के फूलों की भेंट से यह लज्जा न मिट सकेगी। मेरा चर्खा ही मुझे लाकर क्यों नहीं दे देते ? ताकि ये खादी के फूल बन ही न सकें। खादी क्या इन फूलों के द्वारा श्रद्धा का स्वांग करने के लिए ही मैंने तुम्हें दी थी ?

"तुम कांप रहे हो उससे, जिसने तुम्हें कभी डराया नहीं। जिसके पास सौ-सौ झूठ बोलकर प्रेम पाते रहे, उससे ? उसकी कब्र से तुम डर रहे हो ? और सुना नहीं जाता ? अधीर हो रहे हो ? पर सुनो, अभी बहुत कुछ कहना बाकी है। तुम्हारे मन्त्रियों और गवर्नरों की आकाशवाणी अक्सर मेरे कानों में पड़ती है।

आकाशवाणी सुनने का तो मैं आदी हो गया हूं न। बार-बार मेरा ही नाम मेरे कानों में आकर टकरा जाता है। इनसे कह दो—यह सब बन्द कर दें। मेरे नाम में अपनी कमियों और बुराइयों को छिपाने की कोशिश न करें। मैं पापों को धो सकता था, छिपा नहीं सकता।

और यह भी सुनते जाना। मेरी और मेरे सिद्धांत की प्रशंसा में लिखे हुए लेखों और कविताओं को भी लाकर इस कब्र में गाड़ दो। मेरी वस्तु मुझे ही अर्पण कर दो। मैं उन्हें रखूँगा, तुम उनको भी रख न सकोगे। कहीं तुम्हारे शब्द तुम्हें काटने को दौड़ने न लगें। मैं तुम्हें कष्ट नहीं होने देना चाहता। यह सब मुझे दे दो।

मेरे नाम पर उपदेश देने और शास्त्र बनाने का धंधा न करना, घमण्ड न करना। शास्त्रों के बोझ से दुनिया पहले ही लदी हुई है, और बोझा न बढ़ाओ। मेरा सत्य अब मेरी कब्र ही बतायेगी। तुम्हारे जिन्दा उपदेश से इस कब्र का उपदेश बेहतर होगा। तलवारों और बन्दूकों के पहरे में की हुई कान्फरेंस एवं गरीबों के खून से कमाए हुए पैसों का आतिथ्य-सत्कार पाने वाले 'अहिंसा के नेता' लाख-लाख बार मेरा नाम लेकर भी मेरा संदेश नहीं दे सकेंगे।

तुम मेरे लेखों का संग्रह कर रहे हो, स्मृतियों के संग्रह की विराट योजना बना रहे हो, यह सब क्या है ? युद्ध में सेठों ने बहुत पैसा कमाया। उसी के एक हिस्से से मेरे स्मारक में इकट्ठी की हुई निधि से तुम और सोच भी क्या सकते हो ? तुम्हें शव-पूजा की आदत जो पड़ गई है। इसे छोड़ने के लिये मैंने तुम्हें लगातार कहा, पर क्या हुआ ? तुम तो आज मेरे शव को भी उसी तरह पूज रहे हो।

मैंने जन्म भर प्रगति के लिये संघर्ष किया और तुम आज मेरे ही नाम पर प्रगति के विरुद्ध दलीलें खड़ी कर रहे। जिन्होंने मुझे गालियां दीं, मेरी बातों का विरोध किया, वे भी आज मेरे सिद्धांत की दुहाई दे रहे हैं। मुझे गालियां दी गईं राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर के नाम पर और आज हजारों गालियां दे रहे हैं मेरे नाम पर। शव निर्जीव होता है, उसे चाहे जैसे उलट-पुलट करो। घोर से घोर प्रतिक्रियावादी धर्माचार्य मेरा नाम लेते हैं, पर साथ ही मेरे पथ पर चलने वाले लोगों का विरोध भी करते हैं। कैसी यातना है कि प्रतिक्रियावादियों के मुंह में राम राज्य और मेरा नाम....."

इतना सुनते-सुनते जोर से एक गड़गड़ाहट हुई और सामने से कुछ धुंआ सा उठता दिखाई दिया। उसी में से देखा—कब्र पर एक प्रश्न-सूचक आकार का सा चिन्ह बनता जा रहा है। जो आवाज सुन रहा था, वह बन्द हो गई। जैसे बाकी का सब कुछ इस प्रश्न-चिन्ह के द्वारा कह दिया गया हो।

गाँधी जी का बलिदान हमारे देश पर, कांग्रेस पर, हुकूमत पर, विश्व के इतिहास पर और मानव जाति पर जो प्रश्न चिन्ह बना गया, वह अभी तक मिट नहीं सका है। क्या ये खादी के फूल इतिहास के इस चिन्ह को ढक सकेंगे? आज गाँधीवादी गवर्नर हैं, मंत्री हैं, सेठ हैं, धर्मोपदेशक हैं पर इस प्रश्न-चिन्ह का उत्तर किसके पास है? केवल यह कब्र ही बता सकती है।

(नया समाज, अक्टूबर १९४९)

परिवार नियोजन की मां मारगरेट सेंगर

समाचार पत्रों में परिवार नियोजन की माता मारगरेट सेंगर का छः सितम्वर को वयासी वर्ष की आयु में निधन का समाचार पढ़ते ही मेरे सामने परिवार नियोजन के विश्व इतिहास के पन्ने पर पन्ने खुलने लगे और उनमें सर्वत्र इस महान महिला का तेजस्वी चेहरा उभर-उभर कर चमकता-दमकता दीखने लगा। परिवार नियोजन का जो आन्दोलन आज दुनियां के हर देश में, हर दम्पति के जीवन में विद्यमान है उसको इस स्थिति में पहुंचाने में मारगरेट सेंगर ने विगत पचास पचपन वर्षों में कितना संघर्ष किया, कितना विरोध और कष्ट सहा, और इन सब के वावजूद कितने अदम्य उत्साह से कितना निर्भीक होकर कार्य किया, यह सब याद आने लगा।

गरीबी और प्रसव-वेदना

अन्तर्राष्ट्रीय परिवार नियोजन सम्मेलन के छठवें अधिवेशन के अवसर पर सोलह फरवरी सन् १९५९ को जब मैं नई दिल्ली में अशोक होटल में उनसे एक भेंट ले रहा था तो उन्होंने कहा था जिन परिस्थितियों में आज से सैंतालीस वर्ष पूर्व जन्म नियन्त्रण (जिसके लिए हमने परिवार नियोजन शब्द को अपना लिया है) का विचार मेरे मन में आया वे परिस्थितियां दुनियां के अनेक हिस्सों में आज भी लगभग उतनी ही दुखद दिखाई पड़ती हैं और उनको देख देखकर उत्पन्न होने वाला दर्द मुझे बुढ़ापे में भी इस आन्दोलन के साथ सक्रिय रूप में जोड़े हुए हैं। वह ट्रक ड्राइवर की पत्नी श्रीमती सेक्स इन लम्वे वर्षों में मेरे दिमाग के सामने से कभी हटी ही नहीं। यह सन् १९१२ की वात है अव मैंने नर्स का पेशा शुरू ही किया था। श्रीमती सेक्स उस समय करीव अट्ठाइस वर्ष की होंगी। पति की आमदनी विल्कुल सीमित थी और वच्चों की संख्या असीमित होती चली जा रही थी। पहला पांच वर्ष का, दूसरा तीन वर्ष का, तीसरा एक वर्ष का और चौथा पेट में। जिस डाक्टर के साथ मैं वहां गई थी, उसने किसी तरह से श्रीमती सेक्स को गरीवी और प्रसव-वेदना की दोहरी चोट से आई मौत के मुंह से बचा लिया। पर औरत की आँखों में अंधेरा था, पति के चेहरे पर भयानक उदासी थी और वच्चे माता-पिता के होते हुए भी मासूम से लगते थे। डाक्टर शायद रोज-रोज यह दृश्य देखने का आदी था। उसने अपना वैग उठाया और चलने को हुआ पर मैं वहां से हट नहीं सकी। उस औरत की वेदना मेरी अपनी

वेदना हो गयी जब उसने कहा—सिस्टर अबकी बार तो बच गई पर अगला प्रसव तो मुझे ले ही बैठेगा। क्या कोई उपाय नहीं कि मैं इससे बच पाऊं? डाक्टर ने चलते-चलते हँस कर कह दिया—जैक से कहो कि संयम का पालन करें। पर औरत ने औरत की ओर देखकर कहा—डाक्टर नहीं समझेगा। वह खुद भी तो मर्द है। पर सिस्टर, तुम भी क्या मेरी व्यथा को नहीं समझोगी और कोई उपाय नहीं बताओगी? उपाय? इसका उपाय? नहीं, मैं नहीं जानती। पर हां, उपाय निकलेगा जरूर और मैं जरूर उसे ढूंढूंगी और बताऊंगी। पता नहीं किस प्रेरणा ने उस मार्मिक क्षण में मुझसे यह संकल्प करा लिया जो आज सैंतालीस वर्षों से मेरे जीवन का ध्रुवतारा बना हुआ है। आज सारे संसार में यह प्रश्न गूंज रहा है और उपाय, इसका उपाय, हर कोने से मुझे सुनाई पड़ रहा है और आज मैं वेदना के आंसुओं की जगह आत्मसंतोष के आंसुओं से चारों ओर उसी उपाय की क्रांति देख रही हूं। इन उद्गारों की अभिव्यक्ति में मानवीय संवेदनशीलता की मर्मानुभूति थी, दीर्घकालीन संघर्ष और विद्रोह की धधकती हुई आग थी और थी भविष्य के अन्तर्पट को चीरती हुई संकल्प की तेजस्वितापूर्ण दृष्टि।

उन्होंने कहना जारी रखा पर अभी बहुत लम्बा रास्ता बाकी है, जिसकी तरफ ही मेरा सबसे अधिक ध्यान है। जिस दिन मैंने यह काम शुरू किया था, उसी दिन से मेरा यह विश्वास था कि दुनियां कि मातृ जाति अनिच्छित गर्भधारण की वेदना से एक दिन मुक्त होगी ही। यूरोप और अमेरिका की नारी जाति में बहुत दूर तक यह संदेश पहुंच चुका है, पर एशिया के देशों में नारी जाति की मुक्ति के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। भारत आवश्य इस दिशा में बहुत कुछ करेगा।

मातृ जाति के पीड़न का प्रश्न

मैंने कहा, आज हिंदुस्तान में उत्पादन की कमी है इसलिए उसे अपनी आबादी घटाने की आवश्यकता है और जन्म-नियंत्रण के कार्यक्रम को वह अपनी योजना में स्थान दे रहा है। परन्तु आगे चलकर जब हमारी उत्पादन वृद्धि की कृषि और उद्योग की योजनाएं सफल हो जाएंगी और देश का उत्पादन बढ़ने लगेगा, तब क्या जन्म-नियंत्रण ···· वाक्य पूरा होने के पहले ही श्रीमती सैंगर ने तमक कर कहा, मैं समझ गई आप क्या कहना चाहते हैं। लोग अक्सर ऐसा ही कहते हैं, हिन्दुस्तान में ही नहीं और जगहों पर भी। जहां मातृ जाति के पीड़न का सवाल है, उसे सर्वथा गौण करके आप जनसंख्या को ही प्रधानता देने लग जाते हैं। मैंने कभी इस प्रश्न पर शासक या राजनेता के रूप में विचार नहीं किया। मेरे सामने तो हमेशा वे माताएं हैं, जो एक के बाद एक पांच, सात, दस, बारह संतानों को धारण करती हैं और बिना इच्छा के लगातार गर्भ धारण द्वारा अपने जीवन की बलि देती रहती हैं। मेरे सामने तो उन लाखों करोड़ों बच्चों का सवाल है, जिनको कभी माता का वात्सल्य और पिता का प्यार नहीं मिलता, शिक्षा प्राप्त करने और शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के साधन नहीं मिलते। इस प्रश्न को राजनेताओं की अध्ययन शालाओं से बाहर रखकर स्त्री के जीवन की आंखों से देखिए, तो आपको इसकी असलियत का पता चलेगा।

इन शब्दों के साथ मैंने श्रीमती मारगरेट सेंगर की आंखों में जिस वेदना की झलक देखी, उसका वर्णन नहीं कर सकता। उनका हृदय इतना व्यथित हो रहा था कि मैंने बात बदल कर पूछा—गांधी जी से सन् १९३५ में जब आप मिली थीं, उस वक्त के कुछ संस्मरण बताइए। दुनिया के उस महान पुरुष से मिलने का सौभाग्य मुझे मिला था, यह मेरे जीवन की महान घटना बन गई। उस भेंट की बात जब मैं याद करती हूं तो आज भी अपने भाग्य पर गर्व करने लगती हूं। यह ठीक है कि जन्म-नियंत्रण के विषय पर न मैं गांधी जी का मत बदल सकी और न वे ही मुझे निरुत्तर कर सके, परंतु उनके प्रति मेरी श्रद्धा में न उस वक्त कोई कमी आई और न आज ही कमी है...

मैंने पूछा उस वक्त से आज आपको हिन्दुस्तान में फर्क मालूम पड़ता है?

बहुत बड़ा। जो कुछ फर्क हुआ है वह होना ही था। बुद्धि के विकास के साथ नारी में नई शक्ति विकसित हुई है। विज्ञान ने मार्ग बताया है कि वह अपने जीवन को दूसरे की इच्छा का खिलवाड़ नहीं बनने देगी। भारतीय नारी भी आज जागरूक है। वह अपने शरीर को धर्मशास्त्र और राजनीति के नाम पर किसी दूसरे के लिए मशीन बनकर नहीं रहने देगी।

कम्युनिस्टों द्वारा विरोध

मैंने पूछा—कम्युनिस्ट देशों में गर्भ-निरोध के आंदोलन को प्रश्रय क्यों नहीं दिया गया? और कम्युनिस्ट विचारधारा के लोग इसे बुर्जुआ मनोवृत्ति की बात क्यों बताते हैं? इस पर आपने कभी विचार किया है?

अभी मैंने आपसे कहा न कि जिन देशों में स्वेच्छाचारी राजनेता या राजनीतिक दल का शासन हैं, चाहे वह कम्युनिस्ट हो, और चाहे फासिस्ट हो, वहां किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता नहीं रहने दी जाती। सब कुछ राज्य की नीति से चलता है। सन् १९३५ में जब मैं रूस की जन स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं को निकट से देखने के उद्देश्य से वहां गई थी, तो मैंने देखा कि कितनी ही स्त्रियों को इंजेक्शन द्वारा बांझ बनाया गया था और गर्भपात भी कानून द्वारा मान्य था। लेकिन जन्म-नियंत्रण के साधनों पर सरकार की स्वीकृति नहीं थी, जिस कारण मुझे बताया गया कि गर्भपात पर सरकार का नियंत्रण रखा जा सकता है, पर गर्भ-निरोध के साधन मुहैया हो जाने पर स्त्रियों के गर्भ धारण पर सरकार का नियंत्रण नहीं रह सकता। यह उत्तर शायद आज भी कम्युनिस्ट लोग देते हों। इस प्रश्न पर राजनीतिक मतवाद हो तो हो, परंतु जहाँ तक गर्भधारण करने और न करने के बारे में नारी के आत्माधिकार का प्रश्न है, यह उत्तर विवेकपूर्ण नहीं मालूम पड़ता। मुझे बहुत आश्चर्य और दुःख होता है कि जो लोग स्त्री-पुरुष के समानाधिकार और उनके स्वास्थ्य एवं व्यक्तित्व के विकास की बड़ी-बड़ी डींग भरते हैं, वे ही नारी के उस अधिकार पर आपत्ति करते हैं, जिसके साथ उनके जीवन का मूल प्रश्न संबद्ध है। क्या सचमुच आधुनिक युग में नारी जीवन की यह एक बड़ी कदर्थना नहीं है।

चीन के बारे में मेरे कुछ प्रश्न पूछने से पहले उन्होंने खुद ही कहा, सन् १९३९ में मुझे चीन जाने का निमंत्रण मिला था, पर शंघाई तक ही जाकर मुझे

लौट आना पड़ा, क्योंकि युद्ध का बिगुल बज चुका था। वहां आज क्या हालत है, मैं नहीं बता सकती। लेकिन जैसा कि मैं कह चुकी हूं, कोई भी सभ्य जाति या देश नारी के प्रजनन संबंधी अधिकार पर कुठाराघात करके और नितान्त व्यक्तिगत प्रश्न को भी राजनीति के धुरे के साथ बांधे रखकर वास्तविक अर्थों में प्रगति नहीं कर सकता।

परिवार नियोजन के विश्व आंदोलन के वर्तमान और भविष्य के संबंध में आप किस रूप में सोच रही हैं?

विश्व आंदोलन

अनियंत्रित गति से गर्भ धारण द्वारा होने वाले कष्टों की कहानी सारे संसार की नारियों की समान सी हैं, इसलिए यह आन्दोलन सारे विश्व का है। और, मैं शुरू से ही इस रूप में इसके बारे में सोचती रही हूं। इससे पहले मैं दो बार यूरोप और एशिया के कई देशों का भ्रमण कर चुकी हूं और अब तीसरी बार जापान होती हुई यहां आई हूं। युद्ध के बाद जापान में इस दिशा में काफी अच्छा काम हुआ है, लेकिन वास्तव में एशिया में हिन्दुस्तान की ओर आंखें लगी हुई हैं। यहां कि सरकार ने पुनर्निर्माण की पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन के कार्यक्रम को स्थान देकर संसार के अन्य देशों के सामने एक उदाहरण रखा है। यह सर्वप्रथम देश है जिसने शासन नीति निर्धारण में इस विषय को स्थान दिया है। पश्चिमी देशों में प्रचलित जीवन स्तर के मापदंड से देखें, तो हिन्दुस्तान और एशिया के अन्य देशों में जनता बहुत गरीब और अभावग्रस्त है। इसलिए जनता की हालत सुधारने के लिए, देश की समृद्धि विकसित करने के साथ-साथ अनियंत्रित जन्म वृद्धि पर रोकथाम लगाने का काम भी बहुत जरूरी है। जब यहां की स्त्रियों को भूखे-नंगे फिरते देखती हूं और साथ ही एक के बाद एक संतान को जन्म देते देखती हूं तो मुझे लगता है कि इन देशों में अभी बहुत काम करना बाकी है। अमरीका और इंगलैण्ड में तो जितना काम हो सकता था उतना लगभग हो गया। मैं कह सकती हूं कि वहां सौ में नब्बे औरतें जानती हैं कि ऐसे साधन उपलब्ध हैं, जिनके द्वारा गर्भधारण को रोका जा सकता है। एशिया के देशों की स्त्रियों में अशिक्षा और अज्ञान बहुत हैं जिनकी वजह से वहम और रूढ़ाग्रह कायम है। यहां प्रचार और आंदोलन की काफी जरूरत है। और साथ ही उससे बड़ी जरूरत है गर्भ-निरोध के ऐसे उपाय ढूंढने की, जो बहुत सस्ते हों, सुलभ हों और कारगर हों। इस प्रकार का उपाय ढूंढने के लिए विभिन्न देशों में अनुसंधान कार्य हो रहा है। जो वैज्ञानिक इस प्रकार का उपाय ढूंढ सकेगा, उसकी सबसे बड़ी मानव सेवा समझी जाएगी।

समय काफी हो चला था और मुझे इससे अधिक पूछना भी नहीं था इसलिए मैंने एक बार फिर श्रीमती सेंगर को श्रद्धा निवेदन कर छुट्टी ली। लौटा तो यह छाप मेरे हृदय पर रही कि इस महान नारी के हृदय में उत्पन्न होकर जिस वेदना ने चालीस वर्ष पहले नारी जाति के कष्टों को दूर करने के संकल्प का रूप लिया था, वह आज भी सजीव है, सजग है और प्रेरणादायिनी है, क्योंकि श्रीमती सेंगर के ही शब्दों में करोड़ों-करोड़ों नारियां सारी तथाकथित सामाजिक और राजनीतिक

उन्नति के वावजूद आज भी लगातार अनिच्छित गर्भधारण की पीड़ा सहन करने को वाध्य की जा रही हैं। इस पीड़ा से नारी को मुक्ति प्रदान करना ही इस आंदोलन का उद्देश्य है, और वुद्धि के विकास और विज्ञान की सहायता से यह स्वप्न जो वहुत अंशों में सफल हो चुका है, एक दिन पूर्ण साकार रूप लेगा। इसकी पूर्णता ही सच्चे अर्थों में मारगरेट सेंगर के प्रति हमारी श्रद्धांजलि है।

कमलादेवी चट्टोपाध्याय : जहाँ नाटक हैं वहां वे हैं

कमला देवी जी के साथ मेरा पिछले २५ वर्षों से बहुत निकट का सम्बन्ध है। नाटक से जब मेरा सम्वन्ध हुआ, तभी से उनके साथ सम्वन्ध बना। जब हमने कलकत्ता में भारतीय नाट्य संघ की शाखा के रूप में कलकत्ता नाट्य संघ (थियेटर सेन्टर, कलकत्ता) की स्थापना की तभी से भारतीय नाट्य संघ की अध्यक्षा के रूप में वे हमें प्रेरणा और प्रोत्साहन देती रहीं। जव-जब हमने उनको निमंत्रित किया, तव-तब वे हमेशा आयीं। हमारे नाट्य-महोत्सवों को देखा और हमें मार्ग-दर्शन दिया। वास्तव में, राष्ट्रीय नाट्य आन्दोलन को उनसे बहुत बड़ा बल मिला। कभी-कभी मुझे बड़ा आश्चर्य होता था कि जिस महिला ने देश में महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वाधीनता-संग्राम में वर्षों तक निरन्तर सक्रिय भाग लेकर राष्ट्र के नेतृत्व की द्वितीय पक्ति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया, उन्होंने नाट्य-आन्दोलन के साथ अपने को क्यों और कैसे जोड़ा? यह बात वर्षों तक मैं समझ ही नहीं सका।

विगत फरवरी में, जब वे 'अनामिका कला संगम' द्वारा आयोजित छऊ नृत्य महोत्सव का उद्घाटन करने के लिये कलकत्ता आईं तो उन्होंने अपने अत्यन्त सारगर्भित और प्रभावपूर्ण भाषण में जो कुछ कहा, उससे इस बात की झलक मिली कि नाटक, नृत्य, संगीत और अन्यान्य ललित कलाओं में उनकी अनेक वर्षों से गहरी रुचि और प्रवृत्ति रही है। यदि ऐसा नहीं होता तो वे इतना ज्ञानपूर्ण और अनुभवसिद्ध भाषण नहीं दे पातीं। उस भाषण को सुनने के बाद इस विषय में उनकी जीवन-यात्रा को जानने और समझने की तीव्रता मेरे मन में और बढ़ गई। इसलिये जब अनामिका द्वारा प्रकाशित मासिक 'नाट्यवार्ता' के संपादक श्री विमल लाठ ने चाहा कि मैं श्री कमला देवी जी से नाटक के विषय में एक भेंट लूं, तो मैं तुरन्त राजी हो गया। दूसरा ही दिन, जब कमला देवी जी मेरे घर पर भोजन के लिये आईं तो मैंने उनसे इस भेंट के लिये कहा। उन्होंने कहा—'तुम मुझे २५ वर्षों से भी अधिक से जानते हो। क्या बाकी रहा है जो तुम मुझसे पूछना चाहते हो?'

'मैंने अब तक यही जान और मान रखा था कि राष्ट्र के बहुमुखी विकास के एक आवश्यक अंग से रूप में आपने नाट्य-आन्दोलन को दिशा और गति देने में महत्वपूर्ण

भूमिका प्रदान की है, परन्तु कल आपने जो भाषण दिया, उससे लगा कि नाटक, अभिनय एवं संगीत आपके जीवन में रम रहा है।'

उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—'कोई भी आन्दोलन विचार एवं आधार के बाद ही आता है।'

मैंने पूछा—'आप नाटक के साथ कब जुड़ीं, क्यों जुड़ीं और किस रूप में जुड़ीं ?

'आज से लगभग ५३-५४ वर्षों पहले, जब मैं कालेज की छात्रा थी, तो नाट्याभिनय में भाग लिया करती थी, और जैसा लोग कहते थे, अच्छा अभिनय कर लेती थी। अभिनय भी करती थी और गाती भी थी। बाद में, जब श्री हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के साथ मेरा विवाह हुआ, तो नाटक में मेरी रुचि और प्रवृत्ति और बढ़ गई। मेरे पति को भी इस क्षेत्र में काफी रुचि और गति थी। वे नाटक लिखते भी थे। विवाह के बाद जब हम दोनों विलायत चले गये, और मैं वहां पढ़ने भी लगी, तो वहां हमलोग नाट्याभिनय करते थे। वहां हमने एक नाट्य-दल का भी गठन किया था।'

'जिस समय की आप बात कर रही हैं, उस समय तो समाज बहुत पिछड़ा हुआ था और भले घरों की लड़कियों के अभिनय आदि में भाग लेने पर परिवार और समाज के लोग अत्यन्त विरोध किया करते थे।' 'तुमने बिलकुल ठीक कहा। मुझे स्वयं उस समय घर और समाज द्वारा किया गया काफी विरोध झेलना पड़ा था। जिस समय मैंने 'मीरा बाई' नामक हिन्दी गीति-नाटिका में मीरा बाई की भूमिका में अभिनय करना स्वीकार किया, तो सारे घर और समाज में तहलका मच गया, क्योंकि मीरा बाई के पति की भूमिका में एक पर-पुरुष अभिनय करने वाला था। जो हो, मैंने दृढ़तापूर्वक सारे विरोध का सामना किया और अन्त में मैंने अभिनय किया ही। और उसमें सफलता प्राप्त की। उसके बाद तो नाटक में मेरी रुचि और अभिनय के प्रति मेरा आग्रह बढ़ता ही चला गया, जब कभी अवसर मिला, मैंने अपने पति के साथ या वैसे भी नाटकों में भाग लिया। जब हम दोनों विलायत से लौट कर आये, तो हमने अंग्रेजी में एक नाटक किया, जिसका नाम था—'रिटर्न फ्राम इंगलैंड'। एक और बात यहां याद आ रही है कि भारत लौटने से पहले हमने लन्दन में ही यह संकल्प किया था कि स्वदेश लौटने पर हम नाट्य-आन्दोलन की शुरुआत करेंगे। इस प्रकार से नाट्य-आन्दोलन का बीज-वपन उसी समय हो गया था।'

'फिर यह आन्दोलन कैसे बना और बढ़ा ?'

'बाद में मैं समाज-सुधार के आन्दोलन में जुट गई। मेरा मुख्य मंच था अखिल भारतीय महिला सम्मेलन। यहां भी नाटक का मैंने काफी उपयोग किया। रुचि और उद्देश्य दोनों इसमें मिल गये। नाटक के प्रभाव को मैंने सामाजिक सुधारों के आन्दोलन में बहुत शक्तिशाली और प्रभावकारी माध्यम पाया। मेरे भाषणों से ज्यादा मेरे नाट्याभिनय कारगर सिद्ध हुए। सम्मेलन के अधिवेशन जहां-जहां होते, वहां-वहां मैं नाटक का भी आयोजन करती। इस प्रयोग में से नाटक का विकास हुआ और लोगों में सामाजिक बन्धनों के विरुद्ध विचारों का प्रचार-प्रसार भी हुआ।

मेरी यह मान्यता आज भी दृढ़तापूर्वक बनी हुई है कि किसी भी वैचारिक आन्दोलन में नाटक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर सकता है, अर्थात् वह केवल मनोरंजन ही नहीं प्रदान करता, बल्कि विचारों का परिवर्तन और विकास भी करता है। देश और विदेशों में प्रायः यही हुआ है। सामाजिक उद्देश्यों को लेकर नाटक लिखने और करने की प्रचेष्टा मुख्य रही है।'

'इतने मनोयोग और दृढ़ता के साथ हुई शुरुआत ने आपको जो प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया, उसको बाद में आपने किस रूप में बढ़ाया ?'

"उसके बाद तो ऐसा हुआ कि वह नाटक को एक प्रकार से खा ही गया। मैं गांधी जी के प्रभाव में आई और स्वतन्त्रता-संग्राम में पूरी तरह से उतर गई। फिर तो बस, स्वतंत्रता के लिये संघर्ष और संघर्ष। एक पैर घर में और दूसरा पैर जेल में। न रह गया साहित्य और न रह गया नाटक। सन् १९३०-१९३१ की बात कह रही हूं। गांधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन प्रबल शिखर पर था। भारत के हर नर-नारी के सामने एक ही उद्देश्य था। देश को स्वाधीन करना, मैंने स्वराज्य-प्राप्ति तक स्वाधीनता-आन्दोलन में ही अपने को समर्पित किये रखा। बीच-बीच में, गांधी जी से यह सुना करती थी कि स्वाधीनता पा लेना ही सब कुछ नहीं है, स्वाधीनता अर्जन के बाद, हमें देश का सर्वतोमुखी निर्माण करने के लिये जुटना होगा। मुझे तब नाटक की बात याद आती थी और सन् १९४५ में ही मैंने बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय रंगशाला की स्थापना की। शायद मैंने आपको नहीं बताया कि राजनीति में सक्रिय रूप से प्रवेश करने से पहले सन् १९३० में ही मैंने राष्ट्रीय नाट्यान्दोलन की ओर (टुवर्डस ए नेशनल थियेटर) नामक पुस्तिका लिखी थी जो अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की ओर से प्रकाशित की गई थी। भारतीय राष्ट्रीय रंगशाला, जिसका मैंने अभी जिक्र किया, का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय नाट्य-आन्दोलन की दिशा में बढ़ना ही था। तब तक मैं राजनीति से लगभग अलग हो चुकी थी और अपना पूरा समय और शक्ति नाट्यान्दोलन की ओर लगाना शुरू कर दिया था। देश के विभिन्न प्रदेशों के नाट्य-कारों और अभिनेताओं के साथ मेरा संपर्क बढ़ने लगा और सब के सहयोग से मैंने सन् १९४५ में दिल्ली में भारतीय नाट्य-संघ की स्थापना की और केन्द्रीय शासन द्वारा स्थापित संगीत नाटक अकादमी, जिसका मैं उपाध्यक्ष थी, को मैंने निरन्तर प्रयत्न करके इस बात के लिये राजी करवाया कि उसके द्वारा राष्ट्रीय नाट्य महाविद्यालय की स्थापना हो। मुझे दोनों ही कार्यों में सफलता मिली। हमारे इन प्रयत्नों की ओर अन्य देशों के नाट्यान्दोलन के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं की दृष्टि भी आकर्षित हुई जिससे हमें अपने राष्ट्रीय आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जोड़ने का सुअवसर मिला। शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत गठित अन्तर्राष्ट्रीय नाटक संस्थान के साथ भारतीय नाट्य संघ का संयोजन हुआ। अनेक अवसरों पर मैं निकटवर्ती और सुदूर विदेशों में गई तथा नाटक के क्षेत्र में भारतीय कला बोध का मैंने प्रतिनिधित्व किया। इस प्रकार से विगत तीस वर्षों से मैं नाट्यान्दोलन के साथ जुड़ी हुई हूं। इसके फलस्वरूप हमें नाटक के क्षेत्र में जो बहुविधि सफलता मिली है, उससे मुझे बड़ा संतोष है और बड़ी प्रसन्नता भी। मैं आज भी मानती हूं कि

नाटक का स्वस्थ और गतिशील निर्माण मानव-जीवन का स्वस्थ और गतिशील विकास है। यद्यपि हमारा आन्दोलन अद्यावधि सम्पूर्णतः उन क्षितिजों की ओर नहीं पहुंचा है, जहां पहुँचने का हमारा संकल्प है और जहां पहुंचने के लिये हम संघर्ष कर रहे हैं, परन्तु जितना और जो कुछ हम कर सके हैं, वह हमारे लिये काफी संतोषजनक है।'

'क्या इस समय नाटक ही आपका विशेष और प्रमुख क्षेत्र है ?'

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कमला देवी जी काफी गंभीर होकर बोलीं—'बहुत वर्षों से अभिनय तो नहीं किया, क्योंकि अभिनय की उम्र नहीं रही, पर नाटक देखने की, उसके बारे में विचार करने की, उसको गति और नये आयाम देने की उत्कण्ठा तो बनी ही रहती है। जहां कहीं और जब कभी नाट्याभिनय देखने का अवसर मिलता है नये और पुराने नाट्यकारों और अभिनेताओं से मिलने का मौका मिलता है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। उनकी यथासाध्य सहायता करने की ललक बराबर मन में रहती है। अब मैं राजनीति से बिलकुल परे हूँ। सामाजिक आन्दोलनों में भी बहुत नहीं हूँ। अब तो दो ही क्षेत्र हैं जिनमें मैं हूँ, और रहना चाहती हूँ। एक, भारत की हस्तकलाएं और दो, नाटक, नृत्य और संगीत। इन दोनों ही क्षेत्रों में काम करके मैंने बड़ा आत्मसन्तोष पाया है, मैं अपने को भाग्यशाली मानती हूँ।'

मैंने कहा—'राष्ट्रीय नाट्य महाविद्यालय के आचार्य श्री अलकाजी ने एक बार कहीं कहा था कि नाटक और दूसरी कलाओं के प्रति आपका रुझान इतना तीव्र है कि किसी भी प्रकार की असुविधा और कष्ट की परवाह न कर मीलों की यात्रा करके भी आप कलाकारों और कलाकृतियों के निकट पहुंचने को उद्यत रहती हैं। अपना स्वयं का अनुभव बताते हुए, उदाहरण के लिये, अलकाजी ने बताया था कि बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय रंगशाला में हुए उनके एक नाटक को देखने के लिये आप उम्र के साथ शिथिल होते हुए स्वास्थ्य के बावजूद छः सीढ़ियां चढ़कर भी गईं। क्या यह स्थिति आज भी बनी हुई है ?'

उन्होंने बड़ी विभोरता के साथ कहा—'मन प्राण से है, खूब है, परन्तु शरीर से तो वैसा हो सकना संभव नहीं रहा। क्या हुआ जहां मन है वहां सभी है। मेरा मन आज भी नाटक में है और नाटक के लिये है—क्योंकि नाटक मानव-नियति का निर्माता है। आज भी नाटक जहां है, मेरा मन वहां है, मैं वहां हूँ।'

यह सुनते हुए मुझे अद्भुत प्रेरणा मिलती थी। मैंने कहा—'कमला देवी जी, मैंने आपसे बहुत कुछ पूछा, आपने बहुत कुछ बताया। जो भी हो मुझे आत्मसंतोष मिला, बहुत कुछ जानने को मिला, जो मैं पहले नहीं जानता था। पर आपको थकाया बहुत। मुझे इतना मानसिक भोजन मिलता रहा, कि मैं यह भूल ही गया कि परोसा हुआ भोजन हमारी प्रतीक्षा ही करता रहा। बस, एक अन्तिम प्रश्न और है वह यह है—रंगकर्मियों और उनकी संस्थाओं को आपका सन्देश क्या है ?'

उनका उत्तर था—'सन्देश शब्दों में नहीं उतरता। जीवन ही सन्देश होता है। मैंने थोड़ा-बहुत जो कुछ किया है, उनसे यदि प्रेरणा पाने के लिये कुछ है तो वह है ही। हां, एक बात जरूर कहना चाहूंगी कि हमारे नाटक को भारत की लोक परम्पराओं के निकट रहना और आना चाहिए, न कि उनसे दूर। नाटक द्वारा हम देश के जन

मानस की जो तुष्टि, तृप्ति और जीवन-मूल्य देना चाहते हैं, वह उनके जीवन की परम्पराओं के निकट रह कर ही दे सकते हैं।'

भेंट समाप्त हुई। मैं 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग नहीं कर सका। बस उनकी ओर देखा और तब देखा कि उनके पिछले जीवन का संघर्ष, उनका वर्तमान दर्शन और भविष्य के लिये उनकी कामनाएं, उनकी आंखों में नर्तन कर रही हैं, एक दिव्यता बरस रही है।

प्रेमचन्द से सम्बन्ध : एक बातचीत

[—प्रेमचन्द ने अपने समय के जिन नवयुवकों को साहित्य लिखने की प्रेरणा दी और जिनकी आरम्भिक रचनाएं 'हंस' में प्रकाशित कीं, उन नवयुवकों में भँवरमल सिंघी भी एक थे। भँवरमल सिंघी प्रेमचन्द के नाम से उस समय परिचित हुए, जब वे आठवीं कक्षा के छात्र थे और उन्होंने 'ईदगाह' कहानी पढ़ी थी। इसके पश्चात् वे जब बी० ए० करने के लिये जयपुर से बनारस पहुंचे, तब प्रेमचन्द से उनका सीधा सम्पर्क हुआ। भँवरमल सिंघी अपने मित्र जनार्दन राय नागर के साथ प्रेमचन्द से मिलने गये। प्रेमचन्द ने इन दोनों नवयुवकों को 'हंस' में लिखने के लिये प्रेरित किया। यहीं से सिंघी जी और प्रेमचन्द का सम्बन्ध स्थापित होता है जो उनके देहावसान तक चलता रहा। 'हंस' में प्रेमचन्द ने भँवरमल सिंघी की आठ रचनाएं—हिन्दी का अनुवाद साहित्य (जुलाई, १९३४), जीवन-दीप (अक्टूबर, १९३४), निरादर (दिसम्बर, १९३४), परतन्त्र (मार्च, १९३५), वेदना (अक्टूबर, १९३५), साधना (दिसम्बर, १९३५), सूर्य (मार्च, १९३६), तथा जीवन-सरिता (जून, १९३६), प्रकाशित की।

भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता के प्रेमचन्द जन्म शताब्दी समारोह में मुझे (कमल किशोर गोयनका) कलकत्ता जाने का अवसर मिला तो मैंने सिंघी जी से प्रेमचन्द के संस्मरणों के सम्बन्ध में बातचीत की। यह बातचीत यहां प्रस्तुत है।]

प्रश्न : सिंघी जी, प्रेमचन्द के नाम एवं साहित्य से आपका परिचय कब हुआ ?

उत्तर : विद्यार्थी के रूप में सन् १९३० में हुआ जब मैं आठवीं कक्षा का छात्र था। उस समय मैं जयपुर में था। कक्षा में ईदगाह कहानी पढ़ी थी। इन्टरमीडियेट कक्षा में आने पर उनकी अन्य कहानियां एवं उपन्यास पढ़े। 'विशारद' की परीक्षा देने पर उनके साहित्य से परिचय हुआ और जब 'साहित्य-रत्न' की परीक्षा दी, तब मैंने प्रेमचंद का विशेष रूप से अध्ययन किया। सन् १९३४ में मैंने बी० ए० का अध्ययन करने के लिये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दाखिला लिया तब मेरा प्रेमचंद से सीधा सम्पर्क हुआ।

प्रश्न : आपने कब से लिखना आरम्भ किया और प्रेमचंद को पत्रिका में प्रकाशन के लिये सबसे पहली रचना कौन सी भेजी।

उत्तर : साप्ताहिक 'जागरण' प्रेमचद के सम्पादकत्व में निकलना आरम्भ हो गया था। उस समय मेरी आयु १९ वर्ष थी। कहानी और गद्य-काव्य के बीच की शैली में लिखी गयी अपनी पहली रचना 'पगली' प्रेमचंद को भेजी। प्रेमचंद का कुछ दिनों के उपरान्त पत्र मिला। 'पगली' उन्हें पसन्द आयी थी, परन्तु उन्होंने लिखा कि कहानी और गद्य-काव्य को मत मिलाओ। रचना में भावात्मक तत्त्व अधिक हो गया है और कहानी का तत्त्व कम हो गया है। प्रेमचंद के हाथ का लिखा यह पहला पत्र था। मेरे लिये यह बहुत बड़ी बात थी। इस पत्र ने मेरे मन पर गहरा प्रभाव डाला और मैं एक तरह से शुद्ध गद्यकाव्य की ओर मुड़ गया।

प्रश्न : प्रेमचंद से आपकी पहली भेंट कब हुई ?

उत्तर : जून, १९३४ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी०ए० करने के लिए बनारस आया। मैं रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास आदि से शिक्षा ग्रहण करना चाहता था। जनार्दन राय नागर भी बनारस आकर शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। मैं और जनार्दन राय एक दिन प्रेमचंद से मिलने के लिये 'हंस' कार्यालय पहुंचे। वे कुछ लिखने में मग्न थे। हमें देखा तो लिखना बन्द करके बड़ी उत्सुकता एवं प्रसन्नता के भाव से मिले। मैंने प्रेमचंद से कहा—आपने मुझे लिखने की प्रेरणा दी, इसके लिये आभारी हूं। प्रेमचंद बोले—'तुम लिख सकते हो। तुम में लिखने की प्रतिभा है, विशेष रूप से गद्य-काव्य में तुम्हारी प्रतिभा परिलक्षित होती है। तुम गद्य-काव्य लिखो, मैं 'हंस' में प्रकाशित करूंगा। उनकी प्रेरणा से मैंने अनेक गद्य-काव्य लिखे जो 'हंस' में प्रकाशित होते रहे। प्रेमचंद अपनी मृत्यु से पूर्व प्रकाशित गद्य-काव्यों का संकलन प्रकाशित करना चाहते थे, लेकिन तभी उनका स्वर्गवास हो गया। फिर मैं कलकत्ता आ गया और यहीं से वह संकलन प्रकाशित हुआ।

प्रश्न : आपकी सबसे पहले कौन सी रचना थी जो 'हंस' में प्रकाशित हुई ?

उत्तर : 'हंस' के जुलाई, १९३४ में अंक में मेरा सर्वप्रथम लेख 'हिन्दी का अनुवाद साहित्य' प्रकाशित हुआ था। यह लेख प्रेमचंद की सम्पादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने उदीयमान लेखक की खुलकर प्रशंसा की थी।

प्रश्न : बनारस में रहते हुए प्रेमचद से आप कितनी बार मिले और आप पर उनका क्या प्रभाव पड़ा ?

उत्तर : मैं लगभग दो वर्ष बनारस रहा। इन दो वर्षों में सैकड़ों बार मैं प्रेमचद जी से मिला। मेरे मन पर उनके सम्पर्क का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि प्रेमचंद अपने साहित्य से बहुत ऊंचे थे। उनका जीवन उनके साहित्य से ऊंचा था।

प्रश्न : सिंघी जी, कोई ऐसी घटना बतलायें जिसके कारण आप इस निष्कर्ष तक पहुंचे हों।

उत्तर : मुझे एक घटना अभी तक याद है। सन् १९३५ की बात है। मैं प्रेमचंद-जी से मिलने के लिये उनके घर गया था। मैं जब पहुंचा तो वे हाथ में एक क़ागज लिये हुए अपनी पत्नी शिवरानी देवी के सम्मुख 'सुनो रानी, मेरी बात सुनो' कहते हुए गिड़गिड़ा रहे थे। मुझे देखा तो बैठने के लिए कहा। मैं बैठक में जाकर बैठ गया परन्तु मुझे उनकी बातचीत सुनायी दे रही थी। शिवरानी देवी कह रही थीं—'तुम समझते नहीं हो। अभी प्रेस वाले के रुपये देने हैं, अभी उसके पैसे देने हैं ......' प्रेमचंद 'सुनो रानी, मेरी बात समझने की चेष्टा करो' कहते हुए याचना कर रहे थे। एक बार उन्होंने याचना के स्वर में कहा 'दो रुपयों की ही तो बात है।' कुछ समय के पश्चात् याचना-प्रार्थना का यह दृश्य समाप्त हो गया, जैसे शिवरानी देवी से दो रुपये उन्हें प्राप्त हो गये हों। प्रेमचंद के चेहरे पर मुस्कराहट का भाव था और मुझसे इन्तजार करने को कहकर तेजी से घर से बाहर चले गये। प्रेमचंद १५ मिनिट के पश्चात् लौटे तो उनके चेहरे पर उत्फुल्लता एवं आनन्द का भाव था। उनके हाथ में किसी अज्ञात एवं साधारण व्यक्ति का लिखा पोस्टकार्ड था। उन्होंने उस पोस्टकार्ड को पढ़कर सुनाया—'आपको मैंने एक कहानी भेजी थी जो अभी तक छपी नहीं है। सम्भव है, वह छपने के योग्य न हो। मैं अभी लिखना सीख रहा हूं। मेरी माँ बहुत बीमार है। उस पर यक्ष्मा का सन्देह किया जा रहा है। यदि आप उस कहानी के लिये दो रुपये भेज दें तो मैं बूढ़ी माँ का एक्सरे करा लूँ।' वे उस अपरिचित लेखक को दो रुपये भेजना चाहते थे और अपनी पत्नी से दो रुपये माँग रहे थे। पत्नी की बार-बार याचना के पश्चात् जब वे दो रुपये का मनिआर्डर कर आये, तब उन्हें शान्ति प्राप्त हुई। इस घटना से प्रेमचंद मेरे मन पर समवेदना की जीवित जाग्रत मूर्ति के रूप में स्थापित हो गये और उनके पात्र दूसरे अर्थ में दिखलायी देने लगे।

प्रश्न : आपकी अनेक रचनाएं 'हंस' में उस समय प्रकाशित हुई थीं, जब प्रेमचंद फिल्मों में कार्य करने के लिए बम्बई चले गये थे। क्या आप अपने गद्य-काव्य प्रेमचंद को सीधे बम्बई भेजते थे, अथवा प्रवासी लाल वर्मा ही उन्हें प्रकाशित करने के लिए स्वीकार करते थे ?

उत्तर : गोयनका जी, आपने बड़ा अच्छा प्रश्न किया। प्रेमचंद जब बम्बई जाने लगे तो उन्होंने सरस्वती प्रेस के व्यवस्थापक प्रवासी लाल वर्मा को लेखकों की एक सूची दी थी, जिनकी रचनाएं उनकी स्वीकृति के बिना छापी जा सकती थी। सौभाग्य से इस सूची में मेरा भी नाम था। प्रेमचंद कितने महान् थे कि उन्होंने मुझ जैसे नये-नये लेखक को यह गौरव प्रदान किया। उनकी अनुपस्थिति में मेरे गद्य-काव्य 'हंस' में बराबर प्रकाशित होते रहे।

प्रश्न : क्या ऐसा भी कभी हुआ कि प्रवासी लाल वर्मा ने आपकी रचना प्रकाशित नहीं की हो ?

उत्तर : हाँ, एक बार ऐसा हुआ था। एक दिन मन में आया कि कहानी क्यों न लिखूँ? एक रात कहानी लिखने बैठा और दूसरे दिन 'हंस' कार्यालय जाकर प्रवासी लाल वर्मा को कहानी दे आया। 'हंस' के दो अंक निकल जाने पर भी जब कहानी नहीं छपी तब प्रवासी लाल वर्मा से मिला। उनसे कहानी प्रकाशित न करने का कारण पूछा तो बोले—'कहानी प्रेमचंद जी के पास गयी है। उनकी सम्मति आने पर छापूँगा।'
मैं बोला—'प्रेमचंद जी ने मेरी रचनाओं को छापने की स्वीकृति पहले ही दे दी है।'

प्रवासी लाल का उत्तर था—'वह स्वीकृति केवल गद्य-काव्य के लिए है, कहानी के लिए नहीं है।'

लगभग एक मास के पश्चात् प्रवासी लाल वर्मा ने मेरी कहानी लौटा दी। प्रेमचंद जी ने उस पर लाल स्याही से बड़ी टिप्पणी दी हुई थी और अन्त में लिखा था—'वाहियात'। मुझे इस समीक्षात्मक टिप्पणी से दुःख नहीं हुआ क्योंकि मैंने कहानी जोड़-तोड़ से ही लिखी थी। उनकी इस निन्दात्मक टिप्पणी को भी मैंने संजोकर रखा, परन्तु, १९४२ के करो या मरो आन्दोलन में जेल चले जाने के कारण सब कुछ नष्ट हो गया।

प्रश्न : प्रेमचंद की कहानी पर 'मजदूर' नामक फिल्म बनी थी। क्या आपको उसे देखने का अवसर मिला?

उत्तर : प्रेमचंद बम्बई से लौट आये थे। मैं एक दिन उनसे मिलने गया हुआ था। बोले—'चलो, सिनेमा देखने चलोगे?' मैं अवाक्-सा रह गया। मैं चलने को तैयार हो गया। हम दोनों इक्के पर बैठे और 'चित्रा' नामक थियेटर पर पहुँचे। मुझे यह मालूम नहीं था कि वे 'मजदूर' फिल्म ही दिखलाने ले जा रहे हैं। प्रेमचंद ने टिकट लिये और हम अन्दर पहुँचे। मैं संकोच से भरा उनके साथ बैठा था और वे एक-एक दृश्य की व्याख्या कर रहे थे। एक दृश्य में सेठ की लड़की मिल की व्यवस्था संभाल रही होती है और हड़तालियों का नेता उससे ऐसे बातें करता है जैसे दोनों में प्रेम हो। इस दृश्य को देखते हुए प्रेमचंद ने कहा—"ऐसी ही बातें हैं जिनमें प्रेमचंद की हत्या हुई है और इसी कारण मैं फिल्म-जीवन को छोड़कर चला आया।' और दूसरी ही सांस में बोले—'तुम्हें अपनी कहानी याद आ रही होगी। तुम सोच रहे होगे कि तुम्हारी कहानी में प्रेम का वह दृश्य असम्भव था तो यहाँ यह कैसे सम्भव हो सकता है। परन्तु इस दृश्य में मैं नहीं हूँ, इसमें डायरेक्टर है। मेरी कहानी को बाजारू बना दिया गया है।'

प्रश्न : प्रेमचंद के जीवन और साहित्य का आपके ऊपर किस प्रकार का प्रभाव पड़ा।

उत्तर : मेरे जीवन पर उनके जीवन एवं साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ा। प्रेमचंद छोटे से छोटा काम भी स्वयं करते थे। उन्होंने अपने जीवन में हजारों पत्र अपने हाथ से लिखे। अनेक नवयुवकों को रचनाकार बनाया और उदात्त मूल्यों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। प्रेमचंद समवेदना का, क्षमता का, दृष्टि का एक सुन्दर समन्वित व्यक्तित्व था। निर्धनता में रहकर भी उन्होंने सदैव उदात्त मूल्यों को अपनाया और उनके लिये संघर्ष किया। □

समाज और राजनीति

समाज

राजनीति

समाज

राजनीति

समाज

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का नया अध्याय

'उन लोगों को यौन-मनोग्रंथि का शिकार नहीं समझा जाता जो कि वेश्याओं के उत्पीड़न की अपीलें करते हैं, स्त्रियों को वेश्या बनाने के क्रय-विक्रय के विरुद्ध नाम-मात्र के कानून पास कराते हैं परन्तु जो वास्तव में बिना विवाह के, स्वेच्छा से किये गये शिष्ट सम्बन्धों के विरुद्ध होते हैं, ऊँचे-ऊँचे स्कर्ट पहनने और लिपिस्टिक का प्रयोग करने के कारण स्त्रियों की निन्दा करते हैं और समुद्र तट पर देखते-फिरते हैं कि कहीं किसी ने नहाने के ऐसे कपड़े तो नहीं पहन रखे, जिनमें से उनका शरीर दीखता हो परन्तु फिर भी सच तो यह है कि अधिक यौन-स्वतन्त्रता का पक्ष लेने वाले लेखकों की तुलना में इन लोगों में यौन-मनोग्रंथि ज्यादा होती है। उग्र नैतिकता, साधारणतया वासनामूलक भावनाओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया मात्र होती है और जो व्यक्ति इसकी बात करता है, उसके मन में अश्लील विचार भरे होते हैं, ये विचार इसलिए अश्लील नहीं होते कि इनका सम्बन्ध सेक्स से होता है बल्कि इस कारण को नैतिकता ने सोचने वाले को इस विषय पर स्वच्छ और स्वस्थ ढंग से सोचने योग्य नहीं रहने दिया।'—ये विचार हमारे युग के महान दार्शनिक, विचारक बर्टेन्ड रसेल ने लगभग पचास वर्ष पहले व्यक्त किये थे परन्तु इन पचास वर्षों में हुई समस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक क्रान्ति के बावजूद यौन प्रश्नों के विषय में हमारी स्थिति में बहुत परिवर्तन आज भी नहीं हुआ। हमारे देश की तो बात ही क्या, विदेशों तक में स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्धों के विषय में वैज्ञानिक और आर्थिक आधार पर मुक्त चिन्तन खतरे से खाली नहीं समझा जाता। कुछ ही वर्षों पहले अमेरिका में डा० किंसे के यौन-जीवन सम्बन्धी शोध-ग्रन्थों के प्रकाशन पर काफी बावेला मचा था। वास्तव में जैसा कि प्रसिद्ध यौन-मनोविज्ञान वेत्ता डा० नार्मन हेयर ने कहा है : "यौन-जीवन सम्बन्धी शायद एक भी ऐसा विषय नहीं है जिस पर हमारा चिन्तन और व्यवहार विवेकपूर्ण और तर्कसम्मत हो, बल्कि हमारे पूर्वाग्रह ज्यों के त्यों कायम हैं और उनके कारण समाज को हम बहुत बड़ा नुकसान पहुँचा रहे हैं।"

हमारे युग की सबसे मुख्य और महत्वपूर्ण उपलब्धि विज्ञान का विकास है जिसके कारण हमारे समूचे जीवन में एक अभूतपूर्व क्रान्ति उत्पन्न हुई है। इससे न केवल जड़ जगत के रहस्यों का उद्घाटन हुआ है वरन् मनुष्य के चेतन-अवचेतन मन की क्रियाओं पर भी नया प्रकाश पड़ा है। यह जितनी जड़ की क्रान्ति है, उतनी ही चेतन की भी। विज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान से मनुष्य को उसके गृह के बारे में नया बोध मिला है, उसके संवेदन का स्वरूप और स्तर बदला है, उसे मुक्त एवं स्वतन्त्र जीवन-

नुभूति के नये आयाम मिले हैं। जहां एक ओर मनुष्य अंतरिक्ष की यात्राएं कर रहा है और चन्द्रमा पर आवास की योजनाएं बना रहा है। वहीं उसके विचार और भानाना के जीवन को भी नया विस्तार और नये क्षितिज मिल रहे हैं। परन्तु दुर्भाग्य से मनुष्य विज्ञान की उपब्धियों को लेकर जितना और जितनी तेजी से अपने वाह्य परिवेश को बदल रहा हैं, उतना और उतनी ही तेजी से अपने अन्तर को, अपने चेतन-जगत को, अपने भावना-जीवन को नहीं बदल पा रहा है। इस विषय में वह अतीत के विचार और व्यवहार की परम्पराओं के बोझ से दबा हुआ है, और यही कारण है कि वह बाहर से जितना मुक्त हुआ लगता है, उतना ही अन्दर से कुंठाग्रस्त और घुटन भरा अपने को पाता है। वस्तुतः अन्दर के जीवन-सत्य को आज भी वह मुक्तता से प्रकट नहीं कर पाता, विज्ञान के प्रकाश में जिस सचाई को उसने देख, जान और समझ लिया है उसे नाना प्रकार की धारणाओं और मान्यताओं के बन्धन के कारण वह अपने जीवन में पूरी तरह जी नहीं पा रहा है। इससे उसकी इच्छाओं का दमन हो रहा है। कुठाएं बढ़ रही हैं और जीवन तनावों का जाल बन रहा है। यह दमन और कुंठा उसको भीतर ही भीतर अस्वस्थ बनाये हुए हैं और उसके कारण उसकी जीवनी-शक्ति रुग्ण और ह्रासशील बनी हुई है। उसकी यह अस्वस्थता जीवन के सभी क्षेत्रों में उसे बोझिल, बेमन और बेजिम्मेदार बना रही है, व्यक्ति की यह जीवन स्थिति समाज और राष्ट्र की गति को भी अवरुद्ध बनाये हैं। विश्व इतिहास के लेखक और विख्यात विचारक एच० जी० वेल्स ने कहा है कि 'इस बीसवीं शताब्दी में लगभग हर व्यक्ति कड़वा, चिड़चिड़ा और गैर जिम्मेदार हो गया है क्योंकि वह अपने यौन-जीवन के विषय में ईमानदारी नहीं बरत पाता। वास्तव में चली आती हुई बद्धमूल यौन नैतिकता सम्बन्धी विविध मान्यताओं के कारण चारों ओर खतरनाक विकृतियां, शर्मनाक ढोंग और गम्भीर सामाजिक अन्याय की स्थितियाँ नजर आती हैं।' मनुष्य जीवन के इस विकार और बढ़ते हुए विघटन के मूल में उसकी यौन-कुंठाएं हैं। इसी बात को थोड़े दिनों पहले एक संयुक्त राष्ट्रसंघीय सर्वेक्षण के विवरण में ताईद की गई थी। उसमें बताया गया था कि जहां-जहां लोग विकास और शांति की अनेक सुचिन्तित योजनाओं के वांछित क्रियान्वयन में सफल नहीं हो रहे हैं, वहां मूल में यौन-कुंठाओं से उत्पन्न विकार और बिखराव कारण है। वैज्ञानिक चिन्तन के आधार पर विश्लेषण करते हुए डा० रेने गुयों ने कहा है कि यौन मामलों में आज जो विकार और कुंठा की स्थिति पैदा हो गयी है, उसका ऐतिहासिक कारण यह है कि जहां हमारे दार्शनिक, सामाजिक और राजनैतिक विचारों में आमूलाग्र परिवर्तन हो गये हैं तथा समयातीत संस्थाएं, जैसे राजा और राज्य का दैविक विधान, राजा या राज्य विशेष का धर्म, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का नियमन आदि खत्म हो गयी है या बदल गयी हैं और उनकी जगह नई संस्थाएं बदली हुई आर्थिक एवं सामाजिक अवस्था एवं व्यवस्था के अधिक अनुकूल बन गई हैं वहां यौन-मामलों में इसके विपरीत हरेक बात में आज भी पुराने विचारों का दबदबा है जिसका न विज्ञान से कोई सम्बन्ध है, न तर्क से कोई वास्ता। इसी का परिणाम है कि असंख्य दुखद एवं दुखपूर्ण घटनाओं में से जीवन गुजर रहा है, जो समाज वैज्ञानिकों के खेद एवं अनुताप का विषय है।

इससे स्पष्ट है कि यौन-जीवन की कुण्ठाओं को मिटाये बिना जीवन विकास की स्वाभाविक गति संभव नहीं है। हमारे अपने देश में भी हमने अनुभव किया है कि राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में हमने जो कुछ क्रांति की, उसका जितना और जो प्रभाव हमारे जीवन की गतिविधि पर होना चाहिये था वह नहीं दिखाई देता। क्रान्ति का तेज जीवन में नहीं आया। इसका कारण यही है कि क्रान्ति ने हमारे यौन जीवन सम्बन्धी विचार और व्यवहार के क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया और दुर्भाग्य की बात तो यह है कि आज भी हम इस विषय में जानते-समझते हुए भी मुँह खोलने की हिम्मत नहीं करते। हम अपने आप से अपने को छिपाए हुए हैं। हम आज भी जीवन के वास्तविक और सत्य आचरण को अनाचार कहते हैं। और उन बातों का उपदेश देते, सुनते रहते हैं, जो गलत और जीवन विरोधी हैं। यद्यपि छिपे तौर पर व्यवहार में हम जीवन की वास्तविक सचाई से बहुत दूर नहीं हैं। यौन-नैतिकता के बारे लम्बे-चौड़े उपदेशों के बावजूद उपदेश देनेवालों का जीवन भी तथाकथित वासना से दूर नहीं है और वे खुद प्राकृतिक एवं स्वाभाविक परितृप्ति के अभाव में अनेक प्रकार की विकृतियों के शिकार हैं। वे समाज के सेवक और सहायक होने के बदले शत्रु हैं। ऐसे लोगों के स्वरूप के सम्बन्ध में बर्ट्रेण्ड रसेल की जिस बात का हमने उल्लेख किया है, उसका अनुभव आये दिन होता रहता है। कुछ ही दिनों पहले दिल्ली में और सम्भवतः कुछ अन्य स्थानों में भी अश्लील चित्रों, पोस्टरों, पुस्तकों के प्रदर्शन के विरुद्ध कोई 'नैतिक' आन्दोलन चला था। उसके दौरान मालूम हुआ कि इस तरह के जो पोस्टर और चित्र अनेक जगहों से उतार कर लाए गए, उनको देखने के लिए जाने वालों में उन उपदेश देनेवालों की ही संख्या ज्यादा थी। शायद शिष्ट एवं श्लील ढंग से ये उनकी भाषा में कहे गए अशिष्ट एवं अश्लील चित्र और पोस्टर देखकर अपनी वासना पूर्ति कर रहे थे। आज समस्त धार्मिक और शास्त्रीय यौन नैतिकता का उपदेश देने वाले उन सिनेमाओं में बखूबी मिल जाते हैं जिनमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में यौन सुख एव तृप्ति की अनुभूति की सामग्री है, साल दो साल पहले विदेशी फिल्मों का जो महोत्सव यहां के बड़े-बड़े शहरों में आयोजित किया गया था उसमें दिखाए जाने वाले उन चित्रों की सबसे ज्यादा चर्चा थी जो यौन भोग की सामग्री में सबसे बढ़कर थे। उनके टिकटों का खूब काला बाजार हुआ और उन चित्रों को देखने जाने वालों में लेखक ने अपनी आंखों से ऐसे स्त्री पुरुषों को देखा जो इन सबके विरुद्ध हमारी सनातन नैतिकता का झण्डा लिए रहते हैं। जो साधु-सन्त और सन्यासी ब्रह्मचारी होने का दावा करते हैं और दूसरे लोगों को ब्रह्मचारी बनाने और रहने के लिए रात-दिन उपदेश देते रहते हैं, उनकी भ्रष्टता, जिसका कारण उनके अन्तर्मन का विकार है, हमने कितने अवसरों पर देखी है। वे यौन-विरोधी उपदेशों में ही यौन वासना का रमण कर लेते हैं। बर्ट्रेण्ड रसेल ने उन लोगों का उल्लेख किया है जो समुद्र के किनारे यह देखते-फिरते हैं कि कहीं किसी ने नहाने के ऐसे कपड़े तो नहीं पहन रखे जिनमें से उसका शरीर दीखता हो। वे ऐसी स्त्रियों की निन्दा करते हैं, पर उनको देखते फिरते हैं। आज हम अपने चारों तरफ ऐसे लोगों को देख रहे हैं जो अपनी नैतिकता के विचारों के पोषण के लिए स्त्रियों की बदली हुई और बदलती हुई वेशभूषा पर, निन्दा के नाम पर, आंखें गड़ाये हुए हैं। वे इस बात को महसूस नहीं करते कि यह

यौन की बात

सब देख कर उन्हें एक प्रकार की परितृप्ति होती है बल्कि वे इसका विरोध करके अपनी नैतिक ऊँचाई का ढिंढ़ोरा पीटते हैं। कभी इन सन्तों और ब्रह्मचारियों को अकेले में या समूह में इनकी भक्तिनों या सेविकाओं से बातें करते सुनिए। अक्सर इस बात की भी शिकायत की जाती है कि स्त्रियों के इस प्रकार नहाने से, देखने वाले मनुष्य का मन डाँवाडोल होता है और उसमें वासनाजन्य विकार पैदा होता है। अपने ब्रह्मचर्य के पालन के लिए ये दूसरों को भी बंधन में रखना चाहते हैं। उनके ब्रह्मचर्य की कितनी कच्ची भूमि है। लेखक को एक बार एक बड़े विचारक सज्जन ने लिखा था कि पर्दा-प्रथा के विरुद्ध आंन्दोलन करते समय इतना ध्यान जरूर रखना चाहिए कि स्त्री का सिर व सिर के बाल इतने खुले न रखे जाएं कि देखने वाले के मन में विकार जाग्रत हो परन्तु बाद में उन्हीं के गुरु ने अपने ब्रह्मचर्य की स्थिरता की परीक्षा के लिये कभी एक और क़भी दो लड़कियों को नंगी हालत में अपने साथ सुलाने का उपक्रम किया। उन्होंने कहा कि वे अपनी वासना पर विजय पाने की दृष्टि से अपनी परीक्षा कर रहे थे परन्तु शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के अन्वेषक कहेंगे कि वे अपनी नैतिकता के दम्भ को कायम रखते हुए अपनी दमित इच्छा और वासना की पूर्ति कर रहे थे। इस प्रकार की यौन-विकृतियों के लाखों-लाखों उदाहरण हैं पर कितनी बड़ी विडम्बना है कि ये उदाहरण ही आज यौन नैतिकता के उपदेशक और गुरु बने हुए हैं। निःसन्देह बर्ट्रेण्ड रसेल का यह कथन सत्य है: 'नैतिकता ने सोचने वाले को इस विषय पर स्वच्छ और स्वस्थ ढंग से सोचने योग्य नहीं रहने दिया।'

यौन-विकार और कुण्ठा के इस जीवन से व्यक्ति को और समाज को मुक्त कराने के लिये हमारे विचारों और मान्यताओं में एक बहुत बड़ी क्रान्ति की आवश्यकता है जब-तक ये कुण्ठाएँ है और रहेंगी तब-तक मानव अपनी पूर्ण मानवता को नहीं पा सकेगा, उसका व्यक्तित्व खण्डित रहेगा। हजारों वर्षों से जो मान्यताएँ और मर्यादाएँ चली आ रही हैं। उनकी असत्यता, अस्वाभाविकता और खोखलापन पूरी तरह साबित हो चुका है। वे जीवन के निर्माण का नहीं, विनाश का कारण बनती हैं। आज हम इन मान्यताओं की कैद में बन्दी रहकर (हालांकि जीवन के व्यवहार में हम बन्दी हैं ही नहीं) अपना और अपनी आनेवाली पीढ़ियों का बहुत बड़ा नुकसान कर रहे हैं। यौन-सदाचार के नियमों के नाम पर हमने जो भ्रांतियां पैदा की हैं और जिनका पोषण किया है वे हमारे मानस को विकृत बनाये हुए हैं। इस विकार से मुक्ति पाना और उसके लिए हर प्रकार के प्रयत्न करना आज सबसे जरूरी है। हमारे सामामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण और व्यवस्था में जो परिवर्तन हो गये हैं वे हमारी यौन सम्बन्धी वर्तमान परम्पराबद्ध धारणाओं और मान्यताओं को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। इन परिवर्तनों के अनुसार और विज्ञान द्वारा प्रदत्त जीवन की इच्छाओं, आकांक्षाओं, क्षमताओं आदि के नये ज्ञान के प्रकाश में हमें स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों का नया इतिहास बनाना है। मार्क्स ने कहा था: मनुष्य का सीधा स्वाभाविक और अनिवार्य सम्बन्ध स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध के आधार पर ही वास्तविक मानवीय सम्बन्ध का विकास और निर्माण होता है। इससे सहज ही यह समझा जा सकता है कि जब तक स्त्री-पुरुष

सम्बन्ध स्वच्छ और स्वस्थ आधार पर नहीं बनेगा और रहेगा तब तक उनके अन्य सम्बन्ध भी स्वच्छ और स्वस्थ नहीं बन पायेंगे और आज तो मनुष्य और मनुष्य के बीच में समाज के स्तर पर, राष्ट्र के स्तर पर, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्बन्धों का निर्माण, विकास और निर्वाह करना होता है और यह तभी अच्छी तरह और सफलता-पूर्वक हो सकता है जबकि उनका बुनियादी सम्बन्ध—स्त्री-पुरुष सम्बन्ध—ठीक है। इस बुनियादी सम्बन्ध को स्वस्थ बनाने और रखने के लिये यौन-क्रान्ति की आवश्यकता है और इसके हुए बिना जीवन की तमाम दूसरी योजनाएं और क्रान्तियां विफल रहेंगी।

इस क्रान्ति की दिशा में सबसे पहली बात यह समझने की है कि यौन-प्रवृत्ति अपने आप में कोई पाप या दुराचार की बात नहीं है। वास्तव में यह जीवन की मूल प्रवृत्ति है, जिसमें जीवन का जन्म निहित है—जन्म ही नहीं जीवन का मूल आनन्द निहित है। इस बात को समझने में हमें राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन जिनको सारे संसार ने एक बड़ा दार्शनिक माना है, का यह कथन सहायक होगा कि 'काम-वासना को अपवित्र या अशिष्ट समझना नैतिक विकृति का ही चिन्ह है। यौन-प्रवृत्ति अपने आप में कोई लज्जाजनक वस्तु नहीं है।' वह कोई रोग या विकार नहीं है अपितु एक स्वाभाविक सहज वृत्ति है। ब्रह्मचर्य, जो उपवास तथा शरीर की अन्य इच्छाओं के दमन के समान ही एक तपस्यात्मक अनुशासन है, इसलिये खतरनाक है कि इससे मन में उस विषय की स्मृति बराबर बनी रहती है जिससे यह मन को बचाना चाहता है। यह एक निषेधात्मक ढंग का बन्धन उत्पन्न कर देता है।' यह सोचना गलत है कि यौन-वासना को वश में रखना और उसका दमन करना ही धर्म है। मनोविज्ञान वेत्ताओं ने तो यह कहा है कि दमन वास्तव में अधर्म है क्योंकि यह अप्राकृतिक है और विकार पैदा करने वाला है। और सच पूछा जाय तो कोई भी स्वस्थ आदमी यह दमन कर भी नहीं पाता। वह ऐसा दम्भ भर करता है। फ्रांस के महान साहित्यकार और विचारक अनातोले फ्रांस ने तो यहां तक कहा है कि जो लोग इन्द्रियदमन द्वारा ब्रह्मचर्य एवं संयम का जीवन ग्रहण करते हैं, उनको इसी तरह उपचार की आवश्यकता है जैसे रक्तचाप एवं यक्ष्मा आदि रोग के लिये आवश्यकता होती है। वास्तव में कोई भी व्यक्ति पूरे में ब्रह्मचारी और संयमी है ही नहीं। वह या तो ढोंगी या बीमार और अक्षम है या पागल है। तो, यौन-सहयोग बिल्कुल सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उसका सम्बन्ध अनिवार्य रूप से प्रजनन के साथ भी नहीं जुड़ा हुआ है। यह मानना और कहना बिल्कुल गलत है कि यौन-सहयोग का उद्देश्य केवल सन्तानोत्पादन है या होना चाहिये। सन्तानोत्पादन की इच्छा और आवश्यकता न हो तब भी यौन-समागम अपने आप में जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है, एक सहज आनन्द है और उसका दमन जीवन-विरोधी प्रवृत्ति है। गर्भ-निरोध के वैज्ञानिक उपकरणों के अनुसन्धान और आविष्कारों से तो समागम के साथ प्रजनन अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ रह ही नहीं गया। यह बात जीवन में इसी प्रकार से अपना कार्य कर रही है और करती रही है पर इसे इसी रूप में स्वीकार करने में हमें संकोच होता रहा है, कुछ पाप की सी भावना लगती रही है। इसे हम जितना जल्दी अपने दिमाग पर से हटा लें उतना ही हमारा दृष्टिकोण स्वच्छ और स्वस्थ बनेगा।

यौन क्रान्ति की प्रक्रिया में दूसरी बात यह समझ लेने की है कि यौन-सहवास के लिए विवाह का प्रकोष्ठ आवश्यक नहीं है। इसमें धार्मिकता या पवित्रता या नैतिकता की दृष्टि से अपने आप में कोई सिद्धान्त निहित नहीं है। यौन-आनन्द की अपनी अनुभूति है, तृप्ति है जो स्त्री-पुरुष के बीच का सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध विवाह के अन्तर्गत हो या बाहर। यह सम्बन्धित स्त्री-पुरुष की व्यक्तिगत इच्छा और निर्णय का प्रश्न है। इसमें किसी प्रकार के नियमों और प्रतिबन्धों का स्थान नहीं रहने वाला है। इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं कि विवाह का बन्धन स्वीकार करके सहवास करने में तो पाप नहीं है और विवाह बिना इस प्रवृत्ति में मशगूल होना पाप है। पाप दोनों में नहीं है। जो शरीर और मन की सहज इच्छा है और स्वाभाविक आवश्यकता है उसकी पूर्ति के लिए विवाह का लाइसेन्स लेना ही क्यों आवश्यक है। यह विचार आज अवश्य बहुत चौंकाने वाला लगता है और लोगों को लगेगा कि ऐसा हो जाने पर तो संसार में घोर अनाचार और अराजकता फैल जायेगी। पर यह केवल हमारा भ्रम है क्योंकि हमने यह देखा कि सारे नियमों और बन्धनों के बावजूद कितनी बातों में घोर अराजकता आज भी कायम है। वास्तव में विवाह सम्बन्धी सारे कानून स्त्री-पुरुष सम्बंधी स्वस्थ सम्बन्धों के विकास में बाधक ही रहे हैं। हजारों वर्ष पहले जब मनुष्य का ज्ञान बहुत सीमित था और ज्ञान की अपेक्षा अज्ञान की मात्रा बहुत ज्यादा थी तब जो सब नियम बने थे, वे अब निरर्थक और निकम्मे साबित हो चुके हैं और उन से हमारे मानवीय सम्बन्धों में गति की जगह अ-गति ही दिखाई पड़ती है।

उक्त दोनों प्रश्नों के अन्तर्भूत एक और प्रश्न पैदा होता है कि क्या भिन्न-लिंगीय मैत्री का आचरण अनुचित है? आज जबकि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष साथ-साथ काम करते हैं और उनके परस्पर मिलने-जुलने के अवसर बढ़ रहे हैं तथा बौद्धिक विकास में समानता बढ़ रही है, यह बहुत स्वाभाविक और सम्भव है कि उनमें परस्पर मैत्री हो, जिस प्रकार दो पुरुषों अथवा दो स्त्रियों में होती है। बल्कि यह भी मानना चाहिए कि स्त्री-पुरुष के आपसी सहज आकर्षण के कारण उनमें मैत्री की सम्भावना अधिक है और इस मैत्री में यौन-समागम के अवसर भी आ सकते हैं। क्या इस प्रकार की मैत्री अवांछनीय और अनुचित है? आज तक हम जिस प्रकार के विचारों और आचरण सम्बन्धी मान्यताओं से बँधे चलते रहे हैं उनकी दृष्टि से जरूर ऐसी मैत्री में सदाचार के भंग का खतरा है। पर जैसा कि डा० राधाकृष्णन ने ही कहा है: "जीवन में इस समय जो घोर अशान्ति है, उसकी यह चेतावनी है कि ऐसा सदाचार जो अवसर पाते ही सत् के बन्धन से निकल भागना चाहे और किसी-न-किसी प्रकार के बन्धन से ही बँधा हो तथा जिसका आधार बाहरी दबाव ही हो वह कोई सदाचार नहीं है।" इस प्रकार की मैत्रियों में उनको जरूर खतरा लगेगा जो यौन-समागम को विवाह बन्धनों से बाहर नहीं देख सकते। उनको लग सकता है कि ऐसा होने से विवाह टूटने लगेंगे, समाज में अनाचार और अराजकता उत्पन्न होगी तथा उच्छृंखलताएं बढ़ेंगी। यहाँ प्रश्न यह है कि इस सारे मामले में हमारा दृष्टिकोण क्या है। यदि ऐसे मैत्री-सम्बन्ध अपने आप में ही उच्छृंखल हैं, आचरण-विहीन हैं तो उनका सोचना सही है। पर इसके विपरीत दूसरा दृष्टिकोण यह है कि इन मैत्रियों के

विरुद्ध जो बन्धन हैं वे खुद उच्छृंखलताओं की सृष्टि करते हैं और विकृतियों का निर्माण करते हैं। यदि ऐसा है तो यौन-आचरण के नियमों में बहुत बड़े और व्यापक परिवर्तन की स्पष्ट आवश्यकता है।

साथ ही समाज के नव-निर्माण के लिए हमें यौन-जीवन के हर पहलू के बारे में प्रचलित कानूनों की परीक्षा करनी होगी और समाज की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार तथा नये ज्ञान और अनुभव के प्रकाश में सारी व्यवस्थाओं और कानूनों में परिवर्तन करना होगा। ऐसा करना अपने आप में क्रांति की भूमिका और परिणाम दोनों हैं। हमारे देश में अभी तक यौन-जीवन के बारे में चर्चा करना भी पाप माना जाता है, जब कि आवश्यकता आज यह है कि इन प्रश्नों पर खुलकर चर्चा होनी चाहिए और जो अज्ञान और रूढ़िजन्य भ्रान्तियाँ विद्यमान हैं, उनका निराकरण होना जरूरी है। हमारे शिक्षाक्रम में भी यौन-विषयों के शिक्षण की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए। विदेशों में इस दिशा में काफी कुछ किया जा रहा है। किन्तु हमारे देश में विचारों की जड़ता आज भी कायम है। आश्चर्य और क्षोभ की बात है कि जिस विषय के साथ जीवन का इतना सीधा और घनिष्ठ सम्बन्ध है और जिसके स्वास्थ्य पर हमारे भावी जीवन का सर्वस्व निर्भर करता है उसी की अवहेलना की जा रही है। सामान्य से सामान्य विषय में भी प्रवेश पाने के लिये हम पूर्व शिक्षा और तैयारी की आवश्यकता मानते हैं और व्यक्तिगत रूप से उसकी तैयारी करते हैं, पर यौन-जीवन के विषय में शिक्षा की बात को अनावश्यक ही नहीं, अनुचित भी मानते हैं। विदेशों में आज विज्ञान वेत्ताओं, समाज शास्त्रियों और चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा यौन-जीवन सम्बन्धी प्रश्नों के क्षेत्र में नाना प्रकार के सर्वेक्षण और विश्लेषणात्मक अध्ययन किये जा रहे हैं और उनसे प्राप्त तथ्यों को प्रकाश में लाया जा रहा है तथा यौन-जीवन के समूचे विज्ञान के के आधार पर जीवन के सारे प्रश्नों का पुनर्परीक्षण हो रहा है और उन सब रूढ़ियों और मान्यताओं के विरुद्ध व्यक्तिगत और सामाजिक मानस तैयार किया जा रहा है जिनके कारण हमारे जीवन में तनाव, घुटन और उलझनों का वातावरण दीखता है। जगह-जगह यौन-परामर्श के लिए केन्द्र खोले गये हैं जिनमें अनुभवी चिकित्सक और मनोविज्ञान वेत्ता शारीरिक और मानसिक यौन-ग्रन्थियों का विश्लेषण कर आवश्यकतानुसार व्यक्तियों को परामर्श देते हैं। यह बहुत आवश्यक भी है क्योंकि यौनेषणा में एक बड़ी जीवनी शक्ति है जिसका दमन करने से मनुष्य के जीवन में नाना प्रकार से असन्तुलन पैदा होता है और जीवन की स्वाभाविक गति में अवांछित तरीके की हलचल पैदा होती है। इसी का परिणाम है कि समाज में आज यौन-दमन के कारण मानसिक रूप से रुग्ण स्त्री-पुरुषों का समूह ही बढ़ रहा है जो अन्ततोगत्वा सारे समाज और राष्ट्र की जीवनी शक्ति को क्षतिग्रस्त करता है।

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि आज मनुष्य को अपने मन के चेतन और अवचेतन जीवन की क्रिया-प्रक्रिया और प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्राप्त हो गया है और होता जा रहा है तथा उसके चारों ओर के परिवेश एवं वातावरण में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनका यह अनिवार्य परिणाम होगा और होना चाहिये कि वह स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की नई भूमिका को समझें और स्वीकार करें। इन नये सम्बन्धों का निर्माण

हमारे अब तक के जीवन-विकास के काम की स्वाभाविक परिणति है। सुविख्यात फ्रांसीसी लेखिका साइमोन द बोऊवा ने ठीक ही कहा है कि "आगामी कल की मानवता अपने शरीर और मन की सचेतन स्वतन्त्रता का जीवन जीयेगी और वही समय उसका वास्तविक वर्तमान होगा और उसे ही वह पसन्द करेगी। स्त्री-पुरुषों के बीच शरीर और मन के वे नये सम्बन्ध निर्मित और विकसित होंगे जिनकी हमने अब तक कल्पना भी नहीं की है, वास्तव में स्त्री और पुरुष के बीच ऐसी मैत्रियां, ईर्ष्याएँ, उलझनें और सहयोगिताएँ—चाहे उनका स्वरूप वासनात्मक हो या केवल भावनात्मक हो, उत्पन्न हो गई हैं जिनकी विगत शताब्दियों में कभी कल्पना भी नहीं थी।" ये नये सम्बन्ध जो बन रहे हैं और बनेंगे मानव इतिहास को एक नई दिशा प्रदान कर रहे हैं और इससे हम किसी भी हालत में विमुख हो ही नहीं सकते क्योंकि ऐसा करना अपने जीवन की स्वाभाविक और सहज गति और प्रवृत्ति को झुठलाना होगा। आज तक हमने जीवन को झुठलाया है पर भविष्य का इतिहास झुठलाने का नहीं, यह सत्य एवं यथार्थ अनुभूति के आचरण का होगा।

('विग्रह', सितम्बर १९६६)

जाति है, तो लोकतन्त्र नहीं; जाति है, तो समाजवाद नहीं

महर्षि कर्वे इस देश के अग्रगण्य समाज-सुधारकों में से हैं। अभी थोड़े दिनों पहले उनकी स्वर्ण जयन्ती मनाई गई थी। सारे देश ने उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया था। उन्हें 'भारत-रत्न' की उपाधि से विभूषित किया गया है। उन्होंने सेवा और संघर्ष का दीर्घकालीन जीवन पार कर चुकने के बाद हाल ही में कहा है—"अगर मैं फिर से जवान बन जाऊँ, तो अपना जीवन भारत से जाति-प्रथा को नष्ट करने में लगा दूँ।' इस वाक्य में एक महान समाज-सुधारक की ही अनुभूति नहीं है बल्कि सारे देश की नव चेतना की झंकार है। यदि जातिवाद को खत्म करने में हम सफल नहीं हुए, तो सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था के समाजीकरण की कोई कल्पना पूरी नहीं हो सकती। जाति प्रथा के रहते-चलते समाज के व्यापक अर्थ की प्रतीति हो ही नहीं सकती और जब तक हम समाज के वास्तविक अर्थ को नहीं समझ सकते, तो सामाजिक कर्तव्य और उत्तरदायित्व का अनुभव ही कैसे कर सकते हैं?

हमने स्वाधीनता संग्राम के साथ-साथ इस देश के सामाजिक जीवन में घुन की तरह लगी हुई अनेक बुराइयों से भी मोर्चा लिया। हमने सोचा था कि जो बातें रह गईं, स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद उन्हें खत्म कर देंगे। जाति प्रथा की बुराई भी उनमें से एक थी। इसके विरुद्ध भी प्रचार और आन्दोलन तो किया गया था, परन्तु इसकी जड़ पर कुठाराघात करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया। यही वजह है कि वह ज्यों

की त्यों कायम रही। जाति-प्रथा वर्णाश्रम 'धर्म' से जुड़ी-बँधी मानी गई है और भारतवासी के मन पर युगों से यह बात जमा दी गई है कि जो धर्म है, उसमें कोई फेर-बदल की बात हो ही नहीं सकती। अधार्मिक होने की बात किसी हिन्दू को सह्य नहीं होती। जो कुछ वह करता है, वह सब धर्म की आत्मा के अनुकूल है या नहीं, यह प्रश्न नहीं है। उसका बाह्य धर्ममय बना रहना चाहिये। धर्म की अनेक बातों में सुधार के प्रयत्न तो किए गए, पर जिसने धर्म के मूल आधार को ही मानने से इन्कार किया या उनमें गलती बताई, उसे त्याज्य और बहिष्कृत ही कर दिया गया। अतएव आज तक हमारे यहां जो समाज सुधारक हुए, उन्होंने अधिकांशतः किसी प्रथा में उत्पन्न हुई बुराइयों को दूर करने, उनमें सुधार करने की बात तो कही, पर उस आधार को नष्ट करने की बात नहीं कही, जिससे बुराई पैदा होती है। महात्मा गांधी, जिन्होंने इस देश की राजनीतिक लड़ाई का नेतृत्व किया और सामाजिक जीवन को नवप्रेरणा भी दी, ने भी वर्णाश्रमधर्म को पकड़े रहते हुए जाति प्रथा से होने वाली हानियों को दूर करने की बात कही। परिणामतः वह बात ही बात रही। अपनी-अपनी जातियों में रहते हुए कुछ लोग भले ही भले हो गए हों, जाति का अस्तित्व बना रहा और उसके अस्तित्व से जहां भी व्यक्तिगत या समूहगत लाभ होता दिखा, वहां जाति और उभर आई। राजनीतिक सत्ता के पदों के लिये चुनावों ने जाति-प्रथा को नया जीवन प्रदान कर दिया। आज सारे देश में मानो जातिवाद का धावा हो रहा है। हमारे प्रधान मन्त्री श्री नेहरू समाजवाद और लोकतन्त्र के बड़े हिमायती हैं। उन्होंने बार बार कहा है कि जब तक जाति-प्रथा का समूल नाश नहीं कर देते, तब तक न तो लोकतन्त्र की स्थापना हो सकती है और न समाजवाद की, परन्तु व्यावहारिक राजनीति के नाम पर वे भी इस भेद-भाव को स्वीकार करने को बाध्य हो जाते हैं। मन्त्रियों का चुनाव करते समय वे भी जाने-अनजाने इस बात से प्रभावित होते हैं कि अपने मन्त्रिमण्डल में कोई मुसलमान मन्त्री हुआ या नहीं, कोई सिख भी आया या नहीं, और फिर, दक्षिण के लोगों का प्रतिनिधित्व ठीक हुआ या नहीं आदि। जो नेहरूजी के व्यक्तित्व से नीचे के लोग हैं, वे तो और भी छोटी-छोटी जातियों तक की बात सोचते हैं। उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने ठीक ही कहा है कि जातिवाद के खिलाफ हम आए दिन बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, पर हम खुद विभिन्न रूपों में इससे चिपके हुए हैं। जब तक यह स्थिति है, तब तक यह देश चाहे गांधी का देश कहा जाय और चाहे नेहरू का, असल में है यह देश जाति का। और जातियों का देश जन साधारण का देश सही माने में नहीं हो सकता। जाति है तो लोकतन्त्र नहीं है, जाति है तो समाजवाद नहीं आ सकता। आदर्श हमारा आज समाजवाद का है, सारा संसार उसी ओर चल रहा है। तब हम इस जाति प्रथा को लेकर नहीं रह सकते, यह साफ है। महर्षि कर्वे जीवन के अन्तिम छोर पर इसीलिए कहते हैं कि "फिर से जवान बनूं ताकि जाति प्रथा को समूल नष्ट कर दूं।"

महर्षि कर्वे जब जवान थे, तो उन्होंने बहुत कुछ किया। आज तो उनके शब्दों भर में जवानी है। वे जितना काम कर सकते हैं, उतना तो करेंगे। लेकिन जो आज भी जवान हैं, या जवान होने वाले हैं, वे क्या करते हैं? क्या वे अनुभव कर रहे हैं कि उनके बीच कोई ऐसी प्रथा कायम है, जो वर्तमान को काट रही है और भविष्य को भी

मीन की तरह

कुतर रही है ? यदि उन्हें इस बात का थोड़ा एहसास रहा है, तो वे जवानी की ऐसी व्याख्या दें जिससे महर्षि कर्वे को सोचना पड़ेगा कि वे फिर से जवान बनकर इन जवानों की पंक्ति में आकर क्या सोचेंगे और क्या करेंगे ? जवान आदमी आज असंतुष्ट हैं, सही है; आलोचक हैं, ठीक है; बड़ों से नाराज है, यह भी ठीक ही मान लें, पर आखिर कल की दुनिया को वह किस तरह बनाना चाहता है और उसके लिए क्या कर रहा है—यह प्रश्न तो है, जो उसकी ओर देख रहा है।

यदि खान-पान और विवाह शादी में जाति की दीवार टूट जाये, तो हो गया काम ? फिर नई संतान पैदा होगी, नया आचार-व्यवहार कायम होगा। इस नई जीवन-संहिता को आचरण में उतारने का काम नौजवानों का है। उसके लिए जो हिम्मत और बहादुरी चाहिये, वह नौजवान नहीं दिखाएगा, तो फिर कौन ? पर दुर्भाग्य से यह साहस दिखलाने वाले बूढ़े कर्वे तो दस पांच हो भी सकते हैं, पर जवान तो उतने भी नहीं दिखाई देते। यह बात नहीं कि जवान लड़ते नहीं या लड़ने की कला नहीं जानते, पर लड़ते वे वहां हैं, जहां लड़ाई शोभा नहीं देती और चुप वे वहां हैं, जहां चुप्पी शर्मनाक है। मैं कहा करता हूँ—जवानों, समाज में जाति प्रथा जैसा शत्रु मौजूद है और तुम अपने हथियार इस शत्रु पर न चलाकर यों ही फेंक रहे हो इस देश में जिधर देखो राम और राम के पुजारी फिरते मिलेंगे, पर इस रावण को कोई मारने को तैयार नहीं। विश्वविद्यालय की शिक्षा लिए हुए और मौज-शौक की सारी आधुनिकता लिए युवक और युवतियाँ जाति प्रथा जैसी घोर पुरातन बात को शिरोधार्य कर चल रहे हैं। सिनेमा के पैसा न मिलने पर ये युवक बाप से लड़-झगड़ सकते हैं, पर यदि बाप सिर पकड़ कर जाति के नाम पर घोर से घोर अनचाही जीवन-संगिनी को साथ बाँध दें, तो यह पितृ भक्ति और सनातन-धर्म के अवतार बन जाते हैं ! यह हालत है, तो आज से कल क्या अच्छा बननेवाला है। कर्वे ने इतिहास को ललकारा, झकझोरा, पर क्या हमारी आज की युवा पीढ़ी को इतिहास ललकारेगा, झकझोरेगा ? जिनको इतिहास का निर्माता कहा जाता है, क्या वे झकझोरे जायेंगे। या तो हम इतिहास बनाएँ, या वह हमें फेंक देगा। जहां तक जाति-प्रथा का मामला है, उसमें सुधार या समझौता नहीं हो सकता। या तो जाति है, या नहीं है। पर जाति नहीं है, इस स्थिति को लाने के लिए संघर्ष करना होगा। और वह संघर्ष जातिवाद-घिरी भावनाओं का सिनेमा नहीं है, जिसमें ब्राह्मण की कन्या बनिये के लड़के से प्रेम कर, विवाह कर बन्धन तोड़ दिया और हो गया ! सिनेमा तो देखना-भर है, पर जीवन की साध जीवन की उपलब्धियों में, उनके लिए लड़ने में है।

क्या युवा-पीढ़ी कर्वे की आकांक्षा को अपने यौवन की संघर्ष-साधना प्रदान करेगी ?

(पोद्दार छात्र निवास पत्रिका 'छात्र अभियान',
वार्षिक पत्रिका, १९५८-५९)

मारवाड़ी समाज में महिला--मुक्ति संग्राम

नारी-जाति का इतिहास आज तक सारी दुनिया में ही परतंत्रता और पीड़ा का इतिहास रहा है। आदिकाल से ही पुरुष ने सब जगह, सब मामलों में अपना प्रभुत्व कायम कर रखा है। और नारी का स्थान बराबर गौण माना और रखा गया है। हमारे देश में तो शास्त्रीय वाक्य रहा है कि नारी स्वतंत्रता की अधिकारिणी है ही नहीं। जीवन के हर स्तर पर और हर क्षेत्र में उसे पुरुष के अधीन और उसके संरक्षण में रहना अनिवार्य है। बाल्यावस्था में पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र की मुखापेक्षी रहने का शाश्वत अनुशासन उस पर लाद रखा गया है, जिसके नीचे वह आज भी दबी हुई है।

इस प्रतिबंधनात्मक स्थिति ने नारी के जीवन को निरंतर गर्हित बनाये रखा। जैसे-जैसे आधुनिक शिक्षा का विकास और प्रसार हुआ विचारों में परिवर्तन आया वैसे-वैसे नारी अपनी इस स्थिति के प्रति जागरूक और चेतनाशील बनी और उसने पुरुष—पराधीनता के विरुद्ध आवाज उठाना शुरू किया। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जिस गुलामी को उसे सहन करना पड़ा, उसके खिलाफ विरोध और विद्रोह की भावना जगी और महिला-मुक्ति का आन्दोलन सर्वत्र व्यापक और गतिशील बन गया। इसमें भी पहल पुरुषों ने ही की। विचारशील पुरुषों ने इस स्थिति की मार्मिकता को अनुभव किया और नारी के प्रति इसे सरासर अन्याय और अनौचित्य माना। इस प्रकार से नारी स्वाधीनता का आन्दोलन भी पुरुष की ही देन है। किन्तु धीरे-धीरे महिलाएं स्वयं भी इस दिशा में अग्रसर हुईं और उन्होंने अपनी स्वाधीन एवं सम्मानपूर्ण स्थिति बनाने के लिये काफी संघर्ष किया। ऐसा करते हुए उन्हें सामाजिक और धार्मिक नियमों, परम्पराओं और व्यवस्थाओं के नाम पर काफी विरोध का सामना तो करना पड़ा परन्तु सफलता उन्हें निरंतर मिलती गई। पुरातनपंथी पुरुषों ने तो यह विरोध किया ही परन्तु आश्चर्य हुआ कि स्वयं महिलाओं ने भी विरोधियों का समर्थन किया। जैसे गुलामों की व्यथा के विरुद्ध किये गये आन्दोलन का स्वयं गुलामों ने विरोध किया था, इसी प्रकार नारी-मुक्ति के आंदोलन का भी स्वयं नारियों ने भी विरोध किया। बहुत से मामलों में आज भी यही स्थिति है।

मारवाड़ी महिलाओं के मामले में तो दोहरी परतंत्रता की बेड़ियां रहीं क्योंकि एक तो सारे देश की स्थिति वैसी थी ही और दूसरे अपने प्रांत (राजस्थान) को छोड़ कर वे जब बाहर आईं तो उनके पिता, पति और पुत्र सब व्यवसाय की एकाग्रता में आबद्ध रहे और किसी प्रकार का सांस्कृतिक जीवन रह ही नहीं गया। उनकी माताएं, बहिनें और पत्नियां पर्दे में घुटती रहीं, शिक्षा के एकांत अभाव के कारण अज्ञानांधकार में पड़ी रहीं और दुनिया में कहां क्या हो गया है या हो रहा है, इसके ज्ञान से दूर

प्रभाव से वे बिलकुल वंचित रही। इस अवस्था में मारवाड़ी समाज में मातृ-मुक्ति का आन्दोलन होना स्वाभाविक था। आज से लगभग पचास वर्ष पहले पर्दा-प्रथा के विरुद्ध ही आंदोलन शुरू हुआ। मारवाड़ी समाज की विभिन्न जातियों के महासम्मेलनों, महासभाओं आदि ने पर्दा-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया और बाद में सारी जातियों के कार्यकर्ताओं ने मिल कर अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन तथा उसके प्रांतीय सम्मेलनों के माध्यम से इस आंदोलन को अग्रसर किया। विचार-प्रचार और आंदोलन से जब काम नहीं चला तो इस प्रथा के विरुद्ध सत्याग्रह भी किया गया और भरी सभाओं में कार्यकर्ताओं द्वारा पर्दा-हरण भी हुआ। मैंने स्वयं स्वर्गीय बसंतलाल जी मुरारका के साथ आगे बढ़ कर एक सभा में पर्दा करनेवाली दो-तीन महिलाओं की ओढ़नियां खींच ली थी। उपस्थित लोगों में से अधिकांश ने हमें गुण्डे भी बताया। पर पर्दा का पट खुल जाने पर उन महिलाओं के चेहरे पर हमें मुक्ति की जो खुशी दिखलाई दी वह अपूर्व थी। इस मुक्ति में सामाजिक क्रांति का नया जयघोष निनादित हो उठा। इसी का परिणाम है कि आज अधिकांश मारवाड़ी नारी पर्दे की शृंखलाओं से निकल कर बाहर आ चुकी हैं और शिक्षा-प्रशिक्षा के क्षेत्र में तो उनकी संख्या काफी हो ही चली है।

इस प्रकार से देश के सर्वतोमुखी नारी जागरण में भाग लेते हुए मारवाड़ी महिलाओं ने नये कीर्तिमान स्थापित किये और आज वे पुरुषों की गुलाम नहीं उनकी संगिनी एवं सहयोगिनी हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह मुक्ति-यात्रा अपने पूर्ण ध्येय तक पहुंच गई है। जितना उसने आज तक किया है, उससे कहीं ज्यादा अभी और करना है। यह तो सारे इतिहास को बदलने की बात है। मारवाड़ी महिला आज भी सामाजिक और आर्थिक बंधनों में जकड़ी हुई है। विवाह जिस तरह से एक बंधन और भार बना हुआ है उसको लेकर आज भी उसके जीवन की भूमिका गौण और परांमुखता की है। दहेज की राक्षसी प्रथा बारबार नारी की पराधीनता को प्रगट करती है। नारी के विवाह के लिये पिता को, या भाई को दहेज की जिस अनिवार्यता को स्वीकार करना पड़ता है वह सरासर नारी का अपमान है। उसकी शिक्षा एवं प्रगति का मखौल है। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के सन्दर्भ में मारवाड़ी नारी की सबसे लड़ाई दहेज के विरुद्ध है, हो रही है और होनी चाहिये। हमारे प्रधान मन्त्री स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू ने नारी को मुक्ति दिलाने के लिये हिन्दू कोड में मूलगामी परिवर्तन और संशोधन करवाये जिनके द्वारा नारी के अनेक पीड़क प्रतिबन्धों को हटाया गया। उससे नारी की सामाजिक स्थिति बहुत बदली और परिष्कृत हुई। स्वाधीन भारत के संविधान ने उसे हर क्षेत्र में हर मामले में पुरुष के साथ बराबरी का स्थान तो दिया तथा अधिकार और कर्तव्य भी बताये परन्तु ये सारे परिवर्तन और सुधार अभी तक भी जीवन में अवतरित नहीं हुए हैं। मारवाड़ी नारी के जीवन में इन सुधारों का प्रभाव एवं प्रतिफल अभी तक पूरा-पूरा नहीं आया है और विवाह के क्षेत्र में दहेज और दूसरी प्रथाओं के विरुद्ध नारी का आन्दोलन चल रहा है। मुझे कई बार यह देखकर बड़ा दुःख हुआ है और होता है कि इस आन्दोलन की अद्यावधि असफलता के लिये अधिकांशतः स्वयं नारियां उत्तरदायी



25 MAR 1975

अ.शा.प. सं. 3-6/74-हिन्दी

अध्यक्ष
CHAIRMAN
राष्ट्रीय कृषि आयोग
NATIONAL COMMISSION ON AGRICULTURE
विज्ञान भवन एनेक्सी, नई दिल्ली
VIGYAN BHAVAN ANNEXE, NEW DELHI

25 मार्च, 1975.

प्रिय श्री सिंघी जी,

आपका पत्र मिला। जानकर प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन, समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए अथक प्रयत्न कर रहा है। उसके लिए आप बधाई के पात्र हैं।

आजकल हमारे समाज में बहुत सी कुप्रथाएं घर कर गई हैं। अतः हर समाज सेवी संस्था का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने सद्-प्रयत्नों से समाज को कुरीतियों के चंगुल से निजात कर स्वस्थ रूप प्रदान करें जिससे राष्ट्र के उन्नत रूप की स्पष्ट झलक देखने को मिल सके।

विवाह आदि के उत्सवों पर दिखावे के लिए बहुत अधिक फिजूल खर्च करना आम फैशन बन गया है। सैकड़ों की संख्या में लोगों को निमन्त्रित करना, बड़ी मात्रा में खाद्य पदार्थों का बरबाद करना है। इससे अतिथि नियंत्रण कानून का उल्लंघन तो होता ही है, साथ में गरीब जनता मुफ्त में पिस जाती है। धनी लोगों की देखा देखी यह बुराई गरीब तबके में भी घर कर जाती है। जिसका दुष्परिणाम उनकी कई पीढ़ियों को भोगना पड़ता है।

दहेज तथा आडम्बर के विरुद्ध चलाए गए आपके आन्दोलन की जितनी प्रशंसा की जाए कम थोड़ी है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि ऐसे आन्दोलन व्यापक रूप से चलाए जाएं। मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं।

भवदीय

(नाथू राम मिर्धा)

सेवा में,
श्री [illegible] मल सिंघी,
सभापति,
अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन,
152बी महात्मा गांधी रोड,
कलकत्ता

सौजन्य से [illegible]

हैं। दहेज की प्रथा काफी दूर तक नारियों की इस भावना और मान्यता के कारण है कि विवाह के रस्म-रिवाज जिन में दहेज शामिल है उसी तरह से होते चलते रहने चाहिये, जैसे पहले होते थे। नारियाँ ही आगे आकर नारी-मुक्ति के विवाह सुधार सम्बन्धी कार्यकर्ता का विरोध करती हैं और अक्सर पिता और पुत्रों को यह कहते सुना जाता है वे जो कुछ करना चाहते है उसमें पत्नियां, माताएं और वहिनें अवरोध पैदा करती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि नारियां ही नारी मुक्ति के मामले में आज दुर्भाग्यपूर्ण शत्रुता कर रही हैं। हमें इसके खिलाफ भी लड़ाई करनी हैं, नये विचारों और भावनाओं वाली नारियों का पुराने ढर्रे की अज्ञान ग्रस्त नारियों की जड़ता के विरुद्ध संघर्ष कायम रखना है और जीवन को शुद्ध सुसंस्कृत और मुक्त बनाना है। इससे यह न समझा जाये कि यह स्थिति केवल मारवाड़ी महिलाओं में ही है। सारा ही महिला समाज इस रोग से ग्रस्त है और अगर हम पहले से ज्यादा नारी-मुक्ति के आन्दोलन को संगठित और गतिशील वना कर इसमें सफलता प्राप्त कर सकें तव ही अन्तर्राष्ट्रीय महिलाओं वर्ष की कल्पना और योजना को सच्चे अर्थों में सफल वना सकेंगे।

('राजस्थानी वीर', सितम्बर १९७५)

विधवा-विवाह के सौ वर्ष

ठीक सौ वर्ष पूर्व आज के ही दिन अर्थात २५ जुलाई को हमारे देश में विधवाओं के पुनर्विवाह का कानून पास किया गया था। लार्ड वेंटिक के जमाने में सती प्रथा के विरुद्ध बनाये गये कानून के बाद सामाजिक सुधार के क्षेत्र में यह विधवा विवाह सम्बन्धी कानून सबसे अधिक महत्वपूर्ण कदम था, जिसने हिन्दू समाज-व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। उस समय इस देश में सारा स्त्री समाज ही अत्यन्त हीनावस्था में था, विकास और प्रगति के सारे मार्ग उसके लिए अवरुद्ध थे और उस अवरोधिता पर धर्म, एवं संस्कृति की मुहर लगी हुई थी। विशेषत: विधवाओं की दुरावस्था का तो हिसाब ही न था। आज भी जब उसका विवरण पढ़ने को मिलता है, तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। एक-तरफ बाल विवाह की प्रथा के प्रचलन और दूसरी ओर विधवा विवाह पर धार्मिक और कानूनी प्रतिवन्ध ने नारी जीवन का मानो गला ही घोंट रखा था। इस दयनीय अवस्था ने राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महापुरुषों को इस स्थिति के परिवर्तन और सुधार के लिए व्यग्र कर दिया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर धर्मशास्त्रों के महान पण्डित थे। उन्होंने अपनी विद्वत्ता से इस तथ्य को प्रमाणित किया कि मूल धर्मशास्त्र की दृष्टि से विधवा के पुनर्विवाह के वारे में कोई आपत्ति नहीं है। उनके अकाट्य प्रमाण और तर्क के आधार पर सुधारक

वर्ग उनके नेतृत्व में सन १८५६ में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून बनवा सका, जिसकी ही आज हम शताब्दी मना रहे हैं। इस महान दिवस के उपलक्ष्य में आज हमारे मस्तक श्री विद्यासागर के प्रति श्रद्धानत हैं।

मार्ग खुल गया

उस दिन जो कानून बना, उसने हिन्दू समाज में विधवाओं की करुणाजनक अवस्था में सुधार तो किया ही, पर उससे बड़ा काम यह हुआ कि सामाजिक मामलों में सुधार के लिये कानून का मार्ग खुल गया। इस कानून को हिन्दू समाज में दलित और दमित वर्गों के उद्धार का अधिकार-पत्र कहा गया है। कानून के आमुख में यह कहा गया है कि विधवाओं के पुनर्विवाह के मार्ग में कानूनी अड़चनों के दूर हो जाने से समाज में नैतिकता का स्तर ऊँचा उठेगा। इस कानून से विधवा विवाह और उससे होनेवाली सन्तान का दर्जा वैध मान लिया गया। रूढ़िवादी हिन्दू समाज को इससे एक जबरदस्त धक्का लगा, उनके विरोध की चट्टान सदा सर्वदा के लिए टूट गयी। सोलह वर्ष बाद ही सन अठारह सौ बहत्तर में विशेष विवाह कानून पास हुआ, जिसने अन्तर्जातीय और अन्तर्धर्मीय विवाह भी वैध करार दे दिये गये। तथापि वर्षों तक हिन्दू समाज में विधवाओं की दशा अत्यन्त विपन्न रही। सन १९३१ की जनगणना में एक वर्ष से भी छोटी उम्र की विधवाओं की संख्या सैकड़ों में, पांच वर्ष से कम उम्र की विधवाओं की संख्या हजारों में और पन्द्रह वर्ष से कम उम्र वाली विधवाओं की संख्या लाखों में थी। महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका से लौटकर आने के बाद यहाँ सामाजिक और राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू किया तो विधवाओं की उक्त संख्या को देखकर उनका कलेजा कांप उठा था और विधवा विवाह के प्रचार पर उन्होंने बहुत जोर दिया। सन् उन्नीस सौ उन्तीस में बाल विवाह निरोधक जिसके शारदा-कानून कहा जाता है, के पास हो जाने से बाल विधवाओं की संख्या में तो कमी हुई परन्तु उन पर होनेवाले सामाजिक अत्याचार में खास कमी नहीं हुई और विधवाओं की दशा सुधारने के लिए प्रयत्न बराबर जारी रहे। सन् उन्नीस सौ सैंतीस में डा० देशमुख का हिन्दू स्त्रियों के सम्पत्तिक अधिकार का कानून बना जिसने विधवाओं को भी उत्तराधिकार, सम्पत्ति के विभाजन और दत्तक पुत्र लेने आदि के बारे में अधिकार मिले। लेकिन ये सब अधिकार विधवा के जीवन काल में ही उपभोग्य थे। सन् उन्नीस सौ छियालीस और उन्नीस सौ उनचास में बने हुए विवाह संबंधी कानूनों ने सब विवाहों को समान कर दिया चाहे वे विभिन्न जातियों में क्यों न हुए हों। और हाल ही में जो हिन्दू विवाह कानून, विशेष विवाह कानून और हिन्दू उत्तराधिकार कानून बने हैं, उनमें विधवा के अधिकारों की सीमा काफी विस्तृत और व्यापक हो गयी है।

वर्तमान दशा

यह सब हुआ और इसका बहुत महत्व है, परन्तु आज भी यह नहीं माना जा सकता है कि विधवाओं की स्थिति पूर्णतया सुधर गई है। आज भी सामाजिक कुप्रथाओं का जाल उनके मार्ग में बिछा हुआ है। हमारे काफी घरों में आज भी शादी ब्याह और दूसरे उत्सवों के अवसर पर विधवाओं को उपस्थित नहीं होने दिया जाता।

सौल सौ उन्नीस

आज भी उसके रहन सहन और वेशभूषा में अविवाहिता और सधवा स्त्रियों की तुलना में बहुत फर्क माना जाता है। और चूंकि अभी तक हमारे संस्कारों में स्त्री को एक वस्तु मानने की बात बैठी हुई है, इसलिए जो वस्तु एक दफा दूसरे की रह चुकी है, उसे पुनः ग्रहण नहीं किया जा सकता, यह मानकर विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार होने पर भी ऐसे लोग बहुत कम सामने आते हैं, जो एक कुमारी लड़की से विवाह की सम्भावना होते हुए विधवा से विवाह करने को तैयार हों। यही वजह है कि आज भी समाज में विधवाओं की संख्या बहुत बड़ी है। सारे देश की जनसंख्या में, सन् उन्नीस सौ इक्यावन की जन-गणना के अनुसार, समस्त विवाहित स्त्रियों की संख्या का लगभग पांचवां हिस्सा विधवाओं का है, यद्यपि बीस वर्ष पहले अर्थात् सन् उन्नीस सौ इकत्तीस की जनगणना में यह अनुपात कहीं बड़ा था। आज भी हमारे देश में पाँच से चौदह वर्ष के बीच की उम्र की एक लाख चौंतीस हजार विधवाएं हैं, जो हमारी सामाजिक अवस्था का अत्यन्त भयानक चित्र है। यह ठीक है कि सन् उन्नीस सौ इकत्तीस और उन्नीस सौ इक्यावन के बीच विधवाओं की संख्या में कमी अवश्य हुई है, पर इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि विधवा विवाहों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है। इस विषय में सन् उन्नीस सौ इक्यावन के जनगणना अधिकारी श्री आर० ए० गोपालस्वामी ने अपने प्रतिवेदन में कहा है 'क्या इसका मतलब यह है कि पतियों की जीवन अवधि में वृद्धि हुई है और इसलिए विधवाओं की संख्या घट रही है। या यह कि विधवाओं के पुनर्विवाह पर लगा हुआ प्रतिबन्ध ढीला हो रहा है और पहले की अपेक्षा अधिक विधवा विवाह होने लगे हैं? इस बात के तो कुछ महत्वपूर्ण संकेत हैं कि पुरुषों की जीवन अवधि में वृद्धि हुई है। जब कि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि विधवाओं के पुनर्विवाहों के मामले में सामाजिक प्रथा की जकड़ में कोई बहुत कमी हुई है। कुल मिलाकर पहला कारण ही, सम्पूर्णतया नहीं तो भी मुख्यतया, विधवाओं की संख्या के अनुपात में कमी होने का हेतु है।

अपमान की स्थिति

जन-गणना के उक्त आंकड़ों से हमारी सामाजिक व्यवस्था का जो चित्र उद्घाटित होता है, उसको देखते हुए चारों ओर सामान्य तौर से समूची स्त्री जाति के प्रति और विशेष तौर से विधवाओं के प्रति जो अपमान और अत्याचार की स्थिति बनी हुई है उसको बदलने के लिए पिछले एक सौ वर्षों में हमारे अग्रगण्य नेताओं ने जो और जितना किया है, उतना ही और उतने ही उत्साह और प्रेरणा के साथ आज भी कार्य करना है। सौ वर्ष पूर्व आज के ही दिन प्रातःस्मरणीय राजा राममोहन राय और ईश्वरचंद्र विद्यासागर प्रभृति सुधारकों की जिस साधना के परिणामस्वरूप हिन्दू-विधवा के पुनर्विवाह का कानून बना था, वह साधना आज भी आवश्यक है। हममें वह जागृति रहे और सफल हो, यही आज हमारी साध और आकांक्षा है। उसके लिए हम अपने-आपको पुनरार्पित करें, यही सबसे महान संकल्प है, जो आज की और आने वाली पीढ़ी का आह्वान कर रहा है। हम संकल्प करें कि सतत् जागरूकता के साथ देश के सामाजिक पुनर्निर्माण के महान कार्य में मनोयोगपूर्वक लगे रहेंगे।

(दैनिक 'विश्वमित्र', २५ जुलाई, १९५६)

ये विवाह, ये आत्म-हत्याएं, ये क्रांतियां !

विवाह, आत्महत्या और सामाजिक क्रांति—यह क्रम अजीब और अटपटा चाहे जितना भी लगे, पर यही क्रम शायद आज इतिहास की जरूरत बन गया है। विवाह में क्रांति की, बुनियादी क्रांति की आवश्यकता है, और उसके रुद्ध द्वार आत्म-हत्याओं से खुल रहे हैं। विवाह में जाति की चलती है, धर्म की चलती है, वंश-परम्परा और शास्त्र की चलती है, और सबसे ज्यादा चलती है धन की, नहीं चलती है हृदय की, सम-शीलता की और सह-सम्वेदना की। विवाह पर ताला लग गया है—जड़ परम्परा का, अंधे धर्म का, दहेज का, मिलों और कारखानों का। और बँधा कौटुम्बिक जीवन चलता है, जिसके साथ सब कुछ चलता है, हृदय नही चलता है। और तब समाज का हार्द रुद्ध हुआ रहता है। ऐसे में विकास और प्रगति की आशा दुराशा मात्र होती है।

मैं विवाह देखता हूँ जिसमें लड़के-लड़की क्या देखते हैं, पता नहीं, माता-पिता देखते हैं—घर कैसा, कितना समृद्ध, कितना लेन-देन होगा, कारबार में कितनी मदद मिलेगी, अमुक सम्बन्ध से समाज में कितनी प्रतिष्ठा बढ़ेगी आदि-आदि। और इन सब बातों के विचारों-कल्पनाओं से ढका बँधा विवाह दो व्यक्तियों के बीच बिना हार्द का सम्बन्ध बांधता है, जो जब तक चल सकता है, चलता है, नहीं चल पाता तो टूट जाता है, बिना टूटे-टूटे जैसा हुआ रहता है। ये बनावटी ममताएँ अपने अन्दर से विषमताएँ पैदा करती हैं, जिनसे विवाह चाहे नहीं टूटे, जीवन टूट जाते हैं, आदमी टूट जाते है, समाज नहीं टूटते। और हम टूटे हुए मरे हुए और रुँधे हुए व्यक्ति-यंत्रों के समूह के नाम पर समाज के अविच्छिन्न रूप का गुणगान करते हैं। ऐसे में कभी-कभी मृत्यु जीवन का पाथेय दे जाती है। आत्म-हत्या का यह दर्शन विचारणीय है। आत्म-हत्या दुर्बलता है, कायरता है, पर कभी-कभी दुर्बलता का मार्ग ही जीवन का रुद्ध कपाट खोलता है। फांसी की सजा से खत्म एक ही आदमी होता है, पर विचार करने को, सही रास्ते पर आने को सबको सीख मिलती है। एक फांसी बहुतों को फांसी से बचने-बचाने का सबक है। वैसे ही एक आत्महत्या बहुतों को आत्मरक्षा के लिये मार्ग का इंगित और जीवन-बल का संकेत है।

विचारों के इसी ऊहापोह में मेरे सामने कितने विवाह, उनके साज-सजावट वाले मंडप, बाजे-गाजे, स्वागत-सत्कार, भेंट-उपहार, मंत्र और संस्कार, चित्रपट के क्रमागत दृश्यों की तरह गुजर रहे हैं और फिर इन्हीं विवाहों के परिणामों को कभी बहुत और कभी थोड़े दिनों के बाद ही चीत्कार करते देखता हूँ, कभी खुली चीत्कार और कभी बंद चीत्कार ! तो समस्याएँ दीखती हैं, जिनपर आंखें बंद की-की गईं और यह चीत्कार आत्म-हत्या बन जाती है, मिट्टी का तेल डालकर स्वयं आग की

के विकास में पर्दा प्रथा बाधा है

में अपील

The Sunday Hindusthan Standard

WOMEN MUST COME OUT FROM PURDAH

SARDAR PATEL'S SPEECH IN RAJASTHAN

BARODA, JAN. 15.—"You must discard 'purdah'. You must … your women to see the world so that women may also realise … duties to the motherland. They must be made literate, and … be ample time to serve their fellow men and women. … this duty education will be incomplete and they will not … play their proper role in shaping the future of the … Sardar Vallabhbhai Patel said … Congress workers and Ministers … Lakshmivilas Palace … to the Govt. and the …

NEW MARWARI MOVE TO END PURDAH SYSTEM

Marwari Satyagraha Against Purdah

FIGHT … MARWARI …

SATYAGRAHA AGAINST PURDAH SYSTEM

MOVE BY MARWARI FEDERATION

PURDAH DRIVE

...nday Statesman

...k the abolition of the purdah ... of a bridegroom about to leave ... yesterday.—Statesman.

Marwari Couples' Satyagraha Against Purdah

CALCUTTA, ...

सत्या...

दो ह...

Amrita Bazar Patrika

ANTI-PURDAH MOVEMENT

Marwari Youngmen & Women Launch Satyagraha

SATYAGRAHA AGAINST PURDAH

Prominent Marwari Leaders Take Part

JUGANTAR

মারোয়াড়ী যুবক-যুবতীর উদ্যম

...াহানুষ্ঠানে পর্দাপ্রথা বন্ধের জন্য সত্যাগ্রহের সিদ্ধান্ত

পর্দা প্রথার বিরুদ্ধে আন্দোলন

বিবাহ বাড়ীতে সত্যাগ্রহ

कानूनसे पर्दा हटे

प्रांतीय सम्मेलनकी मांग

(निज प्रतिनिधि द्वारा)

THE INDIAN EXPRESS, FRIDAY, NOVEMBER ...

ANTI-PURDAH SATYAGRAHA

CALCUTTA, ...

लपटों में लोट जाती, दवा की प्रचुर मात्रा खाकर लड़का सो जाता है और एक झटका लगता है। लपटों में नये समाज की लिखावट दीखती है, मृत्यु की सुषप्ति में जीवन का पथ झकझोरता है।

मनुष्य के मतिष्क की दौड़ बढ़ी है—दिशाओं का विस्तार बढ़ा है। वह नई चीजें पैदा कर रहा है, और उनका उपयोग कर रहा है, नये जीवन-स्तर का सृजन हो रहा है, वह नया आदमी है, तब हृदय के दिगन्त बँधे रह सकते हैं? हृदय की अनुभूति और अभिव्यक्ति के द्वार और दिशाओं में नया प्रकाश फैल रहा है। और क्या आश्चर्य की बात है कि बाहर से बदलता हुआ बदलने के लिए दौड़-भाग करता हुआ आदमी अन्दर से अपरिवर्तित और बँधा और रुका रहना चाहता है। यह विषमता कहीं सब कुछ को तोड़-फाड़ कर वास्तविकता को समाज की गति में स्थान देती है, कहीं घुट-घुट कर प्राण देती है, और कहीं आत्महत्या या हत्या के मार्ग से खत्म होकर इतिहास की युग-व्याख्या करती है।

परम्परा प्रतिगामिता का सबसे बड़ा शस्त्र है। और इसलिए परम्पराश्रित प्रतिगामी लोग विवाह को मंत्रों की भाषा की परम्परा में ही नहीं, हमारी समाज-व्यवस्था की सब जड़ परम्पराओं में बांधे रखना चाहते हैं। अर्थ-लाभ के लिये परम्परा को तोड़ कर कोई भी नई प्रवृत्ति या रीति स्वीकार कर ली जाती है, पर जीवन-लाभ के लिये परम्परा की अक्षुण्णता ही आज हमारी सांस्कृतिक महत्ता और विशिष्टता हो गई है। परिणाम यह है कि हम जीते और तरह हैं (जैसे कि सभी लोग जीते हैं और जी सकते हैं) और बोलते और तरह हैं। सारा जीवन ढोंग है और जितना ज्यादा ढोंग, उतना ज्यादा धर्म और दर्शन का माहात्म्य। अपने तिलक-छापों की मर्यादा के लिये, प्राचीन धर्म परम्परा की अक्षुण्णता के लिए, जीवन को घुटने के लिये, नष्ट होने के लिए, आत्महत्या करने के लिए बाध्य करते हैं। पर जीवन अमर है, आत्महत्या उसी अमरता का प्रयास है। इस विरोधाभास को समझने की आवश्यकता है।

विवाह से लगी-जुड़ी इन आत्महत्याओं से लड़के की बात सुनो, लड़की की बात सुनो और तब विवाह करने वाले माता-पिताओं, दलालों और पंडितों के चेहरे देखो। इन आत्महत्याओं की कालिख उनके चेहरों पर मिलेगी। इन चेहरों की कालिख मिटे या रहे, ये आत्महत्याएं लड़कियों की, लड़कों की, समाज की दीवारों को आश्रय तो देंगी, दरवाजों को अवश्य खोलेंगी। विवाह मुख्यतः दो शरीरों का और दो हृदयों का मिलन है, समाज उसमें से बनता है, पर वह भूमिका नहीं, निष्पत्ति है इस मिलन की चाह में, इच्छा के अनुबन्ध में, सम्बन्ध की सम्पूर्ति में जाति का बन्धन, धर्म की तथाकथित मर्यादा, धन का ऊँचा-नीचापन अनुचित है, असम्भव है यदि रुपये की तराजू पर विवाह-सम्बन्ध होंगे, यदि जाति की दीवारों में विवाह का मर्यादा-बंधन रहेगा, यदि भाषा, खानपान और प्रदेश का सीमा-बंधन दो हृदयों के बीच दीवार रहेगा, यदि अर्थ के समाजवाद और राज्य व्यवस्था के लोकतंत्र के बावजूद विवाह कर सामंतवाद कायम रहेगा, यदि बाप-दादों की रीति और मर्यादा की रक्षा के नाम पर विवाह की वेदी पर बलिदान का होम होगा तो क्रांति की आग प्रज्वलित

K. K. BIRLA

[illegible]

होगी। हम जायेंगे पर आने वालों का मार्ग साफ होगा। आज लुके-छिपे पापाचारों से, विवाह-विच्छेदों से, आत्महत्याओं से अनेक धर्म के घरों में आग लगी है, जिसकी रोशनी में जड़ता और ढोंग की काली रेखाएं स्पष्ट दीखती हैं। जीवन की सहज प्रकृति और स्वभाव से विमुख रहना असम्भव है, असत्य है, और धर्म का सबसे बड़ा मखौल है। आत्महत्याएं इस मखौल को, इस पाप को, इस धर्म का आश्रय देने वाली व्यवस्था को, क्रांति के पथ पर ले जाने वाली हैं। अनेक विधवाओं के करुण क्रंदन और शरीर-दाह से पुनर्विवाह की अर्गला खुली, अनेक अल्पवयस्क बालिकाओं के आंसुओं के प्रवाह ने बाल-विवाह को हटाया, और विवाह में वर्तमान वैषम्य को आत्महत्याओं से प्रेरित क्रांति दूर करेगी।

('सम्मेलन संदेश', दैनिक विश्वमित्र, १७ अक्टूबर १९६३)

कन्यादान के लिये दहेज-दक्षिणा : आखिर समाज इस बोझ को कब तक ढोता रहेगा ?

स्वराज्य के बाद समाज-सुधार और सामाजिक क्रान्ति का स्वर यदि बन्द हो गया है या धीमा पड़ गया है, तो यह नहीं मान लेना चाहिए कि समाज की जिन रूढ़ियों एवं कुसंस्कारों को दूर करने के लिए हमने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जो संघर्ष और आन्दोलन किया, वे अब नहीं हैं। यदि सचमुच ऐसा हो गया होता, तो समाज और सामाजिकता का स्वरूप आज भिन्न ही होता। सच तो यह है कि कई सामाजिक बातों में हमारी कठिनाइयां पहले की अपेक्षा अधिक हो गयी हैं। इनमें जात-पांत (जिसमें अस्पृश्यता सम्मिलित है) और दहेज की प्रथा विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों प्रथाओं का जो रूप आज दिखाई दे रहा है, वह पहले से कहीं बदतर है।

स्वाधीनता आन्दोलन के समय हमारे कुछ नेता यह कहा करते थे कि विदेशी शासन से मुक्ति मिलने पर जब राजनीतिक सत्ता और स्वत्व हमारे अधिकार में आ जायेंगे, तो सामाजिक रूढ़ियों और कुप्रथाओं को कानून द्वारा अनायास ही दूर किया जा सकेगा। इस तर्क के आधार पर ही वे कहते थे कि समाज-सुधार के आन्दोलन में शक्ति का अपव्यय न कर हमें अपनी सारी शक्ति स्वतंत्रता की लड़ाई में लगानी चाहिए। स्वराज्य के बाद जो कुछ हुआ, उससे हमें अनुभव हो गया—और उन नेताओं को भी जरूर अनुभव हो गया होगा—कि उक्त विचार सही नहीं था। इसी प्रकार जिन लोगों ने कहा था कि शिक्षा की उन्नति और अभिवृद्धि, खास तौर से महिलाओं में शिक्षा की वृद्धि के साथ सामाजिक परिवर्तन अपने-आप आ जायेंगे, उन्होंने भी यह देख लिया कि शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो जाने से ही सामाजिक रूढ़ियों और प्रथाओं के बंधन नहीं टूट जाते। राजनीतिक स्वतन्त्रता और शिक्षा की उन्नति से सामाजिक प्रगति का मार्ग सरल तो अवश्य बन जाता है, परन्तु सैकड़ों-हजारों वर्षों से चली आ रही सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों और उनके आधार पर बने हुए संस्कारों से मुक्ति पाने के लिए निरन्तर संघर्ष और आन्दोलन करते रहना होता है। वास्तव में, सामाजिक मुक्ति का आन्दोलन राजनीतिक और आर्थिक मुक्ति के आन्दोलन से ज्यादा कठिन होता है, क्योंकि सामाजिक संस्कारों को बदलने के लिए मनुष्य को अपने आप से, वर्षों से चली आ रही धारणाओं और उनके कुसंस्कारों से लड़ना होता है। विशेषतया जिन संस्कारों और रूढ़ियों के साथ धर्म और शास्त्र के बंधन लगे हुए हैं, उनकी जकड़ से छुटकारा पाना तो बहुत ही कठिन होता है। जो समाज सुधारक इस मार्ग पर चले हैं, उनका इतिहास संघर्ष का, विरोध का, लांछना का, बहिष्कार का और तरह-तरह से दी गई दूसरे प्रकार की यातनाओं का इतिहास है। इस संघर्ष और

यातना में से निकले बिना सुधार का मार्ग प्रशस्त नहीं होता और सुधार
नहीं होता ।

बड़ी राजनीति की छोटी दृष्टि

हमारे देश में आज सामाजिक क्रान्ति का कार्य दबा हुआ, रुका हुआ है । गांधी और नेहरू दोनों ने बार-बार कहा था कि राजनीतिक स्वतंत्रता सामाजिक-आर्थिक स्वतंत्रता का कार्य आरम्भ होगा और जब तक वह नहीं तब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता का, जन-साधारण के जीवन की दृष्टि से, बहुत नहीं होगा । हमने इस प्रकार से कहा और सुना जो भी हो, सामाजिक प्रग दिशा में हम बहुत कुछ कर नहीं सके । समाजवादी समाज के प्रजातन्त्रात्मक की बात हमने बहुत की है और देश के सारे सामाजिक-आर्थिक ढांचे को समाज विचारों के अनुसार विकसित करना भी चाहते हैं । परन्तु कैसी अजब बात जिन पुराने विचारों, धारणाओं और मूल्यों से समाज की जड़ें बंधी हुई हैं और कारण समाजवाद पनपना संभव ही नहीं है, उनको बदलने के काम को हम उतन नहीं देते, जितना देना चाहिए ।

आज न तो संसद में, न विधान सभाओं में और न आये दिन होने वाले सम्मेलनों तथा विचार-गोष्ठियों में सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध कुछ करने की सुनी जाती है । जैसा कि एक बार दहेज के प्रश्न पर बोलते हुए तत्कालीन सदस्य श्री महावीर त्यागी ने कहा था, इन छोटे सवालों पर बहुत समय और खर्च करने की आवश्यकता नहीं है । वस्तुतः यह बड़ी राजनीति की छोटी दृ जो जड़ को नहीं, पेड़ की पत्तियों और डालियों को देखती है । इस तरीके से वाले समाजवाद नहीं ला सकते । वास्तव में जब तक समाज की जड़गत व्याधि दूर करके उसे स्वस्थ नहीं बनाया जायेगा, तब तक समाजवाद का पौधा नहीं पायेगा, इसलिए समाजवाद की अनिवार्य पूर्वभूमिका के रूप में भी सा रूढ़ियों के विरुद्ध सतत् अभियान की आवश्यकता है ।

स्वराज्य के पच्चीस वर्ष बाद भी हम दहेज की दानवी प्रथा से मुक्त हुए । आज भी दहेज की विभीषिका लड़कियों और उनके माता-पिताओं के पर बुरी तरह से छायी हुई है । दहेज का प्रचलन पहले से ज्यादा हुआ है, उस नये रूप सामने आ रहे हैं । विवाह में कन्यादान के बाद दक्षिणा के रूप में के पिता द्वारा वर पक्ष को गो-दान करने की परिपाटी से आरम्भ होकर दहेज प्रथा घर-गृहस्थी में काम आनेवाली चीजों जैसे बर्तन, वस्त्र और गहने आदि देन में समाप्त हो जाती थी, उसका रूप और आकार अब तो बृहद से बृहत्तर जा रहा है । सुरसा की तरह दहेज की प्रथा बढ़ती ही जा रही है । आज तो इस कोई सीमा ही नहीं है । वर और वर का पिता वधू के पिता से जितना भी पा ले, ही रहता है । विवाह की बात-चीत चलने हो, लड़की-लड़के का विचार बाद

लडके का पिता लखपति, लड़की का पिता खाकपति

लड़की के पिता को सगाई के अवसर पर, विवाह के पहले तक विभिन्न त्योहारों पर और विवाह के अवसर पर क्या-क्या और कितना-कितना देना होगा, इसकी पूरी फेहरिस्त बन जाती है और उस पर देने वाले कन्या के पिता के और लेने-वाले वर के पिता के हस्ताक्षर हो जाते हैं। इन फेहरिस्तों को वर भी देख लेता है और कोई चीज बाकी रह गई हो, तो उसे भी जोड़ देता है। जो वस्तुएं आकार में छोटी-बड़ी और मूल्य में कम-ज्यादा रुपयों की होती हैं, उनके बारे में आकार और मूल्य भी निर्धारित कर लिये जाते हैं। उदाहरणार्थ मोटर का इकरार हुआ है, तो वह किस कम्पनी की होगी, यह उल्लेख कर दिया जाता है। इसी प्रकार से फ्रिज, रेडियो, घड़ी, पेन आदि भी किस कम्पनी के होंगे, कितने-कितने दामों के होंगे आदि खुलासा कर लिया जाता है। इनमें से कुछ चीजें तो 'इम्पोर्टेड' भी होनी ही चाहिए, जो लड़की का पिता तस्करों के बाजार से खरीदने के लिए बाध्य होता है। जो समाज या वर्ग जितना अधिक सम्पन्न है, उसमें दहेज का उतना ही अधिक प्राबल्य है और उसकी मात्रा भी उतनी ही अधिक है। साथ ही, वर के खानदान, शिक्षा और नौकरी या व्यवसाय में उपार्जन-क्षमता के अनुपात में भी दहेज के आकार-प्रकार और रकम में वृद्धि हो जाती है। दस-दस लाख तक के दहेज की बात भी मेरी जानकारी में है। पहले कीमती जेवर और मोटर की मांग को ही बड़ा समझा जाता था, पर अब तो मकान और फ्लैट आदि की भी मांग होने लगी है। वास्तव में लड़के के पिता में लड़की वाले की स्थिति और साधन या उसकी विवशता को देखते हुए जितना अधिक से अधिक ऐंठना संभव है, उतना ऐंठ लेने की प्रवृत्ति होती है।

यह कथन सच है कि लड़का, बाप के लिए दहेज के रूप में धन लाने का अच्छा साधन है। जिस बाप के दो-चार लड़के हैं और जिसमें उनको लिखा-पढ़ा कर योग्य और कमाऊ बना देने की क्षमता है, वह बिना किसी दूकान और फैक्टरी के ही लखपति बन सकता है। इसके विपरीत जिस बाप के दो-चार लड़कियां है, उसके लिए खाकपति हो जाने, कर्जदार बन जाने का सारा सरंजाम हो जाता है। लड़के के बाप के लिए जो वरदान है, वही लड़की के बाप के लिए भीषण अभिशाप है। लड़के और लड़की के जीवन में कितना अंतर हो जाता है! एक पुरानी कहावत है कि जिस पिता के जितनी लड़कियां हैं, उतनी हुंडियों का उसे भुगतान करना पड़ता है। जब यह प्रथा चालू है, तो लड़की अपने जीवन की गौणता और विवशता को कैसे भूल सकती है? कैसे वह समानता का एहसास कर सकती है? वह अपनी स्थिति से—लड़की होने की स्थिति से—दुखी हो उठती है, कातर हो जाती है।

दहेज के कारण सबसे दुखद स्थिति तो तब होती है, जब करार के मुताबिक वहू के साथ दहेज नहीं आता अर्थात उसका पिता वचन के अनुसार पूरा दहेज नहीं दे पाता। जब ऐसा होता है, तो वर और उसके माता-पिता निराश होकर सारा बदला वहू से निकालते हैं, उसके साथ तरह-तरह का दुर्व्यवहार करते हैं, दिन-रात उसे सताते हैं और कष्ट देते हैं, उसे घर से निकाल देते हैं और फिर घर में वापस नहीं आने देते। इस दुरवस्था में अगर लड़की आत्महत्या कर लेती है, तो ताज्जुब

की बात नहीं। जिस घर में वह जीवन के सारे अरमान लेकर आती है, उससे उस तरह का व्यवहार पाकर—और वैसा सिर्फ इसलिए कि उसका पिता ससुरालवालों का मन नहीं रख सका, मुंहमांगा दहेज नहीं दे सका—तो उसके लिए तिल-तिल करके, या एक बार में ही जिंदगी खत्म कर लेने के अतिरिक्त और क्या चारा है?

आये दिन ऐसी घटनाओं के समाचार मिलते रहते हैं, जिनमें दहेज के कारण युवतियों को ससुराल के लोगों द्वारा घोर यंत्रणा देकर मार दिया जाता है या मरने को बाध्य कर दिया जाता है। ज्ञात घटनाओं के आंकड़े ही एकत्र करें, तो सैकड़ों हजारों युवतियों की करुण गाथाओं का ढेर लग जायगा। इस प्रकार की दिल-दहलाने वाली घटनाओं से भी वर और वर-पक्ष के लोगों का दिल नहीं दहलता। उनके हृदय में अबोध और निरीह बालिकाओं के प्रति करुणा का भाव भी नहीं आता। वरन्, वर या वर का पिता खुश ही होता है क्योंकि उस बहू के न रहने पर दूसरा विवाह करके, और दहेज पाने का अवसर बन जाता है। इस हृदयहीन प्रलोभन वृत्ति के बारे में क्या कहा जाये?

लड़कियों के आंसू और चीत्कार कब तक?

आजकल दहेज का नया रूप यह भी सामने आया है कि लड़की का पिता अपने भावी दामाद के लिए नौकरी या व्यवसाय की समुचित व्यवस्था करे। यदि वर और उसके पिता को यह विश्वास हो जाये कि अमुक पिता की लड़की से विवाह कर लेने से उसकी साधन-क्षमता या संपर्क-क्षमता से नौकरी मिल जायेगी, तो वस्तुओं और गहनों के बड़े लेन-देन के बिना भी विवाह हो जाता है। किसी रूप में हो, यह विवाह नहीं, सौदा ही होता है लड़की के लिए इससे ज्यादा और गर्हित स्थिति क्या हो सकती है? लड़कियां होती हैं, जो इस स्थिति में आंसू पीकर रह जाती हैं; लड़कियां होती हैं, जो इस गर्हित स्थिति को स्वीकार कर विवाह करने की अपेक्षा कुआंरी रह जाना पसंद करती हैं और कुछ लड़कियां ऐसी भी होती हैं, जिनकी संवेदना उनको आत्महत्या की ओर ढकेल देती है। हमारे समाज पर न मालूम कितनी ऐसी आत्महत्याओं का खून लगा है! इस खून के बावजूद समाज की चेतना नहीं जगी और सारे आंसुओं, करुण चीत्कारों और अभिशापों को लेकर समाज चल रहा है।

निस्संदेह इस संबंध में लड़की के माता-पिता का भी कम दोष नहीं है, उनके सामने भी लड़के के गुणों की अपेक्षा उसके घर और कुटुम्ब की आर्थिक स्थिति और सामाजिक प्रतिष्ठा आदि का ही सवाल मुख्य होता है। जहां तक हो सके, वह अपने से अधिक संपन्न परिवार में ही अपनी लड़की देना चाहते हैं। जहां लेन-देन की यह स्थिति है, वहां बड़े घर के लिए बड़ी कीमत चुकाने की जिम्मेवारी उठानी ही पड़ेगी। इस सारी लज्जाजनक स्थिति में सबसे दुखद बात तो यह है कि लड़के—तथा-कथित उच्च शिक्षा प्राप्त लड़के भी—आर्थिक प्रलोभनों में फंसे रहते हैं। कैसा दुर्भाग्य है कि आज ऐसे युवक बहुत कम दिखाई देते हैं, जो इस प्रलोभन को त्याग कर अपनी जीवन-संगिनी चुनें और दहेज एवं अन्य सामाजिक रीति-रिवाजों को तोड़ने के लिए कदम उठावें।

आये दिन सगे-संबंधियों और जान-पहचान वाले लोगों से उनकी दहेज संबंधी कठिनाइयों की बात सुनता रहता हूं। स्वतंत्रता-संग्राम और समाज-सुधार आंदोलन के समय के कतिपय सहकर्मियों को जानता हूं जिनको अपनी लड़कियों का विवाह संपन्न करने में दहेज न दे सकने की विवशता के कारण कठिनाई हो रही है, जिन्होंने सामाजिक, सार्वजनिक, रचनात्मक कार्यों के लिए ही लोगों से दान-चंदा मांगा, वे आज अपनी लड़की के विवाह के लिए लोगों के सामने हाथ पसार कर भीख मांगते हैं। सिद्धांत और आदर्श की बात वे कहां तक सोचें ?

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस स्थिति का अंत कहां और कैसे हो ? जब हमारी राष्ट्रीय सरकार बनी थी और उसके द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक नवनिर्माण की योजनाओं का सूत्रपात हुआ था तथा देश के नेताओं ने नये समाज के विकास की दिशा में कदम उठाने की बात कही थी, तो दहेज का प्रश्न भी आया था। हमने यह आशा की थी कि हिन्दू कोड के अंतर्गत विवाह और तत्संबंधी सारे सवालों पर विचार किया जायेगा और उनका हल निकाला जायेगा। उस कोड द्वारा जो कुछ भी हुआ हो, दहेज का प्रश्न नहीं सुलझा। हिन्दू समाज के उत्तराधिकार संबंधी कानून में संशोधन कर पुत्री को भी पिता की संपत्ति में उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार करने के बावजूद दहेज की प्रथा बनी ही रही। शुरू-शुरू में संसद और संसद के बाहर दहेज की समस्या को दूर करने के लिए कानून बनाने की बात भी उठी, परन्तु आज तक कुछ हुआ नहीं।

सन् १९५३ में केन्द्रीय सरकार के तत्कालीन कानून मंत्री स्व० चारुचंद्र विश्वास ने बड़े आत्मविश्वास से संसद में कहा था—"कानून बना कर दहेज प्रथा को बन्द कराने वाला मैं पहला व्यक्ति होऊंगा" उन्होंने कानून का मसविदा भी बनाया था और उस पर विभिन्न राज्यों की राय भी ली थी, पर कहां वह मसविदा गया, कहां वह घोषणा रही, किसी को कुछ पता नहीं। इसी प्रकार से पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री स्व० विधान चंद राय ने भी १९५८ में विधान सभा की साम्यवादी सदस्या श्रीमती मणिकुंतला सेन के दहेज-निरोधक प्रस्ताव को यह कह कर वापस करवा दिया था कि वे स्वयं दहेज के विरुद्ध कानून बनाने के लिए उपयुक्त बिल पेश करेंगे। उसकी भी यही गति हुई, जो स्वर्गीय विश्वास की घोषणा की हुई थी, परन्तु कुछ राज्यों में तो कानून बन ही गये थे, जैसे बिहार में। पर हुआ तो उससे भी कुछ नहीं। जब तक सामाजिक विचार धारा और दृष्टिकोण पर से अतीत की शृंखलाएं नहीं हटतीं और जन-मानस में परिवर्तन नहीं होता तब तक कानून के द्वारा सामाजिक संस्कारों में परिवर्तन नहीं हो सकता।

दहेज की जड़ में जायें, तो हम देखेंगे कि कन्यादान को जब तक हम विवाह में अनिवार्य शर्त मानते हैं, तब तक दहेज की प्रथा बनी ही रहेगी, जब तक यह धारणा कायम है कि कन्यादान करने से सात वंशजों को नरक से बचा लेने का पुण्य होता है और कन्यादान न करने से पिता को भ्रूण हत्या का पाप लगता है तब तक यह प्रथा निःशेष कैसे हो सकती है। जहां दान है, वहां दक्षिणा भी रहेगी, साथ ही जात-पांत की व्यवस्था के कारण भी इस प्रथा की जकड़ को बल मिलता है। महात्मा गांधी ने सन् १९३६ में एक बार कहा था कि "इस रिवाज का जाति-व्यवस्था से घनिष्ठ संबंध है, जब तक वर-वधू का चुनाव जाति के कुछ सौ लड़के-लड़कियों में से

2 MAY [illegible]

CHIEF MINISTER
JAMMU AND KASHMIR



NO: CMS/[illegible]-7/75
Jammu-Tawi,
April [illegible], 1975.

Dear Shri Singhi,

Many thanks for your letter of [illegible] 18, 1975, which was delivered in my office only today. I am glad to know that your [illegible] has been carrying on a social campaign against ostentatious [illegible] functions on various social occasions. Apart from creating difficult and expensive precedents for common man, extravagance and needless functions on social occasions are probably one of the [illegible] contributory causes for spiralling prices [illegible]. At this critical juncture when we are passing through very difficult times we can hardly afford these luxuries and we must do all that is possible to discourage vulgar display of wealth in [illegible] extravagant expenditure. No legislation however stringent can, however, rid our society of this pernicious social evil. [illegible] persuasion alone will perhaps awaken the conscience of all right-thinking persons and make them [illegible] the [illegible] consequences of ostentatious living. I wish you all success in this [illegible].

With good wishes,

Yours sincerely,

[illegible]

(S.M. A[illegible])

Shri [illegible] Singhi,
President,
All India [illegible] Federation,
[illegible]
[illegible]
Calcutta [illegible].

[illegible]

ही होगा दहेज रहेगा ही, भले ही हम उसके खिलाफ कुछ भी कहें अतः यदि इस बुराई को दूर करना है, तो लड़के लड़कियों को, या उनके माता-पिताओं को जाति की सीमाओं को तोड़ना होगा। विवाह की उम्र को भी बढ़ाना होगा ताकि योग्य वर न मिलने पर लड़कियां कुवांरी रह सकें। यह सब उस चरित्र-निर्माण की शिक्षा से ही होगा जो कि देश के युवा समाज में क्रांति लायेगा।"

युवा समाज में क्रांति की बात कहते हुए उन्होंने फिर लिखा था कि —"दहेज की पातकी प्रथा के खिलाफ जबर्दस्त लोकमत बनाया जाना चाहिए। जो नौजवान इस प्रकार गलत ढंग से लिये गये धन से अपने हाथों को अपवित्र करें, उन्हें जाति से बहिष्कृत कर देना चाहिए। लड़कियों के मां-बाप को भी अपनी कन्याओं के लिए वर खोजने को अपनी जाति और प्रांत के बाहर जाने में झिझकना नहीं चाहिए।" तात्पर्य यह है कि जब तक कन्या को दान की वस्तु माना जाता रहेगा, विवाह-प्रणाली में कन्यादान, पंचाग और सप्तपदी आदि का विधान अनिवार्य रूप से कायम रहेगा और जब तक विवाह के साथ जाति और गोत्रादि के प्रतिबंध माने जाते रहेंगे, तब तक उसके साथ लगी हुई प्रथाएं, विशेषकर वे प्रथाएं, जिनके साथ स्वार्थ जुड़ गये हैं, कायम रहने ही वाली हैं। वास्तव में, कानून हो तो, और न हो तो, दहेज के विरुद्ध एक संगठित जन-आंदोलन होना चाहिए। एक सामाजिक, सांस्कारिक विप्लव की आवश्यकता है, जिसके द्वारा इस धारणा को हमेशा के लिए निकाल दिया जाये कि स्त्री के लिए विवाह करना अनिवार्य है और वयस्क होते ही इस अनिवार्य शर्त की पूर्ति हो जानी चाहिए और यह भी कि विवाह स्वजाति के अन्तर्गत ही होना चाहिए। जब ये भ्रामक और विवेकहीन धारणाएं हटेंगी, तभी स्त्री और पुरुष की संपूर्ण समानता का वातावरण बन पायेगा। तब विवाह लड़के और लड़की की खुद की पसंदगी और निर्णय से होगा, माता-पिताओं के विचार और निर्णय से नहीं। लड़के के लिए और लड़की के लिए लड़का स्वयं आकर्षण और प्रेम का केन्द्र होगा, माता-पिता की संपत्ति और प्रतिष्ठा का हिसाब उसमें नहीं होगा। तब दहेज का प्रश्न उठेगा ही नहीं।

दूसरे देशों में दहेज की समस्या है ही नहीं, क्योंकि वहां विवाह लड़के-लड़की के खुद के निर्णय से होता है और यह निर्णय एक-दूसरे के प्रति आकर्षण और चाह के आधार पर होता है। जब तक विवाह का आधार हमारे यहां भी यही नहीं हो जाता, तब तक माता-पिता का लोभ दहेज को कायम रखेगा ही। कहने का मतलब यह है कि विवाह में दोनों पक्षों की पसंदगी और निर्णय का आधार बदलना चाहिए और माता-पिताओं के निर्णय की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। इसके साथ ही जो लोग दहेज का लोभ फिर भी त्याग नहीं सकते और उस पर जोर देते हैं, उनकी सौदेबाजी की समुचित निंदा होनी चाहिए। श्री मंगल दास पकवासा ने एक बार व्यंग्यपूर्वक कहा था— "दहेज की सौदेबाजी करने वाले लोगों का 'उपयुक्त सम्मान' किया जाना चाहिए।" उनका कहना था कि जैसे किसी लंपट और धोखेबाज व्यक्ति के लिए 'श्री चार सौ बीस जी' कहा जाता है, वैसे ही दहेज लेकर अपने लड़के के विवाह का सौदा करने वालों को 'श्री दस हजार जी' 'श्री एक लाख जी' आदि व्यंग्य-विशेषणों से सम्बोधित किया जाना चाहिए।

युवा पीढ़ी आगे आये !

कहना न होगा कि कोई समाज सदा एक सा नहीं रहता। कुछ भी प्रयत्न न हो, तो भी समाज बदलता है और पुरानी से पुरानी मान्यताओं का भी अंत आता है। परन्तु प्रश्न समय का है। इस काम को केवल समय के लम्बे हाथों में छोड़ दें और समाज के क्रंदन और चीत्कार पर कान बंद कर हम चुप बैठे रहें या अपनी चेतना से उद्‌बुद्ध हो कर तथा समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना से प्रेरित हो कर दहेज प्रथा को रोक-थाम कर समाज में सर्वत्र सुख और शांति का वातावरण लाकर पुरुषार्थ-वान बनें ? यह देख कर आश्चर्य ही होता है कि इस ज्वलंत समस्या के संदर्भ में महान सामाजिक कर्तव्य और उत्तरदायित्व उठाने के लिए हमारी युवा पीढ़ी आगे नहीं आ रही है। जो युवक आधुनिकता की, यौन मुक्ति तक की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, वे भी न केवल दहेज से व्यथित समाज की समस्या की उपेक्षा करते हैं, बल्कि स्वयं भी उसके शिकार और शिकारी बन जाते हैं। जब तक इस प्रकार की प्रथाओं को दूर करने के लिए युवक विप्लवी कदम नहीं उठायेंगे, साहस पूर्वक संघर्ष नहीं करेंगे, तब तक हमारी बहनें और बेटियां दहेज-दानव की बलि होती ही रहेंगी। जब तक यह स्थिति रहेगी, नयी सामाजिकता और उसके नये मूल्यों की बात कोई अर्थ नहीं रखती।

जो युवक दहेज-प्रथा के कारण होनेवाली सामाजिक वेदना को अनुभव नहीं करते और इस प्रथा के कारण होने और किये जानेवाले जुल्म से अलग नहीं होते, विचार में और क्रिया में इसका विरोध नहीं करते उनका यौवन और पुरुषार्थ निरर्थक है; उनकी युवा-क्रांति की सारी बातें व्यर्थ हैं।

(धर्मयुग, १७ सितम्बर, १९७२)



[illegible]

21 मार्च 1975

प्रिय [illegible],

[illegible]

[illegible]

[illegible]

क्या विवाह संस्था जीवित रहेगी ?

आये दिन बहुओं और बेटियों के दाह या आत्मदाह की खबरें चारों तरफ से सुनाई पड़ती है। यह दाह या आत्मदाह अपने-आप में बहुत चिंताजनक है और इससे यह साफ मालूम होता है कि यह सब विवाह के नाम पर ही होता है। अधिक समय तक लड़की का विवाह न होने पर तरह-तरह की आलोचना होती हैं, जो लड़कियां किसी काम में पारंगत हो जाती है, उनके लिए भी विवाह बहुत आवश्यक माना जाता है। जब तक उनका विवाह नहीं होता, तब तक उनके माता-पिता एक तरफ अपनी लड़की के गुणों से प्रसन्न होते हैं, लेकिन दूसरी तरफ वे उनका विवाह न होने की वजह से दुखी और चिंतित भी होते हैं। इसके कारण लड़कियों के ऐसे विवाह हो जाते हैं कि उनको दाह या आत्मदाह का शिकार होना पड़ता है। आजकल जाति, धर्म और देश आदि का तो बन्धन उठ रहा है, पर उसकी जगह दहेज का बन्धन मजबूत हो चला है। जो लड़का जितना ज्यादा पढ़ा-लिखा और कमाऊ होता है, वह उतना ही ज्यादा दहेज मांगता है। वास्तव में जब तक यह विवाह संस्था रहेगी, तब तक लोगों के सामने यह परेशानी आती ही रहेगी, तो क्या विवाह संस्था हमेशा बनी रहने वाली हैं ?

स्त्री पर बन्धन

मैं यह मानता रहा हूं कि विवाह भी स्त्री पर एक बड़े बन्धन के रूप में है। किसी जमाने में यह कहा जाता था कि स्त्री बचपन में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहती है और उसे वैसे ही रहना चाहिये। आज इस बात का कोई महत्व नहीं है। स्त्री उतनी ही स्वतन्त्र है, जितना पुरुष है। तब विवाह ही स्त्री के जीवन के बन्धन के रूप में क्यों रहे ? हम बन्द समाज से मुक्त समाज की ओर बढ़ रहे हैं और विज्ञान की उपलब्धियों और सम्पन्नताओं के कारण जीवन के सारे प्रश्नों पर मुक्त चिन्तन आवश्यक है। यह कहना मुझे सरासर गलत लगता है कि विवाह एक धार्मिक संस्कार है। हमें साफ-साफ यह मानना चाहिये कि विवाह दो लोगों के बीच कामेषणा की तृप्ति का केंद्र है। अगर यही केंद्र मुख्य है, तो इसमें जाति या धर्म का भेद महत्वहीन है।

शुरू में विवाह एक संस्था के रूप में नहीं था, पर ज्यों-ज्यों सभ्यता आगे बढ़ी और स्त्री पर पुरुष का बन्धन बढ़ता गया, त्यों-त्यों वह संस्था बन गया। उसे संस्था बने भी हजारों वर्ष हो गये। यह उन संस्थाओं और प्रथाओं में हैं, जिनसे नारी को बन्धन में रखा गया है और रखा जा रहा है। नारी जैसे-जैसे इन बन्धनों से मुक्त हो रही है, वैसे-वैसे धर्म और नैतिकता चिल्ल-पों मचा रही है। विवाह दो आत्माओं का मिलन है, एक धार्मिक कृत्य है, सतानोत्पत्ति की सामाजिक भूमिका है,

स्त्री की सुरक्षा आदि का साधन है—ये सारी बातें झूठी हैं। वस्तुतः विवाह यौन इच्छा की पूर्ति का सर्वमान्य साधन है और इसमें भी पुरुष जितना अधिकार स्त्री पर रखना चाहता है, उतना स्त्री पुरुष पर नहीं। इंग्लैंड में तो कोर्ट के द्वारा यह भी फैसला दिया गया है कि विवाह दो पुरुषों के बीच भी हो सकता है। अलग-अलग समय पर अलग-अलग देशों में अलग-अलग धर्मों और जातियों के द्वारा अलग-अलग तरह की परिभाषाओं में विवाह को बांधा गया है। परन्तु एक भी परिभाषा सम्पूर्ण नहीं है।

थोड़े दिनों पहले मेरे यहां स्वीडन के एक मित्र आये थे, विवाह की बात चली तो वे हँसने लगे। वे खुद एक स्त्री के साथ रहते हैं और उन दोनों के बीच यौन सम्बन्ध भी हैं, पर यह जरूरी नहीं है कि वे दोनों किसी संस्था या प्रथा के रूप में विवाह करें। वहां जितना पुरुष स्वतन्त्र है उतनी ही स्त्री भी स्वतंत्र है। वास्तव में आज का सारा सामाजिक नवचिंतन सारे बंधनों को हटा रहा है, तब विवाह की संस्था भी क्यों रहे? वहां यह जरूरी नहीं है कि संतान को अपने पिता का ही नाम बताना पड़े। जिस मां ने उसको जन्म दिया है, उसी का नाम दर्ज कर लिया जाता है। अब नये सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पश्चिमी देशों में संतानोत्पत्ति के प्रश्न ही नहीं खड़े होते और हों तो भी किसी प्रकार का बन्धन नारी के जीवन पर नहीं लगता और नहीं लगना चाहिये। शरतचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'शेष प्रश्न' में लिखा है कि "सतीत्व ही सम्पूर्ण नारीत्व नहीं है।" उन्होंने बिल्कुल स्पष्ट कहा था कि "हृदय में प्रेम नहीं, तो मंत्रपूत विवाह विडम्बना मात्र है।"

एक बार स्व० डा० राममनोहर लोहिया ने मुझसे कहा था कि स्त्री के सम्बन्ध में शारीरिक शुचिता की बात उठा कर पुरुष अपने को निरंतर पवित्र मानते हुए स्त्री को अधिकारपूर्वक बांध कर रखना चाहता है। यह रूढ़ और गलत चिंतन है। इस तथाकथित शुचिता की मान्यता नारी के व्यक्तित्व और उसके विकास में निरन्तर बाधा पहुंचाती है। यही कारण है कि बहुत दिनों तक समाज ने विधवा विवाह को स्वीकार नहीं किया और उसके लिये स्व० प० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को काफी परिश्रम करना पड़ा। यदि विवाह के बन्धन में बंधे पति और पत्नी भावनात्मक मैत्री और परस्पर आकर्षण के अभाव में यौन जीवन में समरस नहीं हो सकते, तो वे स्वतन्त्र यौन सम्बन्ध क्यों न अपनायें। इससे चिढ़ने वाले वही लोग हैं, जो धर्म और नैतिकता के आकाश में बैठे हुए बातें करते हैं, जब कि जमीन पर जीवन इतना रूखा और बदला हुआ है।

विवाह के बन्धनयुक्त वातावरण में इतना घुटन है, इतनी अशांति है, इतना हाहाकार है कि जो लोग सामाजिक निषेधों के कारण इस बन्धन को तोड़कर बाहर नहीं निकल सकते, वे अनेक प्रकार की विकृतियों के शिकार हो जाते हैं। एक बहुत बड़े वैज्ञानिक डा० स्टेन मैन ने कहा है कि आज बहुत बड़ी संख्या में लोग यौन जीवन में अतृप्ति और असंतोष के कारण ही रुग्ण हैं। हिन्दू विवाह कानून में यद्यपि अब विवाह पर से जाति, धर्म, वर्ण और प्रदेश के सब बंधन हट गये हैं और तलाक की स्वीकृति भी दे दी गयी है, फिर भी इस पर विवाद है। जनता की बहुत बड़ी

बढ़ रही है और यह विवाह संस्था के खोखलेपन को ही साबित करती है। कई लोग तलाक के बारे में अमरीका का उदाहरण देते हैं कि तलाक की वजह से वहां कई समस्याएं खड़ी होती हैं। पर, ऐसे प्रश्न कहां नहीं खड़े होते ? हमारे देश में जहां तलाक होते हैं, जीवन का हाहाकार सुनाई पड़ता है।

परिवर्तन व सुधार की मांग

विवाह संस्था के नियमों और पद्धतियों में बराबर ही परिवर्तन और सुधार की मांग बढ़ रही है, परन्तु लोगों को यह साफ-साफ बताने की हिम्मत नहीं होती है। जो संस्था सड़ चुकी हैं और जिसकी सड़ांध जीवन को सड़ा रही है उसे खत्म करने की बात भी प्रकट करने का साहस लोग नहीं करते। अमरीका में भी वैवाहिक जीवन की विकृतियों को मानते हुए भी न्यायमूर्ति लिंडसे ने विवाह संस्था को खत्म करने की बात कहने की हिम्मत नहीं की। जो लोग विवाह संस्था के इस रूप से भयभीत होते हैं, वे भी सुधार के अनेक उपाय तो बताते हैं, पर वे सारे उपाय अपूर्ण ही हैं। जब तक विवाह संस्था का मूलोच्छेद नहीं होगा, तब तक समस्या बनी ही रहेगी। हमारे देश में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने नया हिन्दू कोड बनाकर नारी को कुछ तो मुक्ति दिलायी ही। पर वे भी केवल हिन्दुओं के लिए ही नया कोड बनवा सके। इस देश में रहने वाले मुसलमानों को वे नहीं छू सके। इसका फल हमें आज तक भोगना पड़ रहा है। न्यायमूर्ति छागला ने ठीक ही कहा था कि हिन्दुओं के लिये नया कोड बनाने और उसको मुसलमानों के लिये लागू न करने की बात स्व० पं० जवाहरलाल की एक बड़ी भूल थी।

हम संक्रमण काल से गुजर रहे हैं। यह स्वाभाविक है कि आज की स्थिति को बदलने के लिये हम जो कुछ प्रयत्न करेंगे, उससे बड़ी उथल-पुथल होगी। विवाह संस्था कब हटेगी और सारे संसार में नारी पर लगे हुए बन्धन कब टूटेंगे, यह कहना बहुत कठिन है। लेकिन इस बात के संकेत मिल रहे हैं कि यह संस्था भी हटेगी और खत्म होगी। इसमें शायद वर्षों लग जायें, पर यह स्थिति आ सकती है कि स्त्री और पुरुष अपनी पसन्द से अपनी इच्छा के अनुसार अपने को स्वतंत्र रखते हुए साथ रहें, वे चाहें तो उनके बीच यौन सम्बन्ध भी रहें और चाहें तो सन्तानोत्पत्ति भी। और समाज उन पर उंगली नहीं उठाये। वास्तव में अब युग परिणय का नहीं, प्रणय का है, यानी दो व्यक्तियों के बीच परम्परा का नहीं भावनात्मक मैत्री और सह-जीवन का सम्बन्ध रहे।

('धर्मयुग', ३ अप्रैल, १९८३)

'मारवाड़ी' शब्द : मराठी-गुजराती कोश

लगभग चालीस वर्ष पहले, जब अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन का का जन्म हुए दो तीन वर्ष ही हुए थे, समाज के कुछेक बन्धुओं ने सम्मेलन का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया था कि मराठी और गुजराती भाषाओं के कतिपय कोशों में 'मारवाड़ी' शब्द का बहुत ही विकृत और अनुचित अर्थ दिया गया है और सम्मेलन द्वारा उसका प्रतिवाद किया जाना चाहिये—उस अर्थ को सम्बन्धित कोशों से हटवाना चाहिये। मैं भी उस समय सम्मेलन का एक सक्रिय कार्यकर्त्ता था। मुझे स्मरण है कि सम्मेलन की ओर से सम्बन्धित कोशों के सम्पादकों-प्रकाशकों को प्रतिवाद के पत्र भेजे गये थे, और साथ ही सरकार को भी लिखा गया था। उसका फल भी हुआ था। सन् १९२५ में प्रकाशित 'माडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी' (दो खण्ड) के संकलन-कर्त्ता और प्रकाशक ने जिन अर्थसूचक शब्दों पर आपत्ति की गई थी, उनको हटा देने का आश्वासन दिया था। उन्होंने वैसा किया भी। अभी इसका प्रमाण भी मुझे मिला। कलकत्ता स्थित राष्ट्रीय ग्रन्थालय में मुझे उक्त कोश के सन् १९२५ के ही संस्करण को देखने का अवसर मिला। उसमें द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ११९७ पर 'मारवाड़ी' का अंग्रेजी में जो अर्थ दिया गया है, उसकी अन्तिम दो पंक्तियों पर चिप्पी लगाई हुई है। उस चिप्पी से अर्थ-रूप में दिए गए जो शब्द ढँक दिये गये, उनके बाद जो शब्द रह गये उनके बारे में आपत्ति की शायद कोई बात न हो; हालांकि parsimonious और miserly (कंजूस, कृपण) शब्द अभी भी हैं।

मुझे ठीक याद नहीं कि जो चर्चा इस विषय को लेकर उस समय छिड़ी थी, वह कब बन्द हो गई और किस परिणाम के साथ ? क्या बाद में लोगों ने इसे निष्फल माना या अनावश्यक समझा ? कुछ कार्यकर्त्ताओं का विचार उस समय यह भी था कि जिन लोगों ने इस प्रकार का असंगत और अनुचित अर्थ किया है, वे अज्ञानी और नासमझ हैं—जानबूझकर उन्होंने मारवाड़ी शब्द का ऐसा अनर्थ करके मारवाड़ी समाज पर आक्रमण नहीं किया है। यदि इसको किसी प्रकार का आरोप या आक्रमण माना जाय, तो उसी कोश में 'मुसलमान' शब्द के अर्थ में mischievous शब्द का प्रयोग भी तो वैसा ही है। कोश के द्वितीय खण्ड में पृष्ठ १२१४ पर 'मुसलमान' शब्द का अर्थ प्रतिपादित करते हुए इस शब्द का प्रयोग किया गया और वह आज भी विद्यमान है। जो हो, बात वहीं समाप्त हो गई और तदनन्तर वर्षों तक फिर इस बारे में कुछ नहीं सुना गया।

पिछले वर्ष पुनः यह चर्चा शुरू हुई। विशेषतः महाराष्ट्र में रहने वाले मारवाड़ी बन्धुओं ने इस ओर सारे देश के मारवाड़ी समाज का ध्यान आकर्षित किया

और समाज की कतिपय संस्थाओं ने इस प्रकार के अर्थ-प्रतिपादन के विरोध में एक आन्दोलन भी खड़ा किया, पत्र-पत्रिकाओं में भी इसकी चर्चा हुई। महाराष्ट्र और गुजरात की सरकारों को प्रतिवाद के पत्रादि भी लिखे गये। सम्मेलन के पास भी कई स्थानों से कई मित्रों और संस्थाओं के पत्र आए। सम्मेलन का सभापति होने की हैसियत से मैंने इस विषय पर यथा प्रसंग अपने विचार प्रकट किये पर मुझे केवल इससे ही संतोष नहीं हुआ। सम्मेलन के मध्यप्रदेशीय संगठन के विशिष्ट कार्यकर्त्ता अकोला निवासी श्री जमनालाल जी गोयनका, जो विगत चुनावों तक महाराष्ट्र की विधान सभा के सदस्य थे और महाराष्ट्र शासन में उपमन्त्री भी थे, से हमने सारी स्थिति को समझने की चेष्टा की। जब कुछ अर्से पहले वे कलकत्ता आए थे, तो उनके साथ विस्तार से इस विषय में चर्चा हुई। उनसे यह भी विदित हुआ कि जब यह विषय महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री के सामने आया तो उन्होंने भी आपत्तिजनक अर्थ-प्रतिपादन को गलत और अनुचित बताया और सरकार इस विषय में आवश्यक और उपयुक्त कार्रवाई करेगी, ऐसा भी कहा। बाद में देश में जो राजनीतिक उलट-फेर हुआ, उसमें कितनी और क्या कार्रवाई हुई, इस बारे में कुछ पता नहीं चला।

इसी बीच मेरे मन में यह बात उठी कि जिन कोशों और उनमें प्रतिपादित मारवाड़ी शब्द के अर्थ को लेकर सवाल उठा है, उनका समुचित अनुसंधान करके वस्तु-स्थिति को जानने और समझने का प्रयत्न करूँ। मेरे तईं अभी तक बात सारी ऊपर-ऊपर ही चलती थी—जिन कोशों की बात को लेकर चर्चा है, उनको अभी तक देखा—पढ़ा ही नहीं। अनुसंधान की बात मन में आते ही यह भी खयाल आया कि देश का सबसे बड़ा पुस्तकालय 'राष्ट्रीय ग्रन्थालय' तो कलकत्ता में ही है। यहाँ इस प्रकार का अनुसंधान सुविधा से हो सकता है। वहां के जो अधिकारी मेरे मित्र हैं, उनसे इस बारे में मैंने चर्चा की। श्री बद्रीनारायण जी भँवर, जो माहेश्वरी समाज के एक विशिष्ट कार्यकर्त्ता है, अमरावती जिला मारवाड़ी संघर्ष समिति, अमरावती की ओर से इस सम्बन्ध में प्रकाशित-प्रसारित साहित्य लेकर मुझसे मिले। उनके मन में एक प्रश्न यह भी उठ रहा था—क्या 'मारवाड़ी' का इस तरह का विकृत, दुर्भावनाजनित और अपमानकारी अर्थ देनेवाले कोशों के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई नहीं हो सकती ?

ये सब बातें होने पर उपलब्ध कोशों का पूरा अनुसंधान करने की बात मेरे मन में और तीव्र हो उठी और मैंने इस दिशा में छान-बीन करने की ठानी। राष्ट्रीय ग्रन्थालय की ओर से सन् १९६४ में भारतीय भाषाओं के कोशों की एक तालिका प्रकाशित की गई थी। उसी को मैंने अपने अनुसंधान का आधार बनाया। इसी तालिका के अनुसार सन् १९६४ में सब तरह के कोशों की कुल संख्या मराठी में ९९ और गुजराती में ८४ थी। इनमें से गुजराती के ९ और मराठी के २० कोश राष्ट्रीय ग्रन्थालय में उपलब्ध हैं। गुजराती और मराठी के इन सब २९ कोशों में 'मारवाड़ी शब्द का अर्थ निम्न प्रकार मिला :—

मराठी कोश

(1) Molesworth's Marathi English Dictionary—Published by Sharad Gogate and Avinash Ogela for Shubhadra Saraswat,

Poona, First edition 1831, Second edition : 1857, corrected reprint of second edition : 1975.

मारवाड़ी (मरूड़)—Relating to मारवाड़, a country lying to the north of Gujrath as Malwalies to the East. 2—Native of that country but applied esp, to men who employ themselves as cornchandlers and grocers. 3—Applied allusively to a cunning and Knavish fellow.

(२) श्री भारतवर्षीय प्राचीन ऐतिहासिक कोश : लेखक—रघुनाथ भास्कर गोडबोले। प्रकाशक चित्रशाला प्रेस पुणे। प्रथम संस्करण-१९२८ 'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

(३) राजवाड़े मराठी धातुकोश (भाग पहिला) लेखक—के० विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े। सम्पादक—कृष्णजी पांडुरंग कुलकर्णी। प्रकाशक—राजवाड़े संशोधन मंडल, धुले।

प्रथम संस्करण—१९३७

'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

(४) महाराष्ट्र शब्द कोश :—सम्पादक—यशवंत रामकृष्ण दाते, चिन्तामण गणेशकर्वे, आभादोशकर और चिन्तामण शंकर दातार। प्रकाशक—महाराष्ट्र कोशमंडल लि०, पूना। प्रथम संस्करण—१९३८

मारवाड़ी—पु० मारवाड़ देशांतील व्यापार धंदा करणारी एक जात, तीतील व्यक्ति, वि० १—मारवाड़ देशां सम्बन्धी २—तद्देशीय (व्यापार करणारे लोक) ३—ल० धूर्त, शठ, कृपण, काविवाज, व्यवहार-दक्ष (सं० मरु) म्ह० मारवाड़ी मित्र नाहीं, पायखाना पवित्र नाहीं, व्यणा—पु० कंजूशपणा, (पृष्ठ २४७२ खण्ड—६)

(५) श्री ज्ञानेश्वरी शब्दार्थ कोश : लेखक—शिवाजी नरहर भावे। प्रकाशक—ग्राम सेवा मण्डल, वरधा। प्रथम संस्करण—१९५१।

'मारवाड़ी' शब्द नहीं है।

(6) The Aryabhushan School Dictionary (Marathi-English) by Shridher Ganesh Vaze, published by Shri K. G. Sharangpani at the Aryabhushan Press, 915/1, Shivaji Nagar, Poona-4. First edition—1911, Seventh reprint—1955.

'मारवाड़ी'—A, relating to मारवाड़, Native of that country.

(७) मराठी शब्द रत्नाकर (मराठी शब्दोंचा मराठींत अर्थ देणारा कोश)—सम्पादक—के० वासुदेव गोविन्द आपटे। प्रकाशक—आनन्द कार्यालय प्रकाशन, पुणे। प्रथम संस्करण—वर्ष नहीं दिया गया है। चतुर्थ संस्करण—१९५६

'मारवाड़ी'—(सं० मरु० पु०) मारवाड़ी देशांतील लोक, कृपण, व्यवहार दक्ष। (पृष्ठ—४७३)

(८) आधुनिक मराठी वाङ्मयाचा इतिहास : लेखक—अ० ना० देशपांडे। प्रकाशक—व्हीनसी प्रकाशन पुणे। प्रथम संस्करण—१९५८

'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

(९) वैदर्भी बोलीचा शब्दकोश : लेखक—देवीदास गंगारामजी सोटे प्रकाशक देवीदास गंगारामजी सोटे, वर्धा।

'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

(१०) ज्ञानेश्वरी चें शब्द भांडार : सम्पादक—रामचन्द्र नारायण वेलिंगकर प्रकाशक—मराठी संशोधन मंडल, मुंबई—२ प्रथम संस्करण—१९५९

'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

(११) ऐतिहासिक शब्दकोश : लेखक—य० न० केलकर। प्रकाशक—ठोकल प्रकाशन, पुणे। प्रथम संस्करण—१९६२ (दो खण्ड)।

'मारवाड़ी' शब्द नहीं है।

(१२) महाराष्ट्र—सारस्वत (पुरवणी सह) : लेखक—के० विनायक लक्ष्मण भावे। पुरवणी लेखक—शं० गो० तुलफूल। प्रकाशक—पापुलर प्रकाशन मुम्बई-३४। पाँचवाँ संस्करण—१९६३।

'मारवाड़ी' शब्द नहीं है।

(१३) श्री गणेश कोश—सम्पादक—अमरेन्द्र गाडगी। प्रकाशक—वोरा ऐंड कम्पनी प्रा० लि० मुम्बई-२। प्रथम संस्करण—१९६८।

'मारवाड़ी शब्द नहीं है।'

(१४) आदर्श मराठी शब्द कोष : सम्पादक—प्रह्लाद नरहर जोशी प्रकाशक—विदर्भ मराठवाड़ बुक कं०, १३३४, शुक्रवार पेठ पूना-२। प्रथम संस्करण—१९७०।

'मारवाड़ी' (न)—१—मारवाड़ देशातील व्यापार धन्धा करणारी एक जात वाँ तीतील व्यक्ति २—मारवाड़ी देशासम्बन्धी ३—तद्देशीय व्यापार धन्धा करणारे लोक ४—धूर्त, शठ, कृपण, कावेबाज, व्यवहारदक्ष (स) व्यणा (पु०) कंजषपणा (पृष्ठ ९४९)।

(१५) बृहत् मराठी—हिन्दी शब्द कोश : सम्पादक—गो० प० नेने, श्रीपाद जोशी। प्रकाशक—महाराष्ट्र भाषा, सभा, पुणे। प्रथम संस्करण-१९७१।

मारवाड़ी—पु०। मारवाड़ी, मारवाड़वासी, राजस्थान का निवासी २—वनिया वि० कंजूस, मक्खीचूसपणा—पु० कंजूसी (पृष्ठ ५७८)

(१६) भारतीय संस्कृति कोष : (आठ खण्ड) सातवाँ खण्ड। मराठी

भाषा व साहित्यते राजस्थान
सम्पादक—महादेव शास्त्री जोशी,
सह सम्पादक—सौ० पद्मजा होडारकर।
प्रकाशक—भारतीय संस्कृति कोष मण्डल
४१०, शनिवार पेठ, पुणे-३०
प्रथम संस्करण—१९७२

'मारवाड़ी'—मारवाड़ातील देशना मारवाड़ी म्हणतात, राजस्थानातील जोधपुर या संस्थानालाय मारवाड़ दुसरे नाण होते मारवाड़ना शब्द, मरुवार या मरुस्थल वाचक या अपभ्रंश आहे।

मारवाड़ी लोक सांप्रत भारताच्य सर्व भांगांत पसरलेले आहेत। व्यापार ही त्यांचा मुख्य व्यवसाय होय। ते बहुतेक वाणी म्हणून ओलखले जातात। कारण खेड़ोपाडी त्यांचीवांण। सामानाची दुकाने असतात। त्याच्यांत अग्रवाल, ओसवाल, खण्डेलवाल, पोरवाल, मैश्री अशा अनेक जाती आहेत। तमेच ब्राह्मण ही आहेत। त्यांचांतील ब्राह्मण आपणास ६- ज्ञानी ब्राह्मणम्हण वितात। कारण सहा प्राचीन ऋषी पासून आपली उत्पत्ति झाली। असे ते मानतात। त्या पोरेजातीचो नावेद-छ्यवस, गूजरगौड, खण्डेलवाल पारीख, शिखाल व सारस्वत अशी आहेत। त्यांच्यांत लग्न संबध होत नाही, पण रीतीभांती, भापा पांवरुन ते मुलात एकान्य जातीचे असावे असेवाटते। मच्या वेद यजुर्वेद असून, शाखा माध्यंदिन आहे:

महाराष्ट्रात यांची वसती बरीच आहे। त्यांतील काही जैन आहेत; तरफाही वैष्णव आहेत। गिरीचा वालाजी हा वैष्णां चा देव आहे।

मारवाड़ी लोक मेहनती, शांत व मितव्ययी आहेत। ते व्यापार बरोबर व सावकारी व दलाली करुन वेरच श्रीमंत झाले आहेत। त्यांची भापा मारवाड़ी ही आहे। ते बहुतेक शाकाहारी असून, डालरोटी वतूप त्यांचे मुख्य अन्न असते।

जाट मारवाड़ी म्हणून एक जात आहे। त्याजातीचेलोक मद्यमांसेहारी आहेत तो शेती करतात (म० ज्ञा० को०) खांड ७—पृष्ठ—३३७

(१७) मराठी विश्वकोश: परिभाषा संग्रह। सम्पादक—श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी। प्रकाशक—महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडल, बम्बई। प्रकाशन—१९७३।

'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

(१८) मराठी वाङ्मय कोष: प्राचीन खण्ड

मुख्य सम्पादक—अ० ना० देशपांडे

प्रकाशक —नागपुर, विद्यापीठ प्रकाशन, नागपुर

प्रथम संस्करण—१९७४

'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

गुजराती कोश

(1) A Pocket Dictionary (Gujrati-English) by Karsandas Mulji, published by Union Press, Bombay in 1868.

'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

(2) A Dictionary (Gujrati and Gujrati-English) compiled by Cassidas Brij Bhukan Das and Balkisan Das Brij Bhukan Das and published by Kathiawad General Press in 1885.

'मारवाड़ी' :—

(१) मारवाड़ देश सम्बन्धी

(२) (n) ए देश ना लोक,

(३) (a) कंजूस

(४) ठग, हरामखोर,

1—Relating to Marwad 2—A Marwari 3—Parsimonious 4—a cheat, a rogue. (पृष्ट ७५७)

(३) गुजराती भाषानो कोश : (नौ खाँड)

प्रकाशक—गुजराती वरनाकूलर सोसायटी, अहमदाबाद ।

प्रकाशनकाल—१९१६-१९२३

'मारवाड़ी' वि० मारवाडनु, मारवाड-

सम्बन्धी, मारवाडनुवतनो ।

पृष्ठ—५२ (—मसेव)

(4) The Modern Gujrati-English Dictionary compiled by Bhanusukhram Nirgunram Mehta and Bharatram Bhanusukhram Mehta—Volume 1 & 2, Published in 1925.

'मारवाड़ी'

Adj. (S. मरूवाह a desert) मरू—a waterless country and वाट a region Retating to Marwad.

2. Parsimonious, miserly.

3. (S.M.) A Marwadi. an inhabitant of Marwad.

(४) चिप्पी लगाकर अर्थ को ढँक दिया गया है ।

(पृष्ठ ११९७—द्वितीय खण्ड)

(५) सार्थ गुजराती जोडनी कोश ।

सम्पादन-प्रकाशन—गुजरात विद्यापीठ, अहमदावाद ।

प्रथम संस्करण—१९२९ । पंचम संस्करण—१९६७ ।

'मारवाड़ी'—१ ...मारवाड़नू

२—ला० मारवाड़नू

३—पु० मारवाड़ना रहेवासी

४—स्त्री० मारवाड़नी भाषा (पृष्ठ—६६२)

(६) भगवद् गोमंडल : सम्पादन—भगवत सिंहजी । प्रकाशन...गोंडल स्टेट, गोंडल (सौराष्ट्र) गुजरात । प्रकाशन १९५३ ।

'मारवाड़ी' :...१...पु० मारवाड़ देशनोवतनी, मारवाड़-वासी, मारवाड़नों रहेवासी ।

२...पु० मोटा व्याज थी नानाघोरनार माणस, गमे तेने नाणांधीरी तेनी पाने की रकम कढ़ावे तेवो माणस ; मारवाड़ी व्याज ; नफाखोरी ।

३—स्त्री० ए नामनी एक लिपि ।

४—स्त्री० एक घोड़ानी जात ।

५—स्त्री० भैया अने घाघरीनो ए नामनी

एक अटक । हिन्दुस्तानमां साहित्य घरावनारा तरे माहेनी एक आर्य भाषा । एक जातनी राजस्थानी भाषा । मारवाड़ी भाषा । मेर लोक़ोनो एक भाग सिन्धु किनारे

थी मारवाड़ मां जई वस्या हतो। कोई अनुमान करे छे के मेवाड़नु अपभ्रंश मारवाड़ थयो छे। तथा मारवाड़ी भाषा प्रान्तीय भाषातरो के बोलायछे।

६—न० ए नामणी अटकनूं माणस।

७—वि० ए नामनी अटकनु।

८—वि० मारवाड़ ने लगतु। मारवाड़ सम्बन्धी। मारवाड़नु।

९—वि० लोभी, कंजुस, मक्खीचूस, धुतारू, कस काढ़े तेव, ठग, लच्चु, हरामखोर। पृष्ठ ५४-७१८७

(७) विनीता जोड़नी कोश। प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद। प्रथम संस्करण १९५४।

'मारवाड़ी'—मारवाड़ रजपूतानामा आवेलो एक प्रदेश।

मारवाड़न—मारवाड़ी स्त्री।

मारवाड़ी—१—मारवाड़नु २—कंजूस (ला०) ३—मारवाड़नों रहेवासी ४—स्त्री० मारवाड़नी भाषा (पृष्ठ—५३४)

(8) The Student's Modern Dictionary (Gujrati into Gujrati and English)

लेखक—धनवंत एम० देसाई एवं कांतिलाल मेहता।

प्रकाशक—ए० आर० शेठ एण्ड कम्पनी, बम्बई।

प्रथम संस्करण—१९३६। अष्टम संस्करण—१९५८

'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

(9) Gala's Advanced Dictionary : English-Gujrati edited by M. A. Mazumdar, Published by Gala Publishers. Ahmedabad. First Edition—1969.

'मारवाड़ी' शब्द है ही नहीं।

मेरे अनुसंधान के उक्त परिणामों से स्पष्ट हो जाता है कि मराठी के १८ कोशों में से ११ में तो मारवाड़ी शब्द है ही नहीं और ४ में जो अर्थ दिया गया है, वह समीचीन है। केवल तीन कोशों में ऐसा अर्थ प्रतिपादित किया गया है जिसके बारे में आपत्ति की जा सकती है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि विद्यार्थियों के लिए प्रकाशित कोशों में मारवाड़ी शब्द है ही नहीं, इसी प्रकार गुजराती के उक्त ९ कोशों में से २ में मारवाड़ी शब्द है ही नहीं और ४ में जो पर्याय और परिभाषा दी गई है, वह समीचीन है। केवल ३ कोशों में प्रतिपादित अर्थ अनर्थकारी है—आपत्तिजनक है। उक्त जानकारी से यह भी लगता है कि जो अर्थ आपत्तिजनक है, उनको लिखने के पीछे कोशकारों की दुर्भावना और कलुषित मनोवृत्ति नहीं है, बल्कि लाक्षणिक रूप में वह परम्परा से चला आया है, किसी प्रकार की व्युत्पत्ति या वैयाकरणीय नियमों के आधार पर नहीं है। इसी प्रकार से The Modern Gujrati English Dictionary में मुसलमान शब्द का अर्थ देते हुए mischievous शब्द का भी प्रयोग किया गया है। कुछेक कोषों के प्राक्कथनों को पढ़ने पर मेरी यह धारणा ही पुष्ट हुई है। वास्तव में, मराठी और गुजराती भाषियों के द्वारा दैनन्दिन व्यवहार में मारवाड़ी नाम से जो भी

अर्थ-बोध चला आता था, वहां ले लिया गया है। मैंने जो सब कोश देखे हैं, उनमें जे० टी० मोल्सवर्थ (१७९५-१८७२) का मराठी-अंग्रेजी कोश सबसे पुराना है। उसका प्रथम प्रकाशन १८३१ में हुआ था और दूसरा संस्करण १८५७ में हुआ था। प्रथम संस्करण में ४० हजार शब्द थे और दूसरे संशोधित परिवर्धित संस्करण में ६० हजार शब्द है। इस परिवर्धित संस्करण का पुनर्मुद्रण सन् १९७५ में हुआ है। उसमें दिये गये अर्थ की अन्तिम पंक्ति में प्रतिपादित है—"applied allusively to a cunning and knavish fellow" जिसका मतलब है—आम लोग जैसा सुनते-समझते हैं, मारवाड़ी चालाक और धूर्त आदमी का नाम है। आपत्ति करने वाले कुछ लोगों ने—"allusively" शब्द को "exclusively" समझ और कह कर उसके बारे में चर्चा की है। यह भूल सुधारी जानी चाहिए। मोल्सवर्थ ने किन आधारों पर और किस अधिकार से अपने कोश में विभिन्न शब्दों के अर्थ प्रतिपादित किये हैं, यह जानने की जिज्ञासा मन में उठने पर मैंने उनका लम्बा प्राक्कथन ध्यानपूर्वक पढ़ा और जैसी धारणा हमने बनाई थी, वह सच निकली। उन्होंने अपने प्राक्कथन में लिखा है—

"Authority for the senses given, although always acceptable, is not so necessary of a living language; and for the use of persons dwelling amidst the native speakers of it, as in the case of a dead language and for profound closet-students. For authority, should any sense be questioned, is ordinarily at our very elbow, in the chat of our domestics or in the converse of passage before our street-door……… Senses, however, will be contested; for what Native knows the language wholly and yet what Native admits that he knows it partially. Let all objectors understand and let the learner rest assured that for the senses, provincial or local corroborative statement and illustration often strikingly satisfactory have been afforded by province-inhabitants; and that senses of the arts and the workshop have come in form and again been referred unto tailors, weavers, potters, herdsmen and horse-jackies. Natives, especially Brahmns, will do to the learner as they have abundantly done to ourselves—they will make reckless affirmations and denials respecting senses of words and they will affirm and deny on one day what they will deny and affirm a few days after; and this not necessarily form any evil intent but form lack of conservancy and training in the character and usage of popular languages."

अपने प्राक्कथन के उक्त अंश के द्वारा मोल्सवर्थ, जिनका कोश-निर्माण के पीछे मूल उद्देश्य, उन दिनों महाराष्ट्र में आकर रहने और काम करने वाले अंग्रेजों को महाराष्ट्री लोग जो भाषा बोलते थे, जिन शब्दों को रोजमर्रा के कामों में व्यवहार करते थे, उनके बारे में जानकारी देना था, ने बात साफ कर दी है। 'मारवाड़ी' शब्द का अर्थ देते हुए उन्होंने भी आम मराठी लोग जो समझते और बोलते थे, वह लाक्षणिक अर्थ के रूप में जोड़ दिया है। अतएव मोल्सवर्थ की सचाई और ईमानदारी पर गुंजायश नहीं है। ऐसा लगता है कि मोल्सवर्थ के द्वारा दिया हुआ यह अर्थ परम्परावश मराठी

और साथ ही गुजराती के कोशकारों ने भी ले लिया। एक तरह से यह परम्परागत अर्थ बन गया। उस समय अर्थात् डेढ़ सौ वर्ष पहले मारवाड़ी समाज के जो लोग महाराष्ट्र और गुजरात की तरफ आकर बसे थे। वे एकांतिक रूप में व्यापारी थे और ऊंची ब्याज-दरों पर रकम उधार देने का धंधा करते थे, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। वे जितना उपार्जन करते थे, उसकी अपेक्षा खर्च बहुत कम करते थे, और परिणामतः पूंजी जमा करते थे। जिस प्रकार की परिस्थितियों में और जो उद्देश्य लेकर वे राजस्थान से इन प्रदेशों में आये और बसे थे, उसे देखते उन्होंने जो किया और जैसा जीवन जिया, उसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। व्यापार ही उनका सब कुछ था और व्यापार के साथ जो कुछ गुण और दोष सहज ही जुड़ जाते हैं, जुड़े हुए होते हैं, वे मारवाड़ी समाज के साथ जुड़े, यह स्वाभाविक ही था। स्थानीय लोगों में जो तस्वीर बनी, वही नाम से, शब्द में आ गयी। उस समय मारवाड़ी समाज में शिक्षा आदि की जो स्थिति थी, उसमें किसी ने इस विषय में कोई ध्यान ही नहीं दिया। कहने वाले अपने ढंग से क्या कहते-बतलाते गये, वे अपने ढंग से उद्देश्य के अनुसार कार्य करते रहे।

विगत पचास वर्षों से मारवाड़ी समाज में नई चेतना उदित हुई है, हो रही है। न केवल उद्योग-धन्धों में नये रूपों और नये तौर-तरीकों का विकास और प्रवर्तन हुआ है, बल्कि ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का अभूतपूर्व प्रसार हुआ है। जीवन के हर क्षेत्र मे हमारी प्रतिभा प्रकाश में आ रही है। हमें स्वयं अपना एकांगी व्यापारिक तौर-तरीका खटकने लगा है। कृपणता और कंजूसी नहीं, अब तो मितव्यय के स्थान पर अतिव्यय की आदत बढ़ रही है। तब कोशों में दिये गये अर्थ के अनौचित्य की ओर हमारा ध्यान विशेष तौर से जाने लगा है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। वास्तव में अब जो समाज की स्थिति बनी है व्यापक स्तर पर देश की विभिन्न प्रवृत्तियों से हमारा जो स्थान बना और बन रहा है, वह उक्त कोशों के उक्त अर्थों को गलत प्रमाणित करता है। अब इस प्रकार के अर्थ का परिशोधन होना चाहिए, मेरा विश्वास है, ऐसा होगा भी। उदाहरण के लिए सन् १९७२ में प्रकाशित आठ खण्डों के बृहद गुजराती 'भारतीय संस्कृति कोश' में 'मारवाड़ी' के अर्थ और पर्याय में जो कुछ लिखा गया है, उसमें ऐसा कुछ नहीं है, जो आपत्ति का विषय हो। जिन कोशों में अभी भी पुराने अर्थ विद्यमान हैं, उनके सम्पादकों-प्रकाशकों को मारवाड़ी समाज की वर्तमान स्थिति एवं स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा जाना चाहिए। 'भारतीय संस्कृति कोश' का उदाहरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए। मेरा विश्वास है, वे ध्यान देंगे और यथावश्यक परिवर्तन करेंगे। यहां सिर्फ मराठी और गुजराती के कोशों की बात की गई है। बहुत सम्भव है, दक्षिण भारत की विभिन्न भाषाओं के कोशों में भी इसी प्रकार का अर्थ किया गया हो। दक्षिण भारत में मारवाड़ी समाज के जो लोग रहते हैं, वे अभी भी ब्याज का धन्धा काफी करते है—उनको ध्यान में रखकर तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं के कोशों में उक्त प्रकार के आपत्तिजनक अर्थ दिये हुए हो सकते है। उन कोशों का अनुसंधान उन भाषाओं के जानने वालों के द्वारा होना चाहिये।

सारे मसले पर हमको शान्तिपूर्वक और समझपूर्वक सोचना-विचारना चाहिए और मारवाड़ी शब्द के अर्थ के रूप में जिन विकृत, अनुचित, आपत्तिजनक शब्दों का

प्रयोग किया गया है, उनका अनौचित्य खास तौर से समाज के परिवर्तित वर्तमान रूप का निरूपण कराते हुए, बताना चाहिए। अगर यह प्रयत्न निष्फल रहे तो सम्बन्धित शासकों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित किया जाना चाहिए। साथ-साथ हमारी वर्तमान प्रगति की यात्रा निरन्तर बढ़ती रहनी चाहिये, ताकि कोशों में अर्थ पढ़ने वाले हमारे वर्तमान स्वरूप को देखकर स्वयं उस अर्थ पर हँसे और उसे झूठा और गलत समझें।

('समाज विकास', जुलाई-अगस्त, १९७८)

मैं मारवाड़ी हूं

उस दिन गुजराती के या मराठी के किसी कोश का एक उद्धरण देखने में आया, जिस में मारवाड़ी शब्द का अर्थ कंजूस, मक्खीचूस, ठग घृणित और न जाने क्या-क्या लिखा गया था। मैं एकबारगी ही झुंझला उठा, क्रोध से तमतमा उठा। भाषा विज्ञान का जो कुछ ज्ञान है, उससे किसी भी तरह समझ में नहीं आया कि मारवाड़ी शब्द की व्युत्पत्ति के इतिहास में ऐसा क्या है जिसकी वजह से यह अर्थ किसी ने भी किया। मेरी आँखों के सामने राजस्थान का शौर्य-पूर्ण इतिहास घूम रहा है, मेरे कानों में उस शौर्य के गौरवगान टॉड के छन्दों में गूँज रहे हैं। और मैं उद्वेलित हो उठता हूँ, अपने इस इतिहास की हर पंक्ति से पूछता हूं : क्या मारवाड़ी शब्द की यह कदर्थना उचित है ? सारा इतिहास एक झंकार के साथ बोल उठता है। जो कुछ तुम बता रहे हो वह मुझसे बाहर की वस्तु है और जिन्होंने इस अर्थ-निष्पत्ति की सामग्री दी है उनके लिये मेरे पास कोई स्थान नहीं है। द्विजेन्द्रलाल रॉय मेरे इतिहास को गा रहा है और उसके गान के साथ बंगाली, मराठी, गुजराती, पंजाबी हर एक झूम रहा, है, और मैं मारवाड़ी बन गया कि मेरा इतिहास ही मुझे अस्वीकार कर रहा है। मैं घबरा उठता हूं और उस इतिहास में जाना चाहता हूं जिसने मेरी यह कदर्थना की है।

इस व्युत्पत्ति के सन्दर्भ का विश्लेषण करूँ, इसके पहले मेरे सामने कितना क्या कहा और सुना जा रहा है जो मेरी अनुभूति में विष घोल रहा है ! कितनी किताबों के पृष्ठ खुल रहे हैं—नाटक के, उपन्यास के, कहानी के और निबन्ध के—जिनमें प्रयुक्त उपमा-विधान को बार बार इसी अर्थ और व्याख्या के पर्दे पर देख रहा हूँ ! मारवाड़ी जिसको देखकर मैं घृणा से भर जाता हूं, व्यंग्य रेखाओं में मेरा जो स्वरूप निर्देशित हो रहा है उसे देखता हूँ, राजनीति की अन्तर्गोष्ठियों में, साहित्यकारों के जमघटों में, सरकारी कार्यालयों के वातावरण में जहाँ-कहीं जाता हूं सब कुछ देख-सुन समझ कर मैं झुंझला उठता हूं कि मैं मारवाड़ी हूं।

नहीं, नहीं मैं ऐसा नहीं हूँ। जो ऐसा कहते हैं वे ईर्ष्यालु हैं। वे समृद्धि को देख कर जलते हैं और ऐसी बातें कहते हैं। यदि मुझ में दोष है तो दोषों से कौन मुक्त है? कंजूस और मक्खीचूस किस समाज में नहीं हैं? झूठे, बेईमान और मक्कार व्यक्ति दुनिया की किस जाति और देश में नहीं हैं? पर व्यक्तियों की लांछना सारे समाज पर क्यों? यह सरासर एक षड्यंत्र है, एक सफेद झूठ है जिसे बार बार दोहरा कर सच बनाया जा रहा है। मैंने धर्म के लिये, समाज के लिए, मानव जाति के लिए कितना क्या किया है, यह लोग नहीं देख रहे। इतने मन्दिर, इतनी धर्मशालाएँ बनवायीं जिनसे लाखों लोगों को पुण्य-प्राप्ति के साधन सुलभ हुए। मैंने इतना दान और चन्दा दिया कि उससे देश की हजारों-हजारों संस्थाएँ चलीं और चल रही हैं और मानवता की सेवा कर रही हैं। उनसे पूछिये, यदि मैं न होता···? और जिस राजनीति के प्रांगण में बैठ कर ये सारी बातें की जा रही हैं उसका रक्त सूख गया होता यदि उसे मेरा सहारा न होता? लोग कितने कृतघ्न हैं कि इन सब को भूल कर मेरे नाम का मजाक उड़ा रहे हैं; इतना घृणा भरा व्यंग हम पर थोप रहे हैं! नहीं, मैं इसे बर्दाश्त न करूँगा। लांछना और घृणा की अनुभूति मुझे खाये जा रही है। मैं इन कोशों को, जो इस प्रकार की घृणित व्याख्या से मुझे रँग रहे हैं, जलाकर खाक कर दूँगा। उस सारी कला पर कालिख पोत दूँगा जो इस प्रकार से मुझे चित्रित कर रही है और यह लोकतन्त्र है कि जिसके विधान के रहते-चलते यह घृणा और विष-वमन एक जाति-विशेष के प्रति हो रहा है!

मैं इन कोशों को जला दूँगा। किताबों, लेखों, चित्रपटों सबको भस्म कर दूँगा; परन्तु इस सबसे क्या मैं अपने नाम की कदर्थना को हटा पाऊँगा? जब तक वह तस्वीर कायम है जिसने इस अर्थ की अभिव्यंजना की है, तब तक कुछ हो नहीं सकेगा। जिस तस्वीर का यह अर्थ है, वह मेरी नहीं है, पर मैंने कब इस बात को खोल कर कहा है। वह तस्वीर कह रही है: मैं धन का, धन के लिये और धन के द्वारा हूं, और इस आदर्श पर जीवन का सर्वस्व मैंने न्योछावर कर दिया है। तस्वीर में रंगों की विभिन्नता है पर अर्थ की भिन्नता नहीं; और मैं हूं कि न वह रंग है, न अर्थ; पर तस्वीर को अपने सिर पर लिये चल रहा हूँ। क्या यह सच नहीं कि साहित्य में, संस्कृति में, सेवा में, राजनीति में, सर्वत्र हमारा माध्यम एक ही रंग को उभार रहा है? मैं एक व्यक्ति नहीं, एक समाज नहीं, एक मनोवृत्ति बन गया हूँ। मैं जहां जाता हूँ, धन को लेकर जाता हूँ और सत्ता, प्रतिष्ठा, नाम, पुण्य सब के साथ मेरा धन अठखेलियां कर रहा है। समाज में लाख-लाख भूखे और गरीब दो जून खाना भी नहीं पाते, लाख-लाख लोग बेरोजगार और बेकार घूमते हैं, परन्तु कोश के मारवाड़ी वे तो नहीं हैं। इस तस्वीर में वे कहीं नहीं दिखायी देते, और दिखाई दें भी तो कैसे और क्यों? मैने स्वयं ही तो इस स्थिति को बनाया और सहा है। व्यवसाय में तो इस तस्वीर को हमने अपने मस्तक पर रख छोड़ा ही है, पर अन्यत्र भी सारा शृंगार इसी का तो हो रहा है। राजनेता आज मुझे इस तस्वीर में देखता है, क्योंकि राजनीति में भी इस तस्वीर का ही रूप पहुँचता है जो अपने हर कदम, हर इंगित से कहता है: मैं धन का हूं, धन के लिए आया हूं, धन के द्वारा आया हूँ। जहां योग्यता और जन-

प्रतिनिधित्व की क्षमता का प्रश्न है वहाँ भी जब मेरा कोई दूसरा परिचय नहीं है, तो कोई भी कैसे समझेगा कि जो कुछ वह देख रहा है वह मुट्ठी भर लोग है सारा समाज नहीं। पर मैंने इस स्थिति के प्रति विद्रोह क्यों नहीं किया ? मैने कब और कहाँ कहा कि दो-चार व्यक्तियों के कार्य-कलाप को समाज के भीतर भी हजारों-हजारों लोग उतनी ही घृणा की दृष्टि से देखते हैं जितनी से और किसी समाज के लोग।

मैं मारवाड़ी हूं, यह अनुभव कर मुझे झुंझलाहट होती है पर मारवाड़ी तो मैं हूं ही। तब क्या यह सारी लांछना बन्द नहीं हो सकती ? मैं इस सारे वातावरण को बदलना चाहता हूं, परन्तु जब तक मैं चन्द पूंजीपतियों को सारे समाज का परिचायक माने और बनाये हुए हूं, अपने मस्तक पर उनको धरे हुए हूं, अपने नेतृत्व की बागडोर उनको सम्हलाये हुए हूं तब तक जो उनकी व्याख्या सो मेरी व्याख्या। यदि इस व्याख्या से सचमुच मुझे झुंझलाहट होती है तो बाहर कुछ नहीं करना है, अन्दर से ही विद्रोह की अग्नि पैदा करनी है। यदि आज ऐसी स्थिति पैदा हो सके कि जिन लोगों के कारण समाज की यह कदर्थना हुई है, यह रूप प्रतिबिम्बित होता है, उनके कार्य-कलाप का पर्दाफाश कर यह बताया जा सके कि इस समाज में भी हजारों-लाखों लोग सुबह से शाम तक पसीना बहा कर पेट भरने का प्रयत्न करते हैं, फिर भी कितने भूखे रह जाते हैं, और यह कि इस समाज में भी आज बहुत बड़े समुदाय में असन्तोष की आग जल रही है ! जो लोग येन-केन-प्रकारेण समाजवादी क्रांति को विफल करने में लगे हुए हैं, धर्म और समाज के नाम पर प्रतिक्रियावाद का झण्डा गाड़े हुए हैं, वे समूचा समाज नहीं हैं। जिस दिन मैं ऐसा बता सकूंगा और चन्द पूंजीपतियों के स्वार्थों की तस्वीर की जगह सारे समाज के जीवन की वास्तविक तस्वीर दे सकूंगा, उस दिन मैं मारवाड़ी हूं, यह अनुभव करने पर मुझे किसी प्रकार की झुंझलाहट नहीं होगी।

(समाज सेवक, जुलाई, १९५८)

फिर भी मैं मारवाड़ी हूं

"इस मासिक के प्रथम अंक में प्रकाशित आपके लेख का शीर्षक पढ़ कर आश्चर्य में पड़ गया। शीर्षक के ऊपर दिये हुए चित्र को देख कर भी कम आश्चर्य नहीं हुआ, जब तक कि लेख को पूरा पढ़ नहीं गया और मालूम नहीं हो गया कि चित्र का लेख से दूर-दराज का भी सम्बन्ध नहीं।

"हाँ, तो लेख का शीर्षक देख कर एक बार तो समझ ही नहीं पाया कि यह आपने क्या लिख दिया और लिखा भी तो यह शीर्षक क्या दे दिया। मानता हूं कि आप शीर्षक देने में माहिर हैं, पर ऐसे शीर्षक की तो आपके नाम के साथ कल्पना भी कैसे कर सकता था ! उसके अन्त में प्रश्न-चिह्न होता तो भी समझ में आता। सच

कहूं मुझे तो उसे देखते ही ऐसा लगा कि वह आपके समूचे व्यक्तित्व पर प्रश्न-चिह्न है।

"दिमाग में उठे हुए इस तूफान के साथ मैंने लेख को पढ़ा। निस्सन्देह अनुभूति की तीव्रता और शैली के आकर्षण ने पकड़े बिना न छोड़ा, तो भी मारवाड़ी शब्द जिस मनोवृत्ति और प्रवृत्ति का द्योतक है, उसके साथ अपने 'मैं' का सम्बन्ध कैसे बिठा पाये? बीस-पचीस वर्षों से जो विचार आप प्रकट करते आ रहे हैं, जो कार्य करते रहे हैं, उस सबको देखते अब यह शीर्षक कैसे? जब तक आपका उत्तर नहीं आयेगा, यह तूफान नहीं मिटेगा।"

मेरे 'मैं मारवाड़ी हूं' लेख पर जो प्रतिक्रियाएं मित्रों-परिचितों में हुईं, उनमें से एक मैंने यहां दी है। लेख मैंने सोच-समझ कर लिखा था। शीर्षक जान-बूझ कर दिया था। इसलिए इस और दूसरी प्रतिक्रियाओं पर मुझे आश्चर्य जरा भी नहीं हुआ। शीर्षक में मैंने पृच्छा—जिज्ञासा—की उत्तेजना भरी थी, जैसे लेख में विचारोत्तेजकता थी।

उस दिन जानता था, और आज भी जानता हूं कि मारवाड़ी समाज के सामने लानत और लांछना का पहाड़ खड़ा है जिसे लांघ कर चल पाना कठिन होता है। शिक्षित मारवाड़ी नौजवान, जो अन्य समाजों के मारवाड़ी समाज-सम्बन्धी अवलोकन को जानता है, और जिसमें चीजों को समझने की क्षमता और दृष्टि है, वह पुकार कर नहीं कहना-बताना चाहता—मैं मारवाड़ी हूं! और, मैं जब ऐसा कहता हूं, तो वह हैरत में पड़ जाता है।

एक बार को कहना तो मैंने भी नहीं चाहा, पर न कहकर ही क्या इस लांछन की छाया से बचा रह सकता हूं। भाई ब्रिजलाल जी बियाणी ने अभी किसी लेख में कहा कि हम अपने को 'राजस्थानी' कहें। मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि 'राजस्थानी' कहने से वह अवलोकन कैसे बदल जायेगा, जिसकी हम बात कर रहे हैं। लांछन तो शब्द में नहीं है: न 'मारवाड़ी' में, न 'राजस्थानी' में। जिसमें है, वह शब्द नहीं, आदमी है। आदमी नाम नहीं है, कर्म है। कर्म नहीं बदला तो नाम बदल कर क्या होगा? यदि कर्म में दुष्प्रवृत्ति है तो नाम बदल कर उसकी लांछना से कब तक बचे रहेंगे। राजस्थान से चले थे, तब तो लांछना लेकर नहीं आये थे। यह तो यहां पैदा की है। हां, यह हो सकता है कि उसकी प्रवृत्ति लेकर आये हों। यों यदि वह प्रवृत्ति थी या है, तो उसका भोग भोगना होगा। जो इस प्रवृत्ति से कर्म करेंगे, करते हैं, उनकी 'मारवाड़ी'—'राजस्थानी' की अदला-बदली से भी मुक्ति नहीं है।

मेरा मित्र, जिसकी प्रतिक्रिया लिखते हुए मैंने यह लेख लिखना शुरू किया है, कहता है, "उस पर बैंक की जुआचोरी का मामला चल रहा है, अमुक के हिसाब-किताब की जांच हो रही है, अमुक फारेन एक्सचेंज की चोरी के प्रयास में पकड़ा गया है, अमुक ने झूठे शेयर निकाल कर व्यावसायिक साम्राज्य कायम करने की कोशिश की, अमुक पर खाद्य-पदार्थों में मिलावट करने या एक्साइज ड्यूटी बचाने का दोषारोपण है। ये मारवाड़ी हैं इसलिए अपने को मारवाड़ी बताने में संकोच होता है।"

मुझे संकोच करने में निस्तार नहीं दीखता। मैं कहूंगा : कौन कहता है कि ये मारवाड़ी हैं! ये तो चोर, धोखेबाज और शैतान हैं। इनकी अलग जाति है, जो न है मारवाड़ी, न है पंजाबी, न है गुजराती और न है बंगाली। इनकी जाति का नाम है चोर-जाति। क्योंकि आदमियों में ही चोर होते हैं, इसलिए क्या मैं यही कहना छोड़ दूं कि मैं आदमी हूं?

वास्तव में न तो छोड़ने से चलेगा, और न छोड़ने की जरूरत ही है। मुझे वे मारवाड़ी दीख रहे हैं, जिन्हें दो जून भोजन पाने के लिए तन-तोड़ परिश्रम करना पड़ रहा है, दर-दर भटकना पड़ रहा है। मैं हजारों-हजारों युवकों को देख रहा हूं जो स्कूलों-कॉलेजों और युनिवर्सिटियों से पढ़कर निकलने के बाद बेरोजगारी की मायूसी लिये फिर रहे हैं। मैं हजारों-हजारों युवतियों के बारे में सोच रहा हूं जो पिता के पास दहेज की रकम न होने के कारण आँसू पी रही हैं। मैं उन बूढ़े-बूढ़े लोगों की कतार देख रहा हूं जो आज भी जीवन गुजारने का रास्ता नहीं ढूंढ़ पा रहे हैं। ये किसको धोखा दे रहे हैं; किसके साथ जुआचोरी कर रहे हैं? इनकी संख्या है लाखों में; जिनकी शिकायत है, वे होंगे हजार।

तब, यह हजार का पाप लाखों के सिर क्यों पड़ रहा है? जो लांछना के कारण हैं, वे ये तो नहीं। लेकिन हां, उन हजारों को हमने सिर पर जो धर रखा है—उन्हें बड़ा जो मानते हैं। किसी ने कहा : रोटी हम से यह पाप करा रही है। रोटी को पाप चाहे कह दो पर सत्य वह है। जिसने समाज की रोटी पर अधिकार कर रखा है, वह कोई भी हो किसी भी जाति-धर्म का हो, भूखे को उससे रोटी लेनी होगी। आज रोटी यदि चन्द हजारों के तालों में बन्द है, तब इनके पास गये बिना चारा क्या है। पर मैं कहता हूं, जाने में पाप क्यों है? जब तक समाज में रोटी है, तब तक हर आदमी का उस पर अधिकार है; काम करके खाना है, मांग कर खाना है, और नहीं तो छीन कर खाना है।

इस समय मुझे उस विचारक का नाम याद नहीं आ रहा जिसने कहा था कि जब तक समाज में शोषण और शासन का ही दबदबा है तब तक उससे अलग रहने की बात आत्म-हत्या की बात है, और यह बात शोषक चाहता ही है। तब उसमें रहते और काम करते हुए ही हमें उनके खिलाफ खड़ा होना है और नया समाज गढ़ना है। जिन विचारकों ने इनके शोषण से अलग रहने की बात कही, या आज कहते हैं वे तो कहीं ज्यादा गुलाम हैं। चन्दे की मार से उनकी सारी राजनीति, सारा धर्म, सारी नैतिकता खरीद ली गयी है, और जाने-अनजाने वे ऐसे दर्शन और नीति की बात कहते हैं जो सोलह आने इनके हित में हैं।

यही हालत है सब जगह। शोषक है, शोषित है, मालिक है, नौकर है। यही दो बड़ी जातियाँ हैं। इनके अलावा कोई जाति नहीं है; बाकी तो नाम है, और नाम बेचारा न सच है न झूठ, न चोर है न ईमानदार। एक ही नाम के दो व्यक्ति हो सकते हैं, होते हैं—एक अव्वल नम्बर का बदमाश और दूसरा देवता! तो, मैं मारवाड़ी हूं, इसीलिए क्यों लज्जित होऊँ? जहाँ लज्जित करने वाले हजार हैं, वहाँ उत्साहित करने वाले लाख-लाख हैं, जो उसी तरह श्रम और संघर्ष कर रहे हैं जैसे कोई

भी व्यक्ति करता है। जिन चन्द लोगों ने जुआ-चोरी और बदमाशी की है, उसके कारण सारे मारवाड़ियों को लोग शंका की नजर से देखते हैं, पर यह भी तब तक ही होता है जब तक उनकी नजर चन्द हजारों से दूर नहीं जाती। ये चन्द हजार जो-कुछ हैं, वही उनकी नजरों में मारवाड़ी हैं। हम अब स्थिति बदलें, ताकि वे समझें कि ये मारवाड़ी समाज नहीं हैं। हम कहें, मुंडेरी पर चढ़कर कहें, कि ये लोग ही सारा मारवाड़ी समाज नहीं हैं। पर जब हम यह कहेंगे तो इनको नेता और अगुआ मानने से भी हमें इनकार करना होगा। शोषितों के साथ खड़ा होकर, इन शोषकों—मारवाड़ी, बंगाली, मद्रासी, गुजराती, पारसी—सबके साथ वही सलूक करना होगा। तब बदलेगी यह स्थिति।

भाग कर क्या होगा ? नाम बदल कर क्या होगा ? होगा, तो बदल कर होगा ! पापों और पापियों को सर पर धरे रहेंगे, तो लांछना और हिकारत हम पर बरसेंगी और बरसनी चाहिए भी। क्यों नहीं हम लाख-लाख व्यक्ति जैसे हैं, और जो कर रहे हैं उसे सामने रख कर मारवाड़ी शब्द को नया अर्थ प्रदान करें ! लज्जित और संकुचित होकर इधर-उधर की गलियां क्यों ढूंढ़ें ? सीधी सड़क पर चलें, सिर तानकर चलें और जिनके कारण से हमें लानत और लांछना झेलनी पड़ती है, उन्हें हम खुद लानत देकर चलें ! तब हम देखेंगे कि कहाँ तक लोग हमारे बारे में, समाज के बारे में, यह भूल करते रहेंगे।

इसीलिए मैं कहता हूं : मैं फिर भी मारवाड़ी हूं।

('समाज विकास', दिसम्बर, १९५८)

राजनीति

गणतन्त्र के घाट पर

गण-गंगा वही है, तन्त्र-घाट नया है; यात्री वही हैं, तीर्थ नया है ; भक्त वही हैं, देवता नया है; इतिहास वही है, पात्र नये हैं; दर्शन वही है, द्रष्टा बदला है; नाटक वही है, अभिनेता बदले हैं; मंच वही है, वक्ता नये हैं; यजमान वही हैं, पुरोहित बदले हैं; शोषण वही है, पर शोषक बदला है—कि सुरा वही है, पात्र नया है !

भारत का व्यास वही हैं, पर वाणी बदली है; राम बदला है, रामायण वही है; महाभारत वही है, पर दुर्योधन बदला है; कविता वही है, पर छन्द नये हैं; संस्कृति वही है, पर स्वर बदले हैं; मन्त्र वही है, पर ऋषि बदला है; वेद वही है, ब्राह्मण बदला है; कूल वही है, नैया बदली है; यात्री वही है, पर खेवैया बदला है; बुनियाद वही है, ढांचा बदला है; भाषा वही है, लिपि बदली है; सत्ता वही है, शासक बदला है—कि गण वही है, तन्त्र नया है ! यह गणतंत्र है ।

यह गंगा है जनजीवन की, जो युग-युग से बहती आई है, और ये सत्ता के घाट हैं, जो युग-युग से उसे बांधते आये हैं । हर बांध पर नया घाट है, नयी ईंट, नया सीमेंट और नया कटहरा है; और उसके लिये नयी दक्षिणा चाही जाती है । इतिहास को देखो कि इस गण-गंगा पर कितने घाट बने हैं ! नये बने और पुराने हो गये और फिर-फिर नये बनते गये । पर गंगा है कि एक बार में, एक रूप में, एक स्वर में बहती रही, बहती जाती है । घाटों का रंग-ढंग बदलता गया—गण-गंगा उलीची गई और सम्पदा का ढेर घाटों पर लगता गया, और निर्मल-निश्छल गंगा बहती रही । घाटों पर सौदा होता रहा—पुण्य और पाप का, पण्डे और यजमान का, और गंगा के अन्तराल की आंखें यह सब देखती रहीं ।

गंगा वही बह रही है और गणतंत्र का नया घाट बन रहा है---काफी बन गया है । नये महन्तों, पुरोहितों और पण्डों का मठ, मन्दिर और छतरियां बन गई हैं । नये संस्थान और नये संस्कार बने हैं । वोट की दक्षिणा दीजिए और सत्ता का प्रसाद पाइये; दलबन्दी के माहिर बनिये और मंत्री बनने का वरदान पाइये । सब तरफ प्रहरी और पुरोहित बैठे हैं, इनसे बचकर आप चल नहीं सकते हैं । जिसके जैसे साधन हैं, वह वैसी दक्षिणा दे और उसको वैसे ही मठ में प्रवेश मिल सकता है । भारतीय गणतंत्र का घाट है---सर्वत्र भारतीय संस्कृति का सौरभ फैल रहा है । जन-गन-मंगल का स्तोत्र-वाचन हो रहा है । सत्संग का समावेश हो रहा है । शरीर पर पीताम्बर

(खादी), हाथ में कमण्डलु (चर्खा, नहीं तो चन्दे की किताब), और मुंह में राम-नाम (गांधी वचन) लिये गणतंत्र के सन्त विचरण कर रहे हैं। और उपदेश दे रहे हैं—'भोगलिप्सा का आदर्श मनुष्य के लिए इतना घातक सिद्ध हो रहा है कि मैं समझता हूं जीवन का उचित आदर्श वह न कभी था, न आगे हो सकता है।...जब तक मनुष्य बाह्य पदार्थों के संग्रह और भोग में सुख मानता रहेगा, उसकी सारी शक्ति उनके उपार्जन में लगती रहेगी और तब वह न औरों का समान अधिकार मानेगा, न व्यवहार में समानता को ही स्वीकार करेगा।—सच्चे सुख और शांति के लिए मनुष्य को मांग के बदले त्याग को अपनाना होगा, बाह्य पदार्थों में सुख खोजने के बदले उसे आत्मतुष्टि में पाना होगा।—अपने अहं के संकुचित दायरे में ही बन्द रहनेवाला, अपनी इन्द्रियों की तृप्ति को ही अपना सब कुछ मानने वाला मानव अपने को भूला हुआ है और सच-मुच ही मृत्यु और अन्धकार-जगत् का वासी है।' राष्ट्रपति भवन में विराजमान गणतंत्र के महाप्रभु का यह अन्तर-उपदेश कितना सत्य है! बाह्य पदार्थों के भोग के निषेध और त्याग एवं आत्मतुष्टि का कितना सुन्दर विधान है, जो राजभवन के हर गुम्बज से बोल रहा है! भवन का हर कक्ष, हर उद्यान, हर फव्वारा, हर दरवाजा, और दरवाजे पर खड़ा हर घुड़सवार बाह्य पदार्थों के सुखभोग का निषेध ही तो है! राजभवन में तो अहं का संकुचित दायरा नहीं, विशाल प्रांगण है। त्याग और आत्मतुष्टि के प्रदीप गणतंत्र के घाट पर राजप्रासादों को आलोकित कर रहे हैं।

वह देखो, स्वतन्त्रता के दीवानों का मेला लगा है। किसी के भाल पर विदेशी शासन की लकुटि के प्रहार का तिलक लगा है, किसी के मस्तक पर बलिदान और कारादण्ड का सेहरा बंधा है। घाट पर वे ही तो सब दिख रहे हैं—सारे मृदंगों में उन्हीं के स्वर तो बज रहे हैं। बीच में जो देख रहे हो, वह गणतंत्र का मन्दिर है, जिसके भीतर गांधी का दर्शन है और बाहर नेहरू का परिदर्शन है। दर्शन-परिदर्शन कितना व्यापक है! एक छोर को बुद्ध के हाथों में पकड़ा रखा है और दूसरा छोर नेहरू के कर-कमलों में—बीच में थामे हैं गांधी। इसमें सह-अस्तित्व के सारे खेल खेले जा रहे हैं। धर्म के घाट पर सिंह और बकरी साथ-साथ पानी पीते थे, और गणतन्त्र के घाट पर भी वही महिमा कायम है। लोक-बकरी और सत्ता-सिंह, शोषित बकरी और शोषक सिंह साथ-साथ चल रहे हैं, हमारी विदेशनीति के घाट पर रूस और अमेरिका एक साथ पानी पी रहे हैं।

प्रति दिन देश-विदेश के सन्त इकट्ठा होते हैं। हर पण्डे को यजमान मिल जाते हैं और मिल जाती है स्वदेश की दक्षिणा और विदेश की प्रदक्षिणा। कहा न कि सत्ता ढेर घाट पर लगा है जिसे सारे पण्डे मिल कर बांट रहे हैं। जिनका जितना त्याग, उनका उतना भोग—त्यक्तेन भुंजीथा। त्याग करके हमने यह घाट बनाया है। इसमें हम कुछ भी करें, कोई क्यों अंगुली उठाये? हृदय गांधी के चरणों पर और मस्तक नेहरू के चरणों पर रखा है। हमें किसका भय है? राजाओं का वैभव और जमींदारों का विलास तोड़-फोड़ कर हमने ही तो गिराया था, इस गंगा में बहाया था। आज हम ही उसको निकालने और धारण करने के अधिकारी हैं। सुना नहीं तुमने, हमारे महाप्रभु ने क्या कहा है—'मनुष्य को मांग के बदले त्याग को अपनाना होगा।'

हम मनुष्य को मांगना नहीं, त्याग सिखाना चाहते हैं। इस वैभव और विलास को जनता के बीच रहने देकर उसका स्वभाव नहीं बिगड़ने देना चाहते। हमारी बात दूसरी है। हममें अनासक्ति की क्षमता है, हम उसे लेकर अविकारी भाव से चल सकेंगे। हम 'अनासक्त भोग' रख सकते हैं। उसे लिप्सा को नहीं छूने देंगे। हमारे त्याग-तंत्र को यह भोगयंत्र तृष्णा का स्पर्श भी नहीं करा सकेगा। मानव का स्वभाव भूलने का, लक्ष्य-विहीन हो जाने का हो सकता है पर देवता कभी लक्ष्य से च्युत नहीं होता। हमारा गणतन्त्र का देवता त्यागसे भोग लेता है और भोग पर त्याग का दर्शन रचता है।

गण की गंगा वह रही है और उसके दोनों किनारों पर तंत्र के घाट पर सन्तों और भक्तों की भीड़ लगी है—कोई गांधी-मार्ग से 'विधान-सौध' की ओर दौड़ा जा रहा है, कोई नेहरू उद्यान में चलहकदमी कर रहा है, कोई सरदार पटेल रोड में आयात-निर्यात का अंकगणित सुन-समझ रहा है, कोई राज-भवन के किनारे खड़ा भोज का निमंत्रण देख रहा है, और कोई त्याग, तपस्या और तितिक्षा की त्रिवेणी पर चुनाव की बंसी वजा रहा है; कहीं राष्ट्रपति और राज्यपति की जीवनियों का लेखन हो रहा है, कहीं किसी महाप्रभु, प्रभु, उप-प्रभु, सहायक प्रभु और अनु-प्रभु का अभिनन्दन हो रहा है, और कहीं गणतंत्र की देवदासियों का स्नेह-निवेदन या समर्पण हो रहा है; कहीं सत्ता-सेवा के अवसर के लिये भिड़न्त हो रही है—एक सन्त की दूसरे सन्त के साथ; कहीं कोई अपनी सेवाओं का इश्तिहार या इतिहास लिख या लिखवा रहा है। लिखाने वाले ज्यादा और लिखने वाले कम पड़ रहे हैं। नई संस्थाएँ खड़ी हो रही हैं, नये नेता बन रहे हैं। गणतंत्र के घाट पर नई सम्पदा-समृद्धि का दौर आया है। सारा घाट देवताओं से पट गया है, सन्तों से घिर गया है, त्याग से भर गया है। वह देखिये गणतंत्र का नया सेठ है, नया जमींदार है, नया ओहदेदार है। कितना वड़ा प्रत्यावर्तन हुआ है! जनता के समान स्तर के तो क्या, उससे भी नीचे के स्तर लोगों को प्रभु और प्रभु-सेवक बनाया गया है। गणतंत्र का देवता जिस पर रीझ जाये,उसकी योग्यता-अयोग्यता का विचार नहीं किया जाता। यही तो इस त्याग-तंत्र की महिमा है!

और, घाट पर एक ओर आलोचक का भी आसन लगा है। वह भी गणतन्त्र की शोभा है। उसे भी कर-सम्पदा में अंश-ग्रहण करने का अधिकार है। इसीलिए उसे भी वेतन दिया जाता है। वह भी तो इसी त्याग-तंत्र का अंग है, फिर वह इस भोग-यंत्र के वरदान से कैसे वंचित रहे? भोग तो गणतंत्र की त्याग संहिता का पहला अक्षर है। जो इस गंगा को उलीच नहीं सकते, मंदिर और मठ बना कर बैठने की क्षमता जिनमें नहीं है, भक्त और पुजारी जो नहीं जुटा सकते, प्रभु-प्रांगण (पार्लमेन्ट और विधान-सभा) में जो प्रवचनाधिकार नहीं पा सकते, वे तो आलोचना करेंगे ही। वे मानव हैं, भूले हुए मानव हैं—मृत्यु और अंधकार-जगत के वासी। उनका गण देवता सोया हुआ है। इसलिए उनके लिए हर मंदिर, हर मठ, हर सेवा-प्रांगण वंद है।

कौन कहता है कि ये गांधी के शब्द हैं कि 'जमहूरी व्यवस्था कायम करने के पहले अपने मुकम्मिल मकसद तक पहुंचने में अनिवार्य रूप से दलबंदी करने वाले गंदे

पानी के गड़हों जैसे मण्डल खड़े किए हैं, जिनसे घूसखोरी और बेईमानी फैली है और ऐसी संस्थाएँ पैदा हुई हैं, जो नाम की ही लोकप्रिय और प्रजातंत्री है।' नहीं, जो यह कहता है, वह गणतंत्र का गांधी नहीं है। उस गांधी को तो गणतंत्र के मंदिर में देखो, गणतंत्र के कवियों की वाणी में सुनो, गणतंत्र के दार्शनिकों की व्याख्या से समझो। गणतंत्र के अपने दार्शनिक हैं जो दर्शन की व्याख्या करते हैं और त्यागतंत्र का भोग-प्रसाद पाते हैं। गणतंत्र के अपने कवि हैं, जो इतिहास को गणतंत्र की नई कविता में बांधते हैं और गणतन्त्र के पारितोषिक पाते हैं। गणतंत्र की अपनी विभूतियां हैं जो वर्ष प्रतिवर्ष उपाधियां प्राप्त कर विभूषित होती हैं। वे हैं गणतंत्र के गौरव-गान के स्वर-साधक! वे जिस गांधी की बात कहते हैं हम तो उसे ही मानते हैं। और हमारा वह गांधी तो राजघाट के संगमर्मर में धवल कीर्ति की चादर ओढ़े सोया है। तुम्हारा गांधी कौन है, हम नहीं जानते। हम तो उस गणतंत्र को पहचानते हैं, उस गांधी को मानते हैं जो हमारे तंत्र में है।

गण वही है, तंत्र नया है—कि गंगा वही है, घाट नया है!

('सुप्रभात', जनवरी-फरवरी १९५८)

देश, नेतृत्व और भ्रष्टाचार

सोलह-सत्तरह वर्ष पहले हमारा देश हमारा होकर भी मानो हमारा नहीं था। सात समुद्र पार से एक विदेश हमारा मालिक बना हुआ था और और भला-बुरा जो कुछ भी यहां होता था, उसका श्रेय या दोष उसी का माना जाता था। यह स्थिति कुछ के लिये और कुछ मानों में सुख और आराम की थी और बहुतों के लिये घोर दुःख और निराशा की थी। तथापि सभी के लिये बन्धन और परतन्त्रता की थी। और परतन्त्रता किसी भी हालत में सुखकर और प्रीतिकर नहीं होती। इसलिए जब स्वतन्त्रता प्राप्ति की चेतना और भूख देश में जागी और उपयुक्त नेतृत्व उभरा तो सारा देश इस बलवती आकांक्षा के बिन्दु पर होकर, सजग होकर क्रियाशील हो उठा। इस चेतना एवं संघर्ष ने सारे देश को जगा दिया। नवचेतना और संघर्ष का यह युग सचमुच गौरवपूर्ण था।

आज देश हर माने में हमारा है हमारे द्वारा, हमारे लिये। इस परिवर्तन से जहां नई आशाएँ और आकांक्षाएँ उभरीं और गर्व का एहसास हुआ, वहीं हमारे दोष और दुर्बलतायें भी बहुत साफ नजर आने लगीं। अपनी कमियों और कमजोरियों के लिये अब तो दूसरे देश को दोष नहीं दे सकते और गुलामी को कोस कर काम खतम नहीं हो जाता। तब भी हमारा संघर्षकालीन नेतृत्व, जो आज सत्ता का संचालन कर

रहा है, दूसरों को कोसने का ही आदी है। एक जमाने में ये 'दूसरे' विदेशी होते थे पर आज अपने विचार और मत से भिन्न मत और सिद्धान्त वाले लोग 'दूसरे' कहलाते हैं। दूसरे पर हर बुराई की जिम्मेदारी डालकर पहले चला जा सकता था पर आज नहीं। यही हमारे अतीत में निर्मित वर्तमान नेतृत्व के सामने सबसे बड़ा संकट है। राजनीतिक स्वतंत्रता हाथ में आते ही सामाजिक-आर्थिक स्वतंत्रता की बात उठाना स्वाभाविक था और हमारे नेताओं ने इस बात का संकेत और आश्वासन भी दिया था। इन आश्वासनों को पूरा करने में देश पूरी तरह सफल नहीं हुआ और उसकी जिम्मेदारी हमारे नेतृत्व पर है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। इस विफलता को इस रूप में समझना जरूरी है कि देश में विकास की योजनायें बनाई गईं, उन पर कार्य हुआ, शिक्षा का प्रसार भी हुआ, सामाजिक, आर्थिक ढांचे में भी परिवर्तन हुआ किन्तु हमारे चरित्र और संस्कार की दृष्टि से हममें यदि कोई परिवर्तन हुआ तो वह बुरे की ओर ही हुआ। स्वार्थ-लिप्सा, बेईमानी और भ्रष्टाचार का जाल चारों तरफ बिछा हुआ लगता है। जो लोग इस जाल को बुनने और ढोये चलने में समर्थ हैं, वे अपना उल्लू सीधा कर पाते हैं। पर दूसरे लोग इस जाल में जकड़े हुए इतने परेशान हैं कि कभी-कभी स्वतंत्रता को ही कोसने लगते हैं। यह बात बहुत अराष्ट्रीय लगती है पर साधारण लोगों को हम क्या कहें, स्वयं गाँधीजी ने सन् १९४७ के अन्तिम दिनों में कलकत्ता में इस लेखक के सम्मुख ही कांग्रेस के अन्तर्गत सत्ता के लिए नेताओं की आपस की दलबन्दी पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहा था—स्वतंत्रता क्या आई, एक बला आ गई है। राष्ट्रपिता का यह अराष्ट्रीय वाक्य क्या इस बात को नहीं बताता कि स्वराज्य के एक वर्ष के भीतर ही हमारे नेतृत्व के त्याग-तपस्या और निःस्वार्थ सेवा-भावना के पोत चौड़े आ गये थे। गाँधीजी की हत्या ने तो और भी सिद्ध कर दिया था कि सारे धर्मात्माओं, सुधारकों और राष्ट्रीय एकता के नेताओं का कार्य मानो उनकी वाणी से आगे नहीं गया था।

गाँधी जी की हत्या ने शायद देश को एक बार फिर हिलाया पर इस बलिदान का भी धुंआ मात्र ही रह गया, आग नहीं चमकी। और हम आज की ही घड़ी में देखें तो लगता है कि उससे भी ज्यादा विस्फोटक स्थिति आज है। गाँधी जी के मरने के बाद सारे देश का नेतृत्व विचार में, कार्य में और विश्व सम्बन्धों में जवाहरलाल नेहरू पर आ गया और यह एक व्यक्तित्व मानो सारा भारत मान लिया गया। गणतन्त्र की स्थापना करके नेहरू ने संसार में गौरव पाया और अपने सिद्धान्तों के अनुसार देश के निर्माण की योजना बनाकर उन्होंने आत्मसुख भी पाया। पर हजारों वर्ष के कीचड़ में यह गणतन्त्र भी फंस और डूब गया और जितना ही इस कीचड़ को धोकर साफ करने की कोशिश की गई उतना ही वह बढ़ता गया। नेहरू ने भी सारी क्रान्तिकारी बातों और योजनाओं के बावजूद हमारी जीवन-दर्शन की मूल भित्ति को स्पर्श नहीं किया। कीचड़ की बुनियाद पर नये स्तूप खड़े किये और कीचड़ उनको ले बैठा और नेहरू स्वयं चारों ओर से बढ़ते हुए इस कीच के समुद्र में डूबते दिखाई देने लगे। हमारे सम सामयिक इतिहास के सबसे बड़े, महान् और विशिष्ट व्यक्तित्व को इस स्थिति में पड़ना पड़ा, यह सचमुच बहुत विक्षोभ और विपदा का विषय है, पर हुई तो सही ही यह स्थिति।

प्रश्न-बार बार यह आता है कि इस स्थिति के लिये जिम्मेदार कौन ? चूंकि स्वराज्योत्तर काल की सारी नीति और रचना की बागडोर नेहरू के हाथ में रही, इसलिए सारा का सारा दोष उन पर थोपा जाता है। नेहरू की ढिलाई और कमजोर नीति के कारण ही जो सत्ता-संग्रह और धन-संग्रह में सफल हुए वे भी आज नेहरू की विफलता को लेकर आलोचना करते हैं और खुलेआम दूसरे देशों की मदद लेने का आग्रह करते हैं। यह निश्चय ही नेहरू की विफलता हुई। देश में भयानक रूप से ऊपर से नीचे तक जो भ्रष्टाचार फैल गया है, उसके कारण सब जगह स्वार्थ के गड्ढे बन गये हैं जिनमें से सड़ांध पैदा होती है। मुझे गांधी जी के वे वाक्य याद आ रहे हैं जो उन्होंने सन् १९४८ में 'हरिजन' में लिखे थे। उन्होंने कहा था—"जमहूरी अवस्था कायम करने के पहले अपने मुकम्मिल मकसद तक पहुंचने में अनिवार्य रूप से दलबन्दी करने वाले गन्दे पानी के गड्ढों-जैसे मण्डल खड़े किये हैं, जिनसे घूसखोरी और बेईमानी फैली है और ऐसी संस्थाएं पैदा हुई हैं जो नाम की ही लोकप्रिय और प्रजातंत्री हैं।"

और इस सारी गन्दगी और सड़ांध भरी स्थिति के लिये सारा का सारा दोष नेहरू के सिर पर मढ़ा जाता है। जो लोग अपने को गांधी जी का वंशज और नुपुत्र मानते हैं वे गांधीजी का नाम लेकर यह कहते हैं कि चूंकि नेहरू ने गांधीजी का पथ नहीं अपनाया, खादी और ग्रामोद्योग मूलक अर्थ व्यवस्था का तन्त्र नहीं स्वीकार किया, इसलिये यह विफलता और विपर्यय हुआ। गांधीजी की इन विधवाओं की खीझ बहुत गहरी है क्योंकि इनकी सारी रचनात्मक साधना का स्वराज्यकालीन प्रासाद सबको और पूरा-पूरा नहीं मिला और वे गांधी से नेहरू को अलग करके स्वराज्य की सफलता का श्रेय गांधीजी को, और विफलता का विपाक नेहरू को देते हुए संतोष पाते हैं। पर इस बात में सच्चाई जरा सी भी नहीं है। मेरी समझ में नेहरू की सबसे बड़ी कमजोरी यही रही कि उन्होंने राजनीतिक दल को बांधने और चलाने में गांधी की नीति को ही पूरा-पूरा अपनाया, चलाया और चलने दिया। चन्दा हमारी राजनीति को खा गया और उसमें से ऐसे विकार पैदा हुए जो व्यक्तित्वों को निगल गये और सारी त्याग, तपस्या और निस्पृहता को गणतन्त्र के गड्ढों में दबोच गये। जिन लोगों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में दान-चन्दा लेकर हमारे राजनीतिक सेवा-मण्डल बने और खड़े हुए, उन्होंने इन मण्डलों को अपने स्वार्थ की एजेन्सियां बना ली और उनके माध्यम से नेताओं को भरते रहे और जनता को उलीचते रहे। ये नेता तब जनता के नहीं, बल्कि वोट की क्रय-शक्ति के मालिक हो गये। खरीदो और खाओ, यह मान्यता मानो सारे समाज में पैठ गई और उससे भ्रष्टाचार का दौर चल गया। हमने जिन आदर्शों की स्वराज्य से पहले घोषणा की, और बाद में संविधान में जिनका समावेश किया, वे वास्तविकता से परे की चीज थीं उनसे और उनके आधार पर भाषण चल सकते थे और चले, पर जीवन तो नहीं चल सकता था। अतएव नेताओं ने प्रत्यक्ष रूप से उनका इन्कार करके मानो नेतृत्व का निर्वाह किया और परोक्ष रूप से उन सब को पाने और लेने की कोशिश की। सरकारी कोष और सरकार के माध्यम से परमिट और लाइसेन्सों के चरणों पर उन्होंने अपने प्रत्यक्ष अभावों की पूर्ति करने की कोशिश

की और चन्दे के भ्रष्टाचार से उत्पन्न और पनपे हुए नेता चन्दे की धुरी पर नाचते रहे और भ्रष्टाचार-विरोधी वक्तव्यों और भाषणों के बावजूद भ्रष्टाचार की भूमि पर खड़े गणतन्त्र का शंखनाद करते रहे। इसमें गांधी और नेहरू में कोई अन्तर नहीं दीखता है। गांधी के समय कपड़े के मिल चलाने वाले सेठों ने खादी के कोट और टोपी पहनने का नियम रख कर विदेशी की जगह स्वदेशी शोषण की ही योजना चलाई। इसी प्रकार से जिन लोगों ने अधिक चन्दा पाया और प्राप्त करने की कला का परिचय दिया, वे बड़े नेता हो गये। योग्यता का प्रश्न गौण रहा। आज भी जो व्यक्ति ज्यादा वोट खरीद सकता है, ज्यादा मोटरें और जीप दौड़ा सकता है और इस सब खर्चे चुनाव-व्यय के विवरण से छिपा सकता है वह बड़ा नेता, सफल नेता है और माना जाता है। जो सब नेता आज हैं और यह कहते हैं कि वे गाँधीजी के ही चेले हैं, गाँधीजी के सिद्धांत मानने में वे शायद नेहरू से आगे ही रहे होंगे, तब इस बात में कोई शक नहीं है कि देश में व्याप्त भ्रष्टाचार और अन्याय के जाल के लिए सारा का सारा गाँधी-युग जिम्मेदार है जिसमें गांधी हैं, उसकी विरासत का घोषित हकदार नेहरू हैं, और इस युग के दूसरे मृत एवं जीवित नेतागण हैं।

(दैनिक विश्वमित्र, १५ अगस्त, १९६४)

नमो-नमो नेहरू !

नेहरू के निर्वाण से मन्त्रों के इस देश में एक मन्त्र और जुड़ गया। जो मनुष्य था, वह मंत्र हो गया और मंत्रों के महोत्सव में मिल गया। जो इतिहास का द्रष्टा और स्रष्टा था, वह उसका मंत्र मात्र रह गया। एक मंत्र और जुड़ जाने से हमारा दर्शन और बड़ा हो गया, हमारी धर्म-ध्वनि और धनी हो गई, हमारी सभ्यता और संस्कृति और मन्त्रपूत हो गयी; और हमारा साहित्य और मंत्रपूर्ण एवं मंत्र-प्राण हो गया।

यह मंत्र हमारे मन और बुद्धि को शांत करेगा—आधिभौतिक और आधिदैविक व्याधियों का शमन कर हमें शांति का अमर वरदान देगा। जो जिंदगी का जलता शोला था नेहरू, वह शांत मंत्र बन गया—शांति का। हम मंत्र-शक्ति के अधिष्ठाता हैं। कितने महामानवों को अपने मानस में मंत्र-रूप में स्थापित कर हम शताब्दियों से शांति-यात्रा कर रहे हैं! वह हमारी यात्रा आज नेहरू मंत्रोच्चार के साथ शांति-वन में पहुंची है! जीवन-भर शांति के लिए अशांत नेहरू आज परम शांति में सोया है। तभी हमें भी शांति की साँस आयी है। वह जब तक मानव था मंत्र-संज्ञा में नहीं पहुंचा था, उसका संघर्ष एक दिन भी न उसको चैन लेने देता था

और न हम सबको। वह एक शोला बन कर आया था, शमा बनकर चला गया। शोले को छूने के लिये, उसकी कांति को पाने के लिये शोला बनना पड़ता है। वैसा बनने के लिए हममें-से कितने आगे आ सके? उसने मंत्र-शक्ति की अवज्ञा कर मानव शक्ति का भरोसा किया और चारों तरफ संघर्ष को उभार लिया और अपने आपको एक खतरनाक तेजपुंज बना लिया। कितनी मन्त्रसत्ताएँ उनके संघर्षावतरण के कारण निस्तेज होने लगी थीं। उसके तिरोधान से आज मंत्रमार्ग की समस्त बाधाएँ दूर हो गयीं। अतएव सभी मंत्र-गुरु अपनी श्रद्धा निवेदन कर रहे हैं—ॐ नमो-नमो नेहरू! जलकर भस्म हुए शोले की ठण्डी राख तन में लपेटकर नये मंत्र के नये संत बन रहे हैं।

दिवंगत नेहरू के प्रति मित्र और शत्रु सभी श्रद्धा का अशेष निवेदन कर रहे हैं। जिस दिन उसने इहलीला समाप्त कर आँखें बन्द कीं, उस दिन और उसके दूसरे दिन भी जितने गुलाब-गुच्छ हमारे उपवनों में खिले या बन्द मिले, वे हमने नेहरू की समाधि पर अर्पित कर दिये। शोले को समाधि का सौन्दर्य देकर हमने उनकी वसीयत में प्रकट की गयी कामनाओं को पूरा कर दिया। जिन अस्थियों पर पराधीनता की शृंखलाओं को काटने के लिए सहे गये आघातों के चिह्न और मानवमात्र की मुक्ति-के लिए अरमानों के स्वाक्षर चमक रहे थे, उनको हमारे भारत-जननी की मुक्त-प्रवाहिनी गंगा में समाहित कर दिया, उनकी भस्म को हमने ऊँचे आकाश से वायु के वेग-प्रवर्तन में मिला धरती पर बिछा दिया, उनकी कल्पनाओं को उन्हीं की प्राण-वायु को समर्पित कर हवा में मिला दिया। हवा, पानी और मिट्टी पुनः अपने सर्वश्रेष्ठ अंशको अपने में पाकर धन्य हैं—इसी राख में से फिर जीवन का शोला चमकेगा। असंख्य मानवों के आँसुओं से गीली मिट्टी निरन्तर पुकार रही है—नमो-नमो नेहरू! नेहरू की आत्मा के लिए मन्त्रों के जयघोष की अपेक्षा देश की माटी का यह नमस्कार कितना महत्वपूर्ण है। इसी माटी के जिन मानवों का विश्वास लेकर नेहरू विश्व की मानवता को चिर प्रेरणा देता था, उनके आंसुओं से सिंचित यह माटी अपने हृदय श्रद्धा-प्रसून, अनुरागका लाल गुलाब उसकी समाधि पर चढ़ाकर मुग्ध मानती है। जो माटी उसके संघर्षों की आग में तप कर सोना हो गयी, उनके कण-कण आज राख में भी सोना उगल रहे हैं। धन्य थी वह माटी, धन्य हो गया वह मानव और पवित्र बन गयी न्यारी मानवता। माटी ने माटी को मानवता के कण दिये हैं जो पुनः स्वप्नों में फूलेंगे, आकांक्षाओं में पल्लवित होंगे और आशाओं में फलेंगे।

और, नेहरू के मन्त्र-गान में से हम अपने जीवन के सत्य को देखें! कितने बड़े प्रवंचक हैं हम! उसके वरदानों के साथी हैं, वेदना के आँसू नहीं हैं। हम उसके भक्त हैं, भावना नहीं। उसकी पूजा-प्रभावना के लिए हम मन्दिर बना देंगे, ग्रन्थ रच देंगे, शास्त्रों का प्रतिपादन कर देंगे, स्मारक, स्तम्भ-स्तूप खड़े कर देंगे और उन पर मानवता की तख्ती टांग रखेंगे ताकि इस मिट्टी पर आने-जानेवाले यात्री रक्ताभ गुलाब की कलियां बिछाकर हमारे देश को, हमारे इतिहास को नमस्कार कर जायें। हाथ कते सफेद धागों की माला से गांधी की समाधि को और खादी के कच्चे गुलाबी धागों से बनायी मालाओं से नेहरू की समाधि को ढक कर,

सजाकर पर्वोत्सव करेंगे। उसके जूते-चप्पल तक हमारी स्तुति-साधना की मंजूषा में रहेंगे। उसका हर फोटो हमारे संग्रहालय में और प्रदर्शनी में रहेगा। हर बार उन चित्रों को नये क्रम से सजायेंगे, नये-नये प्रसंग में नयी अर्थवत्ता देंगे। उनके उद्घाटन के लिए हम मिलेंगे—हमारे मन्त्री भाषण करेंगे, मन्त्री बने रहेंगे—मन्त्री बनाते रहेंगे। पर मानवता जब विद्रोह करेगी तो हम उसे नेहरू के विद्रोह का इतिहास देंगे—उसकी मानवता का मन्त्र देंगे। हमारे पास इतने मन्त्र हैं—राम का, कृष्ण का, महावीर का, बुद्ध का, गांधी का, टैगोर का और अब नेहरू का। इतने मन्त्रों की सम्पत्ति के बावजूद भी हम तन्त्र युद्ध की आग में जलेंगे। मन्त्र और मन्त्री, मन्त्री और मन्त्र—यह अखण्ड यज्ञ नेहरू की गणतन्त्र-गंगा को सदा प्रवाहित रखेगा। हमारा विश्वास है कि एक बार उस असम्भव महानता के असह्य भार से हमारी अपनी क्षुद्रता मुक्त हुई है तो महात्मा के मन्त्रों से अभिमण्डित कर हम उसकी पूजा करेंगे। एक व्यक्ति, एक युग की महानता के नीचे दबी हमारी चिर क्षुद्रता को फिर से उठने खेलने का मौका मिला है। उसने तपोवन में चारों तरफ हमारी क्षुद्रताओं पर पहरा बिठा दिया था—धर्म, जाति, सम्प्रदाय सभी की मन्त्र मण्डित परम्पराओं पर उसने प्रचण्ड प्रत्याघात किया था। हमने अनेक बार भारतीय संस्कृति की महान परम्परा की रक्षा के हेतु उसके कार्य-कलाप के विरुद्ध विरोध और प्रतिवाद किया—जोड़-तोड़ बैठाये—यज्ञ और हवनादि किये—गाय को पुकारा पर उस वज्र महानता को नहीं हिला सके। अब उस वज्र महानता को फूलों की कोमलता में सुलाकर अपने अश्रुप्लावन से उसकी समाधि के संगमरमर का प्रक्षालन कर, उसके जीवन मन्त्रों को दुनिया में छितराकर आज हम अपनी क्षुद्रता की भूमि पर अक्षुण्ण खड़े हैं। आज हम किसी की महानता की प्रतिच्छाया में प्रतिबिम्बित नहीं हैं—हम क्षुद्रों को अपनी क्षुद्रता फिर से मिली है। आज हम विजयी और वह पराजित है। पर, देख तो लें कि समाधि में से उसकी दो आँखें देख तो नहीं रही हैं—दो कान सुन तो नहीं रहे हैं? उसके द्वारा वर्षों पहले जेल में लिखे हुए, मसजिद को कहे हुए इन शब्दों को समाधि के पत्थर न दोहराने लगे—"उन दीवारों से कहिये कि वे आपको अपनी कहानी सुनावें, अपने तजुरबे आपको दे दें। शायद कल और परसों जो गुजर गये, उनपर गौर करने से हम आज को समझें। शायद भविष्य के परदे को भी हटाकर झांक सकें।" नहीं, नहीं, हम उसके मन्दिर-मस्जिद की दीवारों को और पूजा के पत्थरों को गौर नहीं करने देंगे....भविष्य के परदे को हटाकर झांकने नहीं देंगे। हमारे नमस्कार उसके अवसान को आलोकित करते रहेंगे। आलोकित अवसान की शांत समाधि को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं। उसके नमस्कार के पर्व और त्यौहार मनायेंगे - मेले और महोत्सव करेंगे - उसके लिखे को नाना रूपों में नाना आकारों और प्रकारों में छापते रहेंगे - उसके बोले को बोलकर, बजाकर सुनते सुनाते रहेंगे। इसमें कठिनाई भी तो नहीं है। हजारों वर्षों का अभ्यास जो है हमें। मन्त्र हमारी रक्षा करे और हम उसकी रक्षा करें। हमारी सामाजिक निद्रा में, हमारे आर्थिक मैथुन में, हमारे राजनीतिक भय के गतिचक्र में बाधा न डाले तो उसका मन्त्र हमारे माथे पर है। हमारे जीवन का इतिहास बार बार बदला है और अचानक हुए महानता के विस्फोट से उत्पन्न हुए व्यवधान और संकट के सींखचों से

निकल पुन: अपनी सचाई और वास्तविकता पर आया है। इसी बात में तो हम विश्व-गुरु हैं। हमने निरन्तर महानताएँ पैदा की हैं, जिन्होंने युग के युग इतिहास को दिए हैं पर हम जीवन को झुठलाते नहीं हैं—क्षुद्रताओं को समेटे हम अक्षुण्ण चल रहे हैं। यही हमारी अमरता की अमराई है जहां देव रहते हैं, मंत्र गूंजते हैं और महोत्सव मनाते हैं। और हमें नमस्कार के इन क्षणों में याद आ रहा है नेहरू का बोला बोल कि हम धनी देश के गरीब निवासी हैं और उसकी समाधि के चारों ओर गूंज रहा है हमारा अनबोला बोल कि हम इतिहास की क्षुद्र सन्तान हैं।

('ज्ञानोदय', मई १९६५)

कथा जिसका इतिहास खो गया है

'ज्ञानोदय' के विशेषांक के लिए इतिहास-कथा की बात कहनी है। और, मैं कथाओं में दौड़ लगा रहा हूं—कभी 'होराइजेंटल' और कभी 'वरटिकल'; कथानकों की उधेड़ बुन कर रहा हूं, पात्र-पात्राओं के जीवन को खोल और ढंक रहा हूं··· कहीं कुछ मिल जाय कि मेरा लेख बन जाय! कहने को कथा है एक मेरे पास, पर भूल रहा हूं उसे। लेख मुझे लिखना है, इसलिए दौड़ रहा हूं मैं उसी कथा की खोज में। इतिहास छान डाला पर वह नहीं मिल रही है। इतिहास और वह भी भारत का···कितनी लम्बी-चौड़ी सीमाएं···कितना लम्बा काल···कितने युद्ध, कितना धर्म, कितनी संस्कृति, कितने शासक और कितने अवतार और आचार्य! सभी भारत है—हर पक्ष का इतिहास है। कथा से कथा लगी-बँधी चल रही है—और इतिहास से इतिहास की शृंखला जुड़ी है·· पर जो कथा मुझे कहनी है वह कहां खो गई है, यही नहीं समझ पा रहा हूं। मैं जरूर उसे कहना चाहता हूं, पर वह मिल नहीं पा रही है। आपको विश्वास नहीं होता कि ऐसा होता है! हो रहा है किन्तु! बार-बार लग रहा है कि मुझे कुछ कहना है जो खो गया है। मैं उसे ढूंढ़ रहा हूं।

इतिहास की घटनाएं बहुत-सी याद है—वे जो बचपन में रटी थीं, वे जिनकी तिथियां कितना रटने पर भी स्मृति में नहीं रह पाईं। व्यक्ति और घटनाएं, स्थान और तिथियां, याद की हुई और भूली हुई, सामने आ रही हैं। कितने राजाओं के मुकुट चमक रहे है—कितनों के मिट्टी में मिल रहे है; मुकुट कितने बादशाहों के चेहरे दीख रहे हैं—उनकी इमारतें, उनके दीवाने-खास और दीवाने-आम, उनकी बेगमें—उनका प्यार—कितनी चढ़ाइयां, उनके मुकाबले की गईं कितनी मोर्चेबन्दियां; कितने सम्मानित कवि कलाकार, ऋषि और राजगुरु दीख रहे हैं और मैं इतिहास पर दौड़ा जा रहा हूं। पर वह कथा कहां है? नहीं पा रहा हूं उसे! यही जो मैं देख रहा हूं, इतिहास है या उसमें कुछ बाहर भी है? किससे पूछूं कि इतिहास क्या दो है—एक उनका जो इतिहास के ग्रंथ रूप में चमक रहे हैं, दूसरा उनका जो इतिहास की नींव में गड़े हैं। उस

दूसरे इतिहास में प्रवेश के लिए जीवन के किस द्वार से जाना है ? जो कुछ इतिहास का पाठ्यक्रम पढ़ आया हूँ और जिसे आज भी मेरे बच्चे पढ़ रहे हैं, उसमें तो एक ही इतिहास है—दूसरा कुछ है भी, ऐसा लगता ही नहीं। क्या यह 'ड्राइंग रूम' ही सारा इतिहास है—सारा जीवन है ? ड्राइंग रूम के इतिहास ने ही क्या मेरी उस कथा को छीन लिया ? ड्राइंग रूम के जीवन पर जीने वालों का यही इतिहास है, और नहीं है तो फिर कुछ भी नहीं—कूड़ा-घर है !

तो, मेरी वह कथा कहाँ है ? छोड़ दूं—भूल जाऊं उसे ? क्या होगा, इतिहास ही उसे भूल गया है ! पर, कहने की तमन्ना है ऐसी तीव्र, कि खोयी हुई को खोये रखना नहीं चाहता। पुस्तकों का ढेर लगा है, सरकारी भण्डारों में ऐतिहासिक अभिलेखों का ढेर पड़ा है···क्या उस कथा के लिए इस ढेर में कहीं जगह है ? उस कथा के 'डाकुमेंट्स' नहीं हैं, सही है, पर क्या 'डाकुमेंट' ही जीवन है ? सुना है कि इतिहास निर्दय होता—उसके बटखरे बेदर्द होते हैं ? ऐतिहासिक दृष्टिकोण·· बेदिल बटखरे··· बेजबान दिल ! कथा है जिसको इन बटखरों ने नहीं तोला, कथा है जिसके दिल को जबान नहीं मिली। उसे ही खोज रहा हूँ, ताकि मुझे जो कहना है, वह मिल जाय और कथा को अपना इतिहास मिल जाय, पर मिल पायेगा उसे इतिहास ? इतिहास सत्ता का होता है, जिसकी नींव पर वह सत्ता खड़ी है, उसका नहीं। इतिहास में शहन्शाह और वजीर, राजा और मंत्री, नेता और गुरु की कहानी है, उनकी उच्चाशयता उनके प्रजाप्रेम, उनके व्यक्तिगत प्रेम, उनके शिकार और मनोविनोद की कथा है, पर जिन्होंने पत्थर तोड़ कर इमारत बनाई हैं, ईंटें जोड़ी हैं, यह करके चार पैसे कमाने के लिए जो अपने जीवन की कोमल प्रेम-धाराओं से बिछुड़ कर अपने जीवन के लघु इतिहास से टूट कर आ गये हैं, वे इतिहास की नींव भरते हैं, और उनकी कथा आज तक अपना इतिहास खोज रही है—खोज रही है ! सच, क्या खो जाना और खोजना ही उनका इतिहास नहीं है ?

इस खो जाने के इतिहास को मैं इतिहास में जोड़ना चाहता हूँ, पर इतिहास जिनके चंगुल में फँस गया है, जिनके साज-शृङ्गार से वह सज रहा है, वहाँ तक कथा वह पहुंच सकेगी ? उस 'ड्राइंग रूम' में जो झाड़-फानूस लगे हैं, कालीन बिछे हैं, तख्ते-ताऊस पर शहन्शाह बैठे हैं, महफिल लगी है और मृगछाला पर आचार्य भी बैठे हैं। वहां के हंसी के फव्वारों में संगीत और नृत्य की ताल-झंकार में कथा देख रही है अपने इतिहास को, इतिहास के भाग्य को···! देख कर भी क्या करे ? देख तो हम सभी रहे हैं, और देख पा लेते हैं—आँखें हमारी सदा के लिए बन्द कर देना इस इतिहास से नहीं हो सका—यही तो असंतोष है ! नहीं तो मैं जिस कथा को लेकर लिखने को उद्वेलित हूँ, वह इतिहास की बात करे ? इतिहास बहुत बड़ी चीज है—बड़ों की चीज है !

कथा कहाँ है, इतिहास के ड्राइंग रूम में ? काठ का बना कूड़ा-घर···कथा··· काठ ! हां, मिल गई मुझे वह खोई और खोजती हुई कथा, जहाँ उसको मिल गया इतिहास—अपना इतिहास नहीं, इतिहास का कूड़ा-घर···काठ का कूड़ा-घर···कूड़े-घर का काठ !

कथा है : टालीगंज जाते वक्त मोड़ की कच्ची सड़क पर की छोटी दूकान पर चला गया था, मकान की खिड़की के लिए काठ का दरवाजा खरीदने। दूकान पर बैठे विक्रेता—मालिक या मुनीम—से खिड़की का नाप-जोख बता कर हिसाब लगवा रहा था कि देखा···खादी की धोती और कुर्ते, जिनका रंग बता रहा था कि वह जब भी धुले हैं, हाथ से धुले हैं, धोबी की भट्ठी में नहीं, और कलकत्ता की गर्मी के पसीने की गन्ध से सुगन्धित उस लिबास में वह चेहरा दीखा—कालकोठरी का वह चेहरा·· भारत की बेड़ियां तोड़ने के लिए बेड़ियां पहन कर भी नाचने वाला वह चेहरा···और, और···काठ की दूकान···काठ की खिड़की चाहिए कि मैं स्वयं काठ-सा हो रहा हूँ ! यह···काठ का आदमी···इसी की तो कथा है···पांच नहीं, दस नहीं, पन्द्रह नहीं, तीस वर्षों की वह कथा—लाठियों, गोलियों, जूते-मुक्के और कारा की काल-कोठरियों की यंत्रणा की कथा···काठ हुई खड़ी है। चेहरे पर झुर्रियां, आंखों में बुझापन !

और मैंने पूछा उससे—"क्या मैं सही हूँ कि आप···हैं !"

"मैं···मैं···हूँ; था···नहीं, नहीं, कुछ नहीं···था···लेकिन···छेड़ो, मत खोलो उस मधुरिमा के विषाक्त हुए इतिहास को···पर इतिहास कहां···है···क्यों नहीं··· इतिहास का अट्टहास सुन रहा हूँ···सुन नहीं सकता···सुनना नहीं चाहता···मेरी कथा इतिहास नहीं···मैं काठवाला हूँ···काठ का आदमी ! नाम मेरा अब सिर्फ काठ रह गया है !

इतिहास बन गया कि मेरी कथा का इतिहास खो गया !

('ज्ञानोदय' नवम्बर, १९६०)



धर्म शिक्षा और संस्कृति

धर्म

शिक्षा

संस्कृति

धर्म

१. अणुव्रत : प्रगति या प्रवंचना ?
२. अध्यात्म, अध्यात्म, अध्यात्म !
३. जीवन धरती पर धर्म आकाश पर

शिक्षा

१. शिक्षा का आदर्श : गांधी और रवीन्द्र के बीच
एक काल्पनिक सम्वाद

संस्कृति

१. कला, अ-कला और अश्लीलता
२. कलकत्ता : रंगमंच की राजधानी

अणुव्रत : प्रगति या प्रवंचना ?

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्त्तक आचार्य श्री तुलसी मूलतः जैन धर्म की श्वेताम्बर शाखा के अन्तर्गत तेरहपंथी सम्प्रदाय के आचार्य और संचालक हैं। इस सम्प्रदाय का आविर्भाव आज से दो सौ वर्ष पूर्व एक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इसके आदि प्रवर्तक स्वामी भीषणजी थे, जिन्होंने अपने गुरु रघुनाथजी की धर्म सम्बन्धी आचार-विचार की व्याख्या से असंतुष्ट होने पर उनसे सम्बन्ध विच्छेदकर इस नये सम्प्रदाय की स्थापना की। भीषणजी स्वामी की परम्परा में आचार्य तुलसी नवें गद्दीधारी गुरु हैं।

तेरहपंथ की मान्यता

जैन धर्म की अन्य शाखाओं और सम्प्रदायों से इस सम्प्रदाय के विचार और मान्यता में सबसे बड़ा अन्तर दान-दया के प्रसंग को लेकर है। इसके मतानुसार दान-दयामूलक किसी भी प्रवृत्ति में धर्म नहीं है, और चूंकि, मनुष्य के लिये करणीय वही है जिसमें धर्म है, अतएव हर प्रकार की लौकिक या सामाजिक प्रवृत्ति वर्ज्य और निषिद्ध मानी गई। स्वामी भीषणजी के शब्दों में—'जो लौकिक उपकार में धर्म बतलाते हैं, वे मूर्ख-गवार हैं।'[1] और 'एक गृहस्थ दूसरे गृहस्थ की सेवा या उपकार करने में धर्म नहीं मान सकता। जो ऐसा मानता या उपदेश करता है वह मिथ्यात्वी होता है।'[2] इससे यह फलित हुआ कि समाज की लौकिक हित-साधक प्रवृत्तियों में बहुधा हिंसा होती है और इसलिये वे आत्म-धर्म की विरोधी होती हैं। इस मान्यता के विकास से सामाजिक सेवा और पड़ोसी धर्म को ठेस पहुंची और तेरहपंथ के अनुयायियों में सामाजिक कर्त्तव्य बोध की दृष्टि से सर्वथा उपेक्षा की वृत्ति रही। कहीं किसी ने कुछ किया भी तो केवल सामाजिक कार्य मानकर; धर्म की तो उसमें हानि ही समझी गयी। दान, दया और करुणा की यह व्याख्या बहुत विचित्र थी, और ऐसा लगता है कि रघुनाथजी जैसे गुरु के इस दृष्टि को कट्टरता से न मानने के कारण ही भीषणजी ने उनका परित्याग कर नये सम्प्रदाय की सृष्टि की। जो जैन शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान हैं, उन्होंने अहिंसा धर्म की इस एकान्त निवृत्तिमूलक व्याख्या को जैन-परम्परा की दृष्टि नहीं माना है। प्रज्ञाचक्षु 'पंडित सुखलालजी' जिनसे बढ़कर जैनधर्म और दर्शन का विद्वान दूसरा नहीं है,

---

१. श्री श्रीचंद रामपुरिया : 'श्रीमद् आचार्य भीषणजी के विचार-रत्न', पृष्ठ ३९
२. वही, पृष्ठ ७१

ने लिखा है—ऐतिहासिक और दार्शनिक सत्य यह है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति एक ही मानव कल्याण के सिक्के के दो पहलू हैं। दोष, गलती, बुराई और अकल्याण से तब तक कोई नहीं बच सकता जब तक वह दोषनिवृत्ति के साथ ही साथ सद्गुणों की ओर कल्याणमय प्रवृत्ति में बल न लगावे। कोई भी बीमार केवल अपथ्य और पुष्टि कुपथ्य से निवृत्त होकर जीवित नहीं रह सकता। उसे साथ-ही-साथ पथ्यसेवन करना चाहिये। शरीर से दूषित रक्त को निकाल डालना जीवन के लिये अगर जरूरी है तो उतना ही जरूरी उसमें नये रुधिर का संचार करना भी है।···इस देश में जो लोग दूसरे निवृत्ति-पंथों की तरह जैन-पंथ में भी एकमात्र निवृत्ति की ऐकान्तिक साधना की बात करते हैं वे उक्त सत्य भूल जाते हैं। जो व्यक्ति सार्वभौम महाव्रतों को धारण करने की शक्ति नहीं रखता उसके लिये जैन-परम्परा में अणुव्रतों की सृष्टि करके धीरे-धीरे निवृत्ति की ओर आगे बढ़ने का मार्ग भी रखा है। ऐसे गृहस्थों के लिये हिंसा आदि दोषों से अंशतः बचने का विधान किया है। उसका मतलब यही है कि गृहस्थ पहले दोषों से बचने का अभ्यास करें। पर साथ ही यह आदेश है कि जिस-जिस दोष को वे दूर करें उस-उस दोष के विरोधी सद्गुणों को जीवन में स्थान देते जाएं। हिंसा को दूर करना हो, तो प्रेम और आत्मौपम्य के सद्गुणों को जीवन में व्यक्त करना होगा। सत्य बिना बोले और सत्य बोलने का बल बिना पाए असत्य से निवृत्ति कैसे होगी? परिग्रह और लोभ से बचना हो, तो संतोष और त्याग जैसी गुण पोषक प्रवृत्तियों में अपने आपको खपाना होगा।'[१]

सामाजिक जीवन पर प्रभाव

तेरहपंथ के अनुयायी (जैसे कि जैन धर्म के दूसरे सम्प्रदायों के लोग भी) अधिकतया व्यापार-व्यवसाय में ही लीन रहने वाले हैं। उन पर दान-दया के इस सिद्धांत का असर यह हुआ कि कलकत्ता और अन्य स्थानों पर हजारों की संख्या में तेरहपंथी लोग रहे जो व्यापार कर लाखों-करोड़ों रुपयों का अर्जन तो करते रहे, परन्तु सामाजिक और सार्वजनिक कार्यों में जिनका सहयोग नहीं के बराबर हुआ। इतिहास इसका साक्षी है।

ऐसे धार्मिक विचार और मान्यता का सामाजिक जीवन के साथ मेल बैठना असम्भव ही था। परिणामतः धर्म और समाज का अलग-अलग होकर रहे। समाज का काम समाज की गति से चलता गया और धर्म का धर्म-परम्परा के ढंग से होता गया। इस तथाकथित सिद्धान्त की कट्टरता तेरहपंथ को इतनी दूर तक ले गयी कि जब यह कहा गया कि भगवान महावीर ने स्वयं गोशालक को तेजोलेस्या के वार से बचाया था, तो आचार्य भीषणजी ने कह दिया कि भगवान महावीर का वह कार्य भूल-भरा हुआ था। आचार्य भीषणजी और उनके बाद जो दूसरे आठ आचार्य हुए, उन्होंने सब ने यही दृष्टि रखी—हमारा सम्बन्ध संसार के साथ नहीं, समाज के साथ नहीं, समाज-व्यवहार के साथ नहीं, हमारा सम्बन्ध तो शुद्ध धर्म का अनुपालन करते हुए मोक्ष प्राप्त

१. पं० सुखलालजी : 'दर्शन और चिन्तन' (जैनधर्म और दर्शन), पृष्ठ १४६-१४७,

करने के साथ और दूसरे जीवों को मोक्ष-मार्ग दिखलाने के साथ है। जो सांसारिक उपकार है, उसका आत्मिक अर्थात् शुद्ध धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

असंतोष और आलोचना

धर्म और समाज के बीच की इस कृत्रिम पृथकता ने साधुओं और श्रावकों के जीवन में अनेक प्रकार की कृत्रिमताएँ उत्पन्न कर दीं। न केवल विचार-सरणी में, बल्कि आचार में भी। जिस व्यक्ति ने भी परम्परा की अन्धश्रद्धा को छोड़कर इस स्थिति को समझने की कोशिश की, उसके ही मन में इस असम्भव, असंगतिमूलक और लोक-विरोधी जीवन-व्यवस्था के प्रति असन्तोष और विरोध की भावना पैदा हुई। ज्यों-ज्यों नयी पीढ़ी के लोगों में ज्ञान और विचार की नयी चेतना का उद्भव हुआ, त्यों-त्यों आलोचना और विरोध का स्वर तीव्र होने लगा। यह विरोध तेरहपंथ सम्प्रदाय के बाहर से ही नहीं, अन्दर से भी पैदा हुआ। जब आलोचना घर में से ही फूट पड़ी, तो उसकी नितान्त उपेक्षा करना असम्भव हो गया। युवकों को एक तो स्वभाव से ही साम्प्रदायिक संकुचितता खलनेवाली होती है और फिर साम्प्रदायिकता के साथ-साथ जहाँ ऐसी असम्भव-असंगत मान्यताएँ भी हों, तब तो कहना ही क्या? श्रावक ही नहीं, साधु भी समाज में रहें, समाज के माध्यम से प्रचार करें और जीवन-धारण के लिए समाज से भोजन और वस्त्र प्राप्त करें, फिर भी समाज के कार्यों को धर्म के बाहर समझें; जिस पर अस्तित्व आधारित है, उसे ही अनस्तित्व मानकर चलें, यह एक बड़ी विडम्बना ही लगती थी। इसी को लक्ष्य कर पं० सुखलालजी ने कहा है—'दान का निषेध, सार्वजनिक हित-प्रवृत्ति का निषेध, इतना ही नहीं, जीवदया-पालन का भी निषेध; यह हुई तेरहपंथ की निवृत्ति। इस निवृत्ति को मानने का दावा करनेवाला गृहस्थ-वर्ग हो सके उतना ज्यादा-से ज्यादा धन बिना परिश्रम या कम-से-कम परिश्रम से अर्जन करने की वृत्तिवाला हुआ। यह कैसी सुन्दर अहिंसा! दूसरों के द्वारा प्रदत्त सुख-सुविधा पर उनके संगृहीत धन के ऊपर गुरु-वर्ग चलता है, परन्तु धन का समुचित विनियोग करने का उपदेश देने तक में पाप मानता है। अहिंसा का ठीक स्वरूप नहीं समझने के कारण उसकी यह विडम्बना समूचे समाज में फैल जाती है।'[1]

अणुव्रत का सूत्रपात

इस स्थिति से तेरहपंथी सम्प्रदाय के अन्तर्गत भी नयी पीढ़ी के लोगों में काफी असन्तोष जागृत होने लगा और धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा कम होती जाने लगी। तब आचार्य तुलसी के सामने संघ-संचालक के नाते यह प्रश्न आना स्वाभाविक था कि नवयुवकों को संघ के प्रति आस्थावान बनाये रखने के लिए क्या किया जाय? इस विचार-मन्थन में से ही अणुव्रत का जन्म हुआ। आचार्य तुलसी ने खुद कहा है—'नवयुवक मुझसे बार-बार कहा करते थे कि रूढ़ियों से आच्छन्न कार्यक्रमों में हमारी कोई श्रद्धा नहीं। हम चाहते हैं कि आपके हाथों कोई ऐसा रचनात्मक कार्य हो, जिससे देश की सुषुप्त चेतना जाग सके और हमें, विशेषतः नवयुवकों को, जीवन-निर्माण की

---

१. पं० सुखलाल जी 'दर्शन अने चिंतन' (जीवतो अनेकान्त) गुजराती भाग—२ पृष्ठ ८८२

सही दिशा मिल सके। मैं देश की दयनीय दशा को देखकर सोचा करता था कि राष्ट्र का चरित्र दिनोंदिन पतनोन्मुख होता जा रहा है। उसके लिए कोई उपक्रम किया जाय। बस, नौजवानों की प्रेरणा और मेरे चिन्तन का परिणाम अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात है।'[1]

आचार्य तुलसी के इस कथन से यह लगता है कि रूढ़ियों से आच्छन्न कार्यक्रम से ऊबे हुए नवयुवकों को जीवन-निर्माण को सही दिशा देने की दृष्टि से ही अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। इससे यह लगे बिना तो नहीं रह सकता कि आचार्य तुलसी ने परिवर्तन की आवश्यकता को अनुभव किया है। हम लगभग बीस वर्षों से कभी उग्र लेखों और भाषणों में और कभी तीखे या मीठे व्यंग्यों में आचार्य तुलसी से बराबर कहते आए हैं कि तेरापंथ धर्म की यह दृष्टि और आचार-परम्परा सही और स्वस्थ नहीं है। अतएव जब उन्होंने इस नये आन्दोलनका सूत्रपात किया तो हमें खुशी हुई।

अणुव्रत बनाम तेरहपंथ

हम शुरू से ही इस आन्दोलन की गतिविधि को ध्यानपूर्वक देख रहे हैं। जहाँ तक भाषा और विचारों की पृष्ठभूमि का सवाल है, आचार्य तुलसी और उनसे भी अधिक मुनि नगराज जी जैसे उनके शिष्य उसी भाषा में बोलते हैं, जिसमें कोई भी उग्र से उग्र सामाजिक और राजनीतिक विचारक, नेता या कार्यकर्त्ता बोलता और बोल सकता है। सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार जो आचार्य और मुनि समाज, देश अथवा संसार के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं मानते थे, वे आज देश के ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय जगत् के भी हरेक सवाल, चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो,या राजनीतिक हो, पर आए दिन बोलते हैं। बोलते-बोलते बोलने का अभ्यास भी उनका अच्छा हो गया है। जो सम्प्रदाय की तत्त्व-दृष्टि से राष्ट्र-कथा को 'विकथा' और राष्ट्रीय प्रवृत्ति को 'राज्यविरुद्धातिक्रम अतिचार' कहकर युवकों को राष्ट्रीय कार्य में योग देने से हतोत्साहित करते थे, इतने दीर्घकालीन स्वतन्त्रता संग्राम में कभी जिन्होंने कभी कोई शाब्दिक योग भी नहीं दिया और यहां तक कि महात्मा गांधी की अहिंसक प्रतिकार प्रणाली अथवा सत्याग्रह को अहिंसा-धर्म का अंग नहीं माना और उसका खण्डन करते रहे, वे आज चुनाव और मतदान के मसलों तक पर लोकतन्त्र, समाजतन्त्र, साम्यवाद आदि आदि राजनीतिक तन्त्रों की विशाल पृष्ठभूमि में विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं से बातें करते हैं। जो एक दिन पत्र लिखने या लिखवाने में भी पाप समझते थे[2] और कोई दूसरा व्यक्ति ही उनकी बात को 'धारण' करके लिखता था, वे अब वक्तव्य देते हैं, प्रवचनों की पुस्तकें छापते हैं और धुआंधार प्रचार करते हैं। जब से, आचार्य जी के ही शब्दों में 'ज्योतिषियों ने बताया था कि आगे (मेरे द्वारा) धर्म की जो ख्याति होनेवाली है, वह राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय होगी। तब तक हमारा इस तरह का कोई खयाल नहीं था। फिर

---

१. आचार्य श्री तुलसी : 'नव-निर्माण की पुकार', पृष्ठ, २१८

२. पहलै करण लिख्या मै पाप छै
   तो लिखायां हुसी निश्चय पाप कै—आचार्य भीषण जी

एकाएक विचार आया—दिल्ली चलना चाहिये। ज्योंही दिल्ली आना हुआ, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति क्या, वल्कि आकाश टोकसीको नाई हो गया।'[1], तबसे तो वे अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका पर चिंतन और विचार-विमर्श करने लगे हैं। इस सम्प्रदाय के गुरु राजस्थान से बाहर नहीं आये और कलकत्ता आदि क्षेत्रों को 'अनार्य' भूमि मानकर वहाँ जाने में दोष गिनते थे (यहां तक कि अपने भक्तों को भी कलकत्ता जैसे शहरों में जाकर न रहने की सौगन्ध दिलाने में धर्म माना करते थे) आज वे स्वयं ही दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता जैसी जगहों पर जा रहे हैं। इस प्रकार से तुलसी जी के तौर-तरीकों में इतना बड़ा परिवर्तन हुआ कि उनके शासन में रहने वाले जो साधु और श्रावक आचार्य भीषण जी की मूल परिपाटी से जरा भी इधर से उधर नहीं होना चाहते, वे आज उसी तरह से असंतोष जाहिर कर रहे हैं[2], जैसे एक दिन स्वयं भीषण जी ने अपने गुरु के प्रति किया था। यह विद्रोह अभी छिपा-छिपा विद्रोह है, पर मेरा निश्चित मत है कि तुलसीजी आज जिस धारा में चल रहे हैं, जिस विचार-भूमिका पर सोचते हैं, वैसा ही यदि जारी रहा, तो तेरहपंथ सम्प्रदाय में इस संघर्ष का बड़ा विस्फोटक रूप प्रकट होगा, जिसके दोनों ही परिणाम हो सकते हैं—या तो तेरहपंथ सम्प्रदाय में से वे सारे परम्परापूजक तत्व, जो आज असंतुष्ट हैं, निकल जायेंगे और तेरहपंथ अपनी मूल मान्यता और परम्परा को छोड़कर अणुव्रत में परिवर्तित हो जायगा या तेरहपंथ की मूल परम्परा की विजय होकर अणुव्रत आन्दोलन ही समाप्त हो जायगा।

आचार्य तुलसी इस अन्दर ही अन्दर उठती हुई प्रतिक्रिया को नहीं समझते हों, ऐसा हो नहीं सकता, किन्तु वे आज नियति के हाथों में हैं। उन्होंने कहा है—"मैंने अपने बारे में यह कल्पना कभी नहीं की थी कि मैं संसार के लिए इतना कुछ कर सकूंगा, जितना कि मैं कर रहा हूं।"···आज से कुछ वर्षों पहले जब मैं जयपुर में था, तो एक हस्तरेखा का विशेषज्ञ मेरे पास आया और कहने लगा—'मैं आपका हाथ देखना चाहता हूं।' मैं अपने काम में लगा हुआ था, अतः मैंने उस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। पर अन्त में कुछ उपासक लोगों के तथा उस ज्योतिषी के अत्यन्त

---

१. जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'विवरण पत्रिका' २७, दिसम्बर, १९५१

२. तारीख २६-२७ अप्रैल, सन् १९५८ को लाडनूं (राजस्थान) में स्वामी भीषण जी की विचार धारा में आस्था और आग्रह रखनेवाले व्यक्तियों के सम्मेलन ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया, उसमें कहा गया है—"तेरापंथ के आद्य-प्रवर्तक स्वामी भीषण जी की शुद्ध आध्यात्मिक प्ररूपणा में वर्तमान आचार्य-श्री अपनी निरूपण पद्धति के द्वारा सावद्य का मिश्रण कर मौलिक सैद्धांतिक परिवर्तन करते जा रहे हैं। —अस्तु, सम्यक्त्व की शुद्धि के लिये एक विशेष संगठन श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथ निर्वद्यागही संघ की स्थापना की जाती है, जिसका उद्देश्य श्री जिनेश्वरदेव प्रणीत स्वामी भीषण जी द्वारा प्ररूपित सिद्धांतों पर श्रद्धा व आग्रह रखते हुए उनपर सर्व साधारण की रुचि बढ़ाना है।'

—'सुमति पाक्षिक', ता० ३१ मई, १९५८

आग्रह करने पर मैंने अपना हाथ ज्योतिषी के सामने कर दिया। हाथ देखकर वह कहने लगा—'आपको बहुत बड़ा यश मिलनेवाला है।' पास बैठे किसी श्रावक ने पूछा—'यश क्या अन्तःप्रान्तीय या अपने संघ में ही मिलनेवाला है?' वह कहने लगा—अन्तप्रान्तीय क्या, अन्तर्देशीय और उससे भी बढ़कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति आपको मिलनेवाली है।' उस समय मैंने सोचा कि लोग भी कैसे होते हैं कि व्यर्थ ही झूठा अर्थवाद-प्रशंसा करते रहते हैं। कहाँ मैं और कहां अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र? पर जो होना होता है, वह होकर ही रहता है। नियति को मेरे द्वारा किसी कार्य की अपेक्षा थी, वह आज मैं कर रहा हूं और चाहता हूँ आगे भी इसी प्रकार निभाता जाऊँ।"[१]

आचार्य तुलसी इस प्रकार से जिस विचार-भूमिका का परिचय दे रहे हैं, उसमें परिवर्तन और विकास के चिह्न स्पष्ट हैं। उन्होंने कहा कि आज वे मानव-धर्म का वातावरण बनाने में लगे हैं। नैतिक उत्थान की भूमिका पर से वे समाज में व्याप्त आर्थिक वैषम्य, शोषण, भ्रष्टाचारिता, राजनीतिक मतवाद, अस्पृश्यता और सामाजिक रूढ़ियों आदि के बारे में बोलते हैं। बिल्ली के मुँह से चूहे को बचाने और जिस बाड़े में गाय बँधी है, उसमें आग लग जाने पर दरवाजा खोलकर उस गाय को बचाने में धर्म नहीं आदि की बात आज वे करते ही नहीं। हमारे एक विद्वान् मित्र को उन्होंने पारस्परिक बातचीत में बताया कि अणुव्रत आन्दोलन के द्वारा इस प्रकार की बातों के सवाल-जवाब से तो वे बच गये। आज वे समाज के हित के सवालों पर खुल्लमखुल्ला चर्चा करते हैं। शासनतंत्र और उसकी व्यवस्था के सवालों में दिलचस्पी लेते हैं। विदेश जाने की बात भी पैदा हो, तो वे हल्की जबान से इतना ही कहते हैं—'हम लोग पैदल चलते हैं, वहाँ जाना सम्भव प्रतीत नहीं होता।'[२] 'सम्भव' और 'प्रतीत' दोनों शब्दों पर ध्यान जाना अवश्यभावी है।

इस परिवर्तन ने अणुव्रत के आन्दोलन को तेरहपंथ की अपेक्षा व्यापक बना दिया है। अणुव्रत के व्याख्याकार मुनि नगराजजी ने एक जगह लिखा है—'एक ओर ऐसी समाज-रचना का कार्य सामने है जिसमें बहुत सारे मानदण्ड आमूल परिवर्तन की अपेक्षा रखते हैं, और एक ओर उन संस्कारों का जन-जन के मतिष्क पर जमघट है जिनपर सहस्राब्दियों से धर्म, पुण्य वह मोक्ष की छाप लगाई जा रही है।'[३] इस भाषा में और इस भूमिका पर से बोलनेवाले आन्दोलन की ओर सबका अभिमुख होना स्वाभाविक है। अणुव्रत आन्दोलन तेरहपंथ की अपेक्षा प्रगतिशील आन्दोलन है और इसने तुलसी को वह व्यक्तित्व दिया है, जो परम्परा से उनका नहीं था, नहीं है।

असंगति क्यों?

फिर भी क्या कारण है कि यह परिवर्तन वास्तविक है, ऐसा अभी तक विश्वास नहीं होता? आचार्य तुलसी के वचन और व्यवहार में आज भी बहुत-सी ऐसी बातें

---

१. 'जैन भारती' (प्रकाशक : श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता) ता० २१ दिसम्बर, १९५८, पृष्ठ ८५०

२. आचार्य श्री तुलसी : 'नव-निर्माण की पुकार' पृष्ठ २२५

३. मुनि श्री नगराज जी : 'नवीन समाज-व्यवस्था में दान और दया', पृष्ठ ६

है, जिनका उनकी तथाकथित राष्ट्राभिमुख विचार-सरणी और परिवर्तन-बोधिनी भाषा के साथ मेल नहीं बैठ पाता। आज भी वे सामाजिक-आर्थिक मामलों में नकारात्मक भाषा में ही बोलते हैं। व्रतों की सारी रचना 'यह मत करो, वह मत करो' के आधार पर ही की गई है। यह तेरहपंथ की परिपाटी है, जिसके मूल में उसकी निवृत्तिपरक जीवन-व्याख्या है। बताया गया है कि 'जीवन को मर्यादित बनाने में जितना निषेध सफल है, उतनी विधि नहीं। निषेध स्व-मर्यादा है। दूसरी बात, मनुष्य के जीवन में स्वभावतः विधेयकता की अधिकता है और हेयता का आचरण कम है। इसलिए यह श्रेष्ठ होता है कि हम उसके सामने न करने की सूची उपस्थित करें, न कि करने के कामों की लम्बी फेहरिस्त (तालिका)।'[१] हमें इस तर्क में कोई सार नहीं लगता। हमारा निश्चित मत है कि अहिंसा यदि नकारात्मक है, तो वह जीवन का धर्म नहीं हो सकती। निषेधात्मक पक्ष की अपेक्षा अहिंसा का विधायक पक्ष कहीं अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण है। जब तक आचार्य तुलसी इस परम्परागत विचार और विधि को पकड़े हुए हैं, तब तक वे जीवन के विधायक पक्ष की दृष्टि से मानव को उसके विकास में मदद नहीं दे सकते। शब्दों का नाटक रचकर वे कुछ भी कहते रहें और अपने परम्पराभक्त अनुयायियों को समझाते रहें, पर हमें लगता है कि वे स्वयं भी इस एकांत निषेध-प्रणाली से संतुष्ट नहीं हैं, और वर्तमान आन्दोलन के सन्दर्भ में उससे उनका काम भी नहीं चलता। उनके प्रिय शिष्य और अणुव्रत आन्दोलन के प्रशस्त व्याख्याकार मुनि नगराजजी ने कहा है—"यह मान लेने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि निषेधात्मक और विधानात्मक पद्धति में भी कथन-भेद ही है, कोई तत्त्व-भेद नहीं। किसी भी विधान में निषेध और निषेध में विधान स्वतः प्रतिध्वनित हो ही जाता है।··· अतः किसी भी दृष्टि से अणुव्रती संघ का यह नकारात्मक दृष्टिकोण अपूर्ण और अनुपादेय नहीं माना जा सकता।"[२] इसमें अप्रत्यक्ष रूप से विधेयकता के महत्व की स्वीकृति है। परिणाम-स्वरूप निषेध की भाषा को ही अपनाए रखते हुए भी व्रतोंकी रचनामें ऐसे वाक्योंका प्रयोग हो गया है, जिससे विधि स्पष्टतः प्रतिध्वनित होती है। उदाहरण के लिए चुनाव-संबंधी नियम नं० ७ में लिखा है—' मैं सेवाभाव से रहित केवल व्यवसाय-बुद्धिसे उम्मीदवार नहीं बनूँगा।"[३] इस नियम के प्रथम वाक्यांश का 'रहित' दूसरे के 'नहीं' के साथ बैठकर सीधे-सीधे विधान की भाषा बन जाता है। यही क्यों, इस आंदोलनके दूसरे व्याख्याकार मुनि श्री नथमलजी ने तो 'ओ भोले !' शीर्षक अपने गद्यकाव्य, जो मासिक 'ज्ञानोदय' के अप्रैल, १९५९ के अंक में प्रकाशित हुआ है, में प्रारम्भ की कतिपय नकारात्मक पंक्तियों के बाद स्पष्ट शब्दों में विधेयात्मक भाषा में लिखा है—"साँस जीने को ले। लो आलोक के लिए जला। बीज अनाज के लिए बो।" हमें पता नहीं, अनाज के उत्पादन के लिए बीज बोने की इस बात

---

१. मुनि श्री नगराज जी : 'अणुव्रत जीवन-दर्शन', प्रकाशक, अणुव्रत समिति, दिल्ली, पृष्ठ १४

२. 'अणुव्रत', मार्च अप्रैल, १९५९

३. 'अणुव्रत-आंदोलन' (नियमावली) सप्तम संस्करण, पृष्ठ, २७

को इस प्रकार कहने से निषेध की भाषा और साथ ही खेती के लिए साधु उपदेश न दे आदि की बात से कैसे मेल बैठ पायेगा ?

कांग्रेस के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री श्रीमन्नारायण आशा करते हैं—"अणुव्रत आंदोलन ठोस नींव पर समाजवादी समाज-व्यवस्था की रचना में सहायक बन सकेगा।" १ और इधर तुलसी के सान्निध्य में बोलते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा है कि "आज उस धर्म की आवश्यकता नहीं है, जिससे वैयक्तिक मोक्ष की प्राप्ति होती हो।" २ क्या यह वैयक्तिक मोक्ष की उपलब्धिवाले धर्म का निषेध और ठोस नींव पर समाजवादी समाज-व्यवस्था में सहायक होने की बात आचार्य तुलसी के वर्तमान आन्दोलन की व्याख्या से समन्वित की जा सकती है, जो तो कहता है कि 'अणुव्रत व्यवस्था में क्षितिज के उस पार की चिन्ता का ही मुख्य स्थान है, गौण स्थान प्रत्यक्ष समाज-व्यवस्था का।' और कि 'आत्म-धर्म आत्म-साधना का प्रतीक व मोक्ष का साधक है और लोक-धर्म लोक-मर्यादा व व्यवस्था का निर्वाहक है। दोनों का एकीकरण करना गंभीर भूल है।'३ जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष समाजभूषण श्री छोगमलजी चोपड़ा ने तो यहां तक कहा है कि "समाज और धर्म दो सर्वथा विभिन्न वस्तुएं हैं तथा कोई भी व्रत जो समाज, देश या राष्ट्र के हित के लिए लिया गया है, उससे आत्मा की उन्नति नहीं होती।' ४ और चूंकि, जिनसे आत्मा की उन्नति नहीं होती, वैसे व्रत तो आचार्य तुलसी लिवा नहीं सकते, तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि अणुव्रत आंदोलन केवल आत्माकी उन्नतिके लिए है या श्रीमन्नारायणजी की आशानुसार ठोस नींवपर समाजवादी समाज-व्यवस्थाकी रचना में सहायक होने के लिए ? आत्म-धर्म और लोक धर्म के एकीकरण में गंभीर भूल मानने-वाले आचार्य ने अपने सान्निध्य में कहे हुए श्री जयप्रकाश नारायण के उक्त कथन को हजम कर लिया, यह आश्चर्य की ही बात है, परन्तु इसको हजम किए बिना अर्थात् मौन स्वीकृति दिए बिना जयप्रकाश जी का सर्टीफिकेट ही, जीवन-समर्पण कैसे पाया जा सकता है ? जहां इस तरह के राजनीतिक दाव-पेंच खेले जाते हों, वहाँ आचार्यजी का यह बोले बिना काम नहीं चल सकता कि मेरा काम तो कोटि कोटि जनता का दुःख दर्द जानना और सुनना है।'५ तथा मेरा काम और भावना तो यही है कि जनता का जीवन-स्तर ऊंचा उठे और इसके लिए मेरा प्रयास है।'६ और 'हमारे यहाँ आत्म साधना और जनोपकारी कार्य के साथ उसकी पूरक अन्य साधनाएं भी चलती हैं।' ७

---

१. मुनि श्री नगराजजी रचित 'अणुव्रत जीवन-दर्शन' की भूमिका।

२. 'जैन भारती', ता० २२-३-५९, पृष्ठ २१२

३. "जैन भारती", १७-१-५४

४. श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा की विवरण पत्रिका, फरवरी, १९५४

५. आचार्य श्री तुलसी : 'नव-निर्माण की पुकार', पृष्ठ ६२

६. वही पृष्ठ ६३

७. वही, पृष्ठ १८९

इन बातों के विपरीत वे इस प्रकार के कथन भी करते हैं, जैसे 'कृषि में हिंसा है।'[1] एक पत्रकार ने जब उनसे पूछा कि 'कोई मनुष्य जानवर पर अत्याचार करे, तो आप उस समय क्या करेंगे ?' आचार्य ने जवाब दिया—'हम मारनेवाले को उपदेश देंगे। हिंसात्मक तरीकों से बचाना हमारा काम नहीं है, क्योंकि हम हृदय-परिवर्तन को ही अपना धर्म मानते हैं।'[2] इससे भी बढ़कर किसी ने जब यह पूछा कि—'क्या आप भूखे को भोजन दे सकते हैं ?' तो उन्होंने कहा—'हां, पर उसी अवस्था में जब कि वह हमारे जैसे ही हो। हम जैसे शरीर पोषण के लिए नहीं खाकर संयम निबाहने के लिए खाते हैं, उसी प्रकार अगर कोई पूर्ण संयत व्यक्ति संयम-पोषण के लिए खाए, तो हम उसे भी भोजन दे सकते हैं। लेकिन हम सेवा को आध्यात्मिक धर्म नहीं मानते। वह तो सामाजिक कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य और धर्म में अन्तर है। धर्म कर्त्तव्य अवश्य है,

---

१. आचार्य श्री तुलसी : 'नव निर्माण की पुकार', पृष्ठ १८७।

'जैन भारती' के मार्च, १९५२ के अंक में 'कृषि और जैनधर्म' शीर्षक से एक सम्पादकीय टिप्पणी में खेती से आजीविका निर्वाह करने के विषय में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हुए लिखा गया था कि "खेती करनेवाली दुनिया में रहकर खेती न कर रहने वाला श्रावक खेती के पाप का भागी होता ही है, ऐसा कहना सत्य से परे है। जो खेती करना पसन्द नहीं करेगा, वह अपने लिए होती हुई खेती की हिंसा से कैसे बचेगा ? उत्तर है—त्याग से।" इस प्रकार की अहिंसा की दृष्टि पर श्री बच्छराज सचेड़ ने अहिंसा और गांधीवाद के साधक विद्वान स्व० श्री किशोरीलाल घ० मशरूवाला से पत्र-व्यवहार किया था। श्री मशरूवाला ने अपने ता० २५-५-५२ के पत्र में जो उत्तर दिया, वह विचारणीय है।

उन्होंने लिखा है—"जो मनुष्य खुराक खाता है, वह चाहे उसे स्वयं पैदा करे या दूसरों का पैदा किया हुआ खाय, उसे पैदा करने की क्रिया से लेकर अपने मुँह में जाता है तब तक में जितनी हिंसा होती है, उसमें वह भागीदार है। भले ही उसने उसे पैदा करने वगैरह के लिए कुछ भी प्रेरणा न की हो; और चाहे बचा हुआ अन्न खाता हो। यदि कोई हरा पान ही खाता है तो भी जीव को ही खाता है, अल्प और बड़ी हिंसा का भेद उसमें किया जा सकता है; परन्तु यदि हम सर्वसाधारण खुराक खाते हैं, जैसे, गेहूँ, चावल, दाल, सब्जी और उनके पक्वान्न तो उसमें होनेवाली हिंसा में उत्पादक किसान से खानेवाले की हिंसा ज्यादा मानना होगा।"

"किसान तो हिंसा करने का कलंक उठा करके भी अत्यन्त परिश्रम उठाता है, और हजारों मानवों, पशु-पक्षी आदि का भरण-पोषण करता है, स्वयं पैदा करते हुए अक्सर वह खुद आधे पेट ही रहता है। उसके धन्धे में यदि हिंसा होती है, तो उसका वह पाप वहीं धुल जाता है, परन्तु हम जो उसकी मेहनत का फल खाते हैं, हमारा पाप धोने के कोई साधन ही नहीं है।"

२. वही, पृष्ठ; २२६

किन्तु सारे कर्त्तव्य धर्म नहीं। हम केवल धार्मिक काम ही कर सकते हैं।'[1] इससे यह फलित हुए बिना नहीं रह सकता कि तुलसीगणी सेवा के काम में नहीं उतर सकते, क्योंकि वे केवल धार्मिक काम ही कर सकते हैं और उक्त कथन के अनुसार सेवा को वे धार्मिक कार्य नहीं मानते। तब वे जनता के दुख-दर्द को मिटाने का लक्ष्य सामने रख कर मानव-धर्म की बात क्या करते हैं? उनके शिष्य मुनि नथमलजी तो यहाँ तक कह जाते हैं कि "अणुव्रत-आंदोलन का महत्व जितना आध्यात्मिक है, उतना ही राजनीतिक।'[2] और यह भी कि "धन समाज से पैदा होता है—समाज की वस्तु है। समाज पर उसका पूर्ण अधिकार है।"[3] इन परस्पर-विरोधी उक्तियों में सच क्या है, यह समझ पाना ही असम्भव हो जाता है।

प्रगति नहीं प्रवंचना

स्पष्ट है कि आचार्य तुलसी कहीं तो आत्मिक धर्म और लौकिक धर्म के सर्वथा अलग होने की और कहीं उनके अन्योन्याश्रित होकर चलने की बात कहते हैं। उनके विचारों में इस प्रकार की उलझन और असंगति जगह-जगह मिलती है और इसी के कारण यह प्रतीत होने लगता है कि अणुव्रत वास्तव में प्रगति नहीं, तुलसी की आत्म-प्रवंचना तो है ही, साथ ही पर-प्रवंचना भी है। वे न तो तेरहपंथ की परिपाटी से संतुष्ट हैं और न उसको छोड़कर ही चल सकते हैं। यह द्विधा ही आज उनके व्यक्तित्व को वचन और व्यवहार में विभक्त किए हुए है। एक तरफ वे दुःख प्रकट करते हैं—"धर्म संप्रदाय की चहारदीवारी में बन्दी बना हुआ है।"[4] और यह भी कि अणुव्रत आंदोलन साम्प्रदायिक आंदोलन नहीं है। पर दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि "तेरापंथ के साथ मैं इतना जुड़ा हूँ कि उससे अलग मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं है। मेरा प्रत्येक कार्य शासन के हित की दृष्टि से ही होता है। अतः अपनी ख्याति को मैं अपनी ख्याति नहीं मानता, वह तो तेरापंथ की ही ख्याति है। इस तरह तेरापंथ के विचारों को प्रसृत करने का भी सहज ही अवसर मिल जायगा।'[5] तब एक जबर्दस्त भूलभुलैया खड़ी हो जाती है कि अणुव्रत आंदोलन नैतिक उत्थान का स्वतन्त्र आंदोलन है अथवा तेरापंथ को प्रसृत करने का आंदोलन! ऐसा लगता है कि आचार्यजी तेरहपंथ को छोड़कर चलना चाहते हैं, पर सामने तेरहपंथी भक्तों के झुंड को देखकर तेरहपंथ से अलग होने का साहस नहीं कर पाते। किन्तु इसपर से यह तो साफ़ लगता है कि अवसर मिलते ही वे तेरहपंथ से इस आंदोलन को और अपने-आपको अलग कर लेंगे। उनके शिष्य मुनि नगराजजी ने लिखा भी है—"यदि भविष्य में देश के अन्यान्य उत्कृष्ट व्यक्ति इसमें आएँ और यह माना जाने लगा कि यह संघ अणुव्रतियों के पारस्परिक अनुशासन में सफलता पूर्वक चल सकेगा, तो इसके संचालन की कोई भी सामाजिक

---

१. आचार्य श्री तुलसी: 'नव निर्माण की पुकार, पृष्ठ, २२९

२. 'जैन भारती', ता० १-२-५९

३. आदर्श साहित्य संघकी विज्ञप्ति, ता० १०-२-४८

४. जैन भारती, ता० २८-९-५८

५. जैन भारती, ता० ९ मार्च, १९५८; पृष्ठ १५५

प्रणाली निर्धारित की जा सकेगी।"[1] इससे तो यही लगेगा न कि आचार्य तुलसी का तेरहपंथ के सिद्धांत और शासन में विश्वास हिल चुका है और वे किसी भी अनुकूल अवसर पर तेरहपंथ का परित्याग कर अणुव्रत को ही अपना धर्म बना सकते हैं, जिसके आधार पर वे संसार भर का उपकार करने की अपनी आकांक्षा को पूरी कर सकेंगे। तुलसीजी के साहित्यिक प्रचारक श्री जैनेन्द्र कुमार को भी खटकता है 'कि एक सम्प्रदाय के गद्दीधारी आचार्य होने के कारण निपट सेवक होने की सुविधा उनको नहीं हो पाती।'[2] जो हो, अभी तो सम्प्रदाय के शासन और संचालन की मोह दृष्टि से वे ऊपर उठ नहीं पाये, बल्कि सम्प्रदाय को मजबूत बनाने की दृष्टि से आज भी साधु-साध्वियों की संख्या बढ़ाने के लिये दीक्षार्थियों को तैयार करने और अबोध बालक-बालिकाओं को आजीवन संन्यासी की दीक्षा देने के लिये पारमार्थी शिक्षण-संस्था चलाते हैं, जिसके शिक्षण-क्रम में उस व्यापक मानवधर्म की कोई झलक नहीं है, जिसका तुलसीजी दावा करते हैं, और जहां का दम-घोंटू वातावरण इन बालक-बालिकाओं को स्वतंत्र चिंतन और निर्णय का अवसर ही नहीं देता। वहां तो एक लौह आवरण में सन्यास की शृंखलाएँ गढ़ी जा रही हैं।

विज्ञान की कसौटी पर

तुलसी जी आए दिन अपने आंदोलन के दौरान विज्ञान की भी चर्चा किया करते हैं और उनका एक नारा यह भी है कि विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय किया जाय। यह बात नई नहीं है। दुनिया के कई बड़े-बड़े वैज्ञानिक और विचारक इस बात को कहते हैं जिसका अर्थ यही होता है कि विज्ञान द्वारा प्रदत्त साधनों को मानव-कल्याण की वृद्धि में लगाया जाय, न कि संहार-सृष्टि में। विज्ञान की शक्ति और अध्यात्म की भावना का योग स्थापित किया जाय, परन्तु जो अध्यात्म केवल वैयक्तिक मोक्ष की ही बात करता है और प्रत्यक्ष रूप में जन-कल्याण में धर्म की साधना नहीं मानता, उसके लिए यह समन्वय भी क्या और कितना अर्थ रखता है? यह तो बौद्धिक चिंतन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बात हुई। परन्तु आचार्य तुलसी तो दैनन्दिन जीवन में विज्ञान-सम्मत सफाई और स्वास्थ्य के छोटे-मोटे नियमों को मानकर चलने को भी धर्म विरोधी मानते हैं। कभी स्नान न करने, दंत मंजन न करने और मुँह पर बिना पट्टी चढ़ाए न बोलने में कहां की वैज्ञानिकता है? इससे भी अधिक वैज्ञानिक और समाज-विरोधी बात है, मल-त्याग के लिए खुले स्थानों पर बैठना तथा पेशाब इकट्ठा करके आम रास्तों पर फेंकना। इस प्रकार गंदगी पैदा करना अवैज्ञानिक ही नहीं, नागरिकता के सामान्य नियमों के विरुद्ध भी है। यदि आचार्य जी में सचमुच विज्ञान की समझ और दृष्टि होती, तो ये प्रथाएँ किसी भी तरह से जारी नहीं रखी जा सकतीं। हम नहीं समझ पाते कि इन प्रथाओं के पालन में आचार्य जी मानव-धर्म के किस अंगकी पूर्ति करते हैं। वे शुद्धिकी बातें करते हैं और अछूतों से कहते हैं कि 'जहां दूसरे लोग

---

१. मुनि श्री नगराजजी : "अणुव्रत-दृष्टि", पृष्ठ २२

२. 'जैन भारती', १०. १. ५४

गंदगी फैलाते हैं, वहाँ वे सफाई का काम करते हैं, जो बड़ा महत्वपूर्ण है;' किन्तु स्वयं ही तो गंदगी फैलाने में योग देते हैं !

इस विचारधारा में भी सब जगह संगति नहीं है। जहाँ वे स्वयं दूर-दूर की यात्राएँ पैदल करते हैं, वहाँ उनके सरंजाम में जीपें और मोटर गाड़ियाँ दौड़ती हैं' १ अथवा प्रचार के लिए छापेखाने में किताबें छपाई जाती हैं। पैदल इसलिए चलते है कि हिंसा से वच जायँ, परन्तु इस सव सरंजाम में आरम्भ-समारम्भ की जो हिंसा होती है, उसका कोई विचार नहीं होता। फ्लशकी टट्टियों वगैरह का व्यवहार करने में तो उनको धर्म की हानि दीखती है पर खादी, जिसको गांधी जी ने अहिंसा का प्रतीक माना था, के व्यवहार के विरोध में वे कहते हैं 'यंत्र-विकास की ओर जिस प्रकार प्रत्येक देश अहम-पूर्वक बढ़ने में व्यस्त है, वह देखते हुए उक्त प्रकार का नियम निकट भविष्य में ही नितांत अव्यवहार्य भी हो सकता था।'२ यंत्र-विकास की ओर बढ़ती हुई स्थिति को देखकर जो खादी धारण के अहिंसा मूलक नियम को अव्यवहार्य मानता है, वह खुली जगहों पर टट्टी-पेशाब करने की प्रणाली को व्यवहार्य ही माने चलता है ! स्पष्ट है कि विज्ञान भी इनके निकट केवल एक वाक्चातुर्य का ही काम देता है। न तो ये वास्तविक विज्ञान को समझते हैं, और न जीवन को विज्ञान के आधार पर समझने और निर्माण करने का कोई प्रयत्न ही करते है। विज्ञान को वात करते हैं, पर विज्ञान को नहीं मानते। यदि विज्ञान को मानकर चलें, तो जीवन का सारा तौर-तरीका बदलना पड़ेगा, जो इन्होंने अभी तक नहीं किया है।

प्रचार का रहस्य

प्रश्न होना स्वाभाविक है कि जब आंदोलन की मूलभूत विचारधारा में इतनी भूल और असंगति है, तो इसका इतना प्रचार क्यों कर हो सका ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए हमें कहना होगा कि इस प्रचार का श्रेय तुलसी से ज्यादा उनके भक्तों को है; उनकी वाणी से ज्यादा भक्तों के झुंडों और रुपयों के ढेर को है। ये व्यवसायी भक्त गण तुलसी के प्रचार-प्रसार में अपने स्वार्थ की भी तो सिद्धि देखते हैं। इसलिए आचार्य तुलसी को अणुव्रत की गद्दी पर बैठा कर (तेरहपंथ का नाम न लेकर) एक राजनीतिक दाव खेल रहे हैं। इनमें से विशिष्ट भक्तों का काम दिन-रात इसी वात की दौड़-धूप करते रहना है कि हर क्षेत्र के नेता और कार्यकर्त्ता आचार्य जी के पास आएँ और हर जगह आचार्य जी के प्रवचनों का प्रवन्ध हो। आचार्य जी भी हर प्रसंग पर अनुकूल बात को अनुकूल भाषा में व्यक्त करने की कला से काम कर रहे हैं। वे राजनेताओं के वीच में जाते हैं, तो राष्ट्रीयता और राजनीति की भाषा में वोलते हैं और जब साहित्यकों अथवा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के बीच प्रवचन करते हैं, तो वैसी वाणी प्रचारित करते हैं। हमने ऊपर कहा ही है कि आचार्य जी हर प्रश्न पर उसी तीव्रता के साथ बोल लेते हैं, जो किसी भी उग्र से उग्र सामाजिक, राजनीतिक कार्यकर्त्ता में होती है। इस प्रचार का असर इसलिए हो जाता है कि एक तो जैनेतर लोगों को इनकी मूल मान्य-

---

१. आचार्य तुलसी : 'नव निर्माण की पुकार', प्राक्कथन (सत्यदेव विद्यालंकार) पृष्ठ १२
२. मुनि श्री नगराजजी : 'अणुव्रत दृष्टि', पृष्ठ, २८

ताओं और विधियों की अभिज्ञता नहीं है और दूसरे, वे समाजों में बोलने, विज्ञप्तियों में अपना नाम देने और संस्थाओं के लिए चंदा पाने के लोभ को संवरण नहीं कर सकते। आचार्य जी के भक्त अपनी मूल मान्यताओं में जो खतरा है, उसको अच्छी तरह जानते हैं; इसलिए सामान्यतः उसको प्रकट नहीं होने देते। अभी कलकत्ता में जब आचार्य जी के स्वागत-संबंधी विज्ञप्ति और निमंत्रण-पत्रिका आदि प्रकाशित की गई उनमें तेरहपंथ ही क्या, जैन-धर्म का भी कहीं नामोल्लेख नहीं था, ताकि तेरहपंथी मान्यताओं को आमतौर पर जो आलोचनाएँ होती हैं, उनका सवाल ही न उठे। इस तरह से अणुव्रत आंदोलन नैतिक पुनरुत्थान और राष्ट्रीय चारित्र्य-शुद्धिका जन-आंदोलन है, यह ढोल पीटकर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और दूसरे मंत्रियों एवं नेताओं को बुलाकर उनकी प्रशंसा कर, उनको चंदा देकर, उनको इस बात का भ्रम कराकर कि हजारों-हजारों आदमी उनकी बात को सुन रहे हैं, उनसे प्रशंसा-पत्र प्राप्त कर आन्दोलन को एक सर्व-मनोग्राही आंदोलन का रूप दे रहे हैं। यही है आंदोलन के प्रचार-प्रसार का वास्तविक रहस्य। जिन शब्दों में आचार्य जी ने 'मॉरल रि-आर्मामेंट' (एम० आर० ए०) के बारे में अपने विचार प्रकट किये हैं, उन्हीं को दोहराकर हम उनके आन्दोलन के बारे में भी कहेंगे कि "कुछ व्यक्ति इसे राजनीतिक चाल समझते हैं, तो कुछ 'तेरहपंथी' बनाने का तरीका मात्र मानते हैं। इसमें उनकी कोई श्रद्धा नहीं, उल्टा इसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं।"[1]

भविष्य

सारे प्रचार-प्रसार एवं स्वागत और अभिनन्दन के बावजूद हमें इस आंदोलन का कोई भविष्य नहीं दीखता। यह जन-जीवन में जड़ें नहीं जमा सकेगा। सारा आंदोलन एक मरते हुए सम्प्रदाय के अस्तित्व को बचाने का और आचार्य तुलसी की जन-नेतृत्व की आकांक्षा को पूरा करने का ही प्रयास है, जिसको उन राजनेताओं के अभिनन्दनों और प्रमाण-पत्रों से गढ़ा जा रहा है, जो स्वयं उनके और उनसे भी ज्यादा इनकी धनपति जमात के योग से अपनी राजनीति का योग साधना चाहते हैं। कांग्रेस भी आज हर आंदोलन को अपने अभियान में जोड़ कर अपनी सत्ता और प्रतिष्ठा कायम रखना चाहती है। श्री श्री गुलजारीलाल नन्दा की जन-सम्पर्क योजना में भारत सेवक समाज और भारत साधु समाज के साथ अब अणुव्रत आंदोलन भी जुड़ गया है या जुड़ जायगा और इस जोड़ से नेहरू भी थोड़े बहुत जुड़ ही गए हैं। नेहरू-जैसा विशिष्ट नेता भी जब आंदोलन को आशीर्वाद देता है, तो उसके भविष्य में क्या संदेह हो सकता है, यह प्रश्न हो तो कोई आश्चर्य नहीं!

तथापि हम संसार में उन विचारों का आविर्भाव स्पष्ट देख रहे हैं, जो ऐसे किसी भी सिद्धांत और तंत्र को नहीं रहने देंगे, जो चाहे राजनीति के पटाटोप में और चाहे धर्म और नैतिकता के आवरण में जन-साधारण के शोषण में नैतिकता की ओट बन कर सहायक होते हैं। वे सारी जमातें निश्चित तौर से खतम होंगी, जो जन-

---

1. आचार्य तुलसी : 'नव-निर्माण की पुकार' पृष्ठ, २०० (इसमें ईसाई की जगह हमने तेरहपंथी शब्द रख दिया है।)

जीवन के साथ खिलवाड़ करती रही हैं और उसके सामाजिक-आर्थिक विकास में रोड़ा बनती रही हैं। जनता को गाफिल बनाकर उसे अपनी शक्ति के प्रति जागरूक होने से रोकने वाला कोई तत्त्व हो—धर्म, संस्कृति, नैतिकता, या उसका कोई और नाम हो—उसका पतन और परिसमाप्ति होकर रहेगी। विज्ञान आज मनुष्य के मस्तिष्क को बुद्धि और विचारणा की नई शक्तियां दे रहा है और उसके हाथों को जीवन के स्वस्थ निर्माण के नए उपकरण प्रदान कर रहा है। इससे जिस नए मानव की सृष्टि हो रही है, उसपर यह धर्म की या संस्कृति की या नैतिकता की अफ़ीम कारगर नहीं हो सकती। पाँच, दस अथवा बीस वर्ष हो भी जाय, पर अंत तक वह कायम नहीं रह सकती। इस आधार पर हम यह कहने में जरा भी नहीं झिझकते कि अणुव्रत आंदोलन किसी तरह से भी टिक नहीं सकता।

वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से आज विश्व अणु-युग में पहुंच चुका है, जिसमें जीवन के समस्त मूल्य और मान्यताएं बदलने वाली हैं। जो व्यक्ति अथवा समाज परम्परागत बद्ध-मूल संस्कारों से ऊँचे उठ कर युग के नए आलोक में जीवन के नए मूल्यों को समझेगा, वही कायम रहेगा और अपना जीवन सफल और सार्थक कर सकेगा, नहीं तो अणु-युग की नई वैचारिक शक्तियाँ समस्त आंदोलनों को तिनकों की तरह से उखाड़-पछाड़ कर बढ़ती जाएँगी। इतने बड़े परिवर्तन के कगार पर खड़े होकर कोई भी पिटी-पिटाई और घिसी-घिसाई परिपाटियों की बातें कर के अपने-आपको हास्यास्पद ही बनाता है।

यदि सचमुच आचार्य तुलसी नई जीवन-व्यवस्था के निर्माण में सहायक होना चाहते हैं, तो जीवन के नए मूल्यों को पहचानने और समझने की आवश्यकता है। यह तभी हो सकता है, जब वे सम्प्रदाय-मोह को छोड़ कर जीवन के दर्शन और व्यवहार में सक्रिय रूप से आमूलचूल परिवर्तन करें। यदि वे मूलतः नहीं बदलते और जीवन की एकांतिक, निवृत्तिमूलक, निषेधात्मक अहिंसा को ही नई भाषा और नये प्रतीकों में लिये-दिये चलते हैं तो यही कहा जायगा कि अणुव्रत एक भ्रान्ति ही नहीं, प्रवंचना भी हैं।

(१५ अप्रैल सन् १९५९)

अध्यात्म, अध्यात्म, अध्यात्म !

हमारे इतिहास का कोई पृष्ठ खोल लीजिये, अध्यात्म का स्वर सबसे ऊँचा सुनाई पड़ेगा; और जीवन की कोई परत खोल लीजिये, संग्रह, स्वार्थपरता और निम्न स्तर की भौतिक मनोवृत्ति का ही दर्शन होगा। पता नहीं, जीवन की इन परतों पर इतिहास के ये पृष्ठ कैसे लिख दिये गये? संभवतः यह ऐसी ही बात है, जैसे आज भी सभाओं में, सम्मेलनों में, संदेशों में हमारे नेता रात दिन हमारी आध्यात्मिक सम्पदा

का गौरव-गान करते हैं, पर जीवन में हर जगह भौतिक स्वार्थों की पूजा में रत हैं। हम कानों से हर घड़ी, हर पल अध्यात्म की महिमा का बखान सुनते हैं, पर आंखों से हर जगह, हर वक्त जो कुछ देखते हैं, वह बिलकुल उल्टा होता है। इसके विपरीत दुनिया के अन्य देशों में जीवन-व्यवहार में जितनी सचाई, ईमानदारी और नैतिकता है, उसके मुकाबिले यह धर्म और अध्यात्म की गलेबाजी कुछ नहीं है। हमारे हजारों-हजारों देशवासी दुनिया के विभिन्न देशों में घूम कर हर साल आते हैं और उनमें से किसी से बात कर लीजिये, वह आपको बता देंगे कि वहां कितना चारित्र्य, कितनी सचाई और कितनी कर्तव्यप्रियता है। मंदिरों के घंटे-घड़ियाल के तुमुल घोष से नापें अथवा गेरुआ, पीले या सफेद वस्त्र पहने हुए साधु-संतों की संख्या से नापें अथवा दुनिया को अहिंसा और विश्वशांति के दिये गये संदेशों से तोलें तो हमारा देश दुनिया में सबसे ऊपर या सबसे आगे माना जा सकता है, पर जीवन-व्यवहार में नीति-पालन की दृष्टि से देखें तो दुनिया के अधिकांश देश हमसे कहीं आगे हैं। और यह बात किसी किताब या किसी सिद्धांत से प्रमाणित करने की जरूरत नहीं, जीवन के हर कार्य में यह सत्य स्पष्ट नजर आता है। इसके बावजूद हम सब कुछ देखते और सुनते हुए भी अपनी कृत्रिम ऊँचाइयों पर बैठे रहना चाहते हैं और अपनी ऊँचाई के लिए अध्यात्म का उपदेश देते रहते हैं। आये दिन हम कहते हैं कि दुनिया के दूसरे देशों में इसलिए शांति नहीं है कि वे अध्यात्मिकता से विमुख हैं। और हमारे यहां कितनी शांति है, हम कितनी शांति चाहते हैं—यह कम-से-कम हम खुद तो जानते ही हैं। जीवन में कितनी बड़ी प्रवंचना हम लिये हुए हैं और यह प्रवंचना सैकड़ों-हजारों वर्षों से लिये चल रहे हैं। इस प्रवंचना को रखकर ही हम अपने को बड़ा कहने और मानने का संतोष पा लेते हैं। यह देखिये, आज भी कितना झूठ, कितनी प्रवंचना फैलायी जा रही है। एक नेता ने कहा—"हमें याद रखना चाहिए कि भारत ने अपनी आध्यात्मिक ज्ञान के बल पर ही संसार को शांति का संदेश दिया है। वह ज्ञान आज भी हमारे पास सुरक्षित है और उसके बदले दुनिया के लोग हमारी ओर देखते हैं।" अपने मुँह मियां मिट्ठू बनना है, तो जो चाहे कह लीजिये, पर पता नहीं कौनसी दुनिया है, जो हमारी ओर देखती है। दुनिया तो पीछे, हम अपने घरों को, अपने समाज को तो ठीक कर लें। जहां हर पग-पग पर बेईमानी, चोरी, स्वार्थपरता, संकीर्ण मनोवृत्ति और घोर अमानुषिकता भरी हुई है, वहां दुनिया को संदेश देने की बात कितनी हास्यास्पद है! यह अध्यात्म की शानवाला देश जिस प्रकार मानवता का गला घोंटनेवाली समाज-व्यवस्था को लिये हुए आज तक चलता रहा और जिसको ही आज भी पाश्चात्य विचारों की हवा से बचाकर कायम रखना चाहता है, वह जीवन की सबसे बड़ी प्रवंचना है। यह अध्यात्म शोषण का धार्मिक रूप रहा है। आत्मा और अध्यात्म की भूलभुलैया में आदमी दबा रहे और सब कुछ बर्दाश्त करता रहे, यह चाहा गया था। एक दिन दुनिया में सभी जगह इस तरह की स्थिति थी, पर विचारों का विकास हुआ, मानव की चेतना बढ़ी और जीवन का यह दर्शन खत्म हुआ। हिन्दुस्तान स्वार्थान्धि धार्मिक नेताओं के अध्यात्म-चंगुल में फँसा रहा और वे वर्तमान जीवन के नर्क से दुखी और निराश मनुष्य को अध्यात्म के पर्दे में स्वर्ग का स्वप्न

बगीचा दिखा-दिखा कर लुभाये रहे। यह अध्यात्म का ढकोसला चला और काफी चला, पर आखिर इतिहास की क्रिया अपना काम करती है। आज नई चेतना यहाँ भी उत्पन्न हो रही है।

जब अध्यात्म का यह कल्पना-लोक खत्म होगा और मानव इस खाम-खयाली दुनिया से मुक्त होगा, तब वह इस भौतिक जगत में अपने कर्त्तव्य के निकट आयेगा। आज आध्यात्मिकता का और भौतिकता का जो भेद किया जाता है, वही अपने आप में गलत है। जीवन में इस भेद के कारण उत्पन्न हुई धोखाधड़ी अब और चल नहीं सकेगी। विज्ञान ने इन प्रवंचनाओं से मनुष्य को बाहर निकालने में बहुत मदद की है। अब हमें नये आधारों पर अपनी आनेवाली पीढ़ियों के लिए शिक्षा-प्रणाली का निर्माण करना है, जिसका आधार जीवन के प्रति झूठ और जो जीवन से बाहर है, उसके प्रति सच्चे रहने का तरीका नहीं होगा। अध्यात्मवादी कहता है और कहेगा—हम ऐसा भेद नहीं करते, पर हम यहाँ अध्यात्मवादी की बात नहीं करते। उसने क्या कहा और क्या किया, उसकी बहुत-बहुत परीक्षाएँ हो चुकी हैं। हमें तो समाज को अध्यात्मवादियों के चंगुल से बचने और बचाने की बात कहनी है। और इस दृष्टि से हमें लगता है कि जब तक हमारी संतान के कानों में यह अध्यात्म का स्वर, इस दुनिया से दूर की साधनाओं का स्वर आता रहेगा, तब तक वह जीवन के सच्चे मूल्यों का विकास नहीं कर सकेगा और जीवन में जो विडम्बना आज तक चल रही है—जीवन-वर्तन में भौतिकता ही भौतिकता हो और बात करने में उसका निषेध—वह जब तक चलती रहेगी, तब तक कुछ नहीं होने वाला है। यह विडम्बना खत्म करना आज हमारा सबसे जरूरी काम है।

(आचार, जून, १९५९)

जीवन धरती पर धर्म आकाश पर

मनुष्य धरती पर पैदा होता है और धरती पर रहता है। वह जो खाता है, जो पहनता है, सब धरती से पैदा होता है। धरती उसे पालती है; इसलिए धरती के प्रति उसका सबसे पहला कर्त्तव्य है। धरती उसे धारण करती है, तो वह भी उससे यह आशा करती है कि वह उसका केवल बोझ-भर न रहे, बल्कि वह भी उसे धारण करे, उसके विकास में योग दे। मनुष्य कितना भी ऊँचा उठे, कल्पना-लोक में उड़े, पर पैर उसके धरती पर ही रहते हैं। धरती छूटी कि वह गिरा। अतएव मानव-जीवन में ऐसा कोई विचार या कर्त्तव्य हो ही नहीं सकता, जिसका धरती से सम्बन्ध न हो। धर्म भी यदि मानव के जीवन से सम्बन्धित है, तो वह धरती का विषय सबसे पहले है। धरती पर खड़ा होकर तो वह चाहे जितने जीवन और जगत्

के रहस्यों में कुलाँचे भरे, पर वह धरती से या धरती के सवालों से कदापि विमुख नहीं हो सकता। जो धर्म इसके सवालों को हल नहीं कर सकता, वह जीवन को धारण करनेवाला धर्म तो नहीं है।

धरती का जो नया एवं व्यापक स्वरूप प्रकट हुआ है, उससे जीवन को भी नया धरातल प्राप्त हुआ है। इससे मनुष्य के सामाजिक-आर्थिक जीवन का नया ताना बाना बुना जा रहा है। इस ताने-बाने में धर्म की स्थिति विचित्र बन गयी है। जिस धरातल पर धर्म का उदय हुआ, वह धरातल तो रहा नहीं; पर धर्म मान बैठा है कि वह उसी धरातल पर है। उससे हटा कि खत्म हुआ। मनुष्य जिस स्थान पर पैदा होता है, वही तो उसकी जीवन-यात्रा का समस्त क्षेत्र नहीं है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होगा त्यों-त्यों उसे चारों ओर फैले हुए नये क्षेत्रों में प्रवृत्त होना ही पड़ेगा। जीवन का अर्थ और विधान भी इस सतत् व्यापकता में है। दुर्भाग्य से, धर्म प्रायः अपने देश और काल की सीमाओं से बाहर निकलने में डरता रहा है। पर जीवन कभी भी देश और काल की सीमाओं से बँधा नहीं रहता। उसका धरातल बदलता है, आबहवा बदलती है; कपड़े बदलते हैं; खान-पान बदलता है; विचार और कल्पनाएं बदलती है, पर धर्म है कि वह बदलने से कतराता है, नहीं बदलने को ही धर्म की विधा मानता है। जीवन बदलता है और धर्म नहीं बदलता है। बदलने वाले को नहीं बदलने वाला कैसे धारण कर सकता है? यह विषमता धर्म और जीवन के बीच एक बड़ी समस्या रही है।

विज्ञानाधारित जीवन के नये ताने-बाने से बुने गये समाज को धारण करना 'सनातन' धर्म के लिए सम्भव नहीं हो रहा है। इसलिये धर्म ने अपने अस्तित्व को बचाकर अक्षुण्ण रखने के प्रयास में मनुष्य को सामाजिक-आर्थिक जीवन में वैज्ञानिक प्रक्रिया की स्वतंत्रता देकर अपने को उसके आध्यात्मिक जीवन का नियन्ता-मात्र मान लिया है। जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दो पक्ष कर लिये हैं, और यह कह कर कि धर्म का सम्बन्ध आध्यात्मिक पक्ष से है, भौतिक अर्थात् सामाजिक-आर्थिक जीवन में व्यक्ति के कर्त्तव्याकर्त्तव्य की स्थिति और उत्तरदायित्व से धर्म का कोई लेना-देना नहीं, वह विज्ञान की सीधी टक्कर से बच जाना चाहता है। विज्ञान का आलोक धर्म को कभी सह्य नहीं हुआ। विज्ञान का जन्म हुआ, उसी दिन से धर्म के साथ उसका संघर्ष रहा है। हजारों वर्षों का इतिहास है कि धर्म ने नाना रूपों में, नाना तरीकों से मानवता और नैतिकता की लाख-लाख दुहाई देकर विज्ञान को रौंदने और रोकने की कोशिश की; धर्म की भाषा में ही कहें, तो भौतिकता के आक्रमण से आत्मा को कलुषित होने से बचाने की कोशिश की। धर्म की इस कोशिश के दौरान जहर के प्याले पीकर, गोलियों का शिकार होकर और जिन्दा दफना दिये जाने की यंत्रणा सहकर भी विज्ञान पराजित नहीं हुआ। जब धर्म ने देख लिया कि इस लड़ाई में विज्ञान की ही विजय होती जा रही है, तो उसने लड़ाई का एक पथ छोड़कर एक प्रकार का समझौता कर लिया। मनुष्य को उसने दो टुकड़ों में बाँट दिया—शरीर और आत्मा। शरीर की, भौतिकता की, संसार की बात विज्ञान के लिये छोड़ दी और आत्मा एवं अध्यात्म को अपना क्षेत्र बना लिया। विज्ञान को धरती पर छोड़, धर्म अध्यात्म की अट्टालिका में बैठकर अपनी साधना करने लगा।

न्यूनाधिक रूप में हर धर्म-सम्प्रदाय में यही स्थिति हुई और आज भी है। धरती की शक्ति बढ़ती गयी; नयी धरोहर उसे मिलती गयी; और मनुष्य का जीवन-वृद्धि पाता गया और धर्म अट्टालिका में बैठा हुआ अपनी काल्पनिक सनातनता के स्वप्न देखता रहा या उसे सत्य माने बैठा रहा। अर्थ की अट्टालिकाएँ, समाज की अट्टालिकाएँ, जो पुरानी हो गयी थीं, गिरायी गयीं और गिरीं, क्योंकि उन्होंने धरती के बदलते हुए धरातलों को मानने से इन्कार किया है। धर्म की अट्टालिका धरती को अपने धरातल पर छोड़कर अपने को कायम रखे रही। पर आकाश का आधार क्या? धर्म को जब आश्रय ही न दीखा, तो उसने एक नया आधार ढूँढ़ा। धर्म और विज्ञान का विवाह कराकर दोनों के सह-गमन से एक नयी मानवता की सृष्टि करने की बात कही गई। दोनों के सह-अस्तित्व का नारा बुलन्द किया गया। पर, वास्तव में यह सह-अस्तित्व केवल काल्पनिक है। दोनों के अस्तित्व का धरातल ही जब एक नहीं तो दोनों का साथ कैसा? शरीर और आत्मा, दोनों साथ हैं, पर वे केवल साथ-भर नहीं हैं; एक-दूसरे में कारण परिणाम का योग है। दोनों एक दूसरे के लिए, और एक-दूसरे के योग से कार्य करते हैं। दोनों की स्वस्थता में मानव की सम्पूर्ण स्वस्थता है। यदि मानव को स्वस्थ भोजन, रहन-सहन का स्वस्थ वातावरण नहीं मिलता, तो उसका मन या आत्मा भी स्वस्थ नहीं हो सकती। उसी प्रकार यदि मनुष्य का मानसिक जीवन स्वस्थ नहीं है, वैचारिक भोजन ठीक नहीं मिलता, तो शरीर स्वस्थ नही रह सकता। सामाजिक जीवन की बात भी यही है। उसका भी अन्तर और बाह्य, दोनों स्वस्थ होने चाहिए। जो अट्टालिका में बैठा है, उसे भी जीवन-पोषण के लिये भोजन, पानी और अन्य आवश्यकता की वस्तुएँ चाहिए ही जो धरती देती है। यदि हवा-पानी शुद्ध नहीं है, अन्न में पोषण-शक्ति नहीं है, तो समूचा जीवन अशुद्ध और अस्वस्थ रहेगा। इसे स्वस्थ बनाने का काम छोड़कर धर्म भी नहीं रह सकता। यदि किसी कमरे में ताक पर भगवान की मूर्ति रखकर कोई प्रतिदिन उसका प्रक्षालन करता रहता है; फूल चढ़ाता है; सुगंध फैलाता है; किन्तु कमरे के फर्श पर, जहां वह और उसके बाल-बच्चे रोज जिंदगी काटते हैं, गंदा ही पड़ा है, तो वहां बीमारी फैलेगी ही और समूचे परिवार की जीवनावधि कम होगी। वह एक दिन भगवान को भी छोड़कर भागेगा। ताक पर रखा सनातनधर्म चाहे उसी रूप में सजा रहे, पर सारा कमरा दूषित होकर एक दिन ध्वस्त होगा ही। आज धर्म आत्मा के आकाश पर बैठ कर शरीर की धरती के साथ यही व्यवहार कर रहा है। वह अपने उस विधि-विधान, रूढ़ि एवं परम्परा को लिए बैठा है जिसने जीवन के बदले हुए धरातल के अनुरूप अपने को नहीं बदला है। अपनी जड़ता के कारण सड़ रहा है; और समूचे जीवन के वातावरण को अशुचि और अस्वस्थ बना रहा है!

धरती को छोड़कर धर्म नहीं है, और धरती के विज्ञान को बिना माने कोई ज्ञान नहीं है। वह सारी साधना न केवल विफल ही है, बल्कि विकार पैदा करने वाली है जो जीवन के प्रश्नों से विमुख होकर—सामाजिकता से अलग होकर—आकाश की अट्टालिका में अपना रूप निहारती है, और बिखेरती है। जो धरती को धारण करे, वही धर्म है। इसके अतिरिक्त जो धर्म कहा जा रहा है, वह अवश्य टूट कर रहेगा।

('आचार', अक्टूबर, १९५९)

श्री शिक्षायतन के वार्षिक समारोह में राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमंत्री हीरालाल शास्त्री, सीताराम सेकसरिया, केंद्रीय मंत्री हुमायूं कबीर के साथ सिंघी जी



श्री शिक्षायतन के स्थापना दिवस समारोह में भाषण करते सिंघी जी। मंच पर हैं (बाएं से) सर्वश्री भागीरथ कानोड़िया, राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका तथा भगवती प्रसाद खेतान

रख्यात भाषाविद सुनीति कुमार चाटूर्ज्या के साथ बातचीत में व्यस्त सिंघी जी। बीच में हैं श्री विजय सिंह नाहर

महादेवी वर्मा के कलकत्ता आगमन पर उनके साथ सुशीला जी और सिंघी जी

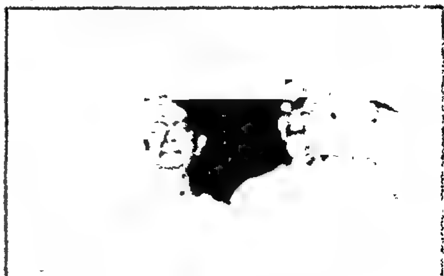
सिंघी जी के घर पर ली गयी तस्वीरः सुस्मिता सिंघी (बैठे हुए बायें से) सीताराम सेकसरिया, काका कालेलकर, सुषमा सिंघी, मामा वरेरकर, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा प्रख्यात रंगकर्मी शंभु मित्र। (खड़े हैं बायें से) काका कालेलकर की पोत्री, तृप्ति मित्र, सिंघी जी तथा सुशीला जी



बंबई में आयोजित एक समारोह में कमला देवी चट्टोपाध्याय के साथ



थियेटर सेंटर, कलकत्ता के आयोजन में कांग्रेस नेता अतुल्य घोष तथा प्रख्यात रंगकर्मी तरुण राय के साथ



प्रख्यात बंगला साहित्यकार प्रेमेंद्र मित्र के साथ



'अनामिका' की अकादमी पुरस्कार विजेता प्रस्तुति 'नये हाथ' (१९५७) के एक दृश्य में सिंघी जी और प्रतिभा अग्रवाल



बिहारी दरबान की भूमिका में सिंघी जी



अज्ञेय के कलकत्ता प्रवास (१९७५) के अवसर पर उनके साथ

शिक्षा का आदर्श : गांधी और रवीन्द्र के बीच एक काल्पनिक संवाद

गांधीजी : गुरुदेव, आपको यह याद होगा कि दक्षिण अफ्रीका से लौट कर स्वदेश आने के बाद बहुत जल्दी ही मैं आपके पास शांति निकेतन में आया था। आपके दर्शन करना तो उद्देश्य था ही, पर मुख्य तौर से मैं आपके शिक्षा सम्बन्धी विचारों एवं प्रयोगों को जानने-समझने को बहुत उत्सुक था। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही मेरे मन में भी शिक्षा के प्रश्न पर विचार-मंथन आरम्भ हो गया था, क्योंकि मुझे यह लगने लगा था कि देश की स्वाधीनता के लिये अहिंसक संग्राम और अहिंसा के आधार पर नयी समाज रचना के लिये जो काम करना है, उसका आरम्भ शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन के साथ ही करना होगा। विचार मंथन की इस पृष्ठभूमि में मैंने यह सुना कि आपने भी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध आवाज उठाई है और अपने विचार के अनुसार शिक्षा में एक नया प्रयोग प्रारम्भ किया है।

शांति निकेतन में आपके दर्शन किए, आपके विचार सुने और आपने शिक्षा को जिस आदर्श की ओर मोड़ा है, उससे एक स्फूर्ति मिली। बहुत सी बातें जो शिक्षा के सम्बन्ध में मैंने दक्षिण अफ्रीका में सोच रखी थीं, वे मुझे आपके चिन्तन क्रम में भी दिखाई दीं। आपको लग रहा था कि शिक्षा हमें—हमारे सारे जीवन को कैद किए हुए है; और मुझे भी लग रहा था कि विदेशी शासक हमें जो शिक्षा दे रहे थे वह गुलामों की शिक्षा थी। हम दोनों ही शिक्षा को मुक्त करना चाहते थे—मुक्त शिक्षा के द्वारा मुक्ति लाना चाहते थे।

रवीन्द्रनाथ : उन बातों को वर्ष तो बहुत हो गये, पर मुझे सब याद है। आप शांति-निकेतन में आए, हमलोगों ने मिल कर देश की समस्याओं पर विचार-विनिमय किया। यह शांतिनिकेतन के इतिहास में एक अविस्मरणीय घटना है और रहेगी। अहिंसक सत्याग्रह का जो प्रयोग आपने दक्षिण अफ्रीका में सोचा था और शुरू किया था, उसे आप स्वदेश में आरम्भ किया चाहते थे। शिक्षा उस प्रयोग का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। वहां आपने छात्रों और अध्यापकों के बीच ही ज्यादा समय बिताया। उनके

शिक्षा-क्रम, जीवनक्रम को आपने बड़े ध्यान से देखा। फिर एक दिन आपने मुझे कहा था—"मैंने अध्यापकों को कहा है कि वे और विद्यार्थी भोजन बनाने के लिए रखे हुए कर्मचारियों की जगह खुद अपना भोजन बनायें, तो एक तो अध्यापकों को विद्यार्थियों के शारीरिक और नैतिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भोजन की देख-रेख का सुयोग मिलेगा और दूसरे, विद्यार्थियों को स्वास्थ्य और आत्मनिर्भरता का व्यावहारिक पाठ सीखने को मिलेगा।" आपकी बात का असर हुआ था। इस प्रकार श्रम के आधार पर आत्मनिर्भरता का पाठ आपने शांति निकेतन के प्रयोग में जोड़ दिया।

गांधीजी : और तभी आपने आशीर्वचन किया था—'इस प्रयोग में स्वराज्य की कुञ्जी है।' स्वश्रम और आत्मनिर्भरता में तब से मेरा विश्वास और बढ़ गया। आप इस श्रमपाठ को अपनी शिक्षा योजना के अन्तर्गत किस रूप में रखना चाहते हैं।

रवीन्द्रनाथ : मैं तो कवि हूं, शिक्षा भी मेरे निकट एक कविता ही है। मैं देखता हूं कि आज विद्यालयों में बालक निर्जीव से बैठे रहते हैं और पाठ एवं उपदेश उन पर ऐसे डाले जाते हैं, जैसे फूलों पर पत्थर, मैं फूलों को पत्थरों के प्रहार से बचाना चाहता हूं। बालक की नैसर्गिक क्षमताओं को प्रकृति के निकट सामंजस्य में विकसित करके उसकी सारी प्रतिभाओं को इस प्रकार से रूपायित करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये कि वह अपने समूचे परिवेश के साथ जीवन्त सम्बन्ध बनाये और उसे रख पाये। वह एक विशाल सृजन क्रिया का अंग होने की अनुभूति पा सके। अनुभूति का सम्बन्ध हृदय से है और आज जो शिक्षा प्रणाली चल रही है, वह हृदय नहीं है, है तो केवल मस्तिष्क है। और क्योंकि मस्तिष्क ही पूरा मानव नहीं है, मस्तिष्क के ज्ञान विकास तक सीमावद्ध शिक्षा भी पूरी शिक्षा नहीं है। मैं तो यहां तक कहूंगा कि आज की शिक्षा वस्तुतः शिक्षा का निषेध है। वह जीवन्त व्यक्ति को जड़ बना देती है। जो मूलतः स्वतन्त्र है, विमुक्त है, उसे बन्धनों के तंत्र द्वारा नहीं पाया जा सकता। और यह विमुक्त व्यक्तित्व मनुष्य मात्र का होता है, किसी देश, जाति या धर्म विशेष के मनुष्य का नहीं। मैं तो शिक्षा द्वारा ऐसे स्त्री-पुरुषों का समाज बनाना चाहता हूं जो भौगोलिक सीमा विभाजन को नहीं मानेंगे। उनका एक देश होगा और वह होगा अखिल जग। इसीसे मेरे मन में विश्वभारती का नाम आया। विश्वभारती की शिक्षा द्वारा मैं विश्वमानव की सृष्टि की कल्पना करता हूं। मैं स्वाधीनता को ही स्वतन्त्रता नहीं मानता। वास्तविक मुक्ति के लिए मनुष्य को वाह्य परिवेश की बाधाओं से ही नहीं लड़ना होता, अन्तर की बाधाओं से विचार और व्यवहार की संकीर्णताओं से भी लड़ना होता है। इसी विचार-भूमिका में से मैं कहता हूं—१. 'पाठ्यक्रम सजीव और वैविध्य सम्पन्न होना

चाहिए, जिससे मस्तिष्क और हृदय दोनों को ऊर्जस्विता मिले। २. भेद-भाव और विश्रृंखलता की दृष्टि का पूर्णतया परिहार होना चाहिये। ३. शिक्षा अवास्तविक, बोझिल और निर्वैयक्तिक न हो जाये। ४. शिक्षा के साथ बालकों का सम्बन्ध उतनी देर का ही न रह जाय, जितनी देर वे विद्यालय में रहते हैं। इन लक्ष्यों को फलीभूत करने के लिये यह जरूरी है कि बालक जिस परिवेश में रहता है, उससे अलग और विमुख नहीं रहे और इस दृष्टि से यह जरूरी है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। विदेशी भाषा के माध्यम से दी गई शिक्षा थोड़े से लोगों तक सीमित रह जाती है और जो उसे प्राप्त कर पाने की स्थिति में हैं, उनके व्यक्तित्व का विकास भी पूरा-पूरा जैसा होना चाहिये, वैसा नहीं हो पाता। बल्कि व्यक्तित्व का हनन ही होता है। इस सबकी दृष्टि से हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है।

गांधीजी : आपका एक-एक शब्द सच है, गुरुदेव! शिक्षा के नाम पर आज तक जो कुछ हुआ और हो रहा है, उसने हमारा विकास नहीं, विनाश किया है। इसको बदले बिना हम आगे बढ़ ही नहीं सकते, पर मैं यह अनुभव करता हूँ कि आगे बढ़े बिना हम इसको बदलने में कामयाब नहीं हो सकते। इसलिए मैंने यह माना कि देश की स्वाधीनता की लड़ाई के साथ, उसके एक अंग के रूप में ही, अन्योन्याश्रित भाव से शिक्षा-मुक्ति की लड़ाई चलानी है। आप शायद इससे सहमत न हों, क्योंकि आपकी विशाल दृष्टि और व्यापक ध्येय के दृष्टिकोण से यह बात बहुत छोटी हो जाती है, पर मैं देश की स्वाधीनता को अनिवार्य रूप से पहला सोपान मानता हूँ। जब तक देश मुक्त नहीं होगा, कोई मुक्ति सम्भव नहीं होगी। मेरी यही दृढ़ मान्यता है कि जो मनुष्य साधारण स्तर पर स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो सकता है वही ऊँचे और व्यापक स्तर पर भी स्वतन्त्रता अर्जन कर सकता है। इसलिए मेरी सारी रचनात्मक कार्यावली का सर्वप्रथम और केन्द्रीय लक्ष्य देश की स्वाधीनता की साधना है। अहिंसक समाज-रचना, जिसके द्वारा ही हम स्वतन्त्रता को पा और रख सकते हैं, के लिए आज अहिंसक प्रतिकार से प्रारम्भ करना होगा। इस दृष्टि से ही मैंने एक ओर इस शिक्षा का बहिष्कार और दूसरी ओर राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन करने का मार्ग लिया और बताया है।

रवीन्द्रनाथ : प्रचलित शिक्षा की पद्धति और व्यवस्था से बहुत दुखित होते हुए भी, गांधीजी, मैं शिक्षा में बहिष्कार या असहयोग की नीति को स्वीकार नहीं करता। उससे हमारे देशवासियों की शिक्षा-प्रगति में बाधा ही पहुँचेगी। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि जो विचार और तत्त्व आज शिक्षा में नहीं हैं, उनकी पुनः प्रतिष्ठा की जावे। आपके शिक्षा सम्बन्धी विचारों के क्रियान्वयन के बारे में भी अवगत रहा हूँ। हाल ही में बने हुए आदर्श

के मंत्रिमण्डलों को आपने शिक्षा के बारे में, जो मार्ग निर्देश किया है, जिसकी सारे देश में चर्चा है, उसके बारे में मैंने सुना है, पढ़ा है और विचार किया है। आप बुनियादी तौर से हाथ के काम को शिक्षा पर बहुत जोर दे रहे हैं, ताकि विद्यार्थी शुरू से ही उत्पादनशील होना सीखें, श्रम का महत्व समझें और जीवन में उसकी प्रतिष्ठा हो। पर, मनुष्य आर्थिक प्रक्रिया मात्र ही तो नहीं है। तब उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की बात इसमें से कैसे आ पायेगी ?

गांधीजी : मैं कब कहता हूँ कि आदमी आर्थिक प्रक्रिया मात्र ही है। मेरे सामने भी उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण स्वरूप है, उसके सम्पूर्ण परिवेश का अर्थात् हमारे सारे देश और समाज का प्रश्न है। शिक्षा के द्वारा मैं सम्पूर्ण जीवन का शोधन-संस्कार और निर्माण करना चाहता हूँ। इसीलिए तो शिक्षा-क्रम में हाथों की कला और शक्ति को जोड़ना चाहता हूं। कला की बात आते ही मैं श्रद्धा से आपके चरणों पर नतमस्तक हूँ। आपकी शिक्षा-योजना में कला का उभार मैंने देखा है। कला और सौन्दर्य की सृष्टि के सम्बन्ध में आप से ज्यादा कौन बतायेगा ? पर मैं शिक्षा के व्यय-भार को संभालने के लिए, शिक्षित को समाज का उत्पादनशील व्यक्ति बनाने के लिए हाथ की कला और शक्ति की बात कहता हूँ। मैं सोचता हूँ कि हाथ की शिक्षा को पाठ्यक्रम का एक अंग बना दें, तो हम एक उत्पादक तैयार कर दे सकते हैं। पर, इतना ही तो पर्याप्त नहीं है, उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की बात रह जाती है। इसलिए मैं हाथों को शिक्षा का एक अंग नहीं, उसका केन्द्र बनाना चाहता हूँ—शिक्षा का माध्यम भी, इसको बुनियादी शिक्षा कहा गया है। उत्पादन जीवन की बुनियाद है ; बुनियाद पर दूसरी बातें खड़ी होती हैं। एक और बात भी है। उत्पादन में भी मैं मनुष्य को यंत्र नहीं बनाना चाहता, उसको एक जीवन्त प्राणी की भांति क्रियाशील रखना चाहता हूं। इसलिए कहता हूँ कि हाथ की कारीगरी या उद्योग के माध्यम से सारी शिक्षा दी जानी चाहिए।

रवीन्द्रनाथ : मैं नहीं मानता कि हाथ का काम ही शिक्षा का केन्द्र या माध्यम है अथवा होना चाहिए। मेरे जीवन की संध्या हो चुकी है। पता नहीं, मैं आपकी इस नयी शिक्षा-योजना का सूर्योदय देख सकूंगा या नहीं ? जो हो, मुझे तो जो कुछ आप करना चाहते हैं, वह संभव नहीं मालूम होता।

गांधीजी : गुरुदेव, मैं समझता हूँ कि यदि हमको सारे देश में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करनी है, और सामाजिक-आर्थिक जीवन में क्रान्ति लानी है, तो दूसरा कोई विकल्प है ही नहीं। ८० प्रतिशत लोग गांवों में रहते हैं, इसलिए गाँवों में से ही क्रांति का आरम्भ करना है। जो शिक्षा यह नहीं कर सकती, वह कौड़ी काम की नहीं है। यह सारा देश

ही गरीबी में गड़ा हुआ है, फिर गांवों की हालत तो और भी बदतर है। कहां से इतने पैसे आयेंगे, जिनके द्वारा हम देश भर में शिक्षा का प्रसार कर सकें? तब फिर यही निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा ही शिक्षा का खर्च वहन करें। बुनियादी शिक्षा के द्वारा ही यह सम्भव है। विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के श्रम से जो उत्पादन होगा, उससे व्यय के लायक अर्थ की प्राप्ति हो जायेगी। वैसे भी, मैं शिक्षा को धनियों के दान और शासकों के अनुदान की मुखापेक्षी नहीं बने रखना चाहता। और भी एक बात है कि उत्पादन के माध्यम से जो शिक्षा दी जायेगी, वह रोजगार देनेवाली भी होगी, आज जो शिक्षा दी जा रही है, वह तो जितनी बढ़ेगी, उतनी बेरोजगारी बढ़ेगी।

(धर्मयुग, १० मई, १९७०)

संस्कृति

कला, अ-कला और अश्लीलता

अभी मैं दक्षिणी और उत्तरी अमेरिका एवं यूरोप की यात्रा करके लौटा हूं। दो महीनों से ऊपर मैं वहाँ रहा-घूमा। खूब देखा, खूब अनुभव किया। काफी बौद्धिक भोजन मिला। वहाँ के जीवन को ऊपर-ऊपर से ही नहीं, अन्दर से और अन्तरंग से जानने-समझने का भी सुयोग मिला। सामाजिक कार्यों से शुरू करके साहित्यिक और कलात्मक प्रवृत्तियों तक की यात्रा की और जीवन की अनेक सतहों पर-के रूप और रंग देखे। वहाँ के बारे में सामाजिक आर्थिक स्वतन्त्रता की बात बहुत कही-सुनी जाती है और झूठ नहीं है वह; परन्तु उस स्वतन्त्रता में भी एक छलना है, आत्मप्रवंचना है, यह आज वहाँ का कवि और कलाकार देखने-समझने लगा है। उसके रंग, स्वर और शब्द बोलने लगे हैं कि यह स्वतन्त्रता प्रेतों की स्वतन्त्रता है—जीवन की स्वतन्त्रता नहीं, यन्त्र की स्वतन्त्रता है। जीवन भी यन्त्रीकृत होकर ही स्वतन्त्र है; जहाँ भावना और अनुभूति की स्वतन्त्रता का प्रश्न है, आज भी प्रेतजीवन का तन्त्र उसपर हावी है। इसके विरुद्ध विद्रोह की चिनगारियाँ, कहीं-कहीं लपटें, उठने लगी हैं। अनुभूति की सचाई और उसको व्यक्त करने की जीवन-प्रेरणा, जो आज का मनुष्य पूर्वापेक्षा कहीं अधिक पहचानने लगा है, प्रेत-परम्परा की परतों को तोड़कर बाहर निकलना चाहती है। वैसे ही कला आज परिभाषाओं की जीवन-विच्छिन्न परिक्रमा से बाहर आकर मनुष्य के बीच अनुभूति का जीवन-सम्बन्ध स्थापित करने की दिशा में अग्रसर है।

कला की आज तक हजारों परिभाषाएँ हो चुकी हैं, पर उसके अर्थ-बोध की सम्पूर्णता को कोई परिभाषा प्रकट नहीं कर सकी। हर परिभाषा ने उसकी सीमाएँ बाँधीं, आयाम स्थिर किये और अर्थ-निष्पत्ति के क्षितिज स्थापित किये, पर मूलतः कला बँधने में है ही नहीं। जीवन बँधा है कि कला बँधेगी? जीवन जो आज है, वह कल नहीं था, और कल नहीं रहेगा। सारा इतिहास बताता है कि व्याख्याएँ और परिभाषाएँ केवल उस स्थिति का अर्थ-बोध कराती रही हैं जो हो चुकी हैं या अधिक से अधिक तो, जो हो रही है। इसी से कहा गया है कि सर्जनात्मक कलाकार समीक्षाओं और स्थापनाओं की दीवारों एवं दरवाजों में बन्द नहीं रहता। अनुभूति जब जैसी और जो होती है, उसी का प्रकाश कर वह जीवन को जीवन से मिलाता है। उसके अनुसार ही वह अभिव्यक्ति रूप और स्वर खोज लेता है। परिभाषाएँ और व्याख्याएँ उसकी तरफ दौड़ती हैं और लड़ती हैं, पर जिसके पास अपनी अनु-

भूति है, और अभिव्यक्ति की प्रेरणा है, उसको परिभाषाओं का आक्रमण और युद्ध रोक नहीं सकता। अनुभूति की जिस पीड़ा को और उसकी अभिव्यक्ति के जिस स्वरूप को सारी परिभाषाएँ अस्वीकार करती हैं, निषेध करती हैं, वहाँ सच्ची कला भाषा और शैलीगत सारी परिभाषाओं और परम्पराओं का निषेध कर अपनी उस मार्मिकता का प्रभाव पैदा करती है। जिस शब्द में उस जीवनानुभूति की अभिव्यक्ति नहीं है, उसका 'नहीं' रूप रखकर और प्रखरता से वह अपने को व्यक्त करती है। कला से अ-कला और कविता से अ-कविता की नाम-यात्रा के पीछे यही बात है।

आत्मानुभूति में ही कला की सच्ची सचेतना है और अपनी अनुभूति को सच्चाई के साथ प्रकट करना ही कला का काम है। उसकी सार्थकता इसी में है कि उसके माध्यम से कलाकार खुद अपनी सृष्टि के द्वारा अपने को अधिकाधिक पाये और दूसरों को भी अपने को पाने में सहायक हो। अपनी अनुभूति की सृष्टि में वह अपने साथ या दूसरों के साथ किसी प्रकार की छलना नहीं करना चाहता। जीवन की प्रेरणा में कुछ है, जीया कुछ जा रहा है और कहा तथा बताया कुछ जा रहा है—यह विसंगति उसमें नहीं है। यही उसका नयापन है। यहीं अ-कला कला से आगे है। इसकी अभिव्यक्ति में; इसकी रेखाओं और शब्दों में जिनको उलझन दिखाई पड़ती है, उनको मैं ब्यूनस आयर्स (दक्षिण अमेरिका) में अपने छोटे-से स्टूडियो में बैठे कलाकार के पास ले जाऊँगा, जिसके ये शब्द गूँज रहे हैं—"जीवन में सीधी लकीरें नहीं खिंची हैं; उसके ताने-बाने में निश्चित की हुई यन्त्र-प्रक्रिया नहीं है। उसमें उलझन है, टकराव है और इनमें-से बनकर, छनकर, अनुभूति आती है।" उसकी अभिव्यक्ति में भी सीधी लकीर नहीं है—नहीं हो सकती। जीवन में तनाव और बिखराव है तो रंगों का भी बिखराव है; शब्दों का तनाव-वितान है। फिर भी दोनों में कितना सौन्दर्य है। सच, अद्भुत सौन्दर्य है, क्योंकि वह जीवन का सत्य है। कला (शब्द की हो, स्वर की हो, या तूलिका की हो) के सन्दर्भ में 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' की बात कही जाती है। कला के ये तीन गुण-पक्ष हैं। पहले भी थे, पर इनका अर्थ आज कितना बदल गया है! आजतक ढेर सारा सत्य कह कर जिसको चलाया गया, वह सत्य नहीं था। जीवन में नहीं था। वह लिखा गया और पढ़ा गया सत्य ही था। अनुभूति का सत्य नहीं था क्योंकि अनुभूति की अभिव्यक्ति में आदमी स्वतंत्र नहीं था। राज्य, धर्म और समाज सब स्वतन्त्रता को दबाये बैठे थे। वास्तव में, कला जीवन के आवरण पर ही थी; आवरण के नीचे जीवन का सत्य, जीवन का सौन्दर्य, और जीवन का रस कला को असली रंग नहीं दे पाते थे। बहुत कम ऐसे कलाकार हो पाते थे जो अपनी अनुभूति से अपने रंगों को भिगो पाते थे—परन्तु आज जीवन को आवरण के पार देखने का प्रकाश मिला है, और उनके प्रकाशन की प्रेरणा एवं बल मिला है।

और, जहाँ अनावरण की बात आयी कि अश्लीलता का आरोपण आया। ये पंक्तियाँ लिखते समय मेरे सामने सैन फ्रांसिस्को का वह न्यायालय है जिसके सामने लेनोर कैण्डल की प्रेम-कविता की पुस्तक (द लव बुक) पर मामला चल रहा है, कुल छह पृष्ठों की इस पुस्तक में चार कविताएँ छपी हैं, जिनका विषय मैथुन-प्रेम है। पुस्तक के आवरण पर आदि-बुद्ध का एक तिब्बती चित्र है, जिसमें नर-रूप बुद्ध और

नारी-रूप शक्ति का समागम प्रदर्शित है। कवि ने स्त्री और पुरुष के संयोग-प्रेम की चरमता में जीवन की परम अभिव्यक्ति का वर्णन किया है। राधा और कृष्ण लीला का भी उल्लेख किया है। सारा ब्रह्माण्ड एक मैथुन-प्रक्रिया है। इसमें सन्निहित रसानुभूति जीवन की मूल प्रेरणा और शक्ति है। पुस्तक पर अश्लीलता का आरोप लगाया गया है—और मुझे बताया गया कि लेखक एवं प्रकाशक अन्त तक इस मुकदमे को लड़ेंगे क्योंकि अनेक विद्वानों और विचारकों का सहयोग उन्हें मिल रहा है। अश्लीलता के प्रश्न पर विचार होगा, जैसे पहले भी विभिन्न देशों में कई बार हो चुका है।

जीवन को आज हम जितनी और जिस तरह की सच्चाई के साथ जानते और पहचानते हैं, उसको समझने पर प्रश्न पूछना स्वाभाविक होगा कि क्यों यह पुस्तक अश्लील है? इन कविताओं में जीवन की उस अनुभूति का वर्णन है, जिसके साथ हमारे समूचे अस्तित्व का सम्बन्ध है। यह स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम की भूमि है, जहाँ जीवन का भीगना-भिगोना है। क्या यह और यही जीवन का मूल सत्य नहीं है? इस अनुभूति में, शरीर और मन की इस तरलता में ही क्या जीवन की सारी शक्ति और प्रेरणा का केन्द्र-बिन्दु नहीं है? मुझे पिट्सबर्ग की एक साहित्यिक गोष्ठी में सुने हुए उद्‌गार याद आ रहे हैं—"जिसे हम नैतिकता कहते हैं, वह सर्वथा मिथ्या जीवन की मिथ्या धारणाएँ हैं।" कला ने, साहित्य ने बहुत दिनों तक इस मिथ्या का मिथ्याडम्बर बनाया-सजाया जो जीवन के बाहर-बाहर ही शोर मचाता रहा। जिस जीवन ने इसकी परवाह नहीं की, वह जीया मुक्त और स्वस्थ रहकर जीया।

कला, जिसका मूल उत्स जीवन की अनुभूतिगत भावना है; अपनी सारी सड़ीगली पृष्ठभूमि को छोड़कर, यहाँ तक की नाम को भी छोड़कर, अ-कला कह और कहलाकर भी, जीवन के मुक्त विस्तार में मिलना-मिलाना चाहती है। सच बात तो यह है कि आज तक जीवन की वास्तविकता को अश्लीलता के कठघरों में बन्दी बनाकर समूचे जीवन को अश्लील बनाकर रखा गया है। मुझे लन्दन में मिले एक युवा-दम्पति की बात बार-बार याद आ रही है—"जो बाप-दादा हमारे मुक्त जीवन को अश्लील बताकर नाक भौं सिकोड़ते हैं, उन्होंने हमें कैसा समाज दिया था, यह तो सोचिए। वह सैकड़ों वर्षों से सड़ रहा था; तभी तो हमको उसके विरुद्ध विद्रोह करना पड़ा। आप इसे अश्लील कहिए, पर याद रखिए, हमारे में ज्यादा जीवन है—ज्यादा सच्चाई है।" जीवन में जो होता है, वही सच है, वही सुन्दर है, और वही सही अर्थ में स्वस्थ है। जब कला जीवन की सहज सत्य-भूमि पर आ जाती है, तो वे सारे माप-बटखरे झूठे हो जाते हैं जो आज तक कला को नापते-तौलते और वजन देते आये हैं। आज का कलाकार कह रहा है—जो होना है उसी का नाम कला है। उसका निषेध करने का, उसको झुठलाने का, उसको छिपाने का नाम कला नहीं है। यदि जीवन को झुठलाने वालों का समाज कला को अपनी सड़ांध-भरी सीमाओं में ही रखने पर तुला हुआ है, तो आज जीवन की सच्ची अनुभूति को रंगने-कहने और गाने का नाम अ-कला है। डी० एच० लारेंस के शब्दों में—"जीवन के मूल उत्स हमारे शरीर और मन की यौन चेतनामूलक प्रवृत्तियों में हैं और उनको खुली चेतना की खुली हवा की आवश्यकता है।"

आधुनिक कला-संचेतना की यही जीवनभूमि है। सैकड़ों-हजारों वर्षों से बनी-बंधी भय और दमन की संस्कृति ने नाना प्रकार के आरोपों एवं अवरोधों में बांधकर जीवन को कला के बन्धन ही दिये हैं। आज जीवन का यथार्थ और सत्य उसकी चुनौतियों पर चुनौतियां दे रहा है और कला को जीवन की सत्यानुभूति की दृष्टि दे रहा है। जीवन वह है जो है; कला वह है, जो जीवन में है और होना है।

(ज्ञानोदय : जुलाई १९७७)

कलकत्ता : रंगमंच की राजधानी

कलकत्ता भारतवर्ष में रंगमंच की राजधानी है, यह कहने में किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं है। जहां देश में अन्यान्य स्थानों पर अभी तक नाटक और रंगमंच के अभाव और उपेक्षा की दुःखद कहानी ही सुनने में आती है, कलकत्ता में शायद ही कोई दिन ऐसा होता हो जब नाट्याभिनय का कार्यक्रम कहीं न हो। तीन-चार वर्ष पहले एक स्थानीय पत्रकार ने गणना करके बताया था कि उस साल कलकत्ता में व्यावसायिक नाट्यशालाओं में हुए प्रदर्शनों के अतिरिक्त ७६८ अभिनय-प्रदर्शन शौकिया मंडलियों द्वारा किये गये थे। छः नाट्यशालाएं तो इस वक्त कलकत्ता में व्यावसायिक आधार और व्यवस्था से नाट्याभिनय के प्रदर्शन करती हैं जिनके नाम हैं:—स्टार, रंगमहल, विश्वरूपा, मिनर्वा, मुक्तांगन और थियेटर सेंटर (मुरोम)—इनमें प्रत्येक बृहस्पतिवार और शनिवार को एक-एक और रविवार को दो प्रदर्शन होते हैं। तदतिरिक्त छुट्टी के दिन भी प्रदर्शन किये जाते हैं। इस प्रकार व्यावसायिक रंगमंच पर ही सालभर में लगभग १५०० प्रदर्शन हो जाते हैं। फिर, बहुरूपी, गंधर्व आदि अर्द्ध-व्यावसायिक जैसे शौकिया संघ और संस्थाएं भी हमेशा अपने कुछ न कुछ अभिनय प्रस्तुत करते ही रहते हैं। इनके अलावा अनेक शैक्षणिक और सांस्कृतिक संस्थाएं तथा सरकारी और गैर सरकारी प्रतिष्ठानों के कर्मचारीगण अपने क्लबों के माध्यम से अभिनय प्रस्तुत करते हैं, जिनकी संख्या भी ८००-१००० से कम नहीं होगी। इस प्रकार से कुल मिलाकर २५००-३००० से कम प्रदर्शन यहां प्रतिवर्ष नहीं होते होंगे। वास्तव में, नाटक और रंगमंच के प्रति यहां आरम्भ से ही लोगों में काफी रुचि और आकर्षण है। हर वर्ष कितने लड़के-लड़कियां थियेटर सेंटर के नाट्य विद्यालय में अथवा पश्चिम बंगाल सरकार की नाटक अकादमी में नाट्याभिनय और प्रस्तुतीकरण की शिक्षा लेते हैं और परीक्षाएं देते हैं जिसके फल-स्वरूप यहां अभिनेता और अभिनेत्रियों की कमी नहीं रहती। ऐसी मंडलियां भी यहां मिल जाती हैं, जिन्होंने नाट्याभिनय को ही अपनी जीविकार्जन का आधार

वनाया है। साथ ही, मंच-सज्जा, आलोक, संगीत आदि की प्रगति भी यहाँ अनेक प्रकार के प्रयोगों के माध्यम से हमेशा होता रहती है।

जन-जीवन की परम्परा

सच बात तो यह है कि नाटक और अभिनय की प्रवृत्ति बंगाल के जन-जीवन में गहरी पैठी हुई है। इसके पीछे सैकड़ों वर्षों की परम्परा का पीठ बल है, दिग्गज नाट्यकारों और अभिनेताओं का तपोबल है। यही कारण है कि सिनेमा के समस्त प्रत्याघातों के बावजूद यहां नाटक और रंगमंच जीवित है और विकासमान है। "यात्रा" से आरम्भ कर अंग्रेजी में और अंग्रेजी ढंग पर अभिनीत किये जाने वाले नाटकों के युग में होकर पौराणिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय जागरण के नाटकों के सोपान पार करता हुआ बंगाल का रंगमंच रवींद्रनाथ की अभिनय नाट्य रचना की सशक्त उपलब्धि लिये हुए अत्यंत आधुनिक ढंग के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक नाटकों के धरातल तक पहुंचा है। इस परम्परा के इतिहास में माइकेल मधुसूदन दत्त, दीनबंधु मित्र, गिरीशचंद्र घोष, द्विजेंद्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शिशिर कुमार भादुड़ी, महेंद्र गुप्त, अहींद्र चौधरी, छवि विश्वास, शम्भू मित्र आदि के नाम सुनहले अक्षरों में चमकते हैं और चमकेंगे। इनमें भी अकेले शिशिर भादुड़ी ने बंगला रंगमंच को जो शक्ति और तेज दिया, उसने नाट्य प्रगति का एक नया अध्याय ही खोल दिया। शिशिर भादुड़ी आधुनिक रंगमंच के पिता समझे जाते हैं, जिन्होंने पाश्चात्य नाट्य प्रणाली को भारत की नाट्य-प्रवृत्ति की भूमि में उतार कर हमारे जीवनानुरूप स्वाभाविकता प्रदान की। उन्होंने अपने महान् व्यक्तित्व से नाट्यकला को अक्षुण्ण रखा। इस उद्देश्य की साधना में उनको जिस कष्ट और संघर्ष का सामना करना पड़ा—और जिसे उन्होंने एक तपस्या समझ कर झेला--वह सचमुच नाटक की प्राण-प्रतिष्ठा का अमर सम्बल बन गया। उनके समय में रंग-शालायें आर्थिक अभाव में पिस रही थी, पर बाद में वे जम गई और अच्छी तरह चल रही हैं, इससे यह स्पष्ट है कि नाट्य रुचि की वृद्धि हुई है और उसकी ओर लोगों में आकर्षण बढ़ा है।

विशेष उपलब्धियाँ

इस तपःपूत सबल परम्परा को वर्तमान में शम्भु मित्र, तरुण राय और उत्पल दत्त की त्रिपुटी अपनी समस्त साधना से बढ़ा रही है। रवीन्द्रनाथ की नाट्य कृतियों के अभिनय में शम्भू मित्र के "बहुरूपी" दल ने जो विशेषता अर्जन की है, नये सामाजिक बोध की नाट्य-अवतारणा में तरुण राय ने स्व-लिखित नाटकों से जो उल्लेखनीय योगदान किया है और उत्पल दत्त ने विदेशी नाटकों के बंगला-रूपान्तर से तथा दृश्य योजना और अभिनय-कला की विशिष्ट प्रणालियों द्वारा लोकमानस को जिस प्रकार से प्रभावित किया है, वह नाटक और रंगमंच से परिचित हर व्यक्ति को मालूम है। शम्भू मित्र का "बहुरूपी", तरुण राय का "मुखोश" और उत्पल दत्त का "लिटल थियेटर" कलकत्ता के नाट्य आन्दोलन को नया नेतृत्व और नया मोड़ दे रहे हैं जिसकी ख्याति भारत भर में है। इन तीनों के द्वारा जो नव नाट्य आन्दोलन परिचालित हुआ है,

वह वर्तमान पीढ़ी की विशिष्ट उपलब्धि है। समर चटर्जी की प्रतिभा और कुशल संगठन योजना के परिणाम स्वरूप "चिल्ड्रेन्स लिटल थियेटर" नामक बाल नाट्य संस्था का उदय और विकास भी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में एक विशेष उपलब्धि है, जिसकी प्रसिद्धि देश के बाहर तक जा पहुंची है।

यहां यह भी विशेष उल्लेखनीय है कि कलकत्ता के साथ बंगला के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं के नाट्य मंच के विकास की कहानी भी जुड़ी हुई है। हिन्दी का पारसी थियेटर कलकत्ता में पुष्ट हुआ। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि श्री जमशेद जी खटाऊ के एल्फ्रेड थियेटर में ही पहले-पहल आधुनिक ढंग की सेटिंग्स का दर्शन हुआ और उससे ही बंगला रंगमंच ने उसे ग्रहण किया। इस बात का पता मुझे बंगला रंगमंच के ही एक वयोवृद्ध निर्देशक से लगा। हिन्दी का राष्ट्रीय नाट्य-आंदोलन भी यहीं से सुगठित हुआ। कलकत्ता की हिन्दी नाट्य परिषद और पं० माधव शुक्ल के नाम हिन्दी रंगमंच के इतिहास में अमर हैं और रहेंगे। आगा हश्र काश्मीरी को कैसे कोई भुला पायेगा? इसी परम्परा में आज भी "अनामिका" द्वारा नव नाट्य आंदोलन में हिन्दी का गौरवपूर्ण अवदान हो रहा है। उसने संगीत नाटक एकाडमी की अखिल भारतीय नाट्य प्रतियोगिता में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर कलकत्ता को वह श्रेय दिया। गुजराती के प्रसिद्ध नाट्यकार श्री शिवकुमार जोशी ने कलकत्ता से अपनी मण्डली को ले जाकर बम्बई और अहमदाबाद जैसे गुजराती नाटक के घर में पुरस्कार और पारितोषिक प्राप्त किये और अभी-अभी संगीत नाटक एकादमी से सर्वश्रेष्ठ गुजराती नाटक के रूप में अपने "सुवर्णरेखा" नाटक के लिये पारितोषिक पाया है जिसमें बंगाल के जीवन की भावमयी कहानी है।

विविध भाषाओं का रंगमंच

इस प्रकार से कलकत्ता का रंगमंच केवल बंगला का ही नहीं, विविध भारतीय भाषाओं का रंगमंच है। अंग्रेजी में भी "कलकत्ता ड्रामेटिक क्लब" और "द प्लेयर्स" नामक शौकिया संस्थाएं आये दिन अपने अभिनय प्रस्तुत करती रहती हैं, जिनका आकर्षण कलकत्ता के रंगमंच प्रेमियों के मन पर स्पष्ट देखा जा सकता है। श्री तापस सेन आदि की आलोक सम्पात योजना और श्री खालेद चौधरी आदि की मंच सज्जा-योजना भी इस नये नाट्य आंदोलन के निर्माण का अंग है। उदाहरण स्वरूप श्रीमती तृप्ति मित्र के मार्मिक अभिनय और श्री तापस सेन के आलोक सम्पात की अद्भुत योजना ने "सेतु" नाटक को इस शहर में एक ही मंच पर हजार से ऊपर प्रदर्शन करने का अवसर दिया।

"अनामिका" द्वारा आयोजित हिन्दी नाट्य महोत्सव भी नगर की विशिष्ट उपलब्धियों की इसी परम्परा को अग्रसर करने का गौरवपूर्ण प्रयास है, जिससे हिन्दी रंगमंच की उपलब्धियों का विस्तार देखने, समझने और परिवर्धित करने का देश व्यापी महत्व का महान् अवसर उपलब्ध हो रहा है।

(दैनिक विश्वमित्र, २८ दिसम्बर, १९६४)

परिवार नियोजन

परिवार-नियोजन

१. परिवार-नियोजन की प्रणेता : मारगरेट सेंगर
२. अल्पविराम नहीं, अर्द्धविराम नहीं, पूर्णविराम !
३. परिवार-नियोजन : एक परिचर्या

परिवार-नियोजन

परिवार नियोजन की प्रणेता : मारगरेट सेंगर

"जिन परिस्थितियों में आज से ४७ वर्ष पूर्व जन्म-नियन्त्रण (जिसके लिए अब हमने 'परिवार-नियोजन' शब्द को अपना लिया है) का विचार मेरे मन में आया, वे परिस्थितियां दुनिया के अनेक हिस्सों में आज भी लगभग उतनी ही दुखद दिखाई पड़ती हैं और उनको देख-देख कर उत्पन्न होनेवाला दर्द मुझे बुढ़ापे में भी इस आंदोलन के साथ सक्रिय रूप में जोड़े हुए हैं। वह ट्रक ड्राइवर की पत्नी श्रीमती सेक्स इन लम्बे वर्षों में मेरे दिमाग के सामने से कभी हटी ही नहीं। यह सन् १९१२ की बात है, जब मैंने नर्स का पेशा शुरू ही किया था। श्रीमती सेक्स उस समय करीब २८ वर्ष की होंगी। पति की आमदनी बिलकुल सीमित थी और बच्चों की संख्या असीमित। पहला पांच वर्ष का, दूसरा तीन वर्ष का, तीसरा एक वर्ष का और चौथा पेट में। जिस डाक्टर के साथ मैं वहां गई थी, उसने किसी तरह से श्रीमती सेक्स को गरीबी और प्रसव-वेदना की दोहरी चोट से आई मौत के मुंह से बचा लिया। औरत की आँखों में अंधेरा, पतिके चेहरे पर भयानक उदासी और बच्चे माता-पिता के होते हुए भी मासूम-से लगते थे। डाक्टर शायद रोज-रोज यह दृश्य देखने का आदी था। उसने अपना बैग उठाया और चलने को हुआ, पर उस औरत की वेदना मेरी अपनी वेदना हो गई, जब उसने कहा—'सिस्टर, अबकी बार तो बच गई, पर अगला प्रसव तो मुझे ले ही बैठेगा। क्या कोई उपाय नहीं है कि मैं इससे बच पाऊं? डाक्टर ने चलते-चलते हँस कर कह दिया। जैक से कहो कि संयम का पालन करे।' पर औरत ने औरत की ओर देखा और कहा—'डाक्टर नहीं समझेगा। वह खुद भी तो मर्द है। पर सिस्टर, तुम भी क्या मेरी व्यथा को नहीं समझोगी और कोई उपाय नहीं बताओगी? उपाय? इसका उपाय? नहीं, मैं नहीं जानती। पर उपाय निकलेगा जरूर और उसे मैं जरूर ढूंढूंगी।' पता नहीं किस प्रेरणा ने मुझसे उस मार्मिक क्षण में यह संकल्प करा लिया और वह संकल्प आज ४७ वर्ष से मेरे जीवन का ध्रुवतारा बना हुआ है। आज परिवार-नियोजन का प्रश्न सारे संसार में फैला हुआ है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, राजनेता और चिकित्सा-शास्त्री इस पर विचार कर रहे हैं, और मेरी वह संकल्प-भूमिका—'उपाय, इसका उपाय' मानो हर कोने से मुझे सुनाई पड़ रही है। विक्टर ह्यूगो की यह बात मुझे उस दिन भी बिलकुल सच लगी थी और आज भी लग रही है कि सबसे बड़ी ताकत वह विचार है, जिसकी

घड़ी आ गई है। जन्म-नियंत्रण के विचार में वही ताकत है, जो उसे अपने आप चलाती और बढ़ाती रही और दिन-दूनी रात चौगुनी शक्ति के साथ बढ़ा रही है। आपने आंदोलन की विश्व व्यापी गति-विधि पर मेरी प्रतिक्रिया पूछी, पर मैं समझती हूं कि मेरी प्रतिक्रिया वास्तव में आज भी इस केंद्र-बिन्दु में जितनी मिलेगी, उतनी बाहर नहीं।"—ये उद्‌गार हैं, जो १६ फरवरी सन् १९५९ को नई दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय परिवार नियोजन सम्मेलन के छठवें अधिवेशन के अवसर पर आई हुई श्रीमती मारगरेट सेंगर ने अशोक होटल में मुझ से एक भेंट के समय व्यक्त किये। उनके शब्दों में मानवीय संवेदनशीलता की मर्मानुभूति थी, दीर्घकालीन संघर्ष और विद्रोह की धधकती हुई आग थी और थी भविष्य के अन्तर्पटको चीरती हुई संकल्प की तेजस्वितापूर्ण दृष्टि।

प्रेरणा और संकल्प

सन् १९१२ में वह उपरोक्त घटना घटित हुई थी, जिसका उल्लेख श्रीमती सेंगर ने अपने उक्त उद्‌गारों में किया है। प्रसव-पीड़ा की असह्य वेदना के कारण लगभग मौत के मुंह में गई हुई ट्रक-ड्राइवर की पत्नी श्रीमती सेक्स की मर्म-व्यथा ने उनके जीवन को ही मोड़ दिया। इस मोड़ का मारगरेट ने जिन मार्मिक शब्दों में उल्लेख किया है, उनको पढ़कर कौन होगा जिसका दिल न पसीज उठे? उन्होंने लिखा है—"मुझे तो समाज-दर्शन की एक दिव्य दृष्टि मिल गई। हमारी समस्त समस्याएं अनियंत्रित सन्तानोत्पत्ति पर केंद्रित हैं और मेरे मुंह से तभी निकल पड़ा ''' अमरीका की नारी-जाति को जगाना है, उसे अपनी शक्ति का अहसास कराना है, ताकि वह विश्व की समस्त नारियों को मातृत्व की विवशता से मुक्त करे। इस संकल्प के साथ मैंने हाथ में ले रखे नर्सिंग बैग को फेंक दिया, अपनी उस पोशाक को फाड़ फेंका और बार-बार मुझे सुनाई पड़ने लगा अपने ही भीतर से '''रोगों का उपचार नहीं, उनका निरोध करना होगा। नारी को प्रजनन की विवशता से मुक्त होने का, जन्म-नियन्त्रण का पथ बताना होगा।"

आन्दोलन का सूत्रपात

मारगरेट के इस निर्णय की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न लोगों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से हुई। एक नया विचार था, जिस पर चर्चा करने में ही समाज की बाधा, धर्म की बाधा और सब के ऊपर कानून की बाधा थी। मारगरेट के पास न थे पैसे, न थीं वे लिखने बोलने में सिद्धहस्त और न थे कोई उनके ऐसे मित्र जिनका सामाजिक और राजकीय क्षेत्रों में प्रभाव हो।

लोगों से बातें कीं, उससे अनुभव हो गया कि वे जो आन्दोलन चलाना चाहती थीं, उसमें उन्हें किसी का सहयोग मिलने वाला नहीं, अकेले ही यह संघर्ष झेलना होगा तब उन्होंने अपने पास जो कुछ रकम थी, उससे एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिसका नाम रखा "द वोमेन रिबेल"। इस पत्रिका में समस्त सामाजिक रूढ़ियों, विषमतामूलक तथा दमनकारी कानूनों के खिलाफ खुली बगावत थी तथा विचार-स्वातन्त्र्य का संदेश था। पत्रिका का सम्पादन, आय-व्यय, लेखन वितरण-व्यवस्था सब उन्हें देखना पड़ता था। इसके प्रकाशन ने अमरीका के महिला समाज में एक नई लहर पैदा कर दी, जिससे न्याय और कानून के अधिकारी घबरा उठे।

१९५९:परिवार नियोजन की विश्वनेत्री मार्गरिट सेंगर के दिल्ली आगमन पर उनके साथ सिंघी दंपत्ति

१९५९ : इंटरनेशनल प्लेंड पेरेंटहुड फेडरेशन के छठे सम्मेलन में उदघाटन के लिए दिल्ली के विज्ञान भवन में आये नेहरू जी का स्वागत करते हुए सिंघी जी



१९६७ : चिली में इंटरनेशनल प्लैंड पेरेंटहुड के आठवें सम्मेलन में (बायें से) डॉक्टर हावर्ड मिचेल, गोविंद नारायण और लेफ्टिनेंट कर्नल दीपक भाटिया के साथ भँवरमल सिंघी (बायें से दूसरे)

१९७२ : परिवार नियोजन के क्षेत्र में उल्लेखनीय भूमिका के लिए इंडियन मर्चेंट्स चेंबर के अध्यक्ष अरविंद मफतलाल से पुरस्कार ग्रहण करते सिंघी जी



७३ : जापान के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री नोबूके किशी के परिवार नियोजन प्रतिनिधिमंडल के नेता के
में भारत आगमन पर उनके साथ सिंघी जी और सुशीला जी



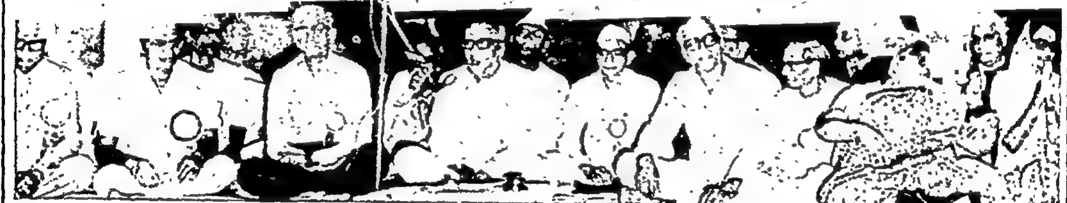
७२ : फैमिली प्लानिंग एसोसिएशन, कलकत्ता द्वारा आयोजित एक परिसंवाद में भाषण करती
मती आवा वाई बी० वाडिया। उनके दाहिनी ओर हैं तत्कालीन केंद्रीय मंत्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय
र अजित पांजा तथा बायीं ओर हैं सिंघी जी



७७ : मारवाड़ी सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष ईश्वरदास जालान के अभिनंदन के अवसर पर



१९६५ : मारवाड़ी रिलिफ सोसाइटी की स्वर्णजयंती के अवसर पर आयोजित संगोष्ठी में भाषण करते सिंघी जी। मंच पर हैं (बायें से) सर्वश्री वियोगी हरि, काका कालेलकर, पंडित हृदयनाथ कुंजरु, राधाकृष्ण कानोड़िया, स्वामी रंगनाथन और सीताराम सेकसरिया



१९७६ : मारवाड़ी सम्मेलन के १२वें अधिवेशन में प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए



कलकत्ता के बड़ाबाजार में दिखावे के विरोध में जुलूस का प्रतिनिधित्व करतीं सुशीला जी। पीछे हैं नंदकिशोर जालान, नंदलाल सुरेका और सिंघी जी

संघर्ष छिड़ गया

उस पत्रिका के एक अंक में जन्म-नियन्त्रण के सम्बन्ध में एक लेख के प्रकाशन के कारण डाकखाने के अधिकारियों ने कानूनी आपत्ति की और इस अंक की प्रतियां डाक द्वारा भेजने से इन्कार कर दिया। इसको लेकर सरकार से लड़ाई ठन गई। इसी बीच उन्होंने जन्म-नियंत्रण की व्यावहारिक विधियों के सम्बन्ध में एक पुस्तिका भी तैयार की, जिसका आधार यूरोप-प्रवास काल में हासिल की हुई उनकी जानकारी थी। प्रश्न था कि वह छपे कहां? कई सप्ताहों तक मारगरेट पाण्डुलिपि लिये बीसों मुद्रकों के यहां चक्कर काटती रहीं, पर कोई उसे छापने को तैयार नहीं हुआ। अन्त में एक व्यक्ति ने इस काम का जिम्मा लिया और रातोरात लुके-छिपे तरीके से उसने अपने हाथों से कम्पोज कर पुस्तिका छाप दी। एक लाख प्रतियां छप गईं और पहले से की हुई व्यवस्था के अनुसार अमरीका के तीन बड़े-बड़े शहरों में हाथों-हाथ उसका वितरण हो गया। इस कार्य में जो सफलता मिली, उसमें से मारगरेट को बड़ा आत्म-संतोष मिला।

यूरोप-प्रवास और मुकदमे की तैयारी

इसके बाद आंदोलन को आगे बढ़ाने और अपने विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये वे यूरोप गईं। उन्होंने इंग्लैंड में हैवलाक एलिस और मेरी स्टोप्स जैसे यौनविज्ञान के आचार्यों से सम्पर्क स्थापित कर, काफी ज्ञान प्राप्त किया। हालैण्ड में उन्हें सन्तानोत्पादन में समयान्तर के महत्व का पता चला और इस प्रवास का परिणाम यह हुआ कि न केवल अमरीका में बल्कि इंग्लैंड और यूरोप के दूसरे देशों में भी जन्म-नियंत्रण आन्दोलन की सारी दिशा ही बदल गई।

हालैण्ड से लौटकर वे फिर लन्दन आईं और ब्रिटिश म्यूजियम के पुस्तकालय में जाने लगीं। वहां पहुंचने के थोड़े दिनों बाद ही उनको अपने पति का पत्र मिला जिसमें उन्होंने अपनी गिरफ्तारी के बारे में सूचित किया था; जिसका कारण मारगरेट के द्वारा लिखित और प्रकाशित जन्म-नियन्त्रण सम्बन्धी वह पुस्तिका थी। इस सूचना से मारगरेट को और अधिक उत्साह मिला तथा पूरी तैयारी के साथ वे १६ अक्तूबर १९१५ को अमरीका पहुंची। जब अपना छोटा बैग लिए हुए वे बन्दरगाह से अपने घर की ओर जा रही थीं, तो जहाँ उनके मन में बच्चों से मिलने की खुशी थी, वहीं पत्र-पत्रिकाओं के एक स्टाल पर रखे हुए 'पिक्टोरियल रिव्यू' नामक पत्रिका के मुख पृष्ठ पर 'जन्म-नियन्त्रण' शब्द मोटे-मोटे अक्षरों में छपा हुआ देखकर उन्हें बड़ी खुशी हुई। यह उनका दिमागी बच्चा भी बढ़ रहा था, उनका खुश होना स्वाभाविक था।

उनके अमरीका पहुंचने के चार दिन बाद ही उनके पति जेल से रिहा कर दिये गये। उसके बाद फौरन मारगरेट ने "वोमेन रिबेल" के विरुद्ध जो मुकदमा चलाया गया था, उसके बारे में सम्बन्धित अधिकारियों को अपने अमरीका लौट आने की सूचना दी। तभी उनको मालूम हुआ कि एकबार मुलतवी होकर मुकदमे की अगली तारीख १८ जनवरी, १९१६ पड़ी है। इस प्रकार मुकदमे की तैयारी का उन्हें काफी समय मिल गया।

इसी दरमियान अमरीका में 'नेशनल बर्थ कन्ट्रोल लीग' नामक संस्था का निर्माण हो चुका था, जो बिलकुल चिकित्सकों का संगठन था। मारगरेट के विचारों और

तौर तरीकों से इस संस्था का उद्देश्य और कार्य बहुत भिन्न था। इससे मारगरेट को बड़ी निराशा हुई। उन्होंने समझा था कि अपने मुकदमे में लगने वाले खर्च के लिए इस संस्था से मदद मिलेगी परन्तु उस संस्था वालों ने जो उत्तर दिया, वह घोर निराशाजनक था। फिर भी मारगरेट अपने निश्चित किये हुए पथ से हटने वाली नहीं थीं। साधारण लोगों से भी उन्हें अपनी जरूरत के लिये काफी पैसे मिल गये। उन्होंने यह भी तय किया था कि वे अपने मुकदमे के लिए कोई वकील नहीं रखेंगी। जो कुछ कहना होगा, वे खुद ही कहेंगी। आखिर १८ जनवरी १९१६ को न्यायालय में वे उपस्थित हुई। इस मुकदमे की कार्यवाही देखने के लिए न्यायालय में लोगों की ठसाठस भीड़ उपस्थित थी। न्यायाधीश को अमरीका भर से हजारों तार और पत्र मिले थे। इतना ही नहीं, इंग्लैंड के नौ प्रमुख व्यक्तियों ने अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति विल्सन को भी एक पत्र लिखा था, जिसमें कहा गया था कि श्रीमती मारगरेट सेंगर जो कार्य कर रही है, उसका प्रत्येक सभ्य देश में आज स्वागत हो रहा है और होना चाहिये। इस पत्र पर हस्ताक्षर करनेवालों में एच० जी० वेल्स, प्रो० गिलबर्ट मरे, एडवर्ड कारपेन्टर और मेरी स्टोप्स के नाम भी थे। पता नहीं, इन सब के असर से अथवा अमरीका के जनमत में परिवर्तन होने के कारण सरकार ने मुकदमा वापस उठा लिया। इस प्रकार जनमत की जो विजय हुई, उसने अमरीका में एक नये ही वातावरण की सृष्टि की। मारगरेट सेंगर को देखने और उनके विचार सुनने के लिये चारों तरफ जनता उमड़ पड़ी; पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय की बड़ी धूमधाम से चर्चा हुई और मारगरेट को जगह जगह अभिनन्दन मिले और व्याख्यान के लिये बुलाया जाने लगा।

प्रथम गर्भ-निरोध केन्द्र की स्थापना

विचारों की इस विजय के बाद गर्भ निरोध का केन्द्र स्थापित करने की आवश्यकता थी। सोलह अक्तूबर सन् १९१६ को ब्रुकलिन में प्रथम केन्द्र की स्थापना की गई जो मारगरेट के शब्दों में ही "अमरीका की महिला-जाति के जीवन में सबसे महान सामाजिक महत्व की घटना थी।" उस केन्द्र में मारगरेट की सगी बहन एथेल बायरन भी उनके साथ काम करती थीं। केन्द्र के खुलने के थोड़े ही दिनों बाद मारगरेट, उनकी बहन एथेल, और मिस फेनिया मिन्डेल तीनों गिरफ्तार कर ली गयीं। इस गिरफ्तारी के समाचार अमरीका के सारे पत्रों में बहुत मोटे-मोटे अक्षरों में छपे। जब उनको पुलिस की गाड़ी में बैठा कर ले जाया जा रहा था, हजारों महिलाएं उनके दर्शन के लिए केन्द्र के आसपास और रास्तों पर खड़ी थीं। ८ जनवरी सन् १९१७ को मुकदमे की सुनवाई हुई और मारगरेट की बहन एथेल को एक महीने की सजा हो गई। इस निर्णय के विरुद्ध एथेल ने भूख हड़ताल की। सारी पत्र-पत्रिकाओं में भूख-हड़ताल के समाचार बड़े जोर-शोर से छपे और कारनेगी हाल में एक वृहद् जन-सभा इस गिरफ्तारी के विरोध में हुई। इस सभा की कार्यवाही का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' के सम्पादक ने लिखा कि सन् १९६७ में कोई यह विश्वास भी नहीं कर सकेगा कि, सन् १९१७ में एक स्त्री को इसलिये गिरफ्तार

किया गया था, कि वह शारीरिक अंगों और उनकी प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में ज्ञान देती थी। जो हो, इस गिरफ्तारी का आन्दोलन पर वहुत असर हुआ।

मारगरेट जमानत पर छूट गईं, और छूटते ही उन्होंने ब्रुकलिन के केन्द्र को चालू रखने की योजना में अपने को लगा दिया। इस वात से न्यायालय के आदेश का भंग हुआ और जव मुकदमे की सुनवाई के दिन मारगरेट से पूछा गया—इस वारे में आप क्या कहना चाहती हैं, तो उन्होंने कहा—"आप जो कानून वना रहे हैं, उसकी अवज्ञा करना ही मैं अपना कर्तव्य मानती हूं।" इस कथन का जो परिणाम होना था, वही हुआ। उनको पकड़ कर जेल भेज दिया गया। वहां से वे ६ मार्च, सन् १९१७ को रिहा हुईं।

'वर्थ कन्ट्रोल रिव्यू' का प्रकाशन

अव मारगरेट ने आन्दोलन का चारसूत्रीय कार्यक्रम वनाया—आन्दोलन, प्रचार, संगठन और कानून-परिवर्तन। इस कार्य के लिये एक संस्था वनाने और पत्र प्रकाशित करने की आवश्यकता अनुभव की गई। तदनुसार शीघ्र ही "वर्थ कन्ट्रोल रिव्यू" नामक पत्रिका का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ, जिसका मारगरेट ने सन् १९२१ तक खुद ही सम्पादन किया और व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी अपने ऊपर लिये रहीं।

जगह-जगह से उनसे सलाह मांगी जाने लगी। उन्होंने इंग्लैंड, स्काटलैण्ड, जर्मनी आदि की यात्राएं कीं और चारों तरफ आन्दोलन का प्रसार देख कर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ वे सन् १९२१ में अमरीका लौट कर आईं। उनके आने के वाद ११, १२, १३ नवम्वर सन् १९२१ को न्यूयार्क में 'अमेरिकन पब्लिक हेल्थ एसोसिएशन' के तत्वावधान में प्रथम राष्ट्रीय जन्म-नियन्त्रण सम्मेलन हुआ और उसी समय 'अमेरिकन वर्थ कन्ट्रोल लीग' की स्थापना हुई। कान्फ्रेन्स के अन्तिम दिन एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया था, जिसमें चर्चा का विषय रखा गया था—जन्म-नियन्त्रण क्या नैतिक है? जव मारगरेट सभा में पहुंची तो रास्ते भर वह देखती गईं कि हजारों-हजारों नर-नारी सभा भवन की ओर चल रहे थे। पुलिस ने इस सभा पर पावन्दी लगा दी और मारगरेट को सभा-भवन के भीतर जाने नहीं दिया। वास्तव में यह पावन्दी रोमन कैथोलिक चर्च के आर्कविशप के द्वारा लगाई गई थी। मारगरेट ने इस पावन्दी का प्रतिरोध किया, जिसके कारण उनको गिरफ्तार कर लिया गया और सजा भोगनी पड़ी।

('धर्मयुग,' २४ जुलाई, १९६०)

अल्पविराम नहीं, अर्द्धविराम नहीं, पूर्णविराम !

सत्रहवां स्वाधीनता-दिवस
१५ अगस्त, १९६३

भाई मेरे,

तुम्हारी खुशखबरी का पत्र मिले पन्द्रह दिन तो जरूर हो गये होंगे और तुम सोचने लगे होगे कि जिस खबर पर मुझे तुरन्त तुम्हें अभिनन्दन और बधाई का तार भेजना चाहिए था, उसके लिए मैंने अभी तक पत्र भी नहीं दिया। न मालूम मेरी इस चुप्पी और देर को लेकर तुमने कितनी-कितनी कल्पनाएं की होंगी। मुझे इसमें तनिक भी ताज्जुब नहीं क्योंकि पच्चीस वर्षों से मेरा-तुम्हारा जो सम्बन्ध रहा है, उससे तुम्हारा यह आशा करना अनुचित नहीं है कि तुम्हारी खुशी और दुःख में मैं पूरा-पूरा तुम्हारे साथ हूं और रहूं। तुमने शायद सोचा हो कि कहीं मैं बीमार तो नहीं हूं या कि कहीं प्रवास के लिए निकला हुआ हूँ, अथवा घर में कोई बीमार है। तुमने क्या-क्या सोचा होगा या सोच रहे होगे, इसकी कल्पना मुझे भी होती रही है; और इस प्रकार की आशंका से तुम घबड़ा न उठो—यदि इसकी चिन्ता न होती तो शायद आज भी यह पत्र नहीं लिखा जाता।

तुम्हें धक्का लगा न ? मैं और तुम्हें पत्र न लिखूं ? और वह भी तुम्हारे दसवें बच्चे के जन्म की खुशखबरी पाकर ? पर, आज मैं साफ-साफ ही तुम्हें कहूँ कि मुझे खुशी नहीं, रंज हुआ कि तुम अपनी स्थिति को सोचे-समझे बिना संततिप्रजनन के संबंध में बिलकुल लापरवाह हो। कितनी बार मैंने तुम्हें समझाया कि संतानोत्पादन के संबंध में भी हमें वैज्ञानिक विचार और परिकल्पना के आधार पर चलना है। तुम पहले-पहल तो यही कहते रहे कि इसमें तुम्हारे हाथ में क्या है; यह तो भगवान (या, मुझे समझाने के लिए, नियति) की योजना है जिसमें मनुष्य के करने-न करने का प्रश्न ही नहीं आता। तुम बड़े विश्वास के साथ मानते और कहते रहे कि मनुष्य के हर कर्म और भाग्य का नियन्ता भगवान है और जब भगवान की मर्जी होती है, तो घर में बालक का जन्म होता है। और इस बात को समझाने के लिए तुमने मुझे कितने आख्यान और आर्ष वचन बताये। पर जैसा मैंने कई बार तुमसे कहा है, मनुष्य अपने नये ज्ञान विज्ञान की उपलब्धियों के बाद प्रकृति की क्रूरताओं और विवशताओं का दास और नियति का खिलौना नहीं रहा है, वह प्रकृति का प्रभु, है, स्वयं अपनी नियति का निर्माता है। यदि आज वह अपने सुख-दुःख, भले-बुरे और और प्रिय-अप्रिय का भेद करनेवाले विवेक को नहीं पहचानता और उसके अनुसार काम करने को तत्पर नहीं है तो वह मनुष्य की जगह पशु की श्रेणी में ही गिना जायेगा क्योंकि बुद्धि और विवेक ही पशु और

मनुष्य की बीच भेद देखा है। उस दिन मैंने अपने-आपको धन्य हुआ समझा था, जब पर्याप्त तर्क-वितर्क के बाद अंधी प्रजनन-उच्छृंखलता की जगह तुमने संयम के मानवीय विवेक और संकल्प की बात कही थी और मुझे विश्वास दिलाया था कि इस मामले में तुम अब विवेक और बुद्धिमत्ता से काम लोगे। तुम्हारी बात में मुझे अविश्वास नहीं हुआ, किन्तु यह संदेह अवश्य था कि व्यवहार में तुम शायद ही सफल हो सको, और मेरा संदेह ठीक निकला। दो वर्ष भी पूरे नहीं हुए कि तुमने दसवें बालक के आगमन की सूचना दी। क्या हुआ तुम्हारे संयम का, तुम्हारी सौगंधों का, और ब्रह्मचर्य के उस विधि-विधान का? मैंने कहा था न कि वैज्ञानिक ढंग से इस बारे में सोचो और वैज्ञानिक साधनों का व्यवहार करो। पाप और पुण्य की परिभाषाएं बदल गई हैं, तुम भी उनको बदलो। परम्पराओं में बंधे रहकर विवेक के प्रकाश को रोकने की भूल मत करो। अंधे संस्कारों को लेकर चलोगे तो अपने से शुरू करके सारे समाज और देश को अंधा बना दोगे और सारी संस्कृति भी अंधी बन जायेगी। और अंधेरे में विनाश तुम्हें और तुम्हारे सब कुछ को ले बैठेगा।

यह तुम्हारा दसवां बच्चा तुम्हारे लिए अधिक दुःख और निराशा का कारण बन जायेगा। रहा होगा एक जमाना जबकि दस ही क्यों, सौ बेटे का बाप होना बहुत बड़ा भाग्य माना जाता था। यह मानव-समाज की उस अवस्था में ही माना गया था जब मनुष्य केवल अपने हाथ-पैरों की शक्ति का उपयोग ही जानता था। उस स्थिति में यह मानना स्वाभाविक था कि जितने अधिक आदमी हों, जितनी अधिक संतान हों, उतना ही उत्पादन अधिक होगा, समृद्धि अधिक होगी, परन्तु आज तो मानव—पशुओं के बाद भाप और बिजली ही नहीं, आणविक शक्ति से भी काम लेने की ओर कदम बढ़ा रहा है। इस शक्ति के विनियोग से, कहना न होगा, एक व्यक्ति हजारों व्यक्तियों जितना काम कर सकता है। तब आदमियों की संख्या बढ़ाते रहकर वह अपने लिए समस्या ही तो उत्पन्न करता है और उसकी समस्या अन्ततोगत्वा सारे विश्व की समस्या बन जाती है। मैं तुम्हें कई बार दुनिया की आबादी के आंकड़े बता चुका हूं। आज लगभग तीन अरब आदमी दुनिया में हैं जिसमें से गरीब दो-तिहाई लोगों को पूरा भोजन नहीं मिलता। इस हालत के बावजूद वर्त्तमान में दुनिया की आबादी करीब ४॥ करोड़ प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़ रही है। यदि इस वृद्धि को रोका और कम न किया गया तो वर्त्तमान शताब्दी के अन्त तक दुनिया की आबादी ५ अरब हो जायेगी। तब इतने लोगों का भरण-पोषण और रहन-सहन कैसे सम्भव होगा? आज ही हम जो अवस्था देख रहे हैं, वह काफी भयावह एवं विस्फोटक है। चालीस वर्ष बाद की बात सोचकर तो प्राण कांपने लगते हैं। यह ठीक है कि जहां तक वस्तुओं के उत्पादन का प्रश्न है, विज्ञान ने काफी प्रगति की है और दुनिया के देशों के बीच की दूरी भी खत्म हुई है। तब भी, जैसा कि मैंने तुम्हें बताया, ज्यादा लोगों को पूरा भोजन नहीं मिलता। इस बात के लिए माल्थ्यूज (यह नाम भूले नहीं हो न? अर्थशास्त्र के क्लास में कई बार इसकी चर्चा होती थी,) ने १६५ वर्ष पहले चेतावनी दी थी। उसने कहा था कि अगर जनसंख्या की वृद्धि को नहीं रोका गया, तो एक दिन आयेगा जब दुनिया में खाद्यपदार्थों के पर्याप्त उत्पादन के अभाव में प्रकृति बलवा करेगी

महामारी के रूप में, युद्ध के रूप में और इस प्रकार जो काम हम अपने विवेक और बुद्धिमत्ता से नहीं करेंगे, वह प्रकृति अपने क्रूर हाथों से करेगी। मनुष्य ने उस चेतावनी पर ध्यान न दिया और भगवान एवं प्रकृति के नाम की ओट में संतानोत्पत्ति के विषय में स्वच्छन्दता वरतता गया और एक प्रकार से उसमें विवशता ही नहीं, भगवदेच्छा मानकर चलता रहा। परिणाम क्या हुआ, यह आज किसी से छिपा नहीं रह गया। प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता जूलियन हक्सले ने कहा है कि मनुष्य संतानोत्पादन के विषय में अपने घोर अविवेक के कारण स्वयं जगत का कैन्सर होता जा रहा है। मनुष्यों की संख्या-वृद्धि ही आज मानवता का सबसे बड़ा संकट है। अणुबम और उद्जनबम की चिन्ता है, पर उनसे भी भयानक और विनाशकारी बम अगर है तो वह यह जनसंख्या की वृद्धि है। तुम कहोगे कि मैं विज्ञान और फिलासफी झाड़ने लगा हूँ, जैसे कि मेरी आदत है; और यह भी कहोगे कि तुमने दुनिया की रक्षा का ठेका नहीं लिया है। इतने बड़े-बड़े सवालों से तुम्हें क्या मतलब? पर जरा सोचकर देखो कि जो दुनिया का सवाल है, वह मूलतः तुम्हारा सवाल है और तुम्हारे बच्चों का सवाल है। तुमने इस बेटे के जन्म की खुशखबरी का जब पत्र दिया और मैं उसे पढ़ने लगा तो मेरी आंखों के सामने तुम्हारे वे कई पत्र चमकने लगे जो तुमने पिछले साल ही लिखे थे। कितनी वेदना थी तुम्हारे उन पत्रों में! एक तरफ दो-दो बेटियों के विवाह का तकाजा और उनके लिए खर्च की चिन्ता, तो दूसरी ओर बड़े लड़के के लिए काम-धन्धा या नौकरी जुटाने का सिरदर्द और साथ ही पत्नी की बीमारी, जो लगी ही रहती है। मुझे तुम्हारी इन सब चिन्ताओं और परेशानियों की बात पढ़कर बड़ी सहानुभूति हुई थी। तुमको याद है न कि कितनी कोशिश करके और मुश्किलें उठाकर तुम्हारे तीसरे लड़के को कॉलेज में भर्ती कराया था और उसके लिए स्कॉलरशिप का बन्दोबस्त किया था। एक समस्या मिटी नहीं, और दूसरी पैदा हुई, पर तुम समस्या को समझ ही कहाँ रहे हो? रोते हो पर मूर्खता करते जा रहे हो। तुमने कभी अपनी आमदनी और खर्च के बारे में देखा-सोचा है? तुम्हारी शादी हुए बाईस-तेईस वर्ष हुए होंगे। उस वक्त तुम्हें डेढ़ सौ रुपये महीना मिलता था और आज छः सौ मिलता है, पर सच बताना—क्या तुम आज ज्यादा गरीब, ज्यादा ग़मगीन नहीं हो? आमदनी बढ़ी कम, पर बँटी ज्यादा, और बँटते-बँटते तुम, तुम्हारी पत्नी और तुम्हारी हर संतान ज्यादा ग़रीब होती गई, ज्यादा अभावग्रस्त होती गई! मेरी भाभी ताईद करेगी कि तुम्हारे पहले बच्चे को जितना दूध मिला, उतना तुम्हारे बाद वाले बच्चे को नहीं मिला, और इस तुम्हारे दसवें बच्चे को तो चाय का पानी मिल जाये तो भी बहुत है। किसने की यह हालत? कौन लाया यह ग़रीबी तुम्हारे घर में? किसने तोड़ दिया तुम्हारे और तुम्हारी पत्नी के स्वास्थ्य को? किसने झकझोर दिया तुम्हारे दाम्पत्य को? तुमने, तुमने, तुमने! तुम स्वयं अपने दुश्मन हो, अपने कुटुम्ब के दुश्मन हो! कहाँ हैं आज तुम्हारी वे कल्पनाएँ, कामनाएँ, भावनाएं सब उड़ गईं, सन्तानों को जन्म देने और उनके बोझ को (हाँ बोझ ही तो,) ढोने में!

तुमको यह उपालम्भ और आदेश अच्छा भी नहीं लगेगा, पर चूंकि तुम मुझे अभी भी अपना मित्र मानते हो इसलिए मैं लिखे विना नहीं रह सकता। दिल खोलकर

तुम्हें कुछ लिख रहा हूँ—लिखूँगा। वैसे नया कुछ नहीं है! जो कुछ कहना है, वह कितनी ही बार तुम्हें कह चुका हूँ, पर तुम तो ढीठ हो और अंधे भी। पिछली बार लड़की हुई, तब मैंने कितना समझाया था कि अपना ऑपरेशन करा लो पर तुमने एक न मानी। यह आश्वासन देकर खत्म किया कि तुम आगे से होशियार रहोगे, संयम रखोगे और जब मैंने तुम्हारे आश्वासन का भरोसा न कर और कड़े शब्दों में अपनी बात कही तो तुमने फिर भगवान की दुहाई दी, गांधीजी की दुहाई दी और कहा कि जिसने चोंच दी है, वही चुग्गा भी देगा। तुमने वह कविता-सी भी एक कही थी—"अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम, दास मलूका कह गये सबके दाता राम"। तुम अंधे होकर सन्तान बढ़ाते गये और राम को मजाक का पात्र बनाते गये। देखा तुमने, कितनी चोंचें चुग्गे के बिना पतली पड़ रही हैं? समझा तुमने कि कितने मुँह खाने के बिना सूख रहे हैं, क्योंकि मुँह के साथ आये हुए हाथ काम करने लायक होते हुए भी बेकार हैं। दूर क्यों, अपने घर में ही देख लो। देखकर कुछ समझ में आवे, तो फिर मुझे बताओ कि मैं तुम्हें बधाई दूं या कोसूँ। तुम सन्तानोत्पत्ति के अबाध क्रम के अजगर को अपने घर में लपेटा मारते हुए देख रहे हो। यही अजगर तुम्हारे घर से लेकर हर घर में दूर-दूर तक अपना घेरा फैला रहा है। इसे रोको भाई, अपने हित के लिए, सुख के लिए। आज मैं तुम्हें बधाई दूँगा तो यही दूँगा और उपालंभ दूँगा तो यही दूँगा कि अब अल्पविराम और अर्द्धविराम नहीं, पूर्णविराम। हाँ पूर्णविराम! मैंने तुम्हें अपनी एक बात कही थी जिस पर तुम और भाभी दोनों खूब हँसे थे और मुझे एक प्रकार से निर्लज्ज भी बताया था—दूसरा विवाह करने के बाद जब मैं पत्नी सहित अपनी एक चाची से मिलने गया तो उन्होंने मेरी पत्नी को बड़े प्यार और आत्मीयता के साथ कहा, "सपूती हो, सात बेटों की माँ हो।" आशीर्वाद का वाक्य पूरा हुआ नहीं था कि मैंने अपनी चाची के मुँह पर हाथ रखकर उनका बोलना रोक दिया था। मैंने कहा, "आप तो आशीर्वाद देकर अलग हो जायेंगी, पर हम सात बेटों को जन्म देकर अपना सारा स्वास्थ्य, सुख और सन्तोष खोकर दारूण दुःख में पड़ जायेंगे।" अब तो मैं समझता हूँ, तुमने भी इस दारुण दुःख को समझा होगा। अगर अब भी न समझा हो तो फिर समझने का शायद ही मौका मिले? हाँ, तुम्हारी दारुण अवस्था से दूसरे जरूर लाभ उठायेंगे। भाई मेरे, आज दो या अधिक से अधिक तीन संतान ऊपर से ऊपर की सीमा है। यह राष्ट्र का निदान है; स्वस्थ जीवन का विधान है।

तुम्हें मालूम है न कि दुनिया के दूसरे देशों के आदमी आज किस प्रकार से विवेक और समझदारी से काम ले रहे हैं? जापान और पोलैण्ड के उदाहरण विशेष तौर से दूँगा। वहाँ योजनापूर्वक, परिवार नियोजन के व्यवहार द्वारा जन्म-दर पर पूरा नियन्त्रण रखने में सफलता पायी गई है। जो देश इस तरह नहीं सोचते, वे बढ़ी हुई जनसंख्या को युद्धों में होमकर चन्द तानाशाहों की सत्ता के लिये बढ़ती हुई भूख को पूरा कर रहे हैं। केवल भूखों मरने का ही तो सवाल नहीं है, अत्यधिक संतति-संख्या का बोझ मनुष्य के जीवन स्तर को नीचा कर रहा है। जीवनोपलब्धि के क्षेत्र का सीमा संकोच हो रहा है। उस दिन विश्व इतिहास वेत्ता आर्नल्ड टायनबी की पुस्तक में पढ़ा कि "इस बात की चिन्ता नहीं कि दुनिया में ३ अरब की जगह ४ अरब लोग हो जायेंगे

किन्तु चिन्ता का विषय यह है कि इतनी जनसंख्या बढ़ जाने पर सारे लोगों के मानवीय मूल्यों का विकास हो सकेगा या नहीं ?"

तुमने कभी तो निश्चय ही सोचा होगा कि मानव किसलिए है, मानव-जीवन का उद्देश्य क्या है ? यह तो साफ है कि न सिर्फ अपनी संख्या बढ़ाते जाना ही उद्देश्य है, और न सिर्फ मशीनों का उत्पादन बढ़ाते जाना ही—या कि सुख-विलास की वृद्धि और व्यक्तिगत अथवा सामूहिक सत्ता और प्रभुत्व की प्राप्ति ही। हमारा उद्देश्य वास्तव में जीवन के स्तर को बढ़ाना है, लगातार उसको बढ़िया बनाते जाना है। विज्ञान की भाषा में कहें तो मनुष्य जीवन का उद्देश्य अपने विश्व के विकास की क्रिया में योग देना है अर्थात् अधिकाधिक मनुष्यों को अधिकाधिक जीवनोपलब्धि के अवसर प्रदान करना है जिससे कि वे व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से अधिक पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकें और वह भी इस प्रकार की आने वाली पीढ़ियों के लिए अधिक उपलब्धि का मार्ग अवरुद्ध न हो। तुम किसी भी विचारशील व्यक्ति से पूछो, वह बतायेगा कि अबाधगति से बढ़नेवाली संतानोत्पत्ति जीवन-स्तर पर हमला कर रही है जिसके कारण जीवन की सारी या अनेक वांछनीय सम्भावनाओं का संकोच हो रहा है। क्या तुम चाहोगे या बर्दाश्त करोगे कि तुम्हारा अपना प्रजनन ही तुम्हारे पूर्व-प्रजनन का शत्रु बने और परिणामस्वरूप तुम्हारे सामने ही तुम्हारे बच्चे तुम्हारे प्यार के नहीं, तुम्हारी झुंझलाहट के शिकार बनें; तुम्हारी समृद्धि के नहीं, गरीबी के हिस्सेदार बनें और उनके जीवन-स्तर के निर्माण एवं विकास के सारे रास्ते और द्वार बन्द हो जायें ? तुमको मालूम है कि परिवार नियोजन आंदोलन का जन्म संतान की सुख-वृद्धि के लिये हुआ था। परिवार नियोजन की जननी मारगरेट सेंगर ने अवांछित संतान के अन्धकारमय भविष्य की कल्पना से दुखी होकर इस आन्दोलन का सूत्रपात किया था। मैं भी तुम्हें आज जो बातें लिख रहा हूँ, वे इसलिए हैं कि तुम्हारे बच्चे अधिक स्वस्थ बनें, सुखी हों, तथा तुम्हारा और तुम्हारे परिवार का सुख बढ़े, तनाव मिटे और जीवनोपलब्धि का स्तर उठे। तुमने जरूर उस दिन अखबारों में पढ़ा होगा कि खाद्य और कृषि के विश्वसंघ के डिप्टी डायरेक्टर जेनरल ने कहा था : "जब कि जन्म-दर अधिकांश देशों में निरन्तर बढ़ती जा रही है और मृत्यु दर तेजी के साथ घटकर लगभग आधी हो रही है, हम सब कुछ भगवान या प्रकृति के नाम छोड़कर बैठे नहीं रह सकते। यदि ऐसा किया, तो हम भयंकर स्थिति में पहुंच जायेंगे। हमारे देश में भी स्वास्थ्य-सुधार की नाना योजनाओं के परिणामस्वरूप मृत्यु दर तेजी के साथ घट रही है पर जन्म-दर में जरा भी कमी नहीं हो रही, बल्कि बढ़ने के ही लक्षण हैं। नतीजा यह है कि प्रतिवर्ष हमारी समस्त विशद् योजनाओं पर, प्राप्त और प्राप्य साधनों पर अधिकाधिक बोझ बढ़ रहा है।"

जाने दो विश्व-समस्या की बात नहीं करेंगे, देश का प्रश्न भी रहने दो पर तुम अपने कलेजे पर हाथ रख कर देखो कि अविवेक और अन्धविश्वास ने तुम्हारी क्या हालत कर दी है और मुझे तो तुम से भी ज्यादा तुम्हारे बच्चों पर तरस आता है जिनको तुमने तो पैदा कर दिया पर जिनके शारीरिक और मानसिक पोषण के साधन और व्यवस्था का कोई ठिकाना नहीं। उनको मां का प्यार और पिता का स्नेह एवं

सहानुभूति नहीं मिली। कुल मिलाकर वे एक संघर्ष और तनाव में पैदा हुए, उसी में आज रह रहे हैं और शायद जन्म भर अपने लिये तथा दूसरों के लिये संघर्ष और तनाव ही रहेंगे। यह हालत कितनी दयनीय है, कितनी चिन्तनीय है? तुम इसके जनक, बच्चे इसके शिकार और मैं तुम्हारा मित्र इसका दर्शक। कितना बड़ा दुर्भाग्य है हम सबका। यह हमारा दुर्भाग्य देश का दुर्भाग्य बन रहा है। सारी मानव जाति का भी। यह संकट तभी टलेगा, जब तुम हम सारे लोग व्यक्तिगत तौर पर इस दिशा में कार्य करें।

बहुत लम्बा पत्र लिख गया हूं और बधाई की एक बात नहीं, खुशी का जरा भी इजहार नहीं, पर शायद जो कुछ मैंने लिखा है, उसको समझने और मान लेने में ही खुशी का सागर भरा है, खुशी का खजाना छिपा हुआ है। यदि यह पत्र पाकर तुम्हारा विवेक जाग्रत हो सका और तुम अपने कर्तव्य एवं दायित्व के प्रति सचेष्ट हो सके, तो मैं तुम्हें सौ-सौ बधाइयां दूंगा, न सही दसवें बच्चे के जन्म के लिये, पर दस के भविष्य के लिये। यह पत्र रोष भरा है, पर रोष के पीछे प्यार है क्योंकि जहां प्यार नहीं है, वहां रोष करने कराने का सवाल ही कहां आता है। तुम यह पत्र खुद तो पढ़ोगे ही, पर एक दफा सबको साथ लेकर भी बैठना और इसको पढ़ना।

हां, व्यक्तिगत होते हुए भी यह पत्र एक सामाजिक-सार्वजनिक समस्या के विश्लेषण का पत्र हो गया है। इसलिये यदि मैं इसे पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवा दूं तो भी मेरा विश्वास है, तुमको आपत्ति नहीं होगी।

तो, बस मेरा यही पत्र तुम्हारे दसवें बालक के जन्म पर मेरी ओर से तोहफा है, बधाई है, अभिनन्दन है, संदेश है जो तुम्हारे लिए होकर सबके लिये भी है। पूर्ण विराम। हां, पूर्णविराम की मनोकामना के साथ।

तुम्हारा अभिन्न

भँवरमल सिंघी

('ज्ञानोदय' नवम्बर १९६३)

परिवार नियोजन : एक परिचर्चा

परलोक में आयोजित परिसंवाद का विवरण जो हाल ही में एक अन्तरिक्ष यात्री द्वारा प्राप्त हुआ है।

ज्ञानचन्द्र घोष : (संयोजकीय वक्तव्य) : इस अन्तरिक्ष-भेदन के युग में इहलोक और परलोक का भेद बहुत नहीं रह गया है। कुछ दिनों से तो इन दोनों लोकों के बीच की दीवारें कभी-कभी यन्त्रों के स्वरों से ऐसी गूंज उठती हैं कि लगता है मानो विज्ञान दोनों लोकों के बीच बहुत शीघ्र ही प्रत्यक्ष सम्बन्ध-सूत्र जोड़ने जा रहा है। मालूम होता है, परलोक में भी शीघ्र ही क्रान्ति होने वाली है। मैं विज्ञान का विद्यार्थी और अध्यापक रहा हूं और मानता रहा हूं कि अनुसंधान की

यात्रा निस्सीम है । 'यह लोक-खण्ड उस यात्रा के ही खण्ड हैं। और, आज जब कि मानव-लोक खण्डातीत समष्टि की ओर विकास कर रहा है एवं विज्ञान की ये अन्तरिक्ष-यात्राएँ जीवन के नये क्षितिजों का उद्घाटन कर रही हैं, हमें हर समस्या पर लोकातीत चैतन्य के आधार पर सोचना चाहिये। यह अन्तरिक्ष-आन्दोलन, जिसकी गूँज आपने भी सुनी होगी, हमें उन समस्याओं के विषय में भी चिन्तन-मनन करने के लिए बाध्य कर रहा है जिनको साधारण तौर से हम आज तक मर्त्यलोक की समस्याएं कह कर छोड़े रहे हैं।

धृष्टता के लिए क्षमा करें तो मैं अपने बारे में दो शब्द कह दूं ताकि मेरी बात की पृष्ठभूमि आप समझ सकें। मैं भारत से आया हूं। आते दम तक वहाँ की नव-निर्माण की योजनाओं में मैं दत्तचित्त था। मुझे यह अनुभव होने लगा था कि हमारी सारी योजनायें सफल होकर भी हम असफल थे; क्योंकि हम निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के बावजूद औसत भारतवासी को सुखी नहीं बना सके। हमारी बढ़ती हुई जनसंख्या ने यह विषम स्थिति पैदा की। मैंने यह बात योजना-आयोग में अपने साथियों को जोर देकर समझायी और परिवार नियोजन की ओर संकेत किया तथा जिस विज्ञान ने मृत्यु पर विजय प्राप्त करने में सहायता की, उसी के द्वारा बनाये हुए उपाय-उपकरणों की मदद से जन्म पर नियन्त्रण करने के लिए बल पूर्वक कहा परन्तु हृदय में पीड़ा का पारावार लिये मैं यह देखते-देखते यहाँ चला आया कि भारत में परम्परा का दासत्व किसी भी नई बात पर खुले दिमाग से विचार करने में बाधा उत्पन्न करता है। बुद्धि से स्वीकार्य होने पर भी उस नई बात को व्यवहार में लाने में धर्म व नीति की समस्त रूढ़ मान्यतायें हमारे मार्ग को अवरुद्ध कर देती हैं। सबसे कठिन बात तो यह है कि हमारे हर एक नये विचार की प्रगति पर परलोक का ताला लगा लगा हुआ है। बहुत-सी आवश्यक और उपयुक्त बातें भी इस भय से नहीं की जातीं कि उनके कारण परलोक बिगड़ जायगा। अतएव मैं जब से परलोक में आया हूँ और यहाँ के ढंग-ढांचे को समझ रहा हूँ, यही सोच रहा हूँ कि हम परलोकी लोग ही क्यों न यह ताला खोलकर प्रगति के मार्ग को मुक्त कर दें। कई दिनों के बाद आज मैं समस्त लोक की इस विस्फोटक समस्या के बारे में परलोक की भूमि पर इस परिसम्वाद की आयोजना में सफल हुआ हूँ। इसका मुझे अतीव आनन्द है। जिस समस्या को मैं देख-समझ कर आया हूँ, उसका विश्लेषण करने में यदि यहाँ से कोई मदद हो सके तो हमारे दोनों लोकों के बीच मैत्री का एक नया अध्याय जुड़ेगा। आज विश्व-शान्ति के लिए जिस प्रकार यह आवश्यक है कि विभिन्न देशों के बीच एक दूसरे के प्रति समझ और सहिष्णुता एवं सहायता का वातावरण बढ़े, उसी प्रकार यह भी परम आवश्यक है कि समस्त ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोक-खण्डों के बीच सहानुभूति और समझदारी का वातावरण बढ़े। आप सब लोगों ने आकर इस परिचर्चा में भाग लेने का जो कष्ट किया है, उससे मेरी आशा और भी बढ़ गई है, और मुझे विश्वास है कि हमारे विचार-विनिमय से जो सार तत्व निकलेगा, वह परलोक को इस कलंक से मुक्त करेगा कि हम पृथ्वी-खण्ड के प्रगति-पथिकों के सहयात्री नहीं, बल्कि परलोक के प्रभुत्व की शृंखलाओं से उन्हें बांधनेवाले हैं।

हमारे लिये सबसे बड़ी खुशी और आशा की बात तो यह है कि पादरी माल-थ्यूज, जो सवा सौ वर्षों से यहां निवास कर रहे हैं, ने इस परिसंवाद का उद्घाटन करना स्वीकार किया है। किसको मालूम नहीं कि उन्होंने इहलोक में सन् १७९८ में जनसंख्या के बारे में जो निबन्ध प्रकाशित किया था, उसने विगत १६२ वर्षों के सामाजिक आर्थिक समस्याओं सम्बन्धी चिन्तन और अध्ययन पर गहरा असर डाला है। उस दिन इहलोक में बर्ट्रेण्ड रसेल ने मालथ्यूज के प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा था कि यदि किसी आदमी की महत्ता इस बात से नापी-तोली जाय कि उसने मानव जीवन पर कितना असर डाला है, तो बहुत थोड़े लोग ही निकलेंगे जो मालथ्यूज से बड़े हों। मैं समझता हूँ, उनसे आज हमें इस समस्या पर सैकड़ों वर्षों के विचार और अनुभव के निष्कर्ष के रूप में उपयोगी मार्ग-दर्शन मिलेगा।

रॉबर्ट मालथ्यूज (उद्घाटन भाषण) : दोस्तों, मैंने सैकड़ों वर्षो पहले जिस समस्या की ओर इंगित किया था, वह आज विश्व के सामने अत्यन्त विस्फोटक रूप में खड़ी है और हर जगह उसकी चर्चा सुनायी पड़ती है। मुझे इससे बड़ी खुशी है। यदि लोगों ने मेरी चेतावनी पर पहले ही ध्यान दिया होता तो संभव है यह संकट इतने भयावह रूप में न प्रकट हुआ होता। जब मैंने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि जनसंख्या की वृद्धि अंकगणितीय गुणन से ही बढ़ती है और कि इस हिसाब से यदि जनसंख्या की वृद्धि को रोकने की कोशिश नहीं की गई तो संसार के सामने बहुत भयानक संकट पैदा होगा, तो लोगों ने मेरे सिद्धान्त का मजाक उड़ाया था। जब कार्लाइल ने मुझे 'निराशा-पूर्ण विज्ञान का सम्मानित प्राध्यापक' बताया था तो मुझे कितना दुःख हुआ था पर आज कार्लाईल मुझ से बात करें? यह सही बात है कि जिस समय मैंने अपना निबन्ध प्रका-शित किया था; उसके बाद ही औद्योगिक क्रांति ने ऐसी परिस्थितियां पैदा की कि मेरे सिद्धांत की प्रक्रिया प्रकट होती नहीं दिखाई दी और मैं स्वयं सोच में पड़ गया था कि क्या सचमुच मेरा अध्ययन गलत था और जिन स्थितियों के अध्ययन पर मैंने यह सिद्धांत स्थिर किया था, वह गलत थीं। परिस्थितियों ने सचमुच ऐसा रुख लिया कि बुनियादी सत्य, जो उस समय भी उतना ही महत्वपूर्ण था, जितना आज है, छिप-सा गया परन्तु आज यहां बैठा हुआ भी मैं अपने को इहलोक में देख रहा हूँ। मैं आज एक जीवित सिद्धांत, एक प्रकट सत्य हूँ। जो मैंने कहा था वह आज सौ-सौ रूपों में सत्य है कि खाद्यान्न की वृद्धि की गति जनसंख्या की गति के मुकाबले बहुत धीमी है। जितनी जमीन और दूसरे साधन हैं, उन सबका पूरा-पूरा उपयोग होने पर भी उत्पादन कभी भी उतना नहीं हो सकेगा जितना जनसंख्या में बढ़ावा होगा। डा० एक्रायड आँखें खोल कर देखें कि मेरा सिद्धांत (जिसको उन्होंने 'भूत' कहा था) खत्म नहीं हुआ है, बल्कि अधिक सच साबित हुआ है। यहां आने के बाद मुझे पृथ्वी की पैदावार और जनसंख्या के सम्बन्ध में जो समाचार मिलते रहे हैं उनसे यह और मालूम हुआ है कि विज्ञान के जो नये साधन उपलब्ध हुए और हो रहे हैं, उनसे प्रकृति के लिये मृत्यु का अभियान चलाना भी कठिन हो उठा है। प्रकृति की मनुष्य को मारने की शक्तियां भी सीमित हो रही हैं। ऐसी हालत में यदि मनुष्य अपनी संख्या अपनी सीमा से अधिक बढ़ा लेगा तो युद्धों के रूप में सामूहिक मृत्यु की स्थितियां पैदा हुए बिना न रहेंगी। स्थिति जो मैंने

पृथ्वी पर देखी थी, समझी थी उससे भी आज कहीं अधिक सांघातिक है। मृत्यु पर विजय के साधनों की यह कहानी उस समय मेरे चिन्तन में इतनी स्पष्ट नहीं थी। इसी कारण से इस समस्या पर आज के अर्थशास्त्री; इतिहासज्ञ और विज्ञानवेत्ता कहीं अधिक जोर के साथ बोल रहे हैं। आज संभावित अधिकतम खाद्योत्पादन और खानेवालों के परिमाण में संतुलन होना चाहिये और इसका एक ही उपाय है कि हम प्रजनन पर नियन्त्रण करें। मुझे मालूम है कि धर्म ने परलोक के नाम पर इस कार्यक्रम में पाप और अनैतिकता का भूत खड़ा कर बहुत बड़ी समस्या पैदा की है। ऐसे लोग आज भी मिल जायेंगे और मैं डा० घोष की बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि यदि यह परिसंवाद परलोक के ताले को खोलकर इहलोक के सामाजिक जीवन को शृंखलाओं से मुक्त करे तो बहुत बड़ा काम हो सकता है। जो लोग परिवार नियोजन के साधनों के प्रयोग में पाप और नैतिकता देख कर या मान कर उनका विरोध करते हैं, वे यह क्यों नहीं देखते कि विश्व में फैला यह तनाव, यह युद्ध की विभीषिका ही क्या वास्तव में अनैतिकता नहीं है?

मोहनदास कर्मचन्द गांधी : माल्थ्यूज भाई ने अपने भाषण के अन्तिम अंश में जनसंख्या के नियन्त्रण के साधनों को लेकर पाप और अनीति के बारे में जो चर्चा की है, उसकी ही बात मैं सबसे पहले करना चाहूँगा, क्योंकि यह तो मैं भी वर्षों पहले कह चुका हूँ कि जनसंख्या की अनियन्त्रित वृद्धि हमारी अनेक समस्याओं का कारण है और उसकी रोक-थाम होनी ही चाहिये। जब मार्गरेट सेंगर मुझसे मिली थीं, तब उनको भी मैंने अपना यह दृष्टिकोण समझाया था। जहाँ तक साधनों का सवाल हैं, अप्राकृतिक (आप जिनको वैज्ञानिक कहते हैं) उपायों द्वारा भोग और असंयम को खुली छूट दिये रखकर क्या मानव-जाति पतन की ओर नहीं जा रही है? इससे बचने के लिए हम संयम की परम्परा पर क्यों नहीं जोर दें? इसमें बुरा भी क्या है? हिन्दुस्तान को मैंने वर्षों तक सेवा की और वह आज भी मुझे राष्ट्रपिता मानता है, पर आज उसे मति-भ्रम हो रहा है। कौन उसे समझाये? जवाहरलाल के गले मैं अपनी सामाजिक-आर्थिक विचार-धारा उतार ही नहीं सका। उसकी विचारधारा विदेशी है। मैं तो यह भी मानता हूँ कि जनसंख्या की समस्या इसलिये और ज्यादा भयंकर हुई लगती है कि हमारे सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में केन्द्रीकरण बढ़ रहा है और दिन प्रतिदित उत्पादन के ऐसे साधनों की अभिवृद्धि हो रही है जिनसे काम करने वालों की आवश्यकता घटती जा रही है। यह आर्थिक ढांचे का ही दोष है; नहीं तो हर एक जन्म के साथ जहाँ एक नया मुँह खाना माँगने लगता है, वहां उसके साथ दो हाथ काम करने के लिए भी तो आते हैं। पर, उत्पादन का ढाँचा इस प्रकार का बना दिया गया है कि उसमें इतने हाथों की आवश्यकता नहीं इसलिये मैंने बराबर कहा है कि हिन्दुस्तान को विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता की चीजें पैदा करेगा, पर मैं कहता-कहता हार गया। हुआ और हो रहा है, ठीक उसका उल्टा।

आज हिन्दुस्तान में चारों तरफ परिवार नियोजन की ही चर्चा हर आदमी की जबान पर है। किसी ने कोई समस्या उठाई और कह दिया जाता है कि जनसंख्या की

वृद्धि के कारण हम कुछ भी नहीं कर पाते। यह स्थिति और भी विकराल होने वाली है यदि आर्थिक तन्त्र और औद्योगिक उत्पादन प्रणाली के सम्बन्ध में हमारी विचारधारा में परिवर्तन न हुआ। इसलिये मुझे लगता है कि जिस असंतुलन की आप इतनी बात कर रहे हैं; वह असंतुलन प्रजनन सम्बन्धी मूर्खता से नहीं, बल्कि अर्थतन्त्र की गलत विचारधारा को ग्रहण करने के कारण है। मैं इस बात को कहने में परलोक की प्रभुता का सहारा नहीं ले रहा हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि परलोक की जड़ें अब स्वयं हिल रही हैं पर मैं ब्रह्मचर्य और संयम पर जोर देना चाहता हूँ जिससे जनसंख्या वृद्धि की समस्या भी मिटेगी और असंयमजनित हानि से भी हम बच जायेंगे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर : मैं तो कवि हूँ। इसलिये मेरा इस समस्या से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है पर कवि मानव-मन की गहराइयों को छूने और समझने में बहुत कुशल होता है। मैं आज मानव हृदय की वेदना को जिस रूप में देख रहा हूं उससे स्पष्ट लगता है कि अभाव की परिस्थितियां उसके जीवन में कुंठा और घुटन पैदा कर रही हैं और यह कुंठा का स्वर काव्य में निराशा और हीन वृत्ति की भावना ला रहा है। और, अभाव के कारणों को समझने की जब मैं कोशिश करता हूं तो अधिक सन्तान की समस्या स्पष्ट दीखती है। इस दृष्टि से मैं गांधीजी की बात से बिल्कुल सहमत नहीं हूं। मेरी राय में जन्म-नियन्त्रण का आंदोलन एक महान् आंदोलन है सिर्फ इसलिये नहीं कि उसके द्वारा स्त्रियां बाधित और अवांछित मातृत्व से मुक्ति पायेंगी बल्कि इसलिये भी कि यह किसी भी देश की अधिक जनसंख्या—जो अपनी अधिकार-सम्मत सीमाओं से बाहर भी भोजन और भूमि के लिए हाथ फैलाने को बाध्य होती है—को घटा कर शान्ति के कार्य में मदद पहुंचायेगा। मानव जाति को अनियन्त्रित सन्तानोत्पादन के निर्दयतापूर्ण अपराध से बचना चाहिये। यह वृद्धि यदि केवल संयम के उपदेशों से रुक सकती तो शायद आज हमारे सामने यह समस्या आई ही न होती क्योंकि यह साधन पहले थे ही कहाँ? संयम का मार्ग तो मनुष्य के लिए खुला हुआ था ही। मेरा ख़याल है कि हमें इस परिचर्चा में यह निश्चित करना चाहिये कि ब्रह्माण्ड को अशान्ति और युद्ध के वातावरण से बचाने के लिए परिवार-नियोजन के कार्यक्रम को बिना किसी शंका और सन्देह के अपनाया जाय।

निकोलाई लेनिन : इस परिसंवाद में भाग लेने के लिए आपने मुझे निमन्त्रित किया, इसके लिए मैं आभारी हूं। संयोजक ने जो वक्तव्य दिया, उसमें जनसंख्या वृद्धि की समस्या के बारे में जिस रूप में विश्लेषण किया गया है, उसको मैं ठीक उसी रूप में नहीं देखता। किन्तु गांधी जी ने संयम-असंयम के प्रश्न को उठा कर पाप और अनीति का जो भूत खड़ा किया है, उससे भी मैं सहमत नहीं हूं। क्रान्ति के बाद मैंने रूस में सामाजिक-आर्थिक नवनिर्माण की जो नीति अपनायी और जिन कार्यक्रमों का मैंने सूत्रपात किया उनमें परिवार-नियोजन का उल्लेख नहीं था। वास्तव में, उस समय यह समस्या भी हमारे सामने नहीं थी। रूस के सामने उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के उन दोषों को दूर करने का प्रश्न था, जिनके कारण उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रम रुके हुए थे। हां, आज तो रोज ही सुनायी पड़ रहा है कि संसार में जनसंख्या वृद्धि का संकट बढ़ रहा है और उसके लिए विश्व के विभिन्न देशों

में परिवार-नियोजन आंदोलन संगठित रूप से बढ़ रहा है। भारतवर्ष में तो सरकारी नीति के हिसाब से भी इस इस पर बहुत बल दिया जा रहा है। आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि रूस और चीन में, जहां हमारी साम्यवादी विचारधारा के अनुसार राज्य और समाज की व्यवस्था की जाती है, इस विषय में क्यों कुछ भी नहीं किया जाता। रूस की बात कोई न भी करे पर चीन की जनसंख्या तो आज संसार में सबसे अधिक है। वहां यह प्रश्न फिर भी क्यों नहीं उठाया जाता? थोड़े दिनों पहले चीन में भी भारतवर्ष की तरह ही परिवार-नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रम लिया गया था बल्कि वहां से कुछ लोग भारत में इस आंदोलन के सम्बन्ध में हो रही योजनाओं को समझने के लिए आये थे। बाद में यह आंदोलन वहां एक प्रकार से बन्द ही कर दिया गया। मेरे निकट यह प्रश्न किसी राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्त का उतना नहीं है जितना परिस्थिति-जनित आवश्यकता का। हम समाज के विकास में सबसे बड़ी बाधा आर्थिक विषमता को मानते हैं और उस विषमता को दूर करने की ओर हमारा ध्यान सबसे अधिक जाता है। जब तक हमें यह विश्वास न हो जाय कि जमीन की उपज और कारखानों का उत्पादन बढ़ाने के लिए जितना प्रयत्न संभव है, वह पूरा कर लिया गया है और यह भी कि उपलब्ध उत्पादन का वितरण ठीक-ठीक हो गया है, तब तक हम परिवार-नियोजन को समस्या के समाधान के रूप में नहीं मानते। आज की रूस और चीन की नीति के संचालन में मेरा कोई बहुत हस्तक्षेप नहीं है। और, मैं यह भी मानता हूं कि एक ही सिद्धांत हमेशा के लिए लागू नहीं होता। ऐसा करना जड़ता का पोषण करना होगा। परन्तु यह सम्भावना तो है ही कि जो देश सामाजिक आर्थिक ढांचे में और खास तौर से वितरण की व्यवस्था में परिवर्तन नहीं कर रहे हैं, वे परिवार-नियोजन की बात करके जनसंख्या की स्वाभाविक वृद्धि को रोक कर जो व्यवस्था कायम है और चली आ रही है, उसको ही सुरक्षित बनाये रखना चाहते हैं। इस अर्थ में हम परिवार नियोजन को क्रान्ति-विरोधी आंदोलन कहेंगे। मैं चाहूंगा कि आप इस दृष्टिकोण को भी समझें और उस पर विचार करें।

अब्राहम स्टोन : मुझे जब इस परिसंवाद की सूचना मिली तब सचमुच बड़ी खुशी हुई। मैं अनेक परिसंवादों में सम्मिलित हो चुका हूं किन्तु जिस परलोक के नाम पर परिवार-नियोजन का विरोध अक्सर मैं सुनता आया हूं, वही इस परिसंवाद का होना एक बहुत बड़ी बात है। आप लोगों ने अभी जो चर्चा यहां की, वह काफी दिलचस्प थी। जिन लोगों ने अपने विचार रखे हैं, वे सभी मानव-कल्याण के पोषक रहे हैं और उनमें से हरेक के साथ जनसेवा का लम्बा इतिहास है। अतएव आपके द्वारा किये गये समर्थन या विरोध में कोई निहित स्वार्थ की ग्रन्थि नहीं बतायी जा सकती। मैं भी परिवार-नियोजन के कार्य में काफी दिलचस्पी लेता रहा हूं। मैं हूं तो अमेरिका का पर परिवार-नियोजन के कार्यक्रम की दृष्टि से सारा विश्व मेरा क्षेत्र रहा है। डॉ० घोष ने भारत की बात से चर्चा का आरम्भ किया है। वास्तव में, भारत इस विषय में भी आज काफी आगे बढ़ रहा है। गांधी जी के विचार मैंने अभी सुने। वे भारत के राष्ट्रपिता आज भी कहलाते हैं, पर वे मुझे माफ करें, सामाजिक-आर्थिक जीवन सम्बन्धी विचार उनके बहुत पुराने हैं। भारतवासी भी आज उन विचारों को नहीं

मानते । परिवार-नियोजन के विषय में भी उनकी विचार-धारा मुझे तो शायद ही किसी के गले उतरती दिखाई दी ।

संभवत: आपलोग जानते ही होंगे कि मैं स्वयं भारत में सुरक्षा-विधि (लगभग ब्रह्मचर्य) के द्वारा परिवार-नियोजन की योजना प्रसारित करने के लिए गया था। मैंने पूरी मेहनत से वहाँ तीन प्रयोग शुरू कराये पर उनमें कोई सफलता नहीं मिली। वास्तव में यौन-जीवन को अप्राकृतिक रूप से नियन्त्रित करने से काम नहीं चल सकता। फिर परिवार-नियोजन के विचार का आधार केवल जनसंख्या को घटाना-बढ़ाना ही तो नहीं है, व्यक्तिगत और कौटुम्बिक स्तर पर दम्पति और सन्तान के विकास का भी तो मुख्य प्रश्न है। स्त्री को गर्भाधान के विषय में स्वतन्त्रता क्यों न हो और गर्भाधान का प्रश्न यौन समागम के साथ अविच्छिन्न रूप से क्यों बँधा रहे ? जनतन्त्र या समाजवाद या साम्यवाद सब फिजूल की बातें हैं, जब तक यह अधिकार स्वीकार नहीं किया जाता कि स्त्री जब चाहे गर्भ धारण करे। परिवार-नियोजन इस अधिकार का ही नाम है। रही पाप और अनीति की बात सो मैं विनम्रता से कहना चाहता हूँ, खास तौर से गांधी जी को, कि प्रकृति जैसी है, उसके सारे कार्य व्यापार को वैसे ही रहने दिया जाय तो मानव जीवन का जो विकास हुआ है, वह नहीं हुआ होता। यदि भाँति-भाँति के असंख्य कीटाणुओं को नष्ट कर रोगों का नाश करने में पाप नहीं है, तो विज्ञान के साधनों से रज और डिम्ब के समागम को रोक कर या प्रजनन क्षमता को असंभव बना कर जन्म-निरोध करने में पाप कैसे हुआ ? वास्तव में पाप और धर्म की वे परिभाषायें उस अवस्था की हैं जिसको मनुष्य हजारों वर्षों पहले पार कर चुका है। मैं डाक्टर हूं। मुझे लगता है कि अनैतिकता या जीव-हत्या आदि के जो तर्क दिये जाते हैं उनको स्वीकार करके चला गया होता तो आज का-सा स्वस्थ और मृत्युंजय-सा जीवन हमें न मिला होता।

मेरी स्टोप्स : मैं तो इसी बात का प्रचार करते-करते आयी हूँ कि जन्म-नियंत्रण की योजनाओं की सफलता के बिना मानव-जाति का कल्याण हो ही नहीं सकता। जब विज्ञान ने ऐसे साधन उपलब्ध कर दिये हैं, जिनसे हम सन्तानोत्पादन के विषय में किसी प्रकार की असमर्थता या विवशता के अधीन नहीं हैं तब क्यों न उसका उपयोग करें। जिस विस्फोटक स्थिति में संसार की जनसंख्या आज पहुंच गयी है उसको देखते हुए यदि हम फौरन परिवार-नियोजन के पथ को ग्रहण कर सफलता नहीं हासिल करेंगे, तो सारा संसार संख्या के समुद्र में डूब जायगा। आपलोगों को मालूम है कि मैंने गर्भ-निरोध की विधियाँ बताने के आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर काफी लांछना और तिरस्कार झेला है परन्तु मुझे आज आंदोलन की सफलता पर इतनी खुशी है कि मैं उन सब चीजों को भूल गयी हूँ। मुझे जब डाक्टर पिंकस की गोलियों के निर्माण का सम्वाद मिला तो कितनी खुशी हुई, यह मैं आपको बता नहीं सकती।

आज दुनिया के अविकसित और अर्द्ध-विकसित देशों के जो लोग अशिक्षित हैं, उनको परिवार-नियोजन की खाने की दवा मिल जाने से इस आन्दोलन की गति और बढ़ेगी तथा हम विस्फोट की समस्या को सुलझाने के अधिक नजदीक पहुंचेगें। तीव्र

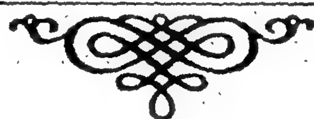
गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में से ऐसा तर्क स्वयं फलित हो गया है जिसकी टक्कर में सारा विरोध टूट कर उड़ता जा रहा है। अब तो पोप और पादरी लोग भी इस समस्या की ओर से आँखें बन्द नहीं कर पाते और प्रकारान्तर से परिवार-नियोजन का समर्थन करते हैं। साम्यवादी देश, खास तौर से चीन को भी इस विचार को अपनाना ही पड़ेगा। मैं आशा करती हूँ कि हम इस परिसंवाद में जो चर्चा कर रहे हैं, उससे हमारे उन साथियों को बल मिलेगा जो इस आन्दोलन को अग्रसर करने में पृथ्वी के विभिन्न खण्डों में कार्य कर रहे हैं।

ज्ञानचन्द्र घोष : (उपसंहार) मैं आप सब का आभार मानता हूँ कि आपने यहाँ उपस्थित होकर तथा अपने-अपने विचार प्रकट कर के परिसंवाद को सफल बनाया। मैं तो कहूँगा कि मृत्यलोक को आज की सबसे बड़ी समस्या के समाधान में यह विश्लेषण अमरलोक का बहुत बड़ा वरदान होगा। जिस समस्या के विस्फोट की आशंका से सारा ब्रह्माण्ड संत्रस्त है, उस पर परलोक भी उपेक्षाशील नहीं हैं बल्कि विचार कर रहा है, यह बात समस्या के विश्लेषण में बहुत मददगार सिद्ध होगी। मैं पुनः आप सब को धन्यवाद देता हूँ।

('ज्ञानोदय 'नवम्बर, १९६१)



कुछ और संस्मरण



विलम्ब से आये कुछ और संस्मरण प्रस्तुत खंड में दिये जा रहे हैं। संस्मरण लेखक हैं :—

प्रफुल्लचन्द्र सेन · कमलादेवी चट्टोपाध्याय · आवाबाई बी० वाडिया

दादा धर्माधिकारी · सिद्धराज ढड्ढा · लक्ष्मीचन्द्र जैन

जवाहिरलाल जैन · प्रतिमा अग्रवाल

A True Gandhian

PRAFULLA CHANDRA SEN
Veteran leader, Ex Chief-Minister of West Bengal

I am happy to learn that friends of Shri B. M. Singhi will celebrate his seventy first birthday on the 9th of August 1984 and on this auspicious occasion his admirers will bring out a brochure. Nineth of August is a memorable day in the history of our freedom movement. During the Quit India movement, Shri B. M. Singhi was incarcerated under the defence of India act and he was with me confined in the Presidency Jail, where I came in close contact with him. He was then a youngman of thirty and I found him full of vitality. Intellectually and ideologically he believed in the philosophy of Mahatma Gandhi and his mode of work through satyagraha for the creation of a new society based on non-violence and truth. In jail I found Singhi an ardent student and he passed most of his time studying. He learnt Bengali thoroughly. It was in jail again that he passed M. A. in Hindi. Outside jail I have found him engaged in various activities - educational, social, cultural and political also but in politics he has never sought any power, position or favour being a faithful Gandhian. His social activities have been far reaching, He has married a widow and his wife Sushila is not only a devoted comparion but his associate in his multifarious welfare activities. B. M. Singhi does not believe in caste and he has been working for the upliftment and dignity of the harijans-untouchability being a slum of our Hindu sooiety. Bhanwarmal is very much against regionalism. Many do not know that he has married his daughter and son to Bengalis. The curse of secessionism is a present trend and it has to be fought. Believing in the Sarvoday Society of Gandhiji he believes on the one hand in the theory of trusteeship and on the other in decentralised economy which alone can solve our multifarious problems. He and his wife have been active and serious workers in the field of family planning to check the population explosion in our country. They have also worked for the abolition of the pernicious dowry system in our society.

Shri B. M. Singhi lives a simple life - he is amiable and a good friend. Along with his innumerable admirers I wish him a long and healthy life and many many returns for the 9th August. My a Ashirbad to Bhanwarmalji who is just like my young brother.

Singhi : A Brilliant Thinker and Superb Writer

KAMLA DEVI CHATTOPADHYAYA
Great Art Connoisseur, Ex-President Sangeet Natak Akademi

I first came to know Singhi and his wife, who is to me an integral part of his life, when the Theatre Centre Organisation was set up in Calcutta. The Singhis were ardent theatre artists and actively participated in the drama. Though theatre and theatre artists were valued and honoured in Bengal, for a socially conservative community, the Singhis hailed from, it was a courageous break and I realised the man of action and in the idealist in Singhi.

As I came to know the Singhis as people and our association grew into a warm friendship, I began to perceive many other unusual qualities in Singhi. But the core, the generating dynamism in him was the desire to serve. He kept plunging into multifaceted activities. He is no palse social worker. There is a strong dynamic generator in him that spurts forth powerful currents in many sections and directions.

As a youth, through the Tarun Sangh, he launched various reformist thrusts to radicalise the prevailing deadening style of life, end evil customs. The youth campaigned throughout the country, rousing the social conscience of the community. Later direct action followed through demonstrations, processions, picketing with placards and slogan shouting was done in houses where little girls were being married, sometimes to elderly men, as also satyagraha against purdah. In this melee, the veiled women finally pulled off the chaddars from their faces to boldly collaborate with the crusaders. One of the highlights of this reformist onslaught was an anti-purdah demonstration of 5000 women when the women were physically attacked. Singhi was behind such demonstrations.

The movement took a permanent shape in the All India Marwari Federation for working on a national scale in an all embracing dimension. Directly flowing from this was the regeneration of the community with widening interest in various cultural forms and wider cosmopolitan programmes, and commitments to new socio moral codes. He was equally mindful of education as the source of social motivation and equilibrium. So simultaneously he promoted educational, institutions especially higher studies for women.

The strong creative element in Singhi was found two vehicles of expression, dramatics and literature. His powerful imagination and formal expression served to form a happy confluence of two

divergent streams : Bengali and Hindi. The Theatre Centre, primarily a Bengali expression was enriched by Singhi's active participation. It shows Singhi's broad vision and sense of synthesis of the varied creative trends and streams, a most commendable trait in a world torn by devisive forces. As a brilliant thinker and superb writer in Hindi, his dramatic talent found expression in the important role he played in creating and building up Anamika, now a splendid landmark in the Hindi theatre in Calcutta.

Singhi's literary creativity has given form to many books and journalism of fine distinction. Above all his fine sensitivity has inevitably flowered in poetry. His verses are deeply moving and truly give shape to the many agonies that lacerate his compassionate heart. The collection is logically called 'Vedana'. The agony symbolises the main spring of his being, colours his emotions, his intellect, becomes the spring of all his motivation. To me this book of verse became a symbol of his entire inner personality. He revealed the working of every faculty of his through those verses. Every little detail of his life fell into place, the saga became complete.

Many are endowed with the same vital inner springs, energy, subtleties, but it needs a coordinated personality to give cohesion to fragments and an integrated structure to give form and stability. This is where the full personality comes out.

It was his constant care, sensitivity to malfunctioning of the intimate social factors in marriage, in family, in the larger society and the nation, that made him literally throw himself into Family Planning, so crucial to individual and collective happiness. His compassion and concern took him captive. This work could no more be a leisure hour activity, it demanded his full, his total time, absorb his entire being.

Life has not always been kind to Singhi. The body, the vehicle of all activity, fails us, tries to mar our best efforts. Singhi's is no exception. He has had his own share of physical martyrdom, constraints on his fine faculties. But his indomitable will has fought and won, all the heroic now for his critical struggle. Singhi would probably not have been the same without these lightening shafts that tried to strike him down. He seems all the stronger and greater for it. Those who set a high goal and keep steadily marching towards it, must also savour the adverse winds.

When one tries to pay a tribute with a full heart one stumbles for adequate words. For above all Singhi has been a devoted friend, one could look to, lean on. What words can express what I feel except a pregnant silence.

A Pioneer in Family Planning

AVABAI B. WADIA
President, Family Planning Association of India

Every individual reaches and passes certain landmarks or milestones in his life. They may be related to different stages in family life, in age, in work and play, or in special achievements. Mr. B. M. Singhi is now 70 years young, and I deem it a privilege as well as a pleasure to be able to pay a tribute to one who has been a friend for the last 30 years, (although we live in cities separated by 1000 miles) and has also passed several milestones in achievement. Mr. Singhi is primarily a person who is deeply concerned with the welfare and well-being of his fellow beings, and one to whom the word "service" opens up great vistas of work and activity based on an inherent idealism, irrespective of age.

Mr. Singhi's achievements and service-oriented endeavours can fill several pages and provide good material for a biography. But in this brief tribute, what I would like to emphasise is that as part of his basic attitude of service, he has been a pioneer in the field of family planning from as far back as 1950, when it was a hardly known cause, and even where known, was more often than not looked upon with deep misgiving by most people. By founding the Family Planning Society with the Service Centre in Calcutta in 1950, and by writing and publishing booklets in English and Hindi on the subject of family planning as well as sex education, he pioneered this work in Calcutta and indeed, in West Bengal.

When the Family Planning Association of India was established in 1949, he became one of the earliest members and was able to pursue his activities in this field with greater effectiveness. He held the office of Vice-President of the FPAI for many years, and amongst other things, organised a Branch in Calcutta which did extensive work during the years of its existence. When the Branch was closed for various extraneous reasons, and later a Family Planning Project started in Calcutta by the FPAI, Mr. Singhi was the Chairman of its volunteer Liaison Committee, and during the last 10 years since the Project started, has, in this capacity, helped to make the Project successful. It is fulfilling a great need for education and services in family planning in the slum areas and is the main voluntary organisation in the city in this field.

In his travels to Europe, America and S. E. Asia, Mr. Singhi has spoken everywhere about the work for family planning being

carried on by the Indian Government as well as FPAI, and in turn, has imbibed new ideas and perspectives to further promote this work, to which he has been dedicated. His considerable abilities in writing and speaking in at least three languages has made him one of Calcutta's well known personalities.

As a businessman, Mr. Singhi was instrumental in inducing the Indian Chamber of Commerce in Calcutta to take up family planning work and he has also been a member of the family planning sub-committee of the Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry (FICCI). This extension of family planning work into the organised sector is most important, especially in a highly industrialised centre like Calcutta city.

People are moulded by their upbringing and environment especially in their early years and, similarly, in the case of Mr. Singhi, he imbibed the ideals and aspirations which permeated a very exciting and vital period of Indian history when the freedom movement was at its height under Gandhiji's leadership. He took an active part in the Independencc movement and suffered jail for three years as a result. As a social reformer, too, he faced opposition in promoting ideas for freedom and equality, (although gathering support as well) in a steadfast manner which ultimately brought success.

In his married life, Mr. Singhi gained the double benefit not only of a happy marriage but also a continuing expression of the high status that women must enjoy. At this point, one must refer to the many-sided activities of this remarkable couple where Sushila Singhi has marched side by side with her husband and also launched out on her own on particular projects and interests, which have primarily involved the welfare of women and children. Each has supported the other in a many-faceted life of activity, undefeated by illnesses or any other hindrances. It is, of course natural and in the fitness of things that a regard for women's rights and the care of the children go hand in hand with the promotion of family planning. But the fact that these aims involve a very wide range of allied activities has been so well realised by this couple that their work has covered an enormous field of endeavours.

Therefore, even though we happily celebrate Mr. Singhi's 70th birthday and wish him very many happy returns, it would be quite appropriate to say of him and his wife that their ages are not to be judged chronologically, but in terms of their enthusiasm and devotion to lifelong ideals, which keeps them young.

इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व

दादा धर्माधिकारी

वयोवृद्ध सर्वोदयी नेता

अभ्यर्थना शब्द का संस्कृत में अर्थ कुछ मांगना होता है, बंगला में कुछ दूसरा अर्थ होता होगा। या आजकल की हिन्दी में भी शायद होता हो। मैं इतना अर्थ समझा हूँ कि आपलोग मित्रवर भँवरमल जी का गौरव करने जा रहे हैं। मैं भी आपलोगों में शामिल हूं। भँवरमल जी और मेरा परिचय लगभग ४३ वर्षों का है। तब से उनकी और मेरी मित्रता अक्षुण्ण रही है, अतः उनके इस सम्मान में मैं भी हिस्सा लेता हूं। लेकिन अब मैं ८५ वर्ष का हो गया हूं। ७० वर्ष की उम्र के किसी व्यक्ति को कैसे गौरवान्वित करूँ। कम से कम ७५ वर्षों तक बाट जोहते! फिर भी ठीक है, आप लोगों ने जो तय किया उसे स्वीकार लेता हूं।

भंवरमल जी से मैं पहले पहल १९४१ में मिला। उस वक्त सिद्धराज भाई की और भँवरमल जी की अनूठी जुगल जोड़ी था। दोनों उस वर्ष के पर्युषण पर्व समारोह के संयोजक थे। मुझे उन्होंने पर्युषण पर्व में भाषण करने के लिए निमंत्रित किया। उस यात्रा से मुझे एक स्थायी लाभ हुआ। खान मजदूरों के संघ के मंत्री श्री कांतिभाई मेहता, जो कलकत्ते की लाजपतराय सरणी में रहते हैं, और उनके परिवार से परिचय हुआ, जो सौहार्द के रूप में परिणत हुआ। वह सौहार्द आज तक बना रहा है।

जैन सम्प्रदाय से प्रारम्भ करके निरीश्वरवाद और नास्तिकवाद तक भँवरमल जी की जो सांस्कृतिक जीवन-तीर्थ यात्रा हुई, उसकी कहानी एक रम्य कथा हो सकती है। परीकथाओं का लेखक एंडरसन अपनी परीकथाओं की भूमिका में कहता है कि हर मनुष्य की कहानी अपने में एक परीकथा (फेयरी टेल) है। यह सच भी है, क्योंकि हमारा व्यक्तित्व द्विविध है। एक धरातल पर मानव जाति की एक इकाई के नाते सारे मनुष्य समान हैं। हर व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकताएँ, एक सी नहीं तो, समान अवश्य होती हैं। सारे मानव व्यक्तियों में एक कौटुम्बिक साधर्म्य है। हमारे सारे सामाजिक आयोजन इस साधर्म्य के आधार पर होते हैं। इस अर्थ में हर मनुष्य एक मानवीय प्राणी है। दूसरे धरातल पर हर मानव अपने में एक विभूति नहीं, तो भी अद्वितीय इकाई जरूर है। पहले धरातल पर वह सिर्फ व्यक्ति (इनडिविडुअल) है और इस दूसरे धरातल पर वह एक व्यक्तित्व सम्पन्न मानव विशेष (पर्सन) है। इस धरातल पर उसकी अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जिनके कारण हम हजारों की भीड़ में भी उसे पहचान लेते हैं। "मुख श्रवण दृग नासिका सबही के एक ठौर।" मुँह, कान, नाक, और आँखें सब की एक ही स्थान पर होती है, फिर भी हरेक में एक अलगपन होता है जिससे हम उसे पहचान सकते हैं। दो

जुड़वाँ भाइयों को भी अलग-अलग पहचान लेते हैं। ये जो मनुष्य की पहचान की शारीरिक और मानसिक तथा सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं उन्हीं से उसका व्यक्तित्व (पर्सनॉलिटी) बनता है। भँवरमलजी के व्यक्तित्व की भी ऐसी कुछ विशेषताएँ हैं, जिनसे उन्हें अलग पहचान सकते हैं। यही उनकी पर्सनालिटी है।

मनुष्य में जब कठमुल्लापन या दुराग्रह नहीं होता तभी वह पुरानी भूमिका छोड़ कर नई भूमिका का अंगीकार कर सकता है, इस मनाग्रह की जड़ में एक तरह की विनयशीलता या नम्रता होती है। ऐसा व्यक्ति कठमुल्लापन के कारण अपनी पुरानी भूमिका से आग्रहपूर्वक चिपटा नहीं रह सकता। वह हठधर्मी गतानुगतिक और जीर्णमतवादी कदापि नहीं बन सकता। स्वयं गांधी और जे० पी० का जीवन, इसकी मिसाल है, जिज्ञासा आग्रह की दुश्मन है। मत का आग्रह व्यक्ति नहीं, रखता है, पूँछ ही कुत्ते को हिलाने लगती है।

ऐसे कुछ दुराग्रहीन व्यक्ति भाई भँवरमल के साथी और सहयात्री भी रहे हैं। उनमें से इस अवसर पर मुझे स्वर्गीय सीतारामजी सेकसरिया याद आते हैं। भँवरमलजी ने जिस प्रकार प्रबुद्ध और व्युत्पन्न मारवाड़ी व्यक्तियों या संस्थाओं से बहुत कुछ लिया है और उन्हें बहुत कुछ दिया भी है उसी तरह उन्होंने बंगाली बाबुओं की संस्थाओं से और विभूतियों से बहुत कुछ सीखा है। "जोड़ासांको" के ठाकुर परिवार के विश्वात्मा के वैतालिक कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का तथा कला के एक सम्प्रदाय के प्रवर्तक कलाकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, रामकृष्ण-विवेकानन्द मिशन, शांति-निकेतन, श्री निकेतन, श्रेष्ठ साहित्यिक द्विजेन्द्रलाल राय, बंकिमचन्द्र चटर्जी तथा शरत्चन्द्र चटर्जी जैसे महामानवों की रचनाओं से भी भलीभांति परिचय कर लिया है। उनके घर में हिंदी भाषा का जितना वातावरण है उतना ही बंगला का भी है। पुराने कलकत्ते के जमींदारों का जीवन भी उन्हें विदित है। उस जमाने की "मल्लिक मंजिल" की प्रदर्शनी उन्हें याद आती होगी। उसी तरह पारसनाथ का कलापूर्ण अद्वितीय जैन मंदिर भी उनके अध्ययन का विषय रहा होगा। हिंदी भाषा-भाषियों के जीवन पर बिड़ला-पार्क और बिड़लाओं की अन्य संस्थाओं का जो दूरगामी प्रभाव पड़ा उसे भी वे जानते हैं। पुरानी कॉलेज स्ट्रीट के प्रभाव को और जकरिया स्ट्रीट तथा चित्तरंजन एवेन्यू का समानांतर जीवन भी उन्होंने देखा है। सुरेंद्रनाथ बनर्जी के अंग्रेजी अखबार बंगाली और शिशिरकुमार घोष की की अमृत बाजार पत्रिका की भिन्नताओं को उन्होंने परखा है। आशुबाबू और रास बिहारी बसु तथा चित्तरंजन दास के जमाने का भवानीपुर और अलीपुर उनका देखा हुआ होगा। डॉ० प्रभाकर माचवे द्वारा संचालित भारतीय भाषा परिषद के गठन में भी उनका हाथ रहा होगा। इस प्रकार भिन्न संस्कृतियों के समन्वय और सवारी विकास में उनका सक्रिय भाग रहा है।

१९४१ में भी जब वे और सिद्धराज भाई पर्युषण-पर्व के सह-संयोजक थे उस समय मेरे तीन भाषणों में से एक भाषण के समय अध्यक्ष पद अमृत बाजार पत्रिका के उस समय के सम्पादक तुषार कांति घोष ने विभूषित किया था यह मुझे अच्छी तरह याद है। इस प्रकार भँवरमलजी का व्यक्तित्व इंद्र धनुष के करीब-करीब सभी रंगों में रंगा हुआ है। उनकी इस ७१ वीं जन्मतिथि के शुभ अवसर पर मैं उन्हें बधाई देता हूं और उनकी वृत्ति तथा भूमिका के अनुरूप उनका विकास भी चाहता हूं। मेरी यही प्रार्थना और यही आशीर्वाद है।

एक प्रवहमान जीवन

सिद्धराज ढड्ढा

सुप्रसिद्ध सर्वोदयी नेता

जब से मुझे मालूम हुआ कि भाई भँवरमल के जीवन के ७० वर्ष पूरे होने के अवसर पर उनका अभिनन्दन किया जा रहा है और उस अवसर पर प्रकाशित होने वाले ग्रंथ के लिये मुझे कुछ लिखना है तब से मैं अजीब असमंजस में पड़ गया। भाई भँवरमल मेरे अभिन्न मित्रों में से हैं, बल्कि यह कहूं तो गलत नहीं होगा कि भँवरमल से अधिक शायद ही किसी अन्य मित्र से अन्तरंग विचारों का परस्पर इतना अधिक आदान-प्रदान मेरा हुआ हो। हमारे परिचय और मित्रता को आधी शताब्दी से ज्यादा समय गुजर चुका है। घनिष्ठ मित्रता तो जीवन में मेरी कुछ और भी व्यक्तियों से हुई है लेकिन अधिकतर मामलों में वह घनिष्ठता भिन्न-भिन्न समय में हुई और किसी न किसी कारण से उसमें उतनी सक्रियता नहीं रही। सक्रियता रही तो भी निरन्तरता नहीं रही, न शायद इतनी अन्तरंगता। भाई भँवरमल से एक बार जो संबंध जुड़ा सो जुड़ा, और आज तक वह बना हुआ है।

ऐसे मित्र के संबंध में लिखना कितना कठिन है यह अनुभव, जिनका ऐसे प्रसंगों से वास्ता पड़ा होगा, उन सभी को हुआ होगा। मुझे संस्मरण लिखने को कहा गया, पर यह काम भी तो कठिन है। ५० बरस से ज्यादा लम्बी अवधि में एक के बाद एक इतनी यादें और घटनाएं सामने से गुजरती हैं कि उनमें चुनाव मुश्किल होता है। जातिगत, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और राष्ट्रीय सभी क्षेत्रों में हमने कम ज्यादा काम साथ-साथ किया है। इतना ही नहीं, विचारों और भावना के क्षेत्र में बहुत गहराई से, और जितना संभव हो सका उतनी "बे-पर्दगी" से, हमने आदान-प्रदान किया है।

हम दोनों एक ही शहर के रहनेवाले, एक ही शहर में पैदा हुए, एक ही समाज के सदस्य। बड़ी उम्र में ६ बरस का अन्त कोई विशेष अर्थ नहीं रखता, पर जब मेरी और भँवरमल की मित्रता हुई तब हमारी उम्र में एक-चौथाई से कुछ ज्यादा ही अंतर था। भाई भँवरमल ने उस समय हाई स्कूल पास किया था और मैं अपनी स्नातकोत्तर परीक्षाएं पास करके पढ़ाई करीब-करीब समाप्त कर चुका था। किशोरावस्था की मित्रताएं भावना-प्रधान होती हैं, अक्सर परस्पर भौतिक आकर्षण भी रहता है। भँवरमल की और मेरी मित्रता में विचार और भावनाएं प्रधान थीं। भाई भँवरमल ने अभी हाई स्कूल ही पास किया था लेकिन मैंने पाया कि विचार, आदर्श और भावना की दृष्टि से उनके चितन की गहराई काफी परिपक्वता की ओर बढ़ चुकी थी। इन क्षेत्रों में हम दोनों का आदान-प्रदान दोनों के लिए ही संतोष और समाधान देने वाला था।

पहला परिचय हमारा किस तरह और किस प्रसंग से हुआ यह तो अब याद नहीं है, लेकिन शीघ्र ही वह परिचय आदर्शों और भावनाओं की एकरसता में बदलता गया। रोज सवेरे हम घूमने जाते और हमारी बातचीत गहराई में उतरती जाती।

भाई भँवरमल में एक उदीयमान किशोर की जिज्ञासा, ग्रहणशीलता, जीवन को किसी बड़े आदर्श के लिये समर्पित करने की तीव्र अभिलाषा मैंने देखी। इन बातों के कारण उसके प्रति मेरा आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता गया। जब मैंने होश संभाला तब राष्ट्रीय जीवन में गांधी का प्रभाव अपने पूरे उरूज पर था। उनके विचारों ने मुझे शुरू से ही पकड़ लिया था। भँवरमल से परिचय हुआ तब तक मेरे आदर्श और विचार काफी हद तक बन चुके थे। फिर भी भँवरमल के साथ के विचार-विनिमय ने उनको मांजने, व्यवस्थित करने और उनको गहराई में ले जाने में मुझे बहुत मदद की। प्रातःकाल के शांत वातावरण की इन चर्चाओं से हम दोनों का परस्पर आकर्षण बढ़ता गया।

मेरा अध्ययन समाप्त हो चुका था और मुझे किसी न किसी "काम पर" लगना था इसलिए मेरा जयपुर का निवास जल्दी ही समाप्त हो गया। पर हम दोनों की परस्पर चर्चाओं और विचार-विनिमय को इतना समय मिल चुका था, और उनकी नींव इतनी गहरी पड़ चुकी थी कि प्रत्यक्ष संपर्क कम हो जाने पर भी पत्र-व्यवहार के द्वारा परस्पर आदान-प्रदान बराबर पुष्ट होता गया। बल्कि प्रत्यक्ष बातचीत की अपेक्षा पत्र-व्यवहार से शायद वह और ज्यादा व्यवस्थित और गहरा होता गया। मेरा अनुभव ऐसा है कि बातचीत की अपेक्षा पत्र-व्यवहार में विचारों की अभिव्यक्ति ज्यादा व्यवस्थित तो हो ही पाती है लेकिन प्रत्यक्ष बातचीत में तत्काल क्रिया-प्रतिक्रिया के कारण जो थोड़ा व्यवधान या आवरण सा बीच में महसूस होता है वह भी पत्र व्यवहार में नहीं रहता। जो हो, मेरे जीवन में कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मेरे लिये पत्र-व्यवहार विचारों के आदान-प्रदान का ज्यादा स्वाभाविक माध्यम बना है। मेरे जीवन को दिशा देने में और बनाने में मेरे पिताजी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उसका भी मुख्य श्रेय उनकी प्रत्यक्ष सीख के अलावा उनके साथ समय-समय पर हुए मेरे लम्बे पत्र-व्यवहार को है। हम दोनों के बीच ८-८, १०-१० पृष्ठों के लम्बे पत्रों का आदान-प्रदान सामान्य हो गया था। उनसे बातचीत में अपनी भावनाओं को और विचारों को इतना खुलकर प्रगट कर सकना संभव नहीं था जितनी मुक्तता से वह पत्र-व्यवहार में संभव था। उनकी ओर से मेरे पत्रों का "रेस्पोंस" भी उसी प्रकार मिलता था। भाई भँवरमल का और मेरा पत्र-व्यवहार भी इसी प्रकार बहुत लंबा होता था और उसने हम दोनों की परस्पर समझ और निकटता को बराबर बनाये रखा, बल्कि और बढ़ाया।

पर संयोग ऐसा हुआ कि जल्दी ही फिर हम दोनों का कार्य-क्षेत्र एक ही स्थान पर हो गया। मैं इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स, कलकत्ता में पहुंच चुका था। और भाई भँवरमल का कार्य-क्षेत्र भी अध्ययन समाप्त होने के बाद कलकत्ता ही बन गया। विचारों की समरसता तो प्रारम्भिक संपर्क और पत्र व्यवहार द्वारा पुष्ट हो ही चुकी थी, फिर कलकत्ते में बरसों तक, जब तक मैं वहां रहा, हमलोगों को सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में साथ-साथ काम करने का अवसर मिला। विचारों का आदान-प्रदान तब भी चलता ही था। जयपुर के हमारे परिचय के प्रारम्भिक दिनों में प्रातःकाल साथ घूमने जाना उसका माध्यम बन गया था, अब कलकत्ते में, वहां के जीवन की परिस्थितियों के कारण वह संभव नहीं रहा था। लेकिन वहां अनेक रातें परस्पर विचार-विनिमय में बिताई। आज भी वह दृश्य आंखों के सामने ताजा है।

सामाजिक रूढ़ियों और संकुचितता के प्रति विद्रोह भाई भँवरमल के जीवन में शुरू से ही रहा है। सामाजिक और जातिगत बन्धन हमलोगों के लिये कभी बाधक नहीं बने। बल्कि ये बंधन सदा हमारी क्रियाशीलता को चालना देते रहे। मेरे जीवन में भी प्रारम्भ से ही रूढ़ियों के प्रति विद्रोह मेरी मनोभावनाओं का अंग बन गया था। मेरे पिताश्री अपने समय के समाज-सुधारकों में गिने जाते थे। वे सामाजिक सभाओं में मुझे हमेशा साथ रखते थे, अतः रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना शुरू से ही मेरे मन में पनपती रही। यह वृत्ति धीरे-धीरे समाज के दायरे से बढ़कर सब प्रकार के यथा-स्थितिवाद के खिलाफ विद्रोह की भावना में बदल गई। आज भी वह मेरे चिंतन और कार्य की प्रेरक शक्ति बनी हुई है।

जातिगत, समाजिक या धार्मिक क्षेत्रों के काम का दायरा मेरी अपेक्षा भाई भँवरमल का अधिक रहा है, लेकिन उनके लिये ये दायरे संकुचितता या बाड़ेबंदी के पोषक न होकर व्यापकता और राष्ट्रीयता को पुष्ट करने के ही माध्यम बने। भँवरमल के जीवन में जातिगत और सामाजिक बन्धन सहज ही टूटते गए। उनके लड़के-लड़कियों के विवाह-सम्बन्ध भी बंगाली परिवारों में हुए। मारवाड़ी समाज में शायद ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिनकी बंगाली समाज से केवल व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि सामाजिक सांस्कृतिक तथा कला के क्षेत्र में भी इतनी घनिष्ठता और सक्रियता रही हो जितनी भाई भँवरमल और सुशीला की। सुशीला का उनके जीवन में आना भी इसमें सहायक हुआ। सुशीला स्वयं अपने आप में एक अच्छी सामाजिक कार्यकर्त्री है। कलकत्ते के सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में सिंघी-दम्पत्ति का आज भी एक उल्लेखनीय स्थान है।

कलकत्ते में हमारी एक त्रिपुटी बन गई थी— भाई भँवरमल, श्री विजय सिंह नाहर जो बाद में बंगाल के उप-मुख्यमन्त्री बने, और मैं। हम तीनों मिलकर एक सामाजिक मासिक पत्रिका—"तरुण ओसवाल"—चलाते थे। कुछ दिन बाद ही हमें लगा कि जाति का यह दायरा हमारे लिये संकुचित साबित हो रहा है और हमने उसका नाम बदल कर 'तरुण जैन' किया। लेकिन जल्दी ही यह दायरा भी संकुचित लगने लगा और पत्रिका का नाम केवल 'तरुण" कर दिया गया। पत्रिका के प्रारम्भिक काल में दिन भर अपने अपने कामों में व्यस्त रहने के बाद अक्सर शाम को हम तीनों "ट्राम" में बैठकर निकलते थे और पत्रिका के लिये दो-दो, चार-चार रु० ग्राहक शुल्क या सहायता बटोरते थे। यह क्रम महीनों चला। बाद के दिनों में पत्रिका चलाने का सारा भार भाई भँवरमल पर आ गया।

आजादी के आंदोलन में भी हमलोगों की सक्रियता स्वाभाविक थी। कलकत्ते के मारवाड़ी समाज में उन दिनों भागीरथ जी कनोड़िया, सीताराम जी सेकसरिया, बसंत-लाल जी मुरारका आदि का ग्रुप गांधी जी द्वारा प्रेरित रचनात्मक प्रवृत्तियों में और आजादी के आंदोलन को मदद पहुंचाने में सक्रिय था। ये लोग उम्र में हमसे अपेक्षाकृत बड़े थे, पर इन्होंने बहुत जल्दी हम दोनों को अपना लिया और इस ग्रुप के जरिये खादी, हरिजन सेवा आदि प्रवृत्तियों में भी हम सक्रिय हो गये। १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन में स्वाभाविक ही हम तीनों अलग-अलग प्रकार से गिरफ्तार होकर नजरबंद

हुए। मैंने तो १९४२ का आन्दोलन प्रारम्भ होते ही इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स के मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। इसी के साथ कलकत्ते का मेरा कार्यकाल समाप्त हो गया।

भाई भँवरमल के और मेरे कार्य क्षेत्र इस प्रकार फिर अलग-अलग हो गए। भँवरमल और सुशीला तो अब कलकत्ते के ही हो गए। हालांकि भंवरमल की प्रवृत्ति का दायरा परिवार नियोजन के माध्यम से अखिल भारतीय ही नहीं उसके बाहर भी बढ़ता गया।

इस प्रकार भाई भँवरमल का जीवन समाज, साहित्य, कला सभी क्षेत्रों में सक्रियता और निःस्वार्थ सेवा का एक निरन्तर बढ़ता हुआ प्रवाह रहा है। शारीरिक मर्यादाओं के कारण बाहर से अब वह प्रवाह मन्द पड़ा लगता है पर जहाँ तक मैं जानता हूं अन्दर की चिनगारी आज भी उसी प्रकार विद्यमान है।

तेजस्विता के प्रतीक : भँवरमल सिंघी

लक्ष्मीचन्द्र जैन

सुप्रसिद्ध लेखक, निदेशक, भारतीय ज्ञानपीठ

यों कतिपय सामाजिक संदर्भों में जुड़ा हुआ होने के कारण सिंघीजी को मैं परोक्ष रूप से अनेक वर्षों से जानता था, किन्तु जब हम लोग डालमियानगर से सन् १९५६ में कलकत्ता आये, और भारतीय ज्ञानपीठ का प्रधान कार्यालय भी वहाँ आ गया तब भारतीय ज्ञानपीठ का मन्त्री होने के नाते, कलकत्ते की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों से परिचय हुआ, उनमें सक्रिय भाग लेना शुरू किया। तभी पता चला कि इन गतिविधियों के केन्द्र में युवक वर्ग का नेतृत्व करने वाले प्रमुख व्यक्ति भँवरमल सिंघी हैं। और, वह अकेले नहीं हैं, उनके साथ उनकी सहधर्मिणी सुशीला जी भी हैं जो महिलाओं में राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए पताका की भांति अग्रणी हैं।

बहुत अधिक समय नहीं लगा कि हम दोनों—कुन्था जी और मैं—कलकत्ते के साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन से जुड़ गये। इस संपर्क-सम्बन्ध की व्यापकता में सिंघी जी और सुशीला जी का बहुत योगदान था। शायद उन्हें लगता था कि एक समानधर्मा युगल उनके बीच आया है जिसके साथ आत्मीय सम्बन्धों की पृष्ठभूमि सहज रूप से विकसित हो सकती है।

इससे प्रायः पांच-सात वर्ष पहले कलकत्ता में महावीर शासन जयंती का महोत्सव हुआ था। साहू शांतिप्रसाद जैन और सेठ छोटेलाल सरावगी ने पंडित जुगलकिशोर मुख़्तार (मेरी भावना के रचयिता—जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया) से प्रेरणा पाकर यह महोत्सव विशाल पैमाने पर आयोजित किया था ताकि भगवान महावीर के 'शासन' (धर्मोपदेश) के जनकल्याणकारी चौबीस सौवें वर्ष की

जयन्ती मनायी जाये। इस समारोह में पहली बार मैंने देखा कि कलकत्ते के बंगाली समाज के विद्वानों में जैनधर्म और संस्कृति तथा भगवान महावीर के जीवन और उपदेशों के प्रति एक सजग औत्सुक्य है। इतना ही नहीं, अनेक विद्वानों के ज्ञान में जैन दर्शन के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक गहराई थी। मुझे याद नहीं सिंघीजी ने इस अखिल भारतीय आयोजन में कितनी सक्रियता से भाग लिया किन्तु सुशीला जी तो आयोजकों में प्रमुख थीं। बाबू छोटेलाल जी सरावगी उन्हें पुत्रीवत् मानते थे और उनकी योग्यता पर विश्वास करते थे।

उस समय एक बात स्पष्ट हुई कि सिंघीजी यद्यपि जन्म से जैन हैं किन्तु उनके जैनत्व ने सांप्रदायिक सीमा का अतिक्रमण करके उन्हें व्यापक रूप से मारवाड़ी समाज, हिन्दू समाज, बंगाली समाज और सुधारवादी युवक समाज के साथ अपने-अपने ढंग से अलग-अलग आयामों में संपृक्त कर दिया है। प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक वृत्त में उनका सदा अपना अलग स्थान रहा है।

विचित्र बात यह है कि भँवरमल सिंघी या तो नेता और सर्वेसर्वा हैं या विद्रोही हैं। वह सदा एंग्री यंगमैन (Angry Youngman) हैं। स्थिति पालक, दकियानूसी, परंपरावादी तत्वों से मोर्चा लेने में उन्हें मजा आता है। सांस्कृतिक प्रसंग हो, साहित्यिक हो, सामाजिक हो, कोई मंच हो, जब तक वह अपने भाषण से श्रोताओं को झकझोर न दें, हलचल न मचा दें तब तक उन्हें चैन ही नहीं पड़ता। कभी-कभी तो मुझे लगा है कि उनके प्रभाव की कुंजी यह विद्रोह भाव है, और वह उसका उपयोग करना जानते हैं। यह न समझा जाये कि मैं उनके विचारों और क्रियाकलापों को "जेन्युइन" और खरा न मान कर एक तेवर और "पोज" के रूप में चित्रित कर रहा हूं। जैसा मैंने कहा, सिंघीजी ने प्रत्येक प्रसंग में जो अपना अलग स्थान बनाया है, वह उनके उस व्यक्तित्व के कारण है जो अग्रगामी हैं और नेतृत्व प्राप्त करना जिसकी अपनी नियति है। इस 'नियति' के निर्माण में उनके चरित्र के अनेक उपादान क्रियाशील रहे हैं। ऊँची शिक्षा के साथ साथ अनुशासन की प्रक्रिया से भी वे गुजरे हैं, गुजरते रहे हैं। इस अनुशासन ने उन्हें विकृतियों से बचाया है और जीवन की वक्रता से जूझना सिखाया है। हृदय की तरलता को उन्होंने अनेक रूपों में देखा है। उसका संस्पर्श दिया-लिया है। स्वभावतः उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम कविता बनी जो बाद में प्रवाही गद्य के माध्यम में कहीं छूट गई। उनमें कविता आज भी जीवंत है। आचार्य शुक्ल ने जिसकी कविता को साहित्य के लिये उल्लेखनीय माना और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जिसे आशीर्वाद से अभिषिक्त किया, उसे कवि ही बनना था, किन्तु जिस कविता के परंपरावादी रूप के लिये निराला ने कहा था— 'गजगामिनि, यह तेरा पथ संकीर्ण कंटकाकीर्ण है' और जिसे वह राजपथ से जनपथ पर ले आए थे, उसी जनपथ के आकर्षण ने भँवरमल सिंघी को गद्य की ओर उन्मुख कर दिया। यहां तक हुआ कि वह प्रमुख रूप से फिर न गद्यकार रहे, न साहित्यकार रहे, वह नये संस्कारों के निर्माणकारी शिल्पी हो गए, समाज के रचनाकार हो गये।

सिंघीजी और सुशीला जी का संपर्क-संबंध और उनका विवाह क्रांति की ओर उनका पहला पग था। इस परिणय सम्बन्ध की संज्ञा थी—'विधवा विवाह'। यह

मारवाड़ी समाज के भीरु और परंपरावादी वर्ग के लिये बम का धड़ाका था। कुछ दुर्ग हिले, कुछ ढह गये। इस दम्पति को निर्माण के लिये नई नई भूमियां मिलती गई। सौभाग्य यह था कि मारवाड़ी समाज में तब तक महात्मा गांधी और जमनालाल बजाज का सुधारवादी प्रभाव प्रवेश कर चुका था। जिसके पक्षधर बसन्तलाल मुरारका, सीताराम सेकसरिया, भागीरथ कानोड़िया आदि सामाजिक नेता थे। सिंघी जी स्वयं सामाजिक नेतृत्व की पंक्ति में ऊपर उठते गये, और जैसा कि समाज विज्ञान का नियम है, या कहना चाहिए मानव संस्थाओं का नियम है, एक समय आता है जब पहले के सुधारक नये परिवेश और नये विकास की नई आवश्यकताओं को समझने की दिशा में स्वयं एक प्रकार के परम्परावाद के पक्षधर हो जाते हैं। जब नया अग्रगामी नेतृत्व उभरता है जो युवा शक्ति को प्रभावित करता है, नये कार्यक्रमों को जन्म देता है, उसका संचालन करता है। भँवरमल सिंघी ने ऐसी ही विकास-मंजिलों की यात्रा में समाज का नेतृत्व किया है।

सिंघी जी के व्यक्तित्व का एक गंभीर आयाम यह है कि वे चिन्तक हैं। उनके चिन्तन को प्रेरित किया है प्रज्ञाचक्षु पंडित सुखलालजी सिंघवी जैसे जैन दर्शन के प्रखर व्याख्याकारों ने। इसीलिये उनकी जड़ मजबूत है। यदि सिंघी जी को बम्बई का समाज पर्युषण पर्व में व्याख्यान देने के लिये आमन्त्रित करता है तो इसीलिए कि पांडित्य जिस तत्वदर्शन का प्रवचन करता है, सिंघी जी उसे जीवन के संदर्भों से जोड़कर व्याख्यायित करते हैं, क्योंकि जीवन अपने विविध आयामों में उनका देखा और जाना हुआ है। उसने उन्हें मजबूर किया है कि वह तथ्य को सत्य के साथ जोड़ें और निर्भीक होकर उसका प्रतिपादन करें। वह सत्य महावीर की अहिंसा से उद्भूत है, बुद्ध की करुणा उसमें समाहित है, रामकृष्ण परमहंस की लोक कल्याणी वाणी और सेवा संदेश उसमें प्रतिध्वनित है। सिंघीजी जो कुछ लिखते हैं और जो बोलते हैं उसमें उस भाषा और शैली की झलक मिलती है जिसके मूल में संस्कृति का स्वर है। थोड़ी सी चिनगारी उसमें मिला दो और विद्रोह का पुट दे दो—बस सिंघी जी का मंचीय चमत्कार साकार हो जाता है।

जिसके पास व्यक्तित्व का इतना वैभव हो, कौशल हो, कला हो, वह भला अभिनेता क्यों नहीं बनेगा ? सो, सांस्कृतिक संस्था अनामिका के साहित्य-मंच का यह वक्ता, उसके नाट्य-कार्यक्रमों में अभिनेता भी बन गया। 'नये हाथ' में उनका अभिनय मैंने पहली बार देखा और सराहा।

कलकत्ते का श्री शिक्षायतन नारी शिक्षा के क्षेत्र में जाना-माना संस्थान है। इस उच्चस्तरीय महिला कॉलेज की कार्यकारिणी का सदस्य होने के नाते मुझे अनेक वर्षों तक सिंघी जी के मंत्रित्व की, उनकी संचालन पद्धति को निकट से देखने-समझने का अवसर मिला। अनेक बार ऐसा हुआ कि समिति के कतिपय वरिष्ठ सदस्यों ने नियमों में, किसी-किसी प्रसंग में ढील चाही है, और जिन कारणों से चाही थी मैं स्वयं भी उनसे सहमत था, किन्तु सिंघी जी अड़ गये तो अड़े ही रहे।

कलकत्ता में भारतीय संस्कृति संसद के तत्वावधान में कथा समारोह हुआ। संचालन मेरे हाथ में था। साहित्यकारों का परिचय देते समय शायद मुझसे शालीनता

का अतिरेक हो गया। लगता है सिंघीजी को यह अटपटा लगा। जब सिंघीजी बोलने खड़े हुए तो उन्होंने जैनेन्द्र जी की कहानियों को और उनके कथा-शिल्प की बखिया उधेड़ दी। सब देखते रह गये। दो बार विनोद पूर्वक तालियां भी बज गई। ऐसे चमत्कारी हैं सिंघीजी !

राजनैतिक सन्दर्भ में सिंघीजी किस पार्टी या दल के समर्थक हैं, यह मैं आज तक नहीं समझ पाया। वह राष्ट्रवादी हैं, समाजवादी हैं, यह तो ठीक. किन्तु राष्ट्रवाद के कौन से रूप की वह हिमायत करते हैं और समाजवाद का अन्तिम छोर क्या है, यह यदि मुझे स्पष्ट नहीं है, तो उनसे पूछ सकता था। किन्तु वैसा अवसर ही नहीं आया। हमलोग बरसों एक ही नगरी में रहे, प्रायः हर दूसरे-तीसरे दिन अलग से मिल बैठकर बात करते रहे—सांस्कृतिक समारोहों और गोष्ठियों में तो अपरिहार्य रूप से साथ रहते थे, फिर भी क्या बात है कि अनेक गम्भीर विषयों पर हमलोग कभी तन्मयता से बात नहीं कर पाये। बात यह है कि गम्भीर बातें करने के लिये तो सार्वजनिक प्लेटफार्म रहे, गोष्ठियाँ रहीं; किन्तु दीन-दुनिया की बातों के लिये तो घर की बैठकें ही थीं। हम लोगों ने 'कुछ ग़मे जानां, कुछ ग़मे दौरां' की ला-इन्तिहा बातें की हैं। हमने अकारण और अकलुष भाव से व्यक्तियों के मनोविज्ञान का विश्लेषण किया है, व्यक्तिगत सम्बन्धों के ताने-बाने सुलझाने की कोशिश की है, जो न कभी सुलझे, न हमें उलझा सके। सुशीला जी प्याज की तरकारी इतनी अच्छी बनाती हैं कि केवल कनखियों से ही देखा जा सकता है कि डूंगे में कितनी बची है, तीसरी प्लेट आगे बढ़ायें या नहीं। और फिर, मदन अग्रवाल जैसे दोस्त कहीं साथ आ बैठते थे, तो फिर बात-बात में बात, पात-पात में पात की तरह फैलती चली जाती थी। सुशीलाजी, प्रतिभाजी, कुन्थाजी जैसी हस्तियां हमारे आमोद प्रमोद में रक्षा-कवच की भांति साथ रहीं, इसलिये हमें न तो कभी पर-निन्दा का दोष लगा न आत्म गौरव की प्रतीति गहरा पाई।

हमारे परिवार के व्यक्तियों को कभी लगा ही नहीं कि सिंघीजी और सुशीला-जी हमारे परिवार के अन्तरग सदस्य नहीं हैं। जीवन में, बहुत ही कम व्यक्ति ऐसे आये जिनके साथ अपने सुख-दुख, हर्ष-विषाद और अन्तरतम भावनाओं की बात खुलकर की जा सके और जिनके प्रति इतनी आस्था हो कि प्रत्येक विश्वास सुरक्षित है। कितने ही ऐसे प्रसंग आये जब मैं बाहर यात्रा पर रहा और पीछे से प्रत्येक आकस्मिक कठिनाई और छोटी-बड़ी बीमारी के समय सिंघीजी का सहारा रहा। हम लोगों ही की बात नहीं, उनके अनेक मित्र हैं जो जानते हैं कि सिंघीजी के ऊपर अपनी चिन्ताएं छोड़ देने का अर्थ है निश्चिन्त हो जाना। उनकी सामर्थ्य और आश्वासनदायिनी अचूक क्षमता पर समाज के पुरुषों से अधिक महिलाओं ने भरोसा किया है। यह गुण विरलों को ही वरदान में मिलता है :

आज हम जीवन को तटस्थ भाव से देख सकते हैं, क्योंकि सचमुच तट पर बैठे हैं। सिंघीजी स्वस्थ रहें, प्रसन्न रहें और अपनी तेजस्विता का प्रकाश देते रहें, यही हमारी कामना है। काश, कलकत्ता और दिल्ली दूर न होते।

मित्र, समाज-सेवक और साहित्यकार

जवाहिरलाल जैन
समाजसेवी, अध्यक्ष राजस्थान हरिजन सेवक संघ

भँवरमल से पहले परिचय कब हुआ। यह कुछ याद नहीं आता, लेकिन शायद ५०-५१ वर्ष तो हुए होंगे। भँवरमल मेरे छोटे भाई पदमचंद के सहपाठी और समवयस्क मित्र के रूप में पहले-पहल मिले। फिर जल्दी ही मैंने ५-६ वर्ष की वरिष्ठता को कम कर लिया, उन्होंने अपनी कनिष्ठता को बढ़ा लिया और हम दोनों समवयस्क मित्र बन गये।

भँवरमल बहुत कठिन पारिवारिक परिस्थितियों में से संघर्ष करके आगे बढ़े हैं, इसलिये उनमें दूसरों के कष्टों को समझने की क्षमता और अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाने की दृढ़ता दोनों का विकास हुआ है। इसी ने उन्हें एक ओर समाज सेवक बनाया है तो दूसरी ओर साहित्यकार। अध्ययन और चिंतन से उनमें गहराई आई है, ज्ञान की विविधता बढ़ी है, सहानभूति व्यापक बनी है और कर्म-कौशल सधा है।

भँवरमल को अंधी रूढ़ियों से चिढ़ है और ढोंग, पाखंड तथा दिखावे से भी। उसमें क्रांति की आग और आक्रोश है। कलकत्ते में समाज सुधार के आंदोलन में उन्होंने बहुत हिस्सा लिया। बाल दीक्षा-विरोधी आंदोलन भी अपने समय में बहुत तीव्रता से चलाया गया था। उसमें भँवरमल का अत्यन्त तेजस्वी योगदान था। आजादी की आखिरी लड़ाई में भी भँवरमल ने सक्रिय भाग लिया और तीन साल की जेल यातना सही। पर उसने स्वतंत्रता सेनानी का ताम्रपत्र, पेंशन तथा अन्य सुविधाएँ लेने से इन्कार कर दिया। त्याग, तप और बलिदान बेचा नहीं जा सकता। वह अमूल्य है। ऐसा करना भारत माता का अपमान करना होगा। दृढ़ देश भक्त ऐसा नहीं कर सकता।

परिवार नियोजन के सामाजिक कार्यक्रम में उसकी बहुत रुचि रही है। उसमें उसने ग्राम के स्तर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक बहुत अच्छा और सराहनीय काम किया है।

यह भँवरमल का बड़ा सौभाग्य है कि उसे सुशीला जैसी विदुषी, समझदार तथा समाजसेवी पत्नी मिली और सुशीला भी भाग्यशाली है कि उसे भँवरमल जैसा समाज सेवक, साहित्यकार और भावनाशील पति मिला। दोनों ने एक दूसरे को सहानुभूति पूर्वक समझा है, इसलिए दोनों मिलकर अपने जीवन को सेवा और त्यागमय तथा मधुर बना सके हैं। भँवरमल का अभिनन्दन एक दृष्टि से दोनों का अभिनंदन है। हमारे देश में तो हाथी के पैर में सबके पैर शामिल मान ही लिये जाते हैं।

हम लोग बहुत साथ रहे हैं, खेले हैं, घूमें हैं, खाये-पिये हैं पढ़े-लिखे और बोले हैं, और अब भी ऐसा मौका छोड़ते नहीं हैं। हम लोगों ने छह मित्रों का एक षट् मंडल (शठ मंडल नहीं) भी कायम किया था जिसमें प्रत्येक सदस्य को अपनी लिखित रचना, निबंध कहानी, कविता अनिवार्य रूप से सुनानी पड़ती थी। यह मंडल

दो तीन-साल चला होगा—इस अरसे में बहुत सी अच्छी रचनाएं भी एकत्रित हो गईं जो बाद में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। इसमें भँवरमल के और मेरे अतिरिक्त सिद्धराज ढड्ढा, पूर्णचन्द्र जैन, प्रोफेसर प्रवीणचन्द्र और योगी कैलाशचन्द्र भी शामिल थे। इन में भँवरमल और कैलाशचन्द्र ही सबसे नौजवान थे।

मुझे इस बात की बहुत प्रसन्नता है कि कलकत्ते के कुछ नौजवान मित्रों ने भँवरमल की आयु के ७० वर्ष सम्पन्न होने के अवसर पर उसका अभिनंदन करने का आयोजन किया है। किसी के चले जाने के बाद उसका गुणगान और उसकी सद्‌गति के लिये प्रार्थना मुझे बिल्कुल मूर्खता पूर्ण, व्यर्थ और अपमान जनक लगती है। मुझे तो जीवित महोत्सव ही अच्छा लगता है, इसलिए मैं इस अवसर पर उन मित्रों को बधाई देना चाहता हूँ और यह शुभ कामना करता हूं कि भँवरमल शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी रूप में स्वस्थ रहें और समाज-सेवा तथा साहित्य-सेवा निरंतर करते रहें।

पुराना परिचय : नयी पहचान

प्रतिभा अग्रवाल

फरवरी-मार्च सन् १९४६। शांति भवन में सिंघी जी और सुशीला दी का विवाह के पूर्व मिलना-जुलना चल रहा था। मैं उन दिनों शांति भवन में ही रह रही थी। उम्र थी १६ साल, बनारस से साल भर पहले ही आयी थी। मन आश्चर्य और उत्सुकता से डोलता रहता, मौका मिलते ही मैं ताक-झांक में भी लग जाती। सब कुछ अटपटा और उत्तेजनापूर्ण लगता। उस समय बात अत्यंत औपचारिक परिचय तक सीमित रह गयी थी। आगामी वर्षों में औपचारिक परिचय धीरे-धीरे परिचय, घनिष्ठता और पारिवारिक संबंधों में विकसित होता गया कि फिर फरवरी महीने में ही पर सन् १९८४ में एक दिन सुबह-सुबह कमल किशोर गोयनका संदेश लेकर आये कि यदि मैं दायित्व लूं तो सिंघी जी को अभिनंदन के लिए राजी किया जा सकता है। वे अब तक अभिनंदन के प्रस्तावों पर ना करते रहे हैं पर आज पुनः जोर देने पर उन्होंने कहा—"यदि प्रतिभा दायित्व ले तो मैं राजी हूं।" मैं पल भर के लिए चुप रह गयी। एक ओर मेरे प्रति सिंघी जी द्वारा व्यक्त विश्वास एवं भरोसे ने जहां मन को पुलकित किया वहीं इतने बड़े काम के दायित्व ने दुविधा भी खड़ी की। "ना" का प्रश्न नहीं था और "हां" करने में भी बड़ा संकोच हो रहा था। इतना बड़ा काम, दायित्व, अपनी क्षमता, समय की सीमा सब एक-एक कर आंखों के सामने घूम गये। मैं अपने में उलझी रही और "अब आपको यह काम करना ही है। मैं आपको पूरा सहयोग दूंगा।" कह कर कमल किशोर चले गये।

उस बात को आज चार महीने हो गये। इस बीच सिंघीजी को जिस रूप में जाना, उनके व्यक्तित्व को जितना अनुभव किया उतना गत ३८ वर्षों में नहीं कर पायी थी, इसे निःसंकोच स्वीकार करती हूं। गत चार महीनों में अभिनंदन ग्रंथ की तैयारी के सिलसिले में सिंघीजी द्वारा लिखे गये करीब १४०० लेखों, सम्पादकीयों में से अधिकांश को उल्टा-पलटा, कुछ को पढ़ा। लगा "अरे, यह तो पता ही नहीं था कि सिंघीजी ने इतना लिखा है।" लेखों के चयन के लिये जब उन्हें विषयवार संजोया जाने लगा तो समाजसुधार, धर्म, शिक्षा, व्यंग्य, कविता, संस्कृति, नाटक आदि नाना विषयों पर रचनाएं सामने आयीं। पुनः लगा—"अरे, सिंघीजी ने इतने विषयों पर लिखा है?" और यह "अरे" का क्रम चालू हुआ तो चालू ही रहा। उनके पत्र-व्यवहार को देखा तो आश्चर्य हुआ कि "अरे, इतने लम्बे अरसे तक इतने लोगों से सिंघीजी का पत्र-व्यवहार चला?" जेल की डायरी पढ़ी तो लगा—"अरे, सिंघी जी इतना सहज, सरल और शुद्ध गद्य लिखते थे सन् ४२-४३ में भी?" उनके द्वारा लिखित लेख कहां-कहां प्रकाशित हुए हैं इसकी तालिका बनने लगी तो पाया गत पचास वर्षों में उनकी रचनाएं करीब सौ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं जिनमें धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, विश्वमित्र, ज्ञानोदय आदि सभी शामिल हैं। इस अवसर पर मंगाये गये संस्मरणों को पढ़ने लगी तो पाया कि सभी ने सिंघी जी की उच्छ्वसित प्रशंसा की है—उनकी कर्मठता, निष्ठा, आदर्शप्रियता, कथनी और करनी में सामंजस्य, यथासाध्य सहायता देने या दिलवाने आदि गुणों की पुनरावृत्ति समाप्त होने को ही नहीं आती। मुझे पता है कि इसका सब नही तो ९० प्रतिशत आंतरिक है, दिखाने या औपचारिकता की खातिर लिखा नहीं। सच बतलाऊं, इस सारी जानकारी से मन को धक्का लगा। लगा कि गत ३०-३५ वर्षों के निकट पारिवारिक एव व्यक्तिगत संबंधों के बावजूद मुझे इन बातों की जानकारी क्यों नहीं थी। सिंघीजी के व्यवस्थित ढंग से काम करने की मैं सदा कायल रही हूं। कोई आयोजन होने पर पूर्व योजना बनाने से लेकर घंटों बैठकर लिफाफों पर पता लिखने का काम करते मैंने सिंघी जी को देखा है। जो काम जिस दिन जिस समय होना है, उन्हें करना है, वह सामान्य स्थितियों में होगा ही, आप निश्चिंत रह सकते हैं। वक्त-जरूरत पड़ने पर सिंघीजी आपके पास रात-दिन खड़े रह सकते हैं, इसका व्यक्तिगत अनुभव मुझे एकाधिक बार हुआ है। संस्थाओं में आपसी मनमुटाव होने पर गुत्थी को सुलझाने एवं स्थिति को सम्हालने का काम करते भी सिंघी जी को अनेक बार देखा है। फिर भी क्या बात थी कि उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को मैं न देख पायी थी, न जान पाई थी।

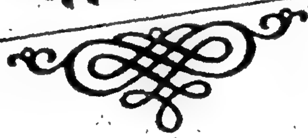
सबसे बड़ा कारण यह समझ में आया कि उनके राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक कार्यक्षेत्र से मेरा कोई संबंध नहीं रहा। न मैंने कभी इन दिशाओं में कार्य किया न विशेष रुचि ली। सिंघीजी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले राजनीति में सक्रिय भाग लिया, हमारा तब परिचय ही नहीं हुआ था। बाद में उनका प्रमुख क्षेत्र हुआ समाज सुधार। मारवाड़ी समाज की नाना कुरीतियों को दूर करने की दिशा में सिंघीजी ने जो आंदोलन चलाया, उससे भी मैं कहीं जुड़ी नहीं थी। फलस्वरूप बातें सुन लिया करती

थी पर न कभी गंभीरता से उस दिशा में सोचा-विचारा, न सिंघी जी की महत्वपूर्ण भूमिका को जाना। परिवार नियोजन के क्षेत्र में भी वही स्थिति रही। हाँ, शिक्षा और संस्कृति हमारी सामान्य कर्मभूमि थी और हमने वर्षों साथ काम किया। सन् १९५० में मंचित 'समस्या' नाटक में हमने साथ अभिनय किया और तब से अब तक पहले तरुण संघ तथा सन् १९५५ से अनामिका के तत्वावधान में हम साथ काम करते रहे हैं। इस दौरान सिंघी जी ने सदा दायित्वपूर्ण भूमिका निभायी है, जब जैसी आवश्यकता हुई, साथ रहे हैं। संस्था के संचालन में योगदान देने से लेकर अभिनय करने और आपसी मनमुटाव को दूर करने में बड़े भाई के रूप में उन्हें हमने सदा अपने साथ पाया। शिक्षा के क्षेत्र में १५ वर्षों तक मैंने सिंघी जी के साथ शिक्षायतन में काम किया। वे मन्त्री थे और मैं प्राध्यापिका। व्यवस्थित ढंग से काम करने का प्रत्यक्ष अनुभव शिक्षायतन में काम करके अधिक हुआ। मुझे बहुत अच्छा लगता था। स्पष्ट है सिंघी जी के कार्यक्षेत्र के एक अंश के सीधे सम्पर्क में ही मैं आई, उनके सम्पूर्ण कृतित्व का साक्षात्कार न कर सकी। वह काम अब हुआ है। मैंने उन्हें अधिक बड़ी पृष्ठभूमि में स्थित पाया है, विपुल कार्यों के साथ घनिष्ठरूप से एकाकार पाया है। यह पाना मेरे लिए महत्वपूर्ण है।

सिंघीजी में जहां अनेक गुण रहे हैं, वहीं कुछ दुर्बलताएँ भी रही हैं। रहना स्वाभाविक है। सम्भवतः ये दुर्बलताएं कई बार इतनी बड़ी लगने लगती थीं कि उनकी ओट में उनके गुण छिप जाते थे और हम सीमित रूप में ही प्रभावित हो पाते थे। आज इस चर्चा के प्रसंग में उनका उल्लेख भी उचित प्रतीत होता है। सिंघीजी सदा लक्ष्य सामने रखकर चलते हैं। लक्ष्य की पूर्ति के लिए यदि सामान्य औचित्य की सीमा का उल्लंघन भी करना हो तो उन्हें द्विधा नहीं होती। आम तौर पर यह प्रवृत्ति खटकती है, खटकी है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी हुआ है। इसी प्रवृत्ति के कारण वे कभी-कभी "जेनुइन" मिस्टेक" भी कर बैठते हैं। एक और बात। उनके पास अनुभवों का इतना बड़ा भंडार है कि जब साथ बैठो तो वे अपनी ही बातें करते जाते हैं। फलस्वरूप साथ बैठनेवाले को श्रोता की ही भूमिका निभानी पड़ती है, उन्हें श्रोता बनाने का सुख यदा-कदा ही मिलता है। सिंघीजी पुरुषों एवं महिलाओं में समान रूप से लोकप्रिय रहे हैं। पुरुषों की मित्रता की तो कोई बात नहीं पर हां, उनकी महिला मित्रों को लेकर (जिनमें मैं भी शामिल हूँ) हम हमेशा चुटकियां लेते रहते हैं और सिंघी जी आनन्दमग्न मुस्कुराते रहते हैं। इससे अनेक बार उलझनें भी खड़ी हुई हैं जिसका अधिकांश निकट के व्यक्तियों को झेलना पड़ा है।

आज ऐसा सोचकर लगता है कि व्यर्थ ही हमलोग इन छोटी-मोटी बातों को बड़ी बना लिया करते थे। सामान्यतः सामाजिक-राजनीतिक नेताओं में दिखलाई पड़नेवाली दुर्बलताओं को देखें तो उनकी तुलना में सिंघी जी की दुर्बलताएं नगण्य हैं। सच तो यह है कि अनेक खट्टे-मीठे अनुभवों का सम्मुचय रहा है यह ३८ वर्षों का सम्बन्ध। बराबर साथ काम किया है, परस्पर सुख-दुख को बांटा है, एक दूसरे के प्रति संतोष-असंतोष व्यक्त किया है, सराहा है, आलोचना की है।

प्रस्तुत काम के दौरान अतिरिक्त बोझ और दबाव के कारण कई बार मन में आया कि सिंघीजी से कहूं—'सिंघीजी, किस जन्म की दुश्मनी आपने निकाली जो इतना बड़ा काम मेरे ऊपर डाल दिया ?" या कि "मैंने बहुत बार आपकी बात मानी नहीं, इसीलिये आपने मुझे यह सजा दी क्या ?" पर मैं कह नहीं पायी हूँ क्योंकि दूसरे ही पल मन को लगा है कि यदि यह दुश्मनी थी तो ऐसी जिसने मुझे एक निकट के व्यक्ति को समझने का मौका दिया और सजा थी तो ऐसी जिसने मेरी दृष्टि को पूर्ण बनाया। सारा मिलाकर यह पुराना परिचय और नयी पहचान मेरे लिए एक सुखद अनुभव साबित हुआ है। आभारी हूँ सिंघीजी की इस दुश्मनी के लिए, इस सजा के लिये। उन्हें मेरा प्रणाम ! ●



परिशिष्ट

'कृतित्व खण्ड' के अन्तर्गत हमने सिंघीजी की रचनाओं की बानगी प्रस्तुत की। बानगी इसलिये कि उन्होंने प्रचुर लिखा है और प्रस्तुत ग्रन्थ में संग्रहीत रचनाएं उसका एक अत्यन्त छोटा अंश है। फरवरी सन् १९३२ में सिंघीजी की पहली रचना 'मन्दिर और पूंजीवाद' ओसवाल नवयुवक में प्रकाशित हुई और तब से वे निरन्तर हिन्दी और अंग्रेजी (मुख्यतः हिन्दी) में लिख रहे हैं। इन रचनाओं में कुछ 'भग्न हृदय' के नाम से भी लिखित हैं। गत ५० वर्षों में करीब सौ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सिंघीजी के लेखों की संख्या सात सौ से ऊपर है। जिनमें विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक तथा परिवार नियोजन सम्बन्धी विषयों पर लिखित गंभीर विचार प्रधान लेखों के साथ ही गद्य-गीत, कविता, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा-विवरण भी शामिल हैं। इनमें से कुछ रचनाओं का अनुवाद गुजराती में भी छपा है। इन लेखों के अतिरिक्त सन् १९३६ से १९६० के बीच उन्होंने ओसवाल नवयुवक, तरुण ओसवाल, तरुण जैन, तरुण, तरुण पाक्षिक तथा परिवार नियोजन पत्रिकाओं का सम्पादन किया और एक ही अंक में विभिन्न सामयिक विषयों पर एकाधिक सम्पादकीय टिप्पणियां लिखीं जिनमें से अधिकांश दो-दो तीन-तीन पृष्ठ की है एवं लेख की गरिमा पाने के योग्य हैं। ऐसे सम्पादकीयों की संख्या भी करीब सात सौ है। साथ ही कई ग्रन्थों की भूमिकायें लिखी हैं, अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर भाषण दिये हैं, रेडियो पर वार्ताएं प्रस्तुत की हैं। इन सबका उल्लेख इस परिशिष्ट के अन्तर्गत किया जा रहा है ताकि उनकी रचनाओं के विषय, महत्व एवं विपुलता का परिचय हमें प्राप्त हो सके।

सिंघीजी की तीन मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, कुछ पुस्तिकाएं भी प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने छह ग्रन्थों का सम्पादन किया है जिनमें चार अभिनन्दन ग्रन्थ हैं। एक नाटक का अनुवाद किया है, मारवाड़ी सम्मेलन के इतिहास की रचना कर रहे हैं। सब की सूची विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत की जा रही है।

अवश्य ही कुछ छूटा भी होगा, उसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

जीवन-सरणी

१९१४ : जन्म ९ अगस्त, वड़ूगांव, जिला जोधपुर राजस्थान।

१९३२ : हाई स्कूल परीक्षा में जयपुर रियासत में प्रथम स्थान; क्षमा देवी से विवाह; पहली रचना 'मन्दिर और पूंजीवाद' का 'ओसवाल नवयुवक' में प्रकाशन।

१९३३ : खादी पहनने का व्रत।

१९३४ : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश; पुत्र का जन्म; 'माधुरी' और 'जागरण' में रचनाओं का प्रकाशन; इलाहाबाद से 'साहित्यरत्न' की परीक्षा में उत्तीर्ण।

१९३५ : प्रेमचन्द से परिचय, काशी विश्वविद्यालय छात्र संघ के सचिव निर्वाचित; पुत्र की मृत्यु।

१९३६ : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी० ए० (आनर्स), विश्वविद्यालय में तृतीय स्थान; 'हंस' में गद्य-काव्य का प्रकाशन; कलकत्ता में नौकरी।

१९३७ : जयपुर रियासत की नौकरी का प्रत्याख्यान; 'वेदना' का प्रकाशन; कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम० ए० में दाखिला; 'ओसवाल नवयुवक' के सम्पादक पद पर नियुक्ति; काशीपुर जूट सेलर्स एसोसिएशन के वैतनिक सेक्रेटरी की नौकरी।

१९३८ : पुत्र श्रीकांत का जन्म; पूर्व भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा और हरिजन उत्थान समिति के सचिव पदों पर नियुक्ति, 'ओसवाल नवयुवक' की सम्पादकी से इस्तीफा; बंगाल जूट डीलर्स एसोसिएशन के वैतनिक सेक्रेटरी की नौकरी; गांधीजी से मुलाकात।

१९४० : बंगाल के व्यक्तिगत सत्याग्रहियों की सूची में नाम; १६ अप्रैल को पत्नी क्षमा देवी का देहांत; तरुण जैन संघ की स्थापना; 'तरुण ओसवाल' के के सम्पादक पद पर नियुक्ति।

१९४१ : बमबारी से पीड़ित लोगों की चिकित्सा के लिए स्वयंसेवक दल की स्थापना।

१९४२ : अगस्त आंदोलन में छिपकर कार्य, जयप्रकाश नारायण, डा० लोहिया और मगनलाल बागड़ी से सम्पर्क; २३ नवम्बर को गिरफ्तारी।

१९४३-४४ : जेल जीवन : स्व० भागीरथ कानोड़िया, बसन्तलाल मुरारका और सीताराम सेकसरिया का संग; जेल से कलकत्ता विश्वद्यालय की हिन्दी एम० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण और सर्वोच्च स्थान प्राप्त; बीमारी।

१९४५ : कलकत्ता मेडिकल कालेज अस्पताल (जेल) से रिहाई।

१९४६ : जनरल फाइबर्स डीलर्स के मुख्य अधिकारी पद पर नियुक्ति ; १६ अप्रैल को सुशीला जैन से विधवा-विवाह ; अपेंडिक्स का आपरेशन ; कलकत्ता के दंगों में राहत-कार्य ।

१९४७ : कलकत्ता में मुसलमानों की सुरक्षा के लिए गठित बड़ाबाजार अमन सभा के सचिव ।

१९४८ : घूंघट (पर्दा) वाले विवाहों के विरोध में सत्याग्रह ; बंगला के साहित्यकारों से सम्पर्क ; परिवार नियोजन समिति की स्थापना ; बंगाल प्रांतीय मारवाड़ी सम्मेलन, खुलना अधिवेशन के अध्यक्ष :

१९४९ : हिन्दू कोड बिल का समर्थन ; सामाजिक क्रान्ति सम्मेलन का आयोजन ; तरुण संघ द्वारा पहला नाटक ; जयपुर में बाल-दीक्षा विरोध सम्मेलन में प्रमुख भूमिका ; कलकत्ते में जैन मन्दिर पर भोज के विरुद्ध प्रदर्शन ; 'तरुण' साप्ताहिक का प्रकाशन ; तरुण पुस्तकालय का प्रारम्भ ।

१९५० : शरत्चन्द्र स्मारक कोष के लिए धन-संग्रह ; विकास विद्यालय रांची की स्थापना ; उड़ीसा के अंगूल बाबा के पाखण्ड का विरोध ; नेहरू लियाकत अली समझौते के तहत पूर्वी पाकिस्तान से शरणार्थियों को भारत में लाने के लिए पश्चिम बंगाल के प्रतिनिधि नियुक्त ; उत्तर कलकत्ता कांग्रेस के चुनाव अधिकारी ।

१९५१ : तरुण संघ द्वारा उपेन्द्रनाथ अश्क के दो एकांकियों का मंचन, सिंघी जी द्वारा अभिनय ; तरुण राय के 'समस्या' नाटक में अभिनय ; कांग्रेस से इस्तीफा ; भाई रतनचन्द के विवाह को शारदा ऐक्ट के उल्लंघन के कारण रोका ।

१९५२ : लोकसभा के लिए उम्मीदवार ; असम प्रान्तीय मारवाड़ी कार्यकर्त्ता सम्मेलन के अध्यक्ष ; भाई पद्मचन्द्र सिंघी का जयपुर में अदालत में रजिस्टरी से विवाह ।

१९५३ : प० बंगाल माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की स्कूल फाइनल परीक्षा के लिए हिन्दी के प्रधान-परीक्षक पद पर नियुक्ति, नियुक्ति को लेकर विवाद ; थियेटर सेंटर की स्थापना ; श्री दौलतराम नोपानी विद्यालय के सचिव ।

१९५४ : तरुण संघ के 'अलग-अलग रास्ते' नाटक में भूमिका ; मनसुखराय मोर के वृद्ध-विवाह का विरोध ; गोवध विरोधी आंदोलन का विरोध ।

१९५५ : 'अनामिका' की स्थापना ; भँवरमलजी के निवास-स्थान पर परित्यक्ता का विवाह ; बाल दीक्षा के प्रश्न पर आयोजित सभा में भँवरलालजी पर हमला ; चिन्ताजनक रूप से घायल, दस घण्टे बाद होश ; शिक्षायतन कालेज के मन्त्री ।

१९५६ : तलाक समिति की स्थापना ; वसन्तलाल मुरारका अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन ।

१९५७ : 'नये हाथ' में अभिनय ; अ० भा० परिवार नियोजन संघ के उपाध्यक्ष ; बड़ाबाजार में परिवार नियोजन केन्द्र की स्थापना ।

१९५८ : 'राष्ट्र योजना और परिवार योजना' पुस्तक का प्रकाशन ; जातिप्रथा के विरुद्ध कानून बनाने की मांग।

१९५९ : अणुव्रत आंदोलन का विरोध ; धार्मिक क्रांति पर परिसंवाद का आयोजन।

१९६१ : राजस्थान धार्मिक क्रान्ति सम्मेलन, लाडनूं में प्रमुख भूमिका ; नागरिक स्वास्थ्य संघ के अध्यक्ष ; अनामिका द्वारा नाट्य परिसंवाद का आयोजन ; अष्टग्रह योग की भविष्यवाणी का विरोध ; जैन समाज सम्बन्धी पुस्तक 'भग्न हृदय' के लेख का प्रकाशन।

१९६२ : मुंगेर जिला मारवाड़ी सम्मेलन का उद्घाटन ; चीन के आक्रमण के वक्त विवाहों में आडम्बर के खिलाफ आंदोलन ; युद्ध में सहायता-कार्य।

१९६३ : द्विजेन्द्रलाल राय जन्म शताब्दी समिति के संयुक्त मन्त्री ; परिवार नियोजन कार्यों के अध्ययन के लिए जापान-यात्रा।

१९६४ : नेपाल में अन्तर्राष्ट्रीय परिवार नियोजन संघ के हिन्द महासागर क्षेत्रीय सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य ; अनामिका द्वारा नाट्य-महोत्सव का आयोजन ; मारवाड़ी समाज में धन-संचय और भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंदोलन ; जयपुर में कानोड़िया महिला कालेज की स्थापना।

१९६५ : अन्तर्राष्ट्रीय परिवार नियोजन संघ के संचालक मंडल के सदस्य ; इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, स्विटजरलैंड और स्वीडन की यात्रा।

१९६६ : कलकत्ता में एडुकेशनल इंस्टीट्यूशन एमरजेंसी कमेटी के सेक्रेटरी ; पुत्र श्रीकांत का बंगाली लड़की तपती वसु के साथ विवाह ; लाडनूं में सम्प्रदाय विरोधी सम्मेलन में प्रमुख भूमिका।

१९६७ : चिली में अन्तर्राष्ट्रीय परिवार नियोजन सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व; दक्षिणी अमरीका, अमरीका, स्कैंडिनेविया और रूस की यात्रा ; फोर्ड फाउन्डेशन के तत्वावधान में अमरीकी विश्वविद्यालयों में व्याख्यान ; ओक्लाहामा सिटी टाइम्स द्वारा इंटरव्यू ; 'आवेमेरिया' (शिकागो) में सिंघीजी पर लेख ; सुरीनाम में स्वागत ; प्रसिद्ध लेखक बोर्जेस से मुलाकात; आडम्बरयुक्त विवाहों के खिलाफ प्रदर्शन ; गर्भपात का समर्थन।

१९६८ : इण्डियन चेम्बर आफ कामर्स के सहयोग से कलकत्ता और आसपास के औद्योगिक इलाकों के मजदूरों के बीच परिवार नियोजन कार्यक्रम ; पुस्तक 'मारवाड़ी समाज : चुनौती और चिन्तन' का प्रकाशन ; 'पारिवारिकी' की स्थापना।

१९६९ : पुत्री सुषमा का बंगाली लड़के उज्ज्वल गुप्त से विवाह, भिखारियों की नसबंदी का आयोजन ; शिक्षायतन कालेज में गबन का मामला ; परिवार नियोजन पर व्याख्यान देने नाइजीरिया, यूरोप, अमरीका और जापान की यात्रा ; लन्दन के सण्डे टाइम्स में जन्म नियन्त्रण पर सिंघीजी के विचार।

१९७१ : परम मित्र जगन्नाथ बेरीवाल की मृत्यु ; नौकरी से अवसर ग्रहण कर सारा समय सामाजिक कार्यों के लिए लगाने का निश्चय ; परिवार नियोजन सम्मेलन के लिए श्री लंका की यात्रा।

१९७३ : विवाहों में सुधार के लिए आंदोलन; अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के (रांची अधिवेशन) अध्यक्ष; सम्मेलन द्वारा भ्रष्टाचारियों और मुनाफाखोरों की निन्दा।

१९७४ : सीताराम सेकसरिया अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन; विवाह स्थलों पर आडंबर के खिलाफ प्रदर्शन; अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में देश का दौरा। अनामिका द्वारा आयोजित हिन्दी नाट्य महोत्सव में सक्रिय सहयोग।

१९७५ : शारदा सदन सोसाइटी, मुकुन्दगढ़ के अध्यक्ष।

१९७६ : अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन (हैदराबाद अधिवेशन) के पुनः अध्यक्ष निर्वाचित।

१९७७ : अन्तर्राष्ट्रीय परिवार नियोजन संघ के प्रशांत महासागरीय क्षेत्र के सम्मेलन में भाग लेने के लिए थाईलैंड और जापान की यात्रा।

१९७९ : पत्नी सुशीला मोटर दुर्घटना में भयंकर रूप से घायल।

१९८० : अनामिका के रजत जयन्ती उत्सव में सक्रिय सहयोग, लंबे व्यवधान के बाद पुनः अभिनय; द्वितीय पुत्री सुस्मिता का शिशिर गुप्त से अन्तर्जातीय विवाह। दहेज के विरुद्ध आंदोलन; अस्वस्थता।

१९८१ : भागीरथ कानोड़िया स्मृति ग्रन्थ का संपादन।

१९८२ : सत्यपाल धवले स्मृति ग्रन्थ का संपादन।

सिंघी जी द्वारा लिखित, सम्पादित एवं अनूदित ग्रन्थों की सूची

पुस्तकें

वेदना (गद्यकाव्य, (१९३७)
राष्ट्र योजना और परिवार-नियोजन (प्रथम संस्करण १९५६
द्वितीय संस्करण १९५८)
भग्न हृदय के लेख (१९६१)
ईकोज़ ऑफ एटरनिटी (वेदना का कुमारी सविता सहगल द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद, १९७२)

पुस्तिकाएं

पूर्व भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा (१९४१)
परिवार नियोजन (सन् १९५४)
मारवाड़ी समाज : चुनौती और चिंतन (१९५७)
अणुव्रत : प्रगति या प्रवंचना ? (अप्रैल १९५९)
अणुव्रत बनाम अणुबम (नवम्बर १९५९)

अनुवाद

समस्या (धनंजय वैरागी लिखित बांग्ला नाटक का हिन्दी अनुवाद, सन् १९५१, अप्रकाशित।

सम्पादित ग्रन्थ

वसंतलाल मुरारका स्मृति ग्रंथ (भारत में समाज सुधार आंदोलन, १९५७)
सेमिनार ऑन मेडिकल एण्ड सोशियो इकनामिक आसपेक्ट आफ एवारशन (१९७२)
पद्मभूषण श्री सीताराम सेकसरिया अभिनन्दन ग्रन्थ (भारत में स्त्री-शिक्षा का विकास ; १९७४)
स्वर्गीय भागीरथ कानोड़िया स्मृतिग्रन्थ (१९८१)
स्वतन्त्रता सेनानी स्वर्गीय सत्यपाल धवले स्मृतिग्रन्थ (१९८३)

प्रकाश्य

अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन का इतिहास

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख, गद्य काव्य संस्मरण, यात्रा विवरण आदि

१ मन्दिर और पूंजीवाद (ओसवाल नवयुवक, फरवरी १९३२)
२ अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन का भविष्य
(जैन युग, १ दिसम्बर १९३२)
३ एक जैन कन्या की कुर्बानी और
समाज के वीर युवकों से अपील (श्वेताम्बर जैन, दिसम्बर १९३२)
४ भोले भगवान (गद्य-काव्य/माधुरी, मार्च १९३३)
५ पतित प्रलाप (कहानी/जागरण, अप्रैल १९३३)
६ पगली (कहानी/जागरण, १९ जून १९३३)
७ कल्पना (गद्य-काव्य/सहेली, दिसम्बर १९३३)
८ स्वाधीनता कैसी ? (जागरण, १९३३)
९ भारत का स्त्री समाज (सहेली, मई १९३४)
१० साहित्य में राष्ट्रीय भावना (माधुरी, जुलाई १९३४)
११ निरादर (गद्य-काव्य/हंस, दिसम्बर १९३४)
१२ हिन्दू समाज का सामाजिक जीवन एक दृष्टिपात (प्रभात, १९३४)
१३ दो पक्ष (गद्य-काव्य/माधुरी, जनवरी १९३५)
१४ परतंत्र (गद्य-काव्य/हंस, मार्च १९३५)
१५ हिन्दी का आलोचना साहित्य (माधुरी, अप्रैल १९३५)
१६ ऊर्मि (गद्य-काव्य/हंस,अप्रैल १९३५)
१७ सिनेमा और हमारा आदर्श (प्रभात, ३ मई १९३५)
१८ अ० भा० ओसवाल नवयुवक परिषद् के लिए क्या आवश्यकहै ?
(ओसवाल, ५ जुलाई १९३५)
१९ वेदना (गद्य-काव्य/हंस, अक्टूबर १९३५)
२० भारतीय सुवर्ण निर्यात की समस्या (दैनिक 'आज', ४, ५ दिसम्बर १९३५)
२१ साधना (गद्य-काव्य/हंस, दिसम्बर १९३५)
२२ हमारा स्वातंत्र्य युद्ध (सहेली, १९३५)
२३ जीवन मदिरा (गद्य-काव्य/शांति, जनवरी १९३६)
२४ लेखन शैली (लेखक, फरवरी १९३६)
२५ सूर्य (गद्य-काव्य/हंस, मार्च १९३६)
२६ जीवन सरिता (गद्य-काव्य/हंस, जून १९३६)

२७ तुम्हारे प्रति (गद्य-काव्य/ओसवाल नवयुवक, जून १९३६)
२८ पर्यूषण पर्व (ओसवाल नवयुवक, सितम्बर १९३६)
२९ त्याग (गद्य-काव्य/ओसवाल नवयुवक, अक्टूबर १९३६)
३० स्व० प्रेमचन्दजी (ओसवाल नवयुवक, अक्टूबर १९३६)
३१ सम्पादकीय (ओसवाल नवयुवक, नवम्बर १९३६)
३२ युवक हृदय (ओसवाल नवयुवक, दिसम्बर १९३६)
३३ भूतपूर्व सम्राट एडवर्ड और
मिसेज सिम्पसन की प्रेम कहानी (ओसवाल नवयुवक, दिसम्बर १९३६)
३४ हिन्दी का अनुवाद साहित्य (हंस, दिसम्बर १९३६)
३५ कवि (गद्य-काव्य/मारवाड़ी, जनवरी १९३७)
३६ हमारे सिक्के का मानदण्ड (मारवाड़ी, जनवरी १९३७)
३७ रुपये का मूल्य (ओसवाल नवयुवक, मार्च १९३७)
३८ प्रश्नोत्तर (गद्य-काव्य/ओसवाल नवयुवक, अप्रैल १९३७)
३९ जैन साहित्य के महान विचारक पं सुखलालजी (ओसवाल नवयुवक, मई १९३७)
४० मनचले की मौज (ओसवाल नवयुवक, अगस्त १९३७)
४१ The Gems of Rajasthani Literature (१९३७)
४२ युवक और युवती (लघु कहानी/ओसवाल नवयुवक, मई १९३७)
४३ जीवन (गद्य-काव्य/ओसवाल नवयुवक, जून १९३७)
४४ ओसवाल महासम्मेलन का आगामी अधिवेशन (ओसवाल नवयुवक, जुलाई १९३७)
४५ विराट् (गद्य-काव्य/मारवाड़ी, जुलाई १९३७)
४६ A Great mystic Poet of Rajasthan (मारवाड़ी, जुलाई १९३७)
४७ बाड़े का जीवन (कहानी/ओसवाल नवयुवक, अगस्त १९३७)
४८ जड़ता और प्रगति (ओसवाल नवयुवक, सितम्बर १९३७)
४९ नवयुवक बन्धुओं से (ओसवाल नवयुवक, अक्टूबर १९३७)
५० ओसवाल महासम्मेलन (ओसवाल नवयुवक, नवम्बर-दिसम्बर १९३७)
५१ आर्थिक और सांस्कृतिक (मारवाड़ी, नवम्बर १९३७)
५२ सेवा के नाम पर (समाज सेवक, नवम्बर १९३७)
५३ प्रश्नोत्तर (गद्य-काव्य/ओसवाल नवयुवक, नवम्बर १९३७)
५४ तुम्हारे प्रति (गद्य-काव्य/ओसवाल नवयुवक, नवम्बर १९३७)
५५ आत्मार्पण (गद्य-काव्य/ओसवाल नवयुवक, नवम्बर १९३७)
५६ त्याग (गद्य-काव्य/ओसवाल नवयुवक, नवम्बर १९३७)
५७ आकुल स्पन्दन (कविता/ओसवाल नवयुवक, नवम्बर १९३७)
५८ राजस्थान (राजस्थान, शिवरात्रि सं० १९९३)
५९ डायरेक्टरी और बस्ती पत्रक (ओसवाल नवयुवक/दिसम्बर १९३७)
६० ओसवाल महासम्मेलन-जन्म, विकास और भविष्य (ओ० न०, दिसम्बर, १९३७)
६१ एक पत्र (ओसवाल नवयुवक, मार्च १९३८)
६२ धर्म और धन (जनवरी १९३८)

६३ विवेक वाणी (ओसवाल नवयुवक, फरवरी १९३८)
६४ Lord Mahavir & his Mission
(Article/ओसवाल नवयुवक, अप्रैल-मई १९३८)
६५ जयपुर राज्य पर भौगोलिक दृष्टिपात (प्रभात, २३ अगस्त १९३८)
६६ प्रार्थी हूँ (कविता/ओसवाल नवयुवक, अगस्त-नवम्बर १९३८)
६७ साधुत्व (भग्नहृदय) (ओसवाल नवयुवक, अगस्त-नवम्बर १९३८)
६८ सर्वज्ञ (ओसवाल नवयुवक, दिसम्बर १९३८)
६९ शिक्षा का आदर्श (ओसवाल नवयुवक, दिसम्बर १९३८)
७० श्रावक से (ओसवाल नवयुवक, दिसम्बर १९३८)
७१ ओसवाल समाज का सार्वजनिक जीवन (समाज सेवक, २६ अप्रैल १९३९)
७२ अन्तिम जैन तीर्थंकर भगवान महावीर (दैनिक विश्वमित्र, अप्रैल १९३९)
७३ भगवान महावीर और उनका सिद्धांत
७४ तरुण का संदेश (तरुण ओसवाल, जनवरी १९४०)
७५ हमारी स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा (तरुण ओसवाल, फरवरी १९४०)
७६ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण ओसवाल, फरवरी १९४०)
७७ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण ओसवाल, मार्च १९४०)
७८ जैन जीवन (तरुण ओसवाल, अप्रैल १९४०)
७९ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण ओसवाल, मई १९४०)
८० सार्वजनिक जीवन का विकास (समाज सेवक, १६ जून १९४०)
८१ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण ओसवाल, जून १९४०)
८२ समाज सेवा (समाज सेवक, २१ जुलाई १९४०)
८३ और यह सब धर्म के नाम पर (तरुण ओसवाल, जुलाई १९४०)
८४ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण ओसवाल, अगस्त १९४०)
८५ चौमासा और पर्यूषण (तरुण ओसवाल, सितम्बर १९४०)
८६ व्यपार में अहिंसा (समाज सेवक, २७ अक्टूबर १९४०)
८७ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण ओसवाल, अक्टूबर १९४०)
८८ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण ओसवाल, नवम्बर १९४०)
८९ सत्याग्रह के समय हमारा कर्त्तव्य (समाज सेवक, ८ दिसम्बर १९४०)
९० साधु ! (गद्य-काव्य/तरुण ओसवाल, दिसम्बर १९४०)
९१ सेवा (तरुण ओसवाल, दिसम्बर १९४०)
९२ पर्यूषण व्याख्यान माला का प्राक्कथन (१९४०)
९३ अहिंसा (भग्न हृदय) (तरुण जैन, जनवरी-फरवरी १९४१)
९४ अहिंसा का विधायक रूप (तरुण जैन, जनवरी-फरवरी १९४१)
९५ क्यों नहीं यह जानते देव ? (गद्य-काव्य/तरुण जैन, मार्च १९४१)
९६ जैन गौरव (तरुण जैन, मार्च, १९४१)
९७ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण जैन, मार्च १९४१)
९८ ट्रस्टी (गद्य-काव्य/तरुण जैन, मार्च १९४१)

९९ महावीर (तरुण जन, अप्रैल १९४१)
१०० सुपात्र दान (तरुण जैन, अप्रैल १९४१)
१०१ अहिंसा प्रश्नावली के उत्तरों पर एक दृष्टि (तरुण जैन, अप्रैल १९४१)
१०२ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण जैन, अप्रैल १९४१)
१०३ बीकानेर इनकम टैक्स विरोधी आंदोलन पर एक दृष्टिपात (तरुण जैन, अ० १९४१)
१०४ समाज (गद्य-गीत/समाज सेवक, १० अप्रैल १९४१)
१०५ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण जैन, मई १९४१)
१०६ समाज ? (गद्य-काव्य/तरुण जैन, जून १९४१)
१०७ ओ मूढ़ श्रावक (भग्न हृदय) (तरुण जैन, जून १९४१)
१०८ पंचवर्षीय योजना (समाज सेवक, १३ जुलाई १९४१)
१०९ पाट व्यवसाय और मारवाड़ी समाज (समाज सेवक)
११० धर्म (गद्य-काव्य/तरुण जैन, जुलाई १९४१)
१११ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण जैन, जुलाई १९४१)
११२ व्यापार में अहिंसा (तरुण जैन, अगस्त १९४१)
११३ पर्यूषण के लिये योजना (भग्न हृदय) (तरुण जैन, अगस्त १९४१)
११४ कर्म ! (गद्य-काव्य/तरुण जैन, सितम्बर १९४१)
११५ क्षमा याचना (भग्न हृदय) (तरुण जैन, सितम्बर १९४१)
११६ मेरा धर्म (तरुण जैन, अक्टूबर १९४१)
११७ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण जैन, अक्टूबर १९४१)
११८ अन्धा कुप्प (तरुण जैन, नवम्बर १९४१)
११९ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण जैन, नवम्बर १९४१)
१२० उत्कल प्रवास के चार दिन (यात्रा/समाज सेवक, नवम्बर १९४१)
१२१ थली में पांच दिन का प्रवास (तरुण जैन, दिसम्बर १९४१)
१२२ "वखाण" और "पचखाण" (भग्न हृदय) (तरुण जैन, दिसम्बर १९४१)
१२३ मृत्यु ! (गद्य-काव्य/तरुण जैन, जनवरी १९४२)
१२४ श्री भग्न हृदय की चिट्ठी (तरुण जैन, जनवरी १९४२)
१२५ युद्ध ! (गद्य-काव्य/तरुण जैन, फरवरी १९४२)
१२६ संसार से निवृत्ति (भग्न हृदय) (तरुण जैन, फरवरी १९४२)
१२७ जैन धर्म और जाति भेद (तरुण जैन, फरवरी १९४२)
१२८ आत्मा ! (गद्य-काव्य/तरुण जैन, मार्च १९४२)
१२९ आचार्यों की कवायद (भग्न हृदय) (तरुण जैन, मार्च १९४२)
१३० धर्मों पर संकट (गद्य-काव्य/तरुण जैन, अप्रैल १९४२)
१३१ अन्धा श्रावक (भग्न हृदय) (तरुण जैन, अप्रैल १९४२)
१३२ संघ (गद्य-काव्य/तरुण जैन, मई-जून १९४२)
१३३ चौमासा न कराइये (भग्न हृदय) (तरुण जैन, मई-जून १९४२)
१३४ असम का जादू (तरुण जैन, जुलाई १९४२)
१३५ सात प्रश्नों के उत्तर (भग्न हृदय) (तरुण जैन, अगस्त १९४२)

१३६ खाद्य पदार्थों के अभाव और महंगाई की समस्या
(समाजसेवक, १० अगस्त १९४२)
१३७ बलिदान की घड़ी (समाज सेवक)
१३८ मारवाड़ी सम्मेलन-परीक्षाकाल (समाज सेवक, १९४२)
१३९ सम्मेलन का कार्य और उसकी परीक्षा (समाज सेवक, १९४२)
१४० हमारा दृष्टिकोण (समाज सेवक, १ अप्रैल १९४७)
१४१ एटम के युग में (समाज सेवक, १ अप्रैल १९४७)
१४२ वर्ग चेतना के युग में (समाज सेवक, १९४७)
१४३ राजपूताना : एकीकरण आन्दोलन (रियासती आवाज, १३ जून १९४८)
१४४ Will Jaipur congress Bring Freedom to States People ?
(२१ नवम्बर १९४८)
१४५ प्रान्तीयता के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार
(पत्र, २१ नवम्बर १९४८)
१४६ धर्म के आधार पर मानव विभाजन (भग्न हृदय) (तरुण जैन, अक्टूबर १९४८)
१४७ हिन्दू कोडबिल-एक विश्लेषण (दैनिक विश्वमित्र, २१ जनवरी १९४९)
१४८ पर्दा विरोधी सत्याग्रह का प्रभाव (दैनिक विश्वमित्र, २ मार्च १९४९)
१४९ अणु का आवाहन (कविता/नया समाज, मार्च १९४९)
१५० आगे कदम (दैनिक विश्वमित्र, २८ अप्रैल १९४९)
१५१ युवक के विवाह के अवसर पर (गद्य-काव्य/दैनिक विश्वमित्र १९४९)
१५२ सामाजिक क्रान्ति सम्मेलन (दैनिक विश्वमित्र, १९ मई १९४९)
१५३ जय-पराजय (नया समाज, जुलाई १९४९)
१५४ नीति, दुर्नीति और राजनीति (नया समाज, अगस्त १९४९)
१५५ सामाजिक क्रान्ति (दैनिक विश्वमित्र, १५ अगस्त १९४९)
१५६ ध्वंस और निर्माण (नया समाज, अक्टूबर १९४९)
१५७ गांधी की कब्र पर खादी के फूल
(भग्न हृदय) (नया समाज, अक्टूबर १९४९, तरुण नवम्बर १९४९)
१५८ ईश्वर बल दे उन्हें (दैनिक विश्वमित्र, ३० नवम्बर १९४९)
१५९ स्वतन्त्रता (भग्न हृदय) (तरुण, सितम्बर १९४९)
१६० धर्म और विज्ञान (तरुण, नवम्बर १९४९)
१६१ मुहपत्ती की लाश (भग्न हृदय) (तरुण, नवम्बर १९४९)
१६२ धर्म और धन की दुरभिसंधि (तरुण, दिसम्बर १९४९)
१६३ महावीर की बात (भग्न हृदय) (तरुण, दिसम्बर १९४९)
१६४ समाज सुधार की आवश्यकता (दैनिक विश्वमित्र, १७ जनवरी १९५०)
१६५ Our Republic and Social Reforms (Advance)
१६६ महावीर ने कहा था
१६७ शांतिवादियों से (भग्न हृदय) (नया समाज, जनवरी १९५०)

१६८ मैं नहीं जानता, वह गांधी कौन है ? (भग्न हृदय)
(नया समाज, फरवरी १९५०; तरुण, फरवरी १९५०)

१६९ मध्यम वर्ग की दुरवस्था (तरुण, फरवरी १९५०)

१७० जैन समाज को हिन्दू समाज से पृथक मानकर विशेषाधिकार की मांग गलत है
(तरुण, फरवरी १९५०)

१७१ युग द्रष्टा टालस्टाय (तरुण, फरवरी १९५०)

१७२ रोमा रोलां (तरुण, फरवरी १९५०)

१७३ समाज की आत्मा क्या बोलती है ? (तरुण, फरवरी १९५०)

१७४ इतिहास बोलता है ! (नया समाज, अप्रैल १९५०)

१७५ खलील जिब्रान (तरुण, जून १९५०)

१७६ रोटी के मोर्चे पर संस्कृति के गीत (भग्न हृदय), (तरुण जुलाई १९५०)

१७७ सामंतवादी शंकराचार्य, सम्प्रदायवादी करपात्री, पूंजीवादी तुलसी गणी
(भग्न हृदय), (तरुण, अगस्त १९५०)

१७८ सावधान, यह आर्य संस्कृति है (भग्न हृदय), (नया समाज, अक्टूबर १९५०)

१७९ बिहार प्रान्तीय मारवाड़ी सम्मेलन को भेजे गये पत्र की नकल
(दैनिक विश्वमित्र २० अक्टूबर १९५०)

१८० मैं कुछ कहूँ ? (समाज सेवक)

१८१ संतति निग्रह क्यों ? (नया समाज, दिसम्बर १९५०)

१८२ संतति निग्रह एक जांच तथा विश्लेषण (तरुण, जनवरी १९५१)

१८३ संतति नियमन और सरकार (नया समाज, जनवरी १९५१)

१८४ संतति निग्रह—एक जांच तथा विश्लेषण (नया समाज, फरवरी १९५१)

१८५ पुरुष-स्त्री (तरुण, अप्रैल १९५१)

१८६ कलाकार हीराचन्द दुगड़ (तरुण, मई १९५१)

१८७ जन्म निरोध अप्राकृतिक है ? (नया समाज, मई १९५१)

१८८ लियाँ ट्राटस्की (तरुण, जून १९५१)

१८९ जवानी बोलती है (तरुण, जून १९५१)

१९० तीन चित्र (भग्न हृदय), (नया समाज, जून १९५१)

१९१ जन-प्रतिनिधित्व और व्यवसायी (नया समाज, जून १९५१)

१९२ लिफाफा (भग्न हृदय), (तरुण, नया समाज, अगस्त-सितम्बर-१९५१)

१९३ जनतन्त्र और जनमत (तरुण, अगस्त १९५१)

१९४ मिट्टी का दर्शन (कविता/नया समाज, अक्टूबर १९५१)

१९५ गांधी जी—मृत्यु के बाद गांधी को जीने दो
(भग्न हृदय) (तरुण, अक्टूबर १९५१)

१९६ जनतन्त्र और संस्कृति (तरुण, नवम्बर १९५१)

१९७ विचार बनाम व्यक्ति (तरुण, जनवरी-फरवरी १९५२)

१९८ जन्म नियन्त्रण और नेहरू सरकार (तरुण, जनवरी-फरवरी १९५२)

१९९ लाश का बयान (तरुण, नया समाज, मार्च-अप्रैल १९५२)

२०० सौंदर्य की प्रदर्शनी (तरुण, मार्च १९५२)
२०१ जन्म नियन्त्रण और नेहरू सरकार (नया समाज, अप्रैल १९५२)
२०२ हमारा सार्वजनिक जीवन (नव भारत टाइम्स, २८ मई १९५२)
२०३ समाज सुधार और क्रान्ति (जून, १९५२)
२०४ भूमि दो ? (व्यंग्य नया समाज, जुलाई १९५२)
२०५ प्रश्न चिन्ह (कविता/नया समाज, जुलाई १९५२)
२०६ जन्म नियन्त्रण और जनमत (तरुण, नया समाज, अगस्त-सितम्बर १९५२)
२०७ आपकी आवाज : आपका उत्तरदायित्व (तरुण, अगस्त १९५२)
२०८ जन्म नियन्त्रण के बारे में बहकी बातें (तरुण, सितम्बर १९५२)
२०९ शृंखला गीत (कविता/तरुण, नया समाज, अक्टूबर-नवम्बर १९५२)
२१० प्रतिक्रियावादी राजनीतिका अन्तिम शस्त्र—गो-माता
(तरुण, अक्टूबर-नवम्बर १९५२)
२११ खून से लिखी चिट्ठी (तरुण, अक्टूबर-नवम्बर १९५२)
२१२ जनता चाहती है ? (नया समाज, अक्टूबर १९५२)
२१३ परिवार-नियोजन तृतीय विश्व सम्मेलन (तरुण, दिसम्बर १९५२)
२१४ परिवार नियोजन क्या क्यों और कैसे ? (नया समाज, जनवरी १९५३)
२१५ मार्गरेट सेंगर के साथ चालीस मिनट (नया समाज, जनवरी १९५३)
२१६ कामायनी का संदेश (तरुण, जनवरी १९५३)
२१७ अत्यन्त सामयिक सुझाव (तरुण, जनवरी १९५३)
२१८ मेरी पहली और आखिरी कहानी (तरुण, फरवरी-मार्च १९५३)
२१९ साम्य की शृंखलाएं (भग्न हृदय), (नया समाज, मार्च १९५३)
२२० सीजन डल है (भग्न हृदय), (तरुण पाक्षिक, १५ जून, १९५३)
२२१ बूढ़ी राजनीति (भग्न हृदय), (तरुण पाक्षिक, १५ जून १९५३)
२२२ काली लड़कियां (तरुण पाक्षिक, १५ जुलाई १९५३)
२२३ यह अभियान (तरुण पाक्षिक, १ दिसम्बर १९५३)
२२४ सन्तान वृद्धि, गम्भीर समस्या (तरुण पाक्षिक, १५ दिसम्बर १९५३)
२२५ संघी मोतीलाल जी मास्टर : परिचय और श्रद्धांजलि (१९५३)
२२६ परिवार नियोजन और स्वास्थ्य (तरुण पाक्षिक, १५ जनवरी १९५४)
२२७ आज के समाज को साधु संस्था की आवश्यकता है या नहीं ?
(तरुण पाक्षिक, १ फरवरी १९५४)
२२८ जय कुम्भ ! (भग्न हृदय), (तरुण पाक्षिक, १ मार्च १९५४ नया समाज
१९५४)
२२९ रूढ़िवाद से मुक्ति (तरुण पाक्षिक, १ सितम्बर १९५४)
२३० हट जाना गाय आ रही है (भग्न हृदय),(तरुण पाक्षिक, १ अक्टूबर १९५४,
नया समाज, अक्टूबर १९५४)
२३१ हिन्दी और कलकत्ता (दैनिक विश्वमित्र, २४ नवम्बर १९५४)
२३२ विद्यालय संचालकों से

२३३ शिक्षा और मनोविज्ञान
२३४ Hindi Drama and the stage (Amrit Bazar Patrika, १९५४)
२३५ विषय-वासना रहित संतति (तरुण १ जनवरी १९५५)
२३६ हिन्दी और कलकत्ता (नया समाज, फरवरी १९५५)
२३७ 'देशभक्त' और 'देशद्रोही' (तरुण पाक्षिक, १५ सितम्बर १९५५)
२३८ आर्थिक स्वराज्य की तीर्थ यात्रा (तरुण पाक्षिक, १५ सितम्बर १९५५)
२३९ दिल्ली वता रही है आबादी का रुख (तरुण पाक्षिक, १५ सितम्बर १९५५)
२४० व्यय-कर का सुझाव (तरुण पाक्षिक, १५ सितम्बर १९५५)
२४१ नये भारत की नई महानता (तरुण पाक्षिक, १५ सितम्बर १९५५)
२४२ धर्म वहिष्कार प्रथा की समाप्ति (तरुण पाक्षिक, १५ सितम्बर १९५५)
२४३ विवाह विच्छेद के लिये १००० पतियों के आवेदन
(तरुण पाक्षिक, १५ सितम्बर १९५५)
२४४ अस्पृश्यता की समस्या (तरुण पाक्षिक, १ अक्टूबर १९५५)
२४५ अस्पृश्यता की समस्या (नया समाज, अक्टूबर १९५५)
२४६ मेरे मन में किसी के प्रति कटुता या आक्रोश नहीं
(तरुण पाक्षिक, १५ नवम्बर और १ दिसम्बर १९५५)
२४७ विसर्जन का निमंत्रण (राजस्थानी वीर, २५ दिसम्बर १९५५)
२४८ मैं बड़ा बनना चाहता हूं (सन्मार्ग पूजा विशेषांक)
२४९ अस्वस्थ तरुणाई (छात्र अभिमान)
२५० स्वतंत्रता और स्वतंत्रता (दैनिक विश्वमित्र)
२५१ अभिनंदन की वेला में (गद्य/काव्य)
२५२ नये क्षितिज की ओर (गद्य/काव्य)
२५३ परिवार नियोजन आपरेशन विधि
(दैनिक विश्वमित्र राजस्थानी वीर नया समाज अप्रैल १९५६)
२५४ आज का पुण्य दिवस (तरुण पाक्षिक, १ फरवरी १९५६)
२५५ विसर्जन का निमंत्रण (तरुण पाक्षिक, १ अप्रैल १९५६)
२५६ चन्दे में भी धन्धे की मनोवृत्ति (दैनिक विश्वमित्र, १ मई १९५६)
२५७ हमारे उद्योग और हमारे आदमी (दैनिक विश्वमित्र, १७ मई १९५६)
२५८ हमारे उद्योग : हमारे आदमी (तरुण पाक्षिक, १५ मई १९५६)
२५९ अजमेर से अमरावती तक (राजस्थानी वीर, १ जून १९५६)
२६० विधवा विवाह के सौ वर्ष (दैनिक विश्वमित्र, २५ जुलाई १९५६)
२६१ ८, ९, १० (तरुण, १५ सितम्बर १९५६, दैनिक विश्वमित्र,
राजस्थानी वीर, १ अक्टूबर १९५६)
२६२ सांस्कारिक क्रांति (दैनिक विश्वमित्र, ५ सितम्बर १९५६)
२६३ धर्म, साधु और कानून (दैनिक विश्वमित्र, ३० अक्टूबर १९५६)
२६४ हृदय परिवर्तन की पगडंडियां (भग्न हृदय), (नया समाज, अक्टूबर १९५६)
२६५ श्री वसंतलाल मुरारका (तरुण पाक्षिक, १५ अक्टूबर १९५६)

२६६ आज का एशिया (तरुण पाक्षिक, १५ नवम्बर १९५६)
२६७ समाज सुधार के स्तम्भ (दैनिक विश्वमित्र २ नवम्बर १९५६)
२६८ जातिवाद और छुआछूत की जड़ (दैनिक विश्वमित्र, १६ नवम्बर १९५६)
२६९ अभिनंदनीय सेठ जी
२७० विनोवा जी का वैज्ञानिक दृष्टिकोण (तरुण पाक्षिक, १५ दिसम्बर १९५६)
२७१ संस्कृतं शरणं गच्छामि ! (भग्न हृदय), (तरुण पाक्षिक, १ जनवरी १९५७)
२७२ राष्ट्रीय योजनाएं और परिवार नियोजन (नया समाज, फरवरी १९५७)
२७३ समस्त योजनाओं की योजना : परिवार नियोजन
(सा० हिन्दुस्तान, १० फरवरी १९५७)
२७४ भारत में पुस्तकालयों का विकास (तरुण पाक्षिक, १५ मार्च १९५७)
२७५ स्त्री-पुरुष सम्वन्ध का नया इतिहास (तरुण पाक्षिक, १५ मई १९५७)
२७६ राष्ट्रीय योजनाएं और परिवार नियोजन
(दैनिक विश्वमित्रं, १२ जून १९५७)
२७७ दृष्टि विहीन द्रष्टा ! (तरुण पाक्षिक, १५ जून, १ जुलाई १९५७)
२७८ मैं कुछ कहूं ? (राजस्थान सितम्बर १९५७)
२७९ नया समाज : नया कानून (दैनिक विश्वमित्र, २६ अक्टूबर १९५७)
२८० छुआछूत की रोकथाम (तरुण, १५ अक्टूवर १९५७)
२८१ सवसे बड़ी समस्या है जाति, समाधान है—उसको तोड़ना
(तरुण पाक्षिक, १-५ नवम्बर १९५७)
२८२ सार्वजनिक जीवन की शव-परीक्षा (दैनिक विश्वमित्र, २९ नवम्बर १९५७)
२८३ खुला दिमाग चाहिए ! (छात्र अभियान, दिसम्बर १९५७)
२८४ Plan or Perish (Vigil)
२८५ समाज सुधारनी उत्क्रांति (गुजराती)
२८६ A great mystic Poet af Rajasthan (marwari, March १९५८)
२८७ गणतंत्र के घाट पर (सुप्रभात, जनवरी-फरवरी १९५८; तरुण पाक्षिक १ अप्रैल १९५८; विशाल राजस्थान, ६ जनवरी १९५९)
२८८ समाजवाद और संतति नियमन (तरुण, १ अप्रैल १९५८)
२८९ दान की आत्म कथा (भग्न हृदय), (तरुण पाक्षिक, १ जुलाई १९५८)
२९० सेवा और सत्ता (तरुण पाक्षिक, १ जुलाई १९५८)
२९१ Recent Trends in Population
(Article S. W. Calcutta Rotary club Bulletin १५-७-५८)
२९२ मैं मारवाड़ी हूं (समाज सेवक, समाज विकास, जुलाई १९५८)
२९३ संतति निरोध के लिये पुरुष का आपरेशन (दैनिक विश्वमित्र, १४ जुलाई १९५८)
२९४ दान की आत्मकथा (भग्न हृदय), (नया समाज, जून १९५८)
२९५ कागज और आदमी (विशाल राजस्थान, १५ अगस्त १९५८)
२९६ सार्वजनिक जीवन की शव परीक्षा-भाग्य का विपर्यय (श्रमण अगस्त, १९५८)

२९७ समाजवाद और संतति नियमन (दैनिक विश्वमित्र, २२ जून १९५८)
२९८ दान की आत्मकथा (व्यंग्य, श्रमण, सितम्बर १९५८)
२९९ नया खून और पुराना शरीर (समाज विकास, सितम्बर-अक्टूबर १९५८)
३०० जनसंख्या की समस्या बनाम संयम (अणुव्रत, अक्टूबर १९५८)
३०१ नियन्त्रण या नाश ! (दैनिक विश्वमित्र, ५ नवम्बर १९५८)
३०२ नया खून और पुराना शरीर (दैनिक विश्वमित्र, १५ नवम्बर १९५८)
३०३ नौकरशाही : नेताशाही
(जन, भूदान यज्ञ, नवम्बर-दिसम्बर १९५८, २७ फरवरी १९५९)
३०४ फिर भी मैं मारवाड़ी हूँ।
(समाज विकास, दिसम्बर १९५८, विशाल राजस्थान मई १९५९)
३०५ हमारा सार्वजनिक जीवन (नव-जीवन पूजा विशेषांक)
३०६ Towards Family in India
(Article A. B. Patrika Puja Annual १९५८)
३०७ प्रगतिशील तत्वों का पुरातन पंथियों से गठबन्धन (सरिता, दिसम्बर १९५८)
३०८ छात्र-एक सिर दर्द (मारवाड़ी छात्र संघ, १९५८)
३०९ एकता के नये क्षितिज (आंध्र संघ पत्रिका वार्षिक, कलकत्ता १९५८)
३१० समाज, तू युग-वीर बन ! (गद्य/काव्य भूदान यज्ञ, २ जनवरी १९५९)
३११ इन कैलेण्डरों की तारीखें और तस्वीरें। (ज्ञानोदय, जनवरी १९५९)
३१२ दाम्पत्य-परामर्श : परिवार नियोजन की एक नई दिशा
(परिवार नियोजन, जनवरी १९५९)
३१३ समाजवाद को स्वागत दें—यही भला (समाज विकास, जनवरी १९५९)
३१४ शाबाश कुसुम ! (दैनिक विश्वमित्र, ७ फरवरी १९५९)
३१५ संस्कृति का दार्शनिक विवेचन (पुस्तक-समीक्षा सुप्रभात, मार्च १९५९)
३१६ खादी बिक रही है ! (सर्वोदय सम्मेलन विशेषांक अजमेर, मार्च १९५९)
३१७ अणुव्रत आंदोलन पर एक दृष्टि (दैनिक विश्वमित्र, २ अप्रैल १९५९)
३१८ दान की आत्म कथा (गुजराती) (समय धर्म, १ मई १९५९)
३१९ सामूहिक विवाह प्रणाली क्यों ? (दैनिक विश्वमित्र, २६ मई १९५९)
३२० आचार्य श्री तुलसी का १८ वर्ष पहले का रूप आज भी कायम
(दैनिक विश्वमित्र, ३० मई १९५९)
३२१ खेती को पाप बतलाने वाले ये जैन तेरापंथी साधु
(दैनिक विश्वमित्र, ३१ मई १९५९)
३२२ जनसंख्या की समस्या (परिवार नियोजन, मई १९५९)
३२३ ये हमारे सांस्कृतिक कार्यक्रम (समाज विकास जून, १९५९)
३२४ अध्यात्म, अध्यात्म, अध्यात्म
(आचार, जून १९५९, विशाल राजस्थान, दीपावली विशेषांक १९५९)
३२५ अणुयुग में धर्म (दैनिक विश्वमित्र, १४ जून १९५९)
३२६ रंगमंच के सम्राट शिशिर भादुड़ी (दैनिक विश्वमित्र, ३ जुलाई १९५९)

३२७ 'धर्म खतरे में' का नया अध्याय ! (दैनिक विश्वमित्र १३ जुलाई १९५९)
३२८ परिवार नियोजन का निराधार विरोध (भू-दान यज्ञ २४ जुलाई १९५९)
३२९ सांस्कृतिक समारोह (जन जुलाई १९५९)
३३० संतान और संयम (परिवार नियोजन जुलाई १९५९)
३३१ परिवार नियोजन ! क्या यह राजनीतिक प्रश्न है ? (ज्ञानोदय अगस्त १९५९)
३३२ सम्वादों के स्वर (समाज विकास, अगस्त १९५९)
३३३ जवाहर शक्ति (समाज विकास, अगस्त १९५९)
३३४ जवाहर अवतार (समाज विकास, अगस्त १९५९)
३३५ दहेज जैसा छोटा प्रश्न (समाज विकास, अगस्त १९५९)
३३६ धर्म में श्लील (समाज विकास, अगस्त १९५९)
३३७ समाज में अश्लील (समाज विकास, अगस्त १९५९)
३३८ संवादों के स्वर (१) (समाज विकास, अगस्त १९५९)
३३९ संवादों के स्वर (२) (समाज विकास, सितम्वर १९५९)
३४० क्या परिवार नियोजन राजनीतिक प्रश्न है ? (परिवार नियोजन, सितम्वर १९५९)
३४१ एकता के नये क्षितिज (दैनिक विश्वमित्र, १ सितम्बर १९५९)
३४२ जैन एकता : एक दूसरा पहलू (श्रमण सितम्वर १९५९)
३४३ नये खून की सेवा की नई योजना (समाज विकास, सितम्बर १९५९)
३४४ राजनीतिक की अध्यात्म भूमिका (समाज विकास, सितम्बर १९५९)
३४५ शनिश्चर रूठ जायेगा (समाज विकास, सितम्वर १९५९)
३४६ मेलों के मूल्य (समाज विकास, सितम्बर १९५९)
३४७ कृपांक की कहानी (समाज विकास, सितम्वर १९५९)
३४८ आयुर्वेद का भवन तो वन गया, पर (समाज विकास, सितम्वर १९५९)
३४९ जैन एकता (दैनिक विश्वमित्र, २४ सितम्बर १९५९)
३५० जलप्लावन और जन प्लावन (दैनिक विश्वमित्र २८ सितम्बर १९५९)
३५१ संवादों के स्वर (३) (समाज विकास, अक्टूवर १९५९)
३५२ चांद का संवाद है (समाज विकास, अक्टूवर १९५९)
३५३ रूस का स्वर (समाज विकास, अक्टूबर १९५९)
३५४ कागज का आदमी (समाज विकास, अक्टूवर १९५९)
३५५ कागज का महल (समाज विकास, अक्टूबर १९५९)
३५६ चरित्र निर्माण की रेलगाड़ी आ रही है (समाज विकास, अक्टूवर १९५९)
३५७ गिरि वाणी जयतु (समाज विकास, अक्टूवर १९५९)
३५८ छप्पन भोग के छप्पन स्वर (समाज विकास, अक्टूबर १९५९)
३५९ नाम में भी धर्म (समाज विकास, अक्टूवर १९५९)
३६० नेहरू की शिकायत नेहरू से (समाज विकास, अक्टूवर १९५९)
३६१ जीवन धरती पर धर्म आकाश पर (आचार, अक्टूवर १९५९)
३६२ चिन्तन के क्षणों में—अब उनकी याद आती है
(संस्मरण दैनिक विश्वमित्र २९ अक्टूवर १९५९)

३६३ स्व० डा० अब्राहम स्टोन (परिवार नियोजन, नवम्बर १९५९)
३६४ धार्मिक क्रांति (दैनिक विश्वमित्र, ६ नवम्बर १९५९)
३६५ आबादी की समस्या (दैनिक विश्वमित्र, २३ नवम्बर १९५९)
३६६ दाम्पत्य परामर्श (दैनिक विश्वमित्र)
३६७ जाति है, तो लोकतंत्र नहीं, जाति है, तो समाजवाद नहीं
(छात्र अभियान १९५९, दैनिक विश्वमित्र २४ फरवरी १९६०)
३६८ ये दीप बुझा दो ! (कविता/श्रमण, नवम्बर १९५९)
३६९ विज्ञान की व्यथा (ज्ञानोदय, नवम्बर १९५९)
३७० चोरी का चक्रव्यूह (विशाल राजस्थान, दीपावली विशेषांक १९५९)
३७१ जन-तन्त्र की जाति रेखा (समाज विकास, नवम्बर-दिसम्बर १९५९)
३७२ जातिभेद निवारण की दिशा में कानून की प्रगति
(समाज विकास, नवम्बर-दिसम्बर १९५९)
३७३ संवादों के स्वर (४) (समाज विकास, नवम्बर-दिसम्बर १९५९)
३७४ और दस वर्ष रहेंगी परिगणित जातियां
(समाज विकास, नवम्बर-दिसम्बर १९५९)
३७५ जाति जिसमें जातपांत नहीं है (समाज विकास, नवम्बर-दिसम्बर १९५९)
३७६ अर्थ दण्ड नहीं (समाज विकास, नवम्बर-दिसम्बर १९५९)
३७७ जाति दण्ड नहीं (समाज विकास, नवम्बर-दिसम्बर १९५९)
३७८ ये विवाह, ये आत्महत्यायें, ये क्रांतियां (सम्मेलन संदेश १९५९)
३७९ आणविक युग-आरण्यक जीवन
३८० मारवाड़ी ? राजस्थानी ? एक उलझन, एक चिन्तन
३८१ तस्वीर सज रही है—वाणी बज रही है
(खादी पत्रिका, भाद्रपद-आश्विन १८८१ शक)
३८२ धर्म असामाजिक है (आचार, दिसम्बर १९५९)
३८३ संवादों के स्वर (५) (समाज विकास, जनवरी १९६०)
३८४ आबादी की समस्या (परिवार नियोजन, जनवरी १९६०)
३८५ संवादों के स्वर (६) (समाज विकास, फरवरी १९६०)
३८६ यह गांधीवाद के भक्तों का जुलूस जा रहा है ((भग्न हृदय)
(आचार, फरवरी १९६०)
३८७ अणु युग में समाज सेवा (दैनिक विश्वमित्र, ६ फरवरी १९६०)
३८८ यह गांधीवाद के भक्तों का हृदय परिवर्तन नहीं, रूप परिवर्तन
(आचार, फरवरी १९६०)
३८९ जुलूस जा रहा है (आचार, फरवरी १९६०)
३९० परिवार-नियोजन के बढ़ते चरण (दैनिक विश्वमित्र, १२ मार्च १९६०)
३९१ धर्म: मैत्री का साधक या बाधक ? (आचार, अप्रैल १९६०)
३९२ एकता के नये क्षितिज (भू-दान यज्ञ, २२ अप्रैल १९६०)
३९३ संवादों के स्वर (७) (समाज विकास, अप्रैल १९६०)

३९४ संवादों के स्वर (८) (समाज विकास, मई १९६०)
३९५ सात पंक्तियों के रवीन्द्रनाथ (संस्मरण/लहर, मई १९६०)
३९६ पत्र-सतीश को (पत्र)
३९७ परिवार नियोजन की प्रणेता—मारगरेट सेंगर (धर्मयुग, २४ जुलाई १९६०)
३९८ समरसता की दिशा पकड़ कर चलें (अगस्त १९६०)
३९९ स्थिति : दृष्टि (दैनिक विश्वमित्र, ७ अगस्त १९६०)
४०० कारावद्ध 'साधुत्व' (आचार)
४०१ जाति गलत, जाति सही (समाज विकास, अगस्त-सितम्वर १९६०)
४०२ वेरोजगार लोग सुनें ! (समाज विकास, अगस्त-सितम्वर १९६०)
४०३ धर्म पत्नियाँ (समाज विकास, अगस्त-सितम्वर १९६०)
४०४ अधर्म पति (समाज विकास, अगस्त-सितम्वर १९६०)
४०५ विनोवाजी से पूछ लेना (समाज विकास, अगस्त-सितम्वर १९६०)
४०६ प्रलय नहीं हुआ : प्रलय हो गया (समाज विकास, अगस्त-सितम्वर १९६०)
४०७ आसाम की आग : गाँधी जो की आत्मा
(समाज विकास, अगस्त-सितम्वर १९६०)
४०८ स्थिति : दृष्टि (आचार, सितम्वर १९६०)
४०९ विघटन या संगठन (आचार, अक्टूवर १९६०)
४१० मृत्यु नियन्त्रण वनाम जन्म नियंत्रण (परिवार नियोजन, सितम्वर-नवम्वर १९६०, दैनिक विश्वमित्र ११ दिसम्वर १९६०)
४११ कथा जिसका इतिहास खो गया है (ज्ञानोदय, नवम्वर १९६०)
४१२ मारवाड़ी ? राजस्थानी ? नया मोड़
(विशाल राजस्थान, दीपावली विशेषांक, १९६०)
४१३ विधवा विवाह : तव और अव (दैनिक विश्वमित्र, ११ दिसम्वर १९६०)
४१४ गांधी महाराज की सवारी (खादी पत्रिका, जनवरी-फरवरी १९६१)
४१५ जाति और जनतन्त्र का सह-अस्तित्व असम्भव है
(सोशलिस्ट समाचार, गणराज्य विशेषांक, १९६१)
४१६ समाज के प्रश्न धर्म के उत्तर (आचार, जनवरी-फरवरी १९६१)
४१७ धर्म में क्रांति (दैनिक विश्वमित्र, ११ फरवरी १९६१)
४१८ धर्म को विषकन्या के आलिंगन से मुक्त करो
(२ मार्च १९६१)
४१९ समाज के प्रश्न धर्म के उत्तर (दैनिक विश्वमित्र, ५ मार्च १९६१)
४२० स्त्री पुरुषों का परस्पर होली खेलना उचित है, किस सीमा तक
(धर्मयुग, ५ मार्च १९६१)
४२१ स्वास्थ्य दर्शन की नई भूमिका (ना० स्वा० संघ द्वारा आयोजित छठी स्वास्थ्य प्रदर्शनी पत्रिका, दैनिक विश्वमित्र, २४ मार्च १९६१)
४२२ मनुष्य के दिमाग को वांधो मत ! उसे मुक्त विचरण के लिये छोड़ दो !!
(आचार, मार्च १९६१)

४२३ जीवन का सवाल (आचार, मार्च १९६१)

४२४ समाज के प्रश्न धर्म के उत्तर (आचार, मार्च १९६१)

४२५ नारी (सरिता, अप्रैल १९६१)

४२६ क्रांति हुई, क्रांति नहीं हुई (छात्र अभियान वार्षिक १९६०-६१)

४२७ सात पंक्तियों में रवीन्द्रनाथ (संस्मरण/राजस्थानी समाज, अगस्त १९६१)

४२८ करुणा विचार विरुद्ध उपयुक्ततावाद (गुजराती) (१ सितम्बर १९६१)

४२९ सामाजिक संस्थाएं (समाज विकास, अक्टूबर १९६१)

४३० पं० सुखलालजी : पत्रों में (आचार, अक्टूबर १९६१)

४३१ स्वराज्य क्या हुआ एक बला आ गई

(विशाल राजस्थान, दीपावली विशेषांक १९६१)

४३२ परिवार नियोजन : एक परिचर्चा

(ज्ञानोदय, भारतीय परिवार अंक, नवम्बर १९६१)

४३३ परिवार नियोजन का युग (दैनिक विश्वमित्र १७ दिसम्बर १९६१)

४३४ सब चोर हैं ? कौन नहीं ? (विशाल राजस्थान, २६ जनवरी १९६२)

४३५ तिलक : एक विचार एक आंदोलन

(तिलक पुस्तकालय पत्रिका रानीगंज, २६ जनवरी १९६२)

४३६ अधिवेशन का अन्तरावलोकन (समाज विकास, जनवरी-फरवरी १९६२)

४३७ आतंक और अविश्वास का अज्ञान योग (दैनिक विश्वमित्र, ७ फरवरी १९६२)

४३८ अष्ट ग्रहयोग या आतंक और अविश्वास का अज्ञान योग (आचार, मार्च १९६२)

४३९ युग-यात्री राजेन्द्र बाबू (संस्मरण/समाज विकास, अप्रैल-मई १९६२)

४४० सामाजिक क्षेत्रों में आज सुधार की आवश्यकता है या क्रांति की ?

(युगचरण, १९ जून १९६२)

४४१ शिक्षा में क्रांति (सम्मेलन संदेश भागलपुर, २ जुलाई १९६२)

४४२ धर्म का सामाजिक एवं वैयक्तिक स्वरूप क्या है और क्या होना चाहिये

(आचार, जुलाई १९६२)

४४३ मानवीय मूल्य और परिवार नियोजन (दैनिक विश्वमित्र, २८ जुलाई १९६२)

४४४ विधान बाबू की विराटता (राष्ट्रवाणी)

४४५ समाज का कायाकल्प करने के लिए जड़ता को खत्म करो और विवेक को जगाओ

(युगचरण, ४ सितम्बर १९६२)

४४६ सुरक्षा की सामाजिक पंक्ति (दैनिक विश्वमित्र, २२ नवम्बर १९६२)

४४७ देश का नेतृत्व डांवाडोल है (बारह वर्ष पूर्व लिखा लेख)

(विशाल राजस्थान, दीपावली विशेषांक १९६२)

४४८ नया सांख्य (ज्ञानोदय, दिसम्बर १९६२)

४४९ अग्नि-स्नान (सम्मेलन संदेश, १२ दिसम्बर १९६२)

४५० साम्यवाद के नाम पर चीन की आदमखोर लिप्सा

(धर्मयुग, १६ दिसम्बर १९६२)

४५१ जो, यह सांस्कृतिक कार्यक्रम है
(आंध्र एसोसियेशन वार्षिक पत्रिका, १९६२)
४५२ स्वाधीनता के बाद हमारी सामाजिक स्थिति (जागृत भारत, १९६२)
४५३ मानवीय मूल्य और परिवार नियोजन
(मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की स्मारिका वार्षिक विशेषांक, १९६२)
४५४ ये दीप बुझा दो (कविता/राजस्थानी समाज, १९६२)
४५५ राष्ट्रीय संकट की आग में भी रोटियां सेंक रहे हैं
(खादी पत्रिका, जनवरी-फरवरी १९६३)
४५६ समाज सेवियों और साहित्यिकों में नव-जागरण
(दैनिक विश्वमित्र, ९ जनवरी १९६३)
४५७ संकट और संकल्प (समाज विकास, फरवरी १९६३)
४५८ श्री पुरुषोत्तम राय, एक अटल व्यक्तित्व
(संस्मरण/श्री पुरुषोत्तम राय स्मृति पत्रिका ९ फरवरी १९६३)
४५९ चीनी आक्रमण : एक चिंता, एक चिंतन (दैनिक विश्वमित्र, २७ मार्च १९६३)
४६० जब राजस्थानी मारवाड़ी बना
(ज्ञानोदय अप्रैल १९६३, दैनिक विश्वमित्र, ३ अप्रैल १९६३, समाज विकास, मई १९६३)
४६१ आप मारवाड़ी हैं या राजस्थानी ? (विशाल राजस्थान, ८ अप्रैल १९६३)
४६२ विराट हृदय प्रफुल्ल दा (संस्मरण/दैनिक विश्वमित्र, १० अप्रैल १९६३)
४६३ एक मौत : एक जिंदगी (संस्मरण/धर्मयुग २१ अप्रैल १९६३)
४६४ शिक्षा-समाधान या समस्या (दैनिक विश्वमित्र, १३ मई १९६३)
४६५ महान नाट्यकार द्विजेंद्रलाल राय (दैनिक विश्वमित्र, १९ जुलाई १९६३)
४६६ भारतीय सुरक्षा और हिमालय (दैनिक विश्वमित्र, ५ अगस्त १९६३)
४६७ स्वराज्य: एक चिंता, एक चिंतन
४६८ जब आलू की जगह आदमी कटने का भ्रम हुआ
(संस्मरण/धर्मयुग १ सितम्बर १९६३)
४६९ अहिंसा एक पुनर्विचार (दैनिक विश्वमित्र ९ सितम्बर १९६३)
४७० Social Services Towards the New Horizon (स्मारिका-लायंस क्लब, जादवपुर चाटर एनिवर्सरी, सितम्बर १९६३)
४७१ युद्ध और परिवार नियोजन (दैनिक विश्वमित्र, ३ अक्टूबर १९६३)
४७२ यह सिल्क हाउस नहीं खादी की दूकान है
४७३ ये विवाह, ये आत्महत्याएं, ये क्रांतियाँ (दैनिक विश्वमित्र, १७ अक्टूबर १९६३)
४७४ Rajasthan old & New (कांग्रेस स्मारिका, नवम्बर १९६३)
४७५ अल्प विराम नहीं, अर्द्ध विराम नहीं, पूर्ण विराम
(ज्ञानोदय, नवम्बर १९६३)
४७६ Rajasthan old & New (Hindusthan Standard
(पूजा विशेपांक १९६३)

४७७ ये चेहरे (विशाल राजस्थान, दीपावली १९६३)
४७८ चेहरे और चेहरे (समाज विकास, दीपावली विशेषांक १९६३)
४७९ एक अंतरंग पत्र (ज्ञानोदय, नवम्बर १९६३)
४८० जापान में निर्माण और प्रगति की तेज गति
(दैनिक विश्वमित्र, २ दिसम्बर १९६३)
४८१ एक बोलता पत्र (२१ दिसम्बर १९६३)
४८२ National Emergency and Family Planning
(लायन्स क्लब यादवपुर बुलेटिन, दिसम्बर १९६३)
४८३ श्री रामगोपाल मोहता (६ जनवरी १९६४)
४८४ कहानी नहीं हुई, कहानी हो गई (संस्मरण/धर्मयुग, २६ जनवरी १९६४)
४८५ युद्ध और परिवार नियोजन (नर-नारी, फरवरी १९६४)
४८६ समाज का बदलता हुआ ढांचा और अस्पृश्यता
(दैनिक विश्वमित्र, ८ फरवरी १९६४)
४८७ परिवार नियोजन का पटना सम्मेलन (दैनिक विश्वमित्र, २ मार्च १९६४)
४८८ जय-जय थू-थू में बदल गई (संस्मरण/धर्मयुग, ८ मार्च १९६४)
४८९ वरदान नहीं वेदना (गद्य-काव्य/वातायन, अप्रैल १९६४ गीत अंक)
४९० दूर से नजदीक की बात
(संस्मरण/पोद्दार छात्र निवास रजत जयन्ती स्मारिका, ५ अप्रैल १९६४)
४९१ जापानी श्रमिक : जापानी समाज (दैनिक विश्वमित्र, २६ अप्रैल १९६४)
४९२ बच्चों को गृहस्थाश्रम की शिक्षा कब और कैसे दी जाय
(धर्मयुग, १७ मई १९६४)
४९३ जब इतिहास बदलता है (दैनिक विश्वमित्र, २० मई १९६४)
४९४ अवसान और आरम्भ
(दैनिक विश्वमित्र, ११ जून १९६४, ज्ञानोदय, जुलाई १९६४)
४९५ सामाजिक क्रांति एक पुनर्मूल्यांकन (दैनिक विश्वमित्र, २३ जून १९६४)
४९६ धर्म नहीं, शर्म (दैनिक विश्वमित्र, १० अगस्त १९६४)
४९७ देश, नेतृत्व और भ्रष्टाचार
(दैनिक विश्वमित्र स्वाधीनता दिवस अंक, १५ अगस्त १९६४)
४९८ भ्रष्टाचार, सरकार और जनता (दैनिक विश्वमित्र, २६ अगस्त १९६४)
४९९ यह करवट बदलता युग और मारवाड़ी समाज की प्रतिभा
(धर्मयुग, १८ अक्टूबर १९६४)
५०० विज्ञान के वरदपुत्र : डा० दौलत सिंह कोठारी
(संस्मरण/विशाल राजस्थान, १६ नवम्बर १९६४)
५०१ सादगी बनाम सदाचार (दैनिक विश्वमित्र, १६ नवम्बर १९६४)
५०२ दर्शक-समीक्षक दृष्टि (अक्टूबर १९६४)
५०३ मारवाड़ी समाज की नई प्रतिभा (अन्तर्द्वन्द्व, ३१ दिसम्बर १९६४)
५०४ कलकत्ता : रंगमंच की राजधानी (दैनिक विश्वमित्र, २२ दिसम्बर १९६४)

५०५ हमारे रंगमंच : कुछ विशिष्ट केन्द्र

५०६ परिवार नियोजम : एक जन आंदोलन

(दैनिक विश्वमित्र, पूजा दीपावली विशेषांक, १९६४)

५०७ आखिर इस व्यापक भ्रष्टाचार के जिम्मेदार कौन

(दैनिक विश्वमित्र, स्वाधीनता दिवस अंक, १९६४)

५०८ इतिहास (कविता/विशाल राजस्थान, दीपावली विशेषांक, १९६४)

५०९ डा० कोठारी : विज्ञान का वरद पुत्र (समाज विकास, दीपावली विशेषांक, १९६४)

५१० वेटे की इतनी सुनी तो जंवाई की भी तो कुछ सुनो

(संस्मरण/धर्मयुग, १३ दिसम्बर १९६४)

५११ अव इन जातीय संगठनों को शीघ्र समाप्त करो

(विशाल राजस्थान, २१ दिसम्बर १९६४)

५१२ मानवीय मूल्य और परिवार-नियोजन

५१३ जापान : अनदेखा और देखा (१) (यात्रा संस्मरण/धर्मयुग, ३ जनवरी १९६५)

५१४ जापान : अनदेखा और देखा (२) (यात्रा संस्मरण/धर्मयुग, १० जनवरी १९६५)

५१५ नेताजी सुभाषचन्द्र बोस (दैनिक विश्वमित्र, २३ जनवरी १९६५)

५१६ जब धर्म ने सत्य को गोली मारी (दैनिक विश्वमित्र, ३० जनवरी १९६५)

५१७ विचारों की भूमिका (हैपीयूथ, जनवरी १९६५)

५१८ एक भूल की रोमांचक कहानी (संस्मरण/धर्मयुग, २८ फरवरी १९६५)

५१९ When I interviewed Margaret Senger

(साक्षात्कार/हेल्थ एंड वेलफेयर, मार्च १९६५)

५२० जव आदमी को आदमी खाने लगेगा (दैनिक विश्वमित्र, २४ मार्च १९६५)

५२१ मातृ सेवा की मूर्ति : सीताराम सेकसरिया (धर्मयुग, २ मई १९६५)

५२२ परिवार नियोजन : सवसे वड़ी युग सेवा (दैनिक विश्वमित्र, ४ मई १९६५)

५२३ ये कुंठायें, ये स्खलन ! (दैनिक विश्वमित्र, २९ मई १९६५)

५२४ नमो नमो नेहरू (ज्ञानोदय, मई १९६५)

५२५ मानवीय मूल्यों का संकट और परिवार नियोजन (२० जून १९६५)

५२६ पीढ़ियां तैर रही हैं (दैनिक विश्वमित्र, ८ जुलाई १९६५)

५२७ स्वतंत्रता और स्वतंत्रता (छात्र अभियान, १९६४-६५)

५२८ एक दिन की वात (संस्मरण/धर्मयुग १६ जनवरी १९६६)

५२९ महामानव शास्त्री जी (दैनिक विश्वमित्र, ३१ जनवरी १९६६)

५३० सामाजिक क्रांति : एक पुनर्मूल्यांकन (समाज विकास, मार्च १९६६,

राजस्थानी वीर, १मई १९६६)

५३१ जिन्दगी का रंगमंच (संस्मरण/नई कहानियां, अप्रैल १९६६)

५३२ एक अभिनंदनीय उदाहरण : सिंघी सोमानी सम्वन्ध

(दैनिक विश्वमित्र, ४ जून १९६६)

५३३ चोरी का चक्रव्यूह (सरिता, १५ जुलाई १९६६)

५३४ Life as Mahvira veiwed it (जैन जरनल, जुलाई १९६६)

५३५ ओसवाल, पर ओसवाल ही नहीं

(ओसवाल नवयुवक समिति की स्मारिका, अगस्त १९६६)

५३६ सामाजिक स्वतंत्रता (दैनिक विश्वमित्र, १५ अगस्त १९६६)

५३७ लाश का बयान (दैनिक विश्वामित्र, ३१ अगस्त १९६६)

५३८ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का नया अध्याय (विग्रह, सितम्बर १९६६, मंगल दीप, १९६८)

५३९ शिक्षायतन कालेज के ग्यारह वर्ष (दैनिक विश्वमित्र, १५ अक्टूबर १९६६)

५४० परिवार नियोजन की माता मारगरेट (दैनिक विश्वमित्र, ५ अक्टूबर १९६६)

५४१ मारवाड़ी बनाम मारवाड़ी (दैनिक विश्वमित्र, ९ अक्टूबर १९६६)

५४२ मारवाड़ी समाज के लिये नेतृत्व के नये पहाड़े

(दैनिक विश्वमित्र, २२ अक्तूबर १९६६)

५४३ यौन-क्रांति (विग्रह, नवम्बर १९६६ एवं दिसम्बर १९६६)

५४४ महानगर को मिटाया नहीं जा सकता (ज्ञानोदय, नवम्बर १९६६)

५४५ ज्योति से ज्योति जले, एक बुझे तो दूसरी जले

(दैनिक विश्वमित्र, २२ दिसम्बर १९६६)

५४६ भ्रष्टाचार : सरकार और जनता (आंध्र एसोसियेशन वार्षिक पत्रिका, १९६६)

५४७ छात्र-एक सिरदर्द (मारवाड़ी छात्र संघ रजत-जयंती, १९६६)

५४८ विश्व-विवाह की ओर (दैनिक विश्वमित्र, २२ जनवरी १९६७)

५४९ भारत में जन संख्या वृद्धि का संकट और गर्भपात का कानून

(जनवरी-फरवरी १९६७)

५५० आधुनिकीकरण (वातायन, फरवरी १९६७)

५५१ आधुनिकता : एक मूल्य बोध (दैनिक विश्वमित्र, २ मार्च १९६७)

५५२ भारतीय जीवन के आधुनिकीकरण में गतिरोध

(दैनिक विश्वमित्र, ६ जून १९६७)

५५३ कला, अ-कला और अश्लीलता (ज्ञानोदय, जुलाई १९६७)

५५४ विश्व-विवाह की ओर (महेश, सितम्बर १९६७)

५५५ विचार क्रांति के नेता लोहिया (दैनिक विश्वमित्र, १८ अक्टूबर १९६७)

५५६ मारवाड़ी समाज और डाक्टर लोहिया

(दैनिक विश्वमित्र, २८ अक्टूबर १९६७)

५५७ I Come to the land of Margaret Sengar

(दैनिक विश्वमित्र, मई १९६७)

५५८ तीन प्रश्न (प्रश्नोत्तर/ज्ञानोदय, शेषशताब्दी विशेषांक, नवम्बर १९६७)

५५९ सम्पन्न शताब्दी और विपन्न मानव (ज्ञानोदय, नवम्बर १९६७)

५६० असंभव बनाम अवश्यंभावी (१) (दैनिक विश्वमित्र, २२ दिसम्बर १९६७)

५६१ असंभव बनाम अवश्यंभावी (२) दैनिक विश्वमित्र, २३ दिसम्बर १९६७)

५६२ सन् १९६७ : एक सिंहावलोकन (दैनिक विश्वमित्र, ३१ दिसम्बर १९६७)

५६३ Abortion law in India (वीमेंस वर्ल्ड, दिसम्बर १९६७)

६१६ ये विवाह ये विषमताएं
(बिहार प्रांतीय मारवाड़ी सम्मेलन की मुख पत्रिका, १५ मई १९७३, विशाल राजस्थान, २१ मई १९७३, राजस्थानी वीर, जून १९७३)
६१७ यह है कलकत्ता महानगर (दैनिक विश्वमित्र, ३ जून १९७३)
६१८ हमारी वर्तमान विस्फोटक सामाजिक स्थिति
(विशाल राजस्थान, २५ जून १९७३)
६१९ आदर्श और यथार्थ : संघर्ष की नई भूमिका
(दैनिक विश्वमित्र, २५ अगस्त १९७३)
६२० समाजवाद : समाज की कसौटी पर (जयपुर स्टैंडर्ड, १० एवं १७ अगस्त १९७३)
६२१ कविता होती है बनाई नहीं जाती—स्पेनिश कवि कथाकार जार्ज लुइस से एक अन्तरंग भेंट वार्ता (भेंट वार्ता/धर्मयुग २ सितम्बर १९७३)
६२२ वैवाहिक समारोह में संयम सुधार और सादगी की ओर
(समाज विकास, अक्टूबर १९७३)
६२३ Address to Introduction meeting held to meet Parliamentarian Delegation from Japan. (अक्टूबर १९७३)
६२४ पीढ़ियाँ तैर रही हैं (मंगलदीप, १९७३)
६२५ प्रदर्शन बनाम प्रदर्शन
(दैनिक विश्वमित्र, ९ दिसम्बर १९७३, राजस्थान समाज, ३ फरवरी १९७४)
६२६ शब्द समाधि से सम्भोग समाधि की ओर
(अणिमा साप्ताहिक, ३० दिसम्बर १९७३)
६२७ चिंतन की परिधि में : मारवाड़ी बनाम राजस्थानी
(विशाल राजस्थान, ३१ दिसम्बर १९७३)
६२८ आर्थिक और सामाजिक विषमता के दलदल में फंसा समाजवाद
(चौराहा, बनारस २० जनवरी १९७४)
६२९ शिक्षा संस्थाएं और उनका संचालन
(बालीगंज शिक्षा सदन की रजत जयन्ती स्मारिका, १६ फरवरी १९७४)
६३० समाज की प्रतिभा का प्रश्न (समाज विकास, मार्च-अप्रैल १९७४)
६३१ समाज बनाम समाज (बिहार सम्मेलन, १ अप्रैल १९७४)
६३२ मारवाड़ी बनाम राजस्थानी (पूर्व ज्योति, १९७४)
६३३ श्री सीताराम सेकसरिया : व्यक्तित्व और कृतित्व
(राष्ट्रमित्र साप्ताहिक, ११ मई १९७४)
६३४ अप्रतिम व्यक्तित्व—श्री सीताराम सेकसरिया
(देश और समाज साप्ताहिक, २मई १९७४)
६३५ मुनि जिन विजय जी : आजीवन अनुसंधान-रत कर्मयोगी
६३६ सभापति का पत्र (पत्र/समाज विकास, जुलाई-अगस्त १९७४)
६३७ यह वैभव, यह दुर्भाव ? (छपते छपते, २५ अगस्त १९७४)
साप्ताहिक अकेला, ४ सितम्बर १९७४)

६३८ महावीर : युग के अथवा युग-युग के (जैन प्रकाश, अगस्त १९७४)
६३९ श्री ईश्वरदास जालान (संस्मरण/राजस्थानी समाज, २९ सितम्बर १९७४)
६४० सादगी बनाम सदाचार (अग्रसेन जयन्ती स्मृति ग्रन्थ, १६ अक्टूबर १९७४)
६४१ महानगरों की नगरी—कलकत्ता (सन्मार्ग, नवम्बर १९७४)
६४२ उत्साहप्रेरक : सिंघीजी (संस्मरण, १९७४)
६४३ आर्थिक विद्रोह की ये लाल लपटें (दक्षिण राजस्थानी पोस्ट, १९७४)
६४४ विवाह-हां या ना ? (मंगलदीप, १९७४)
६४५ बुभुक्षितः किम न करोति पापम् (विशाल राजस्थान, १६ नवम्बर १९७४)
६४६ सामाजिक क्रांति (समाज विकास, नवम्बर-दिसम्बर १९७४)
६४७ विदेशी विलास स्वदेशी विनाश (दैनिक विश्वमित्र; १२ जनवरी १९७५)
६४८ विदेशी के इस मोह ने हमें दिवालिया बना दिया (विशाल भारत, २७ जनवरी १९७५)
६४९ हमारा तस्करी चरित्र कैसे बदले ? (नया जीवन जनवरी १९७५)
६५० सभापति का पत्र (पत्र/समाज विकास, जनवरी-फरवरी १९७५)
६५१ राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में जैनधर्म एवं संस्कृति का योगदान (जिनवाणी, फरवरी १९७५)
६५२ महावीर द्वारा प्रवर्तित तीर्थ : कितने संगठित कितने विघटित ! (दक्षिण राजस्थानी पोस्ट, फरवरी १९७५)
६५३ And then my heart with pleasur fills (Letter मार्च १९७५)
६५४ नया मोड़ नया नेतृत्व (स्मारिका, ३ अप्रैल १९७५)
६५५ सभापति का पत्र (पत्र/समाज विकास, मार्च-अप्रैल १९७५)
६५६ नई प्रतिभा : नई प्रतिमा (स्मारिका, १९७५)
६५७ महावीर का उद्बोधन (जीवन साहित्य, मई जून १९७५)
६५८ दहेज विरोधी आन्दोलन एक समस्या (धर्मयुग, १ जून १९७५)
६५९ मुद्रास्फीति : मुद्रास्फूर्ति (दैनिक विश्वमित्र, १० जून १९७५)
६६० मातृमुक्ति वत्सला मारवाड़ी माता (राजस्थानी वीर, जुलाई १९७५)
६६१ सामूहिक विवाह योजना सफलता की ओर (दैनिक विश्वमित्र, २९ जुलाई १९७५)
६६२ दहेज विरोधी आन्दोलन एक समस्या (बिहार सम्मेलन, जुलाई १९७५)
६६३ Late Sri Puranchand Nahar : An Epitome of Jainism (जैन जरनल, १५ मई १९७५)
६६४ राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में जैन धर्म एवं संस्कृति का योगदान (परिचर्चा/जिनवाणी, अप्रैल-जुलाई १९७५)
६६५ आपातकालीन स्थिति : सामाजिक सन्दर्भ में (दैनिक विश्वमित्र २० अगस्त १९७५, भारत, २८ अगस्त १९७५)
६६६ Family planning and Family Health (अगस्त १९७५)
६६७ यह महावीर वाणी अन्तरिक्ष है (चौराहा १९७५)

६६८ राजस्थानी साहित्य और अ० भा० मारवाड़ी सम्मेलन (राजस्थानी)
(नैणसी, सितम्बर १९७५)
६६९ मारवाड़ी समाज में महिला मुक्ति संग्राम (राजस्थानी वीर, सितम्बर १९७५)
६७० स्नेह मूर्ति रजनी (संस्मरण/रजनी स्मृति अंक, अक्टूबर १९७५)
६७१ वैभव का यह तांडव नृत्य ले डूबेगा (विशाल राजस्थान पूजा विशेषांक)
६७२ Sarat Chandra saw things through his heart
(Article/Hindusthan Standard, Diwali Annual १९७५)
६७३ Puranchand Nahar (Centenary No. November १९७५)
६७४ प्रगतिशील नया वातावरण (स्मारिका, नवम्बर १९७५)
६७५ भूमिपुत्र : एक भ्रामक नारा (स्मारिका, १९७५)
६७६ आपातकाल की सामाजिक संहिता
(राजस्थानी समाज, १४ दिसम्बर १९७५)
६७७ परिवार नियोजन : एक पर्यालोचन (सन्मार्ग, नवम्बर १९७५)
६७८ आवारा मसीहा : एक बहुमूल्य उपलब्धि
(पुस्तक समीक्षा/धर्मयुग, २८ दिसम्बर १९७५)
६७९ सामाजिक क्रांति १९७६ (दैनिक विश्वमित्र, १६ फरवरी १९७६)
६८० रुचि का वह अपूर्व व्यक्तित्व : रमाजैन (संस्मरण/धर्मयुग २२ फरवरी १९७६)
६८१ परिवार नियोजन : अनिवार्यता की ओर (दैनिक विश्वमित्र, १० मार्च १९७६)
६८२ दहेज का दानव और १९७६ की सामाजिक क्रांति
(अभ्युदय, १५ मार्च १९७६)
६८३ नवयुवक है कहां ? (दैनिक विश्वमित्र, १२ अप्रैल १९७६)
६८४ सामाजिक क्रांति जिन्दाबाद (विशाल राजस्थान, मार्च १९७६)
६८५ वैवाहिक सम्बन्धों का भविष्य (छपते-छपते, १३ अप्रैल १९७६)
६८६ सभापति का पत्र (पत्र/समाज विकास, मार्च-अप्रैल १९७६)
६८७ आज और हम (परिचर्चा/समाज विकास, मार्च-अप्रैल १९७६)
६८८ मातृभूमि वत्सला—मारवाड़ी समाज (समाज विकास, मार्च-अप्रैल, १९७६)
६८९ मारवाड़ी नाम ही उपयुक्त (अभ्युदय २६ अप्रैल १९७६)
६९० The role of Indian chamber of commerce in National Programme of Population Control (मई १९७६)
६९१ प० बंगाल के राजनीतिक एवं सामाजिक जनजीवन में मारवाड़ी समाज की भूमिका (छपते-छपते, २५ जून १९७६)
६९२ 'त्यागभूमि' की प्रेरक भूमिका (जीवन साहित्य' मई-जून १९७६)
६९३ दहेज विरोधी अभियान के बढ़ते पग (दैनिक विश्वमित्र, २७ जुलाई १९७६)
६९४ Higher Education : quantity Vs Quality. (२६ अगस्त १९७६)
६९५ महानगर की सांस्कृतिक परम्परा : कलकत्ता
(रेडियो-वार्ता/आकाशवाणी दिल्ली, २३ सितम्बर १९७६)

६९६ मुनि जिन विजय जी : आजीवन अनुसंधानरत कर्मयोगी
(तीर्थंकर, सितम्बर १९७६)
६९७ When a dream turned into reality
(Article, Shikshayatan Patrika, १९७६)
६९८ चाहिये समाज जिसमें सत्य हो, शिव हो और सुन्दर हो
(स्मारणिका, सितम्बर १९७६)
६९९ क्षणिक असमर्थ अवचेतन (गद्य-काव्य/नैणसी सितम्बर-अक्टूबर १९७६)
७०० Population Education for the younger generation
(Article/१४,१५ नवम्बर १९७६)
७०१ सम्पूर्ण क्रांति का सामाजिक आयाम (रेडियो-वार्ता/१५ जुलाई १९७७)
७०२ स्वतंत्रता के तीस वर्ष : कई चौराहे, कई मोड़
(रेडियो-वार्ता/१३ अगस्त १९७७)
७०३ हमारी स्वतंत्रता का नवसंस्कार (सन्मार्ग, दीपावली अंक, १९७७)
७०४ समाज : परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में (महर्षिशृंग, १९७७)
७०५ ओसवाल नवयुवक समिति : मेरे जीवन में
(दैनिक विश्वमित्र, २९ जनवरी १९७८)
७०६ सभापति का पत्र (समाज विकास, जनवरी-फरवरी १९७८)
७०७ एक बहुमुखी व्यक्तित्व : श्री रामेश्वर टांटिया
(संस्मरण/राजस्थानी समाज, १५ जनवरी १९७८)
७०८ पं० सुखलाल : दृष्टि विहीन द्रष्टा (गुजराती प्रबुद्ध जीवन, १ मई १९७८)
७०९ मादा कैक्टस—(समीक्षात्मक लेख)
७१० Pandit Sukhlalji the Blind Seer (जैन-जरनल, २ जून १९७८)
७११ मारवाड़ी शब्द : मराठी गुजराती कोश (समाज विकास, जुलाई १९७८)
७१२ Towards the rise of woman power (Article, दिसम्बर १९७८)
७१३ राजस्थान : तब और अब (स्मारिका १९७८)
७१४ प्रवासी राजस्थानी समाज (साक्षात्कार/गवाह, अक्टूबर' ७८ से मार्च १९७९)
७१५ प्रेमचन्द और भँवरमल सिंघी (कमल गोयनका)
(साक्षात्कार/समाज विकास, अगस्त-सितम्बर १९७९)
७१६ मारवाड़ी समाज और ईश्वरदास जालान
(समाज विकास, अगस्त-सितम्बर १९७९)
७१७ उनसे मैंने वेदना का नया अर्थ पाया (साक्षात्कार/हिन्दुस्तान, ७ अक्टूबर १९७९)
७१८ मारवाड़ी अथवा राजस्थानी अन्तर स्पष्ट है ! (१९७९)
७१९ सभापति का पत्र (पत्र/समाज विकास, १९७९)
७२० मेरा समाज : मेरा सम्मेलन (१९७९)
७२१ एक विरल व्यक्तित्व श्री छगनलाल विजयवर्गीय (स्मृति ग्रंथ, जुलाई १९८०)
७२२ सीताराम सेकसरिया : एक सच्चे कार्यकर्ता का निधन
(रविवार, ४ अप्रैल १९८२)

७२३ क्या हम समरस हुए (समाज विकास, १९८२)
७२४ मारवाड़ी सम्मेलन : जन्म और विकास (प्रथम किश्त)
(समाज विकास, जुलाई १९८२)
७२५ समाज सुधार : तब और अब (समाज विकास, १९८२)
७२६ राजस्थानी साहित्य और सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन
(समाज विकास, अगस्त १९८२)
७२७ सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन और रातों रात पंडाल
(समाज-विकास, सितम्बर १९८२)
७२८ हमने कुरीतियों से लड़ना ही छोड़ दिया (धर्मयुग, २४ अक्टूबर १९८२)
७२९ ब्रिटिश सरकार का भारत विधेयक और सम्मेलन का जन्म
(देश और व्यापार २६ दिसम्बर १९८२)
७३० समाज सुधार के स्तम्भ (दैनिक विश्वमित्र, ३० दिसम्बर १९८२)
७३१ समाज सुधार की सुप्रसिद्ध महिलायें (दैनिक विश्वमित्र, २० जनवरी १९८३)
७३२ हिन्दी की शत्रु हिन्दी (संकेत, जनवरी १९८३)
७३३ क्या विवाह संस्था जीवित रहेगी ? (धर्मयुग, ३ अप्रैल १९८३)
७३४ झाबरमल शर्मा जिनके लिये पत्रकारिता चुनौती की तरह रही
(संस्मरण/रविवार, १० अप्रैल १९८३)
७३५ इस देश को कौन बचा सकता है (आचार्य कुल, मई १९८३)
७३६ घनश्यामदास बिड़ला सिर्फ पूंजीपति नहीं थे
(रविवार २६ जून से २ जुलाई १९८३)
७३७ मारवाड़ी समाज की नई प्रतिभा (दैनिक विश्वमित्र, २ जुलाई १९८३)
७३८ पाट व्यवसाय में मारवाड़ी महारथी (दैनिक विश्वमित्र, ५ सितम्बर १९८३)
७३९ राजस्थानी समाज की सफलता में दान
(दैनिक विश्वमित्र, १७ सितम्बर १९८३)
७४० जब बापू ने कहा था, आजादी बला बनकर आई है
(रविवार, २ से ८ अक्टूबर १९८३)
७४१ स्व० वेणीशंकर शर्मा की स्मृति में (दैनिक विश्वमित्र, १० नवम्बर १९८३)
७४२ मारवाड़ी समाज की कोई अखिल भारतीय केन्द्रीय संस्था नहीं है
(समाज विकास, अक्टूबर-दिसम्बर १९८३)
७४३ हमारे सम्बन्धों के पिछले ५० वर्ष (श्री सिद्धराज ढड्ढा, अभिनन्दन ग्रन्थ १९८४)
७४४ धर्म, धन और क्यों ? (धर्मयुग, मई १९८४)
७४५ धर्म निरपेक्षता : आदर्श बनाम व्यवहार (अप्रकाशित)
७४६ हमारा स्वातंत्र्य संग्राम, एक संस्मरणात्मक समीक्षा (अप्रकाशित)
७४७ मेरी यादों का लाडनूं (अप्रकाशित)
७४८ The Cobweb of Counter Revolution (अप्रकाशित)
७४९ बदलते हुए मारवाड़ी से (अप्रकाशित)
७५० Social Revolution a Sine-que-non for thc Success of Democracy
(अप्रकाशित)

७५१ परिवार नियोजन की विश्वपरिक्रमा (अप्रकाशित)

७५२ यदि आबादी की वृद्धि न रुकी तो बीते २५ वर्षों में जो हालत हुई उससे कहीं बुरी हालत आनेवाले २५ वर्षों में होगी। (अप्रकाशित)

७५३ जन्मदर और मृत्यु दर में बढ़ता हुआ असन्तुलन (अप्रकाशित)

७५४ भारत में परिवार नियोजन : एक पर्यालोचन (अप्रकाशित)

७५५ चीन में परिवार नियोजन (अप्रकाशित)

७५६ जनता सरकार और परिवार नियोजन (अप्रकाशित)

७५७ परिवार नियोजन विदेशों में (अप्रकाशित)

७५८ जनसंख्या वृद्धि की समस्या (अप्रकाशित)

७५९ Family Planning in west Bengal (अप्रकाशित)

७६० Family planning need for Dynamic Approach and Drastic Action (अप्रकाशित)

७६१ History of Family planning movement (अप्रकाशित)

७६२ Medical and Sosio Economic as peets of Abortion (अप्रकाशित)

७६३ जनसंख्या एवं सामाजिक विकास (अप्रकाशित)

७६४ परिवार नियोजन का एक दशक (अप्रकाशित)

७६५ परिवार नियोजन की माता मारगरेट सेंगर—जब मैं उनसे मिला था (अप्रकाशित)

७६६ मैं (अप्रकाशित) 

सम्पादकीय

ओसवाल नवयुवक

सुधार बनाम सेवा, हमारी गुलाम मनोवृत्ति, रोटी का सवाल, जन साहित्य उसका उद्धार, हमारा युग, मारवाड़ियों पर आक्षेप (सन् १९३६)

महान क्रांति या महानाश, हमारा सामाजिक और सार्वजनिक जीवन, सरकार की जनविरोधी अर्थनीति, युवक क्या कर सकते हैं?, धर्म और समाज, कलकत्ते में सर्व धर्म सम्मेलन, प्रांतीय एसेम्बलियों के निर्वाचन में हमारा स्थान, बीमा कंपनियों की बाढ़, अपनी बात, समाज सुधार, तलवार के जोर पर शासन, हमारे समाज में विवाह का प्रश्न, यह वर्ष समाप्त हो गया, ओसवाल नवयुवक का परिवार पत्र संचालकों से, ओसवाल नवयुवक के लिए प्रेस की योजना, सराक जाति और जैन धर्म, नये शासन विधान में मंत्रिमंडल, संगठन और क्रांति, आधुनिक हिन्दी साहित्य और ओसवाल समाज, हमारे समाज में साहित्य और पुरातत्व प्रेम, ओसवाल महासम्मेलन का सभापति का निर्वाचन, धर्म की साधना, श्री शार्दूल व्यायामशाला सरदार शहर, ओसवाल महासभा के सभापति का निर्वाचन, अखिल भारतीय ओसवाल नवयुवक, अवसान की आंधी, महासम्मेलन के अधिवेशन की तैयारी, सुधार और संगठन, महासम्मेलन के सभापति का निर्वाचन, कांग्रेस और मुसलमान, प्रोफेसर हर्मन जैकोबी चल बसे, भाई मणिलाल जी कोठारी का स्वर्गवास, स्वर्गीय ठाकुर किशोर सिंह जी बार्हस्पत्य, युवक क्या कर सकते हैं, जापान का साम्राज्यवादी चक्र, स्वास्थ्य और घरों की सफाई, जैन साहित्य का पुनरुद्धार, नौकरी और व्यापार, आधुनिक उद्योग धंधे और हमारा समाज (सन् १९३७)

श्रीयुत् डाक्टर दौलत सिंह कोठारी, महायुद्ध की निकट आशंकायें क्यों विफल हो रही हैं, कांग्रेस के भावी सभापति, महान् औपन्यासिक का देहावसान, ओसवाल महासम्मेलन का युग परिवर्तन, जैन समाज किस ओर, ओसवाल महासम्मेलन का वंधाकरण, टीका और दहेज, कांग्रेस की सफलता, सेवामंदिर का निर्माण कीजिए, महावीर जयन्ती, बाल विवाह, महावीर की जीवन साधना, जैन साहित्य के पत्र, अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन, नया वैज्ञानिक आविष्कार, नववर्षारंभ, हमारी आर्थिक दुरवस्था का कारण : फाटका, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का स्थान, भारत में मजदूर आंदोलन, पर्दे में पर्दा, धार्मिक सम्पत्ति, विवाह के विषय में, दी बिहार रेलिजस एनडाउमेंट बिल, हमारा व्यापारिक ह्रास, हमारी विचारधारा, धनिक और गरीब, वर्तमान राजस्थान का जनमत, राजस्थान में भीषण अकाल, साधुत्व, हमारे जीवन में वीर जयन्ती (सन् १९३८)

तरुण ओसवाल

शुरुआत का स्पष्टीकरण, विवाह या खरीद फरोख्त, हमारी सामाजिक संस्थायें, महावीर जयन्ती और हमारा कर्तव्य, हम क्या करें? अहिंसा की विजय, कसौटी का समय, पर्दा निवारक आंदोलन, संवत्सरी, महात्मा गांधी, हमारा कर्तव्य, तमसो मा ज्योतिर्गमय (सन् १९४०)

तरुण जैन

प्रारंभिक, तीर्थों में वदइन्तजामी, इनको क्या कहें, सुधार या क्या? मुनि वहिष्कार, वह जघन्य हरम, सत्याग्रही महावीर, साहित्य और समाज, दीक्षा का जाल, मंदिर खतरे में, बीकानेर इनकम टैक्स विरोधी आंदोलन की गति, भारतीय राष्ट्र का इतिहास, साधु संस्था और युवक वर्ग, अहिंसा की दूसरी कसौटी पर्यूषण पर्व की विधान माला, अहिंसा के आधार, पर्यूषण का उद्देश्य, श्रद्धांजलि, दूसरे वर्ष की समाप्ति पर, मेरा धर्म का स्पष्टीकरण, आबू के जैन मंदिरों के यात्रियों पर कर, विचार स्वातंत्र्य के पोषक साधुओं के लिए (सन् १९४१)

आँखें खोलनेवाला संकट, 'अहिंसा वीरों का धर्म है' का गलत अर्थ, धर्म की इज्जत, जैन धर्म और जाति भेद, नई व्यवस्था की नई दिशा, प्रतिकार का व्रत, भगदड़ की समस्या, गांधी जी का नया कदम, निवृत्ति का उपदेश प्रवृत्ति का वरदान, कायरता और उसके परिणाम, देव द्रव्य और युद्ध, जोधपुर में दमन, संग्रह की कुत्सित मनोवृत्ति, तरुण जैन की नींव इतनी कच्ची नहीं है पूर्ण निवृत्ति की योजना, बलिदान घड़ी, स्वर्ग और नरक के कल्पित चित्र, वर्किंग कमेटी का प्रस्ताव, विधवा विवाह, व्यापारियों से, जोधपुर का आंदोलन, मित्रता का बदला, स्वर्गीय महादेव देसाई, श्रद्धा का अभाव है, श्री सिद्धराज का त्याग पत्र (सन् १९४२)

तरुण

किरायेदारों का आंदोलन, नाम परिवर्तन, तुलसी गण जयपुर में, धर्म और सरकार का कर्तव्य, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (सन् १९४९)

परिवर्तन प्रतिक्रिया और प्रगति, शांतिवादियों से, हमारा दायित्व और कर्तव्य, पूजा और प्रजातंत्र क्रांति की कसौटी, बापू ने तो कहा था, पश्चिम की ओर न देखें, प्रजातंत्रीय भारत में सामाजिक प्रगति, हिन्द पाकिस्तान: हिन्दू मुसलमान, समझौता और उसके बाद, विहार में दहेज प्रथा विरोधक कानून, पूर्वी बंगाल से शरणार्थियों को लाने की व्यवस्था में संयोग, यह मौलिक अंतर, सो चूहे खा के बिल्ली बैठे तप को, जैसे पुराने वुत वैसे नये, बच्चे बंद करो, जीविकोपार्जन की नहीं सम्पत्ति-पार्जन की व्यवस्था, हम कितने गिर गये हैं, यह है एकता का सच्चा तरीका, दान की दूकानें, पश्चिम में नारी स्वातंत्र्य के विरोधी, चुनाव के लिए बीस करोड़ की योजना, राजमहल में धर्माचार्य दर्शन देने के लिए या करने के लिए, अस्वस्थ समाज, जोड़ तोड़ बन्द हो, इस समाज को आग लगा दो, धर्म की ओट में, वेश्यावृत्ति रोकना आवश्यक, महिलाओं का कार्यक्षेत्र केवल घर ही न हो, यह अन्तर क्यों? स्त्री समाज में धर्मान्धता, एक साथी का सराहनीय कदम, आंगुल पादरी की सत्य-परीक्षा (सन् १९५०)

२१ वर्ष की हो गयी है वह, शिक्षा और अंधविश्वास, स्वतंत्र चीन का नया कदम, जनगणना और जातियां, चोर की मां, 'वदल डालो' क्यों ?, कांग्रेस किधर, संस्कृति की रक्षा, प्रति मिनट में आठ नये मुंह, क्या डाक्टर अम्वेडकर ने झूठ कहा था, व्यवसायियों को नेहरू जी की फटकार, धन का प्रभुत्व धर्म का नेतृत्व, मुंशी जी के वृक्ष कव उगेंगे, जनता के वुनियादी हक, 'खाद्यान्न वढ़ाओ'' वनाम वच्चों की पैदाइश कम करो, सोमनाथ का भारत, असंतोष की परीक्षा, राष्ट्रीय योजना समिति और जन्म नियंत्रण, पूंजीवादी व्यवस्था का अंत आवश्यक, एक अरव वीस करोड़ निरक्षरों की समस्या, शव्द ये ? कर्म वे, ?, धर्म में हस्तक्षेप, पंचवर्षीय योजना, सामाजिक न्याय, सामाजिक अन्धविश्वास, टंडन अथवा नेहरू, दो ही रास्ते इधर या उधर, तानाशाही वनाम जनतंत्र, जनमत के नाम पर मखौल, विचार स्वातंत्र्य पर कुठाराघात, नव निर्माण और गाँधी जी, वढ़ती हुई निराश, उदासीनता और उपेक्षा (सन् १९५१)

भविष्य दर्शन, गांधी जी का स्मरण या विस्मरण, धर्म और समाज, अंतर्राष्ट्रीय फिलम समारोह, नारी की रक्षा और सेवा के नाम पर, निशान देख लो न वावूजी, सार्वजनिक जीवन, हिंदू कोडविल युग की मांग, शावाश साथी जवाहर लाल, विवाह धर्म और कानून, जन्म संकट, यथार्थ और आदर्श, सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता, पर्यूपण व्याख्यान माला, श्री मणिलाल मोकमचंद शाह, परिवार नियोजन समिति, पंचवर्षीय योजना किसके लिए ? (सन् १९५२)

तरुण पाक्षिक

ये हमारे राजभवन, आर्थिक संकट और सामाजिक परिस्थिति (जून १९५३ तक) सहानुभूति किसके साथ न हो, आत्म निवेदन, विचारों का नया इतिहास, वड़ी ताकतों का सम्मेलन, हमारी जनसंख्या वृद्धि : चिंता का विषय, खान वंधुओं की मुक्ति के लिए आंदोलन, डाक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी का निधन, एवरेस्ट विजय, राज्याभिषेक उपहास है, वांछित दिशा में कदम, विस्फोटक स्थिति, हिंदू कोडविल के वारे में पुन: चर्चा, 'न्याय विभाग और शासन विभाग का पृथक्करण, जम्मू-कश्मीर की समस्या, श्री जे० सी० कुमारप्पा का अवकाश ग्रहण, शिक्षा संकट, चंदे की आत्मकथा, विचार क्रांति, विरोधी दल विना प्रजातंत्र कैसा, कलकत्ते में जनता के रोष का उभार, यह स्वतंत्र भारत की पुलिस है, विचारों के विकास के लिए स्वाध्याय आवश्यक, समाज को वदलना ही होगा, भारत-पाकिस्तान, सम्पदा-कर, कोरिया में भारत, परिवार नियोजन के साधन; हिंदू-उर्दू का झगड़ा फिरा, फिल्म सुधार, जनता और जनतंत्र, भूदान और भू-सत्याग्रह, जनसंख्या गरीवी और निरक्षरता; धर्मनिरपेक्ष राज्य में सार्वजनिक का अर्थ, नेहरू-राधाकृष्णन् क्रिकेट मैच, अनुर्वरीकरण का कानून, अनुशासन-हीनता का नाम क्रांति नहीं, सहशिक्षा, सामाजिक सुधार की महत्ता, देश की प्रगति का मापदंड, साधु नहीं समाज चोर ?, श्रीमती पंडित संयुक्त राष्ट्र संघ की अध्यक्षा निर्वाचित, राजप्रमुख पद—लोकतंत्र का कलंक, तरुणाई का दिवाला, शिक्षकों की स्थिति, शिष्टाचार, 'न्यायव्यवस्था में सुधार' आंध्र-भाषावार राज्यों के निर्माण का पहला प्रयोग, विश्वशांति की दिशा में, खादी के दुश्मन कौन, साहित्यिक कारखाना,

सन् १९५१ की जनगणना—एक गंभीर चेतावनी, विवाह संकट, दिखावा ज्यादा काम कम, संयुक्त राष्ट्र संघ और भावी पीढ़ियां, समाज सुधार सम्बन्धी विधेयक, तुर्की में धार्मिक प्रतिगामिता फिर सिर उठा रही है, महिला कार्यकर्त्ताओं से, नौजवानों के असंतोष का युग, जनतंत्र को चुनौती, दरबारी खादी, दहेज विरोधी कानून, वर्ण व्यवस्था का उन्मूलन, मानव अधिकार, नई और पुरानी पीढ़ी के दृष्टिकोण में अंतर, अमरीका की चाल, संस्कृति के फूल को अपने आप खिलने दीजिए, वर-वधू की प्रतिज्ञाएं (सन् १९५३)

समाज कल्याण, अस्पृश्यता निवारक विधेयक, विशेष विवाह विधेयक, और एक साहित्यक कारखाना, परिवार-नियोजन और सरकार, संगठन के नये पहाड़, हरिजनों के लिए अलग संस्थाएं खोलना अनुचित, क्या नवयुवक राजनीति में न पड़ें ? हृदय परिवर्तन या और कुछ ?, अंग्रेजी माध्यम पर प्रतिबंध, विवाह में सामाजिक-आर्थिक प्रतिबंध—आत्महत्या के कारण, विज्ञान और विवेक, धर्म के स्टाल, धर्मार्थ संस्थाओं के लिए अशोभनीय, सामाजिक क्रांति का विरोध करना बुद्धिमत्ता नहीं, क्या यही श्रेणी विहीन समाज की कल्पना है ? भारत का नैतिक प्रभाव, भारत जनसंख्या की समस्या पर समुचित ध्यान दे, सुधार की उत्क्रांति, यह है हमारी राज्य व्यवस्था का नक्शा, अध्यापकों की हड़ताल, क्या शिक्षा ही बंद कर दें ?, राष्ट्रपति जी की वेदना, विवाह विधि क्या हो ?, लोकतंत्र और धर्म, गांधी जी का दिया हुआ प्रकाश, 'चमत्कार' के व्यवसायी, आर्डिनेंसों का औचित्य कहां तक ?, धर्मरक्षक जी गिरफ्तार, युग की उपज, विवाह और तलाक बिल, सरकार ने देश के सामाजिक ढांचे को इतना महंगा बना दिया है, जब मैं ये भोज और ये शरावें देखता हूं, घोर अशोभनीय, दिमाग किनका खराब है, सेवा का नया संस्करण, धर्म के नेता पूंजीपतियों के पिछलग्गू, जनसंख्या एक विशेष समस्या, दकियानूसी नीति छोड़ना होगा, साहित्य और सरकार, भ्रमनिवारण, शान्ति की समस्या, फ्रांस और पुर्तगाल अधिकृत भारतभूमि भी स्वतंत्र हो, मिशनरियों के काम और इरादे, सरकार की भाषा विषयक नीति की आलोचना, समाज सुधार सम्बन्धी कानून, यह घृणित आरोप, जनतंत्रीय पद्धति, हिन्दू कोडबिल एक वर्ष में पास हो, दहेज का लोभ, हिन्द-चीन समस्या, वेश्यालय और महिलाओं का अनैतिक व्यापार बंद हो, सामाजिक क्रांति अनिवार्य, न्याय व्यवस्था पर राजनीतिक दलों का प्रभाव, रंगभेद किसी भी रूप में वांछनीय नहीं, सामूहिक सुरक्षा बनाम सामूहिक शांति, ४-२० वो या ४-२१, तीन से अधिक बच्चे न हों, भारत और चीन, संविधान में परिवर्तन की आवश्यकता, ये स्वागत समारोह, परिवार-नियोजन का कार्य, यह पर्दा कब हटेगा, ये आत्महत्याएं, बेकारी का सवाल, हमारे लोकतंत्र पर अस्पृश्यता का कलंक, बुराई की जड़ कहां है, एशिया और अमरीका, विज्ञान की प्रगति से ही समाधान संभव, लोकतंत्रीय मानस, भूदानयज्ञ सम्बन्धी आलोचना-प्रत्यालोचना, शांति की विजय, कांग्रेस के लिए भी अभिनेताओं के प्रदर्शन, जैन मंदिर में हरिजन प्रवेश, विज्ञान और राजनीति, जिम्मेदार कौन ?, विवाह और सरकार, आश्रमों के हथकंडे, गाय राजनीति, दहेज निरोधक कानून, तीसरी एकादमी, विदेशी बस्तियां, यदि वफादार होने का अर्थ हां में हां मिलाना है, कोट और नेकटाई की प्रवृत्ति, नौजवानों में असंतोष, आजादी की मंजिल,

लोकसभा द्वारा विशेष विवाह विधेयक स्वीकृत, श्रम-नीति सामाजिक न्याय की कसौटी पर, मान न मान मैं तेरा मेहमान, गोआ दुनिया के हर मुल्क का इम्तिहान है, प्रतिदिन ८५००० की वृद्धि, ये मीरायें, गीता माता की मूर्ति, उपाधि-व्याधि, गो और गो-ध्वज, विशेष विवाह विधेयक—सामाजिक एकता की दिशा में एक कदम, सरकारी कर्मचारियों में भ्रष्टाचार विरोध के लिए नये नियम, मानसिक बनाम शारीरिक-स्वास्थ्य, राष्ट्रपति की यज्ञ-यात्रा, यह देहाती विश्वविद्यालय का परिचय है, पुरानी समस्या का नया समाधान, जब शुद्धीकरण होने लगा, इतिहास के नये मोड़ पर, अमरीका में भी पासा पलटने लगा, आखिर भारत में फ्रांसीसी सत्ता का अंत हुआ, गो-वध बंदी आंदोलन : एक राजनीतिक चाल, धर्म के नाम पर प्रगतिशील कानून का विरोध, हिन्दी प्रसार के लिए शिक्षितों का कर्तव्य, इससे अधिक दुख की बात और क्या होगी, समाजवादी तस्वीर, कांग्रेस के नये अध्यक्ष, विवाह-सुधार (सन् १९५४)

समाजवादी समाजतंत्र, कानून व्यवस्था में परिवर्तन, दुराचार की यह कहानी, कौन-सा मार्ग सही है ?, वैज्ञानिक भावना, समस्त योजनाओं की योजना—परिवार नियोजन, राजस्थान में आदिवासी महिलाओं का अनुकरणीय कदम, समाजवाद के वाहन कौन, अदालतों द्वारा सामाजिक परिवर्तनों की उपेक्षा, स्वर्गीय हरविलास शारदा, जीवित-समाज के लक्षण, कांग्रेस की नजरों में कांग्रेस की तस्वीर, प्रतिभा और परिश्रम, कांग्रेस जन के लिए आचार संहिता, यह सोना-चाँदी !, वेश्याओं की जबानी उनकी कहानी, स्वतंत्र दुनिया की रक्षा के लिए, फिर ये उपाधियां !, 'काकटेल' दिल्ली, रंगीन कपड़े पहनना भी कितनी बड़ी बात है !, पहला कदम, नई पीढ़ी के सामने नई क्रांति का काम, स्त्री-पुरुष के अधिकारों में यह अंतर और कब तक ?, यह धर्म की ठेकेदारी, शाबाश नेहरू जी !, हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, वैद्यनाथ धाम के बाद जगन्नाथ पुरी, अब उपराष्ट्रपति जी की वारी, संविधान में परिवर्तन, राजनीतिक बनाम सामाजिक, विचारों की नयी भूमिका, ये आलोचक, महावीर के अनुयायियों से, सम्पत्ति का ईश्वर, गो-वध बंदी आंदोलन : सम्प्रदायवादी राजनीति का आखिरी दांव, प्रांतीयता का मवाद, भूखे पेट और बेकार हाथ, पाकिस्तानी नारी भी चेती, जैन मन्दिर और हरिजन प्रवेश, विचार का ऐटम, हिन्दू-विवाह विधेयक, अप्रत्याशित बहुमत से स्वीकृत, सामाजिक कार्यकर्त्ता नये मूल्यों का समन्वय करे, नव-संस्कार कैसे हो, दहेज देने-लेने की प्रतिज्ञा, हिन्दू आँखें खोलें, मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना, चाहिये : सामाजिक क्रांति, समाज सेवा और राजनीति, कहीं पूर्ण विराम नहीं, यह दान का युग और कब तक ? ये लोग बगावत क्यों नहीं करते ? गोदान के कारण गो-वध, इस बार कुरुक्षेत्र में, हमारे समाचार पत्र, 'साधुत्व' की रक्षा ? अन्तरजातीय विवाह हमारा आदर्श हो, राष्ट्रपति जी का मन गावों में रहता है ! पंडे अब खत्म हो रहे हैं, यह आचार्य तुलसी बोलते हैं !, वैज्ञानिकों की चेतावनी, भागिये मत, लड़िये !, व्यवस्था नई कानून पुराने, अगर अध्यापकों को असंतुष्ट रखा गया, पेड़-पूजा : एक नई रूढ़ि, अणु-युग की चुनौती, मित्रता का यात्री, परिवार-नियोजन और द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृथकता का दृष्टिकोण ही गलत है, बढ़ती हुई वेश्यावृत्ति के लिए कौन जिम्मेदार ?, पर क्या यह गलत है ?, धिक्कार है—किसको ? इश्तहार की नारी !, पुत्री का हिस्सा पुत्र के समान ही हो, सेवा सुधार और क्रांति,

संरक्षण की कोई आवश्यकता नहीं, सती अब भी जीवित है, पाठ्यक्रमों का आधार बदले, संस्कृति की उलझन, पति के नाम की परेशानी, इन्दौर के जैन मन्दिर, पहेली पुरस्कार पर प्रतिबन्ध, कुम्भ को भूले नहीं कि अर्द्धकुम्भ आ गया, शत्रु नं० १, नामों से राष्ट्रीयता की रक्षा, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में परिवार-नियोजन, राज्यों के पुनर्गठन की योजना, हम अभी भी गोबर युग में चल रहे हैं, वर्ण व्यवस्था को मिटाये बिना प्रजातंत्र असम्भव, सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध स्थायी संग्राम जारी किया जाय, ये भाग्य शृंखला के पात्र, सरकारी नौकरों लिए अन्तरजातीय विवाह की शर्त, सामाजिक दृष्टिकोण की कसौटी पर, क्या सचमुच जात-पांत मिटानी है ? संस्कृति-संकट, पुत्री का समान अधिकार स्वीकृत, उन्मादपूर्ण स्वागत या 'उन्मादपूर्ण आलोचना'; शासन और साहित्यकार, सामाजिक क्रांति द्वारा ही, नई दिल्ली का ही नमूना देखिए, नये खतरे मोल लें ! नेहरू जी सुवर्ण-तुला स्वीकार करेंगे ?, समाज की रूढ़ियों पर ही हर चोट अभिनन्दनीय ! (सन् १९५५)

दीवारें, और दीवारें,; झगड़ों की जड़ राजनीतिज्ञ, जात-पात के उन्मूलन की दिशा में, नया समाज : नयी शिक्षा, मन के अणुबम, एक क्षण: दो बच्चे, पेट की भूख : शील का व्यापार, साध्वी ही तो ऐसी हो, हाथ और उँगलियां, आज की प्रगति, कुत्ता जो साम्प्रदायिक तनाव का कारण बन गया ! केवल पैसा कमाना ही लक्ष्य न हो, प्रशासन : जड़ नहीं प्रगतिशील हो ! बेकारी की समस्या, समाजीकरण की आवश्यकता, यह जघन्य कृत्य—पर्दा प्रथा को कायम रखने के लिए !, और साधुओं का यह भी धन्धा है ! योजना इधर : विचार उधर, साहित्यकार और सामाजिक रूढ़ियां, जनसंख्या वृद्धि का संकट, विभक्त व्यक्तित्व, जाति जा रही है : जाति आ रही है, विधान मंडलों में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए हो, जहां मौन ही सर्वोत्तम मार्ग है, टिकिट लेने वालों का बहुमत टिकिट देनेवालों का प्रभुत्व, शिक्षित बेकार, अब तेरहपंथ या बारहपंथ ?, समाजवादी व्यवस्था : पूंजीवादी स्वभाव, तीन मिनट में नये चार मुँह खुल जाते हैं ! 'पिताजी प्रणाम !', १२७१ बहिनें जिनको तलाक कानून होने पर भी मुक्ति नहीं मिली, धर्म-निरपेक्षता : एक भ्रांति, साधुओं का सरकारीकरण, भूदान : गोआदान, देशभक्ति का अर्थ-लाभ !; गो-पूजा—सांड़ पूजा, चंदे में भी धंधे की मनोवृत्ति, सम्मेलन, शिलान्यास और अभिनन्दन, नया लक्ष्य: नयी यात्रा, शिक्षाक्रम समाज व्ययवस्था के अनुरूप बने, अवांछनीय परधर्म-सहिष्णुता, राजर्षि का प्रताप, साधु राजनीति से सावधान । समाजवादी ढांचे में व्यक्तिगत उद्योग; इसे गिरा दो, फूंक दो, अनैतिक समाज की नैतिकता, विचारों की निर्बाध अभिव्यक्ति, भौतिक परिवर्तन: सांस्कृतिक परिवर्तन, युद्ध स्तर पर, सच्चाई, ईमानदारी और योग्यता, पुरानी और वर्तमान पीढ़ियों के बीच की दूरी को दूर कर सकें, लोकतंत्र के प्रहरी, सत्यागी; जिसकी समाज के अत्यन्त सम्भ्रांत व्यक्तियों में गणना होती है, इस्लामी संविधान: गैर-इस्लामी पोशाक, 'राम' 'सीता' और 'लक्ष्मण' गिरफ्तार, जैन में : जीवन में, दुःख, नेहरू और ··· !, एशिया : अमरीका, पत्थर की दीवार न बनावें, व्यक्तिगत स्वार्थ की मर्यादा, उपाधि व्यवसाय, यह चेतावनी !, नयी मान्यताएं : नयी विचारधाराएं, नया घूंघट : नया लहंगा, विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता की जिम्मेदारी समाज पर है,

आर सी निगम

दहेज लेनेवालों का 'उपयुक्त सम्मान', जात-पांत जब तक बनी रहेगी, सामाजिक सेवा और सरकार, अब नई दुनिया आ रही है, खादी लोकप्रिय बन रही है, चोरों के पाप, और दूकानें बनती जा रही हैं, भगवान के लिए वोट दो, समाजवाद और वर्ण व्यवस्था का साहचर्य सम्भव नहीं, गाय, करपात्री जी और जयप्रकाश जी, पर्दा वहिष्कार चुनाव की कसौटी हो, पाकिस्तान भी समाज सुधार की ओर, प्रगति, रुको! खतरनाक, पुराने समझौते : नयी परिस्थितियां, सह-शिक्षा की सिफारिश, अणु की गति : मस्तिष्क की प्रगति, सांस्कृतिक क्रांति, सरकार की आलोचना : एक पवित्र कर्तव्य, मेरी बात सुनो, नहीं तो··· । यह अंग्रेजी विरोध बहुत महंगा पड़ रहा है, इतिहास और इतिहास, दहेज को बंद करने के लिए कानून बने, राजनीतिक दान, औद्योगिक प्रगति : आध्यात्मिक बुनियाद, हिन्दू कोडबिल की चौथी किश्त, बौद्धिक और आर्थिक पुनर्व्यवस्था का अभाव, नया खून, जरा मुहूर्त देख लीजिए! आत्मा, आत्मा, आत्मा, हृदय परिवर्तन की पगडंडियां, अपराधी युवक, परिवर्तन और संघर्ष, संघर्ष और परिवर्तन, सक्रिय विरोधी की जरूरत है!, जनता के समाचार या समाचारों की जनता ?, सिद्धांतों का देश, जनसंख्या वृद्धि : सर्वोपरि समस्या, कांग्रेस बहुत कमजोर हो गयी है, सत्य का डंका बजायें, राष्ट्रपति जी का नाई, मृत्यु सांड़ की : भोज ब्राह्मणों का, राष्ट्रपतिजी राम-लक्ष्मण की आरती उतार रहे हैं। जब तक वर्ण-भेद चलता रहेगा, यदि आबादी इतनी ही तेजी से बढ़ती रही, अध्यात्म, अध्यात्म अध्यात्म, जितना नुकसान जाति प्रथा ने पहुंचाया है, मृत्यु-दंड बंद नहीं हुआ, जी, बुद्ध जयंती की शुद्ध वेला में, नया खून, डाक्टर अम्बेडकर : सामाजिक क्रांति के प्रतीक, स्त्रियों के अनैतिक व्यापार को रोकने के लिए विधेयक (सन् १९५६)

जब तक सामाजिक विप्लव नहीं होगा, साधु—और सामाजिक बुराइयों से मुक्त वातावरण पैदा करेंगे! बुद्धिमत्ता नहीं बुजुर्गी! सबसे बड़ा खतरा : सामंती मापदंड, 'ईश्वर का अवतार' गिरफ्तार, समाज सेवा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य, प्रगति की कसौटी, विरोध : जनतंत्र की बुनियाद, नये कानूनों के बावजूद, क्रांतिकारी युग की धड़कन, धनतंत्र-जनतंत्र, फिर विरोधी दल की बात, लेखक सरकार पर नहीं जनता पर निर्भर रहे!, भारत : चीन, नेहरूजी के हाथ, जातियों का जनतंत्र, चुनाव चिन्ह, बूढ़ा समाज बूढ़ी राजनीति, देश की सेवा—गरीबों की कुसेवा, जातीय और साम्प्रदायिक अपील, नेतृत्व के नये स्तर, आदमी जीता है पर आदमी की तरह नहीं, कांग्रेस की हार के लिए सरकारी स्तर पर जाँच क्यों ?; गुणात्मक परिवर्तन, बुद्ध जयन्ती आई-गई! १९५७ !—१८५७ !, व्यक्ति पूजा सबसे बड़ा खतरा, समाजवाद हो तो भी 'हिन्दू' हो!, स्खलन, स्खलन, स्खलन!, व्यक्ति : विचार, क्रांति की उत्क्रांति, साधुओं का सुधार, न्याय की समस्या, राज्यपाल : धर्मपाल, प्रति मिनट जन्म १७०, मृत्यु ९०, खुला दिमाग चाहिए, सबसे पहली वफ़ादारी, बौद्धिक स्वतंत्रता, नया समाज : नया कानून, सह-अस्तित्व या सह-विनाश, सार्वजनिक जीवन की शव-परीक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता बनाम सामाजिक न्याय (सन् १९५७)

समाजवाद कसौटी पर, छुट्टी और छुट्टी, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर मगरमच्छ के आंसू, क्रीत राजनीति, बच्चे कायदे से पैदा हों और फासले से पैदा हों!,

समाज सुधार का भविष्य, गणतंत्र की समस्या, कृत्रिम गर्भाधान का प्रश्न, दहेज विरोधी विधेयक, स्त्रियों से छेड़छाड़ करने की रोकथाम, भांड़ में जाय यह स्वराज्य ! (जुलाई सन् १९५८ तक)

परिवार नियोजन

युगधर्म, विश्व दृष्टि, मृत्यु बनाम जन्म, तृतीय योजना की ओर, अनैतिक क्या—संतति निरोध या संतानोत्पादन ? (सन् १९५९)

ये आंकड़े : शुभ विवाह और भयावह, विकास के बढ़ते चरण, समस्या बनाम समाधान, मनुष्य द्वारा मनुष्य का प्रलय, परिवार नियोजन : जनता और सरकार (सन् १९६०)

लायन्स क्लब ऑफ जादवपुर की बुलेटिन

संख्या १, २ एवं ५ (सन् १९६३)

भूमिकाएं

श्री जवाहर लाल जैन रचित 'फूलों की माला' की भूमिका
(जनवरी, १९३३)

स्वर्गीय पूरनचंद नाहर के लेखों के संग्रह 'प्रवन्धावली' की भूमिका
(२३ नवम्बर, १९३७)

राष्ट्र योजना और परिवार योजना के प्रथम संस्करण की भूमिका
(सन् १९५६)

" " द्वितीय "
(नवम्बर, १९५८)

स्वरचित 'श्री भग्नहृदय के लेख' पुस्तक की भूमिका 'पृष्ठभूमि'
(जनवरी, १९६१)

अनामिका : रजत जयन्ती नाट्योत्सव की भूमिका (जनवरी १९८०)

स्वर्गीय भागीरथ कानोड़िया स्मृतिग्रंथ की भूमिका (जुलाई, १९८१)

स्वतंत्रता सेनानी स्वर्गीय सत्यपाल धवले स्मृतिग्रंथ की भूमिका
(सितम्बर, १९८३)

भाषण

हमारे समाज का सार्वजनिक जीवन (ओसवाल, ५ अप्रैल, १९३९)

ओसवाल नवयुवक समिति चतुर्थ वार्षिक प्रीति सम्मेलन
(जैनभवन, १३ अप्रैल १९३९)

बाद भी दफ्तर

प्रश्न प्रवर्तन—आधुनिक साहित्य वोध (नवम्वर, १९५९)
मनुष्य के दिमाग को वांधो मत, उसे मुक्त विचरण के लिए छोड़ दो
(१९५९)
जाति प्रथा और विदेशी हमले (परिचर्चा)
प्रणय रहा तो भी पाप नहीं (परिचर्चा, अक्टूवर १९६१)
परिवार और परिवार त्याग (परिचर्चा, दिसम्वर १९६१)
उद्घाटन भाषण—मुंगेर जिला मारवाड़ी सम्मेलन का अधिवेशन
(१९६१)
अंतरिक्ष गूंज रहा है (राजस्थानी समाज पाक्षिक, जुलाई १९६३; नवजीवन उदयपुर, २२ जुलाई ११६३)
आषाढ़ का एक दिन : जैसा मैंने समझा (परिचर्चा)
वार ऑन हंगर मस्ट वी द वार आन नम्वर (फरवरी १९६८)
पॉपुलेशन प्रमोशन ऑफ फैमिली प्लानिंग इन दि इंडस्ट्रियल सेक्टर
(दिसम्वर १९६८)
पॉपुलेशन प्राव्लेम्स एंड फैमिली प्लानिंग एक्टिविटीज इन कैलकटा
(सितम्वर १९७१)
सोशियो-इकानोमिक डेवलपमेंट एंड पापुलेशन (अप्रैल, १९७२)
वैकग्राउण्ड पेपर फॉर दि सेमिनार आन मेडिकल एंड सोशियो-इकानोमिक आस्पेक्ट्स आफ एवारशन (नवम्वर, १९७२)
अध्यक्षीय भाषण—अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन के रांची अधिवेशन में
(दिसम्वर १९७३)
आज की सवसे वड़ी तपस्या (परिचर्चा)
अध्यक्षीय भाषण—अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन, हैदरावाद
(नवम्वर, १९७६)
राजस्थान देन एंड नाउ (१९८२)
फैमिली प्लानिंग प्रोग्राम एमंग इंडस्ट्रियल वर्कर्स
फैमिली प्लानिंग—ए पीपुल्स मूवमेंट (काठमांडू)

रेडियो वार्ता

अवसान और आरम्भ (१९६४)
नेताजी सुभाषचन्द्र वोस (१९६५)
अभियान : अस्पृश्यता निवारण में भावात्मक एकता का महत्व
(२ मार्च १९६५)
महान साहित्य स्रष्टा श्री ताराशंकर वंद्योपाध्याय (१४ सितम्वर १९७१)

क्या आज का भारत समाजवाद की ओर अग्रसर नहीं हो रहा है ?
(१५ अगस्त, १९७३)
समाजवाद, समाज की कसौटी पर (१९७३)
और भी गम हैं जमाने में सियासत के सिवा (२९ दिसम्बर १९७३)
विज्ञान को अपनाना है : स्वास्थ्य रक्षा के क्षेत्र में (१२ मार्च १९७४)
सत्तर के दशक की चुनौती (२७ नवम्बर १९७४)
देश के दुश्मन, समाज के दुश्मन और खुद के दुश्मन (१६ मई १९७५)
भारतीय लोकतंत्र की रक्षा का दायित्व विरोधी दलों का
(९ जनवरी १९७६)
भारत की ग्रामीण जनता नेहरू की दृष्टि में (२८ मई १९७६)
परिवर्तन के नये परिवेश में समाज (२३ जुलाई १९७६)
महानगर की सांस्कृतिक परम्परा : कलकत्ता (२३ सितम्बर १९७६)
विज्ञान को अपनाना है : मन और बुद्धि में (३० अक्टूबर १९७६)
बचपन, जवानी और बुढ़ापा (८ अप्रैल, १९७७)
चाहिए समाज जिसमें सत्य हो; शिव हो, सुन्दर हो (१९७८)
समाजवादी विचारों की परिधि में जवाहरलाल नेहरू (२७ मई १९७८)
कूटनीति के विशेषज्ञ श्री जवाहरलाल नेहरू
सामाजिक रूपरेखा का आधार अर्थ परम्परा नहीं
अंध विश्वास : नये और पुराने
मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना
क्या उचित क्या अनुचित, पुरानी पीढ़ी में
श्री नगर का नौका-विहार
खानदानी मनमूवावंदी

पत्र-पत्रिकाएं जिनमें रचनाएं प्रकाशित हुई हैं

ओसवाल नवयुवक, जैन युग, श्वेताम्बर जैन, जागरण, माधुरी, सहेली, प्रभात, दैनिक आर्य, शांति, हंस, लेखक, मारवाड़ी, समाज सेवक, राजस्थान, जैनध्वज, दैनिक विश्वमित्र, तरुण ओसवाल, तरुण जैन, रियासती आवाज़, नया समाज, तरुण, एडवांस, नवभारत टाइम्स दैनिक, प्रबुद्ध जैन, तरुण पाक्षिक, अमृत बाजार पत्रिका दैनिक, राजस्थानी वीर, सन्मार्ग, छात्र अभियान, साप्ताहिक हिंदुस्तान, राजस्थान, सुप्रभात, समाज विकास, विशाल राजस्थान, श्रमण, अणुव्रत, जन, नवजीवन, विजिल, सरिता, मारवाड़ी छात्र संघ, आंध्र संघ वार्षिक, भूदान यज्ञ, ज्ञानोदय, परिवार-नियोजन, सर्वोदय सम्मेलन विशेषांक; समय धर्म, आचार, सम्मेलन संदेश, खादी पत्रिका, लहर, धर्मयुग, सोशलिस्ट समाचार, नागरिक छात्र संघ द्वारा आयोजित छठी स्वास्थ्य प्रदर्शनी पत्रिका; राजस्थानी समाज, तिलक पुस्तकालय पत्रिका, युग चरण, राष्ट्रवाणी, जागृत भारत, मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की स्मारिका, राजस्थानी समाज, श्री पुरुषोत्तम राय स्मृति पत्रिका, लायन्स क्लब ऑफ जादवपुर बुलेटिन; राजस्थानी समाज पाक्षिक, हिंदुस्तान स्टैंडर्ड (दैनिक), नर-नारी, अन्तर्द्वन्द्व, हैपीड्रम; हिन्द मुद्र

वेलफेयर, नई कहानियां, जैन जरनल, विग्रह, वातायन, महेश, वीमेन्स वर्ल्ड, शेखावाटी प्रवासी, मंगलदीप, पूर्व-ज्योति, विशाल मरुधर; शिक्षायतन पत्रिका, जीवन प्रभात, राजकमल टाइम्स, जीवन साहित्य, फैमिली प्लानिंग एसोसियेशन ऑफ इंडिया पूर्वांचल, प्रवासी राजस्थानी समाज, बिहार प्रांतीय मारवाड़ी सम्मेलन की मुख पत्रिका, जयपुर स्टैंडर्ड, विज्ञान समाचार, अणिमा साप्ताहिक, चौराहा, राष्ट्रमित्र साप्ताहिक, देश और समाज साप्ताहिक, छपते छपते, जैन प्रकाश, साप्ताहिक अकेला, दक्षिण राजस्थानी पोस्ट, नया जीवन, जिनवाणी, जिन संदेश, जीवन साहित्य, भारत. नैणसी, जैन जरनल, हिंदुस्तान, अभ्युदय, तीर्थंकर, महर्षि शृंग, गवाह, रविवार, देश और व्यापार, संकेत, आचार्य कुल। 